झरत दसहुं दिस मोती

अनुक्रम

1. राम मोर पुंजिया मोर धना...2
2. तुम वही हो..21
3. कोउ नहिं कइल मोरे मन कै बुझरिया..42
4. मोक्ष पुरस्कार है संसार को ठीक-ठीक जी लेने का............................66
5. मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूं..................................84
6. मेरा संन्यास जीवन के साथ अनंत प्रेम है......................................104
7. पिय संग जुरलि सनेह सुभागी..125
8. गगन मंडल में रास रचो है..147
9. बिगस्यो कमल फुल्यौ काया बन..169 10...सार-असार की कसौटी ध्यान है
.... 192
11..भक्ति है मंदिर परमात्मा का
.... 214
12..मैं तो यहां एक प्रेम का मंदिर बना रहा हूं
.... 235
13..इस्क करहु हरिनाम कर्म सब खोइया
.... 255
14...रहस्य में डूबो
.... 278
15...बिगसत कमल भयो गुंजार
.... 302
16..तुम्हारा अंत परमात्मा का प्रारंभ है
.... 324
17..अपने प्रिय संग होरी खेलौं
.... 342
18...संन्यास प्रेम है परमात्मा से
.... 365
19...सुरति संभारिकै नेह लगाइकै
.... 387
20...विधायक अकेलापन ध्यान है
.... 407
21..सतगुरु कृपा अगम भयो हो
.... 428

झरत दसहुं दिस मोती
पहला प्रवचन

राम मोर पुंजिया मोर धना

राम मोर पुंजिया मोर धना, निसबासर लागल रहु रे मना।।
आठ पहर तहं सुरति निहारी, जस बालक पालै महतारी।।
धन सुत लछमी रह्यो लोभाय, गर्भमूल सब चल्यो गंवाय।।
बहुत जतन भेष रच्यो बनाय, बिन हरिभजन इंदोरन पाय।।
हिंदू तुरुक सब गयल बहाय, चौरासी में रहि लपटाय।।
कहै गुलाल सतगुरु बलिहारी, जाति-पांति अब छुटल हमारी।।

नगर हम खोजिलै चोर अबाटी।
निसबासर चहुं ओर धाइलै, लुटत-फिरत सब घाटी।।
काजी मुलना पीर औलिया, सुर नर मुनि सब जाती।
जोगी जती तपी संन्यासी, धरि मार्यो बहु भांती।।
दुनिया नेम-धर्म करि भूल्यो, गर्व-माया-मद-माती।
देवहर पूजत समय सिरानो, कोउ संग न जाती।।
मानुष जन्म पायकै खोइले, भ्रमत फिरै चौरासी।
दास गुलाल चोर धरि मरिलौं, जांव न मथुरा-कासी।।

झरत दसहुं दिस मोती!
आंखें हों तो परमात्मा प्रति क्षण बरस रहा है। आंखें न हों तो पढ़ो कितने ही शास्त्र, जाओ काबा, जाओ काशी, जाओ कैलाश, सब व्यर्थ है। आंख है, तो अभी परमात्मा है--यहीं! हवा की तरंग-तरंग में, पक्षियों की आवाजों में, सूरज की किरणों में, वृक्षों के पत्तों में!
परमात्मा का कोई प्रमाण नहीं है। हो भी नहीं सकता। परमात्मा एक अनुभव है। जिसे हो, उसे हो। किसी दूसरे को समझाना चाहे तो भी समझा न सके। शब्दों में आता नहीं, तर्को में बंधता नहीं। लाख करो उपाय, गाओ कितने ही गीत, छूट-छूट जाता है। फेंको कितने ही जाल, जाल वापस लौट आते हैं। उस पर कोई पकड़ नहीं बैठती। ऐसे सब जगह वही मौजूद है। जाल फेंकने वाले में, जाल में--सब में वही मौजूद है। मगर उसकी यह मौजूदगी इतनी घनी है और इतनी सनातन है, इस मौजूदगी से तुम कभी अलग हुए नहीं, इसलिए इसकी प्रतीति नहीं होती।
जैसे तुम्हारे शरीर में खून दौड़ रहा है, पता ही नहीं चलता! तीन सौ वर्ष पहले तक चिकित्सकों को यह पता ही नहीं था कि खून शरीर में परिभ्रमण करता है। यही ख्याल था कि भरा हुआ है; जैसे कि गगरी में पानी भरा हो। यह तो तीन सौ वर्षो में पता चला कि खून गतिमान है।
हजारों वर्ष तक यह धारणा रही कि पृथ्वी स्थिर है। जो लोग घोषणा करते हैं कि वेदों में सारा विज्ञान है, उनको ख्याल रखना चाहिएः वेदों में पृथ्वी को कहा है--"अचला", जो चलती नहीं, हिलती नहीं, डुलती नहीं। क्या खाक विज्ञान रहा होगा! अभी पृथ्वी के अचला होने की धारणा है। अभी यह भी पता नहीं चला है कि पृथ्वी चलती है, प्रतिपल चलती है। दोहरी गति है उसकी। अपनी कील पर घूमती है--पहली गति; और दूसरा--सूर्य के चारों तरफ परिभ्रमण करती है। मगर हम पृथ्वी पर हैं, इसलिए पृथ्वी की गति का पता कैसे चले? हम उसके अंग हैं। हम भी उसके साथ घूम रहे हैं। और भी शेष सब उसके साथ घूम रहा है। तो पता नहीं चलेगा।
जैसे समझो यहां बैठे-बैठे अचानक कोई चमत्कार हो जाए और हम सब छह इंच
के हो जाएं, और हमारे साथ वृक्ष भी उसी अनुपात में छोटे हो जाएं, मकान भी उसी अनुपात में छोटा हो जाए, तो किसी को पता ही नहीं चलेगा कि हम छोटे हो गए हैं। क्योंकि पुराना अनुपात कायम रहेगा। तुम्हारे सिर से छप्पर की दूरी उतनी ही रहेगी जितनी पहले थी। तुम्हारा बेटा तुमसे उतना ही छोटा रहेगा जितना पहले था। वृक्ष तुमसे उतने ही ऊंचे रहेंगे जितने पहले थे। अगर सारी चीजें एक साथ छोटी हो जाएं, समान अनुपात में, तो किसी को कभी कानों-कान पता

नहीं चलेगा। तुम जिस फुट और इंच से नापते हो, वह भी छोटा जो जाएगा न! वह भी बताएगा कि तुम छः फीट के ही हो, जैसे पहले थे, वैसे ही अब भी हो।
कहते हैं मछली को सागर का पता नहीं चलता। चले भी कैसे? सागर में ही पैदा हुई, सागर में ही बड़ी हुई, सागर में ही एक दिन विसर्जित हो जाएगी। लेकिन मछली को सागर का कभी-कभी पता चल सकता है। कोई मछुआ खींच ले उसे, डाल दे तट पर, तप्त रेत पर, तड़फे, तब उसे बोध आए, तब उसे समझ आए। सागर से टूट कर पता चले कि मैं सागर में थी और अब सागर में नहीं हूं। जब तक सागर में थी तब तक पता नहीं चला कि मैं सागर में हूं।
मन के इस नियम को ठीक से समझ लेना। हमें उसका ही पता चलता है जिससे हम छूट जाते हैं; जिससे हम टूट जाते हैं; जिससे हम भिन्न हो जाते हैं। उसका हमें पता ही नहीं चलता जिसके साथ हम जुड़े ही रहते हैं, जुड़े ही रहते हैं। कहते हैं, मरते वक्त लोगों को पता चलता है कि हम जीवित थे। और यह बात ठीक ही है। क्योंकि जीवन जब था तो तुम सागर में थे। मृत्यु के वक्त मौत का मछुआ तुम्हें खींच लेता है, डाल देता है तट पर तड़फने को, तब पता चलता है कि अरे, हाय कितना चूक गए! कैसा अदभुत जीवन था! अब सब यादें आती हैं।
कहते हैं कि मरते क्षण में सारे जीवन की कहानी आंखों के सामने से दोहरा जाती है। दोहरती है। इसलिए दोहरती है कि अब तड़प-तड़प कर याद आती है उन सब क्षणों की जो यूं ही गंवा दिए; उन सब दिनों की, जो काटे नहीं कटते थे। अब तुम मांगो कि एक क्षण और मिल जाए, नहीं मिलेगा। और पहले शतरंज बिछाए बैठे थे, ताश के पत्ते खेल रहे थे! और कोई पूछता क्या कर रहे हो, तो कहते थे कि समय काट रहा हूं। पागलो, समय तुम्हें काट रहा है कि तुम समय को काट रहे हो? मगर तब यह बात ठीक ही थी, क्योंकि पता नहीं था मृत्यु का, तो जीवन का अनुभव नहीं होता था।
जब तक तुम बीमार न पड़ो तब तक तुम्हें स्वास्थ्य की प्रतीति नहीं होती। और जब तक तुम्हारे सिर में दर्द न हो, तब तक तुम्हें सिर का बोध ही नहीं होता। पैर में कांटा गड़े, चुभे, तो पता चलता है कि पैर है। मछली खींची जा सकती है सागर से, तो पता चल सकता है। लेकिन परमात्मा के सागर के बाहर तो हम हो ही नहीं सकते। उसका कोई तट ही नहीं, कोई किनारा नहीं! उसके बाहर कुछ नहीं। जीएंगे तो उसमें, मरेंगे तो उसमें। जागेंगे तो उसमें, सोएंगे तो उसमें। वही है बाहर, वही है भीतर।
इसलिए चारों तरफ मोती बरस रहे हैं, मगर हमें पता नहीं चल रहा। मोती ही मोती बरस रहे हैं! गुलाल ठीक कहते हैंः "झरत दसहुं दिस मोती!" दसों दिशाओं से झर रहे हैं। अनंत झर रहे हैं। प्रत्येक क्षण बहुमूल्य है और अमृत बरस रहा है। भर लो अपने घट! मगर तुम्हें पता ही नहीं कि अमृत बरस रहा है। तुम तो कंकड़-पत्थर बीन रहे हो। तुम्हें मोतियों का पता कैसे चले, तुम्हारी आंखें तो कंकड़ों-पत्थर पर अटकी हैं। कंकड़ों-पत्थरों से तुम थोड़े छूटो; आंखों को थोड़ा संवारो, निखारो, कानों को थोड़ा शांत करो; मन को थोड़ा निर्विचार करो; तो शायद वह संगीत सुनाई पड़े जो परमात्मा का संगीत है। जिसे संतों ने अनाहत नाद कहा है। तो शायद तुम्हें वह प्रकाश दिखाई पड़े जो अंधेरे में भी छिपा है, जो अंधेरे में भी मौजूद है, क्योंकि अंधेरा भी उसका ही एक रूप है। तो तुम्हें देह में भी उसकी प्रतीति होने लगे जो अदेही है लेकिन देह में ठहरा हुआ है। तब तुम्हें चारों ओर उसकी आभा का मंडल अनुभव हो। तभी तुम इन सूत्रों को समझ पाओगे। तभी तुम्हारे भी प्राण कह सकेंगेः "झरत दसहुं दिस मोती"! और तब कितना आह्लाद, कितना हर्षोन्माद! तब आनंद में रोता है भक्त। तब आनंद में हंसता है, नाचता है। तब आनंद का कोई पारावार नहीं है। और उस पारावार से मुक्त जो आनंद है, उसी का नाम परमात्मा है।
परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। पुनः-पुनः स्मरण रखना! परमात्मा केवल आनंद की अनुभूति का नाम है। अमृत का साक्षात्कार है। चैतन्य की प्रतीति है। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है। परमात्मा केवल शक्ति है, ऊर्जा है। और ऊर्जा का ही तो सारा खेल है। कहीं वही शक्ति हरी होकर वृक्ष हो गई है, लाल होकर फूल हो गई है, कहीं वही शक्ति सूरज बनी है, कहीं वही शक्ति तारे; वही शक्ति तुम्हारे भीतर सुन रही है अभी, वही शक्ति मेरे भीतर बोल रही है अभी। नहीं उससे कुछ भिन्न है! हम सब उसमें एक हैं, अभिन्न हैं।

गुलाल के संबंध में बहुत ज्यादा पता नहीं है। जरूरत भी नहीं है। वचन
ही काफी हैं। वे ही प्रमाण हैं। कहां जन्में, किस घर में बड़े हुए--लेना- देना क्या है? सब घर घर ही हैं। किस गर्भ से पैदा हुए, किस परिवार में पैदा हुए, मां-पिता का क्या नाम था--क्या करोगे जानकर भी? जाना भी तो क्या अर्थ है? नाम-पते इस दुनिया में चलते हैं। झूठी दुनिया में झूठे नाम-पते चलते हैं। उस दुनिया में तो कोई न नाम है, न कुछ पता है; न कोई जाति है; न कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है।
इसीलिए संतों के संबंध में व्यर्थ की बातों को हमने संग्रहीत नहीं किया है। इसीलिए संतों के संबंध में हमारी जानकारी न के बराबर है। और यह बड़ी सूचक बात है। सिकंदर के संबंध में बहुत कुछ पता है, और चंगीज खान के संबंध में भी, और नादिरशाह, और एडोल्फ हिटलर, और माओत्से-तुंग, इन सबके संबंध में बहुत कुछ पता है, बहुत कुछ पता रहेगा। इन्हीं से इतिहास बनता है।
गुलाल का नाम तो तुम इतिहास में खोजने जाओगे तो मिलेगा ही नहीं। किसी पाद-टिप्पणी में भी नहीं मिलेगा। जैसे हुए, न हुए! और उसका कारण है। जब अहंकार न रह जाए, तो हुए न हुए बराबर ही है। गुलाल कभी हुए ही नहीं, ऐसा समझो। अगर गुलाल कुछ थे भी तो बस बांस की पोंगरी थे। परमात्मा ने उसमें से कुछ गीत गाए, वे गीत हमारे पास हैं। बस वे गीत काफी हैं। उन गीतों से खबर मिलती है कि बांसुरी भी रही होगी। अब बांसुरी किस बांस से बनी थी, किस रंग का बांस था, किसी ढंग का था, कहां बांस पैदा हुआ था--इस तरह की निष्प्रयोजन बातों में जाने की कोई जरूरत नहीं है।
ऐसी बातों में जाने वाले लोग भी हैं। वे विश्वविद्यालयों में शोध-कार्य करते रहते हैं। वे इन्हीं व्यर्थ की बातों में लगे रहते हैं--कौन कहां जन्मा, किस तिथि में जन्मा, किस घर में जन्मा? वे व्यर्थ की बातों में इतना उपद्रव मचाए रखते हैं और इतना विवाद चलाते हैं व्यर्थ की बातों का कि जिसका हिसाब नहीं। विश्वविद्यालयों में थप्पियां लगती जाती हैं उनके शोध-कार्यो की। उनके शोध-कार्य को कोई दूसरा पढ़ता भी नहीं, दूसरे शोध-कार्य करने वाले ही पढ़ते हैं, बस। और वे विवाद में व्यस्त हैं। और उन्हें किसी को पता नहीं और किसी को प्रयोजन नहीं कि बांसुरी से जो गीत बहे, उन गीतों को हम समझें, बांसुरी का क्या लेना-देना? बांसुरी कहां आती है? बांसुरी की खूबी यही है कि वह खाली है, रिक्त है, शून्य है। गीत को रोकती नहीं, बस यही उसकी खूबी है। गीत को बह जाने देती है, यही उसका गौरव है।
और गुलाल ने प्यारे गीत गाए! साफ है कि पढ़े-लिखे आदमी नहीं थे; शब्द ही कहते हैं। बेपढ़े-लिखे थे। और अक्सर ऐसा हुआ है, परमात्मा बेपढे-लिखों से ज्यादा आसानी से बोल सका है। क्योंकि पढ़े-लिखे बहुत अड़चन डालते हैं। पढ़े- लिखे अपने को पूरा-पूरा नहीं दे पाते। पढ़े-लिखे तो वह बोले तो उसमें भी बीच में सुधार कर देंगे। कहेंगेः ऐसा नहीं, ऐसा बोलो। यह वेद के अनुकूल है। यह उपनिषद के प्रतिकूल हो गया। यह कुरान से मेल खाता है, यह मेल नहीं खाता है। यह मैं नहीं बोलूंगा। मैं तो वही बोलूंगा जो कुरान में लिखा है। मैं मुसलमान हूं।
पढ़े-लिखे के आग्रह होते हैं, पक्षपात होते हैं, धारणाएं होती हैं। पढ़े-लिखे का अर्थ यह होता है कि बांसुरी खाली नहीं है, उसमें शास्त्र भरे हुए हैं। और शास्त्रों को पार करके आना बड़ा मुश्किल है! लोहे की दीवालें भी इतनी बड़ी दीवालें नहीं, जितनी शास्त्रों की दीवालें बड़ी दीवालें हैं। ऐसे तो कागजी हैं, मगर यह मन कागजी दीवालों में बहुत उलझ जाता है। यह मन कागजी दीवालों को बहुत मानता है।
अक्सर ऐसा हुआ है कि गैर पढ़े-लिखों से परमात्मा ने सरलता से अपनी बात
कह दी। क्योंकि गैर पढ़ा-लिखा आदमी बाधा भी क्या डाले!
मूसा के जीवन में उल्लेख है। मूसा एक जंगल से गुजर रहे हैं और उन्होंने एक गड़रिए को प्रार्थना करते देखा। खड़े होकर उसकी प्रार्थना सुनने लगे। प्रार्थना क्या सुनी, आगबबूला हो गए! वह प्रार्थना क्या कर रहा था... ! ऐसी प्रार्थना मूसा ने कभी कल्पना भी नहीं की थी। ऐसी प्रार्थना से तो बेहतर प्रार्थना कोई न करे। इससे तो नास्तिक बेहतर। क्योंकि वह

प्रार्थना में बड़ी अजीब बातें कह रहा था। वह कह रहा थाः हे प्रभु! अरे, मुझे बुला ले! मैं तुझे रोज स्नान करवा दूंगा। अपनी भेड़ों को देखते हो कैसा स्नान करवाता हूं! रगड़-रगड़ साफ कर देता हूं! ऐसा रगड़-रगड़ कर तुझको साफ करूंगा। धूल जमने ही नहीं दूंगा। और भोजन इत्यादि बनाने में भी मैं कुशल हूं, तो भोजन भी बना दिया करूंगा। और पैर दाबना भी मुझे आता है, मालिश करनी भी मुझे आती है, तो रोज मालिश भी कर दूंगा; थक जाता होगा तू इतने संसार को चलाते-चलाते! कौन तेरी फिकर करता होगा! तू सबका रखवाला, तेरा कोई रख वाला नहीं, मैं तेरा रख वाला! अब तुझसे क्या छिपाना, सब बात साफ कह देता हूं। जुआं पड़ जाएं, निकाल दूंगा! भेड़ों के निकालते-निकालते ऐसा कुशल हो गया हूं।
जब मूसा ने सुना कि यह जुएं निकालने की बात कर रहा है--ईश्वर से! --फिर बरदाश्त से बाहर हो गया। कहाः रुक नालायक! तू ईश्वर के जुआं निकालेगा? ईश्वर को जुआं होते हैं? तू ईश्वर को रगड़-रगड़ कर साफ करेगा? उसका कोई रखवाला नहीं, तू उसका रखवाला है! होश की बातें कर! यह कोई प्रार्थना है? बेचारा गड़रिया तो एकदम पैर पकड़ लिया मूसा के, उसने कहाः मुझे कुछ आता नहीं, मैं तो गरीब आदमी हूं, बेपढ़ा-लिखा हूं, बस भेड़ों से ही बात करना जानता हूं, यही मेरा सत्संग समझो, तो मेरी भाषा बस मेरे और मेरी भेडों के बीच की भाषा है। अब मैं उससे कहना भी चाहता हूं अच्छी-अच्छी बातें, मगर मुझे आती नहीं। अच्छी-अच्छी बातें लाऊं कहां से? तुम मुझे समझा दो, मैं वही कहूंगा। मैं तो यही सोचकर कह रहा था कि अच्छी-अच्छी बातें... यही मेरे मन में अच्छी- अच्छी बातें हैं। मैं गरीब आदमी, बेपढ़ा-लिखा आदमी, मुझे माफ करो, नाराज न होओ! अब तुम आ ही गए हो तो मुझे समझा दो कि प्रार्थना कैसे करनी है?
तो मूसा ने उसे जो प्रार्थना करनी चाहिए, यहूदियों की जो प्रार्थना है, वह समझाई। वह बड़ी लंबी थी। उसने कहा कि यह मैं भूल जाऊंगा। इतनी लंबी प्रार्थना मुझसे न हो सकेगी। और इसमें आगे के शब्द पीछे हो जाएंगे, पीछे के शब्द आगे हो जाएंगे, तो फिर पाप होगा। मेरी तो जो प्रार्थना है वह मेरी ही बनाई हुई है, जब दिल हो, जैसा चाहूं वैसा कर लेता हूं। कभी यह कहा, कभी वह कहा। कोई रोज-रोज वही कहने की भी जरूरत नहीं है।
मूसा ने दुबारा समझाई, तिबारा समझाई। मूसा बहुत प्रसन्न उसको समझा कर
चल पड़े कि एक भटके हुए आदमी को रास्ते पर लगाया। जैसे ही उसको छोड़कर वे जंगल में गए, आकाश से आवाज आई कि मूसा, मैंने तुझे पृथ्वी पर भेजा कि तू लोगों को मुझसे जोड़ना, तूने तो तोड़ना शुरू कर दिया! वह आदमी मुझसे जुड़ा था, तू उसे तोड़ आया। अब वह तेरी प्रार्थना कर रहा है, लेकिन उस प्रार्थना में कोई प्राण ही नहीं हैं। अब उधार है प्रार्थना, अब बासी है। अब वह कह तो रहा है, लेकिन उसके हृदय की धड़कन नहीं है उसमें! तू वापिस जा, उससे क्षमा मांग! वह पहले जो कहता था, उसमें हृदय था, उसमें प्रेम था, उसमें भाव था, उसमें प्रामाणिकता थी। तूने बड़ी गलती की है। तूने एक भक्त के हृदय को दुखाया है। तू जा वापिस!
मूसा तो बहुत हैरान हुए। लेकिन गए वापिस, क्षमा मांगी। पैर पड़े और कहाः तू अपनी प्रार्थना जारी रख, परमात्मा मुझ पर नाराज है। मुझे क्या पता कि उसको तेरी बातें सोहती हैं, कि तेरी बातें उसे जमती हैं! तू तो अपनी प्रार्थना जारी रख! मेरी बड़ी भूल हो गई जो मैंने तुझे बाधा डाली।
गैर पढ़ा-लिखा आदमी, जिसे कुछ पता नहीं है शास्त्रों का, अक्सर परमात्मा के निकट आसानी से पहुंच जाता है। ज्ञान बाधा बना जाता है; अज्ञान उतनी बड़ी बाधा नहीं है। क्योंकि अज्ञान में एक विनम्रता होती है और ज्ञान में एक अहंकार होता है, दंभ होता है।
गुलाल गैर पढ़े-लिखे आदमी हैं। उनके शब्दों से ही साफ हो जाएगा। इसके पहले कि हम उनके शब्दों में उतरें, उनके सीधे-सादे शब्दों में डुबकी मारें, उनके सीधे-सादे शब्दों का स्वाद लें, एक घटना जो अभूतपूर्व है, जो मनुष्यजाति के पूरे इतिहास में कभी नहीं घटी--गुलाल और गुलाल के गुरु के बीच घटी--उस घटना को पहले समझ लेना जरूरी है, क्योंकि उस घटना के बाद ही ये सारे सूत्र सरल हो सकेंगे। और घटना अभूतपूर्व है। न पहले कोई वैसा उल्लेख

है, न बाद में वैसा कोई उल्लेख है। फिर दुबारा कभी घटेगी, इसकी आशा भी नहीं। और बड़ी अलौकिक है!
गुलाल शिष्य थे बुल्लाशाह के। यह तो कोई बात खास नहीं; बुल्लाशाह के बहुत शिष्य थे। और हजारों सद्गुरु हुए हैं और उनके लाखों शिष्य हुए हैं, इसमें कुछ अभूतपूर्व नहीं। अभूतपूर्व ऐसा है कि गुलाल एक छोटे-मोटे जमींदार थे और उनका एक चरवाहा था--बुलाकीराम। लेकिन बुलाकीराम बड़ा मस्त आदमी था, उसकी चाल ही कुछ और थी! उसकी आंखों में खुमार था। उसके उठने-बैठने में एक मस्ती थी। कहीं रखता था पैर, कहीं पड़ते थे। और सदा मगन रहता था। कुछ था नहीं उसके पास मगन होने को--चरवाहा था, बस दो जून रोटी मिल जाती थी, उतना ही काफी था। सुबह से निकल जाता खेत में काम करने, जो भी काम हो, रात थका- मांदा लौटता; लेकिन कभी किसी ने उसे अपने आनंद को खोते नहीं देखा। एक आनंद की आभा उसे घेरे रहती थी। उसके बाबत खबरें आती थीं--गुलाल के पास, मालिक के पास--कि यह चरवाहा कुछ ज्यादा काम करता नहीं, क्योंकि हमने इसे खेत में नाचते देखा, काम यह क्या खाक करेगा! तुम भेजते हो गाएं चराने, गाएं एक तरफ चरती रहती हैं, यह झाड़ पर बैठ कर बांसुरी बजाता है। हां, बांसुरी गजब की बजाता है, यह सच है, मगर बांसुरी बजाने से और गाय चराने से क्या लेना-देना है? तुम तो भेजते हो कि खेत पर यह काम करे और हमने इसे खेत में काम करते तो कभी नहीं देखा, झाड़ के नीचे आंख बंद करके बैठे जरूर देखा है। यह भी सच है कि जब झाड़के नीचे आंख बंद करके बैठता है तो इसके पास से गुजर जाने मेंंभी सुख
की लहर छू जाती है; मगर उससे खेत पर काम करने का क्या संबंध है!
बहुत शिकायतें आने लगीं। और गुलाल मालिक थे। मालिक का दंभ और अहंकार।
तो कभी उन्होंने बुलाकीराम को गौर से तो देखा नहीं। फुर्सत भी न थी; और भी नौकर होंगे, और भी चाकर होंगे। और नौकर-चाकरों को कोई गौर से देखता है! नौकर-चाकरों को कोई आदमी भी मानता है! तुम अपने कमरे में बैठे हो, अखबार पढ़ रहे हो, नौकर आकर गुजर जाता है, तुम ध्यान भी देते हो? नौकर से तुमने कभी नमस्कार भी की है? नौकर की गिनती तुम आदमी में थोड़े ही करते हो। नौकर से तुमने कहा है आओ बैठो, कि दो क्षण बात करें? यह तो तुम्हारे अहंकार के बिल्कुल विपरीत होगा।

खबरें आती थीं, मगर गुलाल ने कभी ध्यान दिया नहीं था। उस दिन खबर आई सुबह ही सुबह कि तुमने भेजा है नौकर को कि खेत में बुआई शुरू करे, समय बीता जाता है बुआई का, मगर बैल हल को लिए एक तरफ खड़े हैं और बुलाकीराम झाड़ के नीचे आंख बंद किए डोल रहा है।
एक सीमा होती है! मालिक सुनते-सुनते थक गया था। कहाः मैं आज जाता हूं
और देखता हूं। जाकर देखा तो बात सच थी। बैल हल को लिए खड़े थे एक किनारे--कोई हांकने वाला ही नहीं था--और बुलाकीराम वृक्ष के नीचे आंख बंद किए डोल रहे थे। मालिक को क्रोध आया। देखा--यह हरामखोर, काहिल, आलसी... ! लोग ठीक कहते हैं। उसके पीछे पहुंचे और जाकर जोर से एक लात उसे मार दी। बुलाकीराम लात खाकर गिर पड़ा। आंखें खोलीं। प्रेम के और आनंद के अश्रु बह रहे थे। बोला अपने मालिक सेः मेरे मालिक! किन शब्दों में धन्यवाद दूं? कैसे आभार करूं? क्योंकि जब आपने लात मारी तब मैं ध्यान कर रहा था। जरा-सी बाधा रह गई थी मेरे ध्यान में। आपकी लात ने वह बाधा मिटा दी। जरा-सी बाधा, जिससे मैं नहीं छूट पा रहा था। जब भी ध्यान में मैं मस्त हो जाता हूं तो यही बाधा मुझे घेर लेती है, यही मेरी आखिरी अड़चन थी। गजब कर दिया मालिक आपने भी! मेरी बाधा यह है कि जब भी मैं मस्त हो जाता हूं ध्यान में, तो गरीब आदमी हूं, साधु-संतों को भोजन करवाने के लिए निमंत्रण करना चाहता हूं, लेकिन है ही नहीं भोजन जो करवाऊं, तो बस ध्यान में जब मस्त होता हूं तो मानसी-भंडारा करता हूं। मन ही मन मैं सारे साधु-संतों को बुला लाता हूं कि आ जाओ, सब आ जाओ, दूर-दूर देश से आ जाओ! और पंक्तियों पर पंक्तियां साधुओं की बैठी थीं और क्या-क्या भोजन बनाए थे, मालिक! परोस रहा था और मस्त हो रहा था! इतने साधु-संत आए थे! एक से एक महिमा वाले! और तभी आपने मार दी लात। बस दही परोसने को रह गया था; आपकी लात लगी, हाथ से हांडी छूट गई; हांडी फूट गई, दही बिखर गया। मगर गजब कर दिया मालिक, मैंने कभी सोचा भी न था कि आपको ऐसी कला आती है! हांडी क्या फूटी,

मानसी-भंडारा विलुप्त हो गया, साधु-संत नदारद हो गए--कल्पना ही थी सब, कल्पना का ही जाल था--और अचानक मैं उस जाल से जग गया, बस साक्षी मात्र रह गया।
आंख से आंसू बह रहे हैं आनंद के और प्रेम के, शरीर रोमांचित है हर्षोन्माद से--एक प्रकाश झर रहा है। बुलाकीराम की यह दशा पहली बार गुलाल ने देखी। बुलाकीराम ही नहीं जागा साक्षी में, अपनी आंधी में गुलाल को भी उड़ा ले गया। आंख से जैसे एक पर्दा उठ गया। पहली दफा देखा कि यह कोई चरवाहा नहीं; मैं कहां-कहां, किन-किन दरवाजों पर सद्गुरुओं को खोजता फिरा और सद्गुरु मेरे घर मौजूद था! मेरी गायों को चरा रहा था, मेरे खेतों को सम्हाल रहा था! गिर पड़े पैरों में। बुलाकीराम, बुलाकीराम न रहे--बुल्लाशाह हो गए। पहली दफा गुलाल ने उन्हें संबोधित कियाः "बुल्ला साहिब!" "मेरे मालिक, मेरे प्रभु!" साहब का अर्थः प्रभु। कहां थे नौकर, कहां हो गए शाह! शाहों के शाह!
कहते हैं बहुत फकीर हुए हैं, लेकिन बुल्लाशाह का कोई मुकाबला नहीं।
और यह घटना बड़ी अनूठी है। अनूठी इसलिए है कि युगपत घटी। सदगुरु और शिष्य का जन्म एक साथ हुआ। सदगुरु का जन्म भी उसी वक्त हुआ, उसी सुबह; क्योंकि वह जो आखिरी अड़चन थी, वह मिटी। इसलिए भी अद्भभुत है कि वह आखिरी अड़चन शिष्य के द्वारा मिटी। हालांकि गुलाल ने कुछ जान कर नहीं मिटाई थी, आकस्मिक था, मगर निमित्त तो बने! शिष्य ने सदगुरु की आखिरी अड़चन मिटाई। इधर गुरु का जन्म हुआ, इधर गुरु का आविर्भाव हुआ, उधर शिष्य के जीवन में क्रांति हो गई। बुल्लाशाह को कंधे पर लेकर लौटे गुलाल। वह जो लात मारी थी न, जीवन भर पश्चात्ताप किया, जीवन भर पैर दबाते रहे।
बुल्लाशाह कहतेः मेरे पैर दुखते नहीं, क्यों दबाते हो? वे कहतेः वह जो लात मारी थी... ! तीस-चालीस साल बुल्लाशाह जिंदा रहे, गुलाल पैर दबाते रहे। एक क्षण को साथ नहीं छोड़ा। आखिरी क्षण में भी बुल्लाशाह के मरते वक्त गुलाल पैर दबा रहे थे। बुल्लाशाह ने कहाः अब तो बंद कर रे, पागल! पर गुलाल ने कहा कि कैसे बंद करूं? वह जो लात मारी थी!
गुरु को लात मारी! बुल्लाशाह लाख समझाते कि तेरी लात से ही तो मैं जागा, मैं अनुगृहीत हूं, तू नाहक पश्चात्ताप मत कर। लेकिन गुलान कहतेः वह आपकी तरफ होगी बात। मेरी तरफ तो पश्चात्ताप जारी रहेगा।
लेकिन एक साथ ऐसी घटना पहले कभी नहीं घटी थी कि सद्गुरु हुआ और शिष्य जन्मा--एक साथ, युगपत! एक क्षण में यह घटना घटी। यह आग दोनों तरफ एक साथ लगी और दोनों को जोड़ गई।
इस घटना से तुम्हें समझ में आएगा झेन फकीरों का व्यवहार। यह तो अचानक हुआ! गुलाल ने जानकर लात मारी नहीं थी कि ध्यान में सहयोग देना है। लेकिन झेन फकीर जानकर यह करते हैं। शिष्य ध्यान में बैठा है और हो सकता है झेन गुरु उसके सिर पर चोट मार दे। कभी-कभी बड़े अद्भभुत परिणाम हो जाते हैं। क्योंकि कभी-कभी जरा सा झटका और तुम अपने कल्पना-जाल से छिटक जाते हो--एक क्षण को छिटक जाते हो, जरा सी दूरी पैदा हो जाती है तुम्हारे मन में और तुम में--बस उतनी ही दूरी और कपाट खुल जाते हैं! झरोखा खुल जाता है। फिर बंद नहीं होता। एक दफा खुल गया, फिर बंद नहीं होता। लेकिन हर किसी को मारने से यह नहीं हो जाएगा। यह तो उन्हीं के काम आ सकता है, जो बिल्कुल किनारे पर खड़े हों। बुलाकीराम बिल्कुल किनारे पर था, सरहद पर खड़ा था। जरा-सा धक्का और सरहद पार कर गया।
तो सद्गुरु तभी शिष्य को मारेगा, जब देखेगा सरहद पर खड़ा है; सरहद पर अटका है, सीमा नहीं छोड़ पा रहा है। पुरानी आदत, पुराना परिचय सीमा से बाहर नहीं जाने दे रहा है।
हम सबने लक्ष्मण-रेखाएं खींच रखी हैं अपने आस-पास; हम उनके बाहर नहीं जाते हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है--ये सब लक्ष्मण-रेखाएं हैं। कोई ब्राह्मण है, कोई क्षत्रिय है, कोई शूद्र है--ये सब लक्ष्मण-रेखाएं हैं। ये सारी लक्ष्मण-रेखाएं तोड़ देनी होंगी। इन सबके बाहर जाना होगा। और सबसे बड़ी लक्ष्मण-रेखा है भीतर तुम्हारे; वह विचारों

का जाल है, जो तुम्हें हमेशा घेरे रहता है। विचारों की वह जो प्रक्रिया सतत चलती रहती है, उससे छूटना जरूरी है।
भारत के संतों में झेन फकीरों का अदभुत व्यवहार समझाने वाली और कोई घटना नहीं है, सिवाय गुलाल और बुल्लाशाह के बीच जो घटना घटी, उसके। और यह तो आकस्मिक घटी। लेकिन झेन सदगुरु देखता रहता है शिष्य को, जांचता रहता है शिष्य को--कब क्या जरूरत हो? कब चोट की जरूरत है, तो चोट करेगा। और चोट कभी- कभी काम कर जाती है। अगर ठीक समय पर पड़े, तो अचूक काम कर जाती है।
यह तो आकस्मिक संयोग था। बुल्लाशाह उस मस्ती में था, बस किनारे पर रहा होगा, पड़ी लात, फूट गई मटकी, खो गया मानसी-भंडारा, साधु-संत नदारद हो गए--वे थे नहीं कहीं वैसे भी; कल्पना ही थी, मन की ही कल्पना थी--और एक क्षण को अ-मनी दशा हो गई। बस उस अ-मनी दशा में ही परमात्मा का साक्षात्कार है।
जब तक मन है तब तक परमात्मा नहीं; जब मन नहीं है तब परमात्मा ही है, और कुछ नहीं--सिर्प परमात्मा ही है!
राम मोर पुंजिया मोर धना, निसबासर लागल रहु रे मना।।
गुलाल कहते हैं कि मैंने तो एक ही पूंजी देखी दुनिया में--और वह राम।
एक ही धन देखा दुनिया में और वह राम क्यों? क्योंकि धनियों को निर्धन देखा। सच तो यह है कि धनी से ज्यादा निर्धनता का बोध किसी को भी नहीं होता। गरीब को गरीबी इतनी नहीं सालती, इतनी नहीं अखरती, जितनी अमीर को अखरती है। गरीब के पास तुलना का उपाय नहीं होता। उसने अमीरी जानी नहीं; बाहर की भी अमीरी नहीं जानी तो बाहर का तो कोई मापदंड उसके पास नहीं है, भीतर की भी नहीं जानी। गरीबी ही जीवन है। वह गरीबी से अयस्त हो गया है। उसके पास गरीबी के विपरीत कोई अनुभव नहीं है, जिसकी पृष्ठभूमि में वह समझ पाए कि मैं कितना गरीब हूं। अमीर के पास बाहर धन इकट्ठा होता जाता है; जैसे-जैसे बाहर धन के ढेर लगते हैं, वैसे-वैसे भीतर गरीबी के ग 167े साफ दिखाई पड़ने लगते हैं। जहां पहाड़ खड़े होते हैं, वहां खाइयां हो जाती हैं। बाहर पहाड़ खड़े होने लगते हैं धन के और भीतर निर्धनता की खाई साफ होने लगती है। जितना बाहर धन हो उतना ही भीतर अखरता है निर्धन होना। और बाहर का धन भीतर तो ले जाया नहीं जा सकता। उसे भीतर ले जाने का कोई उपाय नहीं है। कोई मार्ग ही नहीं है! जो बाहर है वह बाहर और जो भीतर है वह भीतर। तुम हीरे-जवाहरातों को भीतर न ले जा सकोगे। भीतर तो केवल चैतन्य के हीरे-जवाहरात जा सकते हैं। झरत दसहुं दिस मोती! जब तुम्हें भीतर मोतियों की वर्षा होने लगे, तभी तुम भीतर से धनी हो सकोगे; नहीं तो बहुत अखरेगी भीतर की अवस्था।
इसलिए एक बहुत अनूठी घटना घटती हैः जितना ही कोई व्यक्ति समृद्ध होता चला जाता है, उतनी ही उसके भीतर इस बात की स्पष्ट प्रतीति होने लगती है कि बाहर तो धन है, अब भीतर धन कैसे हो?
जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजपुत्र हैं। हिंदुओं के सब अवतार राजपुत्र हैं। बुद्ध राजपुत्र हैं। क्यों? यह देश धार्मिक था, जब यह अमीर था। यह देश जब से गरीब हुआ तब से धार्मिक भी नहीं रहा। हां, लकीरें रह गई हैं, हम पीटे जा रहे हैं! परंपरा है, उसको दोहराए जा रहे हैं! शब्द हमारे पास हैं, उनकी पुनरुक्ति किए जा रहे हैं। मगर अर्थहीन हो गया है सब। जिस दिन से यह देश गरीब होना शुरू हुआ, उसी दिन से यह देश अधार्मिक होना भी शुरू हो गया।
धार्मिक देश ही वस्तुतः जीवन के सत्यों की खोज कर सकता है। और धार्मिक देश होने के लिए जरूरी है कि एक समृद्धि हो। एक प्रतीति होने लगे साफ बाहर और भीतर में कि बाहर सब है और भीतर कुछ भी नहीं। आज पश्चिम में धर्म की बहुत जोर से आकांक्षा है; बड़ी खोज है। और उसका कारण है--विज्ञान के द्वारा दी गई समृद्धि। बाहर समृद्धि हो गई, अब भीतर का खालीपन अखर रहा है, पीड़ा पकड़ रही है। लोग खोज पर निकले हैं।
मेरे पास लोग आते हैं सारी दुनिया से और उनमें से न मालूम कितने लोग मुझसे आ कर कहते हैं, अक्सर, कि क्या बात है, भारतीय लोगों में कोई रस नहीं मालूम होता ध्यान में? क्या बात है? उनके भीतर कोई अभीप्सा नहीं मालूम होती! कोई उत्कृष्ट आकांक्षा नहीं मालूम होती!

मेरे पास आए विदेशी संन्यासी निरंतर मुझसे कहते हैं कि जिन घरों में
वे ठहरते हैं--अगर किसी भारतीय घर में ठहरते हैं या भारतीय घर में किराए से रहते हैं, तो उस घर के लोगों की एक ही इच्छा होती है कि हमारे लड़के को अमरीका भेजना है, यूनिवर्सिटी में भरती करवा देना, स्कालरशिप दिलवा देना, फोर्ड फाउंडेशन से कुछ पैसा मिल जाए, राकफेलर फाउंडेशन में कोई पहचान तो नहीं है? अमरीका से आया हुआ युवक भारत ध्यान सीखने आया है, लेकिन जो भी भारतीय उससे मिलते हैं उनकी सारी उत्सुकता यह होती है कि वे अमरीका कैसे पहुंच जाएं; आक्सपर्ड, कैंब्रिज में कैसे भरती हो जाएं, उनके लड़के इंजीनियर, वैज्ञानिक और डाक्टर कैसे हो जाएं? उन्हें यह ख्याल में नहीं आता कि डाक्टर, वैज्ञानिक और इंजीनियर ध्यान सीखने भारत आ रहे हैं, वे अपने बच्चों को इंजीनियरिंग सीखने बाहर भेज रहे हैं! ध्यान सीखने में उनका कोई रस नहीं है। उनका बेटा ध्यान सीखने आने लगे तो उन्हें बेचैनी होती है कि यह क्या कर रहे हो? यह कैसा अभारतीय काम कर रहे हो! यह शोभा देता है? अरे, पढ़ो-लिखो! पढ़ोगे-लिखोगे तो बनोगे साहब! पढ़ोगे-लिखोगे तो बनोगे नवाब! यहां इच्छा है नवाब बनाने की।
मेरे संन्यासी मुझसे कहते हैं कि भारतीयों की उत्सुकता इतनी ही होती हैः तुम्हारा रेडियो हमें बेच दो; तुम्हारी घड़ी हमें दे दो। वे यह पूछते ही नहीं कि तुम यहां क्यों आए हो!! तुम्हारे ध्यान में हमें साझीदार बनाओ, इसमें उनका रस ही नहीं है। अगर उनको वे निमंत्रित भी करते हैं कि चलो, कभी आओ, तो वे कहते हैं कि हमें फुर्सत कहां, समय कहां! और हजार काम हैं। और हमें मालूम ही है कि ध्यान क्या है! और हम तो गीता पढ़ते हैं, और गीता में सब है। और हमने तो घर में ही हनुमान जी को बिठाल रखा है। और हनुमान-चालीसा में सभी कुछ आ गया! अब और अलग से क्या ध्यान सीखना? हनुमान-चालीसा से घड़ी नहीं निकलती--यह एक तकलीफ है। रेडियो नहीं निकलता, टेपरिकार्डर नहीं निकलता--यह एक तकलीफ है। तो वह तुम दे दो! बाकी तो हनुमान-चालीसा से हम सब निकाल लेंगे। भीतरी जो है, वह हम निकाल लेंगे। बाहर की अटकन है; वह कोई दूसरा पूरी कर दे।
विदेशी मित्रों को यह निरंतर अनुभव होता है कि उनकी चीजें चुरा लेते हैं भारतीय। जब भी भारतीय शिविर यहां होता है... एक महीने भारतीयों के लिए शिविर होता है, एक महीने गैर-भारतीयों के लिए शिविर होता है... तो गैर-भारतीयों के शिविर में चोरी नहीं होती; और भारतीयों के शिविर में चोरी होती है। जैसे कि ध्यान करने लोग नहीं आते। और यह अच्छा मौका हैः विदेशी तो आंख पर पट्टी बांध कर ध्यान करने लगते हैं, भारतीय तब तक उनकी चीजें चुराकर नदारद हो जाते हैं! इससे ज्यादा शुभ अवसर और कहां मिलेगा? और चोरी भी क्या--जूते तक चोरी चले जाते हैं!
विदेशी मित्र मुझसे कहते हैं कि यह बड़ी हैरानी की बात है। हम तो सोचते
थे भारतीय बड़े धार्मिक लोग हैं। ये जूते भी नहीं छोड़ते!
लेकिन इसमें कुछ आश्चर्यजनक नहीं है। इसके पीछे पूरी व्यवस्था समझने जैसी है। जब भी कोई देश गरीब हो जाता है, तो उसकी उत्सुकता बाहर के धन में हो जाती है। और जब कोई देश अमीर हो जाता है, तो उसकी उत्सुकता भीतर के धन में हो जाती है।
मैं यह नहीं कह रहा हूं कि कोई गरीब आदमी धार्मिक नहीं हो सकता। लेकिन
यह मैं जरूर कह रहा हूंः कोई गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता! गरीब व्यक्ति तो धार्मिक हो सकता है, क्योंकि व्यक्ति की इतनी बुद्धिमत्ता हो सकती है कि वह गरीब रहते भी धन की व्यर्थता को समझ ले। इतनी प्रगाढ़ उसकी तेजस्विता हो सकती है, इतनी मेधा हो सकती है। नहीं तो कबीर, दादू, नानक, फरीद, बुल्ला--ये कैसे धार्मिक होते? गरीब आदमी तो धार्मिक हो सकता है लेकिन गरीब समाज धार्मिक नहीं हो सकता। अमीर व्यक्ति तो अधार्मिक हो सकता है, क्योंकि हो बिल्कुल जड़बुद्धि, लेकिन अमीर समाज बहुत दिन तक अधार्मिक नहीं रह सकता, उसे धार्मिक होना ही पड़ेगा। अन्ततोगत्वा उसे खोजना ही पड़ेगा कि असली धन कहां है। नकली धन तो हमारे पास है, पहचान लिया, इससे कुछ सार नहीं पाया।

गुलाल कहते हैंः "राम मोर पुंजिया!"... राम मेरी पूंजी हैं।... "राम मोर धना"! श्ठऔर राम मेरा धन हैं।... "निसबासर लागल रहु रे मना।" कहते हैंः अब तो बस एक ही आकांक्षा है कि यह मेरा मन दिन-रात उसी परम धन में लगा रहे।
आठ पहर तहं सुरति निहारी, ...
अब एक क्षण को भी उस झरोखे को बंद नहीं करना चाहता। अब एक क्षण को भी नहीं चाहता कि उससे टूट जाऊं, कि उसकी तरफ पीठ हो जाए। वही आनंद है। वही मेरा उत्सव है। वही मेरा जीवन है। वही मेरा सर्वस्व है।
आठ पहर तहं सुरति निहारी...
मैं तो उसकी तरफ ही देखते रहना चाहता हूं। आठों पहर आंखें टकटकी लगा
कर उसी को देखती रहें। उसके सौंदर्य से क्षण भर वंचित नहीं होना चाहता। ... जस बालक पालै महतारी।
सीधे-सादे आदमी हैं। सीधे-सादे उनके प्रतीक हैं। सीधे-सादे उदाहरण हैं। मगर अर्थपूर्ण। ताजगी से भरे। "... जस बालक पालै महतारी। " मां बच्चे को पालती है। ऐसे ही साधक को ध्यान पालना पड़ता है--मां की तरह। मां हजार काम करती रहे, ध्यान उसका बच्चे पर लगा रहता है। वह चौके में काम करती हो, बच्चा बाहर आंगन में खेलता हो, लेकिन जरा-सी आवाज और वह भागकर आंगन में आ जाएगी। हजार काम में उलझी हो, लेकिन बच्चे का स्मरण नहीं भूलता। रात आकाश में बादल गरजते रहें, बिजली कड़कती रहे, उसकी नींद नहीं टूटती; लेकिन बच्चा जरा कुनमुनाए और उसकी नींद टूट जाती है। जैसे मां अपने बच्चे की चिंता करती है--प्रतिपल, उठते-बैठते, सोते-जागते, सदा उसे स्मरण बना रहता है-- कहीं बच्चा गिर न जाए, कहीं भटक न जाए, कहीं चोट न खा जाए, कहीं कुछ भूल-चूक न हो जाए, वैसे ही व्यक्ति को अपनी सुरति, अपना ध्यान सम्हालना होता है। चौबीस घंटे। जागते तो जागते, सोते-सोते भी!
आनंद ने बुद्ध से पूछा है कि भगवान! बहुत प्रश्न मेरे मन में उठते हैं, मैं उनको चुपचाप अपने मन में ही रखे रहता हूं। आज नहीं कल, किसी को उत्तर देते समय उनके उत्तर मुझे मिल जाते हैं। लेकिन एक ऐसा प्रश्न भी है जो दूसरा कभी पूछेगा ही नहीं। वह मुझे आपसे पूछना पड़ेगा।
बुद्ध ने कहाः वह कौन सा प्रश्न है जो दूसरा कभी नहीं पूछेगा? आनंद ने कहाः नहीं, कभी नहीं पूछेगा, यह पक्का है। क्योंकि दूसरे को पता ही नहीं, सिवाय मेरे। मैं आपके कमरे में सोता हूं, सिर्प मैं अकेला व्यक्ति हूं जो आपको सोते हुए देखता हूं। और तो कोई देखता ही नहीं, इसलिए दूसरा कोई यह प्रश्न उठाएगा ही नहीं। मैंने रात में कई बार बीच रात में उठ कर देखा है, मगर आपको पाता हूं कि जैसा आप सोते हैं, ठीक वैसे ही पूरी रात सोए रहते हैं। जिस पैर पर जो पैर रखा था, वह वैसा ही रहता है। जिस हाथ पर जो हाथ रखा था, वह वैसा ही रहता है। करवट भी नहीं बदलते। हद कर दी आपने भी। सोते हैं कि नहीं सोते? क्योंकि इतना. . .जरा हलन-चलन न हो, तभी संभव है जबकि जागे हुए बिल्कुल सम्हले हुए पड़े रहो! आप सोते हो कि नहीं?
बुद्ध ने कहाः शरीर सोता है, मैं नहीं सोता। मैं तो जागा रहता हूं। मुझे तो विश्राम की कोई जरूरत नहीं। चैतन्य को विश्राम की कोई जरूरत नहीं। क्योंकि चैतन्य तो सदा विश्राम में है ही। शरीर थकता है; शरीर मिट्टी है, जल्दी थक जाता है। शरीर का बोझ है, जल्दी थक जाता है। जितना ज्यादा बोझ हो शरीर का, उतने जल्दी थक जाएगा। इसलिए मोटा आदमी जल्दी थक जाएगा, दुबला आदमी जरा देर से थकेगा। जितना बूढ़ा हो शरीर उतनी जल्दी थक जाएगा, जितना जवान हो उतना कम थकेगा। छोटे बच्चे का तो और भी कम थकेगा। अमरीका के एक विश्वविद्यालय में उन्होंने प्रयोग किया। एक छोटे बच्चे के पीछे एक बड़े पहलवान को लगा दिया। पहलवान को कहा कि जो यह बच्चा करे वही तुझे करना है। जैसे बच्चा उचके तो तू उचक। बच्चा कूदे तो तू कूद। बच्चा भागे तो तू भाग। बच्चा जमीन पर लोटे तो तू लोट। जो बच्चा करे, वही तुझे करना है। और जो भी तुझे पैसे मांगने हों वह हम देने को तैयार हैं। उसने सोचाः यह कोई बड़ा काम? फिर भी उसने काफी मांगा। उसने कहाः एक हजार डालर लूंगा। दस हजार रुपए होते हैं। एक दिन के! वैज्ञानिक राजी था देने को। उसने कहाः ठीक है। आधे दिन में पहलवान चारों खाने चित्त हो गया। और उसने कहाः मुझे नहीं चाहिए वे रुपए, मैं अपने घर चला! भाड़ में जाएं वे रुपए,

यह बच्चा मेरी जान ले लेगा! बच्चे ने इसको खेल समझा, उसने कहा, यह खूब मजा है! जैसा मैं करता हूं वैसा ही यह करता है! तो मुंह बिचकाए, कूदे, भागे, फांदे, लोटे। दोपहर होते उसने पहलवान को पस्त कर दिया। और जब पहलवान जाने लगा, बच्चे ने कहाः अरे, चले क्या? बस खत्म? इतने जल्दी खत्म! अभी तो बहुत दिन पड़ा है!
तुम अगर एक बच्चे की नकल करो, तब तुमको पता चलेगा कि वह कितने काम में लगा हुआ है! बैठ ही नहीं सकता एक सेकेंड। अभी जवान या बच्चा ऊर्जा से भरा है; बूढ़ा होगा, ऊर्जा क्षीण हो जाएगी। उठना-बैठना कष्टपूर्ण होने लगेगा। श्वास लेना कष्टपूर्ण होने लगेगा। जीना दूभर होने लगेगा। वृद्ध होते- होते व्यक्ति सोचने लगता है कि अब प्रभु, उठा लो! अब बहुत हो गया! अब और नहीं चला जाता। अब तो होना भी भारी पड़ रहा है।
लेकिन चैतन्य का तो न कोई जन्म होता, न कोई बचपन, न कोई जवानी, न कोई बुढ़ापा।
तो बुद्ध ने कहाः भीतर मैं जागा रहता हूं। शरीर पड़ा रहता है। शरीर विश्राम करता है, मैं जागा रहता हूं। और क्या बार-बार करवट बदलनी! एक बार ठीक से करवट सो गए, फिर सोए रहे। फिर शरीर को छोड़ दिया वैसी ही अवस्था में। जागते ही साधक ध्यान नहीं करता, सोते-सोते भी ध्यान में ही होता है। कृष्ण ने कहा है न, कि जो सबके लिए रात है, वह भी योगी के लिए रात नहीं। "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। " वह जो साधक है, वह तब भी जागा रहता है जब सारे लोग सो जाते हैं। इसका यह मतलब मत समझ लेना कि साधक खड़ा रहता है; कि रात-भर खड़े हैं! ऐसे साधक मत हो जाना। नहीं तो तुम्हारी पत्नी, तुम्हारे बच्चे शिकायत लेकर यहां आएंगे कि ये भूत-प्रेत की तरह खड़े रहते हैं घर में, तो किसी और को भी सोने में डर लगता है। लेकिन कुछ मूढ़ों ने यही समझ लिया है।
मैं एक गांव में गया तो वहां लोगों ने कहाः आपको जान कर खुशी होगी कि हमारे गांव में खड़ेश्री बाबा हैं। खड़ेश्री बाबा! यह भी कोई नाम है! नाम तो, उन्होंने कहा, हमको पता नहीं, लेकिन चूंकि वे आज तेरह साल से खड़े हुए हैं, इसलिए उनका नाम खड़ेश्री बाबा है।
उस रास्ते से मैं गुजरा तो उनको देखा मैंने। उनकी हालत दयायोग्य थी।
अब जो आदमी तेरह साल से खड़ा है, उसकी हालत तुम समझ सकते हो! पैर उसके हाथी- पांव जैसे हो गए। क्योंकि सारा खून पैरों में उतर गया। शरीर तो सूख गया और पैर भारी हो गए हैं; सूज गए हैं; सूजे हुए हैं। और तेरह साल तक चौबीस घंटे खड़े रहोगे तो ऐसे ही नहीं खड़े रह सकते। तो बैसाखियां लगाई हुई हैं, छत से जंजीरें लटकाई हुई हैं, जंजीरों से उन्होंने अपने हाथ बांध रखे हैं, क्योंकि कहीं गिर जाएं तो तेरह साल की साधना न टूट जाए। यह मुक्ति हुई! जंजीरें हाथों से बंधी हैं, पैर सड़े जा रहे हैं, शरीर सूख गया है। आंखों में कोई प्रतिभा नहीं, कोई मेधा नहीं, ध्यान की कोई ज्योति नहीं। तेरह साल से नहाए-धोए नहीं हैं, सो भयंकर दुर्गंध उठ रही है। पाखाना-पेशाब भी दूसरों को करवाना पड़ती है और फेंकनी पड़ती है। खाना भी दूसरे खिलाते हैं, क्योंकि वे तो जंजीर छोड़ नहीं सकते--अरे, किसी कमजोरी के क्षण में बैठ ही जाएं! बैठना है नहीं।
मैंने पूछाः ऐसा यह कर क्यों रहे हैं, इनको यह पागलपन क्यों सवार है?
तो उन्होंने कहाः "या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी। " जब सब सो जाते हैं, तब भी संयमी जागता है। यह संयमी हैं! यह संयम न हुआ, यह विक्षिप्तता है। यह पागलपन है। इनको चिकित्सा की जरूरत है। इनको पागलखाने में रखे जाने की जरूरत है। मगर उनकी पूजा हो रही है; रुपए चढ़ाए जा रहे हैं।
हां, और तो वे खड़े रहते हैं, लेकिन ध्यान इस पर लगा रहता है--कितने चढ़े? खड़े ही खड़े गिनती करते रहते हैं मन ही मन में। मानसी-भंडारा! इशारा करते रहते हैं बगल के आदमी को--जो उनके पैसे इकट्ठा करता है--उठा, सम्हाल! रात हिसाब-किताब पूछ लेते हैं कि कितना आया, बैंक में जमा करो! हजारों रुपए बैंक में जमा हो गए हैं। भीतर के धन का तो कुछ लेना-देना नहीं है; खड़े हैं चौबीस घंटे; मगर भीतर के जागरण से तो कोई संबंध नहीं है--अटके हैं बाहर।

मैं कुछ बाहर के धन का विरोधी नहीं हूं। मगर यह कोई ढंग हुआ! अरे, बाहर
का धन ही कमाना हो तो बहुत-से रास्ते हैं। यह खड़े होने का ढोंग क्यों? यह शरीर को इतना सताना क्यों? यह इतनी दुष्टता, इतनी हिंसा क्यों?
और मैंने उनसे पूछा कि इतना तो सोचते कभी कि कृष्ण ने गीता में यह कहा, कृष्ण ने खुद यह किया? ऐसा तो कोई उल्लेख मिलता नहीं कि खड़ेश्री बाबा हो गए हों कृष्ण। अर्जुन ने गीता सुनी, वह नहीं समझा, तुम समझ पाए! उसने भी नहीं किया यह। शंकराचार्य ने गीता पर टीका लिखी, मगर उनकी भी अक्ल में यह बात न आई जो खड़ेश्री बाबा के समझ में आई है! गीता पर एक हजार टीकाएं हैं, उन एक हजार टीका लिखने वालों में से एक ने भी यह न किया। एकाध को तो अक्ल आती। वह इन सज्जन को आई है!
रात जागे रहने का यह अर्थ नहीं है कि तुम खड़े हो कोने में जागे हुए। रात जागे होने का अर्थ हैः शरीर तो विश्राम करे, लेकिन भीतर बोध न चूक जाए, भीतर बोध की सतत धारा बनी रहे। भीतर कोई एक हिस्सा तुम्हारा साक्षी बना रहे, जानता ही रहे। पहले जागते में जागो, फिर धीरे-धीरे निद्रा में भी जागरण का प्रवेश हो जाता है।
आठ पहर तहं सुरति निहारी, जस बालक पालै महतारी।।
धन सुत लछमी रह्यो लोभाय, गर्भमूल सब चल्यो गंवाय।।
बड़ा प्यारा वचन है! गुलाल कहते हैं कि तू धन में उलझा है, बच्चों में उलझा है, लक्ष्मी में उलझा है, लोभ में पड़ा है।... इस देश को हम धार्मिक देश कहते हैं। लेकिन यह अकेला देश है दुनिया में जहां लक्ष्मी की पूजा होती है। दीवाली इस देश का सबसे बड़ा त्यौहार। और दीवाली का केंद्र क्या है? -- लक्ष्मीपूजन! और लक्ष्मी की पूजा लोग नगद रुपए रखकर करते हैं। रुपयों की पूजा और धार्मिक देश! पुण्य-भूमि! और सब साधु-संत यहीं हुए!
मैं एक घर में ठहरा था, दीवाली आ गई। तो उन्होंने कहा कि लक्ष्मी-पूजन
हो रही है, आप भी आएंगे? मैंने कहा कि चलो, तमाशा देखेंगे। खनाखन रुपयों की पूजा चल रही है! अब रुपए तो बचे नहीं हैं, तो लोग पुराने रुपये बचा कर रखे हुए हैं--सिर्प पूजा के लिए। अब नोटों को कैसे खनाखन करो? और नोटों की पूजा जरा जंचती नहीं कि कागजों की पूजा! पुरानी आदत पड़ गई है--चांदी के सिक्के, सोने के सिक्के हों तो पूजा का मजा है!
मैंने उनसे कहा कि तुम्हीं तो कहते हो मुझसे कि यह देश बड़ा पुण्यवान है, धार्मिक है--और यह क्या कर रहे हो? रुपयों की पूजा करते शर्म नहीं आती, धिक्कार पैदा नहीं होता? उन्होंने कहाः हां, धार्मिक देश तो है; पुण्य की भूमि है यह; सारे अवतार यहां हुए, सारे तीर्थंकर यहां हुए, बुद्ध यहां हुए-- और क्या चाहिए? इससे सिद्ध होता है कि यह देश धार्मिक भूमि है। मैंने कहाः इससे सिर्प इतना ही सिद्ध होता है कि यह देश अधार्मिक है। उन्होंने कहाः आपका मतलब? मैंने कहाः यूं समझो कि तुम्हारे मौहल्ले में किसी घर में, सब डाक्टर उसी के घर में आएं, सब हकीम--नीम हकीम--वैद्य, प्राकृतिक चिकित्सक उसी घर में आएं, तो क्या तुम कहोगे कि इस घर के लोग बहुत स्वस्थ हैं? उन्होंने कहाः नहीं, यह तो हम नहीं कहेंगे। उस घर के लोग बहुत ही बीमार होने चाहिएं, तभी सब हकीम, नीम हकीम सब आ रहे हैं!
मैंने कहाः तुम्हारे यहां ही सारे आए तीर्थंकर और सारे अवतार, इससे कुछ अक्ल आती है? परमात्मा को तुमने ऐसा परेशान किया है कि उसको भेजना पड़ता है कि भैया, जाओ! फिर एक बार जाओ! और-और जाओ! और तुम ऐसे बहरे हो कि तुम सुनते ही नहीं। इसलिए बार-बार आना पड़ता है। नहीं तो क्या जरूरत है? तुम्हारा ही उद्धार करने की जरूरत है, बस, दुनिया में और किसी का उद्धार नहीं करना परमात्मा को? कोई तुम्हारे पीछे पड़ा है, कि तुम्हारा उद्धार करके ही रहेगा! और उद्धार तुम्हारा हुआ नहीं। क्या खाक उद्धार हुआ! सब आ भी गए, चले भी गए--और तुम वैसे के वैसे! तुम कह सकते हो कि सबको हराया; कि सबको रास्ते पर लगा दिया! आए भी और गए भी, हमारा कोई बाल भी बांका नहीं कर सका! अरे, कोई कर ले हमारा बाल बांका! अवतार नहीं कर सके, तीर्थंकर नहीं कर सके, बुद्ध नहीं कर सके। कोई क्या करेगा? इसको तुम सोचते हो धार्मिक होना! धार्मिक होने का अर्थ होता हैः जो व्यर्थ है, उसमें अपने जीवन को न गंवाना।

गर्भमूल सब चल्यो गंवाय।
गुलाल कहते हैं कि जन्म से तुम इतनी बड़ी संपदा लेकर आते हो, उस सबको गंवा कर चले जाते हो। गंवा देते हो व्यर्थ की चीजों में। हीरे दे देते हो, कंकड़ खरीद लेते हो। चैतन्य बेच देते हो, मिट्टी-पत्थर इकट्ठा कर लेते हो। फिर मौत आती है, सब पड़ा रह जाता है। तब पता चलता है कि अरे, जो कमाना था वह कमाया नहीं। जो कमाने योग्य नहीं था, उसमें सब समय गंवाया।
बहुत जतन भेष रच्चो बनाय...
और कितना तुम भेष बनाते हो! कैसे-कैसे रंग लोगों ने बनाए हुए हैं! बहुरुपिए हैं लोग। कैसे-कैसे चेहरे, कैसे-कैसे मुखौटे! कुछ हैं भीतर, कुछ दिखलाते बाहर। मुंह में राम बगल में छुरी।
बहुत जतन भेष रच्यो बनाय, बिन हरिभजन इंदोरन पाय।।
"इंदोरन" एक सुंदर फल होता है--जो देखने में सुंदर, लेकिन खाने में कड़वा और जहर जैसा। ऐसी ही इस संसार की भाग-दौड़ है। देखने में बड़ी सुंदर, खाने में बिल्कुल जहर जैसी। ऐसे ही इस संसार के धोखे हैं, प्रवंचनाएं हैं।
लुभातीं बहुत, पास जाकर कुछ हाथ आता नहीं। इंद्रधनुष जैसी हैः दूर से कितना प्यारा लगता है, पास जाओ तो कुछ हाथ न लगे। मृग-मरीचिकाएं हैं। हिंदू तुरुक सब गयल बहाय, ष्ठ
और सब इसी में बह रहे हैं--चाहे हिंदू हों और चाहे मुसलमान हों।

श्ठचौरासी में रहि लपटाय।।
सभी लपटे हैं इसी उपद्रव में--कैसे और! हाय-हाय मची है। कैसे और, कैसे
और थोड़ा इकट्ठा कर लें! मरते दम तक हाय-हाय मची है।
मैंने सुना कि मुल्ला नसरुद्दीन जब मरने के करीब हुआ तो उसके चारों बेटे इकट्ठे हुए। परिवार के और भी लोग इकट्ठे हुए। पहले बेटे ने कहा कि अब पिताजी जा रहे हैं, इस अवसर को हमें ठीक से मनाना चाहिए। उनको विदा ढंग से देनी चाहिए। मैं जाता हूं और एक इम्पाला गाड़ी किराए पर ले आता हूं। उसमें ही रख कर उनकी अर्थी को मरघट ले चलेंगे। दूसरे बेटे ने कहा कि जब वे मर ही रहे हैं और मर ही गए, तो अब क्या इम्पाला और क्या एंबेसेडर! एंबेसेडर चल जाएगी। नाहक इम्पाला में पैसा खराब करना। और आदमी तो मर ही गया! ... अभी मरे नहीं है। अभी नसरुद्दीन पड़े सुन रहे हैं।... तीसरे ने कहाः एंबेसेडर की क्या जरूरत है? अरे, बड़े-बड़े भी अर्थी पर चढ़ कर जाते हैं। नाहक का दिखावा करने से क्या फायदा? बेकार का खर्चा हो जाएगा। हमारा तो ख्याल है अर्थी पर ही ले चलना चाहिए। चौथे ने कहा कि आजकल बांस, लकड़ी, हर चीज महंगी है। अभी तो हम हट्टे-कट्टे हैं; अरे, बांधो पोटली में और ले चलेंगे उठा कर! अब मर ही गया आदमी तो मिट्टी तो मिट्टी है, अब उसमें क्या रखा है! तभी नसरुद्दीन एकदम उठ कर बैठ गया हाथ टेक कर और कहने लगाः मेरे जूते लाओ। कहाः जूते क्या करोगे? तो उसने कहा कि अरे बेटा, अभी तो इतनी मुझमें जान है कि मैं खुद ही चल सकता हूं। तो मैं खुद ही चला चलता हूं। वहीं मर जाऊंगा कब्र पर ही। तुमको इतनी झंझट न करनी पड़े।
मरते दम तक पकड़ एक ही है। अगर ले जा सको तुम धन मरने के बाद अपने साथ तो तुम कुछ छोड़ न जाओगे पीछे। सब बांधोगे गठरी और अपने साथ लेकर चल पड़ोगे। ले जा नहीं सकते, इसलिए मजबूरी में खाली हाथ जाना पड़ता है। दुःखी जाते हो! मेरा अपना अनुभव यह है कि लोग मरते वक्त मृत्यु के कारण नहीं परेशान होते--जितने परेशान होते हैं कि सब कमाया-धमाया पड़ा रह जाएगा।
पश्चिम का बहुत बड़ा विचारक लेखक सामरसेट माम अपने भतीजे के साथ एक बगीचे में टहल रहा था। खुद के बगीचे में। उसने बहुत शानदार बगीचा बनाया, बड़ा भवन बनाया। उसका फर्नीचर बड़ा कीमती, उसकी हर चीज कीमती। उस पर धन बहुत था; कमाया बहुत। उसका भतीजा तारीफ कर रहा था कि आपका भवन सुंदर, आपका बगीचा सुंदर, आपका फर्नीचर अद्भभुत। लेकिन सामरसेट माम बहुत उदास हो गया। उसने कहा कि तू मत कह ये बातें, मत कह! इससे मेरे दिल को बहुत चोट पहुंचती है! उसने कहाः आपको चोट पहुंचती है! आपको तो खुश होना चाहिए। उसने कहाः क्या खाक खुश होना चाहिए! मैं मर जाऊंगा और यह सब यहीं पड़ा रह जाएगा। इससे मुझे सोच कर भी दुःख होता है; यह बात ही मत उठा। मैं मर जाऊंगा और यह सब यहीं पड़ा

रह जाएगा, इसमें से मैं कुछ भी न ले जा सकूंगा, यह सोच कर मुझे दुःख होता है। जिंदगी भर मेहनत की और यहीं पड़ी रह जाएगी। और कोई ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे मजा करेंगे। इससे दिल को दुःख होता है कि पता नहीं कौन ऐरे-गैरे-नत्थू- खैरे मजा करें?
तुमने बनाया मकान और रह रहे ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे। तुम्हारी आत्मा यहीं घूमती रहेगी भूत-प्रेत होकर। ऐरों-गैरों को सताएगी। तुम जा न सकोगे कहीं और। मरघट के बाद भी तुम यहीं चक्कर मारोगे। वह लोग ठीक ही कहते हैं कि मर जाने के बाद भी लोग सांप होकर अपने गड़ाए धन पर बैठ जाते हैं। उसका मतलब इतना ही है। कोई सच में ही सांप हो जाने की जरूरत नहीं है--कुछ बिच्छू हो जाते हैं, कुछ कुछ हो जाते हैं।
सांप ने ही कोई ठेका थोड़े ही लिया है! मगर प्रयोजन इतना है कि वे यहीं कब्जा जमाकर बैठे रहते हैं।
एक आदमी मर रहा था। उसने अपने तीन मित्रों को बुलाया और उनको कहा कि देखो, सुना है मैंने कि मरने के बाद कोई आदमी कुछ ले जा नहीं सकता, लेकिन मैं इस नियम को तोड़ना चाहता हूं। मैं लेकर जाऊंगा। तुम तीनों मेरे जिगरी दोस्त; तुम मुझ पर इत्ती कृपा करना। मेरे पास साठ लाख रुपए हैं। बीस-बीस लाख तुम तीनों को बांट देता हूं--तुम पर मुझे भरोसा है; जीवन भर का हमारा साथ है।
पहला मित्र बंगाली था, उसने कहा कि ठीक। क्या करना है इन बीस लाख का? उसने कहाः करना कुछ नहीं। जब मुझे दफनाया जाए, मेरी लाश जब कब्र में रखी जाए, तो तुम बीस लाख रुपए चुपचाप कब्र में सरका देना। किसी को पता न चले बस, इतना ही होशियारी करना, किसी को पता न चले, नहीं तो लोग उखाड़ कर ले जाएंगे।
मैं साथ ही ले जाना चाहता हूं।
बंगाली बाबू ने कहा कि ठीक।
दूसरे सज्जन पंजाबी थे। उन्होंने कहा कि कोई फिकर नहीं; बिल्कुल फिकर
मत करो, किसी को कानों-कान पता नहीं चलने दूंगा। गड़ा दूंगा बीस लाख रुपये।
तीसरे सज्जन मारवाड़ी थे। उन्होंने कहाः तुम फिकर करना ही मत! मैं अकेला ही कर सकता था यह साठ लाख गड़ाने का काम, लेकिन तुम तीन में बांटते हो, कोई बात नहीं; तो भी कर दूंगा।
मित्र मर गए। सब काम भी समाप्त हो गया। अंतिम संस्कार हो गया। तीनों मिले। पंजाबी ने कहा कि भाई क्या हुआ, रुपयों का क्या हुआ? मैंने तो बिल्कुल गड़ा दिए। बंगाली ने कहा कि क्या तुम सोचते हो तुमने ही गड़ाए? अरे, गड़ाए मैंने भी! आखिर जीवन भर का साथ था!
मगर दोनों को शक था मारवाड़ी पर। दोनों ने पूछाः अपनी तो कहो, तुमने क्या किया?
उसने कहाः तुम क्या समझते हो मुझे? तुमने जो गड़ाए थे चालीस लाख, वे मैंने निकाल लिए। साठ लाख का चैक रख दिया। अरे, कहां ढोता फिरेगा साठ लाख, इतना वजन! सीधा चैक--पर्सनल चैक, कि ले जा बेटा!
मरते दम तक आदमी इस कोशिश में रहता है कि ले जाऊं। कहां ले जाओगे? कैसे
ले जाओगे? और जो ले जाने योग्य है, वह तुम कमाते नहीं; वह तो तुम गंवाते हो। एक ही चीज ले जाई जा सकती है, वह ध्यान है। ध्यान ही इसलिए धन है।
कहै गुलाल सतगुरु बलिहारी, जाति-पांति अब छुटल हमारी।।
कहते हैं, सदगुरु बुल्लाशाह की कृपा कि हमारी जाति-पांति भी छूट गई।
यह हमारी बाहर की पकड़ भी छूट गई। यह धन-पद की दौड़ भी छूट गई। यह चौरासी का चक्कर निपटा। सदगुरु ने हमें असली धन से जोड़ दिया।
नगर हम खोजिलै चोर अबाटी।
और कौन है जो तुम्हारे जीवन-धन को चुराए ले जा रहा है? तुम सारे नगर में खोजते फिरते हो कि कहां है वह चोर, कहां है वह बेईमान, जो मेरी जिंदगी को नष्ट कर रहा है? ख्याल रखना, यह हम सबकी धारणा है कि कोई हमारी जिंदगी को नष्ट कर रहा है। हम हमेशा दायित्व किसी और पर देते हैं। पति सोचता है, इस पत्नी की वजह से मेरी जिंदगी बरबाद हो गई, नरक कर डाला दुष्ट ने! और पत्नी भी यही सोचती है कि इस कलमुंहे से कहां से मिलना हो गया! किस

दुर्भाग्य की घड़ी में! सारी जिंदगी मिट्टी में मिला दी। नहीं तो आज कहीं राजरानी होती! इधर घर में मिट्टी के भांडे भी नहीं हैं।
प्रत्येक व्यक्ति दूसरे पर दोष दे रहा है। यह हमारी अपने अहंकार को बचाने की प्रक्रिया है--दोष दूसरे पर दे दो! और दोष दूसरे का नहीं है। गुलाल ठीक कहते हैंः नगर हम खोजिलै चोर अबाटी। हमने सारा नगर खोज डाला कि है कौन जो हमें लूट रहा है? हम बर्बाद क्यों हो रहे हैं? हमारी जिंदगी का धन कौन खींच ले जाता है? कौन चूस लेता है हमारे जीवन को? कौन बना देता है नर्क को? सारा नगर हमने खोज डाला।
निसबासर चहुं ओर धाइलै, लुटत-फिरत सब घाटी।।
सब जगह हमने घूम कर देखा--जहां गए, वहीं लुटे। मामला क्या है! जैसे इस जिंदगी में लुटने के सिवाय कोई और उपाय नहीं है! और हम बहुत बचने की कोशिश किए हैं--यहां भागे, वहां भागे? तुम कितना इंतजाम नहीं करते कि सब बच जाए, जिंदगी बच जाए; कुछ अर्थ जिंदगी में हो; कुछ गरिमा हो जिंदगी में; कुछ रस हो जिंदगी में; कुछ सुख हो--कितनी कोशिश नहीं करते! मगर सब लुट जाता है।
काजी मुलना पीर औलिया, ... सबसे पूछा, ... सुर नर मुनि सब जाती। सबके पास गए, लेकिन पाया कि सबकी हालत वही है। सभी लुटे हैं। यहां कोई बिना लुटा नहीं बचा है। जोगी जती तपी संन्यासी, ... जोगियों से पूछा, जातियों से पूछा, तपस्वियों से पूछा, संन्यासियों से पूछा, ... धरि मारयो बहु भांती। वे सब कहते हैंः पता नहीं, मगर बर्बाद हो गए, लुट गए!
दुनिया नेम-धर्म करि भूल्यो, गर्व-माया-मद-माती।
और कुछ ऐसे हैं, जो इसको भुलाने के लिए कि हम लुटे नहीं हैं, औपचारिक धर्म को निर्मित कर लिए हैं। मंदिर में पूजा कर आते हैं, दो फूल चढ़ा आते हैं; मस्जिद में जाकर नमाज पढ़ आते हैं; कुरान पढ़ लेते हैं, बाइबिल पढ़ लेते हैं, गीता पढ़ लेते हैं, कभी सत्यनारायण की कथा करवा लेते हैं--और सोचते हैं कि इस भांति असली धन को बचा रहे हैं।
दुनिया नेम-धर्म करि भूल्यो, गर्व-माया-मद-माती।
और इतना ही नहीं, फिर इस नियम-धर्म को करने के कारण अहंकार खड़ा होता है
कि मैं धार्मिक, मैं सात्विक, मैं साधु, मैं पवित्र!
देवहर पूजत समय सिरानो, ष्ठ
श्और मंदिरों में जाते-जाते समय गंवाया।
श्ठकोउ संग न जाती।।
न मंदिर साथ जाने वाले हैं, न मंदिर की मूर्तियां साथ जाने वाली हैं।
न गीता साथ जाएगी, न कुरान, न वेद। ये सब यहीं पड़े रह जाएंगे। सब बाहर हैं। जब तक तुम्हारे भीतर का वेद न जगे, जब तक तुम्हारे भीतर उपनिषद न जन्में, जब तक तुम्हारे भीतर कुरान की गुनगुनाहट पैदा न हो, तब तक कुछ काम नहीं आएगा, सब पड़ा रह जाएगा। जब तक तुम ही मंदिर न बन जाओ, कोई मंदिर तुम्हें बचा नहीं सकता! और जब तक तुम्हारा धर्म केवल एक औपचारिकता मात्र है, एक सामाजिक व्यवहार, करना चाहिए इसलिए करते हो--लगा लिया तिलक, पहन लिया जनेऊ; क्योंकि लोग कहते हैं ऐसा करना चाहिए तो कर रहे हो। भीड़-भाड़ के हिस्से होने के लिए यह उचित भी है; नहीं तो भीड़ नाराज हो जाती है! और भीड़ में रहना है, भीड़ में जीना है, तो भीड़ जैसे रहो। भेड़ होकर रहो तो भीड़ में रह सकते हो। मानुष जन्म पायकै खोइले, भ्रमत फिरै चौरासी।
और मनुष्य जैसा अद्भभुत जीवन पाया, फिर भी खो रहे हो। फिर भटकोगे चौरासी कोटियों में। एक बार यह द्वार चूका तो फिर पता नहीं कब मिले!
दास गुलाल चोर धरि मरिलौ, ष्ठ
गुलाल कहते हैंः मैं तुम्हें पता दे देता हूं चोर का, पकड़ धर मारो!
दास गुलाल चोर धरि मरिलौ, जाव न मथुरा कासी।।
न तो मथुरा जाने की जरूरत, न काशी जाने की जरूरत, चोर तुम्हारे भीतर है। चोर तुम्हारा मन है। मन तुम्हें बर्बाद किए है। मन तुम्हारा नर्क निर्मित कर रहा है। कोई दूसरा तुम्हें नहीं लूट रहा है; तुम्हारा मन ही तुम्हें लुटवा रहा है। मन ही तुम्हें धन के पीछे दौड़ा रहा है, पद के पीछे दौड़ा रहा है। फिर पद के और धन के कष्ट हैं। कोई ऐसा ही तो मुप 132 त मिलता नहीं। पद पर जाना चाहोगे तो संघर्ष है। न मालूम कितने लोगों के साथ

द्वंद्व करना होगा, बड़ी खींचातानी होगी, बहुत कुटोगे-पिटोगे। बहुत कम संभावना है पहुंच पाओ और पहुंच भी जाओ तो भी कुटाई-पिटाई जारी रहेगी। किसी कुर्सी पर भी बैठ गए तो भी कुछ फर्क नहीं पड़ता; क्योंकि दूसरों को भी उसी कुर्सी पर बैठना है। एक ही कुर्सी पर सबको बैठना है! सत्तर करोड़ आदमी हैं इस देश में, सभी को प्रधानमंत्री होना है, सभी को राष्टपति होना है। अब सत्तर करोड़ कैसे प्रधानमंत्री हों? मेरा वश चले तो मैं तो घोषणा कर दूं कि सब प्रधानमंत्री। झंझट ही क्या है? अपने नाम के पीछे सब प्रधानमंत्री लिखो, आगे राष्टपति लिखो, दोनों काम पूरे एक साथ हो जाएं। क्या इसमें उपद्रव मचाना! इतना शोरगुल क्या! सबको सरकारी सर्टिफिकेट दिलवा दूं कि बस, तुम राष्टपति।
मैं एक गांव में गया। गांव के लोगों ने मुझे कहा कि एक जगतगुरु भी गांव में ठहरे हुए हैं, वे आपसे मिलना चाहते हैं। मैंने कहाः जगतगुरु और मुझसे क्यों मिलना चाहेंगे? और मैंने कहाः कितने जगतगुरु हैं? बड़ा मुश्किल, जगत एक और कितने जगतगुरु! खैर, मिलना चाहते हैं तो ले आओ। वह आए। मैंने उनसे पूछाः आपके कितने शिष्य हैं? जगतगुरु होने के लिए कम से कम कुछ तो शिष्य हों! और जगत के किस-किस देश में आपके शिष्य हैं? उन्होंने कहा कि शिष्य तो मेरा एक ही है; वह उनके साथ ही था--वही आदमी जो मुझसे कह गया था कि जगतगुरु आपसे मिलना चाहते हैं। यही मेरा शिष्य है! वे थोड़े हतप्रभ भी लगे। मैंने कहाः हतप्रभ होने की कोई जरूरत नहीं। इसका नाम रख लो जगत, मामला खत्म! इसके तुम गुरु--"जगतगुरु।" सरल तरकीब निकालो, इत्ते परेशान होने की क्या बात है! फिर कोई तुम पर कोई कानूनी अड़चन नहीं डाल सकता। सुप्रीम कोर्ट को भी निर्णय देना पड़ेगा कि तुम जगतगुरु हो! क्योंकि यह तुम्हारा शिष्य, इसका नाम जगत।
दौड़ है पद की, धन की--सबकी है। तो फिर खींचातानी है बहुत, ऐंचातानी है बहुत। और मिल कर भी कुछ मिलता नहीं। मजा तो यह है इस दुनिया में कि चढ़ते रहो सीढ़ियों पर सीढ़ियां, नसेनियों पर नसेनियां और ऊपर पहुंच कर कुछ भी नहीं है। वहां जाकर बुद्धू बन जाते हो। मगर फिर कुछ कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि जब अपनी कट गई, अब किससे कहना! चढ़ते रहो सीढ़ी, जब बिल्कुल ऊपरी पायदान पर पहुंचोगे तब पाओगे कि आगे कुछ है ही नहीं, बस यही पायदान था, खत्म! यह सीढ़ी कहीं जाती नहीं। दिल्ली कहीं जाती है? मगर फिर जो नीचे चले आ रहे हैं चढ़ते हुए, अगर उनसे कहो कि भैया, यहां कुछ भी नहीं है, तो वे कहेंगे कि तुम बुद्धू हो, फिर इत्ते दिन क्यों चढ़ाई किए, इतनी क्यों मुसीबतें उठायीं? तो वहां ऊपर देख कर भी कि यहां कुछ भी नहीं है, आदमी अकड़ कर कहता है कि अहाह! कैसा आनंद आ रहा है!
मैंने सुना है, एक आदमी की पत्नी उस पर इतनी नाराज हो गई कि उसने उठाया चाकू और उसकी नाक काट दी। आदमी भी बड़ा होशियार था। गांव के लोग उसे नेता मानते थे--नेता जी ही था वह! उसने कहाः अब क्या करना, अब नाक तो कट ही गई! वह दूसरे गांव चला गया। और एकदम मस्त रहने लगा! रहेगा तो कैसे मस्त, मगर दिखलाने लगा। कोई भी आए, एकदम डोलने लगे; जैसे बुल्लाशाह ही हों ये! लोग पूछें कि भाई बात क्या है, आप इतने मस्त क्यों हैं? तो वह कहता कि मस्ती का कारण है--नाक का कट जाना। नाम कटने से मस्ती का क्या संबंध? कहाः यह नाक की वजह से ही आड़ थी परमात्मा और मेरे बीच में। नाक क्या कटी कि आड़ हट गई, एकदम दरवाजा खुल गया! अब तो बस मजा ही मजा है--झरत दसहुं दिस मोती! अब तो क्या कहना, आनंद ही आनंद की वर्षा हो रही है!
फिर आदमी होशियार था, तो वह कहताः नाक का अर्थ तो तुम समझते हो, नाक यानि अहंकार का प्रतीक। लोग कहतेः यह बात तो ठीक है! लोग कहते हैंः भई, फलाने की नाक कट गई। नाक चाहे न भी कटी हो, मगर अगर इज्जत गिर गई तो कहते हैंः नाक कट गई। लोग कहते हैं कि अरे, अपनी नाक सम्हाल कर चलो; कि कुछ अपनी नाक का भी ख्याल रखो! अहंकार का प्रतीक तो है नाक। और अहंकार बाधा है, यह तो सभी शास्त्र कहते हैं। यह आदमी भी गजब का रास्ता निकाला! सभी शास्त्र कहते हैंः अहंकार बाधा है; और नाक अहंकार का प्रतीक है, इसने नाक काट दी, अहंकार खत्म हो गया। बात बिल्कुल जंचती है, गणित बिल्कुल साफ है।

धीरे-धीरे कुछ और नालायक मिल गए। जरा हिम्मतवर। उन्होंने कहाः अच्छा भैया, तो हमारी भी काट दो। तो वह तो लाया ही था छुरी अपने साथ, वह लोगों की नाक काटने लगा। उनको ले जाता जंगल में और वहां नाक काट देता। नाक कटा कर वह आदमी देखता कहीं कोई परमात्मा वगैरह नहीं दिखता, न कोई मोती झर रहे न कुछ। कहताः भैया, कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा! वह कहता कि दिखाई क्या हमको पड़ रहा है? मगर जैसी हमारी कटी और हमने फिर भी अपने को बचाया, ऐसी अब तुम्हारी कट गई। अब अगर तुमने गांव में जाकर यह कहा कि नाक तो कट गई, कुछ दिखाई नहीं पड़ता, लोग कहेंगेः बुद्धू हो! अब सार क्या? बुद्धू बनने से सार क्या, हम तुम को बुद्धू बनाए देते हैं! अब तो तुम एकदम नाचे हुए जाओ--एकदम खंजड़ी पीटते हुए, एकदम मस्ती में मस्त!
आदमी भी सोचता कि अब सार तो कुछ है नहीं कहने में। धीरे-धीरे गांव में
कई नककटे हो गए। उनकी जमात हो गई। और जहां मिल जाते, उनकी मस्ती देखने लायक होती। बात, कहते हैं, राजा तक पहुंची। राजा भी खोजी था। उसने कहा कि हम भी जिंदगी भर हो गई, खोज नहीं हुई; अगर नाक कटने से मिलता हो तो है भी क्या शरीर में रखा, आज नहीं कल मर ही जाएंगे, कटवा ही दो नाक!
वजीर ने कहाः तुम जरा ठहरो, इतनी जल्दी मत करो। पहले मुझे पता लगा लेने दो। वजीर होशियार आदमी था। उस आदमी को ले गया अलग जंगल में और उसकी अच्छी पिटाई की और कहाः तू सच-सच बता! उसने कहाः अब आप ज्यादा पिटाई कर रहे हैं, तो मैं सच-सच बताए देता हूं। मेरी पत्नी ने मेरी नाक काटी। और फिर अपनी बचाने के लिए कौन इंतजाम नहीं करता! अरे, कट गई तो कट गई मगर मुझे तो उपाय करना ही पड़ता है, सो मैं अपनी बचा रहा हूं। और इन लोगों ने भी मुझसे कटवा ली है, अब ये अपनी बचा रहे हैं। और इत्ता मैं पक्का कहता हूं कि तुझको कि राजा की भी कट जाए तो वह भी बचाएगा। यह देर कटने तक की है, कटने के बाद तो एकदम निर्वाण का अनुभव होना निश्चित ही है!
तुम्हारा जो धर्म है, वह भी थोथा है। तुम्हारा जीवन भी थोथा है। जिन्होंने धन पा लिया, उनसे पूछो कि क्या मिला? और जिन्होंने पद पा लिया, उनसे पूछो कि क्या मिला? वे सब कहेंगेः बहुत मिला, बड़ा आनंद आया! मगर मिला कुछ भी नहीं। कभी किसी को नहीं मिला। मिल सकता नहीं। बाहर पाने को कुछ है नहीं। जो पाने योग्य है, भीतर है। असली धन भीतर, असली पद भीतर।
राम मोर पुंजिया मोर धना, निसबासर लागल रहु रे मना।।
बस, वहां लग जाओ। चौबीस घंटे सतत भीतर उतरते रहो, डूबते रहो। जिस दिन तुम अपने केंद्र पर खड़े हो जाओगे, जिस दिन अपने चैतन्य के केंद्र पर खड़े हो जाओगे--उसी दिन तुम जान लोगे। फिर न कोई मंदिर, न कोई मस्जिद; न काबा, न काशी, न कोई औपचारिक बातें। न हिंदू होना, न मुसलमान होना; न ब्राह्मण, न शूद्र। फिर तुम उस केंद्र पर खड़े होकर भगवान के हिस्से हो, भगवत्ता के हिस्से हो।
जैसा बुल्लेशाह को हुआ और बुल्लेशाह के साथ बैठ-बैठ कर गुलाल को हुआ, वैसा तुम्हारे जीवन में भी हो सकता है--होना चाहिए!
मानुष जन्म पायकै खोइले, भ्रमत फिरै चौरासी।
मत खो देना इस परम जीवन-अवसर को, नहीं तो फिर भटकोगे न मालूम कितन जन्मों तक!
जीवन का एक ही अर्थ है, जीवन की एक ही खोज है, एक ही लक्ष्य है कि हम जान लें कि मैं कौन हूं। जिसने जान लिया मैं कौन हूं, उसने जान लिया कि परमात्मा क्या है। क्योंकि मैं और परमात्मा दो नहीं हैं। अहम ब्रह्मास्मि! तत्वमसि!

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
दूसरा प्रवचन

तुम वही हो

पहला प्रश्नः ओशो! अब तक की यात्रा कठिन रही, लेकिन आपके इशारे से और सहारे से उससे गुजर चुका। जो कभी सोचा भी न था, उसे पाकर धन्यभागी हूं! जो भी अनुभव में आया, उसे अब तक दूसरों को भी समझाता रहा। लेकिन आगे की यात्रा सिर्प कठिन ही नहीं, बल्कि बिल्कुल असंभव लगती है। आप तो कहते हैं, तुम मंजिल पर हो; यह यात्रा का ख्याल ही छोड़ दो। बात कुछ समझ में आती सी लगती है, फिर भी समाधान टिकता नहीं।
ओशो, यह शिकायत क्यों उठती है? क्या मैं समय के पूर्व असंभव की अपेक्षा कर रहा हूं? क्या प्रतीक्षा साधना से भी कठिन साधना है?
ओशो, यह कैसी बेचैनी है?

अजित सरस्वती! सत्य तो यही है कि सब यात्राएं झूठी हैं--अंतर्यात्रा भी। सत्य तो यही है कि तुम जो हो, वह पर्याप्त है, वह पूर्णता है। तुम जहां हो, उससे कहीं अन्यथा नहीं होना है। जैसे हो, वैसे ही होने में निर्वाण है। लेकिन इस सत्य को अंगीकार करना निश्चित ही कठिन। कठिन ही नहीं, जैसा तुम कहते हो, असंभव ही है। क्योंकि हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा यात्राओं के लिए है। हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा का आधार हैः आकांक्षा, अभीप्सा, कुछ पाने की दौड़। फिर पाने की दौड़ धन की हो या ध्यान की--भेद नहीं पड़ता। फिर पाने की दौड़ पद की हो या परमात्मा की--भेद नहीं पड़ता। हमारे मन को अड़चन नहीं आती। मन कहता हैः कोई फिक्र नहीं, पद नहीं पाना है, परमात्मा तो पाना है!
पाने की भाषा कायम रखो और मन राजी है। पाने की भाषा मन को जंचती है; क्योंकि मन पाने की भाषा के सहारे ही जीता है। मन यानी भविष्य। पाने की आकांक्षा तो भविष्य में ही पूरी हो सकती है, अभी और यहीं तो नहीं। अभी और यही, तो मन के लिए कोई अवकाश ही नहीं बचता; मन को गति करने के लिए स्थान नहीं बचता। मन को चाहिए थोड़ी जगह; आपाधापी करे, भागे-दौड़े, तो मन राजी है। लौकिक लक्ष्य हो तो, अलौकिक लक्ष्य हो तो--मन राजी है, तुम कुछ पाने के लिए दौड़ते रहो। मन इस तक के लिए राजी है कि तुम अ-मन की साधना करो। मन से मुक्त होने की साधना करो, मन इसके लिए भी राजी है। मन कहता हैः कुछ करो; कुछ किए चलो! क्योंकि मन जानता है, तुम कुछ भी करोगे तो मन बचेगा।
करने में मन का बचाव है, सुरक्षा है। करने में मन का पोषण है।
इसलिए मैं भी तुम जब शुरू-शुरू मेरे पास आते हो, तो अनिवार्यरूपेण मुझे तुम्हारी भाषा बोलनी पड़ती है। तुमसे मैं कहता हूंः पाना है परमात्मा, पाना है आनंद, पाना है मोक्ष, निर्वाण। मगर सच पूछो तो वह केवल तुम्हें टिकाए रखने का उपाय है। वह ऐसा है जैसे कांटे पर आटा लगा देते हैं, मछली को पकड़ रखने को। मछली कांटा तो न लीलेगी, आटे को लील जाएगी; आटे के साथ कांटा भी भीतर पहुंच जाएगा। और कांटा भीतर पहुंच गया तो मछली फंसी। तुम्हारे मन को जरूरत है आटे की। तो सच्चिदानंद की बात करनी होती है; परम निर्वाण की बात करनी होती है; उस अलौकिक महासुख की, जो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है; उस सत्य की जो बहुत दूर है--चांद-तारों की भांति--और तुम्हारा मन राजी हो जाता है। तुम्हारा मन कहता हैः चलेंगे, इस यात्रा को करेंगे। तुम्हारा मन इस चुनौती को स्वीकार कर लेता है। वस्तुतः धन पाने वाला, पद पाने वाला इतना ज्यादा मन को राजी नहीं कर पाता। क्योंकि मन चारों तरफ तो देखता हैः बहुतों को पद मिल गया है, क्या खाक मिला! और बहुतों ने धन पा लिया है, पाया क्या है? आखिर मन अंधा तो नहीं है? चारों तरफ लोगों के जीवन को देखता तो है! इसलिए जब तुम कहते हो धन पाना है, तो मन को वैसी चुनौती नहीं मिलती। क्योंकि चारों तरफ जिनके पास धन है, उनको देख कर ही मन स्वयं ही अधमरी हालत में हो जाता है। पाकर भी क्या करेंगे?
लेकिन जब तुम कहते होः ध्यान पाना है, तो मन खड़ा हो जाता है; मन में बल
आ जाता है; मन में फिर एक ज्योति जगमगा उठती है; मन फिर एक अभियान से भर जाता है। मन कहता है, हां, अब कुछ करने जैसी बात मिली। कोई साधारण बात भी

नहीं। मैं कोई साधारण आदमी थोड़े ही हूं--असाधारण हूं! मैं कोई सांसारिक थोड़े ही हूं--धार्मिक हूं। ये सांसारिक लोग तो क्षुद्र चीजों में उलझे हुए हैं; ये क्षुद्र चीजें तो मृत्यु इनसे छीन लेगी; मैं तो पाऊंगा विराट को; मैं तो पाऊंगा शाश्वत को, सनातन को, जिसे मृत्यु भी न छीन पाएगी।
गौर से देखना, यह लोभ का बड़ा रूप है--बड़ा सूक्ष्म। तुम्हारे साधु- संन्यासी तुम्हें समझाते हैं कि क्या उलझे हो क्षुद्र में! अरे, शाश्वत को खोजो! जिसको न चोर चुरा सकते, न डाकू लूट सकते, न मृत्यु छीन सकती। आग जिसे जलाती नहीं... नैनं दहति पावकः; शस्त्र जिसे छेद नहीं सकते... नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि--कुछ ऐसा खोजो। और तुम सोचते हो कि बड़े अध्यात्म की बात हो रही है! और मन तत्पर हो जाता है। मन इस चुनौती को स्वीकार कर लेता है।
जितना ऊंचा शिखर हो, मन को उतना ही आकर्षक लगता है। जितना दूर का हो, उतना आकर्षक लगता है। क्योंकि काश, पहुंच पाऊं तो मैं अद्वितीय हो जाऊंगा। क्या मजा है धन पा लेने में, मजा है तो बुद्ध होने में! क्या मजा है पद पा लेने में, मजा है तो जिन होने में! क्या मजा है कि चार लोगों ने तुम्हें जाना और फिर मौत आई और सब यूं मिट गया जैसे पानी पर खींची लकीरें मिट जाती हैं, मजा है तो कृष्ण होने में, क्राइस्ट होने में! सदियों-सदियों तक गूंजते रहते नाम! युगों-युगों तक पूजा चढ़ेगी, नैवेद्य चढ़ेगा, फूल चरणों पर गिरेंगे।
जरा गौर से देखना। मन बड़ा चालबाज है! मन कहता है, यह बात करने जैसी है। इसलिए आध्यात्मिक यात्रा की बात मन को जंच जाती है। मैं भी तुमसे आध्यात्मिक यात्रा की बात करता हूं। मगर मेरे हिसाब में वह सिर्प आटा है। अजित सरस्वती, एक बार तुम फंस गए, फिर असली बात कहनी ही होगी। और असली बात कठिनाई में डालेगी। असली बात बड़े द्वंद्व से भर देगी। आज नहीं कल, जब मैं देखूंगा अब तुम उस जगह आ गए जहां असली बात कही जा सकती है, फिर भी तुम लौट न सकोगे; तुम उस बिंदु पर आ गए जहां से लौटना असंभव है; तब तो मैं तुमसे कहूंगा ही--कोई यात्रा नहीं है। परमात्मा गंतव्य नहीं है, तुम्हारा अस्तित्व है। परमात्मा को पाना नहीं है, तुमने कभी खोया ही नहीं। परमात्मा को पाने के लिए कोई उपाय, विधियां, साधनाएं नहीं करनी हैं। उपाय, विधियां, साधनाएं तो उसे पाने को करनी होती हैं, जो हमारा स्वभाव न हो; जो हमसे विजातीय हो।
हां, धन को पाने के लिए विधि चाहिए, उपाय चाहिए, तरकीबें चाहिएं, मार्ग चाहिए। लेकिन परमात्मा तो तुम्हारी अंतर-अवस्था है, तुम्हारी आंतरित्ता है। तुम कभी परमात्मा से भिन्न न रहे हो, न हो, न हो सकते हो। सिर्प सो गए हो। परमात्मा इतना तुम्हें मिला हुआ है कि भूल गए हो। जब कोई चीज बहुत मिल जाती है तो भूल जाती है। तुम परमात्मा में ही जीए हो, इसलिए भूल गए हो। परमात्मा इतना निकट है, निकट से भी निकटतर, परमात्मा तुम्हारे प्राणों का प्राण है, इसलिए विस्मरण हो गया है। परमात्मा को इसलिए नहीं भूल गए हो कि परमात्मा बहुत दूर है, परमात्मा को इसलिए भूल गए हो क्योंकि परमात्मा दूर नहीं है। दूर के तारे तो दिखाई पड़ते रहते हैं। असल में पास जो है, वह भूल जाता है। पास जो है, वह दिखाई ही नहीं पड़ता। अगर दर्पण में अपनी तस्वीर देखनी हो, तो दर्पण के बहुत पास मत चले जाना। दर्पण से बिल्कुल मुंह लगा कर मत खड़े हो जाना, नहीं तो कुछ भी न दिखाई पड़ेगा। जरा दूरी चाहिए, थोड़ा परिप्रेक्ष्य चाहिए, फासला चाहिए, तो ही देख सकोगे।
मुल्ला नसरुद्दीन पर एक मुकदमा था अदालत में। उससे पूछा गया कि यह हत्या हुई, उस समय तुम कितनी दूर थे? उसने कहाः सत्रह फीट साढ़े नौ इंच। मजिस्टेट भी चौंका, पूरी अदालत भी चौंकी। मजिस्टेट ने कहाः ऐसा मालूम होता है कि तुम्हें पहले से ही पता था कि हत्या होने वाली है। क्या नाप कर खड़े हुए थे? जिंदगी हो गई मुझे अदालत चलाते, ऐसा कोई उत्तर देने वाला नहीं मिला कि साढ़े नौ इंच! इंच-इंच का हिसाब रखे हो? और अंधेरी रात थी और वहां कोई ज्योति भी नहीं थी, कोई लालटेन भी नहीं थी, अंधेरी रात में तुम्हें साफ-साफ दिखाई पड़ गया? इतना साफ कि तुम इंच-इंच का हिसाब रखे हो! तुम्हें कितनी दूर तक अंधेरे में दिखाई पड़ता है? नसरुद्दीन ने कहाः अब आप यह न

पूछें! ऐसे तो मुझे रात के अंधेरे में तारे भी दिखाई पड़ते हैं! दूरी की तो आप पूछें ही मत! अमावस की रात में भी मुझे तारे दिखाई पड़ते हैं। तो यह तो कोई ज्यादा दूर की बात न थी।
तारे दिखाई पड़ सकते हैं। तारे बहुत दूर हैं। दूर हैं, इसलिए दिखाई पड़ सकते हैं। जो बहुत पास है, उसे हम भूल जाते हैं। यह मन का साधारण नियम हैः जो तुम्हें मिल जाता है, तुम उसका विस्मरण कर देते हो। जो दूसरे के पास होता है, वह दिखाई पड़ता है; खुद के पास जो होता है, वह नहीं दिखाई पड़ता। तुमने अपनी पत्नी को कब से नहीं देखा? वर्षो हो गए होंगे। शायद तुमने
भर आंख उसे देखा ही न होगा वर्षो से! घर में ही है, पास ही है। हां, पड़ोसी जब देखते हैं तो टकटकी लगा कर देखते हैं! पति और पत्नी को टकटकी लगा कर देखे तो पागल समझो!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी अपने डाक्टर के पास गई और बोली कि मेरे पति की आंखें मालूम होता है कमजोर हो गई हैं। जरूरत है चश्मे की। वे मानते नहीं, उन्हें मैं भेजना चाहती हूं, बार-बार समझाती हूं, आते नहीं, जिद्दी हैं। आप ही एक दिन आ जाएं घर, जांच-पड़ताल कर के चश्मा जमा दें। डाक्टर ने कहा कि जब वे नहीं आते, उन्हें कोई तकलीफ न होगी। तुझे कैसे पता चला? तो उसने कहा, अब आप से क्या छिपाना, वे मुझी को टकटकी लगा कर देखते हैं! इससे साफ है कि आंखें कमजोर हो गई हैं। नहीं तो अपनी पत्नी को कोई टकटकी लगा कर देखता है। एक दिन तो मैं निकल रही थी तो मुझे देख कर सीटी बजाने लगे। तब तो मुझे पक्का हो गया कि अब इनको दिखाई नहीं पड़ता। नहीं तो ऐसी कोई भूल करे! जो अपना है, जो अपने पास है, वह तो याद ही तब आता है जब छूट जाता है। तुम
जब किसी की मृत्यु पर रोते हो तो इसलिए थोड़े ही रोते हो कि मृत्यु हो गई। अगर ठीक विश्लेषण करोगे, अगर ध्यान दोगे इस बात पर, तो तुम कुछ और ही राज पाओगे। जब तुम किसी की मृत्यु पर रोते हो तो इसलिए रोते हो कि अरे, इतने दिन साथ थे, न प्रेम किया, न कभी बैठ के दो घड़ी आनंद में बिताए, और अब कभी मिलना न होगा। जब पास थे, तो दूर-दूर बने रहे और अब सदा के लिए दूर हो गए, अब पास होने का कोई उपाय न रहा। इस बात का पश्चात्ताप रुलाता है। इस बात की पीड़ा सालती है कि अब क्या करें? अब कैसे करें? अब चाहेंगे भी तो अब हाथ के बाहर बात हो गई। अब जो व्यक्ति गया सो गया। अब तो यह सपनों में भी मिलेगा, इसका भी कुछ पक्का नहीं! अब कभी किसी रास्ते पर, जीवन के किसी मोड़ पर इससे मुलाकात होगी, इसकी कोई आशा नहीं बांधी जा सकती। और कितने दिन साथ थे! और कलह की, और विवाद किया; कभी संवाद न हुआ, कभी दो घड़ी आनंद से न बैठे, कभी दो घड़ी संगीतबद्ध न हुए, कभी एक-दूसरे को भर आंख न देखा, कभी एक-दूसरे की आंख में न झांका, कभी एक-दूसरे के अंतस्तल में न टटोला। ऊपर-ऊपर का नाता रहा। जब साथ थे तो साथ नहीं थे, अब साथ टूट गया, अब पीड़ा सताती है; और अब साथ होने का कोई उपाय न रहा।
परमात्मा हमारे इतने पास है, इतने पास, सदा से, कि यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि हम उसे भूल जाएं। बस, हम भूल गए हैं। हमें सिर्प पुनर्स्मरण दिलाना है। ख्याल रखना, मैं कह रहा हूंः पुनः-स्मरण! हमें सिर्प झकझोरा जाना है।
लेकिन, अजित सरस्वती, तुम्हारी कठिनाई भी मैं समझता हूं। तुम कहते होः अब तक की यात्रा तो सरल थी। मैं भी जानता हूं। यात्रा तो मन के लिए सरल है ही। कठिन से कठिन यात्रा भी सरल है। अड़चन तो तब आती है जब मैं कहता हूंः अब यात्रा नहीं, अब रुको! अब ठहरो! मन दौड़ने में कुशल है। मन तो ऐसा समझो जैसे साइकिल चलाते रहो तो खड़ी रहती है। चलाना बंद किया, पैडल मारने बंद किए कि गिरी। मन तो ऐसा है; भगाते रहो तो जीता है। रोका कि गिरा। पैडल मारते ही रहो; नई-नई आकांक्षाओं के, नई-नई वासनाओं के; इस जगत से चुक जाओ तो परलोक के, मगर पैडल चलाते रहो। कहीं भी जाओ मगर जाते रहो। पूरब तो पूरब, पश्चिम तो पश्चिम। रुकना मत! मन कहता हैः रुकना मत; तुम रुके कि मैं मरा! रुकने में मेरी मौत है। और जहां मन की मौत है, वहीं परमात्मा का अनुभव है। इसलिए पहले तुम्हें फुसलाता हूं। जैसे छोटे बच्चों को हम खिलौने दे देते हैं। ऐसे तुमसे कहता हूंः साधना करो, ध्यान करो, प्रार्थना करो; मिलेगा परमात्मा, आनंद की वर्षा होगी; मोती ही मोती बरसेंगे--झरत दसहुं

दिस मोती--प्रलोभन में तुम आ जाते हो। यही बुद्धों की सदा से प्रक्रिया रही। और कोई उपाय नहीं है तुम्हारा हाथ पकड़ लेने का। सत्य तो तुमने तभी कहा जा सकता है जब यह बात साफ हो जाए कि अब तुम लौट नहीं सकते। पिछले सेतु टूट गए, लौटने का उपाय नहीं, तब सत्य कहा जा सकता है; और तब सत्य फांसी जैसा लगता है। आगे जाने को कुछ है नहीं, पीछे लौटने का उपाय नहीं; अब तो ठहरना ही होगा। ठहरे कि मन गिरा, रुके कि मन गिरा, मन गिरा कि सब कुछ हुआ। इधर गिरा कि उधर तुम्हारे भीतर जो छिपा पड़ा था, वह प्रगट हुआ।
तुम परमात्मा हो। अमृतस्य पुत्रः। वेद कहतेः तुम अमृत के पुत्र हो। कहीं जाना नहीं, कुछ करना नहीं। लगेगा असंभव सा। प्रश्न उठेगाः फिर करें क्या? और मैं यही कह रहा हूंः करना कुछ भी नहीं है। इस जगत में न करने से कठिन और कोई बात नहीं है। आमतौर से तो ऐसा लगता है, न करना सरलतम होना चाहिए। जब कुछ करना ही नहीं, तो इसमें कठिनाई क्या? मगर नहीं, बात उलटी है। करने में कठिनाई नहीं है; कठिन से कठिन काम आदमी कर लेता है। चांद पर जाना हो, जाने को राजी है। मगर कहो कि दो क्षण शांत बैठ जाओ, हिलो-डुलो मत, मन को मत कंपाओ, भीतर कंपन न चलने दो, विचार को छोड़ दो, और वह कहता हैः यह नहीं हो सकेगा! चांद पर चले जाओ, वह कहेगाः ठीक। जान खतरे में डालने को राजी है। गौरीशंकर चढ़ना है, चढ़ेंगे। मगर भीतर जाना है, यह मत कहो। क्योंकि भीतर जाने का जो बुनियादी उसूल है, वह आत्महत्या जैसा लगता है मन को। है ही आत्महत्या। वह मन का विसर्जन है। भीतर जाना यात्रा नहीं है, सब यात्राओं का छूट जाना है। बस, सब यात्राएं छूटीं कि तुम भीतर पहुंचे। अंतर्यात्रा और-और यात्राओं में एक यात्रा नहीं है, अंतर्यात्रा केवल कहने की बात है। सब यात्राओं से मुक्ति अंतर्यात्रा है। जब कहीं जाने को नहीं बचता, तब तुम ठहर गए, थिर हो गए। उस थिरता में... कबीर कहते हैंः "ज्यों का त्यों ठहराया", तुम जैसे हो वैसे के वैसे ही ठहर गए; बस, सारा राज खुल गया; मंदिर के द्वार खुल गए। "ज्यों का त्यों ठहराया।"
असंभव भी लगेगा, बात भी समझ में आएगी; क्योंकि अब तुम उस जगह तो आ गए हो जहां बात समझ में आनी ही चाहिए। न आ सकती समझ में तो मैं तुमसे कहता नहीं। तुमसे कह रहा हूं तो इसलिए कि समझ में आएगी। मगर समझ में आ जाना और समझ में टिक जाना दो बातें हैं। आते-आते छिटक जाती है। आई-आई और गई। क्षण-भर को लगता है सब साफ हुआ, जैसे बिजली कौंध गई, और फिर घुप्प अंधेरा हो जाता है। बुद्धि की समझ में बात आ जाती है कि परमात्मा हमारा स्वभाव है, हां, ठीक, जाना कहां, पाना कहां, हम उसी में हैं, वह हमारा जीवन है, यह बात तो समझ में आ जाती है, लेकिन फिर मन है, सदियों-सदियों पुराना, जन्मों-जन्मों पुराना... यह तुम ख्याल रखना, हर जीवन में शरीर तो बदल जाता है, मन नहीं बदलता। तुम्हारा एक शरीर जब गिरता है, तब तुम यह मत सोचना कि उस शरीर के भीतर बसा हुआ मन भी गिर जाता है। मन तो उड़ान भरता है, दूसरे शरीर में प्रवेश हो जाता है। मन तुम्हारे पास अति प्राचीन है। शरीर तो बड़ा नया है। किसी के पास पचास साल पुराना, किसी के पास आठ साल पुराना, सत्तर साल पुराना, बस, इससे ज्यादा पुराना तो नहीं है! शरीर तो बड़ा नया है, मन बहुत प्राचीन है, अति प्राचीन है। तुम्हारे मन ने सारा इतिहास देखा है। करोड़ों-करोड़ों वर्ष की यात्रा है। उस यात्रा के लिए प्रतीक शब्द भारतीय संतों ने खोजा हैः चौरासी कोटियों में तुम्हारा मन भटका है, भरमा है। शरीर तो बदलता रहा है, मन हमेशा वही का वही। उस पर और-और नई परतें अनुभव की, ज्ञान की, धारणाओं की, लोभ की, भय की, वासनाओं की जमती गयीं, जमती गयीं। मन एक हिमालय जैसा पहाड़ हो गया है।
एक झलक मिलती है तुम्हें कि बात ठीक। लेकिन यह जो पुराना मन है, यह उस झलक को टिकने नहीं देता। यह कहता है, बात ठीक कैसे हो सकती है? मेरा क्या होगा? मैं कहां जाऊं? और यह बात ठीक नहीं हो सकती; क्योंकि अगर तुम परमात्मा ही हो तो फिर धर्म का कोई प्रयोजन नहीं; फिर साधना का कोई अर्थ नहीं। अगर तुम परमात्मा ही हो तो फिर कौन है संत और कौन असंत; कौन पापी, कौन पुण्यात्मा; फिर कौन रावण और कौन राम? फिर मन हजार उपद्रव खड़े करता है। फिर तुम शराबी में और सत्संगी में क्या फर्क करोगे? अगर सभी परमात्मा हैं! और मन के इन प्रश्नों के उत्तर देना मुश्किल होने लगेगा। और सचाई यही है

कि संत में और असंत में कोई फर्क नहीं है। फर्क ऊपर-ऊपर है, फर्क मन का है, भीतर एक ही विराजमान है। राम और रावण में कोई फर्क नहीं है।
कभी तुमने रामलीला के मंच के पीछे जाकर देखा? वहां तुम्हें असलियत पता चलेगी। पर्दा उठता है, राम और रावण धनुष-बाण एक-दूसरे पर साधे खड़े हैं, युद्ध के लिए तत्पर, एक-दूसरे की हत्या के लिए बिल्कुल आतुर। फिर पर्दा गिरता है। फिर जरा पीछे जाकर देखा करें! जब पर्दा गिर जाता है तो पीछे क्या हो रहा है? राम और रावण बैठे चाय पी रहे हैं--साथ-साथ! गपशप कर रहे हैं। सीता मइया दोनों के बीच बैठी गपशप कर रही हैं। न राम से कुछ लेना-देना है, न रावण से कुछ झगड़ा है। हनुमान ने भी पूंछ-वूंछ निकाल कर टांग दी है, मुखौटा उतार दिया है; अपनी असलियत में आ गए हैं।
यह जगत एक बड़ी नाट्य-मंच है। यहां सब बाहर-बाहर पर्दे उठते हैं, बड़े
भेद हैं; पर्दे गिर जाते हैं, कोई भेद नहीं है। अभिनय है। जीवन अभिनय से ज्यादा नहीं है। मन अभिनेता है। और मन के प्रति जाग जाना, साक्षी हो जाना अभिनय के पीछे झांक लेना है, मंच के पीछे जाकर देख लेना है। वहीं असलियत खुलती है।
तुम वही हो जो तुम्हें होना है; और तुम सदा से वही हो। समझ में बात आएगी, क्योंकि खींच लाया हूं समझ को वहां तक। लेकिन बहुत बार छूटती लगेगी, क्योंकि सदियों-सदियों पुराना मन अपनी दांव-पेंच जारी रखेगा; अपनी दुलत्तियां चलाता रहेगा; आदत से बाज नहीं आ सकता। आदतें बड़ी मुश्किल से मरती हैं। मरते-मरते भी आखिरी उपाय अपने बचाने का करती हैं, चिल्लाती हैंः बचाओ, बचाओ!
आदतों का भी अपना जीवन है। और यह मन की आदतें करीब-करीब तुम्हारे भीतर ऐसा कब्जा करके बैठ गई हैं। इनको आज बाहर निकालोगे एकदम, तो ये निकल नहीं जाएंगी। कोई किराएदार ऐसे नहीं निकलते! और दो-चार साल किराएदार रह जाएं तो नहीं निकलते, और ये तो सदियों-सदियों से रह रही हैं आदतें! ये तो मालिक को ही निकाल बाहर करने की कोशिश करेंगी। ये तो कहेंगी कि तुम्हारा मन नहीं लगता तो रास्ता लगो! जाओ, जरा हवाखोरी कर आओ!
इन आदतों ने कब्जा कर लिया है पूरा का पूरा! इसलिए ये आदतें आती हुई समझ को छिटका-छिटका देंगी, हटा-हटा देंगी। मगर अब ये आदतें भी जीत नहीं सकतीं। कुछ दिन कशमकश चलेगी, अजित! कुछ दिन ऊहापोह चलेगा! यह द्वंद्व, खींचा-तानी--तुम्हारी आदतों और मेरे बीच। तुम तो देखो अब! देखना यह है कि तुम्हारी आदतें जीतती हैं या मैं जीतता हूं? इतना तुमसे कह सकता हूं कि ये आदतें जीत नहीं सकतीं--समय कितना ही ले लें, देर कितनी ही लग जाए, मगर ये जीत नहीं सकतीं। क्योंकि पीछे लौटने के सेतु टूट गए हैं। उतना आश्वासन तुम्हें देता हूं कि पीछे लौटने का अब कोई उपाय नहीं रहा है। मेरे पास जो आया, मेरे पास जो बैठा, मुझमें जो थोड़ा डूबा, उसको अब कहीं जाने का कोई उपाय नहीं रहा है। बचना हो मुझसे तो मेरे पास आना ही नहीं चाहिए। आ भी जाओ तो बिल्कुल बहरे की तरह बैठना चाहिए। सुनना ही मत, कुछ भी मैं कहूं! मैं कुछ भी कहूं, तुम अपने भीतर दूसरी बातें चलाते रहना। और जो यहां से भागो तो फिर दुबारा मत आना!
अजित, वह समय तो गया! तुम तो डूब गए--आकंठ डूब गए। अब कोई भय नहीं है। थोड़े दिन तक ये आदतें पंख मारेंगी, फड़फड़ाएंगी, चेष्टा करेंगी। इन बेचारी आदतों को क्या पता कि तुम कितने डूब गए हो! इनको अभी भी आशा है कि शायद तुम्हें फिर पुराने ढंग पकड़ाए जा सकें। अब वे ढंग पकड़ाए नहीं जा सकते। तुम पूछते होः "क्या मैं समय के पूर्व असंभव की अपेक्षा कर रहा हूं?" नहीं, समय आ गया! और यह असंभव की अपेक्षा नहीं है। यह तो स्वाभाविक की अपेक्षा है, यहां कहां असंभव! यह अपेक्षा ही नहीं है, यह तो स्वाभाविक का स्वीकार है। "अनलहक।" इस उदघोष को अब उठने दो। "अहं-ब्रह्मास्मि।" यह रोएं-रोएं से गूंजने दो।
और तुम पूछते होः "क्या प्रतीक्षा साधना से भी कठिन साधना है?" प्रतीक्षा किस बात की! प्रतीक्षा में तो फिर यात्रा शुरू हो गई कि कोई आएगा, कि आने वाला आएगा! कोई आने को नहीं है। कोई गया ही नहीं कभी। जो जहां

है, वहीं है। ज्यों का त्यों ठहराया। प्रतीक्षा किसकी करनी है! किसी की कोई प्रतीक्षा नहीं करनी है।
यह अस्तित्व पूर्ण है। उपनिषद प्यारी उदघोषणा करते हैं इस अस्तित्व
की पूर्णता की। कहते हैंः इस पूर्ण से हम पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रहता है। इस पूर्ण में हम पूर्ण को भी जोड़ दें, तो भी पूर्ण उतना का ही उतना रहता है। पूर्ण में कुछ भेद ही नहीं पड़ता। पूर्ण और शून्य की यही खूबियां है। शून्य से कुछ भी निकाल लो, शून्य शून्य ही रहता है। शून्य में कुछ भी जोड़ दो, शून्य शून्य ही रहता है। और इसलिए पूर्ण और शून्य एक ही सत्य के दो नाम हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। वेदांत ने पूर्ण शब्द को चुना, बुद्ध ने शून्य शब्द को चुना। यह सिर्प चुनाव की बात है। यह अपनी मर्जी, अपनी मौज। जिसको जो रुचिकर लगे। लेकिन ये एक ही सत्य के दो पहलू हैं।
तुम वही हो। सतत इस स्मरण को अब संभालो! यही असली ध्यान है। समाधान मेरे उत्तर से नहीं मिलेगा। समाधान तो समाधि से मिलेगा। समाधि फलित हो सकती है।
समय के पूर्व तुम नहीं अपेक्षा कर रहे हो। समय तो सदा से आया हुआ है। इसी क्षण घटना घट सकती है। अभी, यहीं। इसको पल भर भी टालने की जरूरत नहीं है। कल की तो बात ही मत लाना। क्योंकि जो कल की बात लाया बीच में, उसने सदा के लिए टाल दिया। कल यानी कभी नहीं। कल का अर्थ होता हैः कभी नहीं।
इसलिए जिन्होंने जाना उन्होंने कहाः
काल करै सो आज कर, आज करै सौ अब्ब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करैगा कब्ब।।
मगर ज्ञानियों की बातें जब अज्ञानियों के हाथ में पहुंचती हैं तो बातें बिगड़ जाती हैं।
चंदूलाल ने जाकर अपने मनोवैज्ञानिक से पूछा कि मैं क्या करूं? कोई काम ही नहीं करता। कोई वक्त पर आता नहीं। आकर लोग टांग पसार कर बैठ जाते हैं। अखबार पढ़ते हैं, चाय पीते हैं, सिगरेट पीते हैं, गपशप उड़ाते हैं। छोटे-छोटे टरंजिस्टर रेडियो छिपा रखे हैं टेबल के भीतर, उनको सुनते हैं। चपरासी को भी सम्हाल कर रखा हुआ है कि जैसे ही मैं दफ्तर में आता हूं, वह घंटी बजा देता है। सो सब सजग हो जाते हैं, फाइलें खुल जाती हैं। मैं गया कि फाइलें बंद! काम कुछ होता ही नहीं, क्या करना है! दुकान डूबी जाती है, दिवाला करीब आ रहा है। मनोवैज्ञानिक ने कहा कि यह तख्ती हरेक की टेबल पर लगा दो।
"काल करै सो आज चकर, आज करै सो अब्ब।
पल में परलय होएगी, बहुरि करैगा कब्ब।।"
इस तख्ती का परिणाम होगा। इसको रोज-रोज देखेंगे, बार-बार देखेंगे, कुछ
तो अकल आएगी!
चंदूलाल को भी बात जंची। सुंदर तख्तियां बनवा कर सब की टेबल पर लगवा दीं; जगह-जगह दीवालों पर लगवा दीं; जहां भी जाएं, वहां लगवा दी--बाथरूम में, यहां-वहां, सब जगह, जहां भी जाओ वहीं वही तख्ती! तीन-चार दिन बाद रास्ते पर मनोवैज्ञानिक मिला, पूछाः चंदूलाल क्या हाल है?
चंदूलाल ने कहाः मत पूछो! हाल तो पूछो ही मत!! इससे ज्यादा बुरा हाल कभी भी नहीं था। तुम्हारी तख्ती... ! जी होता है कि तुम्हारी गर्दन मरोड़ दूं। मेरा भी जी हो रहा है कि--"काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब; पल में परलय होएगी, बहुरि करैगा कब्ब।" और उसने तो झपट के जो गर्दन पकड़ी मनोवैज्ञानिक की... मनोवैज्ञानिक ने कहाः भई, ठहरो तो तुम, बात क्या है, बात तो समझने दो! तख्ती में यह बात आती ही नहीं, गर्दन दबाना किसी की! तख्ती में तो नहीं आती, उसने कहा, लेकिन हालत जो हुई वह यह हुई कि मेरा मुनीम तिजोड़ी ले कर भाग गया। और नोट लिख गया कि "काल करै सो आज कर!" और लिख गया है कि महानुभाव, बहुत दिन से सोचता था कि ले भागूं; मगर सोचता था, चलेंगे, करेंगे। मगर आपकी तख्ती ने इशारा दे दिया कि बच्चू, निकलना हो तो निकल ही जाओ! "पल में परलय होएगी, बहुरि करोगे कब्ब!" और मेरा हेड क्लर्क मेरी टाइपिस्ट लड़की को ले भागा। और जाते वक्त लिख गया दीवाल पर कि कर लो अपना

सूत्र याद! भगाना तो बहुत दिन से चाहता था, मगर यही सोच कर कि क्या जल्दी पड़ी है, कभी भी कर लेंगे। और बात यहीं तक होती तो ठीक थी, वह जो मेरा चपरासी है, वह एकदम भीतर घुस आया और लगा जूते मारने! मैंने पूछा, भई, यह तू क्या करता है? उसने कहा, तख्ती क्यों लगाई? मारना तो सदा से चाहता था, कि इस चंदूलाल के बच्चे को ठिकाने लगा दूं... कौन चपरासी अपने मालिक को नहीं मारना चाहता... मगर मैं यही सोच कर कि देखेंगे, कभी देखेंगे, मौका कोई आएगा, अवसर कोई लगेगा, कोई अंधेरे-उजाले में कभी मिल जाएगा, वख्त-बेवख्त, तो ठिकाने लगा देंगे। मगर जब से तख्ती पढ़ी, तब से यह बात समझ में आई कि "पल में परलय होएगी, बहुरि करैगा कब्ब!" अरे, आए, ऐसा समय आए न आए, जो करना है कर गुजरो!
बर्बाद कर दी मेरी दुकान!
ज्ञानी कुछ कहते हैं, अज्ञानियों तक पहुंचते-पहुंचते उसके अर्थ बिल्कुल बदल जाते हैं। क्योंकि बीच में मन खड़ा है। वह अनर्थ करने में बड़ा कुशल है। मैं जब तुम से कह रहा हूंः कुछ भी नहीं करना है, तो यह मत समझ लेना कि चदरिया तान कर और सो जाना है। जब मैं कहता हूंः कुछ भी नहीं करना है, तो यह मत सोच लेना कि तुम जो कर रहे हो सो फिर ठीक ही कर रहे हो--कुछ और तो करना नहीं है। जब मैं कहता हूंः कुछ भी नहीं करना है, यह जगत तो अभिनय है, तो यह मत सोच लेना कि चोरी कर रहे हो तो तुम क्या करो! कि बेईमानी कर रहे हो तो तुम क्या करो! अरे, परमात्मा जो करवा रहा है सो कर रहे हैं! जो अभिनय उसने दिया। अब बीच में कोई अभिनय को तो बदल नहीं सकते। एक दफा पात्र को दे दिया अभिनय कि तुम यह चोरी का काम करना नाटक में, तो वह चोरी का काम ही करेगा; अब बीच में थोड़े ही बदल सकता है!
तुम्हारा मन बहुत बेईमान है। मन मात्र बेईमान है। जरा मन से सावधान रहना। मन इस तरह की तरकीबें निकाल लेता है। इस मन के कारण ही इस देश की बड़ी दुर्दशा हुई। इस देश ने बड़े गहरे सूत्र दिए हैं। लेकिन उन सूत्रों का बड़ा दुष्परिणाम हुआ। हमारे हाथ में आते-आते हीरे-जवाहरात कूड़ा-कचरा हो जाते हैं। हमारे हाथ ऐसे चमत्कारी हैं! हमारे हाथ में सोना रख दो, मिट्टी हो जाता है। मलूक ने कहाः "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम; दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।" और जितने आलसी हैं, सब ने यह सूत्र याद कर रखा है। वे कहते हैं, मलूकदास जी कह गए हैं कि "अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।" तो जब मलूकदास कह गए तो ठीक ही कह गए। क्यों करें काम? क्यों करें चाकरी? जब सबके दाता राम हैं, तो हमारी भी फिकर लेंगे। सो पूरा देश काहिल हो गया, सुस्त हो गया। कोई काम नहीं करना चाहता। काम की बात ही मत छेड़ो!
परिणाम सामने है। गहन दरिद्रता, गुलामी, भुखमरी, बीमारी। मगर हम उढ़ा देते हैं, अच्छे-अच्छे शब्दों के भीतर सारी बीमारियों को ढांक देते हैं। मैं जब तुम से कह रहा हूं कि तुम परमात्मा हो, तो इसका अर्थ अनर्थ न कर लेना। मैं तो कह रहा हूं वही, जैसा है, मगर तुम इससे कुछ और मत समझ लेना। और यह जो मैं कह रहा हूं, अजित सरस्वती से कह रहा हूं, यह भी ख्याल रखना। क्योंकि यहां बहुत तरह के लोग हैं। कोई बिल्कुल नये-नये आए हैं। वे सोचेंगे, अरे! अगर ऐसा है तो फिर क्यों ध्यान करें! अजित सरस्वती कोई दस साल के श्रम के बाद यह पूछ रहे हैं। और अथक श्रम किया है! इसलिए पूछने के हकदार हैं। और यह उत्तर मैं उन्हीं को दे रहा हूं। इसीलिए उत्तर देते वक्त मैं नाम लेता हूं प्रश्नकर्ता का ताकि तुमको स्मरण रहे कि उत्तर किसको दिया जा रहा है। नहीं तो तुम नये-नये आए होओगे, तुम सोचोगेः यह तो बहुत ही अच्छा हुआ; न करना है ध्यान, न प्रार्थना, न पूजा, न अर्चना, न आराधना; यह तो बड़ी मजे की बात कह दी! यही तो हम कर ही रहे थे। न पूजा, न ध्यान, न अर्चना। यही तो अपनी जिंदगी है। तो अपनी जिंदगी तो साधक की ही जिंदगी थी समझो! अगर यही परम सत्य है, तो खूब रही! हम परम सत्य ही जी रहे थे।
इस प्रश्न को पूछने की भी योग्यता चाहिए। और जो उत्तर मैं दे रहा हूं, उसको समझने के लिए तो बहुत योग्यता चाहिए, बहुत पात्रता चाहिए। ध्यान निखार गया हो तुम्हें, ध्यान उस जगह ले आया हो जहां यह सवाल वस्तुतः तुम्हारे प्राणों में उठे, तभी इस उत्तर का तुम्हारे लिए कोई अर्थ है। बहुत तो यहां पहली बार ही आए हैं, जिन्होंने न ध्यान किया है, न सुना है, न

समझा है। वे यह ख्याल लेकर जाएंगे कि वहां जाने से क्या सार! वे तो कहते हैं कुछ करना ही नहीं है; और हम इलाज के लिए गए थे, और चिकित्सक कहता है इलाज की कोई जरूरत ही नहीं, तो चलो किसी दूसरे चिकित्सक को खोजें; ऐसे चिकित्सक के पास क्या फायदा!
तो यहां बहुत तल के लोग हैं। तरह-तरह के लोग हैं। इसलिए ख्याल रखना, कौन सा उत्तर किसके लिए दिया जा रहा है। जिन्होंने पांच-सात वर्ष ध्यान किया हो, और जिनके लिए अब यह स्पष्ट हो गया हो कि पीछे लौटने का कोई उपाय नहीं, और उनके सामने यह सवाल खड़ा हो रहा हो कि यात्रा तो है नहीं तो अब आगे कैसे जाएं? पीछे जाना नहीं, आगे जाना नहीं, फिर कहां जाएं? कहीं नहीं जाना। पीछे और आगे के मध्य में जो बिंदु है, वर्तमान का जो क्षण है, उसमें ही थिर हो जाना है। "ज्यों का त्यों ठहराया। " वहीं से यथार्थ का अयुदय है, वहीं से परमात्मा का अनुभव है। प्रतीक्षा नहीं करनी है। कोई आने वाला नहीं! जिसे आना था, वह तुम्हारे भीतर आकर बैठा हुआ है। वही तो तुम्हारी श्वास है। वही तो तुम्हारे हृदय की धड़कन है। वही तो तुम्हारे रक्त का प्रवाह है। वही तो तुम्हारा जीवन है। तत्त्वमसि। तुम वही हो।
दूसरा प्रश्नः
ओशो,
जीवन से जो दुख मैंने पाया न होता,
शरण में तुम्हारी मैं आया न होता।
दिया बन गयीं मेरी नाकामियां ही,
जिन्हें पाकर कुछ भी तो पाया न होता। दामन में मेरे न ये फूल खिलते,
जो कांटों से दामन छिलाया न होता।
उठा दिल के तारों में संगीत मेरे, जिन्हें मैंने ऐसे तो गाया न होता। इशारे तुम्हारे कुछ समझने लगा हूं बुद्धि से जिनको समझ पाया न होता। कैसे मगर मैं तुम्हें भूल जाऊं, बिना तेरे प्रेम पाया न होता,
जा रहा हूं आज महफिल से तेरी
तुम्हीं खबर रखना भगवान मेरी
क्योंकि
मैं पंख फड़फड़ाता, नहीं उड़ हूं पाता
धारणाओं से अपनी न अभी छूट पाता
उन्हीं में अटका मैं गिर-गिर सा जाता
शरण में तुम्हारी ही विश्राम मैं पाता

कृष्ण चैतन्य! अभिशाप में भी वरदान छिपे हैं। कांटों को ठीक से देखने
की कला आ जाए, तो वे फूल हो जाते हैं। आंखें हों, तो अंधेरा रोशन हो जाता है; और मृत्यु में भी परमात्मा का द्वार दिखाई पड़ता है। यह तो हम अंधे हैं। अंधे होने के कारण हमारे लिए द्वार भी दीवाल है और फूल भी कांटे हैं। और जीवन भी मृत्यु से ज्यादा क्या है! इसलिए पहला पाठ सीखो।
तुम कहते होः
"जीवन से जो दुख मैंने पाया न होता,
शरण में तुम्हारी मैं आया न होता।"
इसलिए अब दुख को भी धन्यवाद देना सीखो। और जब दुख आए, तो मित्र की तरह
ही स्वागत करना। क्योंकि दुख के पीछे ही सुख छिपा है। काश, तुम स्वागत कर सको दुख का, तो तुम दुख को रूपांतरित करने की कीमिया सीख गए, कला सीख गए। तुम कीमियागीर हो गए, तुम जादूगर हो गए। और मैं अपने संन्यासियों को जादूगर बनाना चाहता हूं, उससे कम नहीं। यही असली जादू है। जहां दुख में भी हम सुख का गीत खोज लें; और पीड़ा में भी फूलों को खिलने का राज पा लें। यही असली जादू है कि मृत्यु भी हमारे लिए मृत्यु न रहे। हम नृत्य से, गीत से, संगीत से। समारोह से आलिंगन को तैयार रहें। मृत्यु के आलिंगन को। और तब

मृत्यु भी बदल जाती है। तब मृत्यु में भी परमात्मा का ही मुख दिखाई पड़ता है। और जो मृत्यु को भी बदल ले, उसके लिए जीवन तो महा जीवन हो ही जाएगा! जो कांटों को बदल ले, उसके लिए फूलों में पहली बार शाश्वत की गंध आएगी। क्षणभंगुर में भी उसे अनंत के ही इशारे दिखाई पड़ेंगे। क्षणभंगुर में भी उसे समयातीत की झलक, की महक, की भनक सुनाई पड़ेगी।
दिया बन गईं मेरी नाकामियां ही,
जिन्हें पाकर कुछ भी तो पाया न होता।
सीखो! इसको अतीत के संबंध में ही मत समझना। नाकामियां आती ही रहेंगी, दुख आते ही रहेंगे। आगे भी स्मरण रखना, भूल मत जाना। पीछे लौट कर तो कोई भी बुद्धिमान हो जाता है, यह ख्याल रखना। अतीत के संबंध में बुद्धिमान होना बहुत कठिन नहीं होता। इसलिए बूढ़े अक्सर बुद्धिमानी की बातें करने लगते हैं। वह कुछ कठिन बात नहीं है, बिल्कुल सरल बात है। बूढ़े होकर होशियारी की बातें करना कोई बुद्धिमत्ता का लक्षण नहीं है। सभी बूढ़े इस अर्थ में होशियार हो जाते हैं। क्योंकि देख ली जिंदगी, लौट कर अब शांति से देख सकते हैं अतीत के सब उलझाव। मगर अगर कोई इनसे कहे कि फिर से हम तुम्हें जवान बना देते हैं, तो क्या तुम सोचते हो ये वही भूलें नहीं करेंगे जो इन्होंने पहले की थीं? वही की वही भूलें करेंगे।
मुल्ला नसरुद्दीन मरणशय्या पर पड़ा था। सौ वर्ष का होकर मर रहा था। पत्रकार इकट्ठे हुए थे। लंबी उसने आयु पाई थी। एक पत्रकार ने पूछाः यद्यपि मरण के क्षण में पूछना तो नहीं चाहिए लेकिन फिर आप विदा हो जाएंगे और यह प्रश्न मेरे मन में अटका ही रहेगा; मुझे सताएगा, कांटे की तरह चुभेगा। इसलिए नहीं पूछना चाहिए फिर भी पूछता हूं। अगर आपाको दुबारा जीवन मिले तो क्या आप वही भूलें फिर से करेंगे जो आपने इस जीवन में कीं? नसरुद्दीन ने आंख खोली और उसने कहाः हां, फिर से करूंगा। थोड़ा जल्दी शुरू करूंगा, बस इतना फर्क होगा। इस बार मैंने कई भूलें कीं, मगर जरा देर से कीं।
नसरुद्दीन ठीक कह रहा है। इतने ईमानदार शायद कम बूढ़े होंगे, जो यह कहें। लेकिन अगर बूढ़ा भी अपने मन में सोचे कि अगर मुझे जवानी अभी कोई दे दे, तो मैं क्या करूंगा? वही भूलें करोगे जो तुमने की थीं।
अतीत के संबंध में बुद्धिमान होना आसान है। बुद्धिमानी होनी चाहिए वर्तमान के संबंध में। दूसरे को सलाह देने से सरल काम इस दुनिया में नहीं है।
दुनिया में दो चीजें हैं, ख्याल रखो। एक, दूसरे को सलाह देना सबसे सरल काम और दूसरे की सलाह मानना सबसे कठिन काम इसलिए सलाहें सबसे ज्यादा दी जाती है दुनिया में--मुफ्त देने को लोग तैयार हैं--और कोई नहीं लेता। लाख तुम दो, कोई नहीं लेता। कारण क्या होगा? लोग इतने मुक्त-दूसरा दान करते हैं सलाहों का, फिर भी कोई लेने वाला नहीं मिलता! जिनको देते हैं, वे भी बचते हैं। वे भी कहते हैं कि अपनी सलाह अपने पास रखो, हमें नहीं लेनी! और उसका कारण है। तुम जो सलाह दे रहे हो, वह तो तुम्हारे अतीत से आ रही है और जिसको तुम दे रहे हो, उसको वर्तमान में उसे साधनी है। बस, वहीं फर्क पड़ रहा है। वर्तमान में बुद्धिमान होना बड़ी कठिन बात है। उसके लिए बड़ी प्रखर, बड़ी तेजस्विता चाहिए, ध्यान का निखार चाहिए।
कृष्ण चैतन्य, अब तुम्हें समझ में आ रहा है कि जो नाकामियां तुम्हें मिलीं, असफलताएं तुम्हें मिलीं, वे तुम्हें यहां ले आयीं। तुम आज धन्यवाद दे सकते हो। मगर आज अगर कोई असफलता मिलेगी, तो तुम फिर भूल जाओगे। मैं इसलिए कह रहा हूं, क्योंकि यही मन का स्वभाव है। वह भूलने में बड़ा ही कुशल है। फिर भूल जाओगे; फिर वही भूल करोगे।
याद रखना इसको, अगर आज कोई असफलता मिले, तो समझे रखनाः आती होगी कोई सफलता पीछे। असफलता का ही आवरण है। और आज जीवन पर कोई दुर्दिन टूट पड़े, तो घबड़ाना मत! जल्दी ही बादल छंटेंगे और सूरज निकलेगा।
काश! दुख की घड़ी में तुम स्मरण रख सको; असफलता की घड़ी में भूल न जाओ, बेहोश न हो जाओ, तो तुम्हारे जीवन के लिए एक बड़ी कुंजी मिल गई।
तुम कहते होः

"दामन में मेरे न ये फूल खिलते,
जो कांटों से दामन छिलाया न होता।"
अब जब कोई कांटा तुम्हारे दामन में चुभ जाए, तो गाली मत देना; धन्यवाद देना! दे सकोगे धन्यवाद? उस समय स्मरण रख सकोगे इस सत्य को? रख सको स्मरण तो तुम्हारा जीवन रूपांतरित हो गया; तुम नये होकर जा रहे हो फिर! तुम दरिद्र आए थे और समृद्ध होकर जा रहे हो। भिखारी की तरह आए थे और सम्राट होकर जा रहे हो। इतना ही सा तो फर्क है भिखारी और सम्राट में!
उठा दिल के तारों में संगीत मेरे,
जिन्हें मैंने ऐसे तो गाया न होता।
इस संबंध में कुछ बात ख्याल रख लेनी जरूरी है। जरूर गुरु की सान्निध्य में शिष्य की हृदय-तंत्री पर गीत उठते हैं, संगीत जगता है। ऐसा जैसा कि वह सोच भी नहीं सकता कि वह गा सकता था! लेकिन तुम्हें याद दिला दूंः वह गीत तुम्हारा ही है; वह संगीत तुम्हारा ही है। वह तुम्हारे ही सितार में सोया पड़ा था। गुरु तुम्हें गीत नहीं दे सकता, संगीत नहीं दे सकता; गुरु तुम्हारे हृदय की वीणा को भी अपनी अंगुलियों से नहीं छेड़ सकताः गुरु तो केवल इशारे कर सकता है। तुम्हारी अंगुलियों को ही छेड़ना पड़ेगा संगीत। तुम्हारे ही तार हैं, तुम्हारी ही अंगुलियां हैं, तुम्हारा ही संगीत है। बुद्ध ने कहा हैः बुद्ध तो केवल मार्ग दिखाते हैं, चलना तुम्हें है।
लेकिन तुम्हारी बात मैं समझता हूं। जब पहली दफा संगीत जगता है तो ऐसा
ही लगता है--
उठा दिल के तारों में संगीत मेरे,
जिन्हें मैंने ऐसे तो गाया न होता।
--कि मैं तो कभी ऐसा नहीं गा सकता था। यह कभी मुझसे तो नहीं हो सकता था। लेकिन मैं तुम्हें याद दिलाऊं, यह जो हो रहा है, तुम्हारा ही है। तुम्हीं गा रहे हो। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। हां, लेकिन अपरिचित पड़ा था। तुम्हारा ही हीरा तुम्हारे ही भीतर कूड़े-करकट में दबा पड़ा था। मैंने सिर्प इशारा किया है। जो तुमने पाया है, वह तुम्हारा है। क्योंकि वही पाया जा सकता है जो तुम्हारा है। मेरा गीत, तुम यहां से चले जाओगे, यहीं छूट जाएगा। मेरी गंध, तुम यहां से चले जाओगे, यहीं छूट जाएगी।
इसलिए ऐसी गंध तुम्हें नहीं देता, जो छूट जाए। और ऐसा गीत तुम्हें नहीं देता, जो खो जाए। चाहता हूं कि तुम्हें सिर्प अपने सितार को बजाने की कला आ जाए। तुम्हें बोध देता हूं कि तुम जहां भी होओ, अपने सितार को छेड़ सको। वहीं यह गीत उठेगा। और जैसे-जैसे तुम कुशल होते जाओगे, इस गीत में और भी गरिमा, महिमा बढ़ती जाएगी। ये गीत और भी समृद्ध होता जाएगा। इस गीत में और नये-नये आयाम जुड़ते जाएंगे। यह संगीत और सुमधुर होगा; यह संगीत और भी समाधि के करीब पहुंचने लगेगा।
लेकिन शिष्य की तरफ से यह भाव स्वाभाविक है। अनुग्रह का भाव। लेकिन गुरु की तरफ से यह याद दिला देनी भी उतनी ही जरूरी है।
शेष तुम जीवन पथ पर कौन
किसी के जड़ पद चिन्ह समान?
समय की सिकता पर मिट रहे
शक्ति से उदासीन अनजान।

कौन सा टूटा वह सुख स्वप्न
कि जिसकी सुधि बन अश्रुप्रवाह प्रकृति के भी प्रभात में आज तुम्हारी रोके बैठी राह?

कौन सी मुरझाई वह आस
शून्य पृष्ठों पर जो सोच्छ्वास निराशा की बन कर लेखनी
लिख रही जन्म-मरण-इतिहास?

लक्ष्य वह कौन, दूर जो फेंक तुम्हारे कर्तव्यों का भार डाल पग में विराग का फंद
तुम्हें ले आया है इस पार? कूक सी कोकिल की कल मंद
सुनी जब मानव ने वह तान

हृदय में गूंज उठा संगीत चेतना बिखर बन गई गान।
कुतूहल अंजन आंज विमुग्ध दृष्टि विस्फारित कर पल एक देखता ही मानव रह गया
बना आकर्षण प्रणय-विवेक।

नील अंचल परिवेष्टित अरुण शुभ्र पारद-सा ज्योतित गात श्याम झिलमिल घन घूंघट डाल आ रही हो ज्यों उषा प्रभात।

एक लेकर शीतल निश्वास

कहा मानव ने "हे छविमान!
कौन हूं, क्या बतलाऊं तुम्हें स्वयं से हूं मैं चिर अनजान।
तुम अपरिचित आए हो मेरे पास...
एक लेकर शीतल निश्वास
कहा मानव ने "हे छविमान!
कौन हूं, क्या बतलाऊं तुम्हें
स्वयं से हूं मैं चिर अनजान।
तुम अपरिचित आते हो। तुम हो तो, लेकिन परिचित नहीं हो। तुम्हें प्रत्यभिज्ञा नहीं कि तुम कौन हो। तुम्हारे हृदय में वीणा पड़ी है, पर तुम्हें विस्मरण हो गया है। बहुत बार ऐसा हो जाता है न! किसी को देखते हो, लगता है जानता हूं, पहचानता हूं; नाम भी आ जाता है जबान पर, कहते हो कि बिल्कुल जबान पर रखा है, जबान की नोक पर रखा है--और फिर भी याद नहीं आता। याद है, इतना भी याद है, फिर भी याद नहीं आता। चेहरा पहचाना लगता है, नाम जाना-माना लगता है, लेकिन कहीं कोई बीच में पत्थर की तरह अटका है जो स्मृति को पहुंचने नहीं देता तुम तक। तुम्हारे बोध और तुम्हारे हृदय के बीच में कोई थोड़ी सी चीज बाधा बन रही है।
सदगुरु का कुल काम इतना हैः थोड़े से कंकड़-पत्थर हटा दे, थोड़ी खुदाई कर दे, ताकि तुम जलस्रोत तक पहुंच सको। यह खुदाई कठिन भी है और कभी-कभी शिष्य को दुखद भी लगती है। क्योंकि जिन पत्थरों को उसने हीरे समझ रखा है, सद्गुरू उन्हें उठा कर फेंकने लगता है, पत्थरों की तरह। और वह समझता था हीरे हैं; उन्हें सजा के, संवार के रखा था; बचा कर रखा था, कभी वक्त-बेवक्त काम पड़ेंगे।
पश्चिम के बहुत बड़े मनोवैज्ञानक कार्ल गुस्ताव जुंग ने एक नये सिद्धांत का अनुमोदन किया है। अनुमोदन इसलिए कहता हूं, आविष्कार नहीं, क्योंकि वह सिद्धांत कुछ नया नहीं है। सदियों-सदियों से सत्संग में उसी सिद्धांत का उपयोग होता रहा है। लेकिन पश्चिम में नया है। जुंग ने उसे नाम दिया हैः लॉ ऑफ सिन्क्रानिसिटी। विज्ञान कार्य-कारण के सिद्धांत पर खड़ा है। सौ डिग्री तक पानी को गर्म करो, यह कारण; सौ डिग्री पर पानी भाप हो जाता, यह कार्य। अगर कारण मौजूद हो तो कार्य होकर ही रहेगा। इसमें कोई विघ्न-बाधा नहीं पड़ सकती। निरपवाद रूप से। ऐसा नहीं कि पानी कभी अट्ठानबे

डिग्री पर गर्म होकर भाप बन जाए और कभी सत्तानबे पर, कभी सौ पर। यह पानी की कोई अपने ही भाव की बात नहीं है। पानी बिल्कुल नियति-आबद्ध है। परवश है। सौ डिग्री पर उसे भाप बनना ही होगा। यह नहीं कह सकता कि आज जरा मेरा मन नहीं। कि आज जरा मुझे फ्लू हो गया है। कि आज मैं छुट्टी पर हूं। कि आज छुट्टी के दिन काम नहीं करूंगा। कि तुम करते रहो कितना ही गरम, मैं भाप होने वाला नहीं।
पानी परवश है।
विज्ञान परतंत्रता के इसी नियम पर खड़ा हुआ है। इसलिए विज्ञान किसी तरह की स्वतंत्रता को स्वीकार नहीं करता; वह कहता है, मनुष्य भी ऐसा ही परतंत्र है। इसलिए किसी आत्मा-परमात्मा को भी स्वीकार नहीं कर सकता। क्योंकि आत्मा और परमात्मा स्वतंत्रता की उदघोषणाएं हैं। और विज्ञान का आधार ही परतंत्रता है। विज्ञान मानता हैः सब नियति-आबद्ध है। कहीं कोई अपवाद नहीं होता।
यह जो जुंग ने सिन्क्रानिसिटी का नियम आविष्कृत किया, यह मनुष्य की स्वतंत्रता की स्वीकृति है इसमें। यह सत्संग में तो हम सदा से मानते रहे। सत्संग का अर्थ यही होता हैः सिनक्रानिसिटी। सत्संग का अर्थ होता हैः सदगुरु के भीतर कुछ घटा है। अगर तुम सदगुरु के पास बैठ सको--सत्संग का अर्थ हैः पास बैठना। उपनिषद का भी अर्थ हैः पास बैठना। उपवास का भी अर्थ हैः पास बैठना। उपासना का भी अर्थ हैः पास बैठना। इन सब का एक ही अर्थ है--अगर तुम सदगुरु के पास बैठ सको, जिसके भीतर घटना घट गई है, जिसको अनुभव हो गया है कि मैं कौन हूं, तो उसकी मौजूदगी में अगर तुम अपने द्वार-दरवाजे खुले छोड़ दो--जिसको हम श्रद्धा कहते हैं--द्वार-दरवाजे खुले छोड़ना। संदेह का अर्थ हैः ताले डाल कर बैठे रहना। संदेह का अर्थ हैः डरे-डरे बैठे रहना कि कहीं कुछ छूट न जाए, कोई संपदा लुट न जाए। है कुछ भी पास नहीं मगर कुछ लोग बड़े अजीब होते हैं!
एक बार किसी कारणवश दिल्ली में एक राजनैतिक सम्मेलन में एक लूले, एक लंगड़े, एक अंधे, एक बहरे और एक नंगे की मुलाकात आपस में हो गई। और हो भी क्यों न! ऐसे लोग इकट्ठे दिल्ली के अतिरिक्त और कहां मिल सकते हैं! दिल्ली तो अजब तमाशा है! वहां तो तरह-तरह के लोग। तो कुछ आश्चर्य नहीं कि ये सारे लोग वहां मिल गए हों। दिल्ली तो मेला है। पांचों किसी जंगल के रास्ते से वापस अपने-अपने घरों की ओर लौट रहे थे कि तभी उन से बहरा बोला कि दोस्तो, सुनते हो, दूर यह घोड़ों के टापों की आवाज? लगता है डाकू दलों ने हमें घेर लिया है। ये बजते हुए बिगुल, ये शोरगुल! उसकी बात सुन कर लंगड़े ने कहा, अच्छा हो हम कहीं आस-पास भाग कर छिप जाएं। नहीं तो आज तो मौत निश्चित समझो। इस पर लूले ने शेर की तरह गरजते हुए कहा, अरे कायरो, भागने की बात करते हो! और मैं जो हूं! आज तो दो-दो हाथ करके ही रहूंगा। एक-एक डाकू को आज छठी का दूध न याद दिला दिया तो मेरा नाम गीदड़ सिंह नहीं! इन सबकी बातें सुन-सुनकर नंगा बोलाः अरे जाहिलो, लगता है तुम ऐसे ही बकवास करते रहोगे। अरे, कुछ करो भी! क्या मुझे लुटवा देने का इरादा है?
लोग ऐसे अपने को बंद रखते हैं कि कहीं कोई लूट न ले! है कुछ भी नहीं पास, खिड़की, द्वार-दरवाजे पर पहरा लगाकर रखते हैं कि कोई संपदा न लुट जाए। सत्संग का अर्थ होता हैः खिड़की, द्वार-दरवाजे खुले छोड़ दिए कि मेरे पास तो लुटने को कुछ है नहीं। आ सकेगा कुछ तो भीतर आ आएगा--सूरज की रोशनी, ताजी हवाएं, कि वर्षा का एक झोंका, कि पवन की एक लहर--मेरे पास लुटने को तो कुछ है नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन के घर में एक चोर घुसा। वह चोर बड़ा सम्हल के चल रहा है--रात अंधेरी--और टटोल रहा है। मुल्ला एकदम से उठा, जल्दी से लालटेन जलाई और चोर के पीछे खड़ा हो गया। उसको लालटेन बताने लगा। चोर भी बड़ा घबड़ाया! चोर ने भी बहुत चोरी की थी जिंदगी में, मगर ऐसा कभी नहीं देखा था कि घर का मालिक एक लालटेन लेकर और लालटेन बताए! चोर ने कहा, क्या करते हो, जी? थोड़ा डरा भी कि आदमी पागल है, या होश में है? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि क्या करता हूं! अरे, तीस साल हो गए इस घर में मुझे रहते, दिन के भरे उजाले में तो कुछ

मिला नहीं, तू रात के अंधेरे में खोज रहा है! अरे भइया, मैं लालटेन जला लाया! अगर मुछ मिल जाए तो आधा-आधा बांट लेंगे। हम तेरे साथ हैं; घबड़ा मत! है कुछ भी नहीं, मगर लोग बड़े शंकित, बड़े सावधान, बड़े सचेत इस मामले में
कि कहीं कोई विचार, कहीं कोई विचार की तरंग भीतर प्रवेश न कर जाए। सत्संग का अर्थ होता हैः आतुर, कि कोई तरंग प्रवेश कर जाए। सत्संग का अर्थ होता हैः पीने को उत्सुक कि कोई बूंदा-बांदी हो जाए। और इतनी श्रद्धा से खुला हुआ हृदय जब किसी जाग्रतपुरुष के पास बैठता है, तो उसकी जागृति की तरंगें उसको आंदोलित करने लगती हैं। उसके भीतर बजती वीणा उसे याद दिलाने लगती है अपने भीतर अब तक अनबजी वीणा की। उसके भीतर जगा प्रकाश उसे इस होश से भरने लगता है कि अरे, मैं भी तो ऐसा ही हड्डी-मांस-मज्जा का बना हूं। तो मेरे भीतर भी कहीं प्रकाश पड़ा होगा। और एक बार यह याद आनी शुरू हो जाए तो बहुत मुश्किल नहीं। प्रकाश को खोज लेना मुश्किल नहीं है--दिया जल ही रहा है, "बिन बाती बिन तेल।" और एक बार तुम संगीत सुन लो किसी के व्यक्तित्व का, तो तुम्हारे भीतर का संगीत भी तत्क्षण तुम्हें पुकार देने लगता है कि कब से पड़ा हूं, कब से पुकार रहा हूं।
तुमने देखा नहीं, कोई नर्तक नाचता हो तो तुम्हारे पैर भी थाप देने लगते हैं। यह कोई कार्य-कारण का नियम नहीं है, ख्याल रखना। अनिवार्य नहीं है। अगर यहां कोई नर्तक नाचे, तो तुम्हारे सब के पैर थाप देंगे, ऐसा नहीं है; यह कोई वैज्ञानिक नियम नहीं है; यह अनिवार्य नहीं है, जैसे सौ डिग्री पर पानी गरम होता है, कि नाचने वाला नाचा कि सभी के पैर थाप देने लगे; ऐसा कुछ नहीं है। इसमें एक स्वतंत्रता है। तुम अगर राजी हो जाओ, अगर नाचने वाले से तुम्हारा तालमेल बैठ जाए, संगति बैठ जाए तो तुम्हारे पैर थाप देने लगेंगे। कोई संगीतज्ञ गीत गा रहा हो, तो तुम कुर्सी पर ही अपने हाथ से थाप देने लगते हो, ताल देने लगते हो। चाहे न तुम्हें तबला बजाना आता हो, चाहे न तुम्हें ताल-स्वर का कोई ज्ञान हो, मगर कुछ तुम्हारे भीतर होने लगता है। वही सत्संग में घटता है।
सत्संग का अर्थ केवल इतना ही है कि जो सदगुरु के भीतर घट रहा है, तुम उसके लिए अंगीकार करने को राजी हो। अनिवार्यता नहीं है। इसलिए ऐसा भी हो सकता है कोई दूसरा भी तुम्हारे पास ही आकर बैठा हो, वह कहे, भई, हमें तो कुछ भी नहीं हुआ! तो उससे कुछ विवाद मत करना। वह खुला न रहा होगा। वह बंद रहा होगा। उसने श्रद्धा से अपने को तरंगित न किया होगा। उसने खिड़कियां-द्वार-दरवाजे खोले न होंगे। सूरज द्वार पर आकर खड़ा रहा होगा और वह दरवाजा बंद किए भीतर बैठा रहा होगा। संदेह दरवाजे बंद करवा देता है। श्रद्धा दरवाजे खोल देती है।
दरवाजा खोलने के लिए कुछ भरोसा चाहिए। इस बात का भरोसा चाहिए कि लुट नहीं जाऊंगा। श्रद्धा करने के लिए कुछ साहस चाहिए कि चलो लुट भी गए तो कोई हर्ज नहीं, लुटने को है भी क्या! कोई लूट ही ले, तो यह भी सम्मान समझो। कुछ था तो नहीं लूटने को, लेकिन फिर भी किसी ने इस योग्य माना कि लूटने आया। यह कोई कम सम्मान है!
झेन फकीर रिंझाई के घर एक चोर घुसा। घर में कुछ था नहीं। रिंझाई एक कंबल ओढ़े सो रहा था। जल्दी से उठा और कंबल चोर को दिया और कहा, भइया, नाहीं मत करना! तू कंबल ले जा; और देख, ऐसे मत आया कर। हम गरीब आदमी हैं, तूने सम्मान दिया। आज दिल ही दिल में हमने भी सोचा कि वाह! तो हम भी कुछ हैं! तुझे देखकर हमको भी भरोसा आया कि हम बिल्कुल दीन-दरिद्र नहीं हैं। हां, चोर हमारे घर भी आते हैं; कोई सम्राटों के घर ही नहीं जाते।
तूने हमें सम्राट का गौरव दिया। हमारी तरफ से यह छोटी भेंट। और हमारे पास कुछ भी नहीं है। चोर थोड़ा डरा भी। क्योंकि रिंझाई बिल्कुल नंगा था, वह सिर्प कंबल ही लपेटा था, वह कंबल ही उसके पास था--वही उसकी ओढनी, वही उसका बिछौना, वही उसका वस्त्र। दिन में उसको ही ओढ़ कर भीख मांग लाता था; रात उसको ही आधा ओढ़ लेता, आधा बिछा लेता; चोर को भी लगा कि लेना कि नहीं लेना! रिंझाई ने कहा कि देख, अगर मना करेगा, बहुत दुख होगा! कि आया इतनी दूर, और हम ऐसे गरीब, और हम ऐसे गए-बीते कि कुछ भी न दे सके! और आगे के लिए एक बात का

वचन दे कि अब दुबारा कभी आना हो, जरा दो-तीन दिन पहले खबर कर देना, मांग-तूंग के कुछ न कुछ इकट्ठा कर लेंगे, आएगा तो खाली हाथ नहीं जाएगा।
यह तुम रिंझाई का भाव देखते हो! रिंखाई कहता हैः तूने हमें सम्मान दिया।
है क्या तुम्हारे पास जो तुम लुट जाओ! या तुम लूटने योग्य समझे जाओ! मगर पहरे लगा रखे हैं। अपनी रिक्तता पर, संदेह के पहरे! सत्संग नहीं हो पाता।
सत्संग अनिवार्य नहीं है। सदगुरु के पास भी तुम चूक सकते हो। बुद्ध
और जीसस और कृष्ण के पास से भी यूं ही निकल जा सकते हो कि तुम्हारे भीतर कुछ भी न हो। और तुम लोगों से कहोगे भी कि भई, हमारे भीतर कुछ नहीं हुआ! तो तुम जरूर सम्मोहित हो गए हो। कि तुम किस पागलपन में पड़े हो, हमें तो कुछ भी नहीं हुआ! हम भी गए थे, हम तो यूं ही लौट आए; हमें तो कुछ बात जंची नहीं। तुम होश में हो? तुम बेहोशी में हो! तुम किस चक्कर में पड़े हो?
अगर कोई तुमसे ऐसा कहे तो उस पर नाराज भी मत होना। उसका भी क्या कसूर? उसकी अगर कोई भ्रांति है तो इतनी ही कि उसने अपने को बंद रखा। और सत्संग कोई कार्य-कारण का नियम नहीं है। सत्संग तो सिन्क्रानिसिटी है। इसमें तो अगर तुम खोलो अपने को, तो तुम्हारे भीतर कुछ बजना शुरू हो जाए। लेकिन ख्याल रखना, जो बजता है, वह तुम्हारा ही है। वह सदगुरु तो केवल निमित्त है। जिसको वैज्ञानिक कहते हैंः कैटेलिटिक एजेंट। निमित्त। उसकी मौजूदगी में हुआ, बस इतना। कहीं और भी हो सकता था। ऐसा भी हो सकता था कि तुम जंगल में बैठे होते और दूर-दूर से कोयल की आवाज आती और काश उसको भी तुमने श्रद्धा से सुना होता, तो वहां भी होता। तुमने अगर खिलते फूलों को श्रद्धा से देखा होता, वहां भी होता। तुमने सागर का गर्जन अगर श्रद्धा से सुना होता, तो वहां भी होता।
मगर तुम्हारी बात भी मैं स्वीकार करता हूं, कृष्ण चैतन्य! शिष्य की तरफ से अनुग्रह का भाव स्वाभाविक है।
तुम कहते होः
"उठा दिल के तारों में संगीत मेरे,
जिन्हें मैंने ऐसे तो गाया न होता।"
ठीक है तुम्हारा कहना तुम्हारी तरफ से! क्योंकि इतना नया, इतना अनहोना, इतना अपरिचित, कैसे तुम भरोसा करो कि तुम गा सकते थे अपने से! लेकिन मैं तुमसे कहता हूंः तुम गा सकते थे। इसीलिए गा सके हो। यह हो सकता था, इसीलिए हुआ है। ये फूल तुम में खिला है, क्योंकि तुम्हारे बीज में दबा पड़ा था। अन्यथा लाख माली उपाय करे, माली लाख उपाय करे तो भी तो नीम के बीज में से आम के फल नहीं लगा सकता।
सदगुरु वही कर सकता है जो माली कर रहा है। तुम्हारे बीज को मौका दे सकता, अवसर दे सकता है। ठीक-ठीक तरंग दे सकता है। ठीक-ठीक ऊर्जाक्षेत्र दे सकता है। मगर जो फूल खिलेगा, वह तुम्हारा ही है। कहते हो तुमः
इशारे तुम्हारे कुछ समझाने लगा हूं,
बुद्धि से जिनको समझ पाया न होता।
यह ठीक है बात! बुद्धि से तुम कुछ भी न समझ पाए होते। कुछ बातें हैं जो बुद्धि से समझी जाती हैं--बाहर की बातें--और कुछ बातें हैं जिनमें बुद्धि बाधा है--भीतर की बातें।
तुम समझ पाए थोड़ा-बहुत--शुरुआत हो गई--क्योंकि तुम बुद्धि को हटा कर रख सके, तुम संन्यास में छलांग ले सके। संन्यास में छलांग लेना बुद्धि को हटाना है, एक तरफ रख देना है। संन्यास एक तरह का पागलपन है, क्योंकि एक तरह का प्रेम है। सभी प्रेम पागल होते हैं। संन्यास एक तरह का दीवानापन है। मगर दीवानों ने इस जगत का बड़ा उपकार किया है। काश, दीवाने न होते तो यह जगत बड़ा दरिद्र रह जाता! अगर दीवाने न होते तो इस जगत में जो भी सुंदर है, घटता ही नहीं। अगर परवाने न होते तो इस जगत में प्रकाश की महिमा को गाने वाला ही कोई न होता। शमा जलती रहती और परवाने आते ही नहीं। परवाने ही न होते तो शमा की क्या गरिमा थी, क्या गौरव था? दीवानों का बड़ा उपकार है--बुद्धिमानों पर!

क्योंकि बुद्धिमान तो बुद्धू ही बने रहते अगर दीवाने न होते! बुद्धिमान तो बुद्धू ही हैं, सिर्प उनको भ्रांति है बुद्धिमान होने की!
एक और भी बुद्धिमत्ता है, जो बुद्धि से बहुत भिन्न है। वह बुद्धिमत्ता प्रेम की है।
तुम प्रेम में डूबे, तो कुछ-कुछ समझ में आना शुरू हुआ। और-और डूबो और-
और समझ में आएगा। इतने डूब जाओ कि बचो ही न, तो सब समझ में आ जाएगा। तुम कहते होः
कैसे मगर मैं तुम्हें भूल जाऊं,
बिना तेरे प्रेम पाया न होता।
जब तुम्हीं न रहोगे, जब तुम बिल्कुल ही डूब जाओगे प्रेम में, तो स्वभावतः जहां मैं गया वहां तू गया। शिष्य की पूर्णता तो तभी है जब शिष्य मिट जाए। लेकिन जब शिष्य मिट जाता है तो गुरु भी मिट जाता है। कौन बचेगा जो गुरु को गुरु कहे? "मैं" और "तू" साथ-साथ जीते हैं। हां, तुम्हारे भुलाने से तुम न भुला सकोगे! मगर अगर तुम मिट गए, तो तुम भी गए, गुरु भी गया। और जहां न शिष्य है न गुरु है, वहीं परमात्मा है। यह भी द्वैत है आखरी द्वैत। और सब द्वैत घुट जाते। यह अंतिम द्वैत है। यह द्वैत और द्वैतों को छुड़ा देते हैं, फिर अंत में यह द्वैत भी छूट जाता है। जैसे एक कांटे से हम दूसरा कांटा निकाल लेते हैं, फिर दोनों कांटों को फेंक देते हैं। शिष्य और गुरु का द्वैत एक कांटा है, जो तुम्हारे सब कांटों को निकाल लेगा। और अंत में जब सब कांटे निकल गए, इसका क्या करोगे? उन्हीं कांटों के साथ इसे भी फेंक देना है। तुम भी नहीं बचोगे, प्रेम इतना डुबाएगा, प्रेम इतना गलाएगा, उस घड़ी गुरु भी भूल जाएगा। उस घड़ी कौन-कौन है, साफ नहीं रह जाता। कौन शिष्य है, कौन गुरु है, यह भेद नहीं रह जाता। उस अभेद की अवस्था को ही पाना है। उसके पहले समझना कुछ कमी, कुछ न कुछ कमी रह गई है।
और घबड़ाओ मत! तुम कहते होः
जा रहा हूं आज महफिल से तेरी
इस महफिल से अब कहीं जा नहीं सकते। अब जहां रहोगे, यह महफिल जारी रहेगी। यह महफिल कुछ इस स्थान में आबद्ध नहीं है। जहां भी मुझे प्रेम करने वाले हैं, वहीं यह महफिल है। और जहां दो दीवाने मिल बैठेंगे, वहीं यह महफिल शुरू हो जाएगी, वहीं यह गीत उठेगा, वहीं यह संगीत उठेगा। इसकी चिंता मत करो! कहते होः

तुम्हीं खबर रखना भगवान मेरी
क्योंकि
मैं पंख फड़फड़ाता, नहीं उड़ हूं पाता
धारणाओं से अपनी न अभी छूट पाता
उन्हीं में अटका मैं गिर-गिर-सा जाता
शरण में तुम्हारी ही मैं विश्राम पाता।
बस शरण-भाव पैदा हो जाए, शेष सब अपने से हो जाएगा। शरणागति! बुद्धं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि।
किसी सदगुरु की शरण जाओ! सदगुरु के सत्संग की शरण जाओ; संघ। सदगुरु के भीतर जो जलता हुआ दीया है, धर्म, उसकी शरण जाओ। फिर चिंता छोड़ो; फिर सब अपने से हो जाएगा। तुम तो अपने को पूरा का पूरा चढ़ा दो। "होनी होय सो होय"। फिर जो होना है, होगा, होता रहेगा। और जब तुम नहीं हो, तब जो भी होता है, वह शुभ है।

अंतिम प्रश्नः ओशो, मैं विवाह करना चाहता हूं। आप क्या कहते हैं? क्या विवाह में कोई उपादेयता भी है?

चंद्रकांत! विवाह में उपादेयता बड़ी है। सब से बड़ी उपादेयता तो यह है
कि अगर पत्नी रही, तो वह तुम्हारी दूसरी स्त्रियों से रक्षा करेगी। नहीं तो रक्षा कौन करेगा? पगला जाओगे! पत्नी रक्षक है। न देखने देगी इधर, न उधर; न झांकने देगी इधर, न उधर। चौबीस घंटा पहरा रखेगी। सोते में भी हिसाब

रखेगी कि क्या सपना देख रहे हो। नहीं तो तुम्हारी क्या हैसियत है! इतनी स्त्रियां हैं संसार में, कैसे बचोगे? बुरे पिटोगे। इसलिए तो बुद्धिमान नियम बना गए कि एक पत्नी तो कम से कम होनी ही चाहिए। मगर ख्याल रखना, ज्यादा दवा भी मत ले लेना। थोड़ी दवा तो काम करती है, ज्यादा दवा नुकसान पहुंचा देती है। एक पत्नी की तो उपादेयता है, लेकिन दो में खतरा है। तीन में फांसी लग जाएगी।
एक चोर एक घर में चोरी करने घुसा और पकड़ा गया। रंगे हाथों पकड़ा गया। मजिस्टेट ने कहाः तुम्हें कुछ अपने बचाव में कहना है? उसने कहाः हुजूर, सिर्प एक बात कहनी है, और सब सजा देना, मगर दो स्त्रियों से विवाह करने की सजा मत देना। मजिस्टेट ने कहा कि बहुत मैंने लोगों को सजाएं दीं, ... इस तरह से तू क्यों डरा हुआ है! उसने कहा कि अगर दो स्त्रियां न होतीं, इस आदमी के, तो मैं पहली तो बात फंसता ही नहीं आज! और इसकी जो मैंने गति देखी... ! पहले मुझे नरक पर भरोसा ही नहीं था... ! इसकी एक पत्नी नीचे रहती है, दूसरी पत्नी ऊपर रहती है, बीच में जीना है। एक पत्नी इसको नीचे खींचती थी और एक पत्नी इसको ऊपर खींचती थी; इसकी ऐसी खींचा-तान हो रही थी कि मैं तमाशा देखने में लग गया; मैं भूल ही गया कि अपन किसलिए आए हैं! और ऐसे ही ऐसे सुबह हो गई। आप और जो सजा हो दे देना, मगर यह दो पत्नियों की सजा मत देना!
तो एक पत्नी की उपादेयता औरों से बचाएगी। मगर यह मत समझ लेना कि एक की
जब इतनी उपादेयता है, तो दो की कितनी, तीन की कितनी, चार की कितनी! ऐसा गणित मत बिठाना; जिंदगी गणित से नहीं चलती।
चंदूलाल को उसके पुत्र ने एक पैकेट और एक पत्र भेजा था इंग्लैंड से। पत्र में लिखा था कि इस पैकेट में वे गोलियां हैं, जिन्हें खाने से व्यक्ति की उम्र बीस साल कम हो जाती है।
चंदूलाल की उम्र उन दिनों पैंतालीस और उसकी पत्नी की उम्र चालीस साल थी।
कुछ समय बाद चंदूलाल का बेटा जब विदेश से लौटा तो उसने देखा कि उसकी मां गोद में एक पांच वर्षीय लड़के को लिए बैठी हुई है। उसने बड़े आश्चर्य से पूछा, मम्मी, यह कौन है? तुमने लिखा ही नहीं कि तुम्हें एक लड़का और हो गया है।
मम्मी बोलीः अरे नालायक, चुप रह! ये तेरे पिताजी हैं, और गलती से एक गोली के बजाय दो गोली खा गए हैं।
सो चंद्रकांत, विवाह करना चाहते हो तो भइया करो! बिना ग 167े में गिरे, अनुभव किए बिना कोई उपाय भी नहीं है। और विवाह के बिना दुनिया में संन्यास होता ही नहीं--इतना ख्याल रखना! इसकी बड़ी उपादेयता है! विवाह ही है जिसने संन्यास को जन्म दिया। न होती यशोधरा, गौतम बुद्ध का पता न चलता। सारा श्रेय जाता है यशोधरा को। अब तुम्हारा दिल ही हो गया है, तो रोकना उचित भी नहीं। रोकने से तुम रुकोगे भी नहीं। क्योंकि यह मामले किसी की सलाहों से नहीं चलते। शादी के पहले एक दृश्य होता है, जो खूब लुभावना होता है और शादी के बाद दृश्य बिल्कुल बदल जाता है। मगर वह शादी के बाद का दृश्य आता शारी के बाद में ही है! उसका कोई पहले आने का उपाय नहीं है।
शादी से पहलेः
जी चाहता है, तुम्हें यों
देखता ही रहूं मैं अपलक
मेरे जीने का सहारा है
बस, तुम्हारी एक झलक
तुम्हारे अधरों की मादक मधुरता जीवन रस है मेरे लिए
तुम्हारे कपोलों की मृदु लालिमा ऋतु पावस है मेरे लिए
चंचल चितवन, चपल चक्षु
ज्यों चांदनी हो चकोर के लिए या कि मस्त अलि, कली का
मादक मधुर पराग निरंतर पिए

खुलेखुले चिकुर
फैले तुम्हारे मुख पर,
जैसे व्योम में हो श्यामल घटा
अवगुंठन की आड़ में
अर्द्ध छिपा अल्हड़ मुखड़ा
जैसे मेघ आड़ में हो चंद्र छटा
तुम्हारे मुख से मुखरित होने वाला
प्रत्येक शब्द मेरे कानों में सुधारस घोलता है

किसी भी तरह तुम्हें पा लूं, प्रिये
मेरा अंतर्मन रहरह कर बस यही बोलता है
यदि कर गहो तुम मेरा
तो अपनी राह बना सकता हूं मैं
संगिनी बन कर साथ चलो--
तो पथ को सुमनों से सजा सकता हूं मैं शादी के बादः
क्यों मेरी छाती पर बैठी हो तुम, क्या रसोई में काम नहीं है?
कैसी निष्ठुर पत्नी हो तुम, जिस में पति के लिए दया का नाम नहीं है?
हरदम मुझसे चिपकी रह कर,
क्यों मेरा सुख चैन हरती हो?
ना मुझे कुछ करने देती हो
दिन भर, ना तुम कुछ करती हो
नैनों में अनचाहा नीर भर कर
तुम अपनी हर हठधर्मिता पूरी कर लेती हो, मैं जब भी कुछ कहने को होता हूं हथियार बना
झट इनमें पानी भर लेती हो

तुम्हारे बिखरे चिकुर
समस्याओं के घेरे हैं मेरे लिए
खीज भरा नीरस मुखड़ा
भविष्य का घोर अंधेरा है मेरे लिए तुम्हारे मुख से मुखरित होने वाला हर शब्द, शब्द नहीं, शब्दभेदी बाण हैं ओ क्लेशकर्ता, चैनहर्ता
तेरी दया के धागे में
अटके मेरे सिसकते प्राण हैं
अपने इन बच्चों को ले जाओ यहां से
ये बेसुरे सुर में
लगतार रेंके जा रहे हैं
मेरे कागज, कलम, दवात, किताबें सब
एकदूसरे पर परस्पर फेंके जा रहे हैं
तुम्हारे ताने अब और नहीं पिए जाते मुझ से
हां, दर्द तो और भी पी सकता हूं मैं,

यदि तुम मेरा पीछा छोड़ो तो
अभी कुछ दिन और जी सकता हूं मैं
अभी तुम्हारे मन में भाव उठा, चंद्रकांत, कर गुजरो! अभी चंद्रकांत हो, फिर चंदूलाल हो जाओगे।

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
तीसरा प्रवचन

कोउ नहिं कइल मोरे मन कै बुझरिया

कोउ नहिं कइल मोरे मन कै बुझरिया।
घरि घरि पल पल छिन छिन डोलत-डालत साफ अंगरिया।।
सुर नर मुनि डहकत सब कारन, अपनी अपनी बेरिया।।
सबै नचावत कोउ नहिं पावत, मारत मुंह मुंह मरिया।।
अब की बेर सुनो नर मूढ़ो, बहुरि न ल्यो अवतरिया।।
कह गुलाल सतगुरु बलिहारी, भवसिंधु अगम गम तरिया।।

तन में राम और कित जाय। घर बैठल भेटल रघुराय।।
जोगि जती बहु भेष बनावै। आपन मनुवां नहिंसमुझावै।।
पूजहिं पत्थल जल को ध्यान। खोजत धूरहिं कहत पिसान।।
आसा तृस्ना करै न थीर। दुविधा-मातल फिरत सरीर।।
लोक पुजावहिं घर-घर धाय। दोजख कारन भिस्त गंवाय।।
सुर नर नाग मनुष औतार। बिनु हरिभजन न पावहिं पार।
कारन धै धै रहत बुलाय। तातें फिर फिर नरक समाय।।
अबकी बेर जो जानहु भाई। अवधि बिते कछु हाथ न आई।।
सदा सुखद निज जानहु राम। कह गुलाल न तौ जमपुर धाम।।

झरत दसहुं दिस मोती!
बस आंख की कमी है, मोती झर ही रहे हैं। कान बहरे हैं, उसकी वीणा बज ही रही है। शाश्वत। एक क्षण को रुकती नहीं। यह सारा जीवन उसके ही स्वरों से, उसके ही आनंद से, उसके ही उत्सव से रंगीन है, मदमस्त है। एक आदमी है कि बाहर पड़ गया है इस उत्सव के। पड़ जाने का कारण भी है! क्योंकि एक आदमी ही है जो होशपूर्वक इस उत्सव का आनंद ले सकता है। वृक्ष भी सम्मिलित हैं; पौधे, पशु- पक्षी; नदी-नद-पहाड़, तारे, वे सब सम्मिलित हैं उत्सव में, लेकिन उनका सम्मिलित होना उनकी स्वेच्छा से नहीं है। वे चाहें तो भी इस उत्सव से बाहर नहीं हो सकते। यह उत्सव उनके लिए अनिवार्य है। मनुष्य की चेतना स्वतंत्र है। चुनाव की क्षमता है। चाहो तो देखो झरत दसहुं दिस मोती, चाहो, तो मत देखो। लेकिन तुम चाहो या न चाहो, तुम देखो या न देखो, मोती तो झरते ही जा रहे हैं।
देखोगे तो भर लोगे अपनी झोली, न देखोगे तो रह जाओगे रिक्त और खाली। देखोगे तो धन्यवाद से भर जाओगे। धन्यवाद का भाव ही धर्म है। देखोगे तो अनुग्रह में डूब जाओगे। अनुग्रह प्रार्थना है, पूजा है, आराधना है। न देखोगे, तो शिकायत और शिकवे हैं; संदेह, हजार-हजार संदेह। न देखोगे तो कांटों ही कांटों में चुभ जाओगे। अंधों को कांटे ही मिलते हैं। आंख वाले फूल चुन लेते हैं। और आंखें जितनी गहरी होती हैं उतने ही धीरे-धीरे कांटे भी फूल हो जाते हैं। आंखें न हों तो फूल कांटे हो जाते हैं। तुम्हारी आंख का सारा खेल है।
और तुम पौधे नहीं हो, पशु नहीं हो, पक्षी नहीं हो, इसलिए अनिवार्यरूपेण तुम इस उत्सव के अंग नहीं हो। निमंत्रण है, चाहो स्वीकार कर लो, चाहो इनकार कर दो। स्वीकार कर सको तो तुम्हारे प्राणों के अंतरतम से पुकार उठने लगे। फिर न मंदिर जाने की जरूरत है न मस्जिद, न गिरजा न गुरुद्वारा। जहां बैठकर यह पुकार उठेगी, वहीं मंदिर, वहीं मस्जिद, वहीं गिरजा, वहीं गुरुद्वारा।
पूनम बन उतरो!
भावों की कोमल पाटी पर--
शाश्वत रंग भरो!!
पूनम बन उतरो!!!
आतप से झुलसा तन-सरवर,
झरते ज्वालाओं के निर्झर;

अधरों पर परितोष अधर धर,
युग की तृषा हरो!
पूनम बन उतरो!!

मुक्त-प्राण निष्प्राण नियम-यम, गंध-विधुर प्राणों का सम्भ्रम; निष्फल हों शूलों के श्रम-क्रम,

साधक सिद्ध करो!
पूनम बन उतरो!!
विकसित हों साधों के शतदल,
मुकुलित परिमल के पाटल-दल;
जीवन के सितप्रभ, प्रण-उज्ज्वल,
ज्योतिर्मयि विचरो!
पूनम बन उतरो!!
जैसे ही तुम देखने लगो, पुकार उठती है: अहर्निश उतरो, पूनम बन उतरो! और परमात्मा उतरता है। उतर ही रहा है। सिर्प पुकार की कमी है, इसलिए तुम संयुक्त नहीं हो पाते।
गुलाल के इन सूत्रों को हृदयंगम करो--
कोउ नहिं कइल मोरे मन कै बुझरिया।
कोई नहीं मेरे मन को बुझा सका। कोई नहीं मेरे मन की दहकती अंगार को बुझा सका। कोई नहीं मेरे मन के समाधान को दे सका। कोई दे भी नहीं सकता। और हम सब इसी आशा में हैं कि कोई दे देगा। तुम्हें खोजना होगा। मिलता है, जरूर मिलता है समाधान, पर खोज से मिलता है, उधार नहीं। न गीता दे सकती है, न कुरान दे सकता; न बुद्ध दे सकते, न महावीर दे सकते; न मैं दे सकता, न कोई और दे सकता। काश, कोई दूसरा दे सकता तो बात बड़ी सरल हो जाती! धर्म का कोई शिक्षण होता ही नहीं। विज्ञान का शिक्षण हो सकता है, धर्म का शिक्षण नहीं होता। क्योंकि विज्ञान दूसरा तुम्हें दे सकता है। विज्ञान उधार है, बासा है। धर्म सदा ताजा है।
अल्बर्ट आइंस्टीन ने सापेक्षता के सिद्धांत को एक बार खोज लिया, अब
हर आदमी को बार-बार खोजने की जरूरत नहीं--कोई पागल है जो बार-बार उसे खोजे! आइंस्टीन ने खोज लिया, सबका हो गया। अब बस थोड़ा-सा समझ लो, पढ़ लो, कोई भी जो जानता हो समझा दे कि सिद्धांत तुम्हारा हो गया। लेकिन बुद्ध ने जो खोजा, वह इस तरह सबका नहीं होता। महावीर ने भी खोजा, सबका नहीं होता। जीसस ने खोजा, मोहम्मद ने खोजा, सबका नहीं होता। कबीर ने, नानक ने, गुलाल ने, अनेक-अनेक ज्योतिर्मय लोगों ने खोजा उसे, पाया उसे, वे भर गए अनाहत के नाद से, पर बड़ी असमर्थता है, सिर्प तुम्हें पुकार सकते हैं, तुम्हें आवाहन दे सकते हैं, तुम्हें चुनौती दे सकते हैं, लेकिन तुम्हारे चित्त के समाधान को तुम्हीं को खोजना होगा। धर्म की यह विशिष्टता है, यह उसकी गरिमा भी है, गौरव भी कि वह बासा नहीं होता। फिर-फिर खोजना होता है, ताजा ही पाना होता है।
कोउ नहिं कइल मोरे मन कै बुझरिया।
लेकिन जब भी कोई खोजने निकलता है तो इसी आशा में कि कोई मेरे मन की समस्याओं को सुलझा देगा, कोई मेरे उलझाव मिटा देगा, कोई मेरी अड़चनें साफ कर देगा, कोई मेरे द्वंद्व, मेरी दुविधाएं पोंछ देगा; कोई कर देगा मेरे मन के दर्पण को साफ, कोई मेरी आंखों से परदे काट देगा, इस आशा में खोजने निकलता है व्यक्ति। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि और सब चीजों के संबंध में दूसरों की सलाहें काम आ जाती हैं। बीमार हो तो चिकित्सक के पास चले जाते हो। वह विशेषज्ञ है, वह तुम्हारी बीमारी का निदान कर देता है, औषधि का भी निर्देश दे देता है, बात खतम हो गई। तुम्हें चिंता नहीं करनी पड़ती है बीमारी की, निदान की, औषधि की। विशेषज्ञ हैं बाहर के जगत में। यंत्र बिगड़ जाए, विशेषज्ञ हैं। चाहे विशेषज्ञ थोड़ा सा ही करे!

मैंने सुना है कि एक बहुत बड़ी फैक्टरी, आटोमेटिक फैक्टरी, नई-नई डाली गई, एक दिन चली और दूसरे दिन बंद हो गई। बहुत कोशिश की मालिकों ने, मगर कुछ उपाय न बना। नये-नये यंत्र थे, अत्याधुनिक थे, अभी-अभी खोजे गए थे। तो खबर करनी पड़ी जहां से बन कर आया था पूरा का पूरा यंत्रजाल। उन्होंने कहा कि विशेषज्ञ हम भेज सकते हैं। विशेषज्ञ आया, उसने एक नजर डाली, उसने कहा दस हजार डालर मेरी फीस है। फीस थोड़ी ज्यादा मालूम पड़ी। दस हजार डालर मतलब एक लाख रुपए! मगर फैक्टरी बंद पड़ी रहे तो लाखों का रोज नुकसान हो रहा था। मालिक राजी हुए, उन्होंने कहा कि ठीक करो, दस हजार लेना। उसने कुछ भी न किया। उसने जरा पेंचकस लिया और कहीं कुछ ढीला था, उसको कस दिया। फैक्टरी चल पड़ी। मालिक खड़ा देख रहा था और उसने कहा, यह तो हद हो गई, जरा-से पेंच के कसने के दस हजार डालर! उस विशेषज्ञ ने कहा कि पेंच को कसने के दाम नहीं ले रहा हूं, कहां पेंच ढीला है, इसको जानने का; कहां पेंच कसना है, इसको जानने के पैसे ले रहा हूं। पेंच तो कोई भी कस देता। लेकिन किसी के भी कसने से यह यंत्र चलने वाला नहीं था। पूरा जीवन इस यंत्र को समझने में लगाया है, उसके दाम ले रहा हूं। यह तो मैं भी जानता हूं कि जरा सा पेंच कसा, यह दो पैसे का काम है, इसके लिए दस हजार मांगना ठीक नहीं मालूम पड़ता। मगर कहां कसना, कितना कसना--वह मैं जानता हूं!
बाहर के जगत में विशेषज्ञ होता है। लेकिन भीतर के जगत में कोई विशेषज्ञ नहीं होता। भीतर के जगत में कोई विशेषज्ञ काम नहीं आता।
गुलाल कहते हैं:
कोउ नहिं कइल...
गया बहुत जगह, द्वार कितने खटखटाए...
कोउ नहिं कइल मोरे मन कै बुझरिया।
लेकिन कोई ऐसी बात कह न सका, कोई ऐसा सुझाव-सलाह दे न सका, जिससे मेरे
मन की दुविधाओं, मन की समस्याओं का अंत हो जाता। कि मुझे समाधान मिल जाता। कि मैं तृप्त हो जाता। कि मेरी बेचैनी कट जाती। कि मैं मुक्त हो जाता मन के जाल से।
यह कोई कर ही नहीं सकता।
धर्म के जगत में विशेषज्ञ नहीं होते, प्रबुद्ध पुरुष होते हैं। उनके पास बैठकर तुम इशारे समझ सकते हो। मगर इशारे समझना तुम्हें ही होते हैं। उनके पास बैठ कर तुम उनके रंग में रंग सकते हो। मगर रंगना तुम्हें ही होता है। उनके पास बैठकर तुम चलना सीख सकते हो। मगर चलना तुम्हें ही होता है। उनके पास बैठ कर तुम अपने भीतर के दीए को जलाने की कला सीख सकते हो। मगर सीखनी तुम्हें ही होती है। सब करना तुम्हारा है। सदगुरु तो केवल एक उपस्थिति मात्र है, जिसकी उपस्थिति में तुम्हारे भीतर सोए हुए तत्त्व जागने लगें। जैसे सुबह हो जाए और फूल खिल जाएं। कोई सूरज एक-एक फूल को आकर खिलाता नहीं! सुबह हो गई और पक्षी गीत गाने लगे। कोई सूरज एक-एक पक्षी के कंठ को आकर गुदगुदाता नहीं! सुबह हो गई और रात भर सोए हुए लोग जगने लगे। सूरज एक-एक द्वार पर आकर दस्तक देता नहीं कि उठो भाई, सुबह हो गई, कि अब कब तक सोए रहोगे! नहीं, सूरज की मौजूदगी में कुछ घटता है। लेकिन उन्हीं को घटता है जो घटाने के लिए राजी हैं। नहीं तो सूरज भी निकल आता है, बहुत से लोग तो सोए ही पड़े रहते हैं। सच तो यह है, कुछ लोगों को तभी नींद लगती है जब सूरज निकलता है। तब वे और कंबल ओढ़कर सो जाते हैं।
विंस्टन चर्चिल ने कहा है कि मैं जिंदगी में एक बार सुबह जल्दी उठा। क्योंकि बार-बार सुना, पढ़ा कि सुबह का मुहूर्त बड़ा सुंदर। एक बार ही उठा... वह तो उठता ही दस बजे था... और एक ही बार उठकर जो दुःख पाया, फिर दोबारा वह भूल नहीं की। सुबह उठ तो आया, लेकिन सुबह से ही नींद पीछा करने लगी। जिंदगी भर की आदत। किसी चीज में मन ही न लगे, झपकियां आएं। चाय की टेबल पर पहले ही पहुंच गया। बैठ कर आधा घंटा राह देखी तब चाय आई। तब तक इतना झल्ला चुका था कि चाय पीने का मजा भी खराब हो गया। दप 132 तर जाने के लिए... युद्ध के दिन थे, पेटरेल की कमी थी, बस से ही जाना होता था... दप 132 तर जाने के लिए बस के लिए जाकर खड़ा हो गया आधे घंटे पहले ही से, वहां कोई था ही नहीं। न बस, न लोगों का "क्यू"--अभी टिकट बेचने वाला भी नहीं आया था। आधा घंटा भुनभुनाता

रहा। दप 132 तर पहले पहुंच गया, चपरासी बाद में पहुंचा। ----"मैं दरवाजे पर खड़ा था जब चपरासी पहुंचा। मुझे बैठ कर दप 132 तर में धूल-धवांस खानी पड़ी; क्योंकि दप 132 तर साफ हुआ। दिन भर परेशान रहा और दिन भर मैंने गालियां दीं उन सब लोगों को जो ब्रह्ममुहूर्त में उठने की बातें करते हैं। ऐसा दुख मैंने कभी पाया नहीं। फिर कभी यह भूल नहीं की।"
ऐसे लोग भी हैं जिनको सूरज ऊगते ही नींद आती है। जो रात भर जागते रहे मगर सुबह सूरज जब ऊगता है तब उनके लिए जागना मुश्किल हो जाता है। ऐसे लोग भी सत्संग में पहुंच जाते हैं कि और कहीं जागे रहें, सत्संग में सो जाते हैं। कुछ लोग तो सत्संग का मतलब ही यह लेते हैं, कि सब चिंता-फिकर छोड़ कर सो जाना। अब करना ही क्या है! घर-द्वार रहो, चिंता-फिकर, पत्नी जान खाए जाती है, बच्चे उपद्रव मचाते, दप 132 तर जाओ, परेशानियां हैं, सत्संग में न कोई परेशानी, न कोई झंझट--बैठे कि नींद लगी!
एक फकीर हुए भीखण। वे बोल रहे थे एक गांव में--राजस्थान का कोई गांव रहा होगा; भीखण राजस्थान में हुए। सभा में नगर का जो सबसे बड़ा धनपति था-- आसोजी--वह सामने ही बैठा। वह बार-बार झपकी खा रहा था। भीखण से न रहा गया। कोई साधारण पंडित-पुरोहित नहीं थे कि इसकी फिक्र करें कि यह धन-पैसे वाला है तो इससे कुछ डरें। बार-बार उसकी झपकी से भीखण के बरदाश्त के बाहर हो गया। भीखण ने कहाः आसो जी, क्या सोते हो? आसो जी ने आंख खोली, कहाः नहीं- नहीं, सोता नहीं, आंख बंद करके ध्यानपूर्वक सुनता हूं। होशियार आदमी तो हर तरफ तरकीबें निकाल लेता है। भीखण ने देख लिया कि वह झूठ बोल रहा है। क्योंकि ध्यान में इस तरह सिर नहीं डगमगाता। झोंका ऐसा आता था कि वह गिर-गिर पड़ता जैसा हो रहा था। ध्यान में यह नहीं होता। शकल-सूरत से साफ था कि ध्यान इत्यादि कुछ भी नहीं है। फिर थोड़ी देर और फिर आसो जी ने झपकी खाई। फिर पुकारा भीखण ने: आसो जी, सोते हो? आसो जी ने कहा, नहीं-नहीं, आपने भी क्या लगा रखा है! आप अपना काम करो, बोलो, मैं ध्यानपूर्वक सुन रहा हूं! क्या गांव में मेरी बदनामी करवानी है? एक बार हो तो ठीक, दोबारा आप फिर वहीं पूछने लगे; आपको बोलना है कि मेरे पीछे पड़े हो?
फिर थोड़ी देर और आसो जी की फिर नींद लग गई। भीखण ने तीसरी बार आवाज दीः आसो जी, जिंदा हो? और आसो जी ने कहाः नहीं-नहीं। वह समझा कि पुरानी वही बात कि आसो जी सोते हो। भीखण ने कहाः अब तुम धोखा न दे सकोगे। तुम निश्चित सो रहे हो। क्योंकि इस बार मैंने बात ही दूसरी पूछी और तुम उत्तर वही दे रहे हो। मगर एक लिहाज से तुम्हारा उत्तर सही है, क्योंकि जो सोता है, वह मुर्दा है; जिंदा है कहां?
सत्संग में कोई सोए तो सदगुरु के पास बैठकर भी कहां बैठ पाता! सत्संग में कोई बंद रहे तो सूरज द्वार पर भी खड़ा रह जाता है, फिर भी नींद लगी रह जाती है। मगर स्मरण रखना, इस आशा में मत रहना कि कोई तुम्हारी समस्याएं हल कर देगा। गुलाल का वचन महत्त्वपूर्ण है, बहुत महत्त्वपूर्ण है। खूब संवार कर रख लेना। क्योंकि यह आशा कहीं मन में बनी ही रहती है छिपे में कि कोई दूसरा... ! हमारे सोचने का ढंग यह है। हम हर चीज दूसरे पर टालना चाहते हैं। अगर कुछ भूल हो तो हम किसी पर टालते है। कोई जिम्मेवार होना ही चाहिए जिसके कारण भूल हुई। हम अपने पर जिम्मेवारी नहीं लेते। अगर हमारे जीवन में उलझन है तो दूसरे लोगों के कारण है। जब उलझन दूसरों के कारण है तो दूसरों को ही हल करनी होगी। हम हल करेंगे भी तो कैसे करेंगे। हमने सीख लिया है टालना, अपने से दूसरे के कंधे पर टालना। हम सब टाले चले जाते हैं। और यह बुनियादी भूल है।
कोई जुम्मेवार नहीं है सिवाय तुम्हारे। और उस व्यक्ति को ही मैं धार्मिक व्यक्ति कहता हूं, जो समग्ररूपेण अपने जीवन का सारा उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेता है। कठिन है यह बात। कठिन इसलिए है कि दूसरे के ऊपर टाल देने में राहत मिलती है, कि कोई हमारा कसूर तो नहीं, हम करेंगे भी क्या? सब तरफ उपद्रवी हैं, वे जीवन उलझाए चले जा रहे हैं। पति पत्नी पर टाल देता है कि उसकी वजह से सब उपद्रव है। इन्हीं पतियों ने शास्त्र लिखे हैं, वे कहते हैं, स्त्री नरक का द्वार है। नरक तुम्हें जाना

है, नरक तुम बनाते हो अपना, स्त्री को द्वार बताते हो। और रही आए स्त्री द्वार, मत निकलो उस द्वार से; मत जाओ उस रास्ते; कौन तुमसे कहता है?
संसार दुख का मूल है, यही तोतारटंत पंडित तुम्हें समझाते रहे हैं। संसार दुख का मूल नहीं। यह टालना है। दुख का मूल तुम्हारे भीतर छिपा अज्ञान है। दुख का मूल तुम्हारे भीतर सोई हुई चेतना है, संसार नहीं। और एक दफा तुमने यह गलत निर्णय ले लिया कि संसार दुख का मूल है, तो फिर और-और गलत निर्णय इससे निकलेंगे। फिर इसका अर्थ होगा कि संसार को छोड़ो। फिर तुम्हारा संन्यास संसार का त्याग बन जाएगा। पहली भूल से दूसरी भूल पैदा हो रही है। पहले संसार दुःख का मूल था, यह मान लिया, अब सुख की तलाश में चले तो संसार छोड़कर चले। न संसार दुःख का मूल था, न संसार के त्याग से सुख की उपलब्धि होने वाली है। दुःख का मूल तुम्हारी अचेतना है, मूर्च्छा है। सुख का मूल भी वही है। जाग जाओ भीतर तो सुख है। जाग जाओ भीतर तो स्वर्ग है। सोए रहो भीतर तो नर्क है।
महावीर से किसी ने पूछा है कि आप मुनि की क्या परिभाषा करते हैं और अमुनि की क्या परिभाषा करते हैं? तो महावीर ने वही परिभाषा नहीं की जो जैन-शास्त्रों में की गयी है, जैन-मुनि करते हैं। महावीर कैसे वैसे परिभाषा कर सकते थे! महावीर तो उन उत्त 207ंग शिखरों से बोलते हैं, जहां से केवल सत्य ही बोला जा सकता है। महावीर ने व्याख्या की --शायद किसी ने इतनी सरल, इतनी सीधी, इतनी साप 132, इतनी सचोट व्याख्या नहीं की है--महावीर ने कहाः असुत्ता मुनिः; जो सोया नहीं है, वह मुनि; सुत्ता अमुनिः; और जो सोया है, वह अमुनि। सोया है, वह असाधु, जागा है, वह साधु।
यह बात हीरों में तौली जाए, ऐसी बात है।
नहीं कहा कि जो दिगंबर खड़ा है, वह मुनि; कि जो उपवास करता है, वह मुनि। नहीं कहा कि जो संसार को छोड़ दिया है, वह मुनि। ठीक दो छोटे-से शब्दों--में सारे शास्त्रों का सार भर दिया। गंगोत्री बन गए दो छोटे-से शब्दः असुत्ता मुनिः। फिर इससे गंगा बह सकती है, पूरा जीवन गंगा हो सकता है।
पहला कदम भ्रांति का और सारी यात्रा गलत हो जाती है। और हमने जो बुनियादी रूप से गलतियां की हैं, उनमें एक गलती यह है कि हम सदा दूसरे पर टालते हैं। कोई भाग्य पर टालता है, कोई संसार पर टालता है, कोई विधाता पर टालता है, कोई किस्मत पर टालता है; कोई कहता है, क्या करें, यह दुनिया का ढंग ही ऐसा है। इस दुनिया में तो दुख सबने पाया है सो हम पा रहे हैं। इस तरह अपने को समझाता है, सांत्वना देता है। दुनिया का इससे कुछ लेना-देना नहीं है। यहीं बुद्ध हुए और इसी पृथ्वी पर परम आनंद में जीए! और यहीं कबीर हुए और इसी पृथ्वी पर परमात्मा में जीए! और यहीं तुम हो--वही पृथ्वी है, वही मिट्टी की देह है, उसी तरह के लोग तुम्हें घेरे हुए हैं जिस तरह के लोग कबीर को, गुलाल को, बुल्लाशाह को घेरे हुए थे... दुनिया कोई बदल नहीं गई, दुनिया वही की वही है। मगर लोग बड़े चालबाज हैं; लोग कहते हैं, पहले सतयुग था। कब था यह सतयुग? यह हमेशा पहले था। जब पूछो तभी पहले था।
छह हजार वर्ष पुरानी एक ईंट मिली है बेबीलोन में जिस पर एक छोटा-सा उल्लेख है। उस ईंट पर यह लिखा हुआ है कि पहले सतयुग था और अब दुनिया बिल्कुल भ्रष्ट हो गई है, ... छह हजार साल पहले! ... बेटा बाप की नहीं सुनता, पत्नी पति की नहीं मानती, नैतिकता भ्रष्ट हो गई है, मनुष्य का महान पतन हो गया है, हम महासंकट की घड़ी से गुजर रहे हैं! यह तो ऐसा लगता है जैसे कि आज के ही सुबह के अखबार का संपादकीय हो।... छह हजार साल पहले!
चीन में और भी पुरानी एक धरोहर मिली है। आदमी के चमड़े पर लिखी हुई कोई सात-आठ हजार साल पुरानी दस्तावेज है। वह अपने ढंग की अकेली चीज है आदमी की चमड़ी पर लिखी गई; उसको बड़ा सम्हाल कर रखा गया है। अभी तक राज नहीं खुल सका कि किस तरह के रासायनिक द्रव्यों में आदमी की चमड़ी बचाई जा सकी। क्योंकि आदमी की चमड़ी तो एकदम सड़ जाती है। उसमें भी यही लिखा हुआ है कि पहले सतयुग था। धन्य थे वे प्राचीन दिन जब पृथ्वी पर स्वर्ग था! मगर वे दिन कब थे? क्या तुम सोचते हो राम के समय में थे? तो फिर रावण कब हुआ? तो फिर सीता कब चुराई गई? फिर सीता को, गर्भवती सीता को कब उसके पति ने जंगल भिजवा दिया, छोड़ दिया, त्याग दिया? तुम सोचते हो कृष्ण के समय में सतयुग था? तो फिर

महाभारत कब हुआ? सतयुग कब था? सतयुग कभी नहीं था, वह सिर्प मनुष्य की कल्पना है। वह आज की परिस्थितियों को जिम्मेवार ठहराने के लिए कल्पना कर लेता है अतीत की, सुंदर अतीत की। और अगर अतीत से बचता है, तो भविष्य की कल्पना कर लेता है।
सतयुग पीछे था, और भविष्य में स्वर्ण-युग है--और अभी? अभी क्या करें, मजबूरी है। अभी तो हर चीज मुश्किल है। और जब भी तुम रहोगे, यही हालत रहेगी। सतयुग अतीत में रहेगा, स्वर्ग-युग भविष्य में रहेगा-- और तुमको रहना है अभी! कुछ राह अभी खोजनी पड़ेगी। राह मिलती नहीं। कारण साफ हैः तुम औरों पर टाले चले जाते हो। सतयुग जाग्रत व्यक्ति के भीतर होता है। और कलियुग सोए हुए व्यक्ति के भीतर होता है। सतयुग-कलियुग बाहर की बातें नहीं हैं, इतिहास की बातें नहीं हैं, तुम्हारे अंतरतम की कथाएं हैं।
ठीक कहते हैं गुलाल: "कोउ नहिं कइल मोरे मन कै बुझरिया। " घर-घर गया हूं, द्वार-द्वार खटखटाए हैं, न-मालूम कितनी जगह भिक्षापात्र फैलाया कि बुझा दो कोई मेरे मन को, सुलझा दो कोई मेरी उलझन को, अंधेरे को मेरे मिटा दो, जला दो मेरे दीए को; कैसे देखूं प्रभु को, कैसे छुटकारा हो बंधन से, कब बरसेंगे मोती, कब मेरे जीवन में भी वह धन्य घड़ी आएगी, मगर नहीं, कोई भी कुछ न कर सका।
घरि-घरि पल पल छिन-छिन डोलत-डालत साफ अंगरिया।।
और यह मेरा मन है कि दहका जाता अंगार की तरह और कोई कुछ नहीं कर पाता।
कोई इस आग को बुझा नहीं पाता।
घरि घरि पल पल छिन डोलत-डालत साफ अंगरिया।।
मैं देखता हूं कि भीतर आग ही आग है। प्रतिपल आग जल रही है, धू-धू कर आग
जल रही है, मैं धुएं की तरह उड़ा जा रहा हूं, अपनी ही आग में जला जा रहा हूं।
और कितनों से कहा, कितनों के सामने हाथ जोड़ें, चरण छुए, कि वर्षा कर दो, कि बुझा दो मेरी इस आग को, कि मैं जल-जल कर ही नहीं मर जाना चाहता हूं! मगर कोई यह कर न सका। कोई यह कर ही नहीं सकता है। यह तुम्हें ही करना होगा।
धर्म तुम्हें व्यक्ति बनाता है। और व्यत्ति होने का अर्थ होता हैः अपनी लगाम अपने हाथ में लो। बुद्ध ने कहाः "अप्प दीपो भव। " अपने दीए खुद बनो। कोई दूसरे से आशा न रखो। आशा में भ्रांति है। आशा में विषाद आएगा। आशा आज नहीं कल निराशा बनेगी। तब तुम बहुत तड़फोगे। और हो सकता है तब तक समय भी बीत जाए। तुम दूसरों पर आशा लगाए रखो, और ऐसे लोग हैं, धोखेबाज, बेईमान। धर्म के नाम पर जितनी बेईमानी और धोखा चलता है उतना न किसी और चीज के नाम पर चलता है, न चल सकता है। क्योंकि धर्म इतना रहस्यपूर्ण मामला है कि धोखा- धड़ी की बहुत गुंजाइश है। परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता, इसलिए कोई भी उसका पैगंबर हो सकता है।
बगदाद में एक आदमी पकड़ा गया जिसने घोषणा कर दी कि मैं ईश्वर का पैगंबर हूं और ईश्वर ने मुझे भेजा है मुहम्मद के बाद। क्योंकि मोहम्मद की किताब अब बहुत पुरानी पड़ गई। अब नई किताब की जरूरत है। संशोधित संस्करण चाहिए कुरान का। मुसलमान यह बरदाश्त नहीं कर सकते। मुसलमान तो बहुत मतांध लोग हैं। उन्होंने तो फौरन पकड़ लिया इस आदमी को कि यह कौन है? क्योंकि मुसलमानों की धारणा है: एक ही अल्लाह है और उस अल्लाह का एक ही पैगंबर और वह है मोहम्मद। और तो कोई पैगंबर नहीं। वहां दूसरे की गुंजाइश ही नहीं है। और कुरान में सुधार!!
उसको पकड़ कर ले जाया गया खलीफा के दरवाजे पर। खलीफा भी आग बबूला हो गया, उसने कहाः बांध दो खंबे से जेलखाने में, करो इसकी पिटाई; सात दिन रखो भूखा-प्यासा और मारो जितना मार सको; सात दिन बाद मैं आऊंगा, अगर होश आ जाए, ठीक!
सात दिन बाद खलीफा गया। वह आदमी सूख कर हड्डी रह गया था। न पानी दिया,
न भोजन दिया और पिटाई उसकी चलती ही रही? न सोने दिया उसे। जंजीरों से बंधा था खंबे से। खलीफा ने पूछा, कहो, क्या ख्याल है? कुछ अक्ल आई! उसने कहा कि निश्चित आई! जब मैं चलने लगा परमात्मा के यहां से तो परमात्मा ने कहा था कि देख, मेरे पैगंबरों को बड़ी तकलीफें आती हैं। तुमने सिद्ध कर दिया कि मैं

सच में ही उसका पैगंबर हूं। कभी-कभी मुझे शक होता था, वह शक भी खतम हो गया। उसके पैगंबर को ये तकलीफें आती ही रही हैं।
खलीफा भी चौंका। उसने यह नहीं सोचा था कि नतीजा ऐसा निकलेगा। और भी चौंका इसलिए कि दूसरे खंबे से बंधे हुए एक आदमी ने चिल्ला कर कहाः यह आदमी सरासर झूठ बोल रहा है। खलीफा ने पूछा कि तुम्हें कैसे पता? उसने कहाः मुझे पता नहीं! अरे, मैं ही हूं जिसने मोहम्मद को भेजा था; और इसको मैंने कभी भेजा ही नहीं! ... उसको कुछ दिनों पहले पकड़ा गया था। उसने घोषणा की थी कि मैं स्वयं सृष्टि का निर्माता हूं, यह सृष्टि मैंने ही बनाई है। और मैंने ही भेजे तीर्थंकर और पैगंबर और अवतार। और यह आदमी सरासर झूठ बोल रहा है, इस बदमाश को मैंने कभी भेजा ही नहीं! इसकी शकल मैं नहीं पहचानता। इसको मैंने खुद अपने हाथ से बनाया हो, यह भी पक्का नहीं है। निश्चित ही नौकर-चाकरों ने बनाया है। इसका चेहरा ही मुझे पहचाना हुआ नहीं मालूम पड़ता!
धर्म के नाम पर तो कुछ भी घोषणा कर सकते हो। कोई उपाय नहीं तुम्हारी घोषणाओं को खंडित करने का। तुम अगर कह दो कि मैंने दुनिया बनाई, तो कोई सिद्ध नहीं कर सकता कि तुमने नहीं बनाई। कैसे सिद्ध करेगा? न तुम सिद्ध कर सकते हो कि मैंने बनाई, न वह सिद्ध कर सकता है कि उसने नहीं बनाई। धर्म के नाम पर कुछ भी कल्पनाओं-परिकल्पनाओं का विस्तार फैला सकते हो। धर्म के नाम पर बहुत धोखाधड़ी चलती है। और धोखाधड़ी का प्रमाण एक ही है: सिर्प उस व्यक्ति के जीवन में धर्म है, जिसके पास उठते-बैठते तुम्हें वे सूत्र मिलने शुरू हो जाएं जिनसे तुम अपने भीतर की आग बुझा लो।
सदगुरु सांत्वना नहीं देता, इशारे देता है, जिनसे तुम अपने भीतर छिपे हुए सत्य को खोज ले सकते हो। सदगुरु सत्य नहीं देता--सत्य दिया नहीं जा सकता, सत्य का कोई हस्तांतरण नहीं होता। सत्य कोई वस्तु नहीं है कि कोई तुम्हें दे दे, कि तुम ले लो किसी से; न चुराया जा सकता, न छीना जा सकता। सत्य तो एक बोध है। किसी प्रज्वलित व्यक्तित्व के पास बैठ कर तुम्हें यह बोध आ जाता है कि अरे, मैं भी ऐसा ही हो सकता हूं! किसी प्रज्वलित व्यक्ति के पास बैठ कर तुम्हारे भीतर भी एक उमंग उठती है, एक उत्साह उठता है कि यह असंभव नहीं, यह संभव है। हड्डी-मांस-मज्जा की देह में अगर ऐसी ज्योति जल सकती है, तो मैं भी तो हड्डी-मांस-मज्जा का बना हूं, यह ज्योति मुझमें भी जल सकती है! यह भरोसा सदगुरु के पास मिल सकता है। और यह भरोसा काफी है। फिर इसके बाद असली खोज शुरू होती है। यह श्रद्धा काफी है।
ख्याल रखना, श्रद्धा का अर्थ यह नहीं होता कि तुम ईश्वर पर श्रद्धा करो। ईश्वर पर तुम कैसे श्रद्धा करोगे? जिसको जाना नहीं, देखा नहीं, पहचाना नहीं, जिसका कोई पता नहीं, उस पर कैसे श्रद्धा करोगे? और जिस ईश्वर को न जानते, न देखा, न पहचाना, उस पर अगर श्रद्धा कर लिए तो झूठों का झूठ हो गया। ऐसे झूठ से कहीं तुम सत्य तक पहुंच सकते हो! श्रद्धा का यह अर्थ नहीं होता कि गीता पर श्रद्धा करो, कुरान पर श्रद्धा करो, वेद पर श्रद्धा करो। कौन जाने वेद केवल बहुत कुशल लोगों के वचन हों, जिन्होंने खुद भी न जाना हो! हजारों किताबें हैं दुनिया में, सुंदर किताबें हैं, लेकिन ज्ञाताओं से नहीं निकली हैं। लिखने में जो कुशल थे, सोचने में जो कुशल थे, शब्दों में जो धनी थे, शब्दों के साथ खेल सकते थे, उनसे निकली हैं। तुम्हें कैसे पक्का होगा कि वेद जिन्होंने जाना उनसे बहे? कोई प्रमाण नहीं हो सकता कि कुरान उनसे उठी, जिन्होंने जाना। मानना ही पड़ेगा, प्रमाण तो कुछ भी नहीं हो सकता। मगर यह मानना तो शुरुआत ही बेईमानी की हो गई। सत्य का शोधी ऐसी मान्यता में नहीं पड़ता।
फिर श्रद्धा का क्या अर्थ होता है?
श्रद्धा का अर्थ होता है: सदगुरु के पास तुम्हें अपने में श्रद्धा आ जाए। सदगुरु वही, जो तुम्हें स्वयं में श्रद्धा दिला दे। जिसकी मौजूदगी तुम्हारे भीतर स्वर छेड़ दे। तुम्हारे भीतर भी कोई अनजगे राग जग पड़ें। तुम्हारे भीतर भी कोई बीज टूट जाए, अंकुरित होने लगे। अपने में श्रद्धा आ जानी धर्म है। मैं भी परमात्मा को पा सकता हूं, मैं भी सत्य को पा सकता हूं, मैं भी परम मुक्ति को पा सकता हूं। अगर बुद्ध ने पा ली, कबीर ने पा ली,

गुलाल ने पा ली, तो मेरा क्या कसूर है? अगर मुझ जैसे व्यक्तियों ने पा ली, तो मैं भी पा सकता हूं।
एक दिन बुद्ध भी ऐसे ही अंधेरे में भटकते थे, फिर प्रकाश को उपलब्ध हो गए! आज तुम अंधेरे में भटक रहे हो, कल प्रकाश को उपलब्ध हो सकते हो। अंधेरे में भटकने वाले ही तो प्रकाश को उपलब्ध हुए हैं। अंधों ने ही तो आंखें पाई हैं और बहरों ने ही तो उस अमृत-नाद को सुना है। हम भी बहरे हैं, हम भी अंधे हैं; तो घबड़ाने की कोई बात नहीं; तो चिंता की कोई बात नहीं; तो हताश होने की कोई बात नहीं--ऐसा जिसके पास भरोसा आ जाए। बस, इतना भरोसा सदगुरु दे सकता है।
सुर नर मुनि डहकत सब कारन, अपनी अपनी बेरिया।।
ऐसे तो बकवास लगी हुई है। सब बोले जा रहे हैं। साधु हैं, संत हैं, महात्मा हैं--सुर नर मुनि डहकत--डहक रहे हैं। और तुम्हारी भी आदत है, जो जितने जोर से बोले, टेबल पीट कर बोले, लगता है सत्य ही बोल रहा होगा। यहां जोर से बोलने वाला आदमी समझा जाता है कि सच बोल रहा है। कोई धीरे-धीरे बोले, खुसपुसा कर बोले, तो तुम्हें लगता है: खुद ही डरा हुआ है, यह क्या खाक सच बोलेगा! और खुसपुसा कर बोलने में कुछ का कुछ लोग मतलब समझ लेते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन को सर्दी-खांसी हुई थी। आवाज कंठ से निकलती नहीं थी। जाकर दरवाजे पर डाक्टर के दस्तक दी। डाक्टर की पत्नी ने दरवाजा खोला। मुल्ला ने खुसपुसा कर कहा: डाक्टर साहब हैं? पत्नी ने कहा: वे बाहर गए हैं, जल्दी से भीतर आ जाओ!
खुसपुसा कर बोलने में और खतरा है। पता नहीं लोग क्या-का-क्या समझ लें!
... कि अच्छे मौके पर आए! ऐसे ही आ जाया करो!
एक विधि विद्यालय का प्रोफेसर अपना अंतिम संदेश दे रहा था स्नातकों को, जो उत्तीर्ण हो गए थे और अब जल्दी ही अदालतों में जाकर वकालत शुरू करेंगे। तो उसने कहा, यह मेरा आखिरी संदेश तुम्हारे लिए, जो मैं सदा अपने विद्यार्थियों को देता हूं जब वे मुझे छोड़ते हैं। अगर कानून तुम्हारे पक्ष में हो तो कानून की किताबों का उद्धरण दो। सिर्प कानून की किताबें काफी हैं। अगर कानून तुम्हारे पक्ष में न हो, तो जितने जोर से बोल सको उतने जोर से बोलो, कानून की फिक्र छोड़ दो। और अगर कानून बिल्कुल विपक्ष में हो, तो सिर्प बोलने से काम नहीं चलेगा, टेबल भी पीटो! उछलो-कूदो; हंगामा मचा दो! कानून पक्ष में हो तो धीमे बोलो, चलेगा। लेकिन अगर कानून विपरीत हो, फिर धीरे मत बोलना। फिर तो तुम्हारे हंगामे पर ही सब निर्भर है। फिर मजिस्टेट हंगामे से ही प्रभावित होगा।
कुछ वकीलों का काम ही हंगामा करना है। वे सिंह की तरह दहाड़ते हैं। जब
भी कोई वकील सिंह की तरह दहाड़े तो समझ लेना कि कानून पक्ष में नहीं है। कानून पक्ष में हो तो दहाड़ने की कोई जरूरत नहीं, इतना श्रम लेने की कोई जरूरत नहीं; कानून काफी है। मगर कानून पक्ष में न हो तो दहाड़ना पड़ेगा। कमी की पूर्ति करनी होगी न!
गुलाल खूब शब्द उपयोग किए हैंः सुन नर मुनि डहकत! दहाड़ रहे हैं! मगर कहते हैं, मैं सब जगह से खाली हाथ लौटा। ये चिल्लाने वाले लोग, ये शोरगुल मचाने वाले लोग, ये हंगामा मचाने वाले लोग, ये सिद्धांतों का वाद-विवाद, शास्त्रार्थ फैलाने वाले लोग, ये हजार तरह के तुर्क-कुतर्क करने वाले लोग, इनसे कुछ हाथ पड़ा नहीं, मेरी अंगार बुझी नहीं; मेरे भीतर का दीया जला नहीं; मेरे भीतर कोई मोतियों की वर्षा न हुई; वही कंकड़-पत्थर जो पहले थे, फिर भी रहे; इनका ज्ञान मेरे किसी काम नहीं आया।
सदगुरु वह है, जिसके पक्ष में अस्तित्व है। वह शास्त्रों के आधार से नहीं बोल रहा है।
वह बोल रहा है अपने अनुभव के आधार से। यद्यपि सभी शास्त्र उसके अनुभव
के पक्ष में होते हैं--होंगे ही, होना ही पड़ेगा--क्योंकि सत्य तो एक है। सदगुरु मिल जाए, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति होनी शुरू हो जाती है।
एक रात चांदी की,
एक रूप सोने का;
फिर आया है मौसम,

भीगने-भिगोने का!
भीगने-भिगोने का!
उड़ते स्वर के फाहे,
गीत बने चरवाहे;
घूम रहे गलियों में--
गूंज रहे चौराहे;
अंतिस पर थाप पड़ी,
गम की मंजीर-लड़ी;
फिर आया है मौसम,
अपनापन खोने का!
भीगने-भिगोने का!!
गत-आगत जुड़ आए,
मादक क्षण मुड़ आए;
मस्ती ने संयम के--
गठबंध तुड़वाए;
सुमनासव पिए हुए,
अलमस्ती लिए हुए;
फिर आया है मौसम--
लाज-शरम धोने का!
भीगने-भिगोने का!!
कलियों के तन चिटके,
परिमल के कण छिटके,
मलयानिल ने रह-रह--
सुरभि आंचल झिटके;
जाग उठे बन सोए,
किरणों ने मुंह धोए;
फिर आया है मौसम--
बल्लरी पिरोने का!
भीगने-भिगोने का!!
सदगुरु मिल जाए तो समझना--
फिर आया है मौसम--
भीगने-भिगोने का!
वहां से बिन-भीगे मत लौट आना, अनभीगे मत लौट आना! सरोबोर हो जाना, तरोबोर हो जाना!
अंतस पर थाप पड़ी,
गम की मंजीर-लड़ी;
फिर आया है मौसम,
अपनापन खोने का!
भीगने-भिगोने का!!
कहीं सदगुरु मिल जाए तो डुबकी मार लेना! साहस करना अपने को खोने का! अहंकार को एक तरफ सरका कर रख देने का! बस, उतनी ही बाधा है। अहंकार जो हटा सकता है, वह शिष्य हो जाता है। जो अहंकार को परिपूर्ण रूप से हटा सकता है, वह सदगुरु से जुड़ जाता है। अहंकार बीच की दीवाल है। और जब भी तुम्हारे अंतस पर थाप पड़े, जब किसी की सन्निधि में तुम्हारे भीतर कोई धुन बजने लगे, कुछ गुनगुन होने लगे--नहीं कि तर्क जंचे--तर्क तो बुद्धि की बात है, उसका कोई बहुत मूल्य नहीं है--नहीं कि गणित साफ बैठे--गणित तो बच्चों का खेल है, उसकी कोई गहराई नहीं--अंतस पर थाप पड़े, हां, तुम्हारे भीतर गहराई में गूंज उठने लगे, थाप पड़े, कोई नृत्य होने लगे, तो फिर चूकना मत! समझ लेना--
फिर आया है मौसम--
अपनापन खोने का।
भीगने-भिगोने का!!
डरेगा मन। अहंकार झिझकेगा। अहंकार हजार तरकीबें खोजेगा, कि सावधान!

इधर मैं देखता हूं रोज, नए लोग आ जाते हैं--खासकर भारतीय--उन्हें देख
कर मुझे हैरानी होती है! सुनने आते हैं, मैं हाथ जोड़ कर आते-जाते नमस्कार करता हूं, वे हाथ जोड़कर नमस्कार भी नहीं कर सकते, नमस्कार का उत्तर भी नहीं दे सकते! यहां सैकड़ों लोग हाथ जोड़ कर नमस्कार कर रहे हैं, मगर वे ऐसे बैठे रहते हैं अकड़े पत्थर की तरह जैसे हाथ जोड़ कर नमस्कार कर लेंगे तो कुछ खो जाएगा, कुछ गंवा देंगे। और उनसे यह आशा मैं रखता नहीं कि पहले वे नमस्कार करें, पहले मैं ही नमस्कार कर रहा हूं। नमस्कार का उत्तर देने तक में कंजूसी हो जाती है। क्या खाक समझेंगे! क्या ख़ाक सुनेंगे! झुकना तो बहुत दूर, भीगना तो बहुत दूर, वे ऐसे बच कर खड़े हैं कि कहीं बूंदा-बांदी पड़ न जाए कोई। कोई और उचके, छलांग मारे और कहीं पानी से कुछ बूंदाबांदी इन पर न पड़ जाए। वे ऐसे डरे हुए खड़े हैं। वे ऐसे दूर किनारे पर खड़े हैं कि यहीं से देखते रहें कि खतरे का कोई मौका आ जाए तो भाग खड़े हों! भागने का इंतजाम करके खड़े हुए हैं।
इतना दयनीय तो यह देश कभी न था।
पश्चिम से लोग यहां आए हुए हैं, जिनको हाथ जोड़ने की कोई परंपरा का अनुभव नहीं है, जिन्हें सिर झुकाने की कोई आदत नहीं है, वे हाथ जोड़ लेते हैं, सिर झुका देते हैं। और भारतीय--पता नहीं किस दंभ में, किस अहंकार में, किस अकड़ में! शायद रामायण की चार चौपाइयां आती होंगी। तो अकड़! शायद ब्राह्मण होंगे। तो अकड़! और अब तो अकड़ का कहना क्या? अब तो शूद्र भी अकड़ा हुआ है, वह भी अब शूद्र नहीं है, हरिजन है। तो वह कैसे हाथ जोड़े! यहां देखते हैं सत्संग का यह विहान, यह प्रभात, ये शांत मौन बैठे हुए लोग... इनमें अधिक हैं जिनको जो भाषा मैं बोल रहा हूं अभी, समझ में भी नहीं आती, फिर भी बैठे हैं, मौन, फिर भी पी रहे हैं। नहीं भाषा तो भाव सही। असली बात तो भाव ही है। नहीं शब्द समझ में आते, क्या लेना-देना शब्दों से? असली सवाल तो सदगुरु के साथ होना है। और भारतीय आते हैं तो मैं चकित होता हूं! एक उठा, दूसरा उठा, तीसरा उठा... जैसे उठने को ही आए थे! आए ही क्यों थे? क्यों नाहक कष्ट किया! एक भ्रांति है भारतीय मन को। क्योंकि शास्त्र, सुने हुए शब्द, पंडित-पुरोहित, उनके वचन सदियों-सदियों से हमारे भीतर बैठ गए और हमें यह भ्रांति दे रहे हैं कि हमें मालूम ही है, सुनना क्या है? तुम बुद्ध से चूके, तुम महावीर से चूके, तुम कबीर से चूके--तुम चूकते ही रहोगे। और जब तुम चूक जाते हो, जब बुद्ध जा चुके होते हैं, तब तुम उनके शब्दों के मालिक हो जाते हो, तब उनके शब्दों को तुम कंठस्थ कर लेते हो। जब वे मौजूद होते हैं, तब तुम अकड़े खड़े रहते हो। इसलिए इस देश में इतने महिमावान लोग हुए, लेकिन इस देश में महिमा पैदा नहीं हो पाई। यह देश सभी तरह से दीन और दरिद्र रह गया।
ठीक कहते हैं गुलाल--
सुर नर मुनि डहकत सब कारन, अपनी अपनी बेरिया।।
सबै नचावत कोउ नहिं पावत, ...
और पंडित-पुरोहितों के, तथाकथित तोतों के चक्कर में पड़े हुए, नाच तो
वे तुम्हें बहुत नचाएंगे, लेकिन पाओगे तुम कुछ भी नहीं। पाया उन्होंने स्वयं नहीं है। लेकिन फिर तुम उनसे राजी कैसे हो जाते हो? उनसे राजी होने का कारण है। वे जानते हैं कला। कला सीधी-साफ है, कुछ बहुत जटिल नहीं। तुम जो चाहते हो, वही कहते हैं। तुम्हारी मान्यताओं को सहारा देते हैं। तुम्हारी मान्यताओं को पुष्ट करते हैं। तुमसे अहंकार नहीं छीनते, तुम्हारे अहंकार को और बल देते हैं। कहते हैं, तुम महान हो। कहते हैं कि तुम हिंदू हो, कि मुसलमान हो, कि ईसाई हो; कि तुम धन्यभागी हो, कि न मालूम कितने जन्मों के पुण्यों के कारण तुम इस पुण्यभूमि में पैदा हुए हो। और तुम्हारा अहंकार फूल कर कुप्पा हो जाता है।
कहां की पुण्यभूमि! किन जन्मों के पुण्य! कहीं कोई पुण्य की गंध तो दिखाई पड़ती नहीं। लेकिन तुम अकड़ जाते हो, तुम फूल जाते हो, तुम प्रसन्न हो जाते हो। तुम जो चाहते हो सांत्वनाएं, वे तुम्हें देते हैं। सत्य नहीं। सत्य तो चोट करता है, सत्य तो झकझोरता है; सत्य तो आंधी है, अंधड़ है, सब धूल-धवांस तुम्हारी ले जाएगा तुम्हारी उड़ा कर, सूखे पत्ते गिरा देगा। और अगर तुम ज्यादा अकड़े, तो बड़े-बड़े वृक्ष भी अकड़ में गिर जाते हैं। अंधड़ जब आता

है तो घास के पौधे बच जाते हैं, बड़े वृक्ष गिर जाते हैं। क्योंकि घास के पौधों को एक कला आती है, झुक जाने की कला, वे अंधड़ के साथ ही झुक जाते हैं। वे अंधड़ से लड़ते नहीं, वे अंधड़ से राजी हो जाते हैं, वे आंधी के साथ ही डोलते हैं, आंधी का उपयोग कर लेते हैं। आंधी जा चुकी होती है, घास के पौधे फिर खड़े हो जाते हैं-- ताजे और भी ताजे! धूल गई, वह अंधड़ ले गया! और बड़े वृक्ष अकड़ कर खड़े रहे, गिर गए, तो फिर उठ सकते नहीं।
सत्य तो आंधी है, तूफान है, सांत्वना नहीं है, मलहम-पट्टी नहीं है, सर्जरी है। और तुम अगर सांत्वना खोज रहे हो, तो तुम जरूर किसी चक्कर में पड़ जाओगे। वे तुमसे वही कहेंगे जो तुम चाहते हो। तुम चाहते हो कोई तुम्हें भरोसा दिला दे कि मरने पर भी तुम मरोगे नहीं। तो तुम्हारे पंडित-पुरोहित उद्घोषणा करते रहते हैंः आत्मा अमर है। मैं नहीं कह रहा हूं कि आत्मा अमर नहीं है, मैं इतना ही कह रहा हूं कि आत्मा अमर है, यह जानना होता है, यह पंडित-पुरोहितों के कहने से आत्मा अमर नहीं होती। मगर तुम सुनकर बड़े प्रसन्न हो जाते हो। तो तुम कहते हो, ठीक है, देह ही जाएगी, तो जाने भी दो, हम तो रहेंगे! यह हम, यह अहंकार बचा रहे, तुम्हारा चित्त प्रसन्न हो जाता है, तुम राजी हो जाते हो। फिर तुम हजार नाच नाचने को राजी हो जाते हो। फिर वे कहें कि यहां पूजा चढ़ाओ, यहां फूल लगाओ, यहां बत्ती लगाओ, यहां आरती उतारो, तुम राजी! क्योंकि उन्होंने तुम्हारी आरती पहले ही उतार दी। उन्होंने कहा कि तुम अमर हो, और उन्होंने कहा कि तुम्हें कुछ और करना नहीं है, पूजा-पाठ करो, सब पाप कट जाएंगे; उसकी अनुकंपा अपार है, वह तुम्हारे सब पाप काट देगा। तो वे तुम्हें नचवाते हैं; कि तुम तो हनुमान-चालीसा पढ़ते रहो; कि तुम तो गीता को दोहराते रहो, कंठस्थ करते रहो।
सबै नचावत कोउ नहिं पावत, मारत मुंह मुंह मरिया।।
और इस तरह बस मुंह से मुंह मारते-मारते, बकवास ही बकवास करते-करते, वे खुद भी मरते हैं और तुम्हें भी ले डूबते हैं।
अबकी बेर सुनो नर मूढ़ो, बहुरि न ल्यो अवतरिया।।
गुलाल कहते हैंः लेकिन अब की बार मैं तुमसे कहता हूं कि हे मूढ़ो, अब जागो! अब सुन लो! ताकि फिर तुम्हें दुबारा पैदा न होना पड़े; ताकि फिर तुम्हें दोबारा इस जाल में, इस जंजाल में, इस अंधकार में न उलझना पड़े।
कह गुलाल सतगुरु बलिहारी, भवसिंधु अगम गम तरिया।।
अगम्य है इस भवसागर को पार करना। लेकिन गुलाल कहते हैं: सदगुरु मिल जाए तो असंभव भी संभव हो जाता है। कोई मिल जाए तो उस पार पहुंच गया, किसी की उपस्थिति तुम्हारे लिए प्रमाण बन जाए उस पार पहुंचने की, तो असंभव भी संभव हो जाता है, फिर तुम्हारे जीवन में एक नई किरण का सूत्रपात होता है, तुम फिर वही नहीं रह जाते जो तुम हो, तुम वह होने लगते हो जो तुम्हें होना चाहिए।
जीवन की जगी आग!
दिग्-दिगंत दहके!!
पवनांदोलित हुलास,
छल-छल छलके विलास।
सौरभ के मेले हैं--
ठौर-ठौर, आस-पास,
पुष्प को मिला सुहाग!
मधु-महंत महके!!
दिग्-दिगन्त दहके!!!
कनबतियां कलियों की
बरजोरी अलियों की;
मौसम के अधरों पर--
.ग.जलें रंगरलियों की;
जै जैवंती-विहाग!
रागवंत चहके!!
दिग्-दिगंत दहके!!!
जिस दिन सदगुरु मिलता है, उस दिन वसंत आ जाता है।

जीवन की जगी आग!
दिग्-दिगंत दहके!!
चारों तरफ हुलास छा जाता है।
पवनांदोलित हुलास,
छल-छल छलके विलास।
सौरभ के मेले हैं--
ठौर-ठौर, आस-पास,
पुष्प को मिला सुहाग!
... जब गुरु मिलता है तो ऐसी ही घटना घटती है, जैसे...
पुष्प को मिला सुहाग!
मधु-महंत महके!!
दिग्-दिगंत दहके!!!
तुम अभी कली की तरह हो, फूल हो सकते हो। तुम अभी बीज की तरह हो, वृक्ष
हो सकते हो। लेकिन बीज किसी वृक्ष को देख ले तो भरोसा आए संभावना की। नहीं तो आदमी अपने को उतना ही मान लेता है, जितना है। उसे ज्यादा हो सकता है, इसकी कल्पना ही नहीं उठती।
कनबतियां कलियों की
बरजोरी अलियों की
मौसम के अधरों पर--
गजलें रंगरलियों की;
जै जैवन्ती-विहाग!
रागवंत चहके!!
दिग्-दिगंत दहके!!!
सदगुरु कौन, कैसे पहचानोगे? यह सवाल पुराना और नित नया, नित नूतन: कैसे पहचानोगे? गुरु तो बहुत हैं, गुरुडमें बहुत हैं, सदगुरु कौन? गुरुओं की इस भीड़-भाड़ में सदगुरु को कैसे पहचानोगे?
कुछ सूत्र सहयोगी हो सकते हैं।
पहली बात, जो सदगुरु नहीं है, वह तुम्हारी अपेक्षाएं पूरी करेगा। जो सदगुरु है, वह तुम्हारी अपेक्षाओं को धूल-धूसरित कर देगा। जो सदगुरु नहीं है, वह हमेशा तुम्हारी मान्यताओं का समर्थन करेगा। और जो सदगुरु है, वह तुम्हारी मान्यताओं का खंडन करेगा, क्योंकि मान्यताओं के सहारे ही तुम्हारा मन जी रहा है। मान्यताएं गिर जाएं तो मन गिर जाए--और मन गिर जाए तो चैतन्य जग जाए। जो गुरु है और सदगुरु नहीं, वह परंपरावादी होगा, पुराणवादी होगा, लकीर का फकीर होगा; वह तुम्हारे अतीत को ही पीटेगा, अतीत के ही गुणगान गाएगा, क्योंकि अतीत में ही तुम्हारा अहंकार है। जितना महान तुम्हारा अतीत, उतना तुम्हारा बड़ा अहंकार। जो सदगुरु है, वह तुम्हारे अतीत को छिन्न-भिन्न कर देगा। वह कहेगाः कोई अतीत नहीं है, जो बीता सो बीता, जो गया सो गया, और जो अभी नहीं आया है, नहीं आया है।
सदगुरु तुम्हें वर्तमान में ठहराने के सारे उपाय करेगा। उन्हीं उपायों का नाम प्रार्थना है, ध्यान है। प्रार्थना का अर्थ परमात्मा के साथ हाथ जोड़ कर कुछ बातचीत करना नहीं है। प्रार्थना का अर्थ है: प्रेम में झुक जाना; इस अस्तित्व के प्रेम में झुक जाना, भीग जाना, आर्द्र हो जाना। और ध्यान का अर्थ कोई राम-राम जपना नहीं है। ध्यान का अर्थ हैः शून्य हो जाना, मिट जाना। प्रेम और ध्यान का अंतिम अर्थ एक ही हैः मिट जाना, शून्य हो जाना।
सदगुरु तुम्हें मिटने की कला सिखाएगा; तुम्हें शून्य होने की कला सिखाएगा। साधारण गुरु, मिथ्या गुरु तुम्हें भरेगा जानकारियों से और सदगुरु तुम्हारी जानकारियों को छीन लेगा। सदगुरु तुम्हें फिर आश्चर्य से भर देगा, क्योंकि ज्ञान को हटा लेगा। मिथ्या गुरु के पास किताबों की गंध होगी। मिथ्या गुरु तो ऐसा है जैसे सूखा फूल। किताबों में दबाकर रख देते हैं न; सूखा फूल; न गंध, न जीवन। किताबों में दबा हुआ फूल। बस, फूल का आभास मात्र। समझो कि फूल की तस्वीर-- फूल भी नहीं। सदगुरु खिला हुआ फूल है। अभी उसकी जड़ें भूमि में हैं। अभी हरे पत्तों पर उसका नृत्य चल रहा है। सदगुरु

जीवंत घटना है। वह किन्हीं सहारों पर खड़ा नहीं होता। वेद न हों, कुरान न हो, बाइबिल न हो, कोई अंतर नहीं पड़ता, सदगुरु का कुछ भी नहीं छिनेगा। लेकिन मिथ्या गुरु का सब छिन जाएगा। उसके तो प्राण वहीं हैं। वह तो तोतों की तरह रट रहा है। तोतों में भी कहते हैं थोड़ी ज्यादा अकल होती है। पंडितों से तो थोड़ी ज्यादा होती है।
मैंने सुना है, एक तोते को खरीदने एक पंडित गया था। सुनी उसने खबर कि अनूठा तोता आया है। तोते वाले की दुकान पर! गायत्री मंत्र बोलता है, नमोकार मंत्र बोलता है! गया देखने। बड़ा शुद्ध उसका उच्चारण था। उसने पूछा दुकानदार से कि क्या इशारे से यह गायत्री बोलेगा? तो दुकानदार ने कहाः आप देखते हैं, इसके बाएं पैर में छोटा-सा धागा लटका हुआ है, वह किसी और को दिखाई नहीं पड़ता, पतला सा धागा, काला धागा, बस, आप जरा सा वह धागा खींच देना; जिसको आप दिखला रहे होंगे, उसको पता भी नहीं चलेगा; उसके धागे को खींचते ही बाएं पैर के, यह गायत्री मंत्र बोलता है। और अगर नमोंकार मंत्र सुनना हो, तो दाएं पैर में वैसा ही धागा बंधा हुआ है, उसे आहिस्ता से खींच देना। किसी को पता नहीं चलेगा और यह तत्क्षण नमोकार मंत्र बोल देता है। पंडित ने पूछाः और अगर दोनों धागे एक साथ खींच दें? तो तोता बोलाः "उल्लू के पट्ठे! दोनों एक-साथ खींचोगे तो मैं नीचे नहीं गिर जाऊंगा!"
तोतों में भी थोड़ी ज्यादा अक्ल होती है। पंडित तो बिल्कुल तोते हैं; पोपट! पंडित के भीतर तुम्हें कोई प्रमाण नहीं मिलेगा, उसका अस्तित्व प्रमाण नहीं देगा, उसके आस-पास आभा नहीं होगी, उसके आस-पास गंध नहीं होगी, उसके आस-पास सत्य का कोई आभास भी नहीं होगा। हां, यंत्रवत दोहराएगा वह। अगर तुम खुली आंख से देखते रहो, तो बहुत अड़चन न आएगी मिथ्या को सदगुरु से अलग कर लेने में। और सदगुरु के पास बैठते ही तुम्हारे हृदय में कुछ होना शुरू हो जाएगा। आंखें गीली हो सकती हैं; तुम विवश हो सकते हो; ...
... कल मीरा यहां बैठे-बैठे रोने लगी। उसने अपने को बहुत रोका, मैं देख रहा था, वह अपने को रोकने की हर चेष्टा कर रही थी, नहीं रोक पाई। समझदार है, तो उसे बड़ी अड़चन भी हो रही थी कि कोई क्या कहेगा! और यह भी उसे पता था कि सामने ही बैठ कर मेरे बोलने में बाधा डाल रही है। फिर बाद में उसने पत्र लिखा कि मुझे क्षमा करना, मैं अवश हो गई! रोक कर भी न रोक सकी! बस हो ही गया! जितनी चेष्टा की, उतनी ही मुश्किल हो गई।
सदगुरु के पास तुम्हारे हृदय के तंतु अनायास नाचने लगते हैं। वहां
से तुम ज्ञान लेकर नहीं लौटते, एक सुरभि लेकर लौटते हो।
अब की बेर सुनो नर मूढ़ो, बहुरि न ल्यो अवतरिया।।
कह गुलाल सतगुरु बलिहारी, भवसिंधु, अगम गम तरिया।।
तन में राम और कित जाए।...
... और कहते हैं, कहां जा रहे हो खोजने?
तन में राम और कित जाए। घर बैठल भेटल रघुराय।।
लाओत्सू का वचन याद आता है। लाओत्सू ने कहा है कि सत्य को पाने के लिए अपने कमरे को भी छोड़ने की कोई जरूरत नहीं। कमरे से अर्थ घर का नहीं है, कमरे से अर्थ देह का ही है। कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि सत्य तुम्हारे भीतर विराजमान है। तलाशना है तो वहां! तन में राम और कित जाय। थोड़ी भीतर तलाश करनी है। हम तो बाहर-बाहर भागे रहते हैं, चौबीस घंटे बाहर-बाहर भागे रहते हैं। हमारी धारणा यह है कि जितनी तेजी से भागेंगे उतनी जल्दी पहुंचेंगे। इसकी फिक्र ही नहीं है कि बाहर कोई कभी कहीं पहुंचा नहीं। दौड़े बहुत लोग, गिरे अंततः, धूल में गिरे, कब्र में गिरे। बड़े-बड़े दौड़ने वाले कहां पहुंचे? सिकंदर कहां पहुंचे? नेपोलियन कहां पहुंचे? तुम कहां पहुंच जाओगे? मगर हमारा मन कहता है, अगर नहीं पहुंच रहे तो उसका अर्थ है कि तुम धीमे-धीमे दौड़ रहे; जरा तेजी से दौड़ो! उसका भी तर्क साफ समझ में आ जाता है हमें कि ठीक है, धीरे-धीरे दौड़ोगे, इतनी दौड़ मची है, इतने लोग जा रहे हैं, पिट जाओगे। जरा तेजी से दौड़ो! यह संघर्ष है दुनिया, यह प्रतिस्पर्धा है दुनिया, यहां टक्कर मारो जोर से, यहां किसी की फिक्र न करो, लोगों के कंधों पर सिर रखो, लोगों के सिरों की सीढ़ियां बनाओ--मगर चढ़ो! लक्ष्य सामने रखो कि दिल्ली पहुंच कर रहेंगे; कि दिल्ली दूर नहीं है!

और दिल्ली जाकर क्या करोगे? दिल्ली में राजघाट है, जो दिल्ली गया वह राजघाट पहुंच जाता है। फिर पड़े हैं चारों खाने चित राजघाट में।
बाहर दौड़-दौड़ कर सिवाय मृत्यु के हाथ कुछ आता है! मगर सब दौड़ रहे हैं, इसलिए स्वभावतः हम भी दौड़ने लगते हैं। भीड़ का एक प्रभाव होता है। अगर तुम पचास-सौ आदमियों के साथ कहीं जा रहे हो, अगर सब तेज चल रहे हों तो तुम भी तेज चलने लगते हो बिना इसकी फिकर किए कि जा कहां रहे हैं, पहले पूछ लें! किसलिए जा रहे हैं? नहीं लेकिन उनकी तेजी संक्रामक होती है। बीमारी की तरह लग जाती है। अगर दो-चार सौ आदमियों की भीड़ मस्जिद में आग लगाती है, कि मंदिर में आग लगाती है, तुम भी आग लगाने में सम्मिलित हो जाते हो। हिंदू धर्म खतरे में है! इस्लाम खतरे में है! खतरे में है तो रहने दो खतरे में! इस्लाम के न होने से क्या बिगड़ जाएगा? कि हिंदू धर्म के न होने से क्या बिगड़ने वाला है? होने से ही क्या भला हो गया है? अच्छा ही है खतरे में है! मगर सुना कि इस्लाम खतरे में है कि तुम चले। और कभी तुम्हें इस्लाम की खबर नहीं आती। खबर ही तब आती है जब खतरे में होता है। हिंदू धर्म से तुम्हें कुछ और लेना-देना नहीं है। मगर अगर कोई चिल्ला दे कि खतरे में है, कि बस भागे! फिर तुम ऐसा काम कर गुजरोगे जो तुम अकेले कभी भी नहीं कर सकते थे। मनोवैज्ञानिक इस पर बहुत खोज करते हैं। और वे कहते हैं कि भीड़ का एक अपना अलग मनोविज्ञान होता है। व्यक्ति अकेला नहीं कर सकता जो काम... अगर एक-एक मुसलमान से पूछो कि तुमने यह जो मंदिर जलाया, तुम अकेले जला सकते थे? तो वह कहेगा कि नहीं। एक-एक हिंदू से पूछा कि तुमने यह जो मस्जिद जला दी, तुम अकेले जला सकते थे? वह कहेगा कि नहीं। मुझे ख्याल ही नहीं आता जलाने का। यह बात ही गलत लगती। मगर भीड़ जला रही थी, मैं क्या करूं, मैं तो सम्मिलित हो गगया।
हमें सम्मिलित होने की आदतें हो गई हैं। जहां भीड़ जा रही है, हम उसी तरफ चल पड़ते हैं। और सारी भीड़ बाहर जा रही है। उस संबंध में सब राजी हैं-- हिंदू मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध सब बाहर जा रहे हैं। छोटा सा बच्चा अनुकरण करना सीखता है। बाप जहां जा रहे हैं, वह भी करने लगता है वही। आस-पास के लोग जो कर रहे हैं, वह भी करने लगता है वही। सबको कहीं पहुंचना है बाहर। कोई नहीं बताता कहां पहुंचना है। सब उससे कहते हैं, बड़े होकर पता चल जाएगा। और बड़ा होते-होते वह इतना बुद्धू हो जाता है कि फिर खुद भी नहीं पूछता कि कहां जा रहे हो? फिर वह अपने बच्चों को कहने लगता है: घबड़ाओ मत, जब बड़े हो जाओगे, तुमको भी पता चल जाएगा।
किसी को पता नहीं चल रहा है कहां हम जा रहे हैं, क्यों हम धन इकट्ठा कर रहे हैं? क्यों पद, क्यों प्रतिष्ठा? क्या मिलेगा? क्या खाक मिल जाएगा अगर सारी दुनिया भी तुम्हें जान लेगी? अगर तुम्हारा नाम दीवाल-दीवाल पर भी होगा, तो भी क्या हो जाएगा? क्या पा लोगे? ! और जिसे तुम पाने की तलाश कर रहे हो, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। जिसे तुम खोजने निकले हो, वह खोजने वाले में मौजूद है। चलो, उसको ही ध्याएं! उसकी ही तलाश करें!
आओ फिर से ध्याएं,
चंद्रमुखी संध्याएं,
औ, सूर्यमुख सबेरे!
गोपन व्यापारों को--
कहा नहीं जाता है,
किंतु कहे बिन भी तो--
रहा नहीं जाता है;
आओ पुनः रचाएं,
संकेत की ऋचाएं;
औ" सप्तपदी फेरे!
औ" सूर्यमुख सबेरे!!
राग-रंगी चितवन में--
ओर-छोर बंध जाएं,
पर्वत-से मनसूबे--
बिन साधे सध जाएं,

आओ फिर पिंघलाएं,
अलगाव की शिलाएं,
औ" अजनबी अंधेरे!
औ" सप्तपदी फेरे!!
आलिंगित श्वासों में--
फिर आदिम गंध भरें,
दुष्यन्ती रागों में--
शाकुन्तल छन्द भरें,
आओ पुनः जगाएं,
सोई स्वर-बल्गाएं,
औ" गीत-वन घनेरे!
औ" सप्तपदी फेरे!!
आओ फिर से ध्याएं,
चंद्रमुखी संध्याएं,
औ" सूर्यमुख सबेरे!
चांद भी भीतर है और सूरज भी भीतर है। भीतर तुम्हारे पूरा आकाश है। उस भीतर की विराटता का नाम "राम" है।
तन में राम और कित जाय।...
... और भाई, तुम कहां चले, गुलाल कहते हैं! जितना दूर निकल जाओगे अपने
से उतने ही राम से दूर निकल जाओगे। भीतर आओ, लौटो!
घर बैठल भेटल रघुराय।।
मैं तुमसे कहता हूं! घर बैठे-बैठे उस परम सत्य से मिलन हो जाता है। कहीं जाना नहीं पड़ता। इंच भर यात्रा नहीं करनी पड़ती।
जोगी जती बहु भेष बनावै।...
जोगी हैं, जती हैं, न-मालूम क्या-क्या भेष बना रहे हैं! कोई धूल लपेटे बैठा है, किसी ने तिलक-टीके लगा रखे हैं, कोई उलटा खड़ा हुआ है, किसी ने उलटे- सीधे शरीर को तोड़ा-मरोड़ा है, इस सबसे क्या लेना-देना! क्यों राम को सता रहे हो? जरा सोचो तो, जब तुम सिर के बल खड़े हो, तो राम पर क्या गुजर रही है! कि जब तुम उपवास कर रहे हो, तो किसको उपवास करवा रहे हो? राम को ही करवा रहे हो। क्योंकि वही तो बैठा है तुम्हारे भीतर। जब कांटों की सेज पर सो रहे हो, तो किसको सुला रहे हो? क्यों व्यर्थ के उपद्रव खड़े कर रहे हो? मगर इन व्यर्थ के उपद्रवों का बड़ा सम्मान है। इनसे अहंकार को तृप्ति मिलती है, आदर मिलता है।
जोगी जती बहु भेष बनावै।...
... फिर न मालूम किस-किस तरह के वेष बनाते हैं लोग! अगर तुम जोगियों के अलग-अलग वेष देखो, अलग-अलग उनके रंग-ढंग देखो, तो बड़े हैरान हो जाओगे। एक से एक मूढ़ता दिखाई पड़ेगी। हालांकि हर मूढ़ता कहीं किसी बहुत गहरे सत्य से शुरू हुई। जैसे तुम्हें मिल जाएंगे कनफटे जोगी, जो कान को फाड़ लेते हैं। अब हुआ न पागलपन! कान के फाड़ने से क्या होगा? लेकिन यह प्रक्रिया शुरू हुई एक महान सदगुरु से, गोरख से। गोरख के मानने वाले अपने को कनफटा जोगी कहते हैं। और गोरख ने कहा था यह, कि फाड़ो अपने कान के पर्दे ताकि मुझे सुन सको! और इन मूढ़ों ने कान के पर्दे वगैरह तो नहीं फाड़े, कान ही फाड़ लिया। गोरख की बात कर रहे हैं कि बहरे न रहो, वज्र-बधिर हो तुम, थोड़ा सुनो हम क्या कह रहे हैं, ये कान फाड़ कर बैठ गए हैं!
मैं दिल्ली के एक घर में मेहमान था। जिनके घर मेहमान था, वे किसी महात्मा के बड़े भक्त थे। उन्होंने कहा कि हमने महात्मा जी को भी आपसे मिलने बुलाया है; बड़े अद्भभुत महात्मा हैं! मैंने कहा, उनकी खूबी क्या है? कहा, लंगोट के पक्के हैं! खूब खूबी बताई! खैर ठीक है, अब आ रहे हैं तो, लंगोट के पक्के----! और सच में वे लंगोट के पक्के थे। ऐसा कसकर लंगोट बांधा हुआ था कि भीतर के राम पर क्या गुजर रही होगी! ब्र 152 चर्य का अर्थ लंगोट का पक्का होना हो गया।
हजार तरह की मूढ़ताएं चल पड़ी हैं। और एक-से-एक वेष!

दुनिया में वेषभूषा प्रतियोगिताएं होती हैं, यह तो भला हो जोगी- जातियों का कि भाग नहीं लेते, नहीं तो उनको कोई जीत नहीं सकता। और वे जैसी कारगुजारियां कर सकते हैं, दूसरा कर भी नहीं सकता। उसका उनको बहुत अयास होता है।
मुझे याद है, एक योगी मेरे गांव में हुआ करते थे, वे किसी को भी डरा कर पैसे ले लेते थे। और उनके डराने का ढंग ऐसा था कि कोई भी डर जाए। सिर्प लंगोटी बांधते थे वे और साथ में एक जंजीर रखते थे और एक बड़ी चट्टान। चट्टान जंजीर में बंधी हुई, उसको लेकर वे चलते थे। और किसी के भी घर के सामने खड़े हो जाएं, वे जितना मांगे, कि पांच रुपए चाहिए, कि दस रुपए चाहिए, तो देना पड़े। अगर न दो, तो वहीं भीड़ लगा कर उपद्रव खड़ा कर दें। उपद्रव उनका यह था कि वे जननेंद्रिय में--अपना लंगोट निकाल कर फेंक देते--और जननेंद्रिय में जंजीर बांध कर जनेन्द्रिय से उस चट्टान को उठवा कर दिखाते। भीड़ लग ही जाए! और घर के बाल-बच्चे-स्त्रियां, लोग कहें कि भइया तुम पांच रुपये लो और जाओ! यह काम तुम कहीं और दिखाना! और वे कहीं, यह तो कुछ नहीं, अरे चलती कार को खींच लूं!
अगर तुम्हें यह सब जोगी-जतियों का तमाशा देखना हो तो कभी कुंभ के मेले में पहुंच जाना चाहिए! वहां सब कमबख्त इकट्ठे होते हैं! उनका दर्शन करके तुम्हारा चित्त बड़ा प्रसन्न होगा।
जोगी जती बहु भेष बनावै। आपन मनुवां नहिं समझावै।।
और सब उपद्रव करते हैं, एक बात भर नहीं करते कि अपने मन को हल नहीं करते, उस मन के पार नहीं जाते।
पूजहिं पत्थल जल को ध्यान।...
पत्थर को पूजेंगे, जल का ध्यान करेंगे--सूर्य-नमस्कार हो रहा है! पत्थरों पर रंग पोत लेंगे। और देर नहीं लगती, किसी भी पत्थर पर रंग पोत लो, हनुमानजी हो गए! पूजा शुरू!!
मैंने सुना है, एक सूफी फकीर अपने शिष्य पर बहुत प्रसन्न हुआ और जब वह जाने लगा यात्रा पर--वह काबा की यात्रा को जा रहा था--तो जिस गधे पर बैठकर वह यात्रा कर रहा था, वह अपने शिष्य को दे दिया। फकीर तो चला गया, अब शिष्य ने कहा कि गुरु का गधा है, कोई साधारण गधा तो है नहीं यह, इसकी सेवा करो! तो वह उस गधे की सेवा करता था। संयोग की बात गधा मर गया। ज्यादा सेवा की होगी! गधों को सेवा की आदत होती भी नहीं। कुछ ज्यादा ही सेवा कर दी दीखता है! ज्यादा नहलाया-धुलाया होगा, रगड़-रगड़ कर, उसका खात्मा कर दिया, वह मर गया। मर गया तो उसने उसकी समाधि बनाई। और समाधि पर बैठकर रो रहा था। क्योंकि गुरु एक दान दे गए थे, एक भेंट कर गए थे, पता नहीं क्या राज था उसमें--और यह मर गया! अब जो कर सकते थे, समाधि बना दी संगमरमर की, उस पर बैठा रो रहा था फूल चढ़ा कर। गांव में और लोग आए, उन्होंने भी देखा और सोचा कि जरूर कोई महापुरुष की समाधि है। और कोई फूल चढ़ा गया, कोई पैसा चढ़ा गया। चढ़ोतरी बढ़ने लगी। वह आदमी वहीं बैठा रहे, चढ़ोतरी इकट्ठी करने लगा वह, धीरे-धीरे उसने वहां एक मंदिर बना लिया। गधे की तो बात ही भूल-भाल गया वह। काफी भीड़-भाड़ इकट्ठी होने लगी वहां! लोग मनौतियां करने लगे। मनौतियां पूरी भी होने लगीं। मनौतियों का बड़ा मजा है; अगर सौ आदमी मनौती करें, गधे की कब्र ही हो, तो भी पचास की तो गणित के नियम से ही पूरी हो जाने वाली है। जिनकी पूरी हो गई, वे तो चढ़ोतरी चढ़ाने आएंगे। और जिनकी पूरी नहीं हुई, वे किसी और गधे की कब्र की तलाश करेंगे। धीरे-धीरे जिनकी पूरी होगी, उनकी भीड़ बढ़ती जाएगी। और जब हजारों लोग कहेंगे कि हमारी मनौती पूरी हुई, हमारी पूरी हुई, तो नए आने वाले लोग भी सम्मोहित होते हैं। कि जब इतने लोगों की पूरी हुई, तो हमारी भी होगी; क्यों नहीं होगी? अरे, श्रद्धा का तो फल मिलता ही है!
फिर काबा से गुरु वापस लौटा। इधर तो मंदिर बन गया था, समाधि लग गई थी। गुरु को देखकर शिष्य को याद आया कि अरे, यह क्या मैंने किया? एकदम गुरु के पैर पकड़ लिए, कहा, क्षमा करिए, माफ करिए! मगर आप बड़ा चमत्कारी गधा दे गए थे। लोगों की मनौतियां पूरी हो रही हैं! और लोगों की हों या न हों, मेरे तो भाग्य खुल गए! धन की वर्षा हो रही है। झरत दसहुं दिस मोती! मेला ही लगा रहता है यहां। गुरु ने कहा, तू फिक्र मत कर, यह गधा था ही चमत्कारी! इसकी

मां भी बड़ी चमत्कारी थी! शिष्य ने पूछा कि इसकी मां के संबंध में कुछ समझाइए। उसने कहा, समझाना क्या, अरे जैसे तू इसकी कब्र का मजा ले रहा है, इसकी मां की कब्र का मजा हम ले रहे हैं! हमारे गांव में इसकी मां की हमने कब्र बनवा ली है। यह खानदानी चमत्कारी था! यह कोई साधारण गधा नहीं था, बड़ा पहुंचा हुआ गधा था।
पत्थर पूजे जाते हैं, मिट्टी पूजी जाती है, पानी पूजा जाता है। किससे तुम पूजा करवा रहे हो--और कभी इसका सोचा? पत्थर के सामने किसको झुका रहे हो? राम को झुकने के लिए कहां-कहां ले जा रहे हो! राम की कितनी कवायदें करवा रहे हो!
पूजै पत्थल जल को ध्यान। खोजत धूरहिं कहत पिसान।।
धूल हाथ लगती है जिंदगी भर में, मगर धूल को तुम आटा समझ रहे हो! धूल बटोर रहे हो और समझ रहे हो भोजन है। मिट्टी, पत्थर, इनसे पुष्टि नहीं होगी; इनसे तृप्ति नहीं होगी; इनसे परितोष नहीं होगा।
आसा तृस्ना करै न थीर।...
असली काम कब करोगे? कि तृष्णा को थिर करो, कि वासना की दौड़ को रोको, कि भविष्य की आशा का त्याग करो।
आसा तृस्ना करै न थीर। दुविधा-मातल फिरत शरीर।।
और आशा-तृष्णा के चक्कर में पड़े हुए, पागल हुए, दीवाने हुए... दुविधा- मातल शब्द बड़ा प्यारा है! अंग्रेजी में एक शब्द हैः स्कीजो179ोनिया। ठीक इसका अनुवादः दुविधा-मातल। जो दो में बंट गया है, उसको कहते हैंः स्कीजो179ोनिक। जो एक नहीं है, जो दो हैं। पल में कुछ, पल में कुछ। और करीब-करीब सभी इसी हालत में हैं। अभी देखो तो बड़े प्रसन्न थे, अभी देखो तो रो रहे हैं! अभी देखो तो बड़े प्रेमपूर्ण मालूम हो रहे थे, अभी देखो तो लट्ठ लेकर खड़े हो गए हैं! अभी कहते थे तुम्हारे बिना न जी सकूंगा, अब कहते हैं कि तुम्हें बिना मारे न जी सकूंगा। जरा लोगों का तुम... दुविधा-मातल, दो में बंटे हैं और दीवाने हैं। दुविधा-मातल फिरत सरीर।
लोक पुजावहिं घर घर धाय।...
और इनकी आकांक्षा एक ही है कि लोग इनको पूजें। इनकी आकांक्षा परमात्मा पाने की नहीं है। पूजा मिले, सम्मान मिले, सत्कार मिले! लोग कहें संत हो तुम, महात्मा हो तुम! "लोक पुजावहिं घर घर धाय। " और इसके लिए घर-घर जाते हैं। बजाते हैं चमीटा घर-घर के सामने।
दोजख कारन भिस्त गंवाय।।
और इस अहंकार की पूजा से नरक में पड़ोगे।
दोजख कारन भिस्त गंवाय।।
और नरक के लिए बहिश्त को, स्वर्ग को गंवा रहे हो। अहंकारशून्य होना स्वर्ग को पा लेना है, अहंकारपूर्ण होना नरक में पड़ जाना है।
सुर नर नाग मनुष औतार। बिनु हरिभजन न पावहिं पार।।
एक बात पक्की स्मरण रखना कि परमात्मा की स्मृति जब तक तुम्हारे प्राण-प्राण में न उठने लगे, श्वास-श्वास में न उठने लगे, तब तक भटकते ही रहोगे। तब तक कितने ही पत्थर पूजो, कितनी ही गंगा जाओ, कितनी ही काशी, कितने ही काबा, कुछ लाभ नहीं होने का। रोएं-रोएं से प्रभु का स्मरण उठना चाहिए।
मैं अकिंचन बन गया हूं,
द्वार पर आकर तुम्हारे!
दर्द की सरिता उफनती,
ढह रहे मन के कगारे,
मैं जिधर भी देखता हूं--
बेबसी आंचल पसारे
आज निष्फल हो रहे हैं--
धैर्य के परितोष सारे,
धार का तृण बन गया हूं,
द्वार पर आकर तुम्हारे!
आंसुओं के पालने में--

पीर ने मुझको झुलाया,
याद के गीले करों ने--
थपकियां देकर सुलाया;
लोरियों के संग जगते--
दुधमुहे सपने बिचारे;
धूल का कण बन गया हूं,
द्वार पर आकर तुम्हारे!
शब्द से इतना भरा हूं,
हो रही अवरुद्ध वाणी
पढ़ सको तो स्वयं पढ़ लो--
याचनाओं की कहानी;
हिचकियों में डूबती हैं,
करुण गीतों की पुकारें,
चिर निमंत्रण बन गया हूं,
द्वार पर आकर तुम्हारे!
सब तरफ परमात्मा मौजूद है, अगर तुम्हें भीतर दिखाई पड़ जाए तो फिर द्वार-द्वार में वही मौजूद है, पत्ते-पत्ते में वही मौजूद है। मगर पहला अनुभव होना चाहिए स्वयं के भीतर। और वह अनुभव एक ही तरह हो सकता है: हरि भजन। हरिभजन औपचारिकता नहीं होनी चाहिए। औपचारिकता हुई तो व्यर्थ है। अनौपचारिक होना चाहिए। औपचारिक का अर्थ है: करना है, इसलिए कर रहे हैं, कर्तव्य निभा रहे हैं, कि रोज पांच मिनट बैठ कर माला फेर लेते हैं, हरिभजन कर लेते हैं। जल्दी-जल्दी करते हैं कि समय खराब न हो। आंख खोल-खोल कर घड़ी देखते रहते हैं कि पांच मिनट तो नहीं हो गए! ऐसे नहीं चलेगा। प्राणपूर्ण होना चाहिए; आह्लादपूर्ण होना चाहिए; मस्ती में डूबकर होना चाहिए; समय भूल कर होना चाहिए; कण-कण नाचे तुम्हारा, रोआं-रोआं पुलकित हो, हर्षोन्माद से भरे, तब जानना कि हरि भजन।
और यह हो सकता है। इसमें जरा अड़चन नहीं है। सिर्प तुम्हारी चेतना जो बाहर दौड़ रही है, उसे भीतर की तरफ दौड़ना है। भीतर दौड़ते ही हरिभजन शुरू हो जाता है। क्योंकि राम का अनुभव होता है तो उत्सव शुरू हो जाता है।
लो फिर से आ गए
मिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!
फिर अलि के दल आए,
बगिया गुन-गुन गाए;
सौरभ के मृग छौने--
कस्तूरी-धन लाए;
गोरे कुछ सांवरे,
प्रसून हुए बावरे;
लो फिर से आ गए--
खिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!!
फिर यम-संयम डोले,
मंत्र हुए मिठबोले,
फगुनाहट कण-कण में-
वासंती रस घोले,
सीप सरीखी पलकें,
मादक सपने छलकें;
फिर आए प्रण के व्रण--
छिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!
फिर सांसें गरमाईं,
अंगारे भर लाईं,
चंदन-तन कसने को--

फिर बाहें अकुलाईं,
अंग-अंग में अनंग,
छेड़ रहा जल-तरंग;
फिर आए उधड़े मन--
सिलने के दिन पिया!
मिलने के दिन पिया!
लौटो भीतर, तो मिलन का क्षण आ जाए! और एक दफे झलक मिल जाए, स्वयं के भीतर जो विराजा है, तो सारा जगत उसी के अस्तित्व से भर जाता है।
कारन धै धै रहै बुलाय।...
और वह तुम्हें बुला रहा है, रह-रह कर बुला रहा है, मगर तुम सुनो तब! तुम इतने ऊहापोह में उलझे हो, तुम इतनी दौड़ में लगे हो, आपाधापी में, कि सुने कौन?
तातें फिर फिर नरक समाय।।
और इसी आपाधापी में तुम बार-बार नरक में गिर रहे हो, बार-बार दुःख में गिर रहे हो।
अबकी बेर जो जानहु भाई।...
कितनी बार कर चुके यह भूल, अब जागो! अब मत दोहराओ इसे!
अवधि बिते कछु हाथ न आई।।
चूक जाओगे मनुष्य का जन्म तो फिर मुश्किल होगा। यह अवधि है, यह ठीक-ठीक समय है, जिसका उपयोग कर लो, क्योंकिः अवधि बिते कछु हाथ न आई। और किसी योनि में परमात्मा नहीं पाया जा सकता। मनुष्य चौरास्ता है। इससे सब तरफ रास्ते जाते हैं। चाहो तो वापस लौट जाओ चौरासी कोटि योनियों में, चाहो तो परमात्मा की राह पकड़ लो।
सदा सुखद निज जानहु राम।...
और एक दफा भीतर की पहचान हो जाए, तो पाओगे सदा सुख की वर्षा हो रही है।
झरत दसहुं दिस मोती।
कह गुलाल न तौ जमपुर धाम।।
और यदि नहीं यह किया, तो गुलाल कहते हैंः मेरी मजबूरी है, कहना पड़ेगा,
कि फिर जाओगे यम के हाथों में; फिर-फिर मृत्यु के हाथों में पड़ोगे। क्रांति घट सकती है। परमात्मा के सामने झुक जाओ--अपने भीतर ही, झुक जाओ!
यों तो मेरा तन माटी है,
तुम चाहो कंचन हो जाए!
तृषित अधर कितने प्यासे हैं,
तृष्णा प्रतिपल बढ़ती जाती,
छाया भी तो छूट रही है,
विरह-दुपहरी चढ़ती जाती;
रोम-रोम से निकल रही हैं-- जलती आहों की चिंगारी;
यों तो मेरा मन पावक है,
तुम चाहो चंदन हो जाए!
मेरे जीवन की डाली को--
भायी कटु शूलों की माया,
आज अचानक अरमानों पर--
सारे जग का पतझर छाया,
असमय वायु चली कुछ ऐसी,
पीत हुई चाहों की कलियां, यों तो सूखी मन की बगिया, तुम चाहो नंदन हो जाए!
अब तो सांसों का सरगम भी-- खोया-खोया सा लगता है,
अनगिन यत्न किए मैंने पर-- राग न कोई भी जगता है;

साध-मींड़ के खिंचने पर भी-- स्वर-सड़ान नहीं हो पाता;
यों तो टूटी-सी मन-वीणा,
तुम चाहो कंपन हो जाए!
मेरा क्या है इस धरती पर-- सिर्प तुम्हारी ही छाया है, चांद-सितारे, तृण-तरु पल्लव,
सिर्प तुम्हारी ही माया है,
शब्द तुम्हारे, अर्थ तुम्हारे,
वाणी पर अधिकार तुम्हारा,
यों तो हर अक्षर क्षर मेरा,
तुम चाहो वंदन हो जाए!
झुको, भीतर झुको! अपने ही भीतर झुको, वहीं काबा और वहीं कैलाश! और भीतर झुक जाओ तो क्रांति घट जाए-- मिट्टी सोना हो सकती है; सूखी बगिया नंदन हो सकती है; टूटी वीणा फिर अपूर्व रागों से भर सकती है।
यों तो हर अक्षर क्षर मेरा,
तुम चाहो वन्दन हो जाए!
आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
चौथा प्रवचन

मोक्ष पुरस्कार है संसार को ठीक-ठीक जी लेने का

पहला प्रश्नः ओशो, परमात्मा क्या है, कौन है, कहां है?

विमला! परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं। इसलिए न तो कहा जा सकता है कि कौन
है और न कहा जा सकता है कि कहां है। परमात्मा तो एक अनुभव है। जैसे प्रेम एक अनुभव है। कोई पूछेः प्रेम कौन है, प्रेम कहां है? तो प्रश्न निरर्थक होगा। उसका कोई सार्थक उत्तर नहीं हो सकता। लेकिन परमात्मा के संबंध में हम सदियों से ऐसे प्रश्न पूछते रहे हैं। क्योंकि पंडित-पुरोहित यही समझाते रहे हैं कि परमात्मा व्यक्ति है।
परमात्मा है इस पूरे विराट अस्तित्व का नाम। तो या तो यहां है, या कहीं भी नहीं है। देख सको तो अभी है, न देख सको तो कभी नहीं है। प्रेम उसके लिए है, जो प्रेम अनुभव कर सके। लेकिन जिसके हृदय में प्रेम का झरना न फूटता हो, वह पूछेः प्रेम क्या है? तो कैसे उसे उत्तर दें? और क्या कोई भी उत्तर उसे तृप्त कर पाएगा? जिसे प्यास न लगी हो, जिसने कभी जल का एक घूंट न पिआ हो, जिसने कभी जाना न हो प्यास की तृप्ति का आनंद, वह पूछे प्यास क्या है, प्यास की तृप्ति का आनंद क्या है--कैसे उसे उत्तर दो?
सदगुरु नहीं बता सकते कि परमात्मा कहां है, कौन है; लेकिन प्यास को प्रज्वलित कर सकते हैं। तुम्हारे भीतर एक अभीप्सा जगा सकते हैं। एक खोज शुरू हो सकती है। और वह खोज धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर ही पड़े बीज में अंकुरण ले आती है। परमात्मा तुम्हारे भीतर है, तुम्हारे प्रेम की क्षमता का नाम है, तुम्हारे प्रेम की परिपूर्णता की धारणा है। जब तुम्हारा प्रेम बेशर्त हो, जब तुम्हारा प्रेम ऐसा हो कि तुम्हें मिटा जाए, तुम्हारा प्रेम जब इतना विराट हो कि जैसे बूंद खो जाए सागर में ऐसे तुम अपने प्रेम में खो जाओ, तो जो तुम जानोगे, उस अनुभव का नाम परमात्मा है। न उसे शब्दों में बांधा जा सकता, न सिद्धांतों में, न शास्त्रों में। सब उपाय उसे बांधने के व्यर्थ हो जाते हैं।
वह अभिव्यक्त होता ही नहीं। हां, अनुभव होता है।
सभी चीजें जो अनुभव होती हैं, जरूरी नहीं कि अभिव्यक्त भी हो सकें। तुम्हारे जीवन में ऐसे बहुत अनुभव हैं, जो अभिव्यक्त नहीं हो सकते। अभिव्यक्त करोगे, मुश्किल में पड़ोगे। तुम जानते हो समय क्या है। लेकिन कोई अगर ठीक-ठीक पकड़ ले तुम्हें और पूछे कि आज जान कर ही रहूंगा कि समय क्या है, तब तुम थोड़ा चौंकोगे, उत्तर तुम न दे पाओगे। और ऐसा नहीं कि तुम नहीं जानते कि समय क्या है। तुम जानते हो, भलीभांति जानते हो। लेकिन जो जानते हो, उसे जना देना जरूरी नहीं है।
तुमने गुलाब के फूलों में सौंदर्य देखा; सुबह के ऊगते सूरज में सौंदर्य देखा; रात आकाश तारों से भरा हो, तुमने सौंदर्य देखा; तुम जानते हो सौंदर्य क्या है। लेकिन परिभाषा कर सकोगे? ठीक-ठीक गणित की तरह, जैसे दो और दो चार होते हैं, ऐसी परिभाषा कर सकोगे? नहीं कर पाओगे। अब तक नहीं कोई कर पाया। सौंदर्य पर कितने शास्त्र लिखे गए हैं, लेकिन एक भी शास्त्र सफल नहीं हुआ। सौंदर्य को कोई बता नहीं पाया। सौंदर्य को जाना है लोगों ने, तुम भी जान सकते हो। लेकिन सौंदर्य को जानने के लिए एक संवेदनशीलता चाहिए, प्रमाण नहीं। हृदय में अनुभव का झरोखा चाहिए। तुम नाच सको सूरज को ऊगता देखकर, तुम फूल को खिलते हुए देख कर आश्चर्य-विमुग्ध हो सको, तुम तारों से भरी रात से आंदोलित हो सको, तुम्हारे भीतर गीत के झरने फूटने लगें, तो तुम जान पाओगे सौंदर्य क्या है। और परमात्मा तो परम सौंदर्य है। तुमने प्रेम किया है--न किया हो परम प्रेम, लेकिन ऐसा कोई मनुष्य है जिसने प्रेम न किया हो? पत्नी को किया हो, बेटे को किया हो, मां को किया हो, मित्र को किया हो; किसी न किसी को तुमने चाहा है, इतना चाहा है कि अपना जीवन भी दे सको, लेकिन बता सकोगे प्रेम क्या है? !

ये छोटे-मोटे प्रेम भी अभिव्यक्त नहीं होते और परमात्मा तो प्रेम की पराकाष्ठा है।
विमला! जानना ही चाहती हो कि परमात्मा क्या है, तो झुकने की कला सीखो, समर्पित होने का राज समझो। अकड़े खड़े हैं हम, अपने अहंकार में जकड़े खड़े हैं हम--और जानना चाहते हैं परमात्मा क्या है! परमात्मा को भी मुट्ठी में रखना चहाते हैं। जैसे धन रख लिया है तिजोड़ी में बंद करके, ऐसा ही परमात्मा मिल जाए तो तुम उसे भी तिजोड़ी में बंद करके रख लो। ताकि तुम दावा कर सको कि परमात्मा मेरे पास है और तुम्हारे पास नहीं; ताकि मुहल्ले-पड़ोस के लोगों को तुम बता सको कि तुम क्या हो, अरे, दो कौड़ी के हो! परमात्मा कहां है तुम्हारे पास! परमात्मा हमारी तिजोड़ी में बंद है। तुम परमात्मा पर भी कब्जा करना चाहते हो; तुम परमात्मा को भी अपना परिग्रह बनाना चाहते हो; अपनी सम्पदा। और यह ढंग नहीं है परमात्मा को जानने का। परमात्मा को जानने का एक ही ढंग हैः झुको, मिटो, मरो!
गोरख ने ठीक कहा हैः
मरौ हे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरनी मरौ, जिस मरनी गोरख मरि दीठा।।
गोरख ने कहा है कि मैंने एक ऐसी मीठी मृत्यु पाई है। वही मैं तुमसे कहता हूं कि तुम भी मरो, वैसी ही मीठी मृत्यु मरो। मीठी और मृत्यु! अहंकार मरे, तो इससे मधुर कोई अनुभव नहीं है। अहंकार मरे तो अमृत का स्वाद मिले। और गोरख कहता हैः ऐसी मरने की एक कला है कि मैं मरा तो मैंने देखा।... जिस मरनी मरि गोरख दीठा। एक ऐसी भी मृत्यु है जो महाजीवन से जोड़ देती है; और एक ऐसा भी जीवन है जो हम केवल क्षुद्र में गंवाते हैं।
होशियार, प्रज्ञावान तो मृत्यु को भी परमात्मा का द्वार बना लेते हैं। और नासमझ, मूढ़ जीवन को भी परमात्मा के लिए दीवाल बना लेते हैं। झुको ताकि उसका हाथ तुम्हारे सिर पर पड़ सके। उसके पैरों पर सिर रखो। मत पूछो कि उसके पैर कहां हैं! तुम जहां सिर रख दोगे, वहीं उसके पैर हैं। वृक्ष के सामने झुक जाओगे तो वहीं उसके पैर हैं। पत्थर के सामने झुक जाओगे तो तुमने पत्थर को रूपांतरित कर दिया। पाषाण भी परमात्मा हो जाता है तुम्हारे झुकने से। क्योंकि तुम्हारे झुकने से तुम्हारे भीतर कोई संवेदनशीलता का द्वार खुलता है, तुम्हें दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। अहंकार का पर्दा है आंख पर--और तो कोई पर्दा नहीं है।
झुका हर माथ है तब तक!
तुम्हारा साया है जब तक!!
सिद्धि हो तुम शक्ति भी हो,
त्याग भी आसक्ति भी हो;
तुम्हीं आराधना-पूजा,
भावना हो भक्ति भी हो;
वंदना हो वंद्य भी हो;
गीत हो तुम गद्य भी हो;
अभय हूं शीश पर मेरे,
तुम्हारा हाथ है जब तक!
ज्ञान हो तुम ज्ञेय भी हो, प्राण हो तुम प्रेय भी हो; सिद्धि हो तुम साधना भी,
ज्ञान हो तुम ज्ञेय भी हो; राग हो तुम रागिनी भी,
दिवस हो तुम यामिनी भी;
क्यों डरूं मैं घन तिमिर से, कृपा का प्रात है जब तक!
ध्यान हो ध्यातव्य भी हो, कर्म हो कर्तव्य भी हो;
तुम्हीं में सब समाहित है, चरण हो गंतव्य भी हो;

दान हो तुम याचना भी,
तृप्ति हो तुम कामना भी;
अमर बन कर रहूंगा मैं,
तुम्हारा गात है जब तक!
झुका हर माथ है तब तक!
तुम्हारा साया है जब तक!!
झुकना सीखो! और मत पूछो किसके सामने झुकना है। वे तो सब बहाने हैं। मंदिर में झुको कि मस्जिद में, काबा में झुको कि काशी में, सब बहाने हैं। राज समझ लो तो काशी और काबा जाने की जरूरत नहीं। अपने कमरे में ही झुक जाओ। पतंजलि ने अदभुत सूत्र दिया है। योग-सूत्रों में इससे ज्यादा बहुमूल्य और कोई सूत्र नहीं है। पतंजलि ने बड़े साहस की बात कही है। सत्य को पाने की विधियों की चर्चा में एक विधि कही हैः परमात्मा। परमात्मा और विधि! हम तो आमतौर से सोचते हैं कि परमात्मा तो सारी विधियों का लक्ष्य है; लेकिन पतंजलि कहते हैं कि परमात्मा केवल एक आलंबन है, एक निमित्त मात्र, जिससे कि तुम मिट सको। बहाना है एक। जैसे खूंटी पर कोट टांग देते हैं। खूंटी न हो तो खीली पर टांग देते हैं। खीली न हो तो द्वार-दरवाजे पर टांग देते हैं। इससे क्या फर्क पड़ता है! कोट कहीं भी टंग जाता है। ऐसे ही समर्पण कहीं भी टंग जाता है। समर्पण असली है, कहां तुमने टांगा, यह असली सवाल नहीं है।
समर्पण की कला सीखो, विमला! अहंकार को थोड़ा विसर्जित करो! मत पूछो परमात्मा कहां है, कौन है? उसका कोई पता है, कोई ठिकाना है! कोई चिट्ठी- पत्री लिखनी है उसको!
एक आदमी ने परमात्मा को पत्र लिखा। पत्नी बीमार थी और सब उपाय कर चुका, कोई उपाय काम न आए। जब कोई उपाय काम न आए तब आदमी परमात्मा का ध्यान करता है। सोचा परमात्मा को ही पत्र लिख दूं। सीधा-सादा आदमी था, लिखा कि पचास रुपये जल्दी भेज दो। मिले परमात्मा को, केयर ऑफ पोस्टमास्टर जनरल। और क्या करें? पोस्टमास्टर जनरल को चिट्ठी मिलीः मिले परमात्मा कोः चिट्ठी पढ़ी, उसे भी दया आ गई कि आदमी निश्चित बहुत दुख में होगा। बहुत पीड़ा से लिखी थी कि पत्नी के लिए दवा चाहिए और पचास रुपये अब भेज ही दो! अब बिना पचास रुपये के काम नहीं चलेगा। पोस्टमास्टर ने और मित्रों को आफिस में बताई चिट्ठी, सबने मिल कर चालीस रुपये इकट्ठे किए और कहा कि चलो जितने हुए उतने भेज दो। चालीस रुपये मनीआर्डर से उस आदमी के नाम भेज दिए लौटती डाक से उसकी चिट्ठी आई कि हे प्रभु,... वही "परमात्मा को मिले, केयर ऑफ पोस्टमास्टर जनरल", ... कि आपने रुपये भेजे सो तो ठीक, मगर दोबारा कभी भी भेजें तो सीधे-सीधे भेजना, मार्पत मत भेजना। क्योंकि इस पोस्टमास्टर जनरल ने दस रुपये अपना कमीशन काट लिया।
तुम्हें कोई चिट्ठी लिखनी है परमात्मा को! लेकिन लोगों की धारणा यही रही है परमात्मा के बाबत। जैसे वह कोई व्यक्ति है दूर आकाश में बैठा हुआ, जिसको पुकारना है, जिससे प्रार्थना करनी है, जिससे निवेदन करना है। वह दूर आकाश में बैठा हुआ कोई भी नहीं है। हवा के कण-कण में जो है, सूरज की किरण-किरण में जो है, वृक्षों के पत्तों-पत्तों में जो है, तुममें जो है, मुझमें जो है बाहर जो है, भीतर जो है, जो है, उसका दूसरा नाम परमात्मा है। अब कोई पूछे कि जो है, वह कहां है, तो प्रश्न फिजूल लगेगा। कोई पूछे, जो है, वह कौन है, तो प्रश्न फिजूल लगेगा। परमात्मा शब्द के साथ जोड़ने से प्रश्न सार्थक मालूम पड़ता है, क्योंकि परमात्मा से हमारा अर्थ ही व्यक्ति का हो गया है। और जो है, उसे पाने के लिए कहीं भी जाने की जरूरत नहीं है। यहीं खोलो अपने हृदय के द्वार! और कल पर भी मत टालो, आज ही खोलो, अभी खोलो! लेकिन लोग परमात्मा के संबंध में जिज्ञासा करते हैं, अभीप्सा नहीं। जिज्ञासा-अभीप्सा का भेद स्मरण रखना।
जिज्ञासा तो एक तरह की बुद्धि की खुजलाहट है। जैसे कि सिर में खुजलाहट चले। अगर तुम न खुजाओ, तो कितनी देर चलेगी! अगर तुम एक दिन जिद ही कर लो कि आज खुजाएंगे नहीं, तो कुछ सेकेंड, कि कुछ मिनट, फिर खुजलाहट अपने- आप विदा हो जाएगी। कोई सदा जिंदगी भर थोड़े-ही चलती रहेगी। जिज्ञासा

खुजलाहट है; क्षणभंगुर है, उठी और गई जब तक तुम पूछते हो तब तक ही समाप्त हो जाती है। जिज्ञासा बचकानी है। कुतूहल! परमात्मा क्या है, कौन है? अभीप्सा चाहिए! अभीप्सा यानी प्यास। और ऐसी प्यास कि प्राण संकट में हों, जैसे कोई आदमी रेगिस्तान में भटक जाए और पानी न मिले दिनों तक, तो क्या वह पूछेगा पानी क्या है? क्या वह पूछेगा कि पानी का वैज्ञानिक सूत्र क्या है? अगर तुम समझाओगे भी उसको कि घबड़ा मत, पानी में क्या रखा है, एच टू ओ, उद्भजन और अक्षजन दो गैस के मिलने से पानी बनता है, तो वह कहेगा कि महाराज, मुझे क्षमा करें, मुझे न आक्सीजन से कोई प्रयोजन है, न उद्भजन से कुछ प्रयोजन है, पानी! मुझे यास लगी है। जैसे मरुस्थल में प्यास लगे! रोआं-रोआं प्यास से भरा हो! वह कुछ मिनट-दो मिनट में भूल थोड़े ही जाएगा; घड़ी-दो घड़ी में भूल थोड़े ही जाएगा। जितना समय बीतेगा उतनी प्यास गहरी होने लगेगी, उतने प्राणों को छेदने लगेगी।
अभीप्सा चाहिए, विमला, जिज्ञासा नहीं।
अभीप्सा हो तो परमात्मा को पाने से ज्यादा सरल और कुछ भी नहीं। और जिज्ञासा हो तो परमात्मा को पाने से ज्यादा कठिन और कुछ भी नहीं। जिज्ञासा बचकानी है। पूछ लिया! अच्छे-अच्छे प्रश्न लोग पूछने के आदी
हो जाते हैं। ऐसा लगता है, अच्छे प्रश्न पूछे तो सिद्ध होता है हम अच्छे आदमी हैं। देखो, कैसा गजब का प्रश्न पूछा! परमात्मा कहां है, कौन है, क्या है? दार्शनिक प्रश्न पूछा, तात्विक प्रश्न पूछा! लेकिन यह तुम्हारी प्यास है, अभीप्सा है? अगर मैं कहूं कि परमात्मा से मिला देता हूं, मिटने की तैयारी है, तो तुम कहोगी कि जरा पति से पूछना पड़े। क्योंकि शास्त्र तो कहते हैं कि पति ही परमात्मा है। तो तुम कहोगी कि अभी तो छोटे बाल-बच्चे हैं, अभी इनकी देखभाल करनी है, फिर कभी आऊंगी। मिटने की तैयारी नहीं है। परमात्मा मिल सकता हो तो क्या भेंट चढ़ाने की तैयारी है?
लोग सड़े नारियल चढ़ाते हैं। दूसरों के बगीचों से फूल चुरा लेते हैं और चढ़ाते हैं। लोगों ने बड़ी तरकीबें निकाल ली हैं। खोटे सिक्के चढ़ा आते हैं! आदमी को धोखा देते हों तो देते हों... मैं एक मंदिर के पास रहता था कुछ दिन तक, रायपुर में, तो मैंने उस पुजारी से पूछा कि पैसों में कभी, जो चढ़ोतरी में आते हैं, खोटे भी आते हैं? उसने कहा, खोटे के अतिरिक्त और आता ही क्या है! जो पैसे कहीं नहीं चलते, घिस गए, पिस गए, जिनको कोई लेने को तैयार नहीं, उनको लोग चढ़ा आते हैं। कम से कम एक फायदा है कि भगवान यह तो नहीं कह सकता कि नहीं लूंगा, कि यह खोटा है! और नारियल की दुकानें मंदिरों के सामने ही होती है। वे ही नारियल वर्षो से चढ़ रहे हैं--तुम चढ़ा आते हो दिन में, रात पुजारी फिर दुकानदार को दे जाता है, फिर सुबह बिकने लगते हैं! किसी को फिक्र ही नहीं कि नारियल के भीतर अब कुछ नहीं बचा है; सब सड़ गया है!
लेकिन परमात्मा को धोखा देना आसान मालूम पड़ता है। कोई रुकावट तो डालता नहीं, कोई बाधा तो है नहीं--और ये सड़े नारियल सस्ते मिलते हैं। लोग कह आते हैं कि मेरे लड़के को नौकरी लगा दोगे तो नारियल चढ़ाऊंगा; कि मेरी पत्नी की बीमारी ठीक हो जाएगी तो इतने का प्रसाद बांट दूंगा। परमात्मा को भी रिश्वत देने की तुम्हारी धारणा है। इससे कभी-कभी मुझे लगता है, इस देश से रिश्वत मिट नहीं सकेगी; क्योंकि रिश्वत धार्मिक है। और यह देश है धर्म-प्राण! जब हम परमात्मा तक को नहीं छोड़ते, तो ये छोटे-मोटे पुलिस वाले, तहसीलदार, डिप्टी कलेक्टर, डिप्टी मिनिस्टर, मिनिस्टर, चीफ मिनिस्टर, इनको छोड़ें! और जब परमात्मा तक लेने को तैयार है, सड़े नारियल तक ले लेता है, तो इन बिचारों की क्या बिसात! अरे, बड़े-बड़े बहे जा रहे हैं! तो तुम जानते हो कि इनको भी दिया जा सकता है। और देने में तुम्हें कोई अड़चन नहीं मालूम होती।
दुनिया में शायद भारत अकेला देश है जहां रिश्वत देने वाले को कोई अपराध-भाव अनुभव नहीं होता। न लेने वाले को कोई अपराध-भाव अनुभव होता है। अपराध-भाव अनुभव होता ही नहीं।
मेरे एक मित्र बचपन से ही इंग्लैंड में रहे, वहीं बड़े हुए, फिर भारत आए
तो उनके चाचा ने उनसे पूछा... पिता जी तो उनके इंग्लैंड में रहते थे, चाचा उनके यहां रहते थे... चाचा जी ने उनसे पूछा कि क्या नौकरी करते, बेटा? कितनी

तनख्वाह मिलती, बेटा? ऊपर से क्या मिलता है? सरलता से! यहां तो सभी से पूछा जाता है कि भई, ऊपर क्या? ऊपर की बात ऊपर की बात है। इसमें बुराई कहां है? उनको तो भारत के धार्मिक रंगों-ढंगों का कुछ ख्याल न था, गुस्से में आ गए, चांटा मार दिया अपने चाचा को। और मुझसे आकर बोले कि बड़ी झंझट हो गई, कलह मची हुई है घर में, चाचा कहते हैं एक मिनट नहीं रुकने दूंगा, निकलो यहां से! बात क्या हुई, मैंने पूछा। उन्होंने कहा कि बात यह हुई, वे मुझसे पूछते हैं कि ऊपर क्या मिलता है? मुझे इतना नीचा समझा है कि तनख्वाह के ऊपर भी और कुछ लूं! यह मेरा अपमान है। मैंने कहा कि तुम भारत में बड़े नहीं हुए, इसलिए तुम्हें भारतीय शिष्टाचार और सयता का कुछ पता नहीं है। यह तो बिल्कुल स्वाभाविक प्रश्न है। कोई न पूछे तो समझो कि अशिष्ट है। तुमने चांटा मार कर बहुत बुरा किया। उन्होंने कहा कि मुझसे नहीं रहा गया, क्योंकि यह बात ही इतनी मुझे खटकी कि यह क्या बात है--ऊपर से कितना मिलता है! क्या ऊपर से मैं कुछ ले सकता हूं?
दुनिया में किसी से भी इस तरह पूछोगे तो भद्दा माना जाएगा। सच तो यह
है कि दुनिया में लोग एक-दूसरे की तनख्वाह भी नहीं पूछते कि तुम्हें कितना मिलता है; ऊपर की तो बात छोड़ दो। तनख्वाह भी नहीं पूछते, क्योंकि हो सकता है तनख्वाह तुम्हारी कम हो और तुम्हें कहने में संकोच लगे। तो तुम्हें संकोच में डालना अभद्र है। तनख्वाह तुम्हारी इतनी न हो कि बताने में तुम्हें गौरव मालूम पड़े; तो कहीं तुम्हें झूठ बोलने पर मजबूर न होना पड़े। लेकिन इस देश में तो कोई दिक्कत ही नहीं है। यहां तनख्वाह तो हम पूछते
ही हैं--बढ़ा-चढ़ा कर लोग उसको भी बताते हैं--और ऊपर मिलता हो या न मिलता हो, नहीं मिलता हो ऊपर तो भी बताते हैं। यहां झूठ बोलना भी हमारी प्रकृति में सम्मिलित हो गया है। क्योंकि हम बड़े-बड़े झूठ बोल चुके हैं, छोटे-छोटे झूठों में क्या रखा है! पहला तो बड़ा हमने यह बोल लिया है--ईश्वर से कोई पहचान नहीं, ईश्वर को अनुभव करने की कोई संवेदनशीलता नहीं और ईश्वर को मान लिया है। --अब विमला है, इसने जरूर मान लिया होगा कि ईश्वर है, तब तो पूछती है कि ईश्वर कहां, कौन, क्या? ईश्वर को भी हम मान लेते हैं बिना जाने, बिना पहचाने, बिना अनुभव किए। इससे बड़ा और झूठ क्या होगा! स्वर्ग-नरक को मान लेते हैं, पाप-पुण्य को मान लेते हैं, मानने को हम बिल्कुल तत्पर हैं। और ध्यान रखना, जो लोग भी मानने को इतने तत्पर हैं, वे खोजने को कभी तत्पर नहीं होते। असल में खोजने से बचने का उपाय मानना है। मानने का अर्थ यह है कि भइया, माने लेते हैं, अब सिर न खाओ! अब खोज की क्या जरूरत! हम बड़े-बड़े झूठ मान लिए हैं तो छोटे-मोटे झूठों में क्या दिक्कत!
मुल्ला नसरुद्दीन अपनी पत्नी के सौंदर्य की प्रशंसा कर रहा था, कि स्वर्ग की परी है, स्वर्ग की परी! स्वर्ग से उतरी है! क्या नाक-नक्शे! परमात्मा ने अपने हाथों से गढ़ी है। और तो किसी ने देखी नहीं थी उसकी पत्नी सिर्प चंदूलाल ने देखी थी। चंदूलाल कुड़बुड़ा रहा था भीतर ही भीतर। फिर मुल्ला ने कहा कि चंदूलाल, बोलते क्यों नहीं कुछ, कहते क्यों नहीं कि जो मैं कह रहा हूं वह सच है। तुमने तो मेरी पत्नी देखी। नहीं स्वर्ग से उतरी? नहीं चेहरा-मोहरा परमात्मा ने बनाया?
अब चंदूलाल दुबले-पतले आदमी हैं, कौन झंझट ले! यह मुल्ला उपद्रवी है, एकांत में पाकर फिर दचकेगा, पटकेगा। सो चंदूलाल ने कहा कि भइया, बिल्कुल ठीक कह रहे हो, स्वर्ग से ही उतरी है और परमात्मा ने ही नाक-नक्श बनाया है; सिर्फ जरा भूल हो गई, जब स्वर्ग से गिरी तो चेहरे के बल गिरी। सो और तो सब ठीक है, चेहरा बिल्कुल नष्ट हो गया।
लोग आदी हो गए हैं। और एक झूठ को मान लो तो फिर पच्चीस झूठ उसमें से निकलने शुरू होते हैं। विमला, तुझसे कहा किसने कि परमात्मा है? मानने की जरूरत क्या? हां, जरूर जानना हैः क्या है? मत कहो परमात्मा, सिर्प क्या? और तब सम्यक यात्रा शुरू होगी। क्या है? क्योंकि इस परिवर्तनशील जगत में कुछ तो होगा जो अपरिवर्तित है। नहीं तो यह परिवर्तन भी सम्हलेगा किस पर? गाड़ी का चाक चलता है तो एक कील पर चलता है जो ठहरी रहती है। अगर कील भी चले तो चाक न चले, तो गाड़ी भी गिर जाए। कील तो ठहरी रहती है, चाक चलता है। ठहरी हुई कील के आधार पर ही चलता हुआ चाक है। इतना परिभ्रमण चल रहा है, चांद-तारे चल

रहे हैं, इतना परिवर्तन चल रहा है, मौसम के बाद मौसम, फूलों के बाद फूल, इस अनंत यात्रापथ को कोई तो कील सम्हालती होगी! वह क्या है जो सबको सम्हाले है? वह क्या है जो सबका आधार है? परमात्मा को बीच में मत लाओ अभी, क्योंकि वह शब्द बीच में ले आने से सुलझाना कठिन हो जाएगा। उस शब्द के पीछे बहुत उपद्रव हो चुका है। उस शब्द से कुछ हल नहीं हुआ। लोगों की गर्दनें कटी हैं, खून-खराबा हुआ है।
परमात्मा के नाम को लेकर जितने उपद्रव इस पृथ्वी पर हुए, किसी और नाम
को लेकर नहीं हुए। परमात्मा का नाम तो लहू के धब्बों में दब गया है। सारा इतिहास परमात्मा के नाम के कारण अमानवीय हो गया है, पाशविक हो गया है। हिंदू मुसलमानों को मार रहे हैं, मुसलमान हिंदुओं को मार रहे हैं, ईसाई मुसलमानों को मार रहे हैं, मुसलमान ईसाईयों को मार रहे हैं, ईसाई यहूदियों को मार रहे हैं--मारकाट चल रही है और परमात्मा के नाम पर!
पूछोः क्या है? और तब यात्रा शुरू हो सकती है, सम्यक। क्योंकि पहला कदम सम्यक हुआ। और अगर तुम पूछोः क्या है, तो यह बोलता हुआ कौआ, ये चिड़ियों की आवाजें, यह दूर से आता हुआ टेन का शोरगुल, यह सन्नाटा, यह सब उस "क्या" में सम्मिलित है। तब उस "क्या" में समग्रता सम्मिलित है। तब हम पूछ रहे हैंः यह अस्तित्व क्या है? इस अस्तित्व की समग्रता क्या है? और इसे पूछने के लिए एक तैयारी से गुजरना होगा। उस तैयारी को मैं ध्यान कहता हूं। ध्यान का अर्थ होता हैः हमने अब तक जो जाना, जो माना, जो समझा, जो बूझा,
उस सबको हटा कर एक तरफ रख दो, ताकि चैतन्य का दर्पण उसे प्रतिफलित कर सके जो है। शांत हो जाओ, वहां से उत्तर मिलेगा। मैं उत्तर नहीं दे सकता। न गुलाल उत्तर दे सकते हैं। न कबीर, न फरीद। कोई उत्तर नहीं दे सकता। ये बातें प्रश्न-उत्तर की नहीं हैं। ये बातें बहुत गहरी हैं। प्रश्न-उत्तर तो लहरों की तरह हैं, सागर की सतह पर होते हैं। ये बातें तो सागर की गहराई की हैं। हां, ध्यान में तुम्हें उत्तर मिलेगा। और मजा यह है, बड़ा रहस्यपूर्ण, बड़ा पहेली जैसा कि जब तुम्हारे सारे प्रश्न गिर जाएंगे तब उत्तर मिलेगा। क्योंकि जब तक मन प्रश्न उठा रहा है तब तक ऊहापोह चल रहा है, द्वंद्व मचा हुआ है, धुआं उठ रहा है। तुम्हारे चित्त में प्रतिपल धुआं उठ रहा है। तुम तो गीली लकड़ी हो। आग तो लगती नहीं, जल कर राख भी नहीं होते, धुआं ही धुआं हो।
दो मित्र हनीमून के लिए पहाड़ों पर गए थे। सुबह सुहागरात के बाद दोनों होटल के बगीचे में मिले। पहले मित्र ने पूछाः सब ठीक-ठाक है? पत्नी कहां है? क्या कर रही है? तो दूसरे ने कहाः काश, मुझे पहले से पता होता तो कभी मैं इस झंझट में न पड़ता। बस, बैठी-बैठी धुआं उड़ा रही है।... धूम्रपान की आदत रही होगी... रात भी धुआं उड़ाते-उड़ाते ही सोई और सुबह उठते ही बस धुआं उड़ाने लगी।
दूसरे ने कहाः भई, गरम तो पत्नी मेरी भी बहुत है, मगर धुआं नहीं उड़ा रही।
तुम्हारा मन गरम भी है बहुत और धुआं भी बहुत उड़ा रहा है। उत्तप्त हो तुम। वासनाएं तुम्हें उत्तप्त रखती हैं। कल्पनाएं, स्मृतियां, इच्छाएं, तृष्णाएं धुएं की लपटों की तरह तुम्हें घेरे हुए हैं। तुम्हारे दर्पण पर चारों तरफ धुआं ही धुआं है। तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता। हाथ को हाथ नहीं सूझेगा। इसलिए ऐसे सवाल उठते हैं। अगर तुम सच में ही विमला, उत्तर चाहती हो, तो कुछ करने की तैयारी दिखानी होगी। उत्तर सस्ता नहीं मिल सकता कि तुमने पूछा और मैंने दे दिया। काश, परमात्मा इतना सस्ता होता! तो एक बुद्धपुरुष उत्तर दे जाता, मामला खत्म कर जाता। परमात्मा के लिए कुछ चुकाना पड़ता है। और सबसे बड़ी चुकाने की बात है, तुम्हें अपने मन का यह धुआं हटाना पड़ता है। यह मन का सारा ऊहापोह तुम्हें उस के चरणों में चढ़ा देना होता है। अज्ञात चरण, उस पर तुम्हें समर्पित कर देना होता है अपने मन का सारा उपद्रव। और जब चित्त निर्मल होता है... तुम्हारा नाम तो प्यारा है, विमला! जब चित्त विमल होता है, जब चित्त पर कोई मल नहीं रह जाता। हम नाम तो बड़े प्यारे-प्यारे रखते हैं, मगर नामों के अर्थ की भी फिक्र नहीं करते। नाम जो दे देते हैं वे भी अर्थ नहीं समझाते कि क्या नाम दे दिया है। अब

इतना प्यारा नाम है! सारा योग इसमें आ जाए! विमल हो जाओ तो कुछ और करने को बचता है? ... और एक बार चढ़ाने की कला आ जाए--पहले कचरा-कूड़ा ही चढ़ाओ... और कुछ परमात्मा मांगता भी नहीं... और झलक मिलनी शुरू हो जाएगी। चारों तरफ तुम जगत को उसी से व्याप्त पाओगी।
भगवान नहीं है, भगवत्ता है। व्यक्ति नहीं है, शक्ति है। और एक बार चढ़ाने की कला आ जाए तो फिर प्राण और-और तड़फेंगे कि कितना चढ़ाऊं? सब चढ़ा दूं! क्योंकि जितना चढ़ाओ, उतना ही स्पष्ट होने लगता है।
जीवन भर का सुबरन,
देकर भी करता मन;
दे दूं कुछ और अभी!
तन अंगीकार करो,
मन धन स्वीकार करो;
लोभ-मोह-भ्रम लेकर--
प्राण निर्विकार करो;
प्रतिपल, प्रतियाम दूं,
सबेरे दूं शाम दूं;
जप-तप-पूजा-प्रश्मन,
देकर भी करता मन;
दे दूं कुछ और अभी
भक्ति-भाव अर्जन लो,
शक्ति-साध-सर्जन लो;
अर्पित है अंतरतम,
अहं का विसर्जन लो;
जन्म लो, मरण ले लो,
स्वप्न-जागरण ले लो;
चिर संचित श्रम-साधन,
देकर भी करता मन;
दे दूं कुछ और अभी!
यह नाम तुम्हारा हो,
धन-धाम तुम्हारा हो;
मात्र कर्म मेरे हों,
परिणाम तुम्हारा हो;
अंगुलियां सुमिरनी हों,
सांसें अनुसरणी हों;
शाश्वत स्वर आत्म-सुमन,
देकर भी करता मन;
दे दूं कुछ और अभी!
देने की कला आ जाए, तो परमात्मा अभी प्रकट हो जाए, यहीं प्रगट हो जाए। नहीं, मैं उत्तर न दे सकूंगा। लेकिन संकेत दे सकता हूं। सद्गुरू संकेत ही देते हैं, उत्तर नहीं। उत्तर तो पंडित-पुरोहित देते हैं! बुद्ध ने कहा हैः मैं तो वैद्य हूं, मैं औषधि देता हूं, उत्तर नहीं। मैं भी कहता हूं मैं वैद्य हूं; औषधि देता हूं, उत्तर नहीं। उत्तर से क्या होगा? उत्तर में से पच्चीस नये प्रश्न उठ आएंगे। जिस मन ने यह प्रश्न उठाया है, वही प्रश्न उठाने वाला मन उत्तर में से नये प्रश्न उठा देगा। प्रश्नों का कोई अंत ही नहीं है। जैसे वृक्षों पर पत्ते लगते हैं ऐसे मन में प्रश्न लगते हैं। प्रश्नों से मुक्त होना है, प्रश्नों के उत्तर नहीं पाना है। और जिस दिन निष्प्रश्न हो जाता है चित्त, उसी क्षण उत्तरों का उत्तर बरस उठता है, नहला जाता है, नया कर जाता है, पुनरुज्जीवन दे जाता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, यह कैसे दुर्दशा है कि भारत में जहां दूध-दही की नदियां बहती थीं, वहां अब शुद्ध दूध भी क्यों उपलब्ध नहीं होता?

स्वदेश! तुम सोचते हो कभी सच में दूध-दही की नदियां बहती थीं? दूध-दही
की नदियां बहतीं तो बड़ी मुश्किल हो जाती। कुछ मछलियों का भी ख्याल करो! नहाते कहां? वस्त्र इत्यादि धोते कहां? कुछ गाय-भैंसों का भी ख्याल करो! इनका क्या करते? नदियां तो पानी की ही शोभा देती हैं, दूध-दही की नदियों की जरूरत नहीं है। ये तो प्रतीक हैं; ये तो केवल कहने के ढंग हैं। कहने की बात है। इतनी सी बात कि कभी देश समृद्ध था।
लेकिन कुछ बड़ा समृद्ध था, ऐसा भी नहीं।
राम के जमाने में--जिसको महात्मा गांधी रामराज्य कहते थे। मैं नहीं
कह सकता हूं। राम का राज्य भी रामराज्य नहीं था। क्योंकि आदमी बाजारों में बिकते थे; गुलाम होते थे। दूध-दही की नदियां बहती थीं, आदमी बाजारों में बिकते थे साग-सब्जी की तरह! स्त्रियां बाजारों में बिकती थीं और दूध-दही की नदियां बहती थीं! और साधारणजन ही खरीदते हों, ऐसा भी नहीं है। शास्त्र कहते हैंः ऋषि-मुनि भी खरीदते थे। खाक ऋषि-मुनि रहे होंगे! आदमी को खरीदने में भी संकोच न खाया! और हम चलाए जाते हैं, चिल्लाए चले जाते हैं कि बड़े त्यागी, बड़े व्रती! नीलामी होती थी आदमियों की, दाम लगते थे। राजा- महाराजा, धनी लोग आते थे बाजारों में खरीदने, दाम लगाने, वह तो ठीक, ऋषि- मुनि भी आते थे!
संस्कृत में पत्नी और वधू पर्यायवाची नहीं हैं। पत्नी तो कहते हैं विवाहिता स्त्री को और वधू को कहते हैं जिसको तुम बाजार से खरीद लाए। वह नम्बर दो की पत्नी है। बाजार से खरीदी हुई। अब तो वह अर्थ खो गया, क्योंकि अब बाजार में आदमी नहीं बिकते। गरीब तो लोग रहे ही होंगे, नहीं तो कौन बाजारों में बिकने को राजी होता, तुम जरा सोचो! भूखे मरते हुए लोग तो रहे ही होंगे, नहीं तो कौन अपने बच्चों को बेचता है, तुम जरा सोचो! लेकिन हमें एक अहंकार है हमें ही नहीं सारी दुनिया में सभी देशों के लोगों को ये पागलपन होता है--कि उनका अतीत बड़ा सुंदर था, बड़ा गौरवपूर्ण था। इससे दिल को ढाढ़स बंधता है, हिम्मत मिलती है; इससे अहंकार को खड़ा करने के लिए बल मिलता है। अतीत तो हमारे हाथ में है, जैसा चाहो वैसा रचो, इतिहास तुम्हारे हाथ में है, जैसा चाहो वैसा बनाओ।
मैं नहीं मानता कि कभी भी दूध-दही की नदियां बहती थीं। हां, लोग इतनी परेशानी में नहीं थे। उसका कारण कोई रामराज्य नहीं था, उसका कारण संख्या थी। संख्या बहुत कम थी। बुद्ध के जमाने में पूरे देश की संख्या दो करोड़ थी। आज सत्तर करोड़ है। जमीन उतनी की उतनी--और कहें ठीक से तो उतनी की उतनी भी नहीं है अब, क्योंकि जमीन से हम इतना ले चुके हैं, जमीन को हम इतना चूस चुके हैं कि दिखायी पड़ती है उतनी ही है, मगर उसके सारे तत्त्व खो गए हैं-- लौटाया हमने कुछ भी नहीं है। हम लेते ही चले गए। आखिर जमीन को भी वापिस चाहिए। तुम जब फसल काट लेते हो तो तुमने जमीन के बहुत से तत्व फसल में निकाल लिए। और फिर हमारे देश में हम आदमियों को गड़ाते भी नहीं। कम से कम आदमी गड़ाओ तो जो कुछ खाया-पीआ हो, हड्डी-मांस-मज्जा बना हो, वापस मिट्टी में जाए! उसको जला देते हैं। तो जो भी उसने खाया-पीआ, उसको राख कर दिया। इस तरह हम इन ढाई हजार सालों में पृथ्वी को जलाते रहे हैं--आखिर हो तो तुम मिट्टी से बने, और मिट्टी के जो-जो तत्त्व थे, उर्वरा तत्त्व थे, उन सबको हमने नष्ट कर दिया--अब गरीबी न हो तो क्या हो; भुखमरी न हो तो क्या हो! गरीबी उन दिनों भी थी। लेकिन देश के पास इतनी जमीन थी कि आदमी अपने खाने-पीने लायक कमा लेता था। मगर तुम यह मत सोचना कि गरीब और अमीर के बीच फासला नहीं था। बहुत बड़ा फासला था। शायद आज से भी ज्यादा बड़ा फासला था। आज गरीब से गरीब आदमी भी जो कपड़े पहने हुए है, वे रामचंद्र जी को उपलब्ध नहीं थे। तुम क्या सोचते हो टेरीकाट और टेरीलिन रामचंद्र जी को उपलब्ध थे? तुम उन कल्पनाओं में मत उड़ो कि रामचंद्र जी हवाई जहाज में उड़ा करते थे! साइकिल भी नहीं थी!! हवाई जहाज में उड़ते और हाथ में धनुषबाण लेकर चलते! जरा कुछ तो सोचो, इनमें कोई तुक है! जरा हवाई जहाज में जाओ धनुषबाण लेकर! भीड़ इकट्ठी हो जाएगी, तमाशा देखने लगेंगे लोग कि भइया, तुम्हें क्या हो गया? छब्बीस जनवरी पर जा रहे हो क्या, दिल्ली? आदिवासी हो? क्या बात है? आदिवासी भी

सिर्प छब्बीस जनवरी के लिए रखते हैं तैयार अपना सामान, बाकी समय भूल जाते हैं। छब्बीस जनवरी को घिस-घिसा कर, ठीक-ठाक करके पहुंच जाते हैं।
हवाई जहाज वगैरह का सवाल नहीं था। हमारी कल्पनाएं हैं। सारी दुनिया में ये कल्पनाएं हैं। और कल्पनाओं के पीछे कारण हैं। आदमी सदा से आकाश में उड़ना चाहता रहा है--जब से उसने पक्षियों को उड़ते देखा है, तबसे उसके मन में भी उड़ने की आकांक्षा रही है, उसी अकांक्षा को अभिव्यक्ति मिली है।
एक गांव में रामलीला हुई। लंका जीत ली राम ने, पुष्पक विमान की राह देख रहे हैं। पुष्पक विमान उतरा तो सही, मगर इसके पहले कि वे दोनों बैठ पाते, लक्ष्मण जी और रामचंद्र जी--और सीता मैया--कि जिस घिर्री में पुष्पक विमान चलाया जा रहा था, ऊपर छिपे आदमी ने घिर्री खींच दी, पुष्पक विमान उठ गया। चढ़ ही नहीं पाए। तो लक्ष्मणजी ने पूछा, बड़े भइया, अगर आपके पास टाइम-टेबल हो तो जरा देख कर बताओ कि दूसरा जहाज कब छूटेगा?
कहां का टाइम-टेबल! कहां का दूसरा जहाज! रामचंद्र जी ने गुस्से से देखा लक्ष्मण जी की तरफ, कि चुप रह!
कल्पनाओं के जाल में मत उलझो। टाइम-टेबल भी नहीं था, हवाई जहाज की तो तुम छोड़ दो!
तुम पूछते होः "यह कैसी दुर्दशा है कि भारत में जहां दूध-दही की नदियां बहती थीं, वहां अब शुद्ध दूध भी क्यों उपलब्ध नहीं होता?"
स्वदेश, अशुद्ध भी उपलब्ध होता है, यह चमत्कार है! सत्तर करोड़ की संख्या--और तुम्हारी गऊमाताएं! जिनको न भोजन है, न घास-पात है, न चिकित्सा की सुविधा है।... सारी दुनिया में सबसे ज्यादा गऊमाताएं हमारे देश में हैं, और सबसे कम दूध। हमारे यहां श्रेष्ठतम गाय पांच सौ लीटर दूध देती है। श्रेष्ठतम! जापान में श्रेष्ठतम गाय तीन हजार लिटर दूध देती है। और इजरायल ने तो सबको मात कर दिया! इजरायल में श्रेष्ठतम गाय साढ़े तीन हजार लीटर दूध देती है। पूछो अपने शंकराचार्यो से कि मामला क्या है? हम गऊमाता की इतनी पूजा करते हैं और गऊमाता हम पर नाराज क्यों है? और ये दुष्ट, म्लेच्छ, इन पर गऊमाता बड़ी प्रसन्न हैं! ... तुम बस पूजा ही करते रहे! पूजा से कहीं कुछ होता है! पूजा से कुछ नहीं होता। जीवन को विज्ञान चाहिए। और भारत ने पांच हजार सालों में कोई विज्ञान पैदा नहीं किया। यह हमारी दुर्दशा का कारण है। तुम शायद सोचते होओगे कि हमारी दुर्दशा का कारण है कि लोग अब पूजा-पाठ ठीक से नहीं करते, हनुमान-चालीसा ठीक से नहीं पढ़ते, कि हनुमानजी नाराज हो गए हैं, कि काली माई प्रसन्न नहीं हैं, कि गणेश जी गुस्से में बैठे हुए हैं, इसलिए दुर्दशा हो रही है। इसलिए दुर्दशा नहीं हो रही। जीवन की बाह्यसमृद्धि के लिए विज्ञान चाहिए, भीतरी समृद्धि के लिए धर्म चाहिए।
पश्चिम भीतर से दरिद्र है--धर्म उसके पास नहीं है। और पूरब बाहर से दरिद्र है--विज्ञान उसके पास नहीं है। और अब तक हम एक ऐसा समन्वय पैदा नहीं कर पाए कि विज्ञान और धर्म साथ-साथ विकसित हो सकें। वही मेरी दृष्टि है। वैसा मैं चाहता हूं।
मैं अपने संन्यासी को चाहता हूं कि वह बाहर और भीतर की दोनों समृद्धियों को साथ-साथ संभाले।
लेकिन अब तक तुम्हें उलटी बातें सिखाई गयी हैं। तुम्हें सिखाया गया
है कि बाहर की दरिद्रता में कुछ अध्यात्म है। अगर तुम बाहर से दरिद्र नहीं हो तो तुम आध्यात्मिक नहीं हो। इस तरह की मूढ़तापूर्ण बातें सिखाई जाएंगी, तो परिणाम भी आनेवाला है फिर; तो दरिद्रता में लोग गौरव ले रहे हैं। दुर्दशा कैसी, यह तो अध्यात्म है! पहले लोग संसार को त्यागते थे, अब त्यागने की जरूरत नहीं, त्यागने को कुछ बचा ही नहीं, अब सभी त्यागी हैं। इस देश में तो त्यागी और महात्यागी। है ही नहीं कुछ त्यागने को अब! लेकिन यह पांच हजार साल के गलत शिक्षण का, गलत संस्कारों का परिणाम है।
बाहर की समृद्धि को अस्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। मनुष्य देह भी है और आत्मा भी। और परमात्मा संसार भी है, मोक्ष भी। जिस दिन हम ऐसा देखेंगे, जिस दिन हम इन दोनों को एक साथ समझेंगे--ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--उस दिन विज्ञान और धर्म के बीच तालमेल हो जाएगा। धर्म को दावे

नहीं करना चाहिए वैज्ञानिक सत्यों के, जोकि धर्म करता रहा--गलत दावे, झूठे दावे। वर्षा न हो तो यज्ञ करो! कोई लेना-देना नहीं यज्ञ से वर्षा का। कितने तो यज्ञ कर चुके तुम, क्या परिणाम है? लेकिन मूढ़ता ऐसी है कि करोड़ों रुपये हम जला देंगे। और फिर कोई नहीं पूछता कि वर्षा हुई या नहीं? विश्वशांति के लिए भी हम यहां यज्ञ करते हैं! और कोई नहीं पूछता कि विश्वशांति होती क्यों नहीं? इतने तो यज्ञ हो चुके, अब कब तक करते रहोगे?
इसका कोई संबंध नहीं है।
लेकिन मूढ़तापूर्ण बातों के लिए भी हम बड़े अजीब तर्क खोज लेते हैं! लोग तर्क खोजते हैं कि यज्ञ से जो धुआं उठता है, शुद्ध घी, गेहूं, चावल इत्यादि को जलाने से जो शुद्ध धुआं उठता है, उससे ऐसी तरंगें पैदा होती हैं कि जिनसे सारे विश्व में शांति हो जाए! एकाध घर में तो करवा के बता दो! एकाध घर में जला कर यज्ञ पति-पत्नी में तो तुम शांति करवा दो! और जहां यज्ञ होता है, यज्ञ होने के बाद पंडित-पुरोहितों में झगड़ा होता है कि कौन ने ज्यादा ले लिया, कौन ने कम ले लिया--वहीं शांति नहीं हो पाती! मार-पीट की नौबत आ जाती है। कभी-कभी पुलिस को बुलाना पड़ता है। सारे विश्व में शांति करने चले हो!
अगर पानी नहीं गिरता है तो उसके गिराने के वैज्ञानिक उपाय हैं। बादलों को दिशा दी जा सकती है; जहां जरूरत हो, वहां बादल भेजे जा सकते हैं, और जहां जरूरत न हो, वहां से हटाए जा सकते हैं। उनको दिशा दी जा सकती है। मगर दिशा देने की फुरसत किसको? हम तो अपने वेदों में राज खोज रहे हैं कि वहां कोई रहस्य मिल जाएगा। दुर्दशा का कारण यह है कि जहां धर्म की कोई गति नहीं है, कोई जरूरत नहीं है, वहां हम धर्म का उपद्रव खड़ा करते हैं।
पश्चिम में भी दुर्दशा है, क्योंकि विज्ञान वहां धर्म के जगत में अड़ंगेबाजी खड़ी करता है। विज्ञान कहता हैः कोई ईश्वर नहीं है, क्योंकि वैज्ञानिक प्रयोगशाला में ईश्वर को नहीं पकड़ा जा सकता। कोई प्रेम नहीं है, क्योंकि विज्ञान की प्रयोगशाला में प्रेम सिद्ध नहीं होता। और कोई सौंदर्य नहीं है। विज्ञान की प्रयोगशाला में कैसे सौंदर्य सिद्ध होगा? और कैसे प्रेम सिद्ध होगा, कैसे परमात्मा सिद्ध होगा? प्रार्थना को कैसे नापोगे विज्ञान के द्वारा? नहीं नाप में आती है बात, तो इनकार कर दो। पश्चिम इनकार कर देता है धर्म को--भीतर दरिद्र रह जाता है। और पूरब ने इनकार कर दिया विज्ञान को--बाहर दरिद्र हो गया।
दोनों दरिद्रता में जी रहे हैं, जब कि दोनों मिल कर समृद्ध हो सकते हैं। एक ऐसी दुनिया बनानी है जहां पूरब और पश्चिम मिलें; जहां पूरब पूरब न रह जाए, पश्चिम पश्चिम न हों ये फासले गिरें। एक ऐसी दुनिया बनानी है जहां धर्म और विज्ञान साथ-साथ हाथ में हाथ लेकर नाचें, उत्सव में सम्मिलित हों। कोई विपरीत होने की जरूरत नहीं। लेकिन दोनों को समझदारी बरतनी पड़ेगी। विज्ञान को ऐसे वक्तव्य देने बंद करने पड़ेंगे जो धर्म के जगत में हस्तक्षेप करते हैं, और धर्म को ऐसे वक्तव्य देने बंद करने पड़ेंगे जो अवैज्ञानिक हैं। अगर इतना हम कर सकें, तो यह दुर्दशा, यह दुर्भाग्य सौभाग्य में बदल सकता है।
अब तुम कह रहे हो कि दूध तक शुद्ध नहीं मिलता। तुम सोचते हो पानी शुद्ध मिला है? पानी भी अशुद्ध है। दूध से भी ज्यादा अशुद्ध। दूध में लोग पानी ही मिला रहे हों तो भी ठीक, मगर पानी भी अशुद्ध है।
मैं जिस युनिवर्सिटी में विद्यार्थी था, वहां जो ग्वाला हमारे छात्रावास में दूध लाता था, उसको लोग "संत जी" कहते थे। बड़ा धार्मिक आदमी था! राम-नाम की चदरिया ओढ़े रहता था! हमेशा हाथ में माला लिए रहता था! कुछ भी काम करता रहे लेकिन उसके ओंठ कंपते रहते--राम-राम, राम-राम! सो लोग संत जी कहें न तो क्या कहें? जब मैं पहली दफा पहुंचा, उसका मैंने दूध देखा, तो उसमें तो पानी ही पानी था। एक दिन वह आया, मैंने उससे कहाः तू भीतर आ! दरवाजा मैंने बंद किया।... उन दिनों मेरा शरीर दुबला-पतला नहीं था। एक सौ नब्बे पौंड वजन था मेरा! ... मैंने संत जी की गर्दन पकड़ी, उन्होंने कहाः आप क्या करते हैं? मैंने कहा, आज तुम सच-सच बोल दो! मैंने सुना तुम लोगों के सामने कसमें भी खाते हो। तुम अपने लड़के की कसम खाकर कहते हो कि मैं कभी दूध

में पानी नहीं मिलाता। मगर तुम्हारा दूध बिल्कुल पानी है। तुम सच बोलो आज अन्यथा मैं तुम्हें बाहर नहीं जाने दूंगा। तो बोला, जब आप मानते ही नहीं, और जब आप इतने नाराज हैं, तो अब आपसे क्या छिपाना! मगर जो मैं कहता हूं वह सच है। मैं लड़के की कसम इसीलिए तो खाता हूं--एक ही तो मेरा लड़का है, आप क्या सोचते हैं कसम मैं ऐसे खा सकता हूं अगर बात सच न हो! मैं कभी दूध में पानी नहीं मिलाता, हमेशा पानी में दूध मिलाता हूं।
देखते हो, उसने कानूनी व्यवस्था निकाली परमात्मा तक को धोखा देने की? कसम खाने में डर नहीं है उसको।
वे जमाने गए जब लोग दूध में पानी मिलाया करते थे, अब तो पानी में दूध मिला रहे हैं। और पानी भी कहां-कहां का! पानी भी कैसा-कैसा! मगर फिर भी तुम्हें भरोसा रहता है कि दूध पी रहे हो, तो हृष्ट-पुष्ट हो रहे हो-- तुम्हें कम-से-कम भरोसा रहता है। भरोसे से जो भी लाभ थोड़ा-बहुत होता होगा। आत्म-सम्मोहन से जो लाभ होता होगा होता होगा। दूध वगैरह से अब कुछ लाभ हो सकता नहीं तुम्हें।
मेडिकल कालेज में बाल-स्वास्थ्य विभाग के प्रोफेसर ने परीक्षा में प्रश्न पूछाः छोटे बच्चों के लिए गाय का दूध ज्यादा गुणकारी है या मां का दूध?
विद्यार्थी ने जवाब दियाः सर, शिशुओं के लिए मां का दूध अधिक फायदेमंद है।
प्रोफेसर ने पूछाः उससे कौन-कौन से लाभ है।
उत्तर मिलाः सर, पहला लाभ तो यह है कि मां के दूध में पोषक तत्वों की मात्रा ज्यादा होती है; दूसरा यह कि मां का दूध शारीरिक तापक्रम पर रहता है; और तीसरा लाभ यह है कि मां का दूध शिशु के लिए सुपाच्य होता है।
प्रोफेसर बोलाः दो लाभ और बताओ।
परीक्षार्थी को कुछ याद नहीं आ रहा था, वह सिर खुजलाने लगा।
प्रोफेसर ने कहाः तुम दो महत्वपूर्ण फायदे गिनाना भूल गए हो।
विद्यार्थी होशियार था। जब उसे अपना किताबी ज्ञान स्मरण नहीं आया, तो अंततः उसने स्वयं के कामनसेंस से सोच-विचार कर उत्तर दियाः सर, गाय के दूध की तुलना में मां के दूध में दो खूबियां और हैं। पहली तो यह कि उसे बिल्ली नहीं पी सकती। और दूसरी यह है कि ग्वाला उसमें पानी नहीं मिला सकता। स्वदेश, लेकिन मां का दूध कब तक पिओगे? और अगर शुद्ध ही होने का बहुत आग्रह ही है, तो शुद्ध पानी पिओ, दूध की तो आशा छोड़ दो। तुम्हारे शंकराचार्यो के रहते इस देश में शुद्ध दूध नहीं संभव हो सकता। गऊमाता को बचाना है, तुम्हें थोड़े ही बचाना है! तुम मरो तो मरो। तुम जाओ भाड़ में! गऊमाता बचनी चाहिए। धीरे-धीरे एक दिन तुम पाओगेः गऊमाताएं बच गईं, आदमी नदारद! खड़े हैं शंकराचार्य महाराज और गऊमाताएं!
सारी दुनिया में एक व्यवस्था है। उस व्यवस्था में गाय के प्रति कोई व्यर्थ का आदर नहीं है, लेकिन गाय के प्रति वैज्ञानिक दृष्टि है। किसी को चिंता नहीं है कि गाय को भोजन मिले, ठीक वैज्ञानिक विधि से रहने की व्यवस्था मिले, पोषक तत्त्व मिलें, तो गाय से दूध इतना हो सकता है--और हमारे पास गाएं सर्वाधिक हैं--कि दूध में पानी मिलाने की कोई जरूरत न रह जाए। लेकिन चिंता हमें वह नहीं है, हमारी चिंता तो बड़ी अजीब हैः गऊमाता बचनी चाहिए! हड्डी-हड्डी हो रही है गऊमाता, मगर बचनी चाहिए! इन हड्डी- हड्डी गऊमाताओं को लेकर तुम कैसे दूध ला सकोगे? और तुम्हारी भूमि की सारी उर्वरा-शक्ति खो गई है। और तुम्हारे मस्तिष्क की भी सारी उर्वरा शक्ति खो गई है। तुम्हारा मस्तिष्क भी बिल्कुल जड़ हो गया है।
अब इस मस्तिष्क की जड़ता में तुम्हारे पास दो ही उपाय बचे हैं। एक तो पुराणपंथी का उपाय है, कि कल्पनाजगत में खोया रहे अतीत के, कि वाह वे दिन, जब दूध-दही की नदियां बहती थीं! इसका मजा लो। आंख बंद करके और इसी कल्पना में खोए रहो और मजा लो। यह शेखचिल्लीपन है। इसका कोई भी मूल्य नहीं है। लेकिन इससे एक धोखा बना रहता है। और दूसरा रास्ता है, जिसको तुम क्रांतिकारी कहते हो, कम्यूनिस्ट कहते हो, उसका; वह भविष्य की कल्पना में

खोया हुआ है। वह कहता हैः आएगा स्वर्णयुग। होने दो क्रांति, क्रांति के बाद स्वर्णयुग आएगा।
तुम्हारा स्वर्णयुग या तो जा चुका है या आने वाला है। आज? आज तो किसी तरह गुजार लो। और गुजारने में ये दोनों बातें अफीम का काम करती हैं। मार्क्स ने कहाः धर्म अफीम का नशा है जनता के लिए। ठीक कहा। लेकिन मार्क्स को यह कल्पना भी नहीं थी कि कम्यूनिज्म भी एक दिन अफीम का नशा हो जाएगा। जैसा कि धर्म अफीम का नशा है, वैसा ही कम्यूनिज्म भी अफीम का नशा हो जाएगा जनता के लिए। वह नशा अतीत में ले जाता है, यह भविष्य में ले जाता है। न अतीत का कोई अस्तित्व है, न भविष्य का कोई अस्तित्व है। अस्तित्व है आज का, आज के यथार्थ का। लेकिन आज के यथार्थ का सामना करने के लिए प्रतिभा चाहिए! और फिर हम आदी हो जाते हैं। हम दीनता के आदी हो गए हैं, हम दुर्दशा के आदी हो गए हैं, अगर कोई हमारी दीनता और दुर्दशा को तोड़ना भी चाहे तो हम तोड़ने न देंगे--यह भी तुम ख्याल रखना। क्योंकि तुम्हारी सारी आदतें हीन और दुर्बल होने की हो गई हैं; और उन आदतों को तुम बड़ा गौरव देते हो, तुम उनको बड़ा सम्मान देते हो। अगर कोई व्यक्ति सब कुछ छोड़-छाड़ कर नंगा खड़ा हो जाता है सड़क पर, भिक्षापात्र लेकर, तुम कहते होः महात्यागी! कब तुम यह सम्मान बंद करोगे? तुम अपने मुनियों को कब हाथ जोड़ कर नमस्कार करोगे कि बस, बहुत हो चुका, अब काम-धाम में लगो; अब यह पूजा और आगे नहीं चलेगी। ये निकम्मे साधु-संतों की जमातें तुम कब तक झेलोगे? मगर, कोई आशा नहीं दिखाई पड़ती कि तुम्हारे चित्त में कुछ भी विचार की किरण जग रही हो।
सृजनहीन, असृजनात्मक साधु-संतों के गिरोह तुम्हारी छाती पर बैठे हुए हैं। और तुम मजे से उनकी पूजा कर रहे हो और गुणगान कर रहे हो। तुम्हें यह ख्याल भी नहीं आता कि धर्म को सृजनात्मक होना चाहिए। इस पृथ्वी को थोड़ा सुंदर करो! जैसा आए थे और इसे पाया था, उससे कुछ थोड़ा सुंदर छोड़ जाओ! यह धार्मिक आदमी का लक्षण होना चाहिए। यहां दो फूल और खिला जाए, यहां दो गीत और गा जाए, एक बांसुरी की टेर और सुना जाए! धार्मिक व्यक्ति नापा जाना चाहिए उसकी सृजनात्मकता से। तुम अजीब नाप बना रखे हो! अजीब तुम्हारा मापदंड है! नकारात्मक तुम्हारा मापदंड है। छोड़-छाड़ कर भाग गया जो, भगोड़ों को तुम कहते होः महापुरुष!
जब तक तुम भगोड़ों को महापुरुष कहोगे तब तक यह जीवन समृद्ध नहीं हो सकता। तब तक भीतर तो तुम भी इच्छा यही रखते हो कि कब मौका मिले, हम भी भाग जाएं। मजबूरी है कि पत्नी है, बच्चे हैं, उलझ गए चक्कर में, नहीं तो दिल तो यही है कि बैठते कहीं धूनी रमा कर! और करते क्या धूनी रमा कर? करना क्या है धूनी रमा कर? चिलम भरवाते, दम लगाते और गांजे के नशे में समझते कि परमात्मा का अनुभव हो रहा है, समाधि के द्वार खुल रहे हैं। भभूत रमा कर बैठ जाते और दिल खुश होता, क्योंकि हजारों लोग पैर छूते, नमस्कार करते।
बंद करो यह पूजा! सृजनात्मक को पूजा दो तो यह दुर्दशा मिटे। जो इस जगत
को कुछ दान देता हो, इस जगत को कुछ जोड़ जाता हो--तोड़ नहीं जाता हो--उसको सम्मान दो। लेकिन दीनता-दरिद्रता आध्यात्मिक है! दीनता-दरिद्रता में अध्यात्म जैसा कुछ भी नहीं। अध्यात्म तो एक कला है, जीवन को सुरभि में जीने की। अध्यात्म तो एक कला है, जीवन को उत्सव बनाने की, समारोह बनाने की; जीवन को नृत्य और गीत और संगीत बनाने की। मगर आदतें पुरानी पड़ जाएं तो बड़ी मुश्किल है।
चंदूलाल को सरकारी काम से पंद्रह दिन के लिए बंबई जाना पड़ा। सरकारी भत्ते पर ही उन्हें एक आलीशान होटल में रहने मिला। पांच-छह दिन में ही वे बहुत परेशान हो उठे। एक दिन झल्ला कर वेटर से गुस्से में बोले, सुनो मिस्टर, मेरे लिए जल्दी से दो जली हुई रोटियां, एक प्लेट कंकड़ों से भरी दाल, एक प्लेट अधकच्चे चावल और बुरी तरह जली हुई मिर्चदार सब्जी लेकर आओ। वेटर ने बाइज्जत सिर झुका कर पूछाः साहब, कुछ और?
चंदूलाल बोलेः हां, सब चीजें लाने के बाद तुम मेरे सामने की कुर्सी पर बैठ कर घर-गृहस्थी का रोना रोओ, मेरा सिर चाटो, मुझे सताओ, क्योंकि मुझे घर की याद सता रही है!

आदत हो गई है। रोज जब तक पत्नी सामने बैठ कर और खोपड़ी न खाए तब तक भोजन करने में मजा नहीं आता। दुर्दशा की तुम्हारी आदत हो गई है। और इस आदत को तोड़ना है। क्योंकि यह लंबी आदत है, कठिन है। मैं कोशिश कर रहा हूं आदत को तोड़ने की तो मुझे गालियां पड़ रही हैं--जितनी पड़ सकती हैं।
गरीबी पाप है। जघन्य पाप है। गरीब होना केवल एक बात का सबूत है कि तुम में प्रतिभा नहीं है। और गरीबी तोड़ने का हर उपाय किया जाना चाहिए। लेकिन तुम अगर समझते हो कि गरीबी में कोई गौरव है, तो तुम कैसे तोड़ोगे? तुम तो चिपकाओगे उसे छाती से। तुम तो कहोगे कि मेरी गरीबी न छीन लेना, नहीं तो मेरा सारा अध्यात्म गया। मुझे समृद्ध मत कर देना; मैं नहीं चाहता समृद्धि।
एक जैन मुनि को मुझे मिलाया गया। उन्होंने अपना एक गीत सुनाया, जिस गीत में उन्होंने कहा था कि मुझे सम्राटों के सिंहासनों से कुछ प्रयोजन नहीं, मैं लात मारता हूं सिंहासनों पर। मैं तो अपनी धूल में ही मस्त हूं, मुझे महल नहीं चाहिए। मेरे लिए तो धूल ही काफी है। और भी दस-पच्चीस लोग इकट्ठे थे, उनके साथ आए थे, वे सिर हिला कर कहने लगेः वाह-वाह! मैंने कहाः बंद करो वाह-वाह! एक तो वह आदमी गलत-सलत बक रहा है और तुम वाह-वाह कर रहे हो! तुम अगर अपनी धूल में मस्त हो, तो गीत लिखने की क्या जरूरत है? कोई सम्राट तो गीत नहीं लिखता कि मैं अपने राज-सिंहासन पर ही मस्त हूं, मुझे तुम्हारी धूल से कोई लेना-देना नहीं। कभी किसी सम्राट ने लिखा ऐसा गीत, कि मैं तो अपने स्वर्ण-सिंहासन पर ही ठीक हूं, तुम करो मजा अपनी धूल में, मुझे कोई ईर्ष्या नहीं है? कोई सम्राट ऐसा क्यों नहीं लिखता? यह तुम्हीं को क्यों सूझती है? जरूर ईर्ष्या है। ईर्ष्या भी है, निंदा भी है। और ईर्ष्या और निंदा भीतर गहरे प्रलोभन, लोभ, वासना के सबूत हैं।
और मैंने कहाः मैं कुछ बुरा नहीं मानता। क्यों तुम्हें स्वर्ण-सिंहासन से ऐतराज है? उनको कुछ मेरा पता नहीं था, मेरे सोचने-समझने का ढंग पता नहीं था। उन्होंने कहाः स्वर्ण-सिंहासन में है ही क्या? अरे, स्वर्ण भी मिट्टी है! मैंने कहा जब मिट्टी ही है, तो तुम्हारी धूल में कौन सी खूबी है? अगर स्वर्ण-सिंहासन भी मिट्टी है, तो वह भी मिट्टी पर बैठा है बेचारा, बैठा रहने दो। तुम भी मिट्टी में पड़े, तुम भी पड़े रहो। तुम इसमें गौरव क्यों ले रहे हो?
वे अगलें-बगलें देखने लगे।
मैंने कहाः अगलें-बगलें देखने से नहीं चलेगा। अगर दोनों मिट्टी हैं,
तो भेद क्या है? फिर तुम महात्मा किस बात के हो? जरूर तुम्हें सोने में मिट्टी दिखाई नहीं पड़ती। कहते हो, मगर तुम्हें सोने में सोना दिखाई पड़ रहा है और मिट्टी में मिट्टी दिखाई पड़ रही है। और यह सब बकवास कर रहे हो तुम और तुम अपनी मिट्टी में मस्त नहीं हो। दिखला रहे हो। तुम्हारी सूरत पर मस्ती की कोई छाप नहीं है। तुम्हारी आंखों में कोई मस्ती का खुमार नहीं है। लेकिन तुम अपने दंभ को परिपोषित कर रहे हो।
दरिद्रता में हो भी कैसे सकती है मस्ती! कम से कम पेट तो भरा हो! "भूखे भजन न होय गोपाला", भूखे पेट से गालियां ही निकल सकती हैं, गीत नहीं। और बहुत भूखा हो तो गालियां तक नहीं निकल सकतीं। आखिर गालियां निकलने के लिए भी तो कुछ थोड़ी ताकत चाहिए। नंगे, भूखे, लेकिन हमने एक तरकीब खोज ली; हम नंगे पन को न मिटा सके, भिखमंगेपन को न मिटा सके, तो हमने एक आध्यात्मिक तरकीब खोज ली; हमने एक बड़ा दार्शनिक रास्ता खोज लिया; हमने इसको मढ़ दिया एक तर्क में; हमने एक सुंदर तर्कजाल खड़ा कर लिया--यह तर्कजाल वही है, जो तुमने उस कहावत में सुना कि अंगूर खट्टे हैं। जो नहीं मिल सकता, बेहतर है कह दो खट्टा है। जो नहीं पा सकते हम, कह दो हमने त्याग दिया है। जो हमारे हाथ के बाहर है, पहुंच के बाहर है, कह दो हम चाहते ही कब हैं? हमने पहुंच तक अपना हाथ ले जाने की आकांक्षा ही कब की है? सिकुड़ जाओ, संकुचित हो जाओ।
यह दुर्दशा है कि हम सिकुड़ गए हैं, संकुचित हो गए हैं।
फैलना सीखो! फिर से अभियान लो फैलने का और कहो पूरे मन से बाहर की भी समृद्धि उतनी ही मूल्यवान है जितनी भीतर की समृद्धि। और दोनों में कोई विरोध नहीं है। सच तो यह है कि दोनों में एक संग-साथ है। दोनों साथ-साथ ही

जी सकते हैं। दोनों का विकास साथ-साथ ही हो सकता है। गरीब आदमी को फुरसत कहां कि संवेदना को बढ़ाए! कठोर हो जाता है। पथरीला हो जाता है। गरीब आदमी को अवसर कहां कि काव्य को समझे, संगीत को समझे, वीणा के तार छेड़े! रात थका- मांदा लौटता है, सुबह सूरज ऊगने के पहले फिर वापिस काम पर चला जाता है--काम ही खा जाता है उसे! कुछ अवसर चाहिए, अवकाश चाहिए; कुछ विश्रांति के क्षण चाहिए, गीत सुने, संगीत सुने। कुछ अवसर चाहिए कि जीवन की विराट समस्याओं पर विचार कर सके; कि जीवन क्या है, इसकी शोध में लग सके।
दुर्दशा है इस कारण कि हमने अपने हाथ से एक मूढ़तापूर्ण जीवनदृष्टि को अंगीकार कर लिया है। और आज कोई उसे मूढ़तापूर्ण कहे, तो हमें गुस्सा आता है। क्योंकि वह हमारे पांच हजार साल की धारणाओं को चोट पहुंचा रहा है। हमारे चित्त को बड़ा क्रोध लगता है। हमें लगता है कि हमारे अहंकार को भारी चोट पहुंचाई जा रही है। और एक अर्थ में ठीक ही है, चोट पहुंचाई जा रही है। चोट पहुंचानी जरूरी है। कोई तुम्हें झकझोरे न तो तुम जागोगे भी नहीं। धर्म ज्योति ने पूछा है, कि आप सुबह-शाम एक तूफान की तरह आते हैं और झकझोर कर चले जाते हैं। वह तो ठीक है कि मैं तूफान की तरह आता हूं, झकझोर कर चला जाता हूं, मगर तुम्हारी हालत यह है कि मैं झकझोरता हूं, मैं गया और तुमने वापस जो धूल-धवांस गिर गई, उसको फिर अपने सिर पर फेंका। हाथी नहा लेता है न नदी में और फिर बाहर आकर सूंड से धूल को अपने ऊपर फेंक लेता है। तो मैं तुम्हें झकझोर जाता हूं, मैं गया और तुम फिर सम्हल जाते हो; तुम फिर अपने पुराने कपड़े पहन लेते, अपनी टोपी सम्हाल लेते, चारों तरफ देखते हो कोई देख तो नहीं रहा है और चल पड़े फिर पुरानी चाल! फिर वही चाल, फिर वही आदत, फिर वही देखने के ढंग।
मेरा तो काम स्वाभाविक वही है जो तूफान का है। सदियों से वही काम रहा
है बुद्धों का कि वे तुम्हें झकझोरें, क्योंकि तुम सो-सो जाते हो; तुम्हें जगाएं, क्योंकि तुम बार-बार सपनों में खो जाते हो।
जाग सको तो यह देश दुनिया के समृद्धतम देशों में एक हो सकता है। कोई कारण नहीं है कि हम असमृद्ध हों, कि हम गरीब हों। हम गरीब हैं अपने कारण से। हमने गरीबी को ओढ़ रखा है। और हम आलसी हो गए। हम भयंकर आलसी हो गए।
दो आदमी एक झाड़ के नीचे सोए हुए थे--रहे होंगे शुद्ध भारतीय, आर्यसमाजी। जामुन का झाड़, एक जामुन गिरी। दोनों पड़े आवाज सुनते रहे। आखिर एक ने कहा कि भई, यह कैसी दोस्ती? अरे, दोस्त वह जो वक्त पर काम आए। जामुन गिरी और तुझसे इतना भी नहीं हो सकता कि उठा कर मेरे मुंह में डाल दे! उसने कहा, अब तुम्हें याद आई कि दोस्ती क्या! और जब वह कुत्ता अभी-अभी मेरे कान में "जीवनजल" छिड़क रहा था, तब तुमने भगाया भी नहीं।
एक आदमी ने ये बातें सुनीं। उसने कहा, हद हो गई! बड़े पहुंचे हुए महात्मा मालूम होते हैं। उसने दो जामुन उठा कर दोनों के मुंह में डाल दीं। महात्माओं की सेवा तो करनी ही चाहिए! जाने को ही था कि उन्होंने कहा, ठहर भाई, गुठली कौन निकालेगा? तू कहां चला? जरा, गुठली तो निकालता जा!
एक गहन काहिलपन, एक सुस्ती, एक निराशा हमारी आत्मा पर एक अंधेरी रात
की तरह बैठ गई है। तुम्हें झकझोरा जाना जरूरी है। तूफान न आए तो तुम उठने वाले नहीं। आंधी न आए तो तुम उठने वाले नहीं।
और धीरे-धीरे तुमने मान लिया है कि जीवन बस, ऐसा ही होता है। दुख आते हैं तो तुम कहते हो, क्या करें, जीवन तो दुख है ही। तुम बड़े अच्छे-अच्छे शास्त्र उद्धरण करने में बड़े कुशल हो गए हो, कि बुद्ध ने कहा नहीं कि जीवन दुख है! जन्म दुख, जवानी दुख, जरा दुख, सारा जीवन दुख है। तो दुख तो आएगा ही। जीवन में पीड़ा होती है तो तुम कहते हो, क्या करें, जन्मों-जन्मों के कर्मो का फल भोग रहे हैं। तुम्हें खूब सिद्धांत आ गए हैं! सारी दुनिया के पापी जैसे यहीं पैदा हो रहे हैं! और किसी ने जन्मों-जन्मों में दुष्कर्म नहीं किए, तुम्हीं ने किए हैं! परमात्मा तुमसे कुछ नाराज है! और तुम्हीं पुराने भक्त। सदियों से तुम्हीं गुहार मचा रहे हो। तुमने जितना शोरगुल मचाया है, किसी और ने मचाया है परमात्मा के नाम पर? परमात्मा तुमसे कुछ नाराज है कि तुमको ये सब दुख दे रहा है? तो लोग बड़े होशियार हैं। वे कहते हैं, परीक्षा ले रहा है। परीक्षा से उतरोगे तभी भवसागर पार होएगा।

हम खोजे चले जाते हैं तर्को पर तर्क। एक तर्क का जवाब मिल जाए तो हम दूसरा खोज लेते हैं।
रात दो बजे मुल्ला को जगा कर
घबराई हुई बीबी बोली, सकपका कर--
"सुनते हो, खटर-पटर की आवाज आ रही है
लगता है घर में घुसे हैं चोर,
पड़े क्या हो जी
उठो,
मचा दो शोर!"
नसरुद्दीन बोला--
"गुलजान, सोने दो मुझे, मत करो बोर
कुछ भी नहीं है, तू व्यर्थ ही घबरा रही है शायद चौके में बिल्ली कुछ खा रही है
चोर हल्ला नहीं करते, चुपचाप आते हैं समझी कुछ, ऐ बुद्धिमान!
वे बर्तनों की उठापटक नहीं मचाते हैं जो होगा देखेंगे, सुबह होने दो
बोर मत करो गुलजान, मुझे सोने दो!" तर्क में हार कर बीबी मौन हो गई बेचारी मन में तो मगर शक था,
सो न सकी डर की मारी
तीन बजे फिर नसरुद्दीन को जगा कर बोली, "डालग, आए एम सारी!
चोर कभी नहीं करते शोर
तुम्हारी यह बात मुझे समझ आ रही है
इसलिए कहती हूं--उठो, जरा देखो तो सही
जरूर कुछ गड़बड़ है मेरी जान
घंटा भर से अपने घर में, है बिल्कुल सुनसान
बात क्या है? कोई आवाज नहीं आ रही है!"
इधर से नहीं तो इधर से। एक तर्क तोड़ो तो दूसरा खड़ा कर लेते हैं।
तर्कजाल बंद करो! बहुत हो चुके तर्क और बहुत हो चुके सिद्धांत। बहुत शास्त्र हम रच चुके, अब हम जीवन को रचें। अब हम एक नया संन्यास दुनिया को दें, एक नया धर्म। जीवन को देखने की एक नयी विधि, एक नई विधा। जीवन को सर्वांगीणरूप से स्वीकार करने की कला।
भीतर और बाहर दोनों में परमात्मा है। भीतर-बाहर, सब उसका राज्य है। शरीर भी उसका है, आत्मा भी उसकी है। शरीर के विपरीत आत्मा को खड़ा मत करो--वह द्वंद्व महंगा पड़ा है। संसार भी उसका है, मोक्ष भी उसका है। संसार को त्याग करने से मोक्ष नहीं मिलता, संसार को ठीक-ठीक जीने से मोक्ष मिलता है। घोषणा करो, उदघोषणा करो अब इस बात की कि संसार को ठीक-ठीक जी लेने का पुरस्कार है मोक्ष। संसार को छोड़ देने का नाम मोक्ष नहीं है। तो दुर्दशा मिटे, तो यह दीनता मिटे, यह दरिद्रता मिटे! हम फिर आदमियों की तरह जी सकें-- गौरव में, गरिमा में। हमारे जीवन में भी थोड़ी आभा हो। हमारे जीवन में भी कहने योग्य कुछ गरिमा हो, कुछ अर्थ हो।
अभी तो सब व्यर्थ है! बोझढो रहे हैं! जी नहीं रहे, बोझढो रहे हैं। कोल्हू के बैल हैं। खींचे जाते हैं। वही राह है, वर्तुलाकार घूमे चले जाते हैं। न कोई मंजिल आती, न कोई मंजिल का सुराग मिलता।
कब तक और इस तरह करना है?
जागो! सारी पृथ्वी एक नये जागरण से भर रही है। उसमें भी तुम पिछड़ मत जाना। उसमें तुम सहभागी हो सकते हो। यह जो सूरज ऊग रहा है नया पृथ्वी पर, जिसमें पूरब और पश्चिम मिटेंगे, जिसमें देशों की सीमाएं लीन हो जाएंगी, जिसमें धर्म और विज्ञान के विरोध समाप्त हो जाएंगे, कहीं ऐसा न हो कि तुम इस दौड़ में भी पीछे रह जाओ। जो हुआ हुआ। जो पीछे बीता बीता। बीति ताहि बिसार दे! अब तो कुछ नये ढंग से हम जीवन को पुनः निर्मित करें।

मैं जो यहां प्रयास कर रहा हूं, वह इस अर्थ में अनूठा है। इसलिए भारतीय मन को बहुत दुविधा में डालता है, भारतीय मन को बहुत चिंतित करता है। उसको लगता ही नहीं कि जो भी कह रहा हूं, कर रहा हूं, वह धार्मिक है। उसे तो घबड़ाहट होती है। क्योंकि धार्मिक होने का अर्थ हैः छोड़ो-छाड़ो, भागो जंगल की तरफ! और मैं कहता हूंः बीच बाजार में बैठ कर परमात्मा को पाया जा सकता है। और अगर वहां नहीं पाया जा सकता तो और कहीं भी नहीं पाया जा सकता है।

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
पांचवां प्रवचन

मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूं

करु मन सहज नाम ब्यौपार, छोड़ि सकल ब्यौहार।।
निसुबासर दिन रैन ढहतु है, नेक न धरत करार।
धंधा धोख रहत लपटानो, भ्रमत फिरत संसार।।
माता पिता सुत बंधू नारी, कुल कुटुंब परिवार।
माया-फांसि बांधि मत डूबहु, छिन में होहु संघार।।
हरि की भक्ति करी नहिं कबहीं, संत बचन आगार।

करि हंकार मद गर्व भुलानो, जन्म गयो जरि छार।।
अनुभव घर कै सुधियो न जानत, कासों कहूं गंवार।
कहै गुलाल सबै नर गाफिल, कौन उतारै पार।।

नामरस अमरा है भाई, कोउ साध-संगति तें पाई।।
बिन घोटे बिन छाने पीवै, कौड़ी दाम न लाई।
रंग रंगीले चढ़त रसीले, कबहीं उतरि न जाई।।
छके-छकाए पगे-पगाए, झूमि-झूमि रस लाई।
बिमल बिमल बानी गुन बोलै, अनुभव अमल चढ़ाई।।
जहं जहं जावै थिर नहिं आवै, खोलि अमल लै धाई।
जल पत्थल पूजन करि भानत, फोकट गाढ़ बनाई।।
गुरु परताप कृपा तें पावै, घट भरि प्याल फिराई।
कहै गुलाल मगन हवै बैठे, मंगिहै हमरी बलाई।।
फिर से चली निठुर पुरवाई,
फिर बूंदों ने आग लगाई।
मरुथल में भटकूं एकाकी,
गंध न पाऊं मैं बरखा की;
कभी भूल कर कंठ लगा लूं,
ऐसी कोई छांह न बाकी;
ऊपर अंगारों का अंबार,
पग करते लपटों से संगर;
जाऊं किधर कहां सिर टेकूं, किस चौखट से करूं सगाई!
नजर न आता कोई अपना,
अभिशापित हारा हर सपना;
क्यों कोई आंचल झुलसाऊं, जब जीवन भर केवल तपना;
तुमने मुझको धीर बंधाया, बड़े जतन से मन समझाया;
इससे ज्यादा करते भी क्या मुझको ही यति रास न आई!
हर व्यवधान बढ़ा जाता है,
नूतन सत्य पढ़ा जाता है;
पर पल दो पल का रुकना तो-- और थकान चढ़ा जाता है;
इससे शूलों में पलने दो,
बिना सहारे ही चलने दो;
मुझको अभी दूर तक जाना,
करने मंजिल की पहुनाई!
फिर से चली निठुर पुरवाई, फिर बूंदों ने आग लगाई!

जीवन हमारा एक मरुस्थल है। एक लंबी अर्थहीन यात्रा है। एक बोझ, जिसे
हम जन्म से मृत्यु तक ढोते हैं। बूंद भी नहीं बरसती आनंद की। कैसे समझें गुलाल को, जो कहते हैं--झरत दसहुं दिस मोती! यहां तो कंकड़-पत्थर भी गिरते मालूम नहीं होते, मोतियों की वर्षा तो बहुत दूर! अमृत का तो अनुभव कहां! जहर ही पीआ है, जहर ही हो गए हैं। इसलिए सुन लेते हैं संतों के वचन, मगर प्राणों में कोई वीणा बजती नहीं। वचनों से हमारे जीवन का कोई तालमेल नहीं बैठता। वे करते हैं फूलों की बातें, हम कांटों में उलझे हैं। वे करते हैं सेजों की बातें, हम सूली पर लटके हैं। मीरा ने कहा हैः शूली ऊपर सेज पिया की; सुन लेते हैं, होगी, पर हमें तो शूली के अतिरिक्त और कोई सेज दिखाई पड़ती नहीं।
बुद्धों के वचन हमारे जीवन-अनुभव से कोई संबंध नहीं बना पाते। हमारे
और उनके बीच एक खाई रह जाती है, जिस पर सेतु बंधा दिखाई नहीं पड़ता। बुद्धपुरुषों ने लाख उपाय किए हैं कि सेतु बने। लेकिन जब तक हम भी उपाय न करें, सेतु बन नहीं सकता। एक किनारे से सेतु नहीं बनता है, स्मरण रखना, दो किनारे चाहिए। हमारा किनारा जब तक सेतु बनाने में संलग्न न हो जाए तब तक उस किनारे से बनाए गए सब सेतु गिर जाते हैं, हम तक पहुंच नहीं पाते। दुनिया से सदगुरु नहीं खो गए हैं, लेकिन शिष्यत्व खो गया है। धर्म नहीं खो गया है, लेकिन धर्म की अभीप्सा खो गई है। सत्य नहीं खो गया है, लेकिन सत्य को खोजने की आकांक्षा बुझी-बुझी सी, धुआं-धुआं। दीप्त अंगार नहीं है। लोग सत्य के संबंध में भी ऐसे प्रश्न पूछते हैं जैसे और सब चीजों के संबंध में पूछते हैं। जैसे सत्य भी और सब चीजों की फेहरिश्त में एक नाम है।
सत्य जीवन की फेहरिश्त में एक नाम नहीं है, एक नाम मात्र नहीं है, सत्य
तो हमारे जीवन का आधार है, हमारे प्राणों का प्राण है। लेकिन हम अपने भीतर जाते भी नहीं। बाहर से फुरसत मिलती नहीं।
मेरे पास लोग आते हैं, अगर मैं उनसे कहता हूंः ध्यान करो, वे कहते हैंः
कब करें? समय कहां है? और यही लोग होटलों में बैठे हैं, गपशप करते हैं। यही लोग सिनेमागृहों में भरे हुए हैं; कतारें लगी हैं, "क्यू" लगे हैं। यही लोग, फुटबाल का मैच हो तो हजारों की संख्या में इकट्ठे होते हैं। यही घोड़ों की दौड़ देखने जाते हैं। कोई घोड़ा आदमियों की दौड़ देखने नहीं आता! किस घोड़े को पड़ी है! घोड़ों की छोड़ो, गधे भी नहीं आते। और तब इनसे पूछो, तो ये कहते हैंः समय काट रहे हैं। यही लोग ध्यान की कहो तो कहतेः समय कहां है? ताश खेलेंगे, शतरंज बिछाएंगे, चौपड़-- और पूछो, क्या कर रहो हो? तो कहते हैंः समय काट रहे हैं। समय तुम्हें काट रहा है, पागलो! और तुम सोच रहे हो तुम समय को काट रहे हो! समय प्रतिपल तुम्हें गिराता जा रहा है। प्रतिपल तुम्हारी मौत को करीब लाता जा रहा है। जल्दी ही यह जीवन का स्वर्ण अवसर हाथ से छिटक जाएगा। फिर बहुत पछताओगे। या फिर एक क्षण भी इसमें से वापिस नहीं पाया जा सकता। और यह सारा समय बचाया जा सकता था, इसमें से कुछ भी न खोता--अगर तुमने यह अपनी अंतर्खोज में लगाया होता; अगर यह तुमने अपने प्राणों के साथ संबंध जोड़ने में लगाया होता; अगर तुमने पूछा होता कि मैं कौन हूं; अगर तुम भीतर गए होते, थोड़ा खोदा होता, तो तुम्हें वे जलस्रोत मिल जाते, जो सदा-सदा के लिए तृप्त कर जाते हैं। तुम्हें वे अमृत के झरने मिल जाते, जिन्हें पीकर फिर कोई मरता नहीं है।
दिवस उनींदे उन्मन बीते!
रात जागरण के प्रण जीते!!
क्यों आगमन गमन बन जाता,
क्यों संहार सृजन बन जाता;
नाश और निर्माण एक क्यों, क्यों अभिशाप शमन बन जाता; मरण जन्म या जन्म मरण है, कहीं न कोई निराकरण है,
ज्ञान-गुमान शेष हो जाते, आदि-अंत को सीते-सीते!

पल में धूप बनी क्यों छाया, माया रूप, रूप-रत माया;
जल में उपल, उपल में जल है, जीव-जीव में जगत समाया;
सरि में लहर, लहर में धारा, धार-धार में जीवन सारा;
बूंद-बूंद में भरने वाले, भरे-पुरे सागर क्यों रीते? कुशल-क्षेम ही कहते-सुनते,
चले गए सब क्यों सिर धुनते; ब्रह्म सत्य तो जग मिथ्या क्यों,
रवि-कर क्यों स्वप्नाम्बर बुनते;
तम में किरण, किरणतम कारा,
जीत-जीत क्यों जीवन हारा;
हीरा जनम गवाया यों ही,
रोते-गाते, खाते-पीते!
क्षुद्र में गंवा देते हैं... हीरा जनम गंवाया यों ही। लेकिन हमें तो पता ही नहीं कि जीवन कोई हीरा है। हमें तो जीवन ऐसा लगता हैः दो कौड़ी का भी नहीं। मुप 132 त जो मिला है! परमात्मा की भेंट है, इसलिए हमें कीमत का कोई पता नहीं। काश, तुम्हें कीमत चुकानी पड़े और जीवन पाना पड़े, तो तुम इतनी आसानी से न गंवाओ। इतनी व्यर्थता में न उलझाओ।
मैंने सुना है, एक फकीर एक नदी के किनारे बैठा था और एक आदमी नदी से कूदकर आत्महत्या करने का उपाय कर रहा था। उस फकीर ने पूछा कि भाई, ऐसी क्या मुसीबत आ गई? क्यों मरे जाते हो? उस आदमी ने कहा, मेरा दीवाला निकल गया; मरूं न तो क्या करूं? फकीर ने कहा, मेरी तरफ देखो, मेरे पास कुछ भी नहीं है। तुम्हारे पास कम से कम कुछ तो था कि दीवाला निकला। मेरा तो दीवाला भी नहीं निकल सकता। फिर भी मस्त हूं! और धन्यवाद दो परमात्मा को। उस आदमी ने कहा, किस बात का धन्यवाद? दीवाला निकलने का? उस फकीर ने कहाः दीवाला निकलने का धन्यवाद नहीं, इस बात का धन्यवाद दो कि तुम्हारा दीवाला निकल रहा है, कम से कम तुम उन लोगों में से तो नहीं हो जो तुम्हारे कर्जदार हैं, इसका धन्यवाद दो।
फकीर की बात कुछ बेबूझ भी लगी, कुछ जंची भी, वह आदमी पास बैठ गया। कुछ बात आगे बढ़ी। फकीर ने कहा: इसके पहले कि तुम आत्महत्या करो--तुम तो मरने जा ही रहे हो, थोड़े मेरे काम आ जाओ! उस आदमी ने कहा, क्या काम? मुझे तो मरना ही है। फकीर ने कहा, ऐसा करो, मेरे साथ चलो। सम्राट के पास ले गया। सम्राट से उसने कुछ कान में बातचीत की और वह सम्राट ने कहा, ठीक है, दो लाख रुपये दूंगा। उस आदमी ने इतना ही सुना सिर्प कि दो लाख दूंगा। वह आदमी बोला, किस बात का सौदा हो रहा है? उस फकीर ने कहाः तुम्हारी आंखें बेच रहा हूं। सम्राट दो लाख देने को तैयार है दो आंखों के। उस आदमी ने कहाः तुमने मुझे मूरख समझा है? दो लाख में अपनी आंखें बेचूंगा? सम्राट ने कहाः तो तीन लाख ले लेना; चार लाख ले लेना; पांच लाख ले लेना। तू बोल, मुंहमांगे दाम देने को तैयार हूं। उस आदमी ने कहा, बेचना किसको है, जी! वह भूल ही गया कि आत्महत्या करने जा रहा था।
उस फकीर ने कहाः और अभी तू नदी में कूद कर मर रहा था, आंख भी चली जाती,
सब चला जाता। यह सम्राट हर चीज लेने को तैयार है--आंख भी लेने को तैयार है, तेरी किडनी भी ले लेगा, और सब चीजें लेने को तैयार है। सम्हाल कर रखवा लेगा, वक्त पर काम पड़ेंगी। और तू तो मर ही रहा है, तुझे बेचने में हर्ज क्या है?
पहली बार उस आदमी को ख्याल आया कि मैं पांच लाख रुपये में अपनी आंखें बेचने को राजी नहीं हूं और नदी में कूद कर मरने को राजी था।
हमें होश नहीं है कि जो हमारे पास है, वह कितना मूल्यवान है। जिन्हें
इस बात का होश आ जाता है, वे ही लोग धार्मिक हैं। उनके जीवन में अनुग्रह का भाव पैदा होता है कि परमात्मा ने कितना दिया है। उनके जीवन से प्रार्थना

उठती है, धन्यवाद उठता है। हमारे जीवन से तो केवल शिकायतें और शिकायतें। जो मिला है, उसकी तो हम बात ही नहीं करते। जो नहीं मिला है, उसका रोना रोते हैं। और चाहिए। "और" की ऐसी दौड़ है, कितना ही मिल जाए, वह और मरता नहीं, वह पि132 र-पि132 र खड़ा हो जाता है। कितना ही धन हो, और धन चाहिए; कितना ही पद हो, और पद चाहिए; कितनी ही प्रतिष्ठा हो, और प्रतिष्ठा चाहिए। मन "और" में जीता है। यह सत्य अगर तुम्हें समझ में आ जाए कि मन का पूरा-का-पूरा जाल "और" का जाल है, तो तुम प्रार्थना का सूत्र समझ लोगे। क्योंकि प्रार्थना है "और" के जाल से छूट जाना।
एक आदमी ने बहुत दिन तक परमात्मा की पूजा की। फिर परमात्मा का आविर्भाव हुआ। उस आदमी ने कहा कि मुझे कुछ वरदान दे दें। ऐसा वरदान दे दें कि जब भी मैं जो मांगू, मुझे मिल जाए। पास ही शंख रखा था पूजागृह में, परमात्मा ने उठा कर वह शंख दे दिया और कहा कि यह सम्हाल, जो मांगेगा, तत्क्षण मिल जाएगा। इधर परमात्मा तिरोहित हुए, उधर उस आदमी ने तत्क्षण कहाः एक लाख रुपया! एक लाख रुपया मिल गया। घूरे के भाग्य फिरे! उसने महल पर महल बनाए। बहुत धन की वर्षा हुई। मगर बेचैनी जैसी थी वैसी-की-वैसी रही। दुख जहां का तहां रहा। सच पूछो तो और ज्यादा हो गया। आशाएं सब पूरी होने लगीं, लेकिन निराशा में कोई कमी न आई। हताशा अपनी जगह खड़ी रही। अब जो मांगता, मिलता। मगर क्या जो मांगो वह मिल जाए, उससे हल होता है? मन कहता हैः और मांग! एक महल से क्या होगा? दो मांग! दो से क्या होगा? लाख मांगे, मिल गए, ठीक है! रोज उसे जो मांगता मिलता, लेकिन परमात्मा को उसने धन्यवाद नहीं दिया।
एक रात एक संन्यासी उसके घर में मेहमान हुआ। संन्यासी ने यह देखा कि उसके पास शंख है, वह जो मांगता है, मिल जाता है। संन्यासी ने कहा कि यह शंख कुछ भी नहीं, मेरे पास महा शंख है। उस आदमी ने पूछाः महाशंख की क्या खूबी है? कहाः तुम जितना मांगो, उससे दुगना देता है। यह तुम्हारा तो उतना ही देता है; लाख मांगो, लाख देता है; मेरा लाख मांगो, दो लाख देता है। लोभ बढ़ा। उस गृहस्थ ने कहा कि आप तो संन्यासी हैं, त्यागी हैं, व्रती हैं, आपको क्या करना! आप मेरा शंख ले लो, मुझ गरीब को महाशंख दे दो! उस जैसा अब कोई अमीर नहीं था, लेकिन वह कहता हैः मुझ गरीब को! महाशंख दे दो!! संन्यासी ने महाशंख दे दिया।
महाशंख बिल्कुल जैसा संन्यासी ने कहा था वैसा ही था। उसे कहो, लाख रुपया दो। वह कहे, लाख क्या करोगे, अरे, दो लाख ले लो! उससे कहो, अच्छा दो लाख दे दो, भइया! वह कहे, दो क्या करोगे, चार लाख ले लो! बस, वह बातें ही करे! लेने-देने का कोई सवाल ही नहीं। लेकिन तब तक संन्यासी जा चुका था। संन्यासी के कमरे में जाकर देखा, संन्यासी तो शंख लेकर नदारद हो गया था। यह महाशंख पकड़ा गया।... महाशंख एक तरह का राजनेता रहा होगा। तुम जितना कहो, उससे दुगना ले लो। लेना-देना कुछ भी नहीं है! लेन-देन की बात ही मत उठाओ! बस, वह दुगना करता ही चला जाए।
तुम्हारा मन शंख भी है और महाशंख भी। तुम जो मांगते हो, वह मिल जाए, तो "और" की दौड़ नहीं मिटती। तुम जो मांगते हो, उससे दुगुना भी मिल जाए, तो भी दौड़ नहीं मिटती। दौड़ मिटती ही नहीं। दौड़ बढ़ती ही चली जाती है। लोग दौड़ते- दौड़ते अपनी कब्रों में गिर जाते हैं। मंजिल आती कहां, कब्र आती! जीवन के लिए धन्यवाद नहीं उठता लेकिन। शिकायतें उठती हैं कि इतना क्यों नहीं दिया! यह भी तो हो सकता था, यह क्यों नहीं हुआ? तुम्हें अगर परमात्मा मिल जाए, तो तुम झपट कर उसकी गर्दन पकड़ लोगे कि अब कहां जाते हो, रुको! क्यों मुझे सताया? जो मैंने मांगा, मुझे क्यों न मिला? औरों को सब मिला, मुझे कुछ भी न मिला।
यह मन बड़ा ईर्ष्यालु है। और शायद इसीलिए तो परमात्मा तुम्हें मिलता नहीं, तुम लाख खोजो! ऐसा छिपा है कि तुम खोजते ही रहो, मिलता ही नहीं; क्योंकि जानता है, तुम्हें भलीभांति जानता है--उसके ही बनाए हुए हो, तुम्हें नहीं जानेगा तो किसको जानेगा--तुम्हें भलीभांति जानता है कि मिल जाओगे तो तुम उपद्रव खड़ा करोगे। तुम हजार तरह की शिकायतें करोगे। तुम्हारे जीवन की व्यवस्था शिकायत है। और जब कि इतना मिला है कि काश, तुम

उसे देख सको! और तुम्हारी बिना किसी पात्रता के मिला है। बिना किसी योग्यता के। तुमने अर्जित नहीं किया है। काश, तुम उसे देख सको तो आभार उठे--आनंद का, अनुग्रह का; तुम्हारे भीतर संगीत गूंजे; वही प्रार्थना है, वही व्यक्ति को धर्म में डुबा देती है। वही प्रार्थना व्यक्ति के जीवन में अमृत-रस घोल देती है।
गुलाल कहते हैं--
करु मन सहज नाम ब्यौपार, छोड़ि सकल ब्यौहार।।
धर्म को ब्यौहार न समझो। हमने वही समझ रखा है। मंदिर हो आते हैं, एक औपचारिकता है, एक सामाजिक व्यवहार है। और लोग जाते हैं तो हम भी हो आते हैं। बाप-दादे जाते रहे तो तुम भी जा रहे हो। और तुम जाते हो तो तुम्हारे बच्चे भी जाएंगे। लेकिन सब औपचारिक है, ऊपर-ऊपर है। तुम्हारे प्राणों का कोईर् संबंध नहीं है। मंदिर में जाकर सिर भी पटक आते हो, राम-नाम भी जप लेते हो; मस्जिद में बैठ कर कुरान की आयतें भी दोहरा लेते हो, मगर बस तोतों की भांति, मुर्दो की भांति। ओंठ हिलते हैं, हृदय नहीं हिलता। शब्द निकलते हैं, लेकिन तुम्हारे निःशब्द प्राणों में कोई नाद नहीं गूंजता। देह मंदिर में चली जाती है, तुम तो बाजार में ही रहे आते हो। देह प्रार्थना भी कर लेती है, पूजा भी कर लेती है, अर्चना भी कर लेती है, फूल भी चढ़ा देती है, आरती भी उतार लेती है--और तुम वहां होते ही नहीं। तुम हजारों जगह होते हो! तुम न मालूम कौन-कौन से व्यवसाय में उलझे होते हो! न मालूम किन योजनाओं में, भविष्य की किन कल्पनाओं में, अतीत की किन स्मृतियों में तुम भटके होते हो! ऐसे व्यावहारिक धर्म से तो अधार्मिक होना बेहतर है। कम से कम सच्चाई तो होगी!
मैं निरंतर कहता हूं: झूठे आस्तिक होने से सच्चा नास्तिक होना बेहतर है। कम से कम सच्चाई तो होगी! और जहां सच्चाई है, वहां नास्तिकता ज्यादा दिन नहीं टिक सकती। जहां सच्चाई है, वहां नास्तिकता मरेगी, मर कर रहेगी। और जहां झूठ है, वहां आस्तिकता कहां आ सकती है! थोथी रहेगी। बस, ऊपर-ऊपर पोती हुई होगी। जैसे मुर्दे को सुंदर कपड़े पहना दिए। इससे कुछ प्राण आ जाएंगे, कि सांस चलने लगेगी, कि हृदय धड़केगा?
झूठी आस्तिकता मनुष्य को डुबा रही है।
सच्ची नास्तिकता हो तो मनुष्य को एक न एक दिन आस्तिक होना ही पड़ेगा। क्योंकि जिसके प्राणों में "नहीं" कहने की सामर्थ्य है, ईश्वर को भी "नहीं" कहने की सामर्थ्य है, जो कहता है कि जब तक जान न लूंगा तब तक "हां" नहीं भरूंगा, जिसका ऐसा प्रबल प्रामाणिक आग्रह है, उसके लिए परमात्मा के द्वार निश्चित खुलते हैं। लेकिन तुम्हारी "हां" नपुंसक है। तुम्हारी "हां" में कोई बल नहीं है। तुमने "हां" तो यूं ही कह दी कि कौन झंझट करे! कि चलो, सब कहते हैं तो होगा! तुम्हारे "हां" में कोई प्रेम नहीं है, कोई प्रार्थना नहीं है। तुम्हारी "हां" एक सामाजिक शिष्टाचार है। तुम्हारी "हां" ऐसी ही है जैसे कोई पूछता है सुबह-सुबहः कहिए, कैसे हैं? और तुम कहते हो--सब सुंदर है; सब परमात्मा की कृपा है! सब अच्छा है! तुम्हारा चेहरा कुछ और ही कह रहा है। तुम्हारी आंखें कुछ और ही कह रही हैं। मातमी चेहरा लिए हो, रोती आंखें लिए हो, तुम्हारा व्यक्तित्व कुछ और ही कह रहा है। लेकिन शिष्टाचार है कि कहना चाहिए कि सब ठीक है।
कुछ भी ठीक नहीं है। ठीक ही होता तो फिर कहना क्या था! सभी लोग कह रहे हैं कि सभी कुछ ठीक है; तो यह जिंदगी में स्वर्ग उतर आता। लेकिन सब झूठ बोल रहे हैं। और ऐसा भी नहीं कि झूठ बहुत जान कर बोल रहे हैं। एक औपचारिकता सीख ली है। जो कहना चाहिए, वही कह रहे हैं। एक शिष्टाचार है, उसको निभा रहे हैं, उसका पालन कर रहे हैं। न दूसरा तुम्हें देखता है, न तुम दूसरे को देखते हो। न वह देखता है तुम्हारी दुर्दशा, न तुम देखते हो उसकी दुर्दशा। न उसकी आकांक्षा है जानने की कि तुम्हारी दुर्दशा क्या है, न तुम्हारी आकांक्षा है कि कोई दुख का रोना ले बैठे। यह तो बचने के उपाय हैं कि सब ठीक है; सब चंगा! यह तो भागने के उपाय हैं, कि भइया, तुम अपनी रस्ता जाओ, मैं अपनी रस्ता जाऊं, सब ठीक है; ताकि बात रुके, ताकि यहीं पूर्ण विराम आ जाए। आगे बात न बढ़ जाए।

ऐसी ही औपचारिकता तुमने धर्म को भी बना लिया है। रास्ते पर कोई मिल जाता है तो कहते होः जय रामजी। कभी ख़्याल भी नहीं आता, राम का स्मरण भी नहीं होता उस जयराम जी में, शब्द ही होता है। इतना प्यारा संबोधन कि राम की जय हो, दुनिया की बहुत कम भाषाओं में है। साधारण से संबोधन हैं। जैसे अंग्रेजी में कहते हैंः शुभ प्रभात! साधारण संबोधन हुआ। लेकिन इस देश में हम सदियों से कहते हैंः राम की जय हो! मगर कहते ही हैं। हमें ख्याल भी नहीं है कि राम की जय का क्या अर्थ है? और राम की जय कैसे हो सकती है? राम की जय तो तभी होगी जब तुम मिटो। तुम्हारा अहंकार गले तो राम की जय हो। लेकिन औपचारिकता निभा रहे हैं। कुछ करने का थोड़े ही सवाल है, कुछ हम करने की आकांक्षा थोड़े ही व्यक्त किए हैं, कह दिया है, शब्द कंठस्थ हो गए हैं, होश में होने की भी जरूरत नहीं है, यंत्रवत, ग्रामोफोन के रिकार्ड की तरह हमसे निकल जाते हैं, हाथ जुड़ जाते हैं।
दुनिया में कहीं भी हाथ जोड़ कर नमस्कार करने का ढंग नहीं है। कहीं हाथ हिलाते हैं, कहीं हाथ मिलाते हैं, लेकिन हाथ जोड़ कर... हाथ जोड़ना तो प्रतीक है, गहरा प्रतीक है। हाथ जोड़ने का अर्थ हैः दो को एक करना, द्वंद्व को निर्द्वंद्व करना, द्वैत से अद्वैत की तरफ इशारा है हाथ जोड़ने में। सारा वेदांत उसमें छिपा हुआ है। जब हम हाथ जोड़ कर कहते हैं जय रामजी की, तो हम यह कह रहे हैं कि जब दो एक हो जाएंगे तो राम की विजय होगी; न मैं बचेगा, न तू बचेगी। और जब हम दूसरे व्यक्ति को देख कर हाथ जोड़ रहे हैं तो हम यह कह रहे हैं कि वह राम तुम्हारे भीतर भी विराजमान है। तुम कोई भी होओ, बुरे कि भले, ईमानदार कि बेईमान, चोर कि साधु, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, राम तुम्हारे भीतर है। और जिस दिन दो जुड़ कर एक हो जाएंगे, तुम्हारे भीतर भी वह प्रज्वलित प्रकाश प्रकट होगा, वह अभिनव सौंदर्य प्रकट होगा, वह शाश्वत सुगंध तुम्हारे भीतर भी उठेगी।
मगर कितनी बार तुमने जय रामजी की है, कभी सोचा, क्यों हाथ जोड़े, किसको हाथ जोडे, क्यों राम का स्मरण किया? क्यों राम की जय की बात की? और राम की जय कैसे होगी जब तक तुम नहीं हारोगे? तुम्हारी हार में उसकी विजय है। और तुम तो जीतने में लगे हो। तुम्हारी हर जीत तुम्हें उससे दूर किए जाती है। हाथ तो तुम दो एक कर लेते हो, मगर जिंदगी भर तुम एक नहीं हो पाते। तुम जिसको देख कर नमस्कार किए हो, नमन किए हो, सिर झुकाया है--सच में झुकाया है? एक क्षण को भी अगर यह सच्चाई हो, औपचारिकता न हो, तो मंदिर जाने की जरूरत है! चारों तरफ चलते-फिरते मंदिर हैं। हर प्राण मंदिर है। जहां भी श्वास चल रही है, वहीं परमात्मा जी रहा है। हर आंख के भीतर विराजमान है। आंख के झरोखों से दिखाई नहीं पड़ता, तुम्हें क्या खाक मंदिर की झांकियों में दिखाई पड़ेगा! जीवंत अनुभव में नहीं आता, मुर्दा मूर्तियों को, पत्थर की मूर्तियों को पूजते हो! वहां पूजा तुम्हारी सच्ची हो सकेगी?
ठीक कहते हैं गुलाल--
करु मन सहज नाम ब्यौपार, ...
कहते हैं, अगर करना ही हो, तो सहज नाम का व्यापार करो।
... छोड़ि सकल ब्यौहार।।
छोड़ दो सब व्यावहारिकता। धर्म में और व्यावहारिकता के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। लेकिन यह व्यापार है। व्यापार का अर्थ होता हैः कुछ देना पड़ेगा, तब कुछ मिलेगा। अपने को दोगे, तो उसे पाओगे। अपने को गंवाओगे, तो उसे पाओगे। कुछ दांव पर लगाना पड़ेगा। और यह व्यापार अनूठा व्यापार है। करीब-करीब जुआरीपन है। क्योंकि जिसे लगा रहे हो, वह तो ठोस है, हाथ में है और जिसके लिए लगा रहे हो, अदृश्य है; है भी या नहीं, इसका तब तक कोई निर्णय नहीं हो सकता जब तक तुम दांव पर न लगाओ। और दांव पर लगाने का ढंग क्या है? सहज नाम।
एक तो असहज साधना पद्धति होती है। कोई सिर के बल खड़ा है और सोच रहा है
कि योग साध रहा है। अगर परमात्मा को सिर के बल ही खड़ा करना था, तो सिर के बल ही खड़ा किया होता, तुम्हें पैर के बल किसलिए खड़ा किया होता! तुम्हारे महात्मा परमात्मा से भी ज्यादा समझदार मालूम पड़ते हैं। चलते-फिरते, भले- चंगे आदमी को सिर के बल खड़ा कर देते हैं! और यह मूरख सोचता है कि सिर के बल

खड़े होने से कुछ हल हो जाएगा! अरे, वैसे ही तुम उलटी खोपड़ी हो; वैसे ही तुम्हारी जिंदगी उल्टी खड़ी है; कुछ का कुछ तो तुम्हें वैसे ही दिखाई पड़ रहा है और सिर के बल खड़े होकर क्या तुम दुनिया को ठीक-ठीक देखने की कोशिश कर रहे हो!
मैंने सुना है, जब पंडित जवाहरलाल नेहरू भारत के प्रधानमंत्री थे, एक गधा सुबह-सुबह उनसे मिलने पहुंच गया।... गधों की कुछ न पूछो! और दिल्ली में गधों की कमी क्या? आदमी खोजना मुश्किल है। गधे तो तुम एक खोजो हजार मिलते हैं। खोजो या न खोजो, मिलते ही हैं। जगह-जगह भरे हैं... और यह गधा कोई साधारण गधा नहीं था। यह गधों का नेता था।... दिल्ली में कोई साधारण गधे थोड़े ही रहते, गधों के नेता! ... यह सारे गधों का प्रतिनिधि था। और यह गया था पंडित नेहरू से कहने कि अब कुछ करना होगा। हमारी संख्या अठारह करोड़ है और हमारी बहुत सी मांगें हैं, या तो पूरी करो, या हम अपने लिए अलग देश चाहते हैं। अब हमें नहीं रहना है आदमियों के साथ। धमकी देने गया था। पहरेदार झपकी खा रहा था, ... जैसे कि पहरेदार झपकी खाते हैं; उनका काम ही यही है।... आदमी होता तो रोकता भी, गधा था तो उसने भी फिकर नहीं की; कि गधा क्या बिगाड़ेगा? घूमने दो! गधा वहां टहल रहा था दरवाजे के सामने, जब पहरेदार झपकी खा गया, गधा भीतर घुस गया।... गधे भी राजनीति में पड़ जाएं तो बड़े होशियार हो जाते हैं। आदमी राजनीति में पड़ जाएं तो गधे हो जाते हैं, गधे पड़ जाएं तो आदमी हो जाते हैं। राजनीति का चक्कर ही बड़ा अजीब है!
पंडित नेहरू सुबह-सुबह ब्रह्ममुहूर्त में शीर्षासन कर रहे थे। उन्होंने इस गधे को आते देखा, भूल गए एक दम से कि शीर्षासन कर रहे हैं। रोज की आदतवश कर रहे थे--औपचारिकता। नियम, तो पूरा कर रहे थे। एकदम हैरान हो गए और बोले गधे से कि बहुत गधे मैंने देखे, मगर तू उलटा क्यों चल रहा है? गधे ने कहा, पंडितजी, उलटे आप खड़े हैं। मैं उलटा नहीं चल रहा हूं। तब और भी बहुत चौंके, क्योंकि गधा बोला, हकबका गए। एक क्षण को किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए। बड़े-बड़े नेताओं से मिले, बड़े-बड़े पंडितों से, महात्माओं से मिले, मगर इस गधे ने एक क्षण को उनकी सांसें रुकवा दीं। गधे ने कहा, आप बहुत हैरान न हों; इसमें कुछ आश्चर्य की बात क्या है? क्या आपने बोलते हुए गधे पहले नहीं देखे? पंडित नेहरू को कुछ होश आया। उन्होंने कहा कि बात तो सच कह रहे हो। बहुत से गधे मैंने देखे हैं जो बोलते हैं। इसलिए चौंकने की कोई बात तो नहीं। तुम यहां आए कैसे? उसने कहा, मैं आपसे मिलने आया हूं। आप नाराज न हों, आपका गुस्सा मुझे मालूम है; माना कि मैं एक गधा हूं, लकिन अखबार पढ़ते- पढ़ते बोलना-लिखना सीख गया हूं। इतने गुस्सा आप न दिखाई पड़ें। आपकी आंखों से एकदम चिंगारियां निकल रही हैं। क्या आप गधे से मिलने में अपना अपमान समझते हैं?
नेहरू ने कहा कि गधे से मिलने में अपमान? अरे, गधों के सिवाय मिलने यहां आता ही कौन है! मगर सुबह-सुबह जब मैं शीर्षासन कर रहा हूं, साधना कर रहा हूं, तभी तुम्हें आना था! उस गधे ने कहा कि पंडित जी, अगर परमात्मा को यही पसंद था, तो उसने सभी को सिर के बल खड़ा किया होता। पैर के बल खड़ा किया है। वही सहज है। वही उचित है। हम गधों को ही देखिए, कोई शीर्षासन नहीं करता। हम तो सहज जीवन में विश्वास करते हैं। आदमी अजीब-अजीब बातें निकाल लेते हैं! शरीर को इरछा-तिरछा करेंगे। मयूर आसन। तो मयूर ही क्यों नहीं तुम पैदा हुए? कितने आसन निकाल रखे हैं! उलटे-सीधे, इरछे-तिरछे; शरीर को तोड़ेंगे-मरोड़ेंगे; तुम साधना कर रहे हो कि सर्कस?
गुलाल सहज के पक्षपाती हैं। वे कहते हैंः व्यर्थ अपने को इरछी-तिरछी बातों में मत उलझाना। परमात्मा की साधना सहज ही हो सकती है। परमात्मा यानी स्वभाव परमात्मा यानी इस अस्तित्व की सहजता। तुम जितने सहज हो जाओ, जितने सरल हो जाओ, उतने ही उसके निकट हो जाओगे। जितने निर्दोष हो जाओ, जितने बच्चे जैसे भोले-भाले हो जाओ, उसके निकट हो जाओगे। संतत्व की पराकाष्ठा वही है; जब तुम परिपूर्ण सहज हो जाते हो।
करु मन सहज नाम ब्यौपार।।...
सहज शब्द का अर्थ होता हैः जो अपने से जन्मता है। सहज। ज का अर्थ होता हैः जन्मना। जो अपने से जन्मता है। तुम्हारे भीतर कुछ चीजें हैं जो अपने

से चल रही हैं। जैसे श्वास। तुम चला नहीं रहे, अपने से चल रही है। तुम सोए रहते हो तब भी चलती रहती है। तुम काम में लगे रहते हो तब भी चलती रहती है-- कोई याद थोड़े ही रखनी पड़ती है। अगर याद रखनी पड़े, तो जिंदा रहना मुश्किल है। जरा भूले, जरा किसी काम में ज्यादा उलझ गए, सांस लेना भूल गए, खात्मा हो गया। रात सो गए, खात्मा हो गया। बेहोश भी तुम पड़े रहो तो भी श्वास चलती रहती है। श्वास तुम्हारे भीतर सहजता की प्रतीक है।
बुद्ध ने तो श्वास को ही समस्त योग का आधार माना और विपस्सना एकमात्र ध्यान की विधि दी, कि अपनी श्वास के साक्षी हो जाओ, बस काफी है। सिर्प श्वास भीतर आई, बाहर गई, इसको देखते रहो--कुछ मत करो--जब सुविधा हो तब श्वास का भीतर आना और बाहर जाना देखते रहो। श्वास जब भीतर आती है, तब होश रखो कि भीतर आ रही है। आते-आते भीतर एक गहराई पर आकर श्वास क्षण भर को ठहर जाती है--बस, क्षण भर को--उसी जगह से द्वार है अंतरात्मा में; जहां श्वास ठहरती है, ठिठकती है। फिर श्वास बाहर की तरफ जाती है। फिर श्वास के साथ बाहर जाओ। फिर बाहर जाकर भी एक जगह है जहां जाकर श्वास क्षण भर को ठिठक जाती हे, वहां भी द्वार है, वहां द्वार है परमात्मा का।
अगर बाहर के द्वार से प्रवेश करोगे, तो परमात्मा के द्वारा अपने में प्रवेश हो जाएगा। और अगर भीतर से प्रवेश करोगे, तो अपने द्वारा परमात्मा में प्रवेश हो जाएगा। दोनों द्वारों में से कोई भी एक चुन लो।
ज्ञानी भीतर का द्वार चुनता है, भक्त बाहर का द्वार चुनता है। मगर वे दोनों द्वार एक ही परमात्मा के द्वार हैं।
श्वास सहजतम प्रक्रिया है... और ध्यान रखना, प्राणायाम के लिए नहीं कह रहा हूं। कि गहरी श्वास लो, कि एक नाक बंद करके और एक नाक से श्वास लो, फिर इतने समय तक श्वास को भीतर रोको, फिर इतने समय तक बाहर रोको--वह तो असहज हो गया, वह तो कृत्रिम हो गया। नहीं, श्वास जैसे चल रही है अपने-आप, प्राकृतिक, बस उसको देखते रहो।
बुद्धों की यह प्रक्रिया अनूठी है।
गुलाल इसी को सहज नाम कहते हैं। इसको नाम क्यों कहते हैं? क्योंकि अगर तुम इस श्वास को सुनते रहे, देखते रहे, भीतर आना, बाहर जाना, भीतर आना, बाहर जाना और धीरे-धीरे तुम्हारे भीतर का द्वार तुम्हें अनुभव में आ जाए या बाहर का द्वार अनुभव में आ जाए, तो तुम चकित हो जाओगेः तुम मंदिर के द्वार पर ही बैठे थे। कहीं जाना न था। काबा तुम्हारे भीतर था, काशी तुम्हारे भीतर थी, गिरनार तुम्हारे भीतर था, तुम कहां भागे फिरते थे? और जैसे-जैसे श्वास के साथ तुम्हारा तालमेल बैठेगा, तारतम्य बैठेगा, वैसे-वैसे तुम्हें एक नाद सुनाई पड़ेगा, जिसको संतों ने अनाहत कहा है, अनहद कहा है, उस नाद का नाम ही "नाम" है। वह नाद अगर हम भाषा में उतारने की कोशिश करें, तो करीब-करीब ओंकार जैसा है। करीब-करीब। ठीक ओंकार ही नहीं। ओंकार उसकी निकटतम ध्वनि है। ओम उसकी निकटतम ध्वनि है
इसलिए ओम को सारे धर्मो ने स्वीकार किया है।
भारत में तीन धर्म पैदा हुएः जैन, बौद्ध, हिंदू। उनका सब मामलों में विरोध है, किसी चीज में उनका मतैक्य नहीं है, लेकिन ओम के संबंध में वे तीनों सहमत हैं। और यहूदी, ईसाई और मुसलमान, तीन धर्म भारत के बाहर पैदा हुए। वे तीन भी ओम के संबंध में सहमत हैं। हालांकि उन्होंने ओम को अलग-अलग नाम दिए हैं। थोड़े-से भेद। वे भेद स्वाभाविक हैं। क्योंकि ओम कोई शब्द नहीं है, ध्वनि है। और ध्वनि का तुम कैसा रूपांतर करोगे भाषा में, यह तुम पर निर्भर है। मुसलमान कहतेः अमीन। वह ओम का ही रूप है। ईसाई और यहूदी कहतेः आमेन। वह ओम का ही रूप है। यह भीतर जब श्वास पर तुम्हारा साक्षीभाव टिक जाता है, तब तुम्हें यह ध्वनि सुनाई पड़नी शुरू होती है। तुम्हें कहना नहीं है ओम्, ओम्, तुम कहोगे तो औपचारिक हो गया--यह तुम्हें सुनाई पड़े। तुम तो केवल श्रोता और द्रष्टा रहोगे। यह तुम्हारे भीतर अपने से उपजता हुआ दिखाई पड़े, सहज हो तो ही समझना कि सार्थक है।
करु मन सहज नाम ब्यौपार, छोड़ि सकल ब्यौहार।।
निसुबासर दिन रैन ढहतु है, नेक न धरत करार।

स्मरण रखो कि यहां तो प्रतिदिन जीवन कम हो रहा है। एक दिन गया, एक रात गई, एक दिन कम हुआ, एक रात कम हुई। इस बहते हुए समय के प्रवाह में कुछ भी ठहरा हुआ नहीं है। यहां अपना घर मत बनाना। यहां घर बनाओगे तो रोओगे, तड़पोगे, पछताओगे।
निसुबासर दिन रैन ढहतु है, ष्ठ
सब ढहा जा रहा है, गिरा जा रहा है। इस गिरते हुए भवन में तुम अपने को ज्यादा आसक्त न रखो। शाश्वत की खोज कर लो। इस भवन में शाश्वत की भी धुन आ रही है--वही ओंकार की ध्वनि है, वही सहज नाम है--अगर तुम उसको पकड़ लो, उस पतले से धागे को पकड़ लो, उस छोटी सी किरण को पकड़ लो, तो उसी के साथ उड़ते हुए सूरज तक पहुंच जाओगे।
मेरे इस जीवन-मरु में क्यों रूप-सुधा बरसाई,
दो क्षण के प्रभात में ऐसी जीवन-निधि क्यों आई?
मेरे स्वर परिमित हैं जैसे प्रातः नभ के तारे,
किंतु मिलन के भाव न भर सकते हैं सागर सारे।
जीवन का यह बाण चुभा है मुझ में कैसा विषमय,
क्या निकाल सकते हैं अंतिम क्षण के हाथ तुम्हारे? तन के लघु घट में अतृप्ति सागर की लहर उठाई,
मेरे इस जीवन-मरु में क्यों रूप-सुधा बरसाई? प्रिय यह रात बहुत छोटी थी, कैसे मैं मिल पाऊं?
मेरा स्वर नश्वर है, कैसे गीत तुम्हारे गाऊं?
सांसों के टुकड़े कर डाले, वे भी नियमित गति में,
कैसे इनमें चिर मिलाप का जीवन आज सजाऊं?
एक सुमन के जीवन ने क्यों यह वसंत श्री पाई?
मेरे इस जीवन-मरु में क्यों रूप-सुधा बरसाई?
जीवन तो मरुस्थल है, मगर इसमें रूप की सुधा बरस सकती है। जीवन तो कंकड़-पत्थर है, लेकिन इसमें मोती झर सकते हैं--झरत दसहुं दिस मोती! जीवन तो परिवर्तन है, लेकिन इसमें शाश्वत से मेल हो सकता है, सेतु बन सकता है। जीवन तो मृत्यु है, लेकिन इस जीवन का ही अमृत का द्वार बनाया जा सकता है।
धंधा धोख रहत लपटानो, भ्रमत फिरत संसार।।
लेकिन हो कैसे? यह हो कैसे? तुम तो धंधे में, धोखे में उलझे हो।
धंधा धोख रहत लपटानो, भ्रमत फिरत संसार।।
तुम तो सारे जगत में खोजते फिरते हो, एक अपने को छोड़ कर। तुमने कसम खा रखी है एक अपने में नहीं झांकेंगे और सब जगह खोजेंगे। सब खदानें खोजेंगे, एक अपने भीतर की खदान को छोड़ रखा है।
माता पिता सुत बंधू नारी, कुल कुटुंब परिवार।
माया-फांसि बांधि मत डूबहु, छिन में होहु संघार।।
खूब बसा रहे हो परिवर्तन के इस जगत में! नाते, रिश्ते; कैसे-कैसे वायदे, कैसे-कैसे आश्वासन! लेकिन गुलाल कहते हैंः अगर समझो तो तुम जो भी बना रहे हो, वह फांसी बना रहे हो।
माया-फांसि बांधि मत डूबहु, ...
डूबोगे। अपने ही बनाए इस जाल में फंसोगे, उलझोगे, डूबोगे।
... छिन में होहु संघार।।
एक क्षण में मिट जाएगा सब कुछ। इसके पहले कि सब कुछ मिट जाए, कुछ कर लो। इसके पहले कि सब समाप्त होने लगे, इसके पहले कि आखिरी घड़ी आ जाए, समयातीत से कुछ पहचान कर लो।
हरि की भक्ति करी नहिं कबहीं, संत बचन आगार।
भाग रहे हो, दौड़ रहे हो--धन-पद-मद--लेकिन कभी परमात्मा को स्मरण नहीं करते। जो स्मरण योग्य है, उसे विस्मरण किया है। जो स्मरण योग्य नहीं है, सतत उसका स्मरण कर रहे हो। कभी अपने विचारों को तो देखना--क्या-क्या सोचते हो? कैसी-कैसी व्यर्थ की बातें सोचते हो? कैसी ऊलजुलूल, संगत-असंगत; कैसे सपनों में खोए रहते हो; खुद भी देखोगे तो हंसोगे कि मैं भी कैसा मूढ़! लेकिन फिर-फिर उसी जाल में पड़ जाओगे। फिर-फिर मन लिपटा लेगा।
हरि की भक्ति करी नहिं कबहीं, संत बचन आगार।

न तो कभी हरि की भक्ति की, न तो कभी राम को स्मरण किया, न कभी संतों के वचन में घर खोजा। धन में खोजा, पद में खोजा, प्रतिष्ठा में खोजा! मगर संतों के सत्संग में कभी घर न खोजा, जहां कि घर मिल सकता था। ऐसा घर जो कभी न गिरे।
करि हंकार मद गर्व भुलानो, ...
कितना अहंकार किया है! कैसे मदमस्त हो रहे हो अहंकार में! पानी का बबूला है, अभी फूट जाएगा। कैसे भूले हुए हो इसमें? रोज तुम्हारे आस-पास लोगों को टूटते देखते हो, मगर तुम्हें याद ही नहीं आती कि यही गति तुम्हारी भी होनी है। रोज कोई मरता है, रोज कोई अरथी उठती है, लेकिन यह कभी तुम्हें ख्याल ही नहीं आता कि यह तुम्हारी अर्थी है। देर-अबेर, बस बात समय की है। आज यह उठी, कल तुम्हारी उठ जाएगी। मौत के दरवाजे पर क्यू लगा है, रोज लोग हटते जा रहे हैं, क्यू छोटा होता जा रहा है, तुम करीब सरकते आ रहे हो। तुम्हें भी टिकट जल्दी ही मिल जाएगी। मगर अजीब बेहोशी है! अदभुत बेहोशी है!
करि हंकार मद गर्व भुलानो, जन्म गयो जरि छार।।
तुम्हारे अहंकार में ही तुम्हारा जीवन छार-छार हुआ जा रहा है।
अनुभव घर कै सुधियो न जानत, ...
कब लाओगे सुधि? कब करोगे स्मरण? और मालिक तुम्हारे भीतर बसा है!
... कासों कहूं गंवार।
गुलाल कहते हैंः मैं किसको गंवार कहूं, गंवार ही गंवार हैं यहां। गंवारों की भीड़ है। बेहोश लोगों की भीड़ है। अब किसको गंवार कहो? जहां सभी गंवार हों, वहां किसी को भी गंवार कहने का कोई अर्थ नहीं है। यहां तो हालत ऐसी है कि जैसे अंधों की बस्ती में आंख वाला आदमी ही मुश्किल में पड़ जाए। जैसे बहरों की बस्ती में कान वाला आदमी ही मुश्किल में पड़ जाए। जैसे पागलखाने में तुम्हें कोई भर्ती कर दे और तुम मुश्किल में पड़ जाओ।
इसलिए बुद्धों को जितनी अड़चन झेलनी पड़ी, उतनी अड़चन और किसी को भी नहीं। और कुल कारण इतना है कि बुद्धुओं की भीड़ में बुद्ध जो भी कहते हैं, जैसा भी जीते हैं, वह विकृत हो जाता है। हमारी भाषा और उनकी भाषा अलग हो जाती है। वे बोलते हैं किसी पर्वत-शिखर से और हम सुनते हैं किसी अंधेरी घाटी में। वे बोलते हैं जागरण से, हम सुनते हैं नींद में। हम तक पहुंचते- पहुंचते बात बदल जाती है, कुछ का कुछ हो जाता है।
खलील जिब्रान की प्रसिद्ध कहानी है।
एक जादूगर आया और उसने गांव के कुएं में एक पुड़िया फेंक दी और कहा कि
जो भी इसका पानी पीएगा, वह पागल हो जाएगा। गांव में दो ही कुएं थे। एक गांव का कुआं और एक राजा का कुआं। मजबूरी थी--गांव में खबर तो उड़ गई, लेकिन पानी न पीए कैसे चलेगा! सांझ होते-होते सारा गांव पागल हो गया। राजा बड़ा खुश था कि मेरे बड़े धन्यभाग कि मैंने महल में अलग कुआं बनवा रखा है। अगर मैं भी गांव के कुएं पर निर्भर होता तो आज मुसीबत हो जाती। राजा ठीक था, रानी ठीक थी, वजीर ठीक था; बस ये तीन बचे। लेकिन जब पूरा गांव पागल हो जाए... तो गांव में एक खबर उठी सांझ होते-होते कि लगता है राजा का दिमाग खराब हो गया है। और लोग चले; भीड़ लग गई महल के चारों तरफ। इसमें राजा के सिपाही भी थे, सेनापति भी थे, पहरेदार भी थे--सभी पागल हो गए थे। राजा बहुत घबड़ाया। उसके शरीर रक्षक भी पागल हो गए थे। अब तो कोई बचाने वाला भी नहीं था। उसने अपने वजीर से कहा, अब क्या करना? यह तो फांसी लग गई। कुआं एक ही होता तो ठीक था। वजीर ने कहा, घबड़ाएं मत, मैं इनको उलझा कर रखता हूं बातचीत में, आप पीछे के दरवाजे से भाग कर जाएं और जल्दी से पानी पीकर लौटें। राजा-रानी भागे। वजीर लोगों को समझाने लगा कि भाइया, सुनो, समझो। मगर लोग कौन सुनने वाले थे! लोग चिल्ला रहे थे कि पागल राजा कहां है? उसको निकालो। हम राजा को बदलेंगे; अब पागल राजा नहीं चलेगा; किसी होश वाले को बिठाएंगे। तब तक राजा और रानी वापस लौट आए। गए थे पीछे के दरवाजे से, लौटे नहीं पीछे के दरवाजे से। आए नाचते-कूदते नंग-धड़ंग सामने के दरवाजे से। लोगों ने देखा, उन्होंने कहा, अहा, यह रहा राजा हमारा! धन्य हमारे भाग्य, लगता है होश इसके ठीक हो गए! तुमने भी पानी पीआ? उसने कहा, पीकर चले आ रहे हैं। बड़ा आनंद है। आनंद ही

आनंद है। और वह तो नाचने लगा। और लोग भी नाचने लगे। उस रात उस गांव में बड़ा उत्सव हुआ कि हमारे राजा की बुद्धि ठीक हो गई। भगवान की कृपा है!
ठीक कहते हैं गुलाल--"कासों कहूं गंवार।" गंवार कहने में भी संकोच होता है। किससे कहूं? "कहै गुलाल सबै नर गाफिल", ... सभी बेहाश हैं, ... "कौन उतारै पार।" यहां सभी बेहोश हैं, कौन उतारेगा पार इस भीड़ को, इन पागलों को, इन गाफिलों को? ये खुद तो उतर नहीं सकते। इनके हाथ में तो नाव देना खतरे से खाली नहीं है। ये तो डुबाकर रहेंगे नाव। और कौन उतारे इन्हें पार? इन्हें तो कोई होश नहीं, और इतना भी इन्हें होश नहीं कि जिसे होश आ जाए, उसकी सुन लें। इतना भी इन्हें होश नहीं कि कोई होश में आ गया, उसे पहचान लें। इसलिए थोड़े-से ही लोग बुद्धों का लाभ उठा पाए।
जीसस के कितने थोड़े से शिष्य थे। बारह। और जब जीसस को सूली लगी तो एक लाख आदमी पत्थर फेंकने को, गालियां बकने को, सड़े केले और टमाटर फेंकने को इकट्ठे हो गए थे। सुनने को कोई नहीं आता था। समझने को बारह आदमी केवल राजी हुए थे। लेकिन सूली देखने को एक लाख आदमी इकट्ठे हो गए! यह जमात है पागलों की।
मंसूर को गांव-गांव भगाया गया। गांवों में टिकने नहीं दिया गया। क्योंकि वह जो बात कहता था, वह होश की परम बात थी। "अनलहक।" उसने घोषणा कर दी थीः अहं ब्रह्मास्मि। मैं ब्रह्म हूं। और तुम भी ब्रह्म हो। मुसलमानों के बरदाश्त के बाहर!
तरह-तरह के अंधे हैं। हिंदू, मुसलमान, जैन, ईसाई, ये अंधों की अलग-अलग जमातें है। जमातें ही अंधों की हैं। जमातें ही अंधों की हो सकती हैं। होशवालों की कोई जमात थोड़े ही होती है। होश वाले का कोई संप्रदाय थोड़े ही होता है, कोई धर्म थोड़े ही होता है। होश वाले का कोई देश थोड़े ही होता है, कोई जाति थोड़े ही होती है, कोई वर्ण थोड़े ही होता है। उसका तो होश ही वर्ण है, होश ही जाति है, होश ही धर्म है।
गांव-गांव से मंसूर को भगाया गया, कोई टिकने न देता था। कोई छप्पर में नहीं रुकने देता था; कोई भोजन नहीं देता था। लेकिन जब सूली लगी तो लाखों लोग देखने इकट्ठे हुए। अजीब लोग हैं! जो उसे सुनने कभी न आए--अमृत बरसा रहा था--लेकिन उसे जब मारा गया, उसके हाथ-पैर काटे गए, तब उसे देखने आए। उस पर पत्थर फेंकने आए। दूर-दूर से आए, सैकड़ों मील की यात्रा करके आए।
ठीक ही कहते हैं गुलालः "अनुभव घर कै सुधियौ न जानत", ... तुम्हारे भीतर बैठा है, जिसकी सुधि आ जाए तो तुम्हें जीवन का अनुभव हो जाए, ... "कासों कहूं गंवार।"
कहै गुलाल सबै नर गाफिल, कौन उतारै पार।।
बड़ी मुश्किल है। सब बेहोश हैं। कभी कोई अगर होश से भी भर जाता है, तो बेहोश या तो उसे मार डालते हैं, या उसकी पूजा करने लगते हैं। ये दोनों ढंग बचने के हैं। अगर थोड़े उजड्ड हुए तो मार डालते हैं। अगर थोड़े संस्कारी हुए तो पूजा करने लगते हैं। पूजा करने का मतलब है कि महाराज, यह लो पूजा और हमें क्षमा करो! अपनी बातें अपने तक रखो! हम सदियों तक पूजेंगे, फूल चढ़ाएंगे, मंदिर बनाएंगे, मगर हमें सताओ मत! हमसे करने को मत कहो! हम पूजा कर सकते हैं, हम आचरण नहीं कर सकते।
बुद्ध को नहीं सुना, बुद्ध की मूर्तियां बनाईं। इतनी मूर्तियां बनाईं कि--उर्दू में जो शब्द है मूर्ति के लिए, वह हैः बुत--बुत बुद्ध का ही अपभ्रंश है। इतनी मूर्तियां बनीं कि बुद्ध और मूर्ति पर्यायवाची हो गए। दुनिया में जितनी बुद्ध की मूर्तियां हैं, किसी की नहीं। और बुद्ध ने कहा थाः मेरी मूर्तियां मत बनाना। कुछ करना हो तो अभी कर लो; जब मैं जा चुका, फिर मूर्तियां बनाने से भी क्या होगा? पत्थरों को मत पूजते रहना। लेकिन पत्थरों के साथ हमारा मेल बैठता है। हम भी पत्थर हैं, हमारी दोस्ती बन जाती है। और पत्थर की मूर्तियां हमारे वश में होती हैं। जब चाहो तब पट बंद करो; जब चाहो तब झूले पर लिटा दो; जब चाहो तब झूला झूला दो; जब चाहो तब भोग लगा दो--जो मर्जी हो सो करो, मूर्ति तुम्हारे वश में होती है। लेकिन जीवित बुद्ध तुम्हारे वश में नहीं होते। उनके साथ तो अगर मैत्री बनानी हो तो

तुम्हें उनके वश में होना पड़ता है। और वही अड़चन है, वही कठिनाई है। समर्पित होए तो ही कोई व्यक्ति शिष्य हो सकता है।
लेकिन मिल सकती है राह, मिल सकता है द्वार। द्वार सदा खुला है। पृथ्वी कभी भी खाली नहीं होती बुद्धपुरुषों से। कहीं-न-कहीं कोई दीया जलता ही रहता है। परमात्मा हताश नहीं है, कहीं न कहीं किसी न किसी प्राण में अवतरित होता ही रहता है।
नामरस अमरा है भाई, कोउ साध-संगति तें पाई।।
वह अमृतरस उपलब्ध है। मगर मिलता है संगति में, किसी साधु की संगति में। जो पहुंच गया, उसके साथ मैत्री बन जाए, तो तुम भी उस पार जा सकते हो। "नामरस अमरा है भाई", ... अमर करने वाला है नामरस।... "कोउ साध-संगति तें पाई।" मगर पाने का ढंग हैः साधु की संगति हो।
संगति--सत्संग--धर्म के जगत में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शब्द है। यह राज है, यह रहस्य है धर्म की कीमिया का। सत्संग का अर्थ होता हैः जो जाग गया है, उसके पास बैठने-उठने की कला। सत्संग का अर्थ होता हैः जो जाग गया है, उसके और अपने बीच मन को न आने देने की कला। सत्संग का अर्थ होता हैः जो जाग गया है, उसके निमित्त अपने को मिटा देने की कला; विसर्जन की कला। सदगुरु के चरणों में जब शिष्य अपने को मिटा देता है, तो गंगा सदगुरु में उतरी है, वही गंगा शिष्य में भी उतरनी शुरू हो जाती है।
नामरस अमरा है, भाई, कोउ साध-संगति तें पाई।।
लेकिन पाने का एक ही ढंग है--बस एक--दूसरा कोई ढंग नहीं, दूसरा कोई उपाय नहीं। न शास्त्र से मिलेगा; लाख सिर पटको शास्त्रों में, तुम उस अमृत को न पा सकोगे। क्योंकि शास्त्रों में तो शब्द हैं। शब्दों का अर्थ कौन करेगा? अर्थ तो तुम करोगे। और तुम क्या अर्थ करोगे! तुम्हारी नींद अर्थ करेगी। और नींद के हिसाब से अर्थ किए गए तो अनर्थ होने वाला है।
मुल्ला नसरुद्दीन डट कर शराब पीता है। एक दिन उसके मित्र ने उससे कहा
कि तुम कुरान भी रोज पढ़ते हो और शराब भी रोज पीते हो, ये दोनों बातें जमती नहीं। कुरान तो सख्त खिलाफ है शराब के। तो या तो कुरान छोड़ दो या शराब छोड़ दो। यह कैसा द्वंद्व चला रहे हो!
मुल्ला ने कहाः तुम समझे नहीं। कुरान रोज पढ़ता हूं, और शराब भी जो पीता हूं वह कुरान के आदेश से ही पीता हूं। वह आदमी सुन कर दंग हुआ, उसने कहाः कुरान में कहां है आदेश?
मुल्ला ने कुरान खोल कर दिखाई कि यह देखो, कुरान में साफ-साफ लिखा है
कि पीओ, डटकर पीओ, मगर याद रखोः नरक में सड़ोगे। मुल्ला ने कहा कि अपनी जितनी सामर्थ्य है, अभी आधा ही वाक्य अपन पूरा कर पाते हैं... पीओ, डट कर पीओ, अभी इतना ही अपना वश है। अभी इतनी अपनी सामर्थ्य नहीं कि पूरा वाक्य उपयोग में ला सकें। तो जितनी बने उतनी तो उपयोग में लाओ। है यह कुरान का ही वचनः पीओ, डट कर पीओ; इसमें अपना कुछ नहीं है। रही आधी बात, अभी अपनी सामर्थ्य नहीं है। जब होगी सामर्थ्य तब आधी पर भी ध्यान देंगे।
नींद में तुम जो अर्थ करोगे, वे अर्थ भी तुम्हारे ही होने वाले हैं। शास्त्रों से तुम्हें छुटकारा नहीं मिल सकता है, मोक्ष नहीं मिल सकता है। क्योंकि शास्त्र का अर्थ तो तुम फौरन विकृत कर लोगे! शास्त्र की तो क्या सामर्थ्य है? क्योंकि शास्त्र मुर्दा है। शास्त्र में कोई जीवन तो है नहीं। फिर क्या उपाय है? एक ही उपाय है कि कहीं कोई तुम्हें जीवित शास्त्र मिल जाए--उसको ही सदगुरु कहते हैं। उपनिषद नहीं, लेकिन कोई व्यक्ति जहां उपनिषद अभी पैदा हो रहे हों।
शास्त्र तो ऐसे हैं जैसे सूखे हुए गुलाब के फूल। और सदगुरु ऐसा है, अभी झाड़ी पर ऊगा हुआ फूल। अभी ताजा! सदगुरु की मौजूदगी जरूरी है, क्योंकि वह तुम्हें अनर्थ न करने देगा। वह तुम्हें रोकेगा, जहां तुम अनर्थ करने लगोगे। वह तुम्हें बार-बार अर्थ की तरफ खींचेगा। तुम नींद की तरफ ले जाओगे उसके शब्दों को, वह जागरण की तरफ लाएगा। कशमकश होती है गुरु और शिष्य के बीच, रस्साकशी होती है। और निश्चित ही गुरु जीतेगा अगर रस्साकशी शुरू हो गई। गुरु से जीतने का उपाय नहीं है।

गुरु से बचने का उपाय है कि उसके पास ही मत जाना! लेकिन जीतने का उपाय नहीं है। पास गए तो हार निश्चित है। क्योंकि ऐसे नहीं तो वैसे, इधर से नहीं तो उधर से, वह करेगा चोटों पर चोटें, वह तुम्हारे भीतर की चट्टानें तोड़ेगा, तुम्हारे झरने फोड़ेगा, वह तुम्हारे भीतर रसधार बहाएगा। क्योंकि है तो तुम्हारे भीतर छिपी। थोड़ी अड़चनें हैं, वे तोड़ी जा सकती हैं। उसने अपनी तोड़ी हैं। इसलिए उसे पता है वे अड़चनें कहां हैं। उसने अपनी तोड़ी हैं, इसलिए जानता है कैसे वे अड़चनें तोड़ी जा सकती हैं। वह उस पार हो आया है, इसलिए जानता है कैसे तुम्हारी नाव को उस पार ले चले।
नामरस अमरा है भाई, कोउ साध-संगति तें पाई।।
यों तो सारा शहर पड़ा है,
पर रहने की जगह नहीं है!
नाप रहे नभ की सीमाएं,
किंतु राह का पता नहीं है,
मनसूबे तो हिमगिरि जैसे,
पर कण भर भी तथा नहीं है;
कैसे मंजिल पाए कोई,
सीमांतों तक जाए कोई,
राशि-राशि किरणें बिखरीं पर-- दूर-दूर तक सुबह नहीं है! धुरीहीन सब घूम रहे हैं,
केवल चलते ही रहना है;
काल-सरित की प्रखरधार में-- पराधीन, परवश बहना है;
कैसे पांव टिकाए कोई
उद्धत जलधि झुकाए कोई,
लहरों के अंबार लगे हैं,
पर तिरने को सतह नहीं है! जीवन के क्षण भंगुर सपने, सजने के पहले ही टूटे,
जो भी चले सहारा देने--
वे मनमोहक आंचल छूटे;
कैसे मन समझाए कोई,
सांसों को सुलझाए कोई;
यहां मौत के लाख बहाने,
पर जीने की वजह नहीं है!
तुम्हारा जीवन तो ऐसा है, मरने के तो उसमें बहुत कारण हैं, जीने के लिए कोई अर्थ नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। कहीं कोई जीवंत व्यक्ति मिल जाए, तो साहस करना सत्संग का। फिर मत फिकर करना कि वह हिंदू है कि मुसलमान है। क्योंकि जीवित और जाग्रत व्यक्ति न हिंदू होता है न मुसलमान। फिर मत फिकर करना कि वह कुरान पढ़ता है कि गीता। फिर छोटी-छोटी, ओछी-ओछी बातों में मत उलझना। इन ओछी-ओछी बातों के कारण तुम न मालूम कितनी बार चूके हो। अगर महावीर तुम्हें मिल जाएं तो तुम चूक जाओगे, क्योंकि तुम जैन नहीं हो। औरों की तो बात छोड़ दो, अगर महावीर नग्न मिल जाएं तो श्वेतांबर जैन भी चूक जाएगा, क्योंकि सफेद कपड़े नहीं पहने हुए हैं। और समझो कि ठंड के दिन हैं, महावीर कंबल ओढ़े वगैरह मिल जाएं, तो दिगंबर जैन चूक जाएगा कि नंगे नहीं हैं। अगर बुद्ध तुम्हें मिल जाएं, तुम उनकी वाणी सुनोगे? तुम उनके पास बैठोगे? तुम कहोगे हम हिंदू हैं, हम ईसाई हैं, हम मुसलमान हैं। और अगर मोहम्मद मिल जाए, तो तुम कहोगे कि हम जैन हैं, हम बौद्ध हैं। अगर तुम्हें गुलाल मिल जाएं तो तुम कहोगे, हम ब्राह्मण हैं। अगर तुम्हें रैदास मिल जाएं, तो तुम कहोगे, इस शूद्र को हम सुनने जाएंगे!
मैं जबलपुर में था। कुछ चमार तय किए कि रैदास की जयंती मनाएं। वे गए, नगर में जितने पंडित थे, जितने जाने-माने ज्ञानी थे, सबसे प्रार्थना की, सब बहाने कर गए, सब कन्नी काट गए। किसी ने कहा कि मैं तो उस दिन उलझा हुआ हूं।

मुझसे आकर उन्होंने कहा कि बड़ी मुश्किल है, कोई बोलने आने को राजी नहीं है; बस, आप आ सकें तो आएं अन्यथा कोई बोलने को आने को राजी नहीं है। मैंने कहा, मैं आऊंगा। वे बड़े खुश हुए। मैं गया भी बोलने। जो लोग मुझे सदा सुनने आते थे और-और सत्संगों में, उनने आशा बांधी थी कि कम से कम वे लोग तो मुझे सुनने आएंगे जो मुझे सदा सुनने आते थे, वे भी कोई सुनने नहीं आए। चमारों की सभा में कौन सुनने जाए! चमारों के साथ बैठे कौन! उन बेचारों ने बड़ी व्यवस्था की थी, मगर बस चमार ही इकट्ठे हुए। कोई पचास-साठ चमार। इंतजाम किया था उन्होंने कोई पांच हजार लोगों के बैठने का। वे मुझसे कहने लगे कि आपको जो सदा सुनते हैं, उनका भी पता नहीं है! मैंने कहाः अब तुम समझो! मुझे प्रेम करते हैं वे, मगर इतना नहीं कि चमारों के साथ बैठ सकें! वह प्रेम भी औपचारिक है।
मुझे समझाने लोग आए, कहने लोग आए बोलने के पहले कि आप वहां मत जाएं। चमारों की सभा में बोलना शोभा देता है!
तो रैदास अगर जिंदा भी हों, तो तुम सुनने न जा सकोगे। रैदास तो खुद ही चमार हैं। तुम गोरा कुम्हार को सुनने जाओगे? तुम जुलाहे कबीर को सुनने जाओगे। तुम्हारे अहंकार को हजार बाधाएं आ जाएंगी। कोई ब्राह्मण है, कोई वैश्य है, कोई क्षत्रिय है--ऊंची-ऊंची जाति के लोग हैं। बुद्धपुरुषों से तुम इस तरह चूकते रहे हो। आज भी वही गति है जो पहले थी। कासों कहूं गंवार! अब भी वही नींद है।
कहै गुलाल सबै नर गाफिल, कौन उतारै पार।।
पार उतारने वाले माझी हमेशा उपलब्ध हैं; मगर नाव में बैठने वाले लोग नहीं मिलते। क्योंकि सबने तय कर रखा है हम किस की नाव में बैठेंगे। जैन कहते हैं, जब महावीर मिलेंगे माझी की तरह तब बैठेंगे। अब महावीर दुबारा तो आएंगे नहीं! बौद्ध कहते हैं, हम तो बुद्ध की ही नाव में बैठेंगे। बुद्ध दुबारा तो आएंगे नहीं! कृष्ण के मानने वाले कहते हैं, हम कृष्ण की नाव में बैठेंगे। कोई दुबारा नहीं आता है और तुम्हारे आग्रह अतीत के हैं। और जब बुद्ध जिंदा थे तब तुम नाव में बैठे नहीं। और कृष्ण जिंदा थे तब तुम नाव में बैठे नहीं।
तुम्हारी तो बात और, अर्जुन ने भी इतनी झंझट मचाई नाव में बैठने में!
और मुझे शक है कि वह आखिर तक भी बैठा। क्योंकि महाभारत की कथा यह कहती है कि जब महाप्रयाण हुआ और स्वर्ग की यात्रा शुरू हुई, तो सब गल गए, सिर्प युधिष्ठिर और उनका कुत्ता स्वर्ग के द्वार तक पहुंचे। गल जाने वालों में अर्जुन भी है। अर्जुन भी दिखता है मान नहीं पाया पूरा-पूरा। गीता में हजार प्रतीक हैं इसके कि नहीं मान पा रहा है। संदेह पर संदेह उठाता है। शंकाएं उठाता है। और ऐसा लगता है कि आखिर में जब वह कहता है कि हे कृष्ण, तुमने मेरी सब शंकाओं का निराकरण कर दिया, अब मैं निश्चिंतमना हुआ, तो ऐसा नहीं है कि वह सच में निश्चिंतमना हो गया है। ऐसा लगता है कि थक गया, कि हे भइया, अब चुप होओ! चलो, तुम जो भी कहते हो सो ठीक! देखा कि यह तो मानते ही नहीं। मैं इतनी शंकाएं उठा रहा हूं, यह हर एक का उत्तर निकालते जाते हैं। चुप कर दिया कृष्ण ने ऐसा मालूम होता है--उनके बल ने, उनकी बातों ने--मगर अर्जुन रूपांतरित नहीं हुआ। वहीं का वहीं अटका हुआ है। वही बुद्धिजाल।
उसकी सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि कृष्ण उसके मित्र हैं, कैसे इनको सदगुरु माने? इनके साथ उठा, बैठा, खेला। इनके साथ लड़ा-झगड़ा, कुश्तमकुश्ती भी हुई होगी कभी, यह सब हुआ जिसके साथ उसको कैसे सदगुरु माने? उसको अड़चन है। और अभी तो यह मेरे सारथी हैं, उसको लगता होगा। सारथी होकर मुझको ज्ञान दे रहे हैं! मेरे घोड़ों को नहलाते हैं, खुजलाते हैं, साफ करते हैं और मुझको ज्ञान दे रहे हैं! मैं, जो रथ में बैठा हूं, रथ का मालिक हूं! अड़चन हो रही है उसे। और शायद ज्यादा अब बात आगे न बढ़े, तो उसने कहा होगा कि ठीक है, मेरी सब शंकाओं का समाधान हो गया। अब जो होना है सो ठीक है। बजाय तुम से सिर मारने के युद्ध में उतर जाना बेहतर है।
जो कृष्ण के साथ हुआ, वही बुद्ध के साथ, वही जीसस के साथ, वही मुहम्मद
के साथ--सबके साथ वही हुआ है। सत्संग करना जरा महंगा काम है। क्योंकि झुकना पड़ता है। और झुकने में हमें अड़चन आती है। अहंकार को जरा सा भी गलाने

में हमारे प्राण कंपते हैं। क्योंकि हमने अहंकार को ही अपना अस्तित्व समझ रखा है। और सत्संग में मांग एक ही हैः तोड़ दो अहंकार को; गिरा दो उसे बिल्कुल; उससे सारा तादात्म्य छोड़ लो; उसके साथ अपनी एकता के सारे संबंध छिन्न-भिन्न कर डालो; कहो कि मैं अहंकार नहीं हूं; कहो कि मैं मैं नहीं हूं; कहो कि मैं सिर्प एक शून्य हूं; तब सत्संग घट सकता है।
नाम रस अमरा है, भाई, कोउ साध-संगति तें पाई।।
बिन घोटे बिन छाने पीवै, कौड़ी दाम न लाई।
और कुछ नहीं चुकाना पड़ता--धन से नहीं मिलता, त्याग से नहीं मिलता, ऐसे
तो कौड़ी दाम भी नहीं लगाना पड़ता, लेकिन अहंकार छोड़ने से मिलता है। और अहंकार एक झूठ है। तुमने मान लिया, इसलिए है। है कहीं भी नहीं। तुम अलग नहीं हो अस्तित्व से। यह सिर्प तुम्हारी भ्रांति है कि मैं अलग हूं; सिर्प धारणा मात्र है कि मैं अलग हूं। अगर वृक्षों के पत्ते सोच सकें, तो हर पत्ता सोचेगा कि मैं अलग हूं। और अगर सागर की लहरें सोच सकें, तो हर लहर सोचेगी कि मैं सागर से अलग हूं। बस, वही भ्रांति तुम्हारी है। तो तुम गंवा कुछ भी नहीं रहे हो--सिर्फ एक भ्रांति, एक झूठ--ऐसे कौड़ी भी नहीं जा रही है; खो कुछ भी नहीं रहे हो और पा सब कुछ रहे हो।
रंग रंगीले चढ़त रसीले, कबहीं उतरि न जाई।।
और गुलाल कहते हैं कि अगर तुम इतना कर सको, जरा अहंकार को हटा सको, तो क्रांति घट जाए। "रंग रंगीले चढ़त रसीले", ... तुम्हारे जीवन में रंगों की फुहारें छूट जाएं, तुम सतरंगे हो जाओ, तुम इंद्रधनुष हो जाओ; "रंग रंगीले चढ़त रसीले", ... तुम रस से भर जाओ। रस जो कभी चुके नहीं।... "कबहीं उतरि न जाई।" ऐसी रस की बाढ़ आए जो कभी उतरती नहीं। बरसाती बाढ़ नहीं--जो आती, उतर जाती--शाश्वत, सनातन की बाढ़।
छके-छकाए पगे-पगाए, झूमि-झूमि रस लाई।
फिर तुम नाचोगे, झूमोगे, मदमस्त होओगे; रस तुमसे झरेगा, बहेगा। "छके- छकाए", तुम खुद भी छकोगे, औरों को भी छकाओगे। "पगे-पगाए", तुम्हारा रोम-रोम उसी रस में पग जाएगा। तुम्हारी आत्मा ही नहीं उस रस में डूबेगी, तुम्हारी देह तक उस रस में डूब जाएगी, सराबोर हो जाएगी। तुम भीग जाओगे, तुम आर्द्र हो उठोगे; आनंद से रोआं-रोआं नाचेगा, गीत गाएगा, सुबह हो जाएगी, रात कट जाएगी।
बिमल बिमल बानी गुन बोलै, ... और तुम जो बोलोगे, वही सत्य होगा। सत्य तुम्हें बोलना नहीं पड़ेगा, तुम जो बोलोगे, वही सत्य होगा। तुम जो कहोगे, वही गीत बन जाएगा। तुम उठोगे तो नृत्य होगा, तुम बैठोगे तो उत्सव होगा।
बिमल बिमल बानी गुन बोलै, अनुभव अमल चढ़ाई।।
जब एक दफा अनुभव का नशा चढ़ जाता है, तो सारा जीवन परमात्मा का प्रमाण देने लगता है।
जहं जहं जावै थिर नहिं आवै, खोलि अमल लै धाई।
जहां-जहां जाओगे, किसी को भी पाओगे कि थिर नहीं हो पा रहा है, "खोलि अमल
लै धाई", अपना नशा उसके सामने कर दोगे, कि ले भाई, तू भी पी! उससे भी कहोगे, जी भर कर जीओ, जी भर कर पीओ! खोल दोगे अपने द्वार उसके लिए। भटकतों के लिए तुम राह बन जाओगे। दूर अंधेरे में भटकतों के लिए एक दीया बन जाओगे।
जल पत्थल पूजन करि भानत, फोकट गाढ़ बनाई।।
तुम लोगों को जगाने लगोगे कि क्या पागलपन कर रहे हो! जल पूज रहे हो? पत्थर पूज रहे हो? तोड़ने लगोगे तुम लोगों की ये धारणाएं। "फोकट गाढ़ बनाई।" यह तुमने मुफ्त में ही मिट्टी की, पत्थर की मूर्तियां बना ली हैं, गढ़-गढ़ कर। परमात्मा तुम नहीं गढ़ सकते। परमात्मा तो वह है जिसने तुम्हें गढ़ा है। गुरु परताप कृपा तें पावै, ...
लेकिन यह घटना घटती है केवल सदगुरु के संग में।
गुरु परताप कृपा तें पावै, घट भरि प्याल फिराई।
सद्गुरु मिल जाए तो तुम्हें पता चलेगा। सदगुरु तो एक जीवंत मधुशाला है। "घट भरि प्याल फिराई।" वहां तो प्यालों पर प्याले भर कर और फिराए जा रहे हैं! जिसको पीना हो पी ले; जिसकी हिम्मत हो पी ले।
गुरु परताप कृपा तें पावै, घट भरि प्याल फिराई।

गुरु तो साकी है। सूफियों ने गुरु को साकी कहा है। साकी का अर्थ हैः
जो पिलाए। जो सुराही से शराब ढाले तुम्हारी प्याली में और तुम्हें चखा दे रस; तुम्हें स्वाद लगा दे परमात्मा का।
गुरु परताप कृपा तें पावै, घट भरि प्याल फिराई।
कहै गुलाल मगन हूवै बैठे, मंगिहै हमरी बलाई।।
गुलाल कहते हैं कि हम तो मगन होकर बैठे हैं। मांगना थोड़े ही पड़ता है गुरु के सत्संग में! हमारी बला मांगे! गुरु तो खुद ही पिलाता है। वह तो खुद ही अपनी सुराही लेकर घूमता है। वह खुद ही सुराही है। और उसके स्रोत तो परमात्मा से जुड़े हैं, इसलिए उसकी सुराही कभी चुकती नहीं।
सूफी फकीरों ने इसी शराब की बात की है--और लोग समझे नहीं।
उमर खैयाम इसी शराब की बात कर रहा है--और लोग समझे नहीं। लोगों ने शराबों की दुकानों के नाम रख दिए हैंः "उमर खय्याम।" उमर खय्याम के साथ बड़ा अन्याय हुआ है। उमर खय्याम एक सूफी संत है। वह वही कह रहा है जो गुलाल कह रहे हैं। वह यही कह रहा है कि परमात्मा शराब है, अलमस्ती है, आनंद का परम अनुभव है, सच्चिदानंद है। और उस सच्चिदानंद को प्रकट करने के लिए शराब से बेहतर कोई प्रतीक नहीं। हां, इतना फर्क है कि साधारण शराब का नशा चढ़ा और उतर जाता है, उसका नशा चढ़ता है तो चढ़ा, फिर चढ़ता ही चला जाता है, और-और ऊंचे, उत्तुंग शिखरों पर चढ़ता चला जाता है, उतरता नहीं।
सदगुरु मिल जाए तो झुकना उसके चरणों में, कहना उससे--
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूं।
जानता हूं इस जगत में
फूल की है आयु कितनी।
और यौवन की उभरती
सांस में है वायु कितनी।
इसलिए आकाश का विस्तार
सारा चाहता हूं।
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूं। प्रश्न-चिन्हों में उठी हैं
भाग्य-सागर की हिलोरें।
आंसुओं से रहित होंगी
क्या नयन की निमित कोरें?
जो तुम्हें कर दे द्रवित
वह अश्रु-धारा चाहता हूं।
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूं। जोड़ कर कण-कण कृपण
आकाश ने तारे सजाए।
जो कि उज्जवल हैं सही,
पर क्या किसी के काम आए?
प्राण! मैं तो एक मार्गदर्शक
एक तारा चाहता हूं।
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूं। यह उठा कैसे प्रभंजन!
जुड़ गईं जैसे दिशाएं!
एक तरणी, एक नाविक
और कितनी आपदाएं!
क्या कहूं, मझधार में ही
मैं किनारा चाहता हूं!
मैं तुम्हारी मौन करुणा का सहारा चाहता हूं।
बस इतनी प्रार्थना, इतना समर्पण और जीवन में क्रांति की शुरुआत हो जाती है। कट गई अमावस फिर, हुई सहर, हुई सुबह। और जो घटता है, आश्चर्यो का आश्चर्य यह है, कि वह तुम्हारा ही स्वरूप है, जिससे तुम अपरिचित थे और परिचित हो जाते हो। गुरु तुम्हें कुछ देता नहीं, तुम्हें ही तुम्हारे

सामने कर देता है। गुरु तो दर्पण बन जाता है, जिसमें तुम अपनी छवि देख लेते हो। और वही छवि परमात्मा की छवि भी है।
समझो गुलाल के इन वचनों को! परमात्मा करे एक दिन तुम भी कह सकोः झरत दसहुं दिस मोती!

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
छठवां प्रवचन

मेरा संन्यास जीवन के साथ अनंत प्रेम है

पहला प्रश्नः ओशो, संन्यास कैसे लूं? सदा सोचता हूं और रुक जाता हूं।
यह रुकावट क्या है?

देवेंद्र! संन्यास लिया नहीं जाता, घट जाता है। लोगे, तो झूठा होगा; घटेगा, तो सच्चा होगा। संन्यास कोई गणित नहीं है कि सोच-विचार कर लो। संन्यास तो एक मस्ती है--पियक्कड़ों के लिए है, होशियारों के लिए नहीं, समझदारों के लिए नहीं।
जरूर तुम अति समझदार हो। सोच-सोच कर रुकते रहोगे। सोचना रुकने की प्रक्रिया है। सोचे कि चूके। सोचने का अर्थ होता है कि जैसे तुम्हें पता ही है कि संन्यास क्या है। जिसका पता नहीं है, उसके संबंध में सोचोगे कैसे? संन्यास तुम्हारे लिए अज्ञात है। उसका कोई अनुभव नहीं, स्वाद नहीं। स्वाद ले लो, फिर सोचना। और जिन्होंने स्वाद लिया, उन्होंने कभी सोचा नहीं। और जिन्होंने सोचा, उन्होंने कभी स्वाद नहीं लिया। वे सोचने में ही अटके रहते हैं।
वह तो परमात्मा की बड़ी कृपा है कि कुछ बातें उसने तुम्हारे सोचने पर नहीं छोड़ी हैं। नहीं तो मां के गर्भ से भी तुम शायद ही पैदा होते! तुम सोचते कि पैदा होना कि नहींं? नौ महीने मां के गर्भ के शांत, मौन क्षण, निश्चिंतता के--कोई चिंता नहीं, कोई दायित्व नहीं, कोई काम नहीं--विश्राम के, इन्हें छोड़ कर कहां जाते हो, मन कहता। पता नहीं किस उपद्रव में पड़ो! इन सुखद घड़ियों को छोड़ कर कौन से दुख मोल लेने की ठानी है! कुछ सोचो, कुछ विचारो; ठहरो, जल्दी क्या है? सोच-समझ कर कल जन्म ले लेना। और कल कभी आता नहीं।
जिस चीज को टालना हो, कहना, कल लेंगे। वह सदा के लिए टल जाती है। कल यानी कभी नहीं।
परमात्मा ने जन्म का मामला तुम्हारे ऊपर नहीं छोड़ा। देख लिया होगा कि तुम पर छोड़ा तो तुम जन्म लोगे ही नहीं। मृत्यु तुम पर नहीं छोड़ी। तुम पर छोड़े तो तुम मरोगे नहीं। पृथ्वी पर भीड़ हो जाएगी; टहनी हिलाने की भी जगह न रह जाएगी; आदमी एक-दूसरे के ऊपर खड़े हो जाएंगे! मृत्यु तुम पर नहीं छोड़ी। मृत्यु तुम्हें सूचना नहीं देती कि क्या विचार है--मरना है या नहीं? नहीं तो तुम निश्चित रूप से ही कहोगे कि सोचूंगा। और सोचने का कभी कोई अंत आता है?
सोचने की प्रक्रिया ज्ञात के संबंध में लागू होती है, अज्ञात के संबंध में नहीं। और संन्यास जन्म और मृत्यु दोनों से ज्यादा अज्ञात है। क्योंकि संन्यास जन्म भी है और मृत्यु भी। मृत्यु है अतीत की, मृत्यु है व्यतीत की--जो जा चुका--मृत्यु है मन की, अहंकार की और जन्म है निरहंकार का। जन्म है निर्दोषता का, सरलता का। मृत्यु है मन की और जन्म है साक्षी का। जन्म और मृत्यु भी इतने अज्ञात नहीं, जितना संन्यास अज्ञात है।
और देवेन्द्र, तुम कहते होः "संन्यास कैसे लूं?"
सोचोगे तो कभी ले ही न सकोगे। यह सवाल कैसे का नहीं है। कैसे की बात ही
मन की चालबाजी है। मन कहता हैः पहले प्रक्रिया तो समझो। और प्रक्रियाएं ऐसी हैं कि अनुभव से ही समझ में आती हैं। जैसे कोई आदमी कहे कि जब तक मैं तैरना न सीख लूंगा, पानी में न उतरूंगा। तर्कयुक्त है उसकी बात। बिना तैरना सीखे पानी में उतरना खतरे से खाली नहीं है! सिखाने वाला कहेगा कि कम से कम उथले में उतरो, नहीं तो मैं तैरना कैसे सिखाऊं? लेकिन जिसे सीखना है, वह कहेगा कि क्या उथला और क्या गहरा? कहां उथला गहरा हो जाए; कहां पैर सही, कहां गलत पड़ जाए; मैं तो पहले तैरना सीख लूंगा तभी उतरूंगा!
मुल्ला नसरुद्दीन तैरना सीखने गया था। जिस उस्ताद ने तय किया था उसको
कि सिखाएगा, वह लेकर उसे घाट पर पहुंचा, काई जमी थी पत्थर पर, मुल्ला का पैर फिसल गया--गिरा, उठा और भागा घर की तरफ। उस्ताद ने कहा कि नसरुद्दीन, कहां

जाते हो? तैरना नहीं सीखना है? नसरुद्दीन ने कहा, हो गया। अब तो तभी आऊंगा नदी के पास जब तैरना सीख लूंगा। अब तो पानी से कोस भर दूर रहूंगा। उस्ताद ने पूछाः तैरना कहां सीखोगे? नसरुद्दीन ने कहाः अपने घर में; गद्दे-तकिया बिछा कर। अरे, हाथ ही पैर पटकने हैं, अपनी गद्दी पर पटकेंगे! जब तैरना आ जाएगा, तो आएंगे नदी के तट पर।
गद्दी-तकिए पर तैरना सीख पाओगे? हाथ-पैर भला पटको, व्यायाम भला हो जाए, तैरना नहीं होगा। तैरने के लिए तो जल में उतरने की सामर्थ्य जुटाना ही होगा।
जल से मेरा अर्थ है अज्ञात से।
संन्यास तुम्हारा अनुभव नहीं। जन्मों-जन्मों में तुम कभी संन्यासी नहीं हुए। यह स्वाद अनचखा है। कोई समझाए भी तो समझा नहीं सकता। जिसने मिठास नहीं चखी, उसे कैसे समझाओ कि मिठास क्या है! लाख सिर पटको, उसकी समझ में न आएगा।
जिसने शराब नहीं चखी, उसे लाख समझाओ कि शराब क्या है--क्या तुम सोचते
हो समझ में आ सकेगा? वह मस्ती तो पीकर ही आती है। कोई नहीं पूछता शराब कैसे पीएं? और तुम पूछते हो संन्यास कैसे लें? शराब ही है यह--यह परमात्मा की शराब है; यह उस अनंत को पीने का ढंग है; यह उस अनंत के प्रति अपनी प्याली को कर देने का उपाय है। वह तो सुराही लिए खड़ा है, कि भर दे तुम्हारी याली। कल सुना नहीं गुलाल कह रहे थे। कि वह तो सुराही लिए घूम रहा है, तुम अपनी प्याली छुपाए हो, भरना भी चाहे तो कैसे भरे! कभी उसके सामने भी प्याली करते हो तो उल्टी करते हो। भर भी दे तो तुम्हारी प्याली खाली-की-खाली रह जाती है। शराब गिर भी जाती है, मगर तुम्हारी प्याली प्यासी-की-प्यासी रह जाती है।
यहां आकर बैठते हो, वर्षा हो रही है, मगर प्याली तुम्हारी उल्टी रखी होगी। सीधी रखो प्याली को। प्याली को सीधी रखने का नामः श्रद्धा; उलटी रखने का नाम संदेह। उलटी रखने का नाम पहले सोच लेंगे, समझ लेंगे, सब तरह से निश्चिंत हो जाएंगे, तब कदम आगे बढ़ाएंगे।
गारंटी तो कुछ भी हो नहीं सकती! और इसकी कोई प्रक्रिया नहीं है संन्यास की कि इस ढंग से लिया जाए। संन्यास तो तुम्हारे भीतर इस बात के बोध से फलित होता है कि अब तक जो मैंने किया, व्यर्थ किया--जैसा मैं जीया, व्यर्थ जीया; मेरे हाथ में असार लगा; मैं कूड़ा-करकट इकट्ठा करता रहा। गुलाल कहते हैंः हीरा जनम गंवाया। हीरे जैसा जन्म था, कंकड़-पत्थर बीनता रहा, खिलौनों में उलझा रहा।
संन्यास तो इस समझ से अपने-आप आविर्भूत होता है कि मैं जैसा हूं, व्यर्थ हूं। तो खोने को क्या है? एक चुनौती सही, एक अभियान सही, उतारेंगे नाव अज्ञात में, जब यह किनारा है तो वह किनारा भी होगा; एक ही किनारा नहीं होता, दूसरा किनारा दिखाई पड़े न दिखाई पड़े, मगर होगा, जरूर होगा! डर तो लगेगा; भय भी लगेगा। यह छोटी सी नाव, ये छोटी पतवारें, ये छोटे हाथ, ये उत्तुंग तरंगें, ये आंधी-तूफान, ये आकाश में घिरे मेघ--कब क्या हो जाएगा? -- यह कड़कती-तड़कती बिजली, कब टूट पड़ेगी, न पता-ठिकाना है हाथ में, न कोई नक्शा है, कैसे छोड़ दें नाव?
नाव उस दूसरे तट के संबंध में जानने से नहीं छोड़ी जाती। इस तट को खूब जान लिया, कुछ पाया नहीं, तो खोने को क्या है? अगर डूबे तो डूबे। अगर न पहुंचे तो न पहुंचे। गंवाने को कुछ नहीं है, तो घबड़ाहट क्या है?
इस बोध से आदमी संन्यास ले सकता है कि इस तट पर तो सब व्यर्थता है, बंधन है, जंजीरें हैं; देख लिया बहुत, सब स्वाद तिक्त है, कड़वा है। मगर लोग कड़वे स्वाद के भी आदी हो जाते हैं। धीरे-धीरे कड़वा स्वाद भी अच्छा लगने लगता है। लोग जंजीरों के भी आदी हो जाते हैं। तो जंजीरें भी आभूषण मालूम होने लगती हैं। लोग कारागृह के भी आदी हो जाते हैं। तो कारागृह को भी सजा लेते हैं जैसे अपना घर हो।
यही तुमने किया है, देवेन्द्र; उसी से अड़चन आ रही है। संन्यास क्या है,
यह सवाल नहीं है; संन्यास कैसे लें, यह सवाल नहीं है; तुम जो हो अभी, उसकी यथार्थता तुम्हें दिखायी नहीं पड़ी है। जंजीरों को आभूषण मान रहे हो।

इसलिए पूछते हो कि आभूषण कैसे छोडूं? अगर जंजीरें हैं, ऐसा दिखाई पड़ जाए, फिर न पूछोगे कि जंजीरें कैसे छोडूं। जंजीरें कोई पकड़ता है! छोड़ ही देता है। तुम पूछ रहे हो, ये हीरे-जवाहरात कैसे छोडूं? काश, तुम्हें दिखाई पड़ जाए कि कंकड़-पत्थर हैं, फिर भी पूछोगे? देखते ही छूट जाते हैं।
अगर तुम्हें साफ अनुभव में आने लगे कि मेरे जीने की शैली, मेरे जीने
का सलीका, मेरे जीने का ढंग केवल व्यर्थ का उत्पादन करता है, इससे सार्थकता सृजित नहीं होती; इससे न गौरव निकलता है, न गरिमा; सत्य का इससे कहीं कोई संबंध नहीं बनता, कोई सेतु नहीं बनता; तो तुम एक झटके में इससे छूट जाओगे, इसके बाहर हो जाओगे। इसे तुमने ही पकड़ा है, इसने तुम्हें नहीं पकड़ा है। ऐसा नहीं है कि ये सारी व्यर्थ चीजें तुम्हें पकड़े हैं, इसलिए तुम पूछो कि कैसे छोड़ें, तुम्हीं इन्हें पकड़े हो। इसलिए देखने की बात है, दर्शन की बात है, दृष्टि की बात है। बस, केवल दृष्टि की बात है।
कहते हो कि सदा सोचता हूं और रुक जाता हूं। सोचने वाले तो रुकते ही रहेंगे। इसमें कुछ विरोधाभास नहीं है। तुमने पूछा है, तो लगता है तुम्हें विरोधाभास दिखाई पड़ता होगा। सदा सोचता हूं और रुक जाता हूं, तो तुम्हारे मन में सवाल उठता होगा कि जब इतना सोचता हूं, तब फिर क्यों रुक जाता हूं? सोचने के कारण ही रुक जाते हो। सोचोगे तो रुकते ही रहोगे। सोचने से कभी कोई निष्पत्ति निकलती ही नहीं। कोई निष्कर्ष नहीं निकलता। सोचना बांझ है; उससे कभी किसी चीज का जन्म नहीं होता। सोचना ऐसे है जैसे कोल्हू का बैल। घूमता रहता वर्तुलाकार। उसे लगता है कि चल रहा है, चलता भी है, मगर क्या खाक चलना है यह! वहीं-वहीं घूमता है, कहीं पहुंचता तो है ही नहीं!
विचार की प्रक्रिया कोल्हू के बैल जैसी है--गोल-गोल घूमती है, वर्तुलाकार, चक्कर पर चक्कर खाती रहती है। तुम कभी सोचने के द्वारा किसी निष्पत्ति पर पहुंचे हो? और अगर तुम विचार करके ही जीवन के काम करने लगो, तो एक दिन भी न जी सकोगे। तो श्वास लेते वक्त सोचना होगा कि श्वास लूं या न लूं? लेने में क्या सार? न लेने में क्या सार? मुश्किल में पड़ जाओगे। श्वास लेने जैसी सहज प्रक्रिया भी अति कठिन हो जाएगी। जीऊं क्यों? किसलिए? और मरूं तो क्यों? किसलिए?
लेकिन तुम जी रहे हो, श्वास भी ले रहे हो, क्योंकि तुमने इन पर सोचने
को नहीं लगाया है। इनको तुमने सोचने के बाहर रखा है।
जो व्यक्ति प्रेम के संबंध में सोचेगा, प्रेम नहीं कर पाएगा। अटका ही रहेगा, सोचता ही रहेगा। निर्णय कैसे लेगा प्रेम के संबंध में? प्रेम के संबंध में तुम सोचते नहीं। जब तुम्हारा प्रेम हो जाता है... इसीलिए तो हम कहते हैं कि प्रेम हो जाता है। करना नहीं पड़ता। हो जाता है तो हो जाता है। तुम खुद ही चौंकते हो, यह कैसे हुआ? तुम्हारे बावजूद हो जाता है।
संन्यास भी प्रेम की घटना है। यह जन्म भी है, मृत्यु भी है, प्रेम भी है। यह जीवन में जो भी रहस्यपूर्ण है, सब का सारभूत; सब में जो सार्थक है, सब की जो आत्मा है, वही संन्यास है। संन्यास जीवन की सारी सुगंध है। लेकिन सुगंध तो उठती है रहस्यमय से, जिससे हम आश्चर्यविभोर हो उठते हैं। विचार से सुगंध नहीं उठती। विचार तो कचरा है; कूड़ा-करकट, उधार, बासा है। विचार कभी मौलिक नहीं होता। और संन्यास तो मौलिक है। मौलिक यानी मूल से पैदा होता है।
यहां बैठते हो, मस्ती किसी दिन पकड़ लेगी! प्रतीक्षा करो! सोचो-मोचो मत; राह देखो। किसी दिन डोलने लगोगे। इतने रिंद यहां बैठे हैं, इतने पी चुके लोग यहां बैठे हैं, कब तक बचोगे? इनके साथ कभी नाचने लगोगे, डोलने लगोगे। एक दिन अचानक पाओगे कि रंग गए हो इनके रंग में। पता नहीं चला किस घड़ी में यह रंग तुम पर बरस गया।
विचार से मेरे पास आओगे तो आ ही न पाओगे; विचार बाधा है। निर्विचार में आओगे तो ही आ सकते हो।
पूछते होः "सोचता हूं सदा, रुक जाता हूं।"
यह रुकावट क्या है? यह सोचना ही रुकावट है। सोचना कहता हैः कल ले लेना; अभी सोच तो लो, रास्ता साफ तो हो जाए, जांच-परख तो कर लो। जो पहले संन्यासी हो गए हैं, उनको कुछ मिला है या नहीं? उन्होंने कुछ पाया या नहीं? चलने के

पहले सब हिसाब-किताब कर लो। पीछे पछताना न पड़े। कल। और कल आता? कल कभी आया है?
और ध्यान रखना, दूसरों को मिला या नहीं, इसको जानने का भी तुम्हारे पास कोई उपाय नहीं। सब बात स्थूल नहीं है। धनी आदमी के पास धन दिखाई पड़ता है; जो पद पर प्रतिष्ठित है, वह पद पर प्रतिष्ठित दिखाई पड़ता है; लेकिन संन्यास तो अंतरतम की बात है। यह फूल भी तो भीतर से खिलता है; भीतर ही इसकी गंध फैलती है। यह धूप तो भीतर ही जलती है, भीतर ही इसकी सुगंध उठती है। हां, इसे पहचाना जा सकता है अगर तुम्हारे भीतर भी यह सुगंध उठी हो।
तो दो मस्ताने जब मिलेंगे तो पहचान लेते हैं एक-दूसरे को। दो रिंदों
को एक-दूसरे को पहचानने में दिक्कत नहीं आती। वे एक-दूसरे की भाषा तत्क्षण समझ लेते हैं। लेकिन तुम बाहर से खड़े होकर दूर से जांचना चाहोगे, तो यह अनुभव कोई विषय नहीं है, जिसका तुम बाहर से निरीक्षण कर सको।
किसके भीतर प्रेम घटा है, इसको बाहर से कैसे जानोगे? घटा हो कि सिर्प कहता ही हो, क्या पता! सुंदर से सुंदर गीत भी गाता हो प्रेम के, तो भी क्या पक्का है कि प्रेम घटा हो! अक्सर तो यही होता हैः जो प्रेम के गीत गाते हैं, उनको प्रेम नहीं घटा होता। गीत गा कर अपने को समझाते हैं, सांत्वना देते हैं। प्रेम तो घटा नहीं, गीत गाकर ही मन को भुलाते हैं। गीत परिपूरक है। क्या पक्का कि किसी के भीतर आनंद घटा है; घटा है या नहीं! मुस्कुराहटों से पहचानोगे? मुस्कुराहटें तो चारों तरफ दिखाई पड़ती हैं। तुम भी जानते हो भलीभांति कि भीतर कोई मुस्कुराहट नहीं होती, फिर भी बाहर तुम मुस्कुराते हो।
मुस्कुराहट तो सामाजिक व्यवस्था है, उपचार है, शिष्टाचार है, संस्कृति है। चार आदमियों में बैठे तो क्या रोना! क्या दुख रोना!! मुस्कुराते हो। मगर उनको तो धोखा होगा कि मुस्कुराते हो तो बड़े आनंद में होओगे।
फ्रेड्रिक नीत्शे ने कहा है कि मैं जब मुस्कुराता हूं तो धोखा मत खाना। मैं मुस्कुराता ही तब हूं जब मैं डरता हूं कि अगर न मुस्कुराया तो रोने लगूंगा। आंसुओं को रोकने के लिए मुस्कुराता हूं। नीत्शे की बात में बड़ी अंतर्दृष्टि है। कहीं आंसू न झलकने लगें! कौन आंसू गिराना चाहता है दूसरे के सामने? कौन इतना दीन-हीन होना चाहता है? नहीं, लोग अपने आंसू पी जाते हैं। आंसुओं को घोंट देते हैं भीतर, कंठ के नीचे दबा देते हैं रुदन को और ओंठों पर मुस्कुराहट पोत लेते हैं। रंगी हुई मुस्कुराहट। स्त्रियां तुम देखते हो न! लिपिस्टिक लगाए हुए घूम रही हैं! वह बड़ा प्रतीक है। ओंठों की लाली से क्या लेना-देना है! लिपिस्टिक से भी काम चल जाता है। रंग लिए ओंठ, दूसरों को लाल दिखाई पड़ने लगे, बस बहुत!
तुम जरा गौर से देखना, लिपिस्टिक लगे हुए ओंठ जितने भद्दे, बेहूदे, कुरूप मालूम होते हैं, उतने कोई ओंठ नहीं मालूम होंगे। क्योंकि झूठ से ज्यादा कुरूप और क्या होगा? मगर स्त्रियों को मूढ़ता चढ़ी हुई है सिर पर। उनको ख्याल है कि बड़े सुंदर ओंठ मालूम हो रहे हैं। चेहरे रंगे हुए हैं। पाउडर पोता हुआ है।...
एक बंगाली प्रोफेसर मुझसे मिलने आते थे। एक दिन मिलने आए, कह कर गए थे
कि मेरी पत्नी को भी साथ ला रहा हूं, मैंने पूछा कि पत्नी का क्या हुआ, अकेले ही आए आप! उन्होंने कहा कि चले तो हम दोनों थे घर से, लेकिन वह वापस लौट गयी क्योंकि बूंदाबांदी होने लगी। मैंने कहा, जब तुम आ गए बूंदाबांदी में तो पत्नी क्यों नहीं आ सकी? उसने कहा कि अब आपसे क्या छिपाना, उसका सब पोता हुआ पाउडर बह गया; लकीरें बन गयीं चेहरे पर; मैंने भी कहा कि तू जा घर वापिस, वही अच्छा!
लोग पोते हुए हैं। लोग जैसे नाटक के मंच पर हैं। मुखौटे लगाए हुए हैं लोगों ने। तुम उनकी हंसी के धोखे में मत आ जाना। और तुम उनके रोने के धोखे में भी मत आना। क्योंकि वक्त-जरूरत वे रोते भी हैं। और भीतर उनके आंसू न हों।
मैं एक घर में मेहमान था। वहां एक मृत्यु हो गयी। घर में एक ही महिला थी। कोई भी आता उठने-बैठने वाला, तो वह दहाड़ मार कर रोती। मैं बड़ा हैरान

हुआ कि वह एकदम दहाड़ मार देती! अभी दो मिनट पहले ठीक-ठीक बात कर रही थी, जैसे ही कोई आया, एकदम दहाड़ मार देती। और तब मैं समझा कि घूंघट भी बड़ा उपयोगी है। जल्दी से घूंघट खींच लेती और एकदम दहाड़ मार देती। क्योंकि बिना घूंघट एकदम दहाड़ मारोगे तो चेहरे पर दिखाई पड़ जाएगा कि चेहरे पर तो कहीं कोई भाव आ नहीं रहा है, न कोई आंसू हैं, न कुछ।
सर्दी के दिन थे, मैं बाहर धूप में बैठा रहता। उसने मुझसे कह रखा था कि जैसे ही कोई आए, घंटी बजा देना। मैंने पूछाः क्यों? उसने कहाः फिर देखना मैं क्या दहाड़ मारती हूं! सच में वह कुशल थी।
लोग अभिनय कर रहे हैं। क्या पक्का--खुश हैं, दुखी हैं, चिंतित? कुछ पक्का तुम बाहर से पता नहीं कर सकते। इन साधारण बातों का पता नहीं कर सकते, तो भीतर संन्यास जन्मा है, प्रेम उमगा है, परमात्मा की प्यास जगी है--ऐसे अत्यंत गहन, अत्यंत गहरे अनुभवों की कोई परख बाहर से नहीं हो सकती। सोचोगे भी तो क्या ख़ाक सोचोगे!
सोचना तुम्हारा सिर्प तरकीब है। तुम इतने हिम्मतवर भी नहीं हो कि साफ
कह सको कि मुझे संन्यास नहीं लेना। इतनी हिम्मत तो जुटाओ! इतनी जिसने हिम्मत जुटायी, वह शायद किसी दिन संन्यास लेने की हिम्मत भी जुटा ले। लेकिन लोगों की नपुंसकता बड़ी गहरी है। वे यह भी हिम्मत नहीं जुटा पाते कि मुझे संन्यास नहीं लेना है। तो वे अपने को ऐसा दुविधा में डाले रखते हैं कि लेना तो जरूर है, लेंगे, एक दिन लेंगे, मगर वह दिन अभी नहीं आया है। कल लेंगे। परसों लेंगे। अभी और थोड़ा संसार को जी लें। अभी जल्दी क्या है? कौन जाने संसार में कुछ हो ही! थोड़ा और खोद लें, शायद खजाना मिल जाए! एक बार और उपाय कर लें।
तुम्हें सिखाया यह गया है कि किए जाओ उपाय, बार-बार किए जाओ उपाय, हार
को हार न मानो; कितने ही हारो, फिर-फिर उठ आओ, फिर झाड़ कर धूल फिर लग जाओ दौड़ने में, एक न एक दिन पहुंचोगे। तुम्हारे इतिहास की किताबें तुम्हें ऐसे उद्धरण देती हैं कि मुहम्मद ग.जनी सत्रह दफे हारा, अठारहवीं दफे जीत गया।
और कैसे उसे अठारहवीं दफे जीतने का ख्याल आया? हार कर सत्रहवीं दफा एक गुफा में छिपा हुआ बैठा था, दुश्मनों से बचने के लिए, कि उसने एक मकड़ी को जाला बुनते देखा। वह सत्रह दफा गिर-गिर गई, जाला न बना, अठारहवीं दफे जाला बन गया। गजनी ने कहाः वाह! यह ईश्वर का संकेत। सत्रह दफा मैं भी हारा हूं, एक कोशिश और। और फिर ग.जनी जीत गया।
स्कूलों में हम बच्चों को समझाते हैं कि लग जाओ। सत्रह दफा हारे हो तो
भी कोई फिक्र नहीं, अठारहवीं दफे जीतोगे।
लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं जिनमें जीत होती ही नहीं। हो ही नहीं सकती। अठारहवीं दफे भी ग.जनी कहां जीता! जीत में रखा क्या है? यह कोई जीत है कि थोड़ा धन लूट लिया, इधर से उधर कर दिया। आखिर मर जाएगा और सब पड़ा रह जाएगा। मुल्ला नसरुद्दीन के घर में एक रात चोर घुसा। चोर सामान इकट्ठा कर रहा था, मुल्ला ने जल्दी से अपना कंबल जमीन पर बिछा दिया। वह चोर जब सामान इकट्ठा कर के ढूंढने लगा कि कोई चादर इत्यादि मिल जाए, बांध कर ले जाऊं, तो कंबल बिछा हुआ मिला। थोड़ा डरा भी कि अभी-अभी मैं आया था तब तो कंबल बिछा नहीं था, यह आदमी कंबल ओढ़ कर सोया हुआ था, अब यह आदमी ऐसे ही अपने बिस्तर पर पड़ा हुआ है बिना कंबल के और कंबल जमीन पर बिछा दिया है! मगर यह समय कोई सोच-विचार का था नहीं, जल्दी से उसने सामान बांधा और चलने लगा। मुल्ला भी उठा और उसके पीछे हो लिया। पीछे किसी की आवाज सुन कर उसने लौट कर देखा, वही आदमी, जो बिस्तर पर सोया था, पहले कंबल ओढ़े था, फिर बाद में कंबल बिछा कर लेटा था। अब चोर जरा घबड़ाया! उसने कहा कि तुम मेरे पीछे क्यों आ रहे हो? मुल्ला ने कहाः पीछे क्यों आ रहा हूं! अरे भई, अकेला मैं ही बचा वहां! और घर बदलने की मैं बहुत दिन से सोच रहा था, सो घर बदल रहा हूं! सामान तुम सब ले ही आए, सो मैं भी आ रहा हूं। जहां तुम रहोगे, वहीं हम रहेंगे।
चोर तो बहुत घबड़ाया, उसने तो पोटली नीचे रख दी, उसने कहा, बाबा तू अपना सामान ले ले! मुल्ला ने कहा, डरने की कोई जरूरत नहीं। अरे, घर बदलता तो आदमी नौकरी पर लगाना पड़ता, सामान ढोना पड़ता। तू मुफ्त में ही किए दे रहा है काम

और घर भी ढूंढने की झंझट से बचे--कहीं तो रहता ही होगा! जब इतना सामान ले जा रहा है तो कहीं तो रहता ही होगा! उठा पोटली, चल, घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। हम इसको चोर नहीं कहते, मुल्ला ने कहा, तू फिक्र मत कर; हम सिर्प घर बदलना कहते हैं।
वह ठीक कह रहा है। इधर का उधर कर दिया सामान, सफलता हो गयी! रुपये इस तिजोड़ी में से उस तिजोड़ी में रख दिए, सफलता हो गयी! एक जेब में से रुपये निकाल कर दूसरी जेब में रख लिए, सफल हो गए! कहां सफलता है संसार में? संसार असफलता का नाम है। न तो सत्रह बार में, न अठारह बार में, न सत्रह सौ बार में, न अठारह सौ बार में--कभी सफलता न यहां मिली है, न मिल सकती है। सारे बुद्धों का यह अनुभव है। मगर हम टालते, हम कहते हैं, थोड़ा और कोशिश कर लें। ऐसा ही देवेन्द्र, तुम सोचते होओगे।
एक संस्मरण और जोड़ दूं,
ओ मेरे इतिहास रुको तो।
मैंने तुमको अपना जाना,
अपने से भी ज्यादा माना;
पर इतना सब करने पर भी--
सचमुच क्या तुमको पहचाना; तुम तो अब भी पहले जैसे,
लगते हो वैसे के वैसे;
एक संस्मरण और जोड़ दूं,
ओ मेरे मधुमास रुको तो!
रात न रुचती स्वप्न न भाता, दिवस सरीखा दिवस न जाता;
लगता पहले मैं भी था कुछ, पर अब कुछ भी याद न आता;
सच, कितना मजबूर हुआ हूं, अपने से भी दूर हुआ हूं;
एक विस्मरण और जोड़ दूं,
ओ मेरे विश्वास रुको तो!

केवल इतनी कथा हमारी,
अथ पर इति की पहरेदारी;
कभी संवरना चाहा होगा;
अब तो बुझने की तैयारी;
मन था नई सृष्टि रचने का,
अब प्रयास सबसे बचने का;
एक संवरण और जोड़ दूं,
ओ मेरे संन्यास रुको तो!
थोड़ा और कर लें, जरा सा और जोड़ लें... ओ मेरे संन्यास रुको तो! ... ऐसे तुम अपने को रोक रहे हो। सोच-सोच कर रोक रहे हो। तुम सोचते हो, सोच-सोच कर संन्यास लोगे, और मैं कह रहा हूं, सोच-सोच कर तुम रुकते रहोगे। जितना सोचोगे, उतना रुकते रहोगे।
तुम्हारा अपनी जंजीरों से बड़ा मोह मालूम पड़ता है। तुम्हारा अपने अज्ञान से बड़ा लगाव मालूम होता है। जहर पीते हो मगर अमृत समझ रहे हो। अमृत पीने की बात उठती है तो कहते हो सोचोगे!
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन जब बहुत घबड़ा गयी उसके शराब पीने से; सुने नहीं, माने नहीं; सब कर चुकी--झगड़े, उपद्रव; समझाना, बुझाना; प्रेम-घृणा--सब हो चुका, लेकिन मुल्ला है कि अपनी जिद पर अड़ा है।... शराबी बड़े संकल्पी होते हैं। अगर दुनिया में संकल्प देखना हो तो शराबियों में देखो। लाख करो उपाय, वे फिर पी-पाकर आ जाएंगे।... तो एक दिन गुस्से में आखिरी उपाय करने वह शराबघर ही पहुंच गयी। मुल्ला ने पत्नी को देखा तो घबड़ाया। शराबघर में भले घर की स्त्री आए! और भी शराबी चौंके! शराबघर का मालिक भी चौंका! पत्नी आकर उसके बिल्कुल बगल में बैठ गई, उसने कहा कि आज मैंने भी तय किया

है कि अब मैं भी पीना शुरू करती हूं। या तो तुम रुको या मैं पीना शुरू करती हूं। इसके पहले कि मुल्ला कुछ कहे, उसकी जबान खुले... वह तो ऐसा कुछ घबड़ा गया, किंकर्तव्यविमूढ़, कि बोलती बंद हो गई। एक तो बीबी को देख कर वैसे ही बोलती बंद हो जाती है आदमी की; शराबघर में! समझ में ही नहीं आया क्या कहे, क्या न कहे! मुल्ला की पत्नी ने उंड़ेली शराब और गटा गट पी गई। पानी तक न मिलाया, सोडा तक में न मिलाया। मिलाने का उसको पता भी नहीं था। कड़वी शराब, एक ही घूंट भीतर गया कि बोतल नीचे पटक दी और कहा कि अरे, इस जहर को, इस कड़वे जहर को तुम रोज पीने आते हो! मुल्ला निश्चित हुआ, मुस्कराया और बोलाः और तू समझती थी कि हम मजा करने आते हैं! अरे, यह बड़ी कठिन तपश्चर्या है! यह बड़ी मुश्किल से सधती है। यह हर किसी के वश का रोग नहीं। घर जा, घर!
लेकिन शराब भी अगर रोज पीते रहो तो कड़वी नहीं मालूम होती। धीरे-धीरे
वह स्वाद भी रच-पच जाता है। धीरे-धीरे उसमें एक माधुर्य प्रगट होने लगता है। सिर्प आदत के कारण। पहली दफा किसी को सिगरेट पिलाओ, खांसी आएगी, आंख में आंसू आ जाएंगे, गला रुंध जाएगा। और यही आदमी कुछ दिन पीता रहे, फिर एक दिन सिगरेट न दो तो आंख में आंसू आते हैं।
क्या हो गया इसको? अयस्त हो गया।
देवेन्द्र, अयस्त हो गए हो तुम एक तरह की जीवन-व्यवस्था के। संन्यास
एक नई जीवन-व्यवस्था है। तुम्हारी आसक्ति पुराने से टूट जाए तो यह छलांग घट सकती है। छलांग कहता हूं इसको। यह बिल्कुल अज्ञात में कूदना है। यह दुस्साहस है। यह जुआरियों का काम है। यह सब कुछ दांव पर लगा देना है। लेकिन जो दांव पर लगाते हैं, वे बहुत कुछ पाते हैं। ऐसा कुछ पाते हैं जो पाने योग्य है; ऐसा कुछ पाते हैं जिसे मृत्यु भी तुमसे छीन नहीं सकती है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, तरु मा जब सूत्र गाती हैं तो मुझे लगता है कि मेरी शादी की तैयारियां हो रही हैं। लेकिन आज जब गा रही थीं तो ख्याल आया कि संन्यास तो सगाई ही है।

प्रीति! संन्यास ही सगाई है! और तो सब सगाई के बहाने हैं। और सब नाते झूठ, सब रिश्ते झूठ। और तो सब बच्चों के खेल हैं। शहनाई बजी, यज्ञ-हवन हुआ, पंडित-पुरोहित आए, सात चक्कर लगवाए, मंत्र पढ़े गए, धूप-दीप जले, शोरगुल मचा, बैंड-बाजे बजे--और सगाई हो गयी! ये सब खेल है। यह सिर्प दो आदमियों को इस बात का भरोसा दिलाना है कि अब तुम जुड़ गए।
ऐसे कहीं कोई जुड़ता है! इतना सस्ता कहीं कोई जुड़ना है कि सात चक्कर लगाए! अगर सात से जुड़ते हो तो चौदह लगाओ, इक्कीस लगाओ, जुड़ते ही चले जाओ। सात चक्कर तो बहुत काम में आए नहीं, लोग ऐसे ही ढीले-पोले जुड़े हैं, ठीक से जुड़ नहीं पाते, कम से कम इक्कीस लगाओ। मगर कितने ही लगाओ, चक्कर ही हैं। जितने ज्यादा लगाओगे उतने घनचक्कर हो जाओगे!
एक सज्जन तलाक लेना चाहते थे। वे मुझसे पूछने लगे कि तलाक लेना है, मगर कैसे लूं! अरे, सात चक्कर लगाए हैं! तो मैंने कहाः क्या बिगड़ा! उलटे लगा लो! खोल लो, खत्म करो! गांठ लगाई है, फिर उसको खोलने में कितनी देर लगती है! उल्टे ढंग से खोल लो। बहुत ही ज्यादा जरूरत हो तो फिर से शहनाई बजवा दो, फिर बैंड-बाजा, उलटी धुन, उल्टबांसी, कि बांसुरी बज रही है मगर उलटी तरफ से बजा रहा है, और जल्द से उलटे चक्कर लगा कर झंझट खत्म करो, जयराम जी, अपने रास्ते पर लगो! चक्कर ही लगाए न और तो कुछ नहीं किया? उन्होंने कहा, और कुछ नहीं किया।

चक्कर में क्या होना है!
संन्यास ही सगाई है। यह परमात्मा से सगाई है। संसार की सगाइयां क्या काम आती हैं! संसार की सगाइयां अपने को बहला रखने के उपाय हैं। सगाई की तो आकांक्षा है जरूर भीतर, जुड़ना चाहते हैं, हम शाश्वत से, एक ऐसा नाता चाहते हैं जो टूटे नहीं--टूटे ही नहीं--उसी की तलाश में हम बहुत से नाते बनाते हैं, जो सब टूट जाते हैं। और न भी टूटें, तो भी हम घसीटते रहते हैं, मगर उनसे तृप्ति नहीं हो पाती।

समझाया जाता रहा है सदियों से स्त्रियों को कि पति परमात्मा है। जरा
सी भूल है उस वचन में। परमात्मा पति है--ऐसा कहो तो ठीक। लेकिन तुम कहते रहे, पति परमात्मा है! वह गलत। पति क्या ख़ाक परमात्मा होगा! पति तो पति भी हो तो बहुत।
एक महिला, अस्सी साल की महिला, डाक्टर के यहां गई। डाक्टर भी बड़ा हैरान, बहुत जांच-पड़ताल की, उसने कहा, क्षमा करो, मुझे भी भरोसा नहीं आता, मगर आप गर्भवती हैं।
उस महिला ने कहाः क्या कहते हो? मैं अस्सी साल की हूं और मेरे पति नब्बे साल के, गर्भवती मैं हो कैसे सकती हूं?
डाक्टर ने कहाः हैरान तो मैं भी हूं, मगर कभी-कभी दुर्घटनाएं घट जाती हैं। मजबूरी है, सब तरह से परीक्षा कर ली, और कोई बीमारी नहीं है, तुम सिर्प गर्भवती हो।
पत्नि ने कहाः यह भी खूब रही! क्या मैं फोन कर सकती हूं अपने पति को, दफ्तर? उसने फोन किया। कहा कि अरे खूसट बु167े! तूने मुझे गर्भवती कर दिया।
उधर से कंपती हुई, डरती हुई आवाज आयी, कौन फोन कर रहा है?
क्योंकि खूसट कितने ही हो मगर और भी नाते-रिश्ते होंगे। घबड़ाया कि फोन कौन कर रहा है?
पति ख़ाक परमात्मा होंगे। न पत्नी देवी है, न पति देवता है। परमात्मा जरूर पति है। और संन्यास परमात्मा से जुड़ जाने का नाम है। और परमात्मा की दृष्टि से न तो कोई पुरुष है, न कोई स्त्री है। परमात्मा ही एकमात्र पुरुष है--प्रतीक के अर्थ में--और सब तो स्त्रियां हैं। इस अर्थ में स्त्रियां हैं कि सभी को अपने भीतर परमात्मा को आमंत्रित करना है, निमंत्रण देना है, झुकना है परमात्मा के प्रति, समर्पित होना है।
प्रीति, तुझे ठीक लगता है कि तरु जब गाती है तो जैसे तेरी शादी की तैयारियां हो रही हैं। शादी की ही तैयारियां हो रही हैं; लेकिन साधारण शादी की नहीं। यह संन्यास की ही तैयारियां हो रही हैं; और संन्यास ही सच्ची शादी है।
कोई कल का निरा अपरिचित--
जीवन का आधार बन गया।
बांध रही एकाकी मन को--
यादों की जंजीर सुनहली,
निंदियारी पलकों ने खोई--
सपनों की जागीर रूपहली;
रोम-रोम पर एक अजानी,
मीठी-सी सिहरन का पहरा,
दृष्टि-परिधि में भी न रहा जो-- सांसों का आगार बन गया।
आश्वासन के शब्द-पखेरू-- वचनों की शाखों पर चहके,
अभिलाषा के कमल वनों में-- सुरभित धीरज पद-पद महके;
उग आए हैं बोल प्यार के,
भोले-भोले प्रणय-अजिर में; नाम किसी का अनजाने ही--
गीतों का आभार बन गया।
अंतर के दर्पण में मैंने-- ज्योति-विनिंदक रूप उतारा, पर असीम को सीमित करना--
सहज नहीं इससे मैं हारा;
निर्वसना, असफल रेखाएं,
हाथ उठा कर गगन निहारें;
चित्र किसी का प्राण अजाने--

मेरा ही आकार बन गया!
यहां तो प्रार्थना की जा रही है। ये सब गीत प्रार्थनाएं हैं। यहां तो हाथ आकाश की तरफ उठाए जा रहे हैं। यहां तो झोली फैलायी जा रही है परमात्मा के सामने कि भर दे! आज जो अपरिचित है, बिल्कुल अपरिचित है, उससे ही सगाई होनी है। जो बहुत दूर मालूम होता है, उसे ही पास लाना है। जिससे हमारे सारे संबंध टूट गए हैं, उससे फिर से संबंध निर्मित करने हैं। जिसे हम विस्मृत कर बैठे हैं, उसका पुनः स्मरण करना है; उसकी सुरति जगानी है।
और प्रीति, तुझे तो प्रीति का नाम दिया इसीलिए। प्रेम तेरा पथ है। प्रेम तेरा मार्ग है। होने दे परमात्मा से सगाई।
और जब मैं कहता हूं परमात्मा से सगाई होने दे, तो मेरा कुछ ऐसा अर्थ नहीं है कि इस जगत में किसी को प्रेम मत करना। क्योंकि जगत भी वही है। और जगत में जो हैं, वे सब उसी के ही रूप हैं। खूब प्रेम करना, जी भर कर प्रेम करना! प्रेम कहीं रुके ही नहीं, बस इतना ख्याल रखना। कोई प्रेम पर दीवाल न हो। प्रेम बढ़ता ही रहे, फैलता ही रहे। जैसे हम एक कंकड़ फेंकते हैं झील में, छोटा सा वर्तुल उठता है, फिर फैलता चला जाता है--दूर-दूर तक, अनंत तक। ऐसे ही प्रेम चाहे एक व्यक्ति के साथ क्यों न हो, लेकिन फैलता चला जाए दूर-दूर तक, अनंत को छू ले, तो ही तृप्ति है।
मैं तुम्हारे मन-सुमन में--
प्रीति बन महकूं।
चू पडूं अंजलि-सरों में,
लाज-क्लयित मधुकरों में,
आज अपनापन डुबो दूं--
सुरभि-चर्चित निर्झरों में, मैं तुम्हारे दृग-गगन में-- स्वप्न बन बहकूं।
प्रीति बन महकूं।।
गुनगुनाऊं सप्त स्वर में, राग-रंजित मींड़-कर में,
कभी आरोह में गमकूं,
कभी अवरोह के वर में,
मैं तुम्हारे छंद-वन में, गीत बन चहकूं।
प्रीति बन महकूं।।
वचन तोडूं संवरण के,
मौन के अंतःकरण के,
स्पर्श के संकेत से ही--
बज उठे नूपुर चरण के;
मैं तुम्हारे प्रणय-प्रण में-- प्राण बन दहकूं।
प्रीति बन महकूं।।
प्रीति, इन सूत्रों को याद रख! -- मैं तुम्हारे मन-सुमन में-- प्रीति बन महकूं।
मैं तुम्हारे दृग-गगन में-- स्वपन बन बहकूं।
मैं तुम्हारे छंन-वन में,
गीत बन चहकूं।
मैं तुम्हारे प्रणय-प्रण में--
प्राण बन दहकूं।
प्रीति बन महकूं।।
मेरा संन्यास जीवन-विरोधी नहीं है। मेरा संन्यास जीवन के साथ अनंत प्रेम है। जीवन का त्याग नहीं, मूढ़ता का त्याग। जीवन का त्याग नहीं, अज्ञान का त्याग। जीवन का त्याग नहीं, मूर्च्छा का त्याग। जीवन का त्याग

नहीं, घृणा का, ईर्ष्या का, वैमनस्य का त्याग। घर-द्वार छोड़ कर नहीं भाग जाना है--घर-द्वार ने क्या बिगाड़ा है? --छोड़ना हो कुछ तो भीतर का अंधेरा छोड़ो, भीतर की बेहोशी छोड़ो, भीतर होश का दीया जलाओ, भीतर कमल खिलाओ--आनंद के, प्रेम के, उत्सव के।
मेरा संन्यास निश्चित ही सगाई है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, कल से पड़ोस में ही लाउडस्पीकर लगा कर कोई प्रवचन में बाधा डालने की कोशिश कर रहा है। उसका उपद्रव आज भी जारी है। क्या इसे रोका नहीं जा सकता है?

प्रेम चैतन्य! बहुत कठिन! यह छब्बीस जनवरी का मौसम! नेतागण किसी तरह साल भर अपने को रोके रहते हैं, आखिर उनकी भी होली-दीवाली आनी चाहिए! यह समझो होली है।
बुरा न मानो! उनको बकवास कर लेने दो।
और यह तो कुछ भी नहीं है। पिछले साल तो और भी गजब हुआ था। पड़ोस के लोगों ने एक वयोवृद्ध नेताजी से छब्बीस जनवरी को झंडा फहराने का निवेदन किया।
नेताजी ने प्रसन्न होकर कहाः ठीक है। मेरे पास एक पुराना झंडा पड़ा है, मैं अभी नौकर को भेज कर स्कूल के मैदान में गड़वा देता हूं। नया खरीदने की क्या जरूरत है! मैं सुबह आ जाऊंगा फहराने, आप लोग कुछ फिकर न करिए। नेताजी ने नौकर से झंडा गड़ा आने को कहा। नौकर था शराबी--आखिर नेताजी का नौकर ठहरा। भूल गया। रात तीन बजे उसे याद आई। बेचारा घबड़ा कर झंडा गड़ा आया। गलती केवल इतनी हुई कि तिरंगे झंडे की जगह रात के अंधेरे में वह अपनी पत्नी का पेटीकोट बांध आया।
सुबह जब नेताजी ने रस्सी खींची, तो पेटीकोट हवा में लहरा उठा! भीड़ ने उचक-उचक कर तालियां पीटीं। नेताजी बोलेः भाइयो और बहनो, गणतंत्र-दिवस मुबारक हो! फिर उन्होंने झंडे की तरफ इशारा करके कहाः यही है वह राष्टीय प्रतीक, जिसकी छत्रछाया में हम पिछले तीस सालों से पल रहे हैं। हमें इस पर नाज है। दुनिया में किसी भी राष्ट्र का प्रतीक इतना सुंदर नहीं है।
लोग यह सुन कर हंस-हंस कर लोट-पोट हो गए। भीड़ को इतना खुश देख कर नेताजी को भी जोश आ गया, वे झंडे की तरफ हाथ उठा कर बोलेः यही है वह, जिस पर मैंने अपनी सारी जवानी न्यौछावर कर दी। इसी की इज्जत बचाने के लिए मैं भी तीन बार जेल गया। सच कहता हूं, मैंने तो कसम खा ली थी कि जीऊंगा तो इसके लिए और अगर मरना पड़ा तो मरूंगा भी इसी के लिए।
भीड़ को बहुत मजा आया। नेताजी ने कहना जारी रखाः यद्यपि यह भी एक कपड़े
का टुकड़ा ही है, मगर इसमें ऐसे-ऐसे राज छिपे हैं कि इसके पीछे सुभाषचंद्र और भगतसिंह जैसे कई मर्दो ने अपने प्राण तक कुर्बान कर दिए हैं। अरे, यह चीज ही ऐसी है कि इसे देख कर खून जोश मारता है; जवान ही नहीं, बूढ़ों की रगों में भी गर्मी आ जाती है।
तालियों की करतल ध्वनि से मैदान गूंज उठा। नेताजी बोलेः आप सब लोग इतने उल्लास से भर कर अपने राष्टीय प्रतीक को इतने प्रेम भाव से देख रहे हैं, यह जान कर मैं अति आनंदित हूं। जब यह हवा में लहराता है, और ऊपर-नीचे उठता-गिरता है, तो सभी भारतीय नागरिक मुग्ध-भाव से टकटकी बांध कर देखते रह जाते हैं, इसी से यह ज्ञात हो जाता है कि हमारे देशवासियों के मन में भारतमाता के प्रति कैसी पवित्र भावना है। और जब हम इसे ऊपर उठा कर शान से सड़कों पर चलते हैं, तो क्या जवान, क्या बूढ़े, सभी आह्लादित हो उठते हैं--और इस तरह भारतमाता के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धा व्यक्त करते हैं।
लोग बहुत शोरगुल करने लगे। नेता जी ने कहाः भाइयो और बहनो, बस एक बात
और कह कर मैं आज का भाषण खत्म करता हूं, फिर हम इसके बाद जन-गण-मन करेंगे। मुझ बूढ़े की यह प्रार्थना है कि जब मैं मर जाऊं, तो मेरे ऊपर कफन की जगह इसी को उढ़ा देना, ताकि जिसे जिंदगी भर चाहा, मरते वक्त उसी के नीचे लेटने से मेरी आत्मा को संतोष मिले। जयहिंद! और अब मैं जाता हूं उस हरामजादे नौकर

की तलाश में, जो कि झंडे की जगह लगता है भारतमाता का पेटीकोट डंडे से बांध गया है।
एकाध दिन साल में बेचारों को मौका मिलता है, उनको थोड़ा शोरगुल कर लेने दो। और यह मत सोचो, प्रेम चैतन्य, कि वे कोई यहां चल रहे प्रवचन में बाधा डालने की चेष्टा कर रहे हैं। वे तो अपना बुखार निकाल रहे हैं। उन्हें किसी को बाधा डालने से कोई प्रयोजन नहीं है। ये दो ही तो अवसर आते हैं उनकोः पंद्रह अगस्त, छब्बीस जनवरी; बक लें जो बकना हो, कह लें जो कहना हो।
एक तो नेता और फिर मराठी भाषा! मराठी भाषा में प्रेम भी किसी से करो तो ऐसा लगता झगड़ा कर रहे हो। मैं तो कभी-कभी सोचता हूं कि मराठी में प्रेम कैसे करते होंगे? ऐसा लगता है कि अब मार-पीट हुई, अब बस होती ही है मार-पीट! उनकी चिंता न करो, उनसे कुछ बाधा पड़ भी नहीं रही है।

चौथा प्रश्नः ओशो,
ये दिल ये जां ये जिंदगी
तेरी इक नजर पे निसार है।।
मुझे क्यों न हो तेरी जुस्तजू
तेरी जुस्तजू में करार है।।
मैंने पी है मुझको है कुछ खबर
तेरी इक नजर में है क्या असर।।
कभी देखता हूं कि हैं मस्तियां
कभी देखता हूं कि खुमार है।।

कृष्ण चैतन्य! मैं कोई शास्त्र नहीं समझा रहा हूं। न सिद्धांतों में मेरी रुचि है। मैं तुम्हें जानकारियां नहीं दे रहा हूं, अपना हृदय खोल कर तुम्हारे सामने रख रह हूं। जो रस मैंने पीआ है, उस रस की थोड़ी सी गंध भी तुम्हें मिल जाए, एकाध बूंद भी तुम्हारे कंठ से उतर जाए, तो बस! फिर तुम चल पड़ोगे तलाश में उस सागर की जिससे उस बूंद का आगमन हुआ है।
सदगुरु तो एक बूंद है परमात्मा के सागर की। थोड़ा सा स्वाद तुम्हें देने की चेष्टा है। यहां बैठ कर हम कोई तत्त्वचर्चा नहीं कर रहे हैं। यहां बैठ कर तो हम जो मुझे मिला है, उसके लिए तुम्हें निमंत्रण दे रहा हूं, पुकार दे रहा हूं, आवाहन दे रहा हूं कि तुम्हें मिल सकता है। तुम्हें भरोसा दिलाना चाहता हूं, तुम पर ही। तुम्हें श्रद्धा करवाना चाहता हूं, तुम पर ही।
तुमने श्रद्धा खो दी है। तुम यह भूल ही गए हो कि तुम क्या हो सकते हो। तुम वही नहीं हो, जो तुम दिखाई पड़ रहे हो। बहुत कुछ बीज की तरह तुम्हारे भीतर पड़ा है, जिसे भूमि चाहिए; ठीक मौसम और ठीक माली मिल जाए तो तुम्हारे भीतर हजार-हजार रंग के फूल खिल सकते हैं। तुम इंद्रधनुष बन सकते हो जो पृथ्वी और आकाश को जोड़ दे। तुम सतरंगे हो। तुम्हारे भीतर बहुत गंध है--और तुम भटके फिर रहे हो। जैसे कस्तूरी मृग भागा फिरता है। उसे पता ही नहींः कस्तूरी कुंडल बसै; कि उसके भीतर ही, उसकी नाभि में ही कस्तूरी बसी है। इतनी ही तुम्हें याद दिलाना चाहता हूं--कस्तूरी कुंडल बसै।
बस, मेरी सारी चेष्टाएं इस एक छोटे से सूत्र में कबीर के समा जाती हैं।
तुम यहां-वहां दौड़ रहे हो, भागे-भागे फिर रहे हो, रुकते ही नहीं, ठहरते
ही नहीं। कहना चाहता हूं कि रुको, ठहरो, थोड़ा भीतर झांको, जिसे तुम तलाश रहे हो वह वहां मौजूद है। तुम्हारी खोज के पहले से मौजूद है। तुम जिसे खोजने चले हो, वह खोजने वाले में ही छिपा है। तुम्हारा परमधन तुम्हारे भीतर है। प्रभु का राज्य तुम्हारे भीतर है। और यह जिस दिन स्मरण आता है, उस दिन मस्ती में डोल उठता है हृदय; बांछें खिल जाती हैं।
तुम कहते होः
"ये दिल ये जां ये जिंदगी
तेरी इक नजर पे निसार है।।"

अगर तुम मेरी आंखों को पहचान सको, तो मेरी आंखों में तुम्हें मैं नहीं दिखाई पडूंगा, एक गहराई दिखाई पड़ेगी जो तुम्हारी ही है। मेरी आंखें दर्पण हो जाएंगी। तुम्हें अपना ही चेहरा दिखाई पड़ेगा। अपना ही मौलिक चेहरा। और तब तुम मस्त न हो जाओगे तो क्या होगा! तुम आनंदित न हो जाओगे तो क्या होगा! तुम नाच न उठोगे तो क्या होगा!
तुम कहते होः
"मुझे क्यों न हो तेरी जुस्तजू
तेरी जुस्तजू में करार है।।"
खोज होती ही तब है, जुस्तजू होती ही तब है, जब थोड़ा सा रस लग जाता है, थोड़े से प्राण उस गीत की कड़ियों को पकड़ने लगते हैं; उस संगीत में रमने लगते हैं; हरि-रस में भीगने लगते हैं।
तुम कहते होः
"मैंने पी है मुझको है कुछ खबर"
निश्चित ही यह पीना ऐसा है कि इसमें बेहोशी नहीं आती, होश आता है। यह शराब ऐसी है, इसमें तुम सोते नहीं, जाग जाते हो, सदा को जाग जाते हो। जो सुला दे, जो बेहोश कर दे, उस शराब से बचना। जो शराब जगा दे और ऐसा होश ला दे कि तोड़ना भी चाहो तो न टूट सके, ऐसी शराब जी भर कर पीना।
तुम कहते होः
"मैंने पी है मुझको है कुछ खबर
तेरी इक नजर में है क्या असर।।
कभी देखता हूं कि हैं मस्तियां
कभी देखता हूं कि खुमार है।।"
पर तुम्हें याद दिला दूं कि जो तुम देखते हो, वह तुम्हारी ही छवि है। भूल कर भी यह मत सोच लेना--नहीं तो तुम मुझ पर निर्भर हो जाओगे--यह मत सोच लेना कि वह खुमार मेरा है, कि वह मस्ती मेरी है। अन्यथा पर-निर्भरता पैदा हो जाती है। और सदगुरु है इसलिए कि तुम्हें सारी पर-निर्भरताओं से मुक्त कर सके। अगर तुम गुरु के प्रति निर्भर हो जाओ, अगर उसके पास बैठो तो आनंदित और दूर जाओ तो दुखी हो जाओ, तो यह गुरु के पास बैठना न हुआ। गुरु के पास बैठने का अर्थ यही है कि तुम यह राज सीख लो कि तुम जहां होओ, वहीं आनंदित। गुरु के पास बैठना तो सिर्फ पाठ सीखना है। एक दफा सीख लिया, जैसे बच्चों को हम सिखाते हैं कि ग गणेश जी का... आजकल नहीं सिखाते, आजकल कहते हैंः ग गधे का। क्योंकि भारत हो गया है सेक्युलर, धर्म-निरपेक्ष। गणेश जी का तो नाम नहीं ले सकते। गणेश जी तो किसी धर्म के प्रतीक हैं। गधे का नाम लिया जा सकता है। जैसे गधा सर्व-धर्मो का प्रतीक है। जैसे गधे में सर्व-धर्म-समभाव पैदा हुआ है। ग गधे का, या ग गणेश का--कुछ भी हो, बच्चे को सिखाने के लिए कोई बहाना चाहिए। उससे सीधा ग कहो तो वह नहीं समझ में आएगा। ग गधे का कहो तो फौरन समझ जाता है; क्योंकि गधे को वह पहचानता है। गधे को वह जानता है। गधे को चलते-फिरते उसने देखा है। गधे का चित्र उसकी आंखों में है। ग उससे जुड़ जाता है। गधे के बहाने वह ग को समझ जाता है। हालांकि ग पर गधे की कोई बपौती नहीं है।
फिर यह बच्चा बड़ा हो जाए और जब भी कहीं ग पढ़े तो पहले कहेः ग गधे का, फिर पढ़े, तो तुम कहोगे यह पागल है।
वह तो सिखाने की बात थी, वह तो शुरुआत थी, वह तो निमित्त था। उसे भुला देना है। जब सीख गए पढ़ना, तो फिर बार-बार ग गधे का, अगर हर चीज में यह जोड़ना पड़े, तो तुम पढ़ोगे कैसे? फिर तो पढ़ना बहुत मुश्किल हो जाएगा। पढ़ना असंभव ही हो जाएगा। अगर हर वर्ण के साथ तुम परानी याददाश्तें जारी रखो... अब तो तुम्हें याद भी न होगा, कि स्कूल में तुम्हें जो शब्द सिखाए गए थे, किस तरह सिखाए गए थे। आ आम का, और आम की तस्वीर बनी थी। अब अगर हर बार आ पढ़ो और आ आम का पढ़ो, तो आ को कैसे पढ़ोगे? आम में उलझ जाओगे, आ पढ़ना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन भूल-भाल गए। वे निमित्त हो गए।
गुरु तो निमित्त है। वह आ आम का। फिर जब सीख गए, आ आ गया, तो आम से मुक्त
हो जाना है। फिर तो जहां बैठो वहीं परमात्मा से संबंध जुड़ जाना चाहिए।

सदगुरु उथला पानी है, जहां हमने तैरना सीख लिया। अब तो कितने ही गहरे में जाओ! तैरना आ गया तो अब इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। पांच फीट गहरा है पानी, कि पांच सौ फीट गहरा है पानी, कि पांच मील गहरा है पानी--कुछ फर्क नहीं पड़ता। तैरने वाले को कोई फर्क नहीं पड़ता।
कृष्ण चैतन्य, यहां जो मस्ती, जो खुमार तुम्हें अनुभव होता है, वह धीरे-धीरे हर जगह अनुभव होना चाहिए। वृक्षों के पास, तारों के नीचे, नदी के किनारे, सागर के तट पर; मित्रों में, परिवार में; मंदिरों में, मस्जिदों में, गिरजो में, गुरुद्वारों में--जहां बैठो--दुकान में, बाजार में, वह मस्ती छाई ही रहनी चाहिए। वह उतरनी ही नहीं चाहिए। तो ही समझना कि सच्ची है। नहीं तो तुम मुझ पर निर्भर हो जाओगे। और मुझ पर निर्भर हो गए तो वह एक नयी परतंत्रता हो गई। शायद शुरू-शुरू में निर्भर होना पड़ता है। होना पड़ेगा। शायद अभी थोड़ी देर तुम्हें निर्भर रहना पड़ेगा। मगर तुम्हें याद दिला देना चाहता हूं कि उस निर्भरता से मुक्त हो जाना है।
जब गुरु तुम्हें उस निर्भरता से भी मुक्ति दिला दे जो शिष्य में गुरु
के प्रति पैदा होती है, तो समझना कि तुम्हें सच्चा गुरु मिला है।
लेकिन अभी जल्दी भी मत करना। पाठ को बैठ जाने दो। कच्चा ही न रहे पाठ। अभी ऐसे ही थोड़ा-थोड़ा तैरना आया हो, एकदम गहरे में मत चले जाना। नहीं तो डूबोगे। व्यर्थ सारा श्रम हो जाएगा।
भौहों पर खिंचने दो--
रतनारे बान!
अभी और, अभी और!!
सुरधनु को सुरसा,
ओ! आंचल के देश;
सपनों को बरसा,
ओ! नभ के परिवेश;
संयम से मत बांधो,
दर्शन के प्रान!
अभी चलने दो दौर!!
अभी और!!!
कन-कन को महका,
ओ! माटी के गीत;
जीवन को दहका,
ओ! सुमनों के मीत;
अधरों को करने दो,
छक कर मधुपान!
कहीं सौरभ के ठौर!!
अभी और!!!
तन-मन को पुलका,
ओ! रागों के छोर;
प्रीत-कलश ढुलका,
ओ! वंशी के पोर,
कुंजों में छिड़ने दो,
भ्रमरों की तान!
धरो स्वर के सिर मौर!!
अभी और!!!
थोड़ा और! थोड़ा और डूबो! जब तुम्हें मेरी आंखें दिखाई पड़नी बंद हो जाएं,
जब तुम्हें मैं दिखाई ही पड़ना बंद हो जाऊं और तुम्हारी ही छवि झलकने लगे, जब मैं सिर्प दर्पण रह जाऊं--और जब दर्पण बिल्कुल शुद्ध होता है तो दर्पण दिखाई नहीं पड़ता, सिर्प छवि ही दिखाई पड़ती है।
लेकिन दर्पण में मत उलझ जाना। दर्पण में क्या है! दर्पण ने तुम्हारा चेहरा दिखा दिया, धन्यवाद दो, आभारी रहो, मगर दर्पण से मत बंध जाना, दर्पण को लीजिए मत घूमने लगना, दर्पण को सिर पर मत ढोना!

बुद्ध ने कहा हैः पागल ऐसे हैं लोग कि जिस नाव में पार होते हैं फिर उस नाव को सिर पर रख कर ढोते हैं; कि इस नाव ने बड़ी कृपा की, हमें नदी पार करवाया! नदी से पार कराया, धन्यवाद, अनुग्रह, लेकिन नाव को सिर पर ढोने की कोई जरूरत नहीं है! लेकिन नदी से पार हो जाना, जल्दी मत करना, बीच नदी में मत उतर जाना कि अब नाव की क्या जरूरत है; बुद्ध ने तो कहा है। बीच में मत उतर जाना, नहीं तो डूबोगे। पार हो जाओ। शुरुआत हो गई है, शुभ शुरुआत हो गई है, किरणें छन-छन कर आने लगी हैं, जल्दी ही पूरा सूरज भी तुम्हारा होगा।

पांचवां प्रश्नः ओशो, संन्यासी और गृहस्थ के बीच में जो "और" आ पड़ा है,
वह क्या है, कैसा है और कब तक रहेगा?

अर्जुन! संन्यासी और गृहस्थ के बीच में जो "और" आ पड़ा है, वह तुम्हारे महात्माओं की कृपा से। नहीं तो और की कोई जरूरत नहीं है। गार्हस्थ्य संन्यास की ही सीढ़ी है। दोनों में भेद करने की जरूरत नहीं है, कोई सीमा खींचने की जरूरत नहीं है। कहां गार्हस्थ्य समाप्त होता है और कहां संन्यास शुरू होता है--कोई ठीक-ठीक कह भी नहीं सकता। गार्हस्थ्य ही संन्यास हो जाता है। तुम ठीक से समझो गृहस्थ को बस, गृहस्थ का जीवन पाठशाला है संन्यास की। अगर गृहस्थ बीज है तो संन्यास उसका फूल है। अगर गार्हस्थ्य वातावरण है, भूमिका है, प्रस्तावना है, तो संन्यास उसकी निष्पत्ति है।
लेकिन तुम्हारे महात्माओं ने संन्यास को और गार्हस्थ्य को विपरीत बता कर उपद्रव खड़ा कर दिया। सदियों से यह बात तुम्हें समझाई गई है कि संन्यास जीवन का त्याग है--घर का, द्वार का, पत्नी का, बच्चे का। इस कारण एक घबड़ाहट व्याप्त हो गई है। कोई संन्यासी हो जाता है तो उसके घर के लोग घबड़ाते हैं। पुराना शब्द उन्हें बड़ी मुश्किल में डाल देता है। उनको लगता है अब वह छोड़ कर जाएगा; अब वह भागेगा, पहाड़ चला जाएगा। घर का क्या होगा, बच्चों का क्या होगा? कच्ची उम्र है, कच्ची गृहस्थी है। तो सब मिल कर उसे रोकने की कोशिश करते हैं।
संन्यास की तुम पूजा भी करते हो--मगर कोई और के घर में संन्यासी हो तो। तुम्हारे घर में कोई संन्यासी हो, तो तुम सब विरोध में खड़े हो जाते हो। यह अजीब विरोधाभास है।
और चूंकि संन्यास जीवन-विरोधी रहा, इसलिए पृथ्वी उस रंग में रंगी नहीं जा सकी। कितने लोग जीवन-विरोधी हो सकते हैं? जीवन-विरोधी जो होते हैं, वे रुग्ण लोग हैं, स्वस्थ नहीं। नहीं तो जीवन तो परमात्मा है, इसका विरोध कैसे करोगे? जीवन का विरोध तो परमात्मा का विरोध है।
मेरा संन्यास जीवन-विरोधी नहीं है, जीवन के प्रति गहन प्रेम है; यह जीवन से सगाई है। इसलिए मेरे संन्यास में और गार्हस्थ्य में कोई "और" बीच में नहीं है। एक ही प्रक्रिया के अंग हैं। गार्हस्थ्य प्रारंभ है, संन्यास अंत। गार्हस्थ्य से शुरू होना चाहिए जीवन, संन्यास पर पूर्ण होना चाहिए जीवन। कहीं कोई व्यवधान नहीं है।
और अगर हम इस नये संन्यास को जगत को समझा सकें तो अनंत-अनंत लोग संन्यास का रस पीएं, संन्यास की खुमारी में डूबें। क्योंकि फिर कोई भय न रह जाए। पुराना संन्यास तो बहुत दुष्ट था, बहुत क्रूर था, बहुत हिंसात्मक था। अगर तुम हिसाब लगाओगे तो बहुत घबड़ाओगे। चंगीज खान और तैमूरलंग और नादिरशाह जैसे लोगों ने भी इतनी हत्याएं नहीं कीं जितनी संन्यास के नाम पर हुई। क्योंकि संन्यासी जितने लोग हो गए, उनकी पत्नियों का क्या हुआ, कोई हिसाब नहीं! कितनों ने भीख मांगी, कितनों ने आत्महत्याएं कर लीं, कितनी स्त्रियां वेश्याएं हो गईं--उसका सबका जिम्मा किस पर है? जो लोग घर छोड़ कर चले गए, संन्यासी हो गए, उनके बच्चों का क्या हुआ? उनके बच्चे कहां खो गए? अनाथ हो गए वे। उन्होंने कितने दुख पाए, इसका कोई हिसाब करे तो बहुत तुम्हें हैरानी होगी! भारत में करोड़ों संन्यासी हुए। तो कई करोड़ लोग उनके कारण दुखी हुए।

यह कोई संन्यास है जो दूसरों को दुख देने पर निर्भर हो! यह सुख भी कुछ पाने जैसा सुख है, जो इतने लोगों को दुख देने पर निर्भर हो! यह तो शुद्ध हिंसा है।
इसलिए मैं संन्यास की पूरी परिभाषा बदल रहा हूं। क ख ग से फिर से परिभाषा शुरू कर रहा हूं। संन्यास वही है जो स्वयं भी आनंदित हो, औरों को भी आनंदित करे। क्यों किसी को दुख दे! दूसरे के भीतर भी तो वही परमात्मा विराजमान है। जिस पत्नी को तुम छोड़ कर जा रहे हो, उसमें वही परमात्मा विराजमान है। जिन बच्चों को तुम छोड़ कर जा रहे हो, उन बच्चों में भी वही परमात्मा फिर-फिर उतरा है। यहां तुम परमात्मा को सता रहे हो और परमात्मा की खोज करने जा रहे हो! तुम जैसा मूढ़ कोई न होगा! परमात्मा तुम्हारे द्वार पर खड़ा है और तुम पहाड़ों की तरफ भागे जा रहे हो!
संन्यास का अर्थ हैः जो है, जहां हो तुम, जैसी स्थिति है, वैसी स्थिति में ही परम तृप्ति। जिन्होंने तुम्हें घेर रखा है, उनमें ही परमात्मा का दर्शन। पत्नी में परमात्मा का दर्शन, पति में परमात्मा का दर्शन, बच्चों में परमात्मा का दर्शन; पड़ोसियों में परमात्मा का दर्शन। कठिन है यह काम! गुफा में बैठ जाना बहुत आसान है। कोई भी मूढ़ कर सकता है। पशु-पक्षी कर लेते हैं, तुम्हारी खूबी क्या! भेड़िए कर लेते हैं, तुम्हारी खूबी क्या! लेकिन बीच बाजार में बैठ कर, जीवन के घने संघर्ष में खड़े हो कर भी शांत होना, मौन होना, प्रार्थनापूर्ण रहना, धन्यवाद से भरे रहना, अनुग्रह से न चूकना, वह बात कठिन है। वही चुनौती है। स्वीकार करने योग्य वही है।
लोग सोचते हैं मैंने संन्यास को सरल कर दिया, वे गलत सोचते हैं। मैंने संन्यास को उसकी परम गरिमा में, ऊंचाई पर ले जाने की चेष्टा की है। पुराना संन्यास सरल था, भगोड़ों का था। भगोड़ापन हमेशा सरल है। युद्ध से पीठ दिखा कर भाग जाने में कोई बड़ी कुशलता होती है! युद्ध से जो पीठ दिखा देता है, उसको हम भगोड़ा कहते हैं, पलायनवादी कहते हैं, कायर कहते हैं। और जीवन के युद्ध से जो भाग जाता है, उसको संन्यासी कहोगे तुम!? यह भी कायर है; यह भी भगोड़ा है।
जीवन से भागना नहीं है। जीवन में जागना है। भागो मत, जागो! और तब, अर्जुन, तुम पाओगे कि संन्यासी और गृहस्थ के बीच कोई "और" नहीं हैः दोनों जुड़े हैं। एक ही लहर के दो हिस्से हैं, दो छोर; एक ही लहर के दो छोर।

आखिरी प्रश्नः ओशो, क्या यह सत्य है कि सत्य को छिपाना असंभव है? वह किसी न किसी रूप में प्रकट हो ही जाता है।

शरणानंद! यह सत्य है कि सत्य को छिपाना असंभव है। सत्य तो प्रकाश जैसा है। कैसे छिपाओगे उसे? वह तो अंधेरे में भी प्रकट हो जाएगा। सत्य को छिपाने का कोई उपाय नहीं। हालांकि हम छिपाने के उपाय करते हैं, मगर हमारे सब उपाय व्यर्थ सिद्ध होते हैं। फिर भी हम उपाय करते चले जाते हैं इस आशा में कि शायद कभी सफल हो जाएं। सब झूठ हमारे पकड़े जाते हैं, देर-अबेर। यह हो सकता है थोड़ी देर लगे, मगर सब झूठ हमारे पकड़े जाते हैं। मगर फिर भी आदमी सोचता है कि शायद इस बार न पकड़ा जाऊं।
झूठ के पैर ही नहीं होते, वह चल नहीं सकता। वह चलता भी है तो सत्य के पैर ही उधार लेकर चलता है, यह भी ख्याल रखना। इसलिए हर झूठे आदमी को सिद्ध करना होता है कि जो मैं कह रहा हूं वह सत्य है। उसे चिल्ला-चिल्ला कर सिद्ध करना होता है कि यह सत्य है। यह उस सत्य से पैर उधार ले रहा है। क्योंकि झूठ अपने आप तो चल नहीं सकता, वह तो लंगड़ा है, सत्य के पैर मिल जाएं तो थोड़ा- बहुत चले।
मगर दूसरों के पैरों से कितनी दूर चल सकते हो? ज्यादा दूर नहीं चल सकते।
मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में मुकदमा था कि उसने दो शादियां कर लीं,
जो कानून के खिलाफ है। उसके वकील ने सिद्ध किया कि यह बात गलत है। और मुल्ला ने कहा कि नहीं, मैंने दो शादी नहीं की, मेरी तो एक ही पत्नी है। वकील होशियार था, झूठ चल गई। उसने कानून की बड़ी बारीकियां निकालीं और

सिद्ध हो गई बात, और मजिस्टेट ने कहा कि ठीक है नसरुद्दीन, यह सिद्ध हो गया कि तुम्हारी एक ही पत्नी है, तुम जुर्म से बरी किए जाते हो; अब तुम घर जा सकते हो।
नसरुद्दीन ने कहाः हुजूर, एक बात और। मैं किस घर जाऊं? क्योंकि दोनों पत्नियां राह देख रही होंगी।
छिपाते रहो, ज्यादा देर न छिपा पाओगे; कहीं न कहीं से सत्य प्रकट हो जाएगा। किसी न किसी तरह सत्य प्रगट हो जाएगा।
जब श्री मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने तो चंदूलाल और ढब्बू जी चौरस्ते से बातें करते निकल रहे थे। चंदूलाल बड़े जोश में कह रहा था कि यह खूसट बुड्ढा अब छाती पर आ बैठा। अब तो भगवान ही बचाए तो बचाए। गधों के हाथ में देश पड़ गया है। "हर शाख पे उल्लू बैठे हैं, अंजामे गुलिस्तां क्या होगा!"
चौरास्ते पर खड़े पुलिसवाले ने कहा कि रुक, अबे चंदूलाल, तू मोरार जी देसाई के खिलाफ बोल रहा है, तू देश के प्रधानमंत्री के खिलाफ बोल रहा है, थाने चल!
चंदूलाल फौरन बदल गया। उसने कहाः अरे, आप भी क्या बातें कर रहे हैं? मैं अपने देश की बात थोड़े ही कर रहा हूं, मैं तो लंका की बात कर रहा हूं। उस पुलिस वाले ने कहाः तूने हमें पागल समझा है? हमें पता नहीं कि खूसट बु167ा किस देश में छाती पर बैठा है!
छिपा न सकोगे। बात प्रकट हो ही जाएगी। इधर से नहीं उधर से।
सत्य में एक सरलता है। इसलिए सत्य बोलने वाले व्यक्ति को बहुत याददाश्त नहीं रखनी पड़ती उसने क्या कहा, क्या नहीं कहा। झूठ बोलने वाले को बहुत हिसाब रखना पड़ता है। झूठ बोलने वाले को एक बात पक्की समझ लेनी चाहिए कि स्मृति उसकी अच्छी होनी चाहिए। सच बोलने वाले की स्मृति अच्छी न हो तो भी चल जाएगा, लेकिन झूठ बोलने वाले के पास तो अच्छी स्मृति होनी ही चाहिए। क्योंकि उसे सदा याद रखना पड़ेगा कहां उसने क्या झूठ बोला। और उस झूठ को बचाने के लिए उसको और झूठ बोलने पड़ते हैं। एक झूठ को बचाने के लिए हजार झूठ बोलने पड़ते हैं। और जब एक ही पकड़ में आ जाता है तो हजार से फिर कैसे बचोगे? जितने झूठ बोलोगे उतने ही जाल में उलझते जाओगे, पकड़े जाओगे।
झूठ बोलने वाले आदमी का जीवन अपने ही हाथ से उलझ जाता है। सत्य बोलने वाला व्यक्ति सरलता से जी सकता है। उसे चित्त में बहुत से हिसाब नहीं रखने पड़ते। उसका चित्त जो है, उसी को कहता है; जैसा है, वैसा ही कहता है। वहीं बात समाप्त हो जाती है। झूठ के बच्चे पैदा होते हैं। बच्चों के बच्चे पैदा होते हैं। झूठ बिल्कुल शुद्ध भारतीय है, वह संतति-नियमन में विश्वास ही नहीं करता। सत्य के बच्चे पैदा होते ही नहीं, सत्य बिल्कुल ब्रह्मचारी है। सत्य बोल दिए कि पूर्ण विराम आ गया। न उसके बचाने के लिए कुछ करना पड़ता है, न छिपाने के लिए कुछ करना पड़ता है।
सत्य में एक महिमा भी है, एक सुरभि भी है। जिस व्यक्ति के जीवन में जितना ज्यादा सत्य होगा उतनी ही ज्यादा सुगंध होगी, सुवास होगी। और जिस व्यक्ति के जीवन में जितना ज्यादा झूठ होगा, उतनी ही दुर्गंध होगी। इसलिए राजनीतिज्ञों से अगर दुर्गंध आती हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। पंडित-पुरोहितों से अगर दुर्गंध आती हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। ये सब झूठ में जी रहे हैं। ये सिंहासनों पर भी बैठ जाएं तो भी इनसे दुर्गंध आती है। और जीसस जैसा व्यक्ति सूली पर भी चढ़ जाए तो भी सुगंध ही छोड़ जाता है अपने पीछे। जो सदियों तक गूंजती रहती है। उसका संगीत सदी-सदी तक सुना जाता है।
सत्य शाश्वत है और झूठ क्षणभंगुर है। झूठ तो ऐसा है जैसे पानी का बबूला। सुंदर लगता है जब होता है; और सुबह की सूरज की किरणों में बड़ा रंगीन भी लग सकता है--हीरे का धोखा दे! पानी की बूंद रुकी हो घास के पत्ते पर और सूरज की रोशनी में चमकती है तो ऐसी लगती है जैसे मोती हो--मगर जरा सा हवा का झोंका कि सब राज खुल जाता है। झूठ भी जल्दी ही खुल जाता है, ज्यादा देर नहीं चलता।
और तुम सबने जीवन को झूठ पर खड़ा कर रखा है। और मजा तो यह है कि जो तुम्हें सत्य की बातें समझाते हैं, उन्होंने ही तुम्हारे जीवन को झूठ पर

खड़ा करवा दिया है। सबसे बड़ा झूठ तो यह है कि तुमने मान लिया है कि ईश्वर है। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर है, निश्चित है, मगर मानना मत--जानना! जब है तो जानेंगे, मानें क्यों? जो चीज न हो, उसको मानना पड़ता है। जो चीज है, उसे जानना चाहिए, मानना क्यों?
मगर झूठ सस्ता होता है और सत्य के लिए कीमत चुकानी पड़ती है। मानना बिल्कुल सस्ती बात है। जो चाहो मान लो। लेकिन जानना महंगी प्रक्रिया है। क्रांति से गुजरना होगा। जानने के लिए चित्त को निर्मल करना होगा। जानने के लिए चेतना को जगाना होगा, जानने के लिए मन से मुत्त होना होगा, जानने के लिए समाधि को निर्मित करना होगा। जब समाधान होगा, तब सत्य का अवतरण होगा। वह सब महंगा काम है! मानने में क्या रखा है? मान लिया कि ईश्वर है; मान लिया कि नर्क है, स्वर्ग है; मान लिया कि कुरान सही, बाइबिल सही, वेद सही; मानने में क्या लगा? कुछ लगता नहीं, कुछ खर्च होता नहीं, कुछ करना नहीं पड़ता। और जब इतने सस्ते में ईश्वर मिलता हो तो कौन न ले ले! मगर इतना सस्ता ईश्वर झूठा ही होगा।
तुम्हारा ईश्वर झूठा है; तुम्हारे मंदिर झूठे हैं, तुम्हारी मस्जिदें झूठी हैं। क्योंकि तुम्हारा बुनियाद ही झूठ पर, तुम्हारी आधारशिला ही झूठ पर।
विश्वास सब झूठा होते है; अनुभव चाहिए। मेरा जोर है अनुभव पर-- अस्तित्वगत अनुभव। मैं तुम्हें विश्वास नहीं दिलाना चाहता कि ईश्वर है। मैं तुम्हें अनुभव कराना चाहता हूं कि ईश्वर है। और इसलिए मुझे पहले तुम्हें तुम्हारे विश्वासों से मुक्त कराना होगा। तुम अगर हिंदू हो, तो मुझे तुमसे तुम्हारा हिंदुत्व छीनना होगा। और अगर तुम मुसलमान हो, तो मुझे तुमसे तुम्हारा मुसलमान होना छीनना होगा। तुम अगर जैन हो, तो जब तक तुम्हारा जैनत्व न छूटे, तुमसे, तब तक तुम्हारे जीवन में कोई आशा की किरण नहीं फूट सकती। क्योंकि तुम्हारा जैन, हिंदू, मुसलमान, यहूदी होना सब झूठ है। मान्यताओं पर खड़ा है। तुम्हें लोगों ने कह दिया है और तुमने मान लिया है। तुम्हारे बापदादे मानते थे तो तुमने मान लिया है। तुम्हारे चारों तरफ की हवा में बात है तो तुमने मान लिया है।
लेकिन तुमने खोजा? तुमने जिज्ञासा की? तुमने अभीप्सा की? तुमने मुमुक्षा की? तुमने प्राण लगाए दांव पर? अगर नहीं लगाए, तो इन झूठों से मुक्ति नहीं हो सकती। इन झूठों के कारण ही तुम जन्मों-जन्मों से भटक रहे हो। और इसीलिए तो तुम्हारे ईश्वर की मान्यता और तुम्हारी पूजा और तुम्हारी प्रार्थना, सब दो कौड़ी की मालूम पड़ती हैं। काश, तुम ईश्वर का एक कण भी जान लो तो तुम्हारे जीवन में ज्योति फैल जाए, तुम ज्योतिर्मय हो उठो।
सत्य को छिपाया नहीं जा सकता। सत्य की जरा सी झलक तुम्हारे जीवन में आ जाए कि अपने आप दूसरों को उसकी खबर मिलने लगेगी। अपने आप दूर-दूर से लोग आने लगेंगे तुम्हारा पता पूछते। कोई अज्ञात जैसे उन्हें खबर देने लगेगा कि जाओ, सत्य कहां घटित हो गया है, सत्य कहां अवतरित हो गया है। ऐसे ही तो सदगुरु खोजे जाते हैं। नहीं तो सदगुरु को खोजोगे कैसे? कोई शकल-सूरत पर छाप नहीं होती। सदगुरु की खोज कैसे होती है? इसी तरह होती है। उसका सत्य अभिव्यत्त होने लगता है, सूक्ष्म तरंगों की तरह, और दूर-दूर जहां-जहां प्यासे लोग हैं, उनके हृदय में आकर्षण... जैसे कोई चुंबक खींचने लगे।
तुम ठीक पूछते हो, शरणानंद, सत्य को नहीं छिपाया जा सकता। छिपाने की जरूरत भी नहीं है। छिपाते ही लोग झूठ को हैं। छिपाना ही झूठ को पड़ता है। झूठ है, इसलिए छिपाना पड़ता है। सत्य को छिपाने की जरूरत भी नहीं है, छिपाओगे भी क्यों? सत्य को तो प्रकट होने दो। जीसस ने कहा हैः चढ़ जाओ मकानों के मुंडेरों पर और आवाज दो; सत्य को बोलने दो, गूंजने दो; सत्य को कंठ दो, गीत दो, ताकि जितने अधिक लोग उसे सुन सकें, पहचान सकें, उतना अच्छा! इस पृथ्वी पर थोड़े से लोग हुए हैं, जिन्होंने सत्य को उसकी परिपूर्णता में जाना है। उन थोड़े से लोगों के कारण ही मनुष्य में मनुष्यता है। हटा दो दस-बारह नाम पृथ्वी से--बुद्ध का, जरथुस्त्र का, जीसस का, मोहम्मद का, महावीर का, लाओत्सु का--एक दस-बारह नाम हटा दो पृथ्वी से,

और आदमी जंगली जानवर हो जाएगा। तुम्हारे भीतर जो कुछ भी गरिमामय है, गौरवमय है; तुम्हारे भीतर जो थोड़ा-बहुत काव्य है, सौंदर्य है, संगीत है, वह इन थोड़े से लोगों के कारण है। इनका सत्य आज भी तुम में गूंज पैदा कर रहा है। एक व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है तो उसके साथ पूरी मनुष्यता एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाती है।
तुम्हें अगर सत्य कोई बात लगे, अनुभव में लगे, तो बांटना उसे। बेझिझक बांटना; कृपणता मत करना, कंजूसी मत करना, उसे छिपा कर मत रखना। और तुम छिपा कर भी रखो तो भी न छिपा पाओगे। उसे छिपाया जा नहीं सकता है।

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
सातवां प्रवचन

पिय संग जुरलि सनेह सुभागी

लागलि नेह हमारी पिया मोर।।
चुनि चुनि कलियां सेज बिछावौं, करौं मैं मंगलाचार।
एकौ घरी पिया नहिं अइलै, होइला मोहिं धिरकार।।
आठौ जाम रैनदिन जोहौं, नेक न हृदय बिसार।
तीन लोक कै साहब अपने, फरलहिं मोर लिलार।।
सत्तसरूप सदा ही निरखौं, संतन प्रान-अधार।
कहै गुलाल पावौं भरिपूरन, मौजै मौज हमार।।

पिय संग जुरलि सनेह सुभागी।
पुरुब प्रीति सतगुरु किरपा किय, रटत नाम बैरागी।।
आठ पहर चित लगै रहतु है, दिहल दान तन त्यागी।
पुलकि पुलकि प्रभु सों भयो मेला, प्रेम जगो हिए भागी।।
गगन मंडल में रास रचो है, सेत सिंघासन राजी।
कह गुलाल घर में घर पायो, थकित भयो मन पाजी।।

सोइ दिन लेखे जा दिन संत मिलाहिं।
संत के चरनकमल की महिमा, मोरे बूते बरनि न जाहिं।।
जल तरंग जल ही तें उपजैं, फिर जल मांहि समाहिं।

हरि में साध साध में हरि हैं, साध से अंतर नाहिं।।
ब्रह्मा बिस्नु महेस साध संग, पाछे लागे जाहिं।
दास गुलाल साध की संगति, नीच परमपद पाहिं।।
आंगन भर धूप में--
मुट्ठी भर छांव की--
क्या बिसात?
हो न-हो!

अंतर को पीर कसे,
अधरों पर हास हंसे;
उलझन के झुरमुट में--
किरनों के हिरन फंसे;
शहरों की भीड़ में--
नन्हे-से गांव की--
क्या बिसात?
हो न हो!
ढहते प्रण हाथ गहे,
तट ने आघात सहे;
भावी के सुख सपने--
लहरों के साथ बहे;
तूफानी ज्वार में--
कागदिया नाव की--
क्या बिसात?
हो न हो!
भेद भरे राज खुले,
सुख-दुख जब मिले-जुले;
बावरिया दृष्टि धुली--
आंसू के तुहिन घुले;
कालजयी राह पर--
क्षणजीवी पांव की--

क्या बिसात?
हो न हो!
मनुष्य असंभव को संभव बनाने की चेष्टा में जो संभव हो सकता है उससे भी वंचित रह जाता है। मनुष्य ऐसी आकांक्षा करता है जो पूरी हो ही नहीं सकती।
जो स्वभाव के अनुकूल नहीं है। कागज की नाव से सागर तिरना चाहता है। क्षणभंगुर में शाश्वत को पाना चाहता है। मिट्टी में अमृत को तलाशना है। और बाहर खोजता है उसे, जो भीतर विराजमान है। जब तक खोजेगा बाहर तब तक चूकेगा। जब तक मिट्टी पर भरोसा रखेगा तब तक अमृत से वंचित रहेगा।
धार्मिक जीवन की शुरुआत ही इस तथ्य से होती है कि हम असंभव को असंभव
और संभव को संभव की तरह पहचान लें। क्या हो सकता है और क्या नहीं हो सकता है, इसे ठीक-ठीक जान लेने से जीवन में रूपांतरण शुरू होता है; दिशा बदलती है, आयाम बदलता है। फिर तुम रेत से तेल निचोड़ने की चेष्टा नहीं करते हो। तुम जानते हो कि रेत में तेल होता ही नहीं। लेकिन साधारणतः हालत बड़ी उलटी है। सभी रेत से तेल निचोड़ने में लगे हैं; सो तुम भी लग जाते हो--देखादेखी। अनुकरण से जीते हो। न विचार से, न विवेक से। आंखें खोलते ही नहीं। भीड़ जो कर रही है, बस भेड़ की तरह उसको किए जाते हो। न भीड़ कहीं पहुंचती है, न तुम कहीं पहुंचते हो।
इस जीवन में दो यात्राएं संभव हैं। एक बहिर्यात्रा है, जो निष्फल है। जिससे गंतव्य कभी आया नहीं, कभी आएगा नहीं। और एक अंतर्यात्रा है, जो पहले ही कदम में भी सफल है। बहिर्यात्रा अंतिम कदम में भी असफल है, अंतर्यात्रा पहले कदम में सफल है। राज क्या है? राज छोटा है; बात छोटी है। लेकिन समझो तो जीवन में क्रांति हो जाती है। अंतर्यात्रा पहले ही कदम में सफल हो जाती है। क्योंकि तुम जिसे खोजते हो, वह वहां मौजूद ही है। उसे खोजना भी नहीं है, उसे पाना भी नहीं है, पाया ही हुआ है, सिर्प पर्दा उठाना है। पर्दा उठाने में कितनी देर लगेगी! धूल-धवांस जम गई है, पोंछ देनी है, धो देनी है और दर्पण शुद्ध हो जाएगा। और तुम्हारे भीतर का दर्पण शुद्ध हो, तो जीवन का सत्य उसमें प्रतिफलित होने लगता है। उस जीवन के सत्य को चाहो परमात्मा कहो, चाहे निर्वाण कहो, कैवल्य कहो, मोक्ष कहो--तुम्हारी जो मर्जी।
सब शब्द छोटे हैं; कोई शब्द उसे प्रगट नहीं कर पाता। लेकिन सब शब्द उसके लिए संकेत बन सकते हैं। उसमें ये सब गुण हैं। उसमें परम स्वतंत्रता है, इसलिए तुम मोक्ष कह सकते हो। वह परम मुक्ति है, सारे बंधन गिर गए। उसमें कोई दूसरा नहीं बचता, दुई नहीं बचती, इसलिए कैवल्य कह सकते हो। क्योंकि केवल चेतना रह जाती है, मात्र चेतना रह जाती है, चैतन्य का सागर रह जाता है। कोई पराया नहीं, कोई भिन्न नहीं, कोई अन्य नहीं, सब अभिन्न हो जाता है। तुम चाहो तो उसे ईश्वर कहो; क्योंकि उसे जानते ही तुम्हारे जीवन में ऐश्वर्य की वर्षा हो जाती है। ईश्वर ऐश्वर्य शब्द से बना है। झरत दसहुं दिस मोती, जैसा गुलाल कहते हैं, मोती ही मोती झर पड़ते हैं। इतने मोती कि बटोरो तो कैसे बटोरो, संहालो तो कहां संहालो, रखो तो किन तिजोड़ियों में रखो? सारा जगत ही स्वर्ण हो जाता है।
चाहो तो उसे निर्वाण कहो, जैसा बुद्ध ने कहा।
निर्वाण का अर्थ होता हैः दीये का बुझ जाना। बुद्ध ने उस परम अवस्था
को निर्वाण इसलिए कहा कि तुम्हारा अहंकार ऐसे बुझ जाता है जैसे कोई पूंक मार कर दीया बुझा दे। फिर खोजे से नहीं मिलती ज्योति। फिर लाख तलाशते फिरो, जो दीया बुझ गया उसकी ज्योति तुम कहीं भी नहीं पा सकोगे। तुम्हारा अहंकार बुझ जाता है दीये की ज्योति की भांति। ध्यान की सारी प्रक्रियाएं फूंक मारने के उपाय हैं। बस फूंक मारी कि जादू हो जाता है। इधर दीया बुझा अहंकार का, इधर तुम शून्य हुए, मिटे कि उधर परमात्मा उतरा। तुम मिटो तो ही परमात्मा उतर सकता है।
इसलिए भीतर पहले कदम पर ही मंजिल आ जाती है। और बाहर जन्मों-जन्मों तक यात्रा करो तो भी मंजिल नहीं आती।
बाहर तो तुम असंभव को संभव बनाने की कोशिश कर रहे हो। तुम्हारे लिए नियम बदलेंगे नहीं, प्रकृति बदलेगी नहीं, स्वभाव बदलेगा नहीं! स्वभाव किसी के लिए अपवाद नहीं करता है।

तूफानी ज्वार में--
कागदिया नाव की--
क्या बिसात?
हो न हो!
कालजयी राह पर--
क्षणजीवी पांव की--
क्या बिसात?
हो न हो!
आंगन भर धूप में--
मुट्ठी भर छांव की--
क्या बिसात?
हो न हो!
हमारी सामर्थ्य क्या है? मुट्ठी भर। और आंगन भर ही धूप नहीं है, आकाश
भर धूप है। मुट्ठी भर छांव, हो, न हो।
और जो नावें हमने बनाई हैं, सब कागज की। हमारा धन कागज, हमारा पद कागज, हमारी प्रतिष्ठा कागज। इन्हीं कागज के प्रमाणपत्रों को जुटाते रहोगे? इन्हीं को जोड़-तोड़ कर नाव बनाते रहोगे? किनारा भी न छूटेगा और डूबोगे, किनारे पर ही डूबोगे, मझधार तक भी नहीं पहुंच पाओगे। मझधार में डूबते तो भी कुछ बात थी कि चलो, न आया दूसरा किनारा, मझधार तो आई! कम से कम इतना तो तैरे! मगर कागज की नाव में चलोगे, किनारे से कदम भर भी न हट पाओगे कि डूब जाओगे। लेकिन तुम्हारी सब नावें कागज की हैं। दूसरे तुम्हारे संबंध में क्या कहते हैं--ये सब कागजी बातें हैं! कोई अच्छा कहता है, कोई बुरा कहता; कोई सम्मान करता है, कोई अपमान करता। करने दो! न उनके अच्छे कहने से तुम अच्छे होते हो, न बुरे कहने से बुरे होते हो। न उनके सम्मान करने से तुम्हारा सम्मान है, न उनके अपमान करने से तुम्हारा अपमान है। तुम तो तुम हो, जैसे हो वैसे हो। दुनिया क्या कहती है, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता।
और जो कह रहे हैं, उन्हें होश कितना है? उनकी बातों का मूल्य भी क्या
हो सकता है! सोए हुए लोग सम्मान कर रहे हैं, अपमान कर रहे हैं--नींद में बड़बड़ा रहे हैं--और उनकी नींद की बड़बड़ाहट, तुम उसे बड़ा मूल्य दे रहे हो! नींद में बड़बड़ा कर तुमने समझ लिया कि उन्होंने तुम्हें भारतरत्न बना दिया। वे नींद में बड़बड़ा रहे थे। न उन्हें पता है क्या कह रहे हैं, क्यों कह रहे हैं, न तुम्हें पता है; तुम भी सोए हो। वे नींद में बड़बड़ा रहे हैं, तुम नींद में सुन रहे हो।
नोबल प्राइजें बांटी जाती हैं। पुरस्कार, सम्मान। सब कागदिया नावें। मगर बड़ा शोरगुल मचता है। और चार दिन का सारा खेल। ये चार दिन की चांदनी और फिर गहरी अंधेरी रात। मौत आती है और सब लील जाती है। कब्र आती है और सब मिटा जाती है; चरण-चिह्न भी नहीं छूट जाते।
जहां सब मिटा जा रहा है, वहां तुम्हारे किए-धरे का भी कोई अर्थ नहीं है। करने योग्य अगर कुछ है तो वह केवल एक बात हैः स्वभाव के नियम को पहचान लो; स्वभाव के नियम के साथ संग जोड़ लो; स्वभाव के साथ डोलो, नाचो, गाओ। स्वभाव के साथ एकरस हो जाने का नाम संन्यास है। स्वभाव के अनुकूल बहने का नाम संन्यास है। स्वभाव के प्रतिकूल जो जाता है, वह संसारी है; स्वभाव के अनुकूल जो जाता है, वह संन्यासी। संसारी उलटी धार चढ़ने की कोशिश करता है। नदी जा रही सागर की तरफ, वह चढ़ने की कोशिश करता है कि पहाड़ की तरफ पहुंच जाए नदी में तैर कर। संन्यासी देख लेता नदी कहां जा रही है, नदी से टकराता नहीं, छोड़ देता है शिथिलगात। इस अपने को नदी के प्रवाह में सहज भाव से छोड़ देने का नामः श्रद्धा; सत्संग। और छोड़ते ही नाव की भी जरूरत नहीं पड़ती। नदी स्वयं तुम्हें ले चलती है।
तुमने एक मजा देखा? जिंदा आदमी डूब जाता है, मुर्दा आदमी तैरने लगता है। मुर्दे को कोई नदी नहीं डूबा सकती। तुम मुर्दे को डुबाओ भी तो निकल-निकल कर बाहर आ जाता है। मुर्दा भी गजब का है! जिंदा डूब जाता है। जिंदे को तैरना आना चाहिए, तब भी बामुश्किल बच पाए! और यह सागर है विस्तीर्ण; इसमें कितना तैरोगे? थक ही जाओगे!

कालजयी राह पर--
क्षणजीवी पांव की--
क्या बिसात?
हो न हो!
लेकिन मुर्दे को कोई नदी नहीं डुबा पाती, कोई सागर नहीं डुबा पाता। मुर्दे का राज क्या है, रहस्य क्या है? राज इतना है कि मुर्दा है नहीं; इसलिए स्वभाव के प्रतिकूल नहीं जा सकता। स्वभाव के अनुकूल ही जाता है--कोई और उपाय नहीं है। होता तो कुछ हाथ-पैर मारता; है ही नहीं। सब भांति नदी के साथ राजी है। इसलिए नदी स्वयं उसे उठा लेती है।
जिसने समर्पण किया स्वभाव में, स्वभाव स्वयं उसे उठा लेता है। जिसने छोड़ा अपने को परमात्मा के चरणों में, उसको फिर कोई सागर नहीं डुबा सकता। वह डूबेगा भी तो उबर जाएगा। उसे मंझधार में भी किनारा मिल जाएगा। उसे डुबाने का उपाय ही नहीं है।
इसलिए संन्यास की प्राचीनतम परिभाषा हैः ऐसे जीना जैसे तुम हो ही नहीं, जैसे तुम मर ही गए। मुर्दा होकर जीना संन्यास की परिभाषा है। जीवन अभिनय रह जाए। ठीक है, जो करना है, कर रहे हैं, मगर न कोई लगाव है, न कोई आसक्ति है। हो तो ठीक, न हो तो ठीक। सफलता और विफलता एक से मालूम पड़ने लगें; यश और अपयश में इंच भर भेद न रह जाए; लोगों की गालियां और लोगों के गीत एक से अनुभव में आने लगें; फिर तुम्हें इस संसार में कोई दुख नहीं, कोई पीड़ा नहीं। फिर यह संसार मिट गया। फिर इस संसार में तुम्हें चारों तरफ परमात्मा ही आंदोलित होता हुआ मालूम पड़ेगा।
करने योग्य बस एक ही बात हैः स्वभाव के साथ सगाई। उसे तुम जो भी नाम देना चाहो, तुम्हारी मर्जी। भक्तों ने उसे नाम-स्मरण कहा है, प्रार्थना कहा है, पूजा कहा है, अर्चना कहा है, उपासना कहा है। लेकिन लोगों ने सब भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने पूजा दो कौड़ी की कर दी; उन्होंने अर्चना औपचारिक कर दी; उनकी प्रार्थना पाखंड हो गई। वे कुछ और ही करने लगे पूजा और प्रार्थना के नाम पर। पूजा और प्रार्थना के लिए न तो मंदिर जाने की जरूरत है, न मस्जिद, न गिरजा, न गुरुद्वारा। पूजा और प्रार्थना के लिए तो स्वयं के भीतर जाने की जरूरत है।
आज मेरी गति, तुम्हारी आरती बन जाय!
आरती घूमे कि खिंचता जाय
रंजित क्षितिज-घेरा,
धूम-सा जल कर भटकता
उड़ चले सारा अंधेरा।
हो शिखा स्थिर, प्राण के
प्रण की अचल निष्कंप रेखा,
हृदय की ज्वाला, हंसी में
दीप्ति की हो चित्र-लेखा।
श्वास ही मेरी, विनय की भारती बन जाए! आज मेरी गति, तुम्हारी आरती बन जाय! वह हंसी मंदिर बने
मुस्कान क्षण हों द्वार मेरे,
तुम मिलो या मैं मिलूं
ये मिलन पूजा-हार मेरे।
आज बंधन ही बनेंगे
मुक्ति के अधिकार मेरे,
क्यों न मुझमें अवतरित
होकर रहो स्वरकार! मेरे!
प्राण-वंशी प्रेम की ही चिर व्रती बन जाय!
आज मेरी गति, तुम्हारी आरती बन जाय!
तुम्हारा उठना-बैठना, तुम्हारा बोलना-चलना-सोना, तुम्हारी गति ही आरती बननी चाहिए। तुम्हारे जीवन की शैली ही प्रार्थनापूर्ण हो जानी चाहिए। प्रार्थना कोई अलग-थलग चीज न हो, कि उठे सुबह और घड़ी-आधा घड़ी कर ली

और निपट गए, कि झंझट मिटी, और फिर तेईस घंटे भूल-भाल गए। घड़ी में जिसको बनाया, तेईस घंटे में पोंछ डाला। स्वभावतः तेईस घंटे जीतेंगे, एक घंटा नहीं जीत सकता। एक घंटा मकान बनाओगे और तेईस घंटे गिराओगे, मकान कभी बनेगा?
प्रार्थना तो तुम्हारी श्वास-श्वास में समा जाए। उठो तो प्रार्थना में; बैठो तो प्रार्थना में, बोलो तो प्रार्थना में, चुप रहो तो प्रार्थना में। बाजार, तो प्रार्थना; घर, तो प्रार्थना। प्रार्थना ऐसे हो जैसे श्वास का चलना; जैसे तुम्हारे शरीर में रक्त का प्रवाह है; जैसे तुम्हारी आंखों का झपकना; ऐसी स्वाभाविक हो जाए! ऐसी स्वाभाविक हो जाती है। ऐसी स्वाभाविक होनी ही चाहिए। ऐसी स्वाभाविक हो, हम इस तरह ही निर्मित हुए हैं। आश्चर्य यह है कि कैसे अस्वाभाविक हो गया है सब! क्यों हम परमात्मा से टूट गए हैं, यह आश्चर्य की बात है। जो जुड़ जाते हैं, उसमें कुछ आश्चर्य की बात नहीं है। वह तो होना ही था। वह तो हमारी नियति है।
फूल खिल जाए, यह तो स्वाभाविक है। कोई कली खिले ही न, वसंतों पर वसंत आएं और कली खिले ही न, तो कुछ चमत्कार हो रहा है। और फूल खिल जाए, इसमें क्या चमत्कार है? बीज टूटे और वृक्ष बन जाए--इसमें क्या चमत्कार है? लेकिन वर्षा पर वर्षा हो और बीज बीज ही बना रहे, तो चमत्कार है। प्रकृति के प्रतिकूल कुछ हो तो चमत्कार है। अनुकूल हो तो क्या चमत्कार है! परमात्मा को पा लेना चमत्कार नहीं है--सबसे सहज घटना है; जीवन की सहजतम। इसलिए गुलाल ने कहा है--सहज नाम, सहज गति, सहज साधना।
गुलाल के सूत्र--
लागलि नेह हमारी पिया मोर।।
गुलाल कहते हैंः मेरा प्रेम लग गया, उससे ही जिससे लगना चाहिए। जो अपना है, उससे ही लग गया। लगता तो हम सबका प्रेम है, लेकिन उससे लग जाता है जो अपना नहीं है। पराए से लग जाता है। फिर कलह है; फिर उपद्रव है। भिन्न से लग जाता है। हमारा प्रेम भी स्वाभाविक नहीं है; हमारा प्रेम भी कृत्रिम है। और जब प्रेम भी कृत्रिम हो जाए, तो फिर क्या बचेगा हमारे जीवन में जो स्वाभाविक हो? प्रेम तक कृत्रिम हो जाए तो और सब तो कृत्रिम हो ही जाएगा। तुम कहते हो हम पत्नी को प्रेम करते हैं, बच्चों को प्रेम करते हैं, मां-बाप को प्रेम करते हैं, भाई-बहन को, मित्रों को प्रेम करते हैं। सच में तुमने कभी सोचा कि प्रेम का अर्थ क्या होता है? कभी तुमने विचारा कि तुम प्रेम के लिए क्या चुकाने को राजी होओगे? प्रेम के लिए प्राण दे सकोगे? नहीं दे सकोगे। आनाकानी करने लगोगे। बचाव के उपाय खोजने लगोगे।
ऐसा ही हुआ न वाल्या भील के जीवन में, जो फिर पीछे वाल्मीकि बना। लुटेरा था; हत्यारा था। जंगल से निकलते नारद को पकड़ लिया। नारद को पकड़ा कि मुश्किल में पड़ा। कुछ ऐसे लोग हैं कि जिन्हें तुम पकड़ो भी तो तुम्हीं पकड़े जाओगे, वे नहीं पकड़े जाते। सोचा तो वाल्या ने यही था कि मैंने नारद को बंदी बनाया। उसे पता भी नहीं था कि नारद जैसे व्यक्तियों को बंदी बनाया नहीं जा सकता। जिन्होंने भीतर के स्वातंष्य को पा लिया हो, उन्हें बाहर से बंदी बनाने का कोई उपाय नहीं है।
समझ में भी आ गई उसे बात, थोड़ा बेचैन भी हुआ, हतप्रभ भी हुआ। उसने दो तरह के लोग देखे थे अब तक। एक तो वे जिन्हें वह लूटता था तो वे लड़ने, मरने- मारने को तैयार हो जाते थे। उन्हें वह भलीभांति पहचानता था, उनसे निपटना भी जानता था! और एक वे, जिन्हें वह लूटता था तो वे छोड़-छाड़ कर जो भी लुट रहा हो, भाग खड़े होते थे। उन्हें भी वह भलीभांति जानता था; उनसे निपटने की कोई जरूरत भी नहीं होती थी। मगर यह नारद कुछ तीसरे ही तरह के व्यक्ति मालूम पड़े। न तो लड़े, न भागे। वह जो वीणा बज रही थी, बजती ही रही, जो गीत उठ रहा था, उठता ही रहा। वाल्या ने उन्हें पकड़ लिया तो भी वे अपनी वीणा बजाते ही रहे। वही स्वर। जरा भी स्वर कंपा नहीं। वही भावदशा। वही मस्ती। वही उन्मत्त आनंद। वाल्या थोड़ा झिझका भी। या तो आदमी पागल है या सिद्धपुरुष है।... पागलों और सिद्धपुरुषों में थोड़ी सी समानता होती है। पागल इतने बेहोश होते हैं, उनकी समझ में नहीं आता क्या हो रहा है। और सिद्धपुरुष इतने

होशपूर्ण होते हैं, उनकी समझ में सब आता है, इसलिए कोई चीज उन्हें प्रभावित नहीं करती।
वाल्या ने पूछा कि तुम आदमी कैसे हो? देखते हो मेरे हाथ में यह तलवार? गर्दन काट दूंगा। और तुम हो कि गीत ही गाए जा रहे हो! अरे, मैं लुटेरा हूं, हत्यारा हूं! नारद ने कहाः तेरी जो मर्जी हो, वह तू कर! मुझे जो करना है, वह मैं कर रहा हूं। तुझे मैंने रोका? तुझे गर्दन काटना हो, गर्दन काट। लेकिन काटने के पहले एक सवाल का जवाब दे दे। क्योंकि पता नहीं कोई तुझसे वह सवाल पूछे, न पूछे। सवाल मेरा यह है कि यह गर्दन तू किसलिए काटता है, यह लूटना तू किसलिए करता है? स्वभावतः वाल्या ने कहा--जो तुम कहते, जो कोई भी कहता--कि बच्चों के लिए, पत्नी के लिए, बूढ़े बाप के लिए, मां के लिए। और तो मैं कोई कला जानता नहीं, बस बलशाली मेरे पास देह है, तो लूट लेता हूं। यही मेरा घर-गृहस्थी चलाने का ढंग है--यह मेरा व्यवसाय समझो। नारद ने कहाः ठीक है, मजे से कर अपना व्यवसाय! एक सवाल और है कि इस व्यवसाय के कारण जो तुझ दुख भोगने पड़ेंगे, उसमें तेरी मां, तेरे पिता, तेरे बच्चे, तेरी पत्नी भागीदार होंगे या नहीं?
वाल्या ने कहा कि मैं सीधा-सादा आदमी हूं, ऐसे कठिन-कठिन प्रश्न मैंने कभी सोचे नहीं, मैंने कभी पूछा भी नहीं अपने मां-बाप को, अपनी पत्नी को, मगर बात आपकी ठीक है, मैं पूछ कर आता हूं। लेकिन देखो, धोखा मत देना, भाग मत जाना! नारद ने कहाः तू मुझे बांध दे वृक्ष से ताकि तू निशि्ंचत जा सके। नारद को बांध कर वृक्ष से वाल्या गया। सबसे पूछा। पत्नी से पूछा कि मैं ये जो पाप के कृत्य कर रहा हूं, हत्या, लूटना, जब नर्क में सडूंगा तो तू मेरे साथ भागीदार होगी? उसने कहा कि मुझे क्या लेना-देना; तुम क्या करते हो, इससे मुझे क्या लेना-देना! तुम विवाह करके मुझे ले आए, सो तुम्हारा कर्तव्य है कि मेरे लिए दो रोटी जुटाओ। मुझे दो रोटी से मतलब है, तुम पुण्य से कमाओ कि पाप से कमाओ, वह तुम जानो। विवाह करके लाए हो, दो रोटी खिलाओगे कि नहीं? शरीर पर कपड़ा तो चाहिए ही, छप्पर तो चाहिए ही, उससे ज्यादा मैंने तुमसे मांगा नहीं। मैंने तुमसे कभी पूछा भी नहीं कि तुम क्या करते हो। तुम जो करते हो, वह तुम जानो। और उसका फल भी भोगना पड़े, तो तुम्हीं को भोगना पड़ेगा। मेरा इसमें कोई हाथ नहीं है।
वाल्या तो बहुत चौंका!
बच्चों से पूछा, बच्चों ने कहा कि हमसे तो आपने पूछा भी नहीं जन्म देने के पहले; जन्म दे दिया, अब हमको उलझाते हो! अब जन्म दिया है तो भोजन तो देना ही होगा। तुम कैसे देते हो, हमको पता क्या, हम तो छोटे बच्चे हैं! तुम कहां से लाते हो, यह भी हमने कभी पूछा नहीं।
मां-बाप से पूछा। उन्होंने कहा, हम बूढ़े हो गए, तू जवान है, अपने बूढ़े मां-बाप को रोटी-रोजी तो देगा कि नहीं? तू जान, तेरा काम जाने। अच्छे काम कर कि बुरे काम कर। हम तो कहते नहीं कि तू बरे काम कर। हमारी न सहमति है, न असहमति है। हम तो बिल्कुल निष्पक्ष हैं। लेकिन बूढ़े मां-बाप की सेवा करना तेरा कर्तव्य है। सो जैसे तुझसे बन सके, तू कर। हम से जब पूछा जाएगा, हम तो कह देंगेः हम निष्पक्ष हैं।
वाल्या लौटा, दूसरा ही आदमी होकर लौटा। नारद के बंधन छोड़ दिए और कहा
कि मुझे दीक्षा दो! मुझे भी वह राज बताओ कि तुम जैसा आदमी हो जाऊं; कि सुख हो कि दुख, कि मौत भी द्वार पर खड़ी हो तो भी मेरे गीत में कंपन न आए, मेरे हृदय में घबड़ाहट न हो। और तुमने ठीक समय पर आकर मुझे चौंका दिया। वे कोई भी मुझे प्रेम नहीं करते, क्योंकि कोई भी मेरे दुख में भागीदार होने को राजी नहीं है। सब सुख के साथी हैं। दुख में कोई साथ देने को राजी नहीं है!
ऐसे वाल्या रूपांतरित हुआ। ऐसे वाल्या वाल्मीकि हो गया।
सभी वाल्या हैं।
तरह-तरह का लूटना चल रहा है दुनिया में। कोई सीधे-सीधे लूटता है, कोई जरा इरछा-तिरछा लूटता है। कोई कुशलता से लूटता है, कोई बड़ी चालबाजियों से लूटता है। सब तरह का लूटना चल रहा है। लेकिन इसको तुम प्रेम मत समझना; यह प्रेम नहीं है। मोह होगा, आसक्ति होगी, वासना होगी, मगर प्रेम नहीं। प्रेम तो बड़ी पवित्र दशा है। प्रेम तो प्रार्थना है, प्रेम तो सुगंध है आत्मा

की। प्रेम तो केवल परमात्मा से ही हो सकता है। उससे नीचे तल पर प्रेम नहीं हो सकता। उससे नीचे तल पर नीचे तल की बात होगी। तुम किसी स्त्री के शरीर में उत्सुक हो और उसको प्रेम कहने लगते हो, कि बस प्रेम हो गया।
मुल्ला नसरुद्दीन एक स्त्री के प्रेम में था। उस स्त्री ने विवाह के पहले पूछा कि मुल्ला, एक बात पूछनी है; तुम सदा-सदा मुझे ऐसा ही प्रेम करोगे? मुल्ला ने छाती ठोक कर कहा कि सदा-सदा! अरे, इस जन्म तो क्या अगले जन्म में भी!
प्रेम में तो लोग कुछ भी कह जाते हैं। प्रेम में और झगड़े में लोग क्या कहते हैं, उस पर ज्यादा ध्यान मत देना। झगड़े में क्या कहते हैं, उसको भी ज्यादा गौर मत करना, और प्रेम में क्या कहते हैं, उसको भी ज्यादा गौर मत करना।
मुल्ला ने कहा कि जन्म-जन्म प्रेम करूंगा। तेरे अतिरिक्त मुझे कोई स्त्री दिखाई ही नहीं पड़ती। तू अप्रतिम है। तू चौदहवीं का चांद है। तेरे जैसा कौन! बहुत सौंदर्य देखे मगर तेरा रूप, तेरा रंग, तेरा निखार, यह तो परमात्मा ने जैसे विशेष ढंग से गढ़ा है। स्त्रियां ज्यादा पार्थिव होती हैं, इतनी ज्यादा रोमांटिक नहीं होतीं। जमीन पर उनके पैर पड़ते हैं, इतनी आकाश में नहीं उड़तीं। उस स्त्री ने कहाः यह सब तो ठीक है, मैं तुमसे यह पूछती हूं--अगले जन्म की नहीं पूछती--मैं यह पूछती हूं, जब मैं बूढ़ी हो जाऊंगी और यह देह जीर्ण-जर्जर हो जाएगी और हड्डियां निकल आएंगी और चेहरे से यह रूप खो जाएगा और आंखें धंधुली हो जाएंगी, तब भी तुम मुझे प्रेम करोगे? मुल्ला ने कहाः हां-हां! लेकिन अब हां-हां में वह बल नहीं था। कुछ थोथा-सा मालूम पड़ा। स्त्री ने कहाः तुम सोच कर कहो, तब भी तुम प्रेम करोगे? मुल्ला ने कहाः हां, जरूर प्रेम करूंगा, एक ही बात पूछनी है, तू अपनी मां जैसी तो नहीं दिखाई पड़ने लगेगी?
यहां बड़ी-बड़ी बातें भी पानी की लहर की तरह हैं। यहां बड़े-बड़े वक्तव्य
भी कोई अर्थ नहीं रखते हैं। कहने की बातें हैं, सो लोग कहते हैं! और जब कहना ही है तो क्या कंजूसी करनी! और जब लोग कहने पर ही उतर आते हैं तो अतिशयोक्ति करने लगते हैं। और अतिशयोक्ति हमें जंचती भी बहुत है। कोई भी नहीं पूछता कि इसमें सच्चाई कितनी है? इसमें सत्य कितना है?
वासना से भरी हुई आंखें सत्य को न देखना चाहती हैं, न देख सकती हैं। वासना से भरी आंखें तो जो बिल्कुल क्षणभंगुर है, उससे अटकी हैं। देह का रूप, देह का सौंदर्य तो क्षणभंगुर है। अभी है, अभी न हो जाए। आज है, कल का कोई भरोसा नहीं। इसे तुम प्रेम कहते हो! प्रेम तो शाश्वत से ही हो सकता है। क्योंकि प्रेम शाश्वतता का ही नाम है। प्रेम समय के भीतर नहीं होता, समयातीत है। जिसे तुम प्रेम कहते हो, वह काम है। वह राम नहीं है। और जब तक राम न हो तब तक प्रेम नहीं है।
ठीक कहते हैं गुलाल--
लागलि नेह हमारी पिया मोर।।
कहते हैंः हमारा तो प्रेम उस असली पिया से लग गया है, जो अपना है, जो सदा अपना है। जिसको तुम चाहो तो भी पराया नहीं हो सकता। यहां तो सब पराए हैं, तुम लाख चाहो तो भी अपने नहीं हो पाते। हम उपाय तो सब करते हैं। हम क्या कमी छोड़ते हैं! लेकिन सब उपाय हमारे आज नहीं कल व्यर्थ हो जाते हैं। आज नहीं कल हमें पता चलता है, जिसे अपना माना वह अपना नहीं, वह कभी भी अपना नहीं था। माना था तुमने। किसी वासना के प्रवाह ने मनवा दिया था। उसने भी माना था; किसी वासना के प्रवाह ने, किसी लोभ ने, किसी हानि ने उसे भी स्वीकार करवा दिया था। लेकिन यहां के सारे संबंध लोभ के हैं, मोह के हैं, भय के हैं। छोटे बच्चे तुमसे प्रेम करते हैं, सिर्प भय के कारण। क्योंकि उनका जीवन तुम पर निर्भर है। वे बच ही नहीं सकते, अगर तुम उन्हें न बचाओ, वे मर ही जाएंगे। एक क्षण नहीं जी सकते तुम्हारे बिना। तो तुमसे भयभीत रहते हैं।
भय के कारण बच्चे मां-बाप को प्रेम करना शुरू करते हैं। फिर भूल ही जाते हैं कि बुनियाद में भय है। और इसीलिए हर बच्चा अपने मां-बाप से एक-न-एक दिन बदला लेता है। जब बदला लेता है तब तुम परेशान होते हो। क्योंकि भय

का तो बदला लिया ही जाएगा। एक वक्त आएगा कि बच्चे शक्तिशाली हो जाएंगे और मां-बाप कमजोर हो जाएंगे। एक वक्त था कि मां-बाप शक्तिशाली थे और बच्चे कमजोर थे। जब बच्चे कमजोर थे, तब तुमने उन्हें झुका लिया। जब बच्चे शक्तिशाली हो जाएंगे, तब वे मां-बाप को झुकाने लगते हैं।
यह तो राजनीति है--भय की राजनीति। स्त्रियों को डरवाया है तुमने, कितना डरवाया है! कितना भयभीत किया है उनको! उनकी सारी स्वतंत्रता छीन ली है। उनकी जड़ ही काट दी है स्वतंत्रता की। उनसे उनकी सारी आर्थिक स्वावलंबन की क्षमता छीन ली है। उनको बिल्कुल अपने ऊपर निर्भर कर लिया है। रोटी दो तो तुम दो, कपड़ा दो तो तुम दो, मकान दो तो तुम दो--चाभी तुम्हारे हाथ में है धन की। स्त्रियों से तुमने धन की व्यवस्था छीन ली, उनको शिक्षा देना बंद कर दिया, उनको शास्त्र पढ़ाना बंद कर दिया। और तब स्वभावतः तुम मालिक बन बैठे। और तुमने स्त्रियों को समझाया है कि पति परमात्मा है। और मजबूरी में उनको मानना भी पड़ा। पर वह ऊपर ही ऊपर है मानना। जब स्त्रियां चिट्ठी लिखती हैं तो लिखती हैं नीचेः आपकी दासी। मगर भलीभांति वे जानती हैं कि दास कौन है और दासी कौन है। और चौबीस घंटे सिद्ध करती रहती हैं कि दास कौन है और दासी कौन है। बड़े-बड़े बहादुर जो घर के बाहर बड़े बहादुर हैं, घर में आते ही एकदम से चूहे हो जाते हैं; एकदम पूंछ दबा लेते हैं। क्योंकि जब स्त्रियों को तुमने इतना सताया है, तो उसकी प्रतिक्रिया होगी। स्वभावतः।
भय से प्रेम नहीं उपजता। भय से तुम किसी को मनवा सकते हो कि मैं तुमसे बड़ा हूं, लेकिन तुम दूसरे के भीतर प्रतिशोध की अग्नि जला रहे हो। और स्त्रियों ने उस प्रतिशोध के अपने उपाय खोज लिए हैं, वे अपने ढंग से तुमको सताती हैं। खाने पर बैठोगे तो सताएंगी। भोजन ही न करने देंगी--ऐसी बकवास लगाएंगी! रात सोने जाओगे तो सोने नहीं देंगी--ऐसी बकवास लगाएंगी! लोग पत्नियों से बचने के लिए कहां-कहां नहीं जाते! कोई रोटरी क्लब में है, कोई लायंस क्लब में भर्ती हो गया है।
एक दल उत्तर ध्रुव की यात्रा के लिए गया। बड़ी कठिन यात्रा थी। उस दल में दो लोगों में बड़ी मैत्री हो गई, घनिष्ठता हो गई। एक ने दूसरे से पूछा कि इतनी भयंकर यात्रा पर, जिसमें जीवन को खतरा है आने का तेरा कारण क्या है? उसने कहा, चुनौती, अभियान। मुझे हमेशा असंभव बातें पुकारती हैं। फिर उसने पूछा, और तुम्हारे आने का कारण क्या है? उसने कहा, इतना बड़ा कोई कारण नहीं, जब लौट कर घर चलेंगे, तब तुम मेरी पत्नी को देख लेना। मेरी पत्नी को देखकर ही तुम समझ जाओगे कि अगर चांद-तारों पर भी जाना पड़े तो मैं जाने को राजी हूं। पत्नी से छुटकारा! मर भी जाऊं तो मैं मुस्कराता हुआ मरूंगा कि चलो छूटा पिंड!
और इसका जिम्मा किस पर है?
इसका जिम्मा पुरुषों पर ही है। पुरुष स्त्रियों को दबा रहा है, स्त्रियां पुरुष को दबा रही हैं। बच्चे मां-बाप को दबा रहे हैं, मां-बाप बच्चों को दबा रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चे भी तुम्हारी नसें पकड़ना जान जाते हैं। कब दबाना? छोटे-छोटे बच्चे राजनीतिज्ञ हो जाते हैं। ऐसे चुपचाप रहेंगे, घर में मेहमान आ जाएंगे तो एकदम उछल-कूद मचाने लगेंगे, शोरगुल मचाने लगेंगे, क्योंकि वे जानते हैं यह मौका है, अभी डरवा देंगे तुमको, अभी तुम मार-पीट नहीं कर सकते बच्चों की--नहीं तो पड़ोसी क्या कहेंगे, मेहमान क्या कहेंगे! अभी तुम पांच रूपए का नोट पकड़ाओगे कि बेटा जा, सिनेमा देख आ! भाड़ में जा, कहीं भी जा, मगर यहां से हट! इसको तुम पांच पैसे देने को राजी नहीं थे, इसको तुम पांच रूपए का नोट पकड़ा रहे हो कि यह जितनी देर घर के बाहर रहे उतना अच्छा है। क्योंकि जब तक मेहमान टल जाएं। बच्चे को टाल रहे हो, फिर मेहमानों को टालने में लगोगे। क्योंकि मेहमानों से भी कोई प्रेम थोड़े ही है, सब शिष्टाचार निभाया जा रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन का मित्र चंदूलाल बहुत दिन आकर मुल्ला के घर रह गया। जाए ही नहीं! मुल्ला ने बहुत उपाय किए; भई, तेरी पत्नी राह देखती होगी, तेरे बच्चे दुखी होते होंगे। लेकिन चंदूलाल कहे कि मैं तो निर्मोही व्यक्ति हूं। मोह इत्यादि से तो मैं पार जा चुका हूं। अरे, कौन बच्चा, कौन

पत्नी! ऊंची ज्ञान की बातें करें! कोई रास्ता न देख कर मुल्ला ने झूठा तार दिलवाया पत्नी की तरफ से कि शीघ्र घर आओ, बच्चा सख्त बीमार है, बिल्कुल मरणासन्न है, तो मजबूरी में चंदूलाल को जाना पड़ा। जब सुबह कार में डरइवर उसे छोड़ने स्टेशन जा रहा था तो चंदूलाल ने डरइवर से कहा कि जरा तेजी से ले चल, कहीं टेन चूक न जाए। डरइवर ने कहा, आप बिल्कुल बेफिकर रहो, क्योंकि चलते वक्त नसरुद्दीन ने मुझसे कहा है कि अगर ट्रेन चूकी, बच्चू, तो नौकरी खतम! आप बिल्कुल बेफिक्र रहो, हमें भी अपनी जान बचानी है, टेन पकड़ा कर रहेंगे। अगर इस स्टेशन पर नहीं तो अगली स्टेशन पर मगर टेन को पकड़ा कर रहेंगे!
इस जीवन के थोथे नाते-रिश्तों को, जिनके भीतर क्या-क्या छिपा हुआ है, प्रेम कहते हो! प्रेम शब्द को अपमानित करते हो। मत खींचो प्रेम जैसे पवित्र शब्द को कीचड़ में। संतों ने उसे मुक्त किया है कीचड़ से।
लागलि नेह हमारी पिया मोर।।
उस प्यारे से प्रेम लगाओ। गुलाल कहते हैं, उस प्यारे से ही प्रेम लग गया हमारा जो हमारा ही है। और उससे ही प्रेम लग सकता है; क्योंकि न उसे कुछ लेना है, न कुछ देना है। उससे न तो कोई शरीर का संबंध है, न मन का कोई संबंध है। उससे तो संबंध बनाना हो तो शरीर और मन दोनों के पार होना जरूरी है। उससे तो सिर्प आत्मिक नाता होता है। वह शुद्धतम उड़ान है। ऊंची से ऊंची उड़ान है आकाश की। उस उड़ान ने ही हमें बुद्ध दिए, महावीर दिए, कृष्ण दिए, क्राइस्ट दिए। उस उड़ान ने ही इस पृथ्वी को इसका सौभाग्य दिया है। यह पृथ्वी कभी-कभी दुल्हन बनी है। जब कोई बुद्ध इस पृथ्वी पर चला, तो यह पृथ्वी भी दुल्हन बनी है। हमारे कारण तो यह पृथ्वी विधवा है। यह बुद्धों के कारण कभी-कभी सजी है। कभी-कभी इस पर भी अलौकिक का अवतरण हुआ है!
चुनि चुनि कलियां सेज बिछावौं, करौं मैं मंगलाचार।
वे कहते हैं कि कलियों को चुन-चुन कर मैं उस परम प्यारे के लिए सेज तैयार करता हूं। कौन सी कलियां? ये सब प्रतीक हैं। हमारे पास कलियां ही हैं अभी, फूल तो नहीं। फूल तो उसके आगमन पर होंगे--हमारी कलियां उसके आगमन पर खिलेंगी, उसके स्वागत में खिलेंगी, उसके मिलन में खिलेंगी; उसके आलिंगन में हमारी कलियां फूल बनेंगी; तब तक तो कलियां ही हैं। ठीक कहते हैं वे। यह नहीं कहा कि फूलों से सेज सजाता हूं।
जब तुम इन संतों के वचनों को समझने चलो, तो छोटी-छोटी बारीकियों पर ध्यान देना।
चुनि-चुनि कलियां सेज बिछावौं, ...
अभी तो मेरे पास सिर्प कलियां हैं। उन्हीं को चुन-चुन कर सेज बना रहा हूं। तुम आओ तो सब फूल खिल जाएंगे; तुम आओ तो फूल ही फूल खिल जाएंगे; तुम आए कि बहार आई; तुम आए कि वसंत आया; तुम आए कि मधुमास! और तब मंगलाचार होगा। तब मेरे हृदय में मंगलगीत उठेंगे। तब मेरे प्राण मंगलघट बनेंगे।
जिस जिंदगी में तुम जी रहे हो, वहां तो इन अनुभवों से कोई तालमेल बैठता नहीं।
दुनिया के इस मोह-जलधि में--
किसके लिए उठूं-उभरूं अब?

बिखर गई धीरज की पूंजी,
सुख-सपने नीलाम हो गए,
शीशा बिका, किंतु रत्न के-- मनसूबे नाकाम हो गए;
ऊपर की इस चमक-दमक में,
किसके लिए दहूं-निखरूं अब? हाट-बाट की भीड़ छंट गई,
मिला न मेरा कोई गाहक,
मैं अनचाहा खड़ा रह गया,
व्यर्थ गई सब मेहनत नाहक; बीत गई सज-धज की वेला,

किसके लिए बनूं-संवरूं अब? प्रात गया दोपहरी के संग,
आगे दिखती रीती संध्या,
कातर प्रेत खड़े आंसू के,
ज्योति हो गई जैसे वंध्या;
चला-चली की इस वेला में,
किसके लिए रहूं-ठहरूं अब?
तुम्हारा जीवन तो एक रिक्तता है। और हमेशा चला-चली की बेला है। न यहां कुछ रुकने को है, न कुछ ठहरने को है। कंकड़-पत्थर इकट्ठे कर लिए हैं।
गुलाल कहते हैंः हीरा जनम गंवायो। जो जीवन हीरा बन सकता था, वह तो गंवा दिया; और क्या खरीद लाए हो? मौत पूछेगीः क्या खरीद लाए बाजार से? जिंदगी की हाट में गए थे, जिंदगी के मेले में गए थे, क्या खरीद लाए? मौत के सामने सिर झुका कर खड़ा होना होगा। बड़ी लज्जा आएगी। कुछ जवाब देते न बनेगा। खरीद आने की बात ही कहां, जो साथ लेकर आए थे जन्म से, वह भी लुटा आए। वह भी बाजार में लुट गया। वहां लुटेरे खूब बैठे हैं। वहां तरह-तरह के लुटेरे हैं। हीरा तो दे आए हैं, कंकड़-पत्थर ले आए हैं, यह हमारे जिंदगी का सौदा है। तो शायद अगर यही अनुभव हो तो संतों की वाणी समझ में न आएगी। लेकिन इस अनुभव को भी अगर तुम साक्षी-भाव से देखोः क्या कमाया है... घबड़ाना मत; ऐसे प्रश्न हम पूछते नहीं अपने से; क्योंकि इन प्रश्नों से ही मन में पीड़ा होती है, डर लगता है।
मुल्ला नसरुद्दीन एक टेन में सफर कर रहा था। टिकट चेकर आया। टिकट न मिले! सब बक्से खोल डाले, बिस्तर खोल डाला, सब चीजें नीचे-ऊपर कर दीं, पाजामा के खीसे में देखे, कोट के खीसे में देखे, कमीज के खीसे में देखे-- टिकट चेकर भी बेचारा दया खा गया! उसने कहा कि जरूर तुम पर टिकट होगी। इतनी मेहनत कर रहे हो, होगी टिकट, मैं मानता हूं। अब ज्यादा मेहनत न करो। सारा डिब्बा तुमने चीजों से भर दिया! सम्हालो अपनी चीजें!
मुल्ला ने कहाः टिकट खोजने के लिए कौन मेहनत कर रहा है! मुझे यह भी तो पता लगाना है कि मैं जा कहां रहा हूं? टिकट जाए भाड़ में, बड़ा सवाल यह है कि मैं जा कहां रहा हूं?
पास ही बैठा एक यात्री भी यह सब देख रहा था। उसने कहा कि और सब तो मैं देख रहा हूं, लेकिन कोट का एक खीसा, ऊपर का खीसा, उसमें तुमने नहीं देखा। मुल्ला ने कहाः उसकी बात ही मत छेड़ो! उसमें देखूंगा भी नहीं। चाहे कुछ
हो जाए! जान रहे कि जाए, उस खीसे में नहीं देखूंगा।
टिकट चेकर भी बोला कि यह हैरानी की बात है। जब तुमने सब उधेड़बुन कर डाली; तुमने अपने बक्से नहीं, औरों के बक्से तक खोल दिए; खुद का बिस्तर खोला, दूसरे के बिस्तर खोल दिए--और इस खीसे में क्यों नहीं देखोगे? नसरुद्दीन ने कहा कि बस उसी में आशा अटकी है कि शायद वहां हो। वहां नहीं देख सकता। वहां देखा तो वह आशा भी गई। अभी एक आशा है कि अगर नहीं मिली, तो इस खीसे में होगी। इसमें हाथ नहीं डाल सकता।
तुम जिंदगी में कुछ सवालों को टाल कर रखते हो। वहां तुम हाथ भी नहीं डालते। डरते हो कि कहीं वहां भी खालीपन न निकले। कहीं ऐसा न हो कि टिकट वहां भी न मिले। यही भरोसा भी काफी है कि शायद वहां होगी। एकाध जगह तो छोड़ रखो; भरोसा कायम रहे।
जीवन के तुम असली सवाल नहीं उठाते। असली सवालों से बचने के लिए तुम न मालूम कितने व्यर्थ सवाल उठाते रहते हो। किसने सृष्टि बनाई? जैसे तुम्हें इससे कुछ लेना-देना है। अब किसी ने भी बनाई हो, अब जो भूल हो गई हो गई, अब तुम क्षमा भी करो! मगर किसने सष्टि बनाई? जैसे तुम्हारे लिए यह कोई सार्थक प्रश्न है! जैसे तुम्हें पता चल जाएगा तो फिर तुम कुछ करोगे! कोई मुकदमा चलाओगे या क्या करोगे? स्वर्ग है या नहीं, नरक है या नहीं? यहां जमीन पर हो अभी, जमीन की पूछो कुछ, इतने दूर न जाओ। मगर इतने दूर जाने का कारण है; पास न आना पड़े। दूर-दूर भटकते हो और भ्रांति रखते हो कि बड़ी तात्विक चर्चा कर रहे हो। यह तात्विक चर्चा नहीं है, यह थोथी चर्चा है।

धर्मशास्त्रों के नाम से जो चर्चा चलती है, एकदम थोथी है। तात्विक चर्चा का तो अर्थ होता हैः वास्तविक, यथार्थ; जिससे तुम्हारे जीवन में कोई रूपांतरण हो, जो तुम्हारे जीवन की असलियत से संबंधित हो।
चुनि चुनि कलियां सेज बिछावौं, करौं मैं मंगलाचार।
वे कहते हैं, अभी तो मेरे पास कलियां हैं। प्रेम नहीं है, प्रेम का फूल नहीं है, बस प्रेम की संभावना मात्र है, उसी को बिछा रहा हूं। प्रार्थना नहीं है, सिर्प प्रार्थना का अधकच्चा रूप है। उसी को बिछा रहा हूं। अभी पूजा जानता कहां! अभी अर्चना पहचानी कहां! सब कलियां हैं, खिलेंगी तो सुगंध उड़ेगी, अभी तो सुगंध का भी कुछ पता नहीं, अभी तो कलियां बंद हैं। और कलियां खिलें तो कैसे खिलें, सूरज ही नहीं आया। अतिथि ही नहीं आया तो अभी कलियां खिलें कैसे? तो प्रतीक्षा कर रहा हूं, पुकार कर रहा हूं।
जागरण की ज्योति भर दो, नींद के संसार में तुम।
जब कि जीवन-रेख सी यह
सांस ही मुझ में खिंची हो
और मेरे हृदय के प्रिय विरह
से करुणा सिंची हो।
अश्रु बन कर ही मिलो प्रिय,
प्रेम के अभिसार में तुम।
जागरण की ज्योति भर दो, नींद के संसार में तुम।
ज्ञात होता है कि यह दुख
दृग-रहित है, पथ न पाते।
भूल कर ये हाय, मेरे पास
ही फिर लौट आते।
दृष्टि उनको या कि साहस
दो मुझे उपहार में तुम
जागरण की ज्योति भर दो, नींद के संसार में तुम। ये बधिर दिन-मास जैसे
एक गति-क्रम जानते हैं।
नव उषा में राग, निशि में
एक ही तम जानते हैं।
राग में हो लीन, गूंजो
बीन की झनकार में तुम।
जागरण की ज्योति भर दो, नींद के संसार में तुम।
अभी तो मैं सोया हूं, तुम चाहो तो जागरण की ज्योति भर सकते हो। अभी तो मैं खोया हूं, तुम चाहो तो हाथ पकड़ कर राह पर ला सकते हो। भक्ति का यह मूल सूत्र है। परमात्मा की मर्जी पर अपने को छोड़ देना। जो कराए, करना; जहां चलाए, चलना। भक्ति संकल्प नहीं है, समर्पण है। अपनी तरफ से मैं बाधा नहीं दूंगा, बस इतनी तैयारी भक्त को दिखानी पड़ती है।
"चुनि चुनि कलियां सेज बिछावौं", ... अपनी तरफ से सेज बिछा दी है, अब तुम
जब आओ! मंगलाचार की तैयारी कर ली है, अब जब तुम आओ! द्वार खुले छोड़ दिए हैं, ऊगे तुम्हारा सूरज, चले तुम्हारी हवा, तो मेरी तरफ से कोई बांधा नहीं है। एकौ घरी पिया नहीं अइलै, ...
लेकिन बहुत पीड़ा सालती है--द्वार खुला रखा है, सेज बिछा रखी है, कान अटके हैं पथ पर कि पगध्वनि सुनाई पड़े, मगर कहीं कुछ चूक हो रही है।
एकौ घरी पिया नहीं अइलै, होइला मोहिं धिरकार।।
एक भी घड़ी के लिए, एक क्षण के लिए भी प्यारे का आगमन नहीं हो रहा है। पगध्वनि भी सुनाई नहीं पड़ती। मगर बड़ी प्रीतिकर बात गुलाल ने कही है। इससे उस प्यारे से शिकायत नहीं की है कि क्या तुम मुझसे नाराज हो? क्या तुम इतने कठोर हो? क्या तुम्हारे पास पाषाण-हृदय है? क्या तुम्हें मेरी पुकार नहीं सुनाई पड़ती? क्या बहरे हो? कोई शिकायत नहीं की। उल्टी बातः "होइला मोहिं धिरकार"। मैं अपने को ही धिक्कार दे रहा हूं कि जरूर मुझसे कहीं कोई कमी है; जरूर कहीं कोई चूक हो रही है। सेज शायद बनी नहीं उसके योग्य; शायद

मंगलाचरण उसके योग्य सजा नहीं; शायद वंदनवार जैसे होने थे वैसे नहीं हैं; मैं अपात्र हूं।
इस भेद को ख्याल में कर लेना।
साधारणतः अगर तुम्हारे मन में शिकायत उठे तो समझ लेना यह भक्ति नहीं है। अगर तुम्हारे मन में यह ख्याल उठे कि मैं कितनी प्रार्थना कर रहा, कितनी पूजा कर रहा, कितना पुकार रहा, सुनते क्यों नहीं? कितना पुण्य कर रहा, कितना दान कर रहा, मंदिर बनाए, मस्जिद बनाए, सुनते क्यों नहीं? हो तुम या नहीं हो तुम? अगर तुम्हारे मन में इस तरह की शिकायत उठे, तो समझना कि यह भक्ति नहीं है। और शिकायत अहंकार से आती है। और जहां अहंकार है, वहां तो परमात्मा के आने का कोई उपाय नहीं है। शिकायत नहीं, शिकायत से उल्टी बातः जरूर मेरी ही कोई कमी है। दोष देना तो अपने को; दोषी ठहराना तो अपने को। आठौ जाम रैनदिन जोहौं, ...
आठों याम, दिन-रात रास्ता देखता हूं।
... नेक न हृदय बिसार।
एक क्षण को भी तुम्हें भूलता नहीं। पुकारता हूं, राह देखता हूं, अपने
को धिक्कारता हूं कि रह गई कोई कमी, कि अभी और कुछ पूरा होना चाहिए। फिर-फिर सेज को सजाता हूं, फिर-फिर दौड़ा द्वार पर जाता हूं। अगर ऐसा हो तो वह परम घड़ी एक दिन आनी निश्चित है। जिस दिन भी तुम्हारी पात्रता पूरी होती है, परमात्मा उसी क्षण उपस्थित हो जाता है। एक क्षण की भी देर नहीं होती। तुमने कहावत सुनी है कि देर है अंधेर नहीं। वह कहावत गलत है। न देर है,
न अंधेर है। क्योंकि अगर देर है तो अंधेर तो हो ही गया। देर का मतलब यह है कि तुम पात्र थे और वह नहीं आया। अंधेर और किसको कहते हैं? किसी अंधे ने यह कहावत बनाई होगी कि देर है अंधेर नहीं। तो अंधेर किसको कहते हैं और फिर! पात्र को आया नहीं और अपात्र को आ गया, यही तो अंधेर है।
नहीं, न देर है न अंधेर है। जैसे ही तुम पात्र हुए, तत्क्षण, युगपत उसका आगमन हो जाता है। आगमन कहना भी कहने की ही बात है, वह तो आया ही हुआ है। तुम पात्र हुए कि दिखाई पड़ जाता है, पहचान हो जाती है, बस, वह तो तुम्हारे भीतर बैठा ही हुआ है--सदा-सदा से। तुम पात्र हुए कि आंख खुल जाती है।
तिन लोक कै साहब अपने, फरलहिं मोर लिलार।।
गुलाल कहते हैंः और मैं ऐसे ही अपने को धिक्कार करता रहा और एक दिन वह चमत्कार की घड़ी आ गई, वह धन्यभाग की घड़ी आ गई। "तीन लोक कै साहब अपने", वह जो तीनों लोकों का मालिक है, वह आ गया।
तीन लोक कै साहब अपने, फरलहिं मोर लिलार।।
मेरे भाग्य का उदय हुआ, फल लगे!
सत्तसरूप सदा ही निरखौं, ...
अब तो उसका ही रूप सदा दिखाई पड़ रहा है। जहां देखता हूं, वही दिखाई पड़ता है। जो देखता हूं, वही दिखाई पड़ता है।
... संतन प्रान-अधार।
और अब मैं जानता हूं, क्योंकि अब मेरी पहचान उससे हो गई है, कि जहां- जहां संत हैं, वहां-वहां वह घना होकर प्रकट हो रहा है। संतों के प्राणों का वही आधार है। जैसे कि सूरज की किरणें प्रिज्म से गुजर कर सात रंगों में बिखर जाती हैं, इंद्रधनुष बन जाता है, ऐसे ही परमात्मा संतों से गुजर कर सात रंगों में, सात रागों में, सरगम में प्रकट होता है। संत उसकी अभिव्यक्ति हैं। संत उसकी बांसुरी हैं। संत उसके गीत हैं। संत उसका मुंह हैं, उसकी जबान हैं। वह संतों से बोलता है। उसके पास अपने और कोई हाथ नहीं, संतों के हाथ उसके हाथ हैं। और उसके पास अपनी कोई आंखें नहीं, संतों की आंखें उसकी अपनी आंखें हैं।
सत्तसरूप सदा ही निरखौं, संतन प्रान-अधार।
अब तो सब जगह वही दिखाई पड़ता है, लेकिन संतों के भीतर खूब घना होकर दिखाई पड़ता है। उनके प्राणों का प्राण होकर दिखाई पड़ता है। जैसे और जगह तो दीया दीया जला है, लेकिन संतों के जीवन में दीपावली है। दीये ही दीये जले हैं, पंक्तिबद्ध दीये जले हैं।

कहै गुलाल पावौं भरिपूरन, मौजै मौज हमार।।
गुलाल कहते हैंः और हमने तो खूब भरपूर पाया। सब तरफ पाया, बाढ़ की तरह पाया। "कहै गुलाल पावौं भरिपूरन", ... खूब पाया, इतना पाया जितना कभी सोचा भी नहीं था कि पाएंगे। कभी मांगा भी नहीं था, इतना मिला, बिन मांगे मिला।
हमारी झोली छोटी पड़ गई, हमारे हृदय का पात्र छोटा पड़ गया, वह ऊपर से बहा जा रहा है।... "मौजै मौज हमार।" अब तो हमारे जीवन में आनंद ही आनंद है, मस्ती ही मस्ती है, मौज ही मौज है।
आज मेरी प्रार्थना रिमझिम बनी बरसात की।
प्रिय-मिलन के अधखुले स्वर
बूंद बन कर झर रहे हैं,
जल भरे इन बादलों को
देख दृग क्यों भर रहे हैं?
सिसकती-सी भावनाओं में बसी है चातकी।
आज मेरी प्रार्थना रिमझिम बनी बरसात की।

बादलों की श्याम रेखा
भाग्य-रेखा बन न जाए,
फूल तक इन कंटकों में
आ गए, पर तुम न आए,
जो प्रतीक्षा प्रात की थी बन गई वह रात की। आज मेरी प्रार्थना रिमझिम बनी बरसात की।

इस दिशा से उस दिशा तक
इंद्रधनुषी प्रिय संदेसे,

वायु-लहरों बीच मैंने
कुछ कहे या कुछ कहे से,
सांस से ही जान लेना जो कि मैंने बात की।
आज मेरी प्रार्थना रिमझिम बनी बरसात की।
पहले तो भक्त रोता है--आंखों से बरसात लग जाती--विरह में, और फिर भक्त रोता है अलमस्ती में, आनंद में। भक्त के जीवन में दो बार आंसुओं के क्षण आते हैं। एक तो विरह के क्षण में, जब वह पुकारता है, तो उसकी आंखें बरसात हो जाती हैं, और एक आनंद के क्षण में, जब वह पा लेता है। उनके दोनों आंसू भिन्न-भिन्न हैं। पहले आंसू में पीड़ा है, पुकार है, दूसरे आंसू में धन्यवाद है, अनुग्रह है।
... पिय संग जुरलि सनेह सुभागी।
गुलाल कहते हैंः सुहाग रच गया। सौभाग्य रच गया। मेरी मांग भर गई। मैं दुलहन बनी। मेरी सगाई हो गई।
पिय संग जुरलि सनेह सुभागी।
जुड़ गई पिया के संग!
पुरुब प्रीति सतगुरु किरपा किय, रटत नाम बैरागी।।
यह कैसे हुआ। तो कहते हैं। तीन बातों से हुआ। "पुरुब प्रीति;" सबसे पहले तो सतगुरु से प्रेम लगाया। "पुरुब प्रीति सतगुरु"; पहले तो सत्संग में जुड़ा, जहां मस्त इकट्ठे होते थे, जहां हरिनाम की चर्चा होती थी, जहां प्रभु-प्रेम की वर्षा होती थी। समझ में आती भी थी, नहीं भी आती थी। कुछ-कुछ डूबता भी था, नहीं भी डूबता था। कुछ बूंदाबांदी अपने पर भी हो जाती थी। तुमने कभी ख्याल किया--अभी वैज्ञानिकों ने इस पर कुछ खोज की है--अगर शराबियों के एक झुंड में तुम बैठ जाओ, तो बिना पीए नशा चढ़ने लगता है। अब तो इसके वैज्ञानिक आधार हैं। दस शराबी हों और तुम उनके बीच बैठो, तो तुम भी मस्ती में आने लगोगे। उड़ी-उड़ी बातें करने लगोगे। दस शराबी एक वातावरण पैदा करते हैं, एक तरंग पैदा करते हैं। उस तरंग में तुम डूब जाओगे। यह तो तुम्हारे जीवन का अनुभव है कि अगर पांच-सात दुखी आदमी बैठे हों और तुम भी उनके पास जाकर बैठ जाओ, हंसते आए थे, हंसी एकदम खो जाती है। उनका दुख

तुम्हें छू लेता है, पकड़ लेता है। तुम दुखी थे और दो-चार मस्त आदमियों से मिलना हो गया, जहां हंसी के फव्वारे छूट रहे थे, तुम भूल ही गए अपना दुख, तुम भी हंसने लगे। बाद में शायद थोड़ा सा अपराध भी अनुभव करोगे कि यह क्या हुआ! मैं तो दुख में था, हंसना था भी नहीं और हंसने लगा। उन चार आदमियों की हंसी ने तुमको भी आंदोलित कर दिया। हम सब जुड़े हैं। हम सब एक-दूसरे से तरंगित होते हैं।
सत्संग का अर्थ हैः जहां लोग परमात्मा की मस्ती में डूबे हैं; जहां कोई परमात्मा की मस्ती में पूरा डूब गया है और उसके आस-पास डूबने के लिए तैयार लोग इकट्ठे हो गए हैं। वहां अगर तुम बैठो, उठो, तो ज्यादा देर बचोगे नहीं, रंग छूने लगेगा। जैसे कोई बगीचे से गुजर जाए तो भी कपड़ों मे फूलों की गंध आ जाती है, वैसे ही।
गुलाल कहते हैंः पहले तो सतगुरु से प्रेम हुआ। पहले तो सत्संग हुआ। फिर दूसरी घटना कि सतगुरु ने कृपा की। जब भक्त प्रेम करता है, तो स्वभावतः सतगुरु से कृपा उस तक पहुंचती है। सतगुरु तो कृपा कर ही रहा है। अन्यथा कोई उपाय नहीं है। जो उसे मिला है, वह उससे बहता है। तुम जरा अपने पात्र को उसके पास कर लेते हो, तुम्हारा पात्र भी भर जाता है। जैसे नदी बही जा रही हो, तुम झुक गए, तुमने अंजुली बना ली हाथ की, तो तुम्हारे अंजुली में पानी भर गया। अब तुम चाहो तो अपनी प्यास बुझा लो। हां, नदी छलांग मार कर तुम्हारे कंठ में नहीं जाएगी, अंजुली तुम्हें बनानी पड़ेगी। सतगुरु से प्रेम का अर्थ हैः तुम ने अंजुली बना ली और तुम झुके। फिर नदी तुम्हारी अंजुली में भर जाएगी। फिर तुम्हारे कंठ तक भी तुम उस जल को ले जा सकते हो। दूसरी घटना घटीः सतगुरु ने कृपा की।
और तीसरी घटना घटीः "रटत नाम बैरागी।"
सतगुरु से प्रेम शिष्य की तरफ से है, गुरु की कृपा सतगुरु की तरफ से है, और जहां इन दोनों का मिलना होता है, वहीं नाम का जन्म होता है, प्रभु- स्मरण पैदा होता है। और उसी प्रभु-स्मरण से विराग हुआ। व्यर्थ की बातों से विराग हुआ। सार्थक से राग हुआ। सत्य से राग हुआ, असत्य से विराग हुआ। सार से राग हुआ, असार से विराग हुआ।
और अब ऐसा हुआ है--
आठ पहर चित लगै रहतु है, ...
अब तो आठों पहर चित में लगे हैं। पहले ऐसे मुश्किल थीः चित चकमक लागत नहीं। लगाते-लगाते भी चकमक लगती नहीं थी, चूक-चूक जाते थे; अब अपने-आप ही लगा हुआ है, सहज हो गया है।
आठ पहर चित लगै रहतु है, दिहल दान तन त्यागी।
और अब तो जो भी अपने पास था, सब दे दिया। अब कुछ बचाया नहीं। कुछ भी जिसने बचाया, वह चूक जाएगा। परमात्मा को बेशर्त दान देना होता है। शर्त रखी अगर तो तुमने चूकने का उपाय पहले ही कर लिया। उसके साथ शर्तबंदी नहीं हो सकती। उसके साथ सौदा नहीं हो सकता। प्रेम में सौदा कहां? देना है, पूरा देना है। गुलाल कहते हैंः सब दे दिया और सब पा लिया। दिया, वह तो कुछ भी नहीं था, पाया, वह सब कुछ है। दिया क्या? तन दिया, जो कि मौत ले ही जाती। धन दिया, जिसका कोई भरोसा ही नहीं था; कभी भी छिन जाता; चोर लूट लेते, डाकू लूट लेते, सरकार बदल जाती, नोट बदल जाते, बैंक का दीवाला निकल जाता--कुछ भी हो सकता था! जिसका कोई भरोसा ही नहीं था, यह सब दे दिया। और जो पाया, वह शाश्वत है। उसे अब कोई छीन नहीं सकता। शस्त्र उसे छेद नहीं सकते, आग उसे जला नहीं सकती, मौत उसे नष्ट नहीं कर सकती। अमृत पाया है। दिया तो कुछ भी नहीं और पाया सब कुछ।
पुलकि पुलकि प्रभु सों भयो मेला, ...
और यह जब हुआ कि सब दिया, बेशर्त दिया, तो पुलकि पुलकि प्रभु सों भयो मेला। तब तो नाच-नाच कर, फुदक-फुदक कर प्रभु से मिलन हुआ है। अब तो नाचे बिना नहीं चलता। मीरा कहती हैः पद घुंघरू बांध मीरा नाची रे।
पुलकि पुलकि प्रभु सों भयो मेला, प्रेम जगो हिए भागी।।

और अब जाना कि प्रेम क्या है। अब हिए में प्रेम का जागरण हुआ है। अब कलियां फूली बनीं, सुगंध उड़ी। अब तक तो प्रेम शब्द सुना ही सुना था, भाषाकोश में था, जीवन में नहीं था; अब जाना; प्रेम जगो हिए भागी।
गगन मंडल में रास रचो है, ...
और अब तो अंतर-आकाश में रास रचा है। परमात्मा नाच रहा है, उसके साथ हम नाच रहे हैं। जैसे परमात्मा कृष्ण होकर बांसुरी बजा रहा है और हम गोपी होकर नाच रहे हैं।
गगन मंडल में रास रचो है, सेत सिंहासन राजी।
शुद्ध निर्विकल्प समाधि की अवस्था आ गई। वह आखिरी पड़ाव है। उसके ऊपर कुछ भी नहीं। जहां सहस्त्रदल कमल खुल जाता है; जहां तुम्हारी जीवन चेतना अपनी परिपूर्णता को उपलब्ध होती है; सेत सिंहासन राजी; वही सिंहासन है, उसको ही पाने के लिए हम अनंत-अनंत जन्मों से यात्रा कर रहे हैं। और छोटे- मोटे सिंहासनों में उलझ जाते हैं। खोज हमारी असली सिंहासन की है। इसीलिए शायद छोटे-छोटे सिंहासन में उलझ जाते हैं। लगता है कि शायद आ गया सिंहासन। खोज हमारी असली धन की है। इसीलिए छोटे-मोटे धन में उलझ जाते हैं। खोज हमारी परमपद की है। इसीलिए छोटे-मोटे पद में उलझ जाते हैं। ये उलझाव भी एक ही खबर देते हैं कि हमारी दिशा गलत है अन्यथा हमारी खोज तो सही है। हम पद ही खोज रहे हैं, जो छीना न जा सके; हम धन ही खोज रहे हैं, जो नष्ट न हो; और हम ऐसा सिंहासन चाहते हैं जिससे फिर उतरना न पड़े।
यहां के सिंहासन तो तुम देखते ही हो! जब तक बैठे नहीं तब तक दुख, बैठ गए, महा दुख। क्योंकि जैसे ही तुम बैठे कि लोग खींचातानी शुरू करते हैं। कोई बैठने थोड़े ही देता है! क्योंकि दूसरों को भी वहीं बैठना है। बच्चे ही बच्चे थोड़े ही हैं, बूढ़े भी बच्चे हैं। अगर बच्चा एक कुर्सी पर बैठा है तो सब बच्चों को उसी कुर्सी पर बैठना है।
मुल्ला नसरुद्दीन घर की तरफ चला आ रहा था और दोनों बच्चे बड़ा शोरगुल मचा रहे थे--उसका हाथ खींच रहे, उसका कोट खींच रहे। किसी ने पूछा कि नसरुद्दीन, मामला क्या है? नसरुद्दीन ने कहाः वही मामला है जो सारी दुनिया में है। मेरे पास तीन केले हैं और दो बेटे हैं और प्रत्येक दो केले चाहता है। कोई डेढ़ लेने को राजी नहीं। जो दुनिया की समस्या है, वही मेरी समस्या है। और तीन मैंने इस आशा में लिए थे कि एक मैं ले लूंगा, एक-एक ये लोग ले लेंगे। मेरा तो हिसाब ही नहीं है कोई। मेरी तो गिनती ही नहीं कर रहे वे लोग। उन्हें तो दो-दो चाहिए। अब यह कैसे समस्या हल हो?
एक राष्टपति का पद और सत्तर करोड़ लोगों का देश--और सबको राष्टपति होना है। राष्टपति होना सबका जन्मसिद्ध अधिकार है! अब बड़ी मुसीबत हो गई। तो जब तक नहीं पहुंचे तब तक दुख है और जब पहुंच गए, तब महादुःख। क्योंकि फिर ऐसी खींचातानी मचेगी! कोई टांग खींच रहा है, कोई सिर खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है--जिसको जो हाथ में मिल जाएगा वही ले भागेगा। तुम्हारे अस्थि-पंजर ढीले हो जाएंगे। और फिर देर नहीं लगेगी कि चारों खाने चित पड़े हो।
न हो तो तुम मोरारजी देसाई से पूछो! चारों खाने चित पड़े हैं। कोई जीवनजल पिलाने वाला भी नहीं मिलता। कोई पूछता ही नहीं। अभी पूना आए थे, किसी को खबर ही नहीं हुई कि पूना आए। जो गुप्त पुलिस का एक बड़ा अफसर है, जिसको वे यहां भेजते रहते थे पता लगवाने के लिए क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा, वह यहां आते-आते रंग में रंग गया। वह संन्यास तक लेने की सोचने लगा। मैंने कहाः तू संन्यास-वंन्यास मत ले। तू यहां आता रह, इतना ही काफी है। तो वह उनको मिलने गया था। तो उससे उन्होंने पूछा--वही पहली बात, जो वे पहले भी पूछते थे--कि आश्रम में क्या चल रहा है? तो वह मुझे आकर कह रहा था कि मैंने कहा कि अब कोई ये प्रधानमंत्री थोड़े ही हैं कि इनसे डरूं। पहले तो इनके मन की बातें कह देता था। अब क्या डरना! अब तो दो कौड़ी के हैं, अब क्या घबड़ाना इनसे! तो मैंने कहा कि आश्रम क्या खूब फल-फूल रहा है। पहले तो बहुत चौंके और कहने लगे कि पहले तो तुम ऐसा नहीं कहते थे! तो कहा, पहले आप प्रधानमंत्री थे। जो आप सुनना चाहते थे, वह कहता था। अब सत्य कहे दे रहा हूं। और यह भी कहे दे रहा हूं कि मुझे भी संन्यास लेना है। अरे, अब क्या डरना! और देखना हो तो आ जाओ आश्रम में, मैं ले चलता हूं।

तो मुझसे आकर कहने लगा कि फिर उन्होंने मुझसे बात ही नहीं की, मुंह फेर लिया, इधर-उधर देखने लगे, दूसरों से बातें करने लगे। मैंने कहा, और कुछ जानना है आश्रम के संबंध में कि नहीं? कहा कि जा भाई, तू जा और कुछ नहीं जानना। पहले आधा-आधा घंटा बुला कर पता लगाते थे। एक-एक छोटी- छोटी बात का। और बेचारा कहता था कि मुझे बताना पड़ता था, जो झूठी बातें थीं वे कहनी पड़ती थीं, कि बड़ा खतरा हो रहा है, भारतीय संस्कृति को बड़ा नुकसान हो रहा है। और इस आदमी को तो देश से बिल्कुल बाहर ही कर देना चाहिए।
लेकिन अब चारों खाने चित पड़े है, अब कौन फिक्र करता है। किसी को लेना- देना नहीं है।
पद पर नहीं पहुंचे तब तक दुख है, पद पर पहुंच गए, तब दुख है, पद से उतरे
तो फिर और दुख। दुख ही दुख है। लेकिन खोज में सच्चाई है एक, अभिप्राय भीतर यही है कि ऐसा पद पा लें जिससे कभी गिरना न पड़े। ऐसा अडिग, अचल, ऐसा थिर कोई स्थान मिल जाए। उस थिर स्थान को ही हम समाधि कहते हैं। समाधि को ही हमने सिंहासन कहा है।
कह गुलाल घर में घर पायो, थकित भयो मन पाजी।।
गुलाल कहते हैंः बड़े आश्चर्य की बात यह है कि घर में ही घर पाया। कहां- कहां भटकते रहे इस पाजी मन की बातें मान कर! इस पाजी मन ने खुद भी थका और मुझको भी खूब थकाया। कहां-कहां दौड़या, कहां-कहां भरमाया! और जिसको हम तलाश रहे थे, वह मिला घर में।
कह गुलाल घर में घर पायो, थकित भयो मन पाजी।।
अब तो हमारा छुटकारा हो गया है इस पाजी मन से। अब हम कहीं और खोजने जाते नहीं--जाएं भी क्यों? अब उसे घर में पा लिया है, उसे अपने भीतर पा लिया है। वह तुम्हारे भीतर है जिसे तुम खोज रहे हो; वह खोजने वाले में ही छिपा है।
सोइ दिन लेखे जा दिन संत मिलाहिं।
बड़ी प्रीतिकर बात कही! कि उन दिनों की ही गिनती करना कि तुम जीए, जो दिन संतों के साथ बीत जाएं। जो घड़ियां संतों के साथ बीत जाएं, उनको ही गिनना जिंदगी--और बाकी तो सब व्यर्थ है, कचरा है।
ऐसी ही एक सुबह बुद्ध को मिलने उन दिनों का एक बड़ा सम्राट बिम्बिसार आया। जब बिम्बिसार बुद्ध के पास बैठा था, तभी एक वृद्ध भिक्षु भी बुद्ध के पास आया, चरणों में झुक कर उसने नमस्कार किया और बुद्ध से आज्ञा मांगी कि मैं पर्यटन को जा रहा हूं, कोई संदेश हो, मेरे लिए कोई सूचनाएं हों तो दे दे; शायद लौटते-लौटते छह महीने, आठ महीने लग जाएंगे। बुद्ध ने कहाः भिक्षु तेरी उम्र कितनी है? होगी उस भिक्षु की उम्र कोई सत्तर-पचहत्तर वर्ष; इससे कम तो जरा भी नहीं। लेकिन उस भिक्षु ने कहाः मेरी उम्र, आप जानते ही हैं, चार वर्ष। बिम्बिसार तो बहुत चौंका। उसने सुना कि चार वर्ष! बीच में बोलना तो चाहिए नहीं, क्योंकि बुद्ध और भिक्षु की बात हो रही है, मुझे क्या लेना- देना, कितने ही वर्ष का हो! मगर पचहत्तर साल का बूढ़ा अगर साठ भी कहता तो भी चल जाता कि चलो होगा भाई साठ का हो सकता है। लेकिन पचहत्तर वर्ष का बूढ़ा कहे चार वर्ष! न रहा गया बिम्बिसार से। सुसंस्कृत आदमी था, कहा, क्षमा करें, मुझे बीच में बोलना नहीं चाहिए, मुझे कुछ लेना-देना नहीं, चार का हो या चार सौ का, मुझे क्या करना, मगर यह चित में जिज्ञासा आ गई है और अगर मैं नहीं पूछूंगा तो यह मुझे सताएगी जिज्ञासा घर भी लौटकर; मैं करवटें बदलूंगा रात कि मामला क्या है? और बुद्ध ने भी चुपचाप सुन लिया और कुछ बोले नहीं। या तो मैंने गलत सुना है। क्या मैं पूछ सकता हूं फिर से कि इसकी उम्र कितनी है? उस वृद्ध ने कहा कि मेरी उम्र चार वर्ष है।
बुद्ध हंसने लगे और बुद्ध ने कहा कि तुम्हें पता नहीं कि हमारे भिक्षु किस तरह उम्र गिनते हैं। जबसे वह संन्यस्त हुआ है तब से उम्र गिनता है। उसके पहले की उम्र क्या गिननी! वह तो सपनों में गई, नींद में गई, उसकी क्या गिनती! इसलिए चौंको मत! जब से संन्यस्त हुआ, तब से गिनती।
गुलाल ठीक कहते हैं--
सोइ दिन लेखे जा दिन संत मिलाहिं।

जिस दिन सद्गुरु मिल जाए उस दिन से ही गिनती करना कि जन्म हुआ। वही असली जन्म है। उस दिन तुम द्विज बनते हो। उस दिन से तुम ब्राह्मण हुए। सभी जन्मते हैं शूद्र की भांति, ख्याल रखना, कोई चार वर्ण की तरह पैदा नहीं होते दुनिया में लोग, सब एक ही वर्ण की तरह पैदा होते हैंः शूद्र। और जब सदगुरु मिल जाता है तो तुम्हारा नया जन्म होता है। तब शूद्र मिट जाता है, तुम ब्राह्मण होते हो। ब्राह्मण वह, जो ब्रह्म की खोज पर चल पड़ा। जिसने ब्रह्म की तरफ मुंह मोड़ लिया। जिसने संसार की तरफ, संसार की व्यर्थ दौड़-धाप की तरफ पीठ कर ली।
संत के चरण कमल की महिमा, मोरे बूते बरनि न जाहिं।।
गुलाल कहते हैंः मैं सीधा-सादा गांव का आदमी हूं, मेरी सामर्थ्य नहीं
कि मैं संत के चरणों में जो घटता है उसकी महिमा का वर्णन कर सकूं। इतना ही कह सकता हूं--
जल तरंग जल ही तें उपजैं, फिर जल मांहि समाहिं।
संत के चरणों में जाकर ही यह मुझे अनुभव हुआ--
जल तरंग जल ही तें उपजैं, फिर जल मांहि समाहिं।
जैसे जल की लहर जल में उठती, फिर जल में ही लीन हो जाती है, ऐसे ही--हरि में साध साध में हरि हैं, ऐसे ही परमात्मा हरि में समाया हुआ है, हरि हरिभक्त में समाया हुआ है। साधु में परमात्मा समाया हुआ है, परमात्मा में साधु समाया हुआ है। जैसे जल में तरंग और तरंग में जल।
हरि में साध साध में हरि हैं, साध से अंतर नाहिं।।
परमात्मा और साधु में जरा भी अंतर नहीं। जिस दिन तुम्हें कोई ऐसा व्यत्ति मिल जाए, जिसमें तुम परमात्मा को देख सको, उस दिन समझना कि सत्संग शुरू हुआ; उस दिन समझना कि तुम्हारे जीवन में अब कुछ मूल्यवान घटा, कोई किरण उतरी, सुबह अब करीब है।
ब्रह्मा बिस्नु महेस साध संग, पाछे लागे जाहिं।
कहते हैं, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनकी कोई गिनती नहीं है सद्गुरु के मुकाबले। क्यों? क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी माया-मोह-संसार में उलझे हैं। तुमने ब्रह्मा, विष्णु, महेश की अगर पुराणों में कथाएं पढ़ी हैं तो तुम समझ लोगे कि तुमसे भी ज्यादा हालत खराब है। वह तो कोई शास्त्र पढ़ता नहीं, नहीं तो तुम बहुत चौंकोगे कि ये कैसे ब्रह्मा, कैसे विष्णु, कैसे महेश! इनमें भारी ईर्ष्या चलती, कलह चलती, झगड़ा-झांसा चलता, सब तरह की राजनीति चलती, सब तरह के उपद्रव, सब तरह की चालबाजियां और सब तरह के विकार। जिनको तुम देवता कहते हो, जरा उनकी कथाएं तो अपने पुराणों में उठा कर पढ़ो! तुम बड़े हैरान होओगे। इनको सज्जन कहना तक मुश्किल है। कोई देवता किसी ऋषि-मुनि की पत्नी पर ही मोहित हो गए! बिचारे ऋषि-मुनि सुबह-सुबह ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने गए, तभी वे ऋषि-मुनि का वेश बना कर पत्नी को धोखा दे गए। जब यह मैंने पढ़ा तभी मैंने इसे समझा कि क्यों ऋषि-मुनियों को बेचारों को ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने भिजवाते हैं। खूब तरकीब निकाली! नहीं तो देवतागण उनकी स्त्रियों के साथ खेल कैसे करें? नहीं तो ऋषि-मुनि बैठे हैं चौबीस घंटे माला लिए वहीं, हरिनाम जप रहे हैं। तो वे झंझट का कारण होंगे। तो उनको भिजवा दो स्नान करने; वे गए गंगा! तुम्हारे देवता तुम्हारी ही कल्पनाएं हैं। तुम्हारे ब्रह्मा-विष्णु-महेश भी तुम्हारी ही कल्पनाएं हैं। ऐसी-ऐसी बेहूदी कथाएं उनके साथ जुड़ी हैं कि सोचकर बड़ी हैरानी हो।
तुम देखते हो जगह-जगह शंकर की पिंडी रखी रहती है। वह जननेंद्रिय का प्रतीक है। स्त्री-पुरुष की जननेंद्रिय का प्रतीक है वह शंकर जी की जो पिंडी है, जिस पर तुम फूल चढ़ा आते हो। वह तो तुम ख्याल नहीं करते किस चीज पर फूल चढ़ा रहे हो, नहीं तो लाज-शरम से मर जाओ! चुल्लू भर पानी में डूब मरो! तो शंकरजी समझ कर चढ़ा आए, घर आ गए! हर शंकरजी के मंदिर पर लिखा होना चाहिए: केवल वयस्कों के लिए। छोटे-छोटे बच्चों तक को ले जाते हो!
वह पिंडी कैसे पैदा हुई, तुम्हें पता है? पुराण जो कथा कहते हैं, वह बड़ी हैरानी की है। कि ब्रह्मा और विष्णु किसी संबंध में विचार-मशविरे के लिए शंकर जी को मिलने गए। शंकर जी ने अपने बेटे गणेश जी को बाहर बिठा रखा

था पहरे पर। मगर गणेशजी सो गए होंगे। पहरेदार अक्सर सोते हैं। और फिर ऐसी भारी सूंड इत्यादि और तोंद, वे घर्राटे ले रहे होंगे। तो उनको बिना जगाए-- उनको क्यों कष्ट देना--ब्रह्मा और विष्णु अंदर प्रवेश कर गए। वहां शंकरजी पार्वती के साथ संभोग कर रहे थे। वे ऐसे संभोग में लीन थे उन्हें पता ही नहीं चला कि दो सज्जन आकर खड़े हैं। और सज्जन भी गजब के कि खड़े ही रहे! सज्जन कम से कम खांसते-खंखारते हैं, इन्होंने खांसा खखारा भी नहीं। ये कुछ थोड़ा इशारा देते कि भई, हम आ गए! बिना ही खांसे-खखारे खड़े रहे, छह घंटे तक। ग.जब के सज्जन रहे होंगे! और शंकर जी हैं कि वे अपने कार्य में संलग्न रहे। वे भी ग.जब के लीन थे! इतना गुस्सा आया ब्रह्मा-विष्णु को कि दोनों ने उनको श्राप दे दिया। यह अभिशाप दे दिया कि सदियों-सदियों तक तुम्हारा स्मरण जननेंद्रिय के रूप में किया जाएगा। उसकी वजह से वह पिंडी है शंकर जी की। तुम्हारे देवी-देवता पुराने ढंग के औपन्यासिक चरित्र समझो। पुराने ढंग के उपन्यास हैं तुम्हारे पुराण। सदगुरुओं से इनका क्या लेना-देना! सद्गुरुओं की महिमा हमने बहुत ऊपरी रखी है। जब बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध हुए, तो ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तीनों उनके चरणों में चरणस्पर्श करने आए। आना ही चाहिए। क्योंकि वे तो ठीक तुम्हारे ही जैसे लोग हैं। वही वासनाएं, वही कामनाएं, वही इच्छाएं। उनमें और तुममें बहुत अंतर नहीं है। तो ठीक कहते हैं गुलाल--
ब्रह्मा विष्णु महेस साध संग, पाछे लोगे जाहिं।
पीछे-पीछे फिरते हैं साधुओं के। क्योंकि साधु में तो स्वयं हरि समाया हुआ है।
दास गुलाल साध की संगति, नीच परमपद पाहिं।।
वह जो मैंने कहा कि सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं, वह साध की संगति में पड़ जाएं, तो उनके भीतर ब्राह्मण का जन्म हो जाता है।
और स्मरण रहे कि जब तक ब्राह्मण न हो जाओ, तब तक जाने रखना कि अभी असली जीवन शुरू नहीं हुआ। और यह भी ख्याल रखना कि ब्राह्मण के घर में पैदा होने से कोई ब्राह्मण नहीं होता। पैदा तो सभी शूद्र होते हैं। ब्राह्मण का जन्म तो साधु की संगति में होता है। वह तो सदगुरु से प्रेम उपजता है। सदगुरु के प्रति शिष्य का प्रेम और सदगुरु की कृपा, उन दोनों के बीच वह अभूतपूर्व घटना घटती है कि शूद्र ब्राह्मण हो जाता है; कि कली खिल जाती है, फूल बन जाती है; कि परम सिंहासन, जो फिर कभी छुड़ाए भी छुड़ाया नहीं जा सकता, वह उपलब्ध हो जाता है। फिर अमृत की वर्षा है--झरत दसहुं दिस मोती!

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
आठवां प्रवचन

गगन मंडल में रास रचो है

पहला प्रश्नः ओशो, क्या संसार में निराशा ही निराशा हाथ लगती है? क्या आशा रखना बिल्कुल ही व्यर्थ है?

आनंद तीर्थ! आशा के कारण ही निराशा हाथ लगती है, संसार के कारण नहीं। संसार को क्या पड़ी! संसार तो बिल्कुल तटस्थ है। सब खेल तुम्हीं रचा लेते हो। आशा बांधते हो, इससे निराशा हाथ लगती है। आशा का अर्थ हैः तुम चाहते हो भविष्य ऐसा हो। तुम्हारी वासना के अनुकूल, तुम्हारी तृष्णा के अनुकूल। और यह विराट अस्तित्व तुम्हारी क्षुद्र वासनाओं के अनुकूल नहीं चल सकता। और एकाध ही कोई होता तो भी ठीक था, करोड़-करोड़ जन हैं, उनकी अरबों-खरबों वासनाएं हैं, अगर उन सब की वासनाओं के अनुकूल विश्व चले, एक पग भी नहीं चल सकेगा। अभी बिखर जाएगा। अभी खंड-खंड हो जाएगा। यह फिर ब्रह्मांड नहीं रहेगा। इसके भीतर जो अभी संगीत है, जो तारतम्य है, इस जगत के भीतर अभी जो एक समायोजन है, हर चीज एक-दूसरे से तालबद्ध है, वह सब बिखर जाएगा। तुम्हारी व्यक्तिगत आकांक्षा के कारण अस्तित्व उसका अनुसरण नहीं कर सकता। पूर्ण अंश के पीछे नहीं चल सकता।
और हम क्या हैं? हम छोटे-से अंश हैं। जैसे सागर की एक छोटी-सी तरंग। तरंग चाहे कि सागर मेरे अनुकूल चले, यह कैसे होगा? और यही हम चाह रहे हैं। इसी असंभव का नाम तृष्णा है। हां, सागर के साथ तरंग चल सकती है, तो जीतेगी, फिर कोई निराशा नहीं है। लेकिन सागर के साथ जब तरंग चलेगी, तो पहले तो आशा छोड़ देनी होगी। फिर जहां ले जाए विराट, जो उसकी मर्जी! "जेहि विधि राखे राम"। फिर तुम्हारी कोई आशा नहीं है; इसलिए तुम्हारी कोई निराशा भी नहीं हो सकती। आशा के बीज बोओगे, निराशा की फसल काटोगे। सफलता की आकांक्षा असफलता की खाइयों में, खड्डों में गिरोगे। विजय चाहते हो, हार सुनिश्चित है।
इस महागणित को ठीक से समझ लो। इसे जिसने समझ लिया, वह बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया।
अगर जीतना हो, तो जीतने की बात ही छोड़ दो। फिर तुम्हें कोई हरा नहीं सकता। अगर जीवन में आनंदित होना हो, तो आनंद पाने की बात ही मत उठाना; आनंद की चर्चा ही मत छेड़ना; आनंद पर अपनी आशा मत टिकाना और आनंद की वर्षा हो जाएगी।
लाओत्सु ने कहा हैः कोई देखूं मुझे हराए तो! कोई मुझे हरा नहीं सकता। उसके एक शिष्य ने पूछा, लेकिन बड़े-बड़े पहलवान हैं, आप ज्ञानी हैं जरूर, लेकिन देह में तो बड़े बलिष्ठ लोग हैं, वे आपको हरा सकते हैं। लाओत्सु ने कहाः कोई मुझे नहीं हरा सकता, क्योंकि मैं पहले से ही हारा हुआ हूं। मुझे वह हराएगा, उसके पहले ही मैं चारों खाने चित लेट जाऊंगा; फिर वह क्या करेगा?
हारे को कैसे हराओगे? और जो विराट के सामने हार गया है, वह जीत गया। परमात्मा के सामने हार कहीं होती है! वहां हारना तो विजय के हारों से लद जाना है, मोतियों के हारों से लद जाना है।
तुम पूछते होः "क्या संसार में निराशा ही निराशा हाथ लगती है?"
संसार का कुछ लेना-देना नहीं। संसार बिल्कुल तटस्थ है। सब तुम पर निर्भर है। तुम अगर जगत की अंतर्तम व्यवस्था के साथ चलो, तो जीत ही जीत है। आशा और आशा के दीये जलने लगेंगे। दीपावली हो जाएगी। ऐसे दीये जलेंगे जो कभी बुझते नहीं। तुम्हारी विजय-पताकाएं शाश्वत में उड़ेंगी। तुम ऐसे सिंहासन पर विराजमान हो जाओगे, जिससे कोई कभी उतरा नहीं। गुलाल कल उसी सिंहासन की बात कर रहे थे। सहस्रदल कमल खुलेगा तुम्हारे भीतर, उसके सिंहासन पर तुम विराजमान हो जाओगे। मगर यह सौभाग्य उनको मिलता है, जो इतनी हिम्मत रखते हैं कि अपने अहंकार को परमात्मा के चरणों में चढ़ा दें।

हां, तुम अगर चाहो कि तुम्हारा अहंकार जीते तो बुरे पिटोगे। जितना बड़ा अहंकार होगा, उतने ज्यादा पिटोगे। अहंकार के अनुपात में ही तुम्हारी पिटाई होती है। जो इतनी हारें, इतनी असफलताएं, इतने विषाद तुम्हारे जीवन में आते हैं, ये तुमने ही पुकारे हैं, ये तुमने ही आमंत्रित किए हैं। यह अहंकार चुम्बक की तरह इनको खींचता है। अहंकार भ्रांति है। तुम अलग नहीं हो अस्तित्व से, इसलिए तुम्हारी अलग आकांक्षा क्या, आशा क्या? तुम अगर अलग होते तो आकांक्षा अलग हो सकती थी, आशा अलग हो सकती थी। तुम विराट के साथ एक हो ही। जैसे कोई पत्ता वृक्ष का अपनी निजी आकांक्षा रखता हो, तो मुश्किल में पड़ेगा। जब वृक्ष नाचेगा हवाओं में, उस पत्ते को नाचना नहीं, अभी वह विश्राम कर रहा है। और जब वृक्ष शांत है और हवाएं नहीं बह रही हैं, तब उस पत्ते को नाचना है, उसका विश्राम पूरा हो गया। वह कभी वृक्ष के साथ अपने को पाएगा नहीं। और जब वृक्ष नहीं नाच रहा है तो पत्ता कैसे नाचेगा? और जब वृक्ष नाच रहा है, तो पत्ता अपने को नाचने से कैसे रोग पाएगा? हर घड़ी पत्ते को निराशा हाथ लगेगी, हर घड़ी ऐसा लगेगा कि सारा नियोजन मेरे विपरीत है, सब मेरे दुश्मन हैं। कोई तुम्हारा दुश्मन नहीं है, सिवाय तुम्हारे। और कोई तुम्हारा मित्र नहीं है, सिवाय तुम्हारे। अगर अहंकार गिरा दो तो तुम अपने मित्र हो, अगर अहंकार को उठाए रखो तो तुम अपने शत्रु हो।
संसार को मत दोष दो। दोष है तो तुम्हारे अपने ही मन का है। लेकिन अपने
को दोष कोई देना नहीं चाहता। हम हमेशा कोशिश करते हैं कि कोई और मिल जाए जिसके कंधे पर हम अपने सारे दोषों का बोझ रख दें। तो हमने अच्छे-अच्छे शब्द गढ़ लिए हैं। मूढ़ता तुम करोगे, दोष संसार का है। तो फिर स्वभावतः इस तर्क की निष्पत्ति यह होती है कि अगर आनंदित होना है, संसार का त्याग करो। मूढ़ता का त्याग मत करना! क्योंकि मूढ़ता तो दोषी तुमने कभी ठहराई नहीं। संसार को छोड़ दो, लेकिन मूढ़ता तुम्हारे भीतर है, संसार छोड़ कर जहां भी जाओगे, मूढ़ता तुम्हारे साथ रहेगी। तुम जो भी करोगे, उसी में मूढ़ता होगी। तुम दुकान करोगे तो मूढ़ता होगी, तुम पूजा करोगे तो मूढ़ता होगी। तुम्हारी पूजा तुम्हारी मूढ़ता से ही निकलेगी न! तुम्हारी पूजा आएगी कहां से? तुम्हारी प्रार्थना कहां से आएगी? तुम्हारी प्रार्थना में भी वही रोग होगा जो दुकान में था, जो बाजार में था, वही मंदिर में होगा, वही तीर्थ में होगा। जो घर-गृहस्थी में था, वही हिमालय की गुफा में भी होगा। तुम्हारी प्रार्थना तुम से ही तो जन्मेगी। तुम्हारा ही रंग होगा तुम्हारी प्रार्थना में, तुम्हारा ही ढंग होगा। तुम वहां बैठकर भी फिर नया संसार बनाओगे। वहां बैठ कर फिर तुम कल्पनाओं का नया जाल रचोगे, फिर आशा बांधोगे। गुफाओं में बैठे हैं जो लोग हिमालय की, तुम सोचते हो आशा से मुक्त हैं? आशा से मुक्त हों तो गुफाओं में बैठने की जरूरत क्या है? वहां बैठ कर वे स्वप्न देख रहे हैं स्वर्गों के। तुम्हारे सपने तो बहुत छोटे हैं। तुम्हारे सपने कुछ बहुत बड़े नहीं हैं। तुम सपने ही क्या देख रहे हो! यही कि कोई एक बड़ा मकान मिल जाए; यही कि कुछ थोड़ा धन हो, थोड़ी संपदा हो; यही कि कोई सुंदर पत्नी मिल जाए, पति मिल जाए, यही कि कोई अच्छा पद मिल जाए। तुम्हारे सपने भी छोटे-छोटे हैं। तुम्हारे सपने उतने बड़े नहीं हैं जितने संन्यासियों के, साधुओं के, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं के। उनके सपने ये हैंः स्वर्ग मिलना चाहिए, कल्पवृक्ष मिलने चाहिए, जिनके नीचे बैठने से सारी आकांक्षाएं पूरी हो जाती हैं। कुछ करना नहीं पड़ता, बैठे वृक्ष के नीचे और जो सोचा, तत्क्षण पूरा हुआ। गजब के आलसियों ने यह कल्पना की होगी कल्पवृक्ष की! हाथ नहीं हिलाना पड़ता।
मैंने सुना है, एक आदमी भूले-भटके कल्पवृक्ष के नीचे पहुंच गया। उसे पता नहीं था कि यह कल्पवृक्ष है। थका-मांदा था, वृक्ष के नीचे बैठा था छाया देख कर, सोचा कि ऐसे में कहीं आसपास भोजन मिल जाता; कितनी भूख लगी है! कल्पवृक्ष था वह। तत्क्षण अप्सराएं स्वर्ण की थालियों में तरह-तरह के मिष्ठान्न, भोजन, मेवे लेकर उपस्थित हो गईं। वह इतना भूखा था कि उसने विचार भी नहीं किया कि यह तत्क्षण किस लोक से अप्सराएं उतरीं! रहा होगा कोई महात्मा। क्योंकि महात्मा इन बातों पर बड़ा भरोसा कर लेते हैं। सोचा होगा, है किसी पुण्य का फल; है जन्मों-जन्मों की कमाई। अरे, माला भी कुछ कम

जपी है! यह कभी का होना चाहिए था, वैसे ही बहुत देर हो गई है। भोजन करके स्वभावतः ख्याल उठा कि कुछ लेटने की जगह होती, कुछ सुंदर तकिया-गद्दा होता, तो विश्राम कर लेते। एकदम एक सुंदर शय्या, स्वर्ण शय्या सुंदर गद्दे-तकिए--महात्मा तो एकदम लेट गया, सो गया! नींद खुली जब दो-तीन घंटे बाद, तो सोचा बड़ी प्यास लगी है, पानी होता! गुलाब की सुगंध से भरा हुआ जल। ऐसा स्वादिष्ट जल उसने कभी न पीया था। जल-पीते अब उसे जरा सोच-समझ लौटा, विचार लौटा कि यह मामला क्या है? पहले थालियां आईं, फिर शैय्या आई, पानी भी आ गया; इस झाड़ में कोई भूत-प्रेत तो नहीं है? सो भूत-प्रेत प्रगट हो गए। कल्पवृक्ष तो कल्पवृक्ष है। चारों तरफ एकदम नंग-धड़ंग भूत-प्रेत नाचने लगे। बहुत घबड़ाया, कहा कि अब मारे गए! सो मारा गया। भूत-प्रेत चढ़ बैठे उसकी छाती पर, खूब उसको दबोचा, खूब उसको पीटा, गर्दन दबा दी। जो सोचा, वह हुआ? कल्पवृक्ष की कल्पनाएं लिए बैठे हैं तुम्हारे महात्मा। आलसियों की कल्पनाएं हैं, काहिलों की कल्पनाएं हैं, मुप 132 तखोरों की कल्पनाएं हैं। तुम्हारी कल्पनाएं तो छोटी हैं, तुमको कहते हैं पापी और उनकी कल्पनाएं तुमसे बड़ी हैं और स्वयं को समझते हैं महात्मा! तुम पकड़ते हो छोटी-मोटी चीजों को, तो तुमको कहते हैं, लोभी, और वे पकड़ते हैं शाश्वत को और स्वयं को समझते हैं, निर्लोभ को उपलब्ध हो गए हैं।
मैंने सुना है, एक गांव में एक कंजूस रहता था--बड़ा कंजूस। उसने सुना कि पड़ोस के गांव में एक और भी बड़ा कंजूस है। और लोगों ने कहा कि तुम उसके आगे कुछ भी नहीं। दिल को बड़ी चोट लगी। अहंकार को बड़ा धक्का लगा। जब धीरे-धीरे पड़ोस के गांव के कंजूस की ख्याति बहुत दूर-दूर तक फैलने लगी, तो इस कंजूस ने सोचा कि मैं भी जाकर मिलूं, दर्शन करूं, देखूं कि ऐसा क्या है जो उसकी महानता की इतनी चर्चा हो रही है और मेरी कोई चर्चा नहीं!
सो उसने एक कागज लिया और उस कागज के ऊपर दो स्वस्थ सुंदर खरगोशों के चित्र बनाए और चित्र को एक डलिया में लेकर पड़ोस के गांव को रवाना हो गया। पहुंचा उस गांव जाकर, दस्तक दी द्वार पर, द्वार खुला, कंजूस का बेटा बाहर आया; उसने पूछा कि फलां सज्जन कहां हैं, मैं उनसे मिलने आया हूं। बेटे ने कहाः वे तो अभी बाहर गए हैं और दो-तीन दिन तक शायद ही वापिस आएं, लेकिन मैं हूं उनका बेटा, कहें, क्या सेवा करूं? उस कंजूस ने कहा कि मैं उनके लिए भेंट लाया था, और उसने निकाली डालिया में से उन सुंदर खरगोशों की तस्वीर और लड़के को देते हुए कि यह मेरी भेंट उन्हें दे देना और कहना मैं उनसे मिलने आया था; मैं उनके पास के गांव में ही रहता हूं। बेटे ने कहा कि जब आए हैं इतनी दूर से, चल कर आए हैं, तो कुछ भेंट हमारी तरफ से भी लेते जाएं। भीतर आएं। ले गया भीतर और कहा कि डलिया खोलें। खोली कंजूस ने डलिया, लड़के ने अपने हाथ से आम का आकार बनाया हवा में और कहा कि ये आम लेते जाएं। यह हमारी भेंट। अब आम तो थे नहीं, बस हवा में आम का आकार बनाया और उसकी झोली में डाल दिया।
कंजूस लौटा अपने घर तो मन ही मन सोचता आया कि जैसा सुना था वैसा ही पाया। अरे, मैं तो कम से कम कागज पर बना कर ले गया था खरगोश और लड़के ने तो एक कागज तक खर्च न किया, रंग खर्च न किए, हवा में ही आम बना कर दे दिए। जब बेटा इतना कंजूस है तो बाप से तो ईश्वर ही बचाए!
इधर दूसरे गांव से बाप घर लौटा, बेटे ने सारी गाथा उसे सुनाई और उसने कहा कि वह आदमी ये दो खरगोश भेंट दे गया है। और भेंट मैंने भी दे दी, खाली हाथ उसे जाने नहीं दिया, उसे मैंने कुछ आम भेंट दिए। लड़के ने पुनः आम की आकृति बनाई और कहा कि इस तरह मैंने उसकी डलिया में डाल दीं। बाप ने देखा तो जोर से एक चांटा अपने बेटे को मारा और कहा कि अरे, उल्लू के पट्ठे! जब मैं घर नहीं होता तब तू कुछ न कुछ गड़बड़ करता ही है! अरे नालायक, आखिर इतने बड़े- बड़े आम देने की क्या जरूरत थी? अरे, देने ही थे तो छोटे-छोटे भी दे सकता था! तू तो मुझे लुटवा कर रहेगा एक दिन!
जिनको तुम महात्मा कहते हो, उनकी कामनाएं तो देखो, उनकी वासनाएं तो देखो, उनकी तृष्णाएं तो देखो! तुम अगर छोटे कंजूस हो, तो वे महाकंजूस हैं। तुम अगर चीजों को पकड़ते हो, तो वे भी पकड़े हुए हैं। मगर वे ऐसी चीजों को पकड़ते हैं जो छीनी न जा सकें। तुम तो ऐसी चीजों को पकड़ रहे हो जो छिन

जाएंगी। तुम क्या खाक लोभी हो! तुम भी जानते हो कि यह सब पड़ा रह जाएगा; "जब बांध चलेगा बंजारा," "सब ठाठ पड़ा रह जाएगा", यह तो तुम जानते हो। उन्होंने नहीं पकड़ा है इसे, इसीलिए कि सब ठाठ पड़ा रह जाएगा। कुछ ऐसा पकड़ो कि पड़ा न रह जाए, साथ जाए। वे मरने के बाद भी साथ ले जाना चाहते हैं कुछ। तुम क्षणभंगुर पर अपनी आशाएं टिकाए हो, वे शाश्वत पर अपनी आशाएं टिकाएं हैं। भेद कहां हैं? मैं इनको महात्मा नहीं कहता हूं। ये महा सांसारिक हैं। मैं तो महात्मा उसे कहता हूं, जिसने यह सत्य समझा कि मैं अलग हूं ही नहीं। इसलिए मेरी क्या आकांक्षा! न धन में उसका भरोसा है, न पद में उसका भरोसा है, न कल्पवृक्षों, में न स्वर्गो में। वह किसी चीज पर अपनी आशा ही नहीं टिकाता। न क्षणभंगुर पर, न कालातीत पर। उसने अपनी आशा को ही व्यर्थ देख कर छोड़ दिया है। आशा के छूटते ही निराशा समाप्त हो जाती है।
जरा सोचो, अगर आशा न हो तो निराशा कैसे होगी? अगर तुम्हारे मन में आशा
ही नहीं है, तो तुम कैसे हताश होओगे? असंभव। आशा गई तो निराशा गई। सफलता गई तो असफलता गई। दिन गया तो रात गई। वे साथ-साथ हैं, संयुक्त हैं। दोनों साथ ही हो सकते हैं--और साथ ही जाते हैं।
संसार को दोष मत दो! अपने मन को समझो। मन ही तुम्हारा असली संसार है। लेकिन मन की तो हम चिंता नहीं करते, मन को तो लिए फिरते हैं, मन को तो सजाते हैं, संसार को गालियां देते हैं। संसार जिसने तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ा नहीं। यह वृक्षों का संसार, यह चांद-तारों का संसार, ये आकाश में सूरज, ये बदलियां, इसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? यह विराट की अदभुत लीला, इसने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? इसको गाली देते हो। कहते हो, यह सब माया। और भीतर तुम्हारे जो माया का मूल स्त्रोत है, तुम्हारी कल्पनाओं का जाल, तुम्हारी आकांक्षाओं का जाल, तुम्हारी तृष्णाओं का अनंत-अनंत फैलाव, उसको गटके बैठे हो! उसको उगलो! उसको थूको! वहीं है भूल।
मैं तुम्हारे मन को संसार कहता हूं।
रंगों के मनहर मेले!
चले गए छोड़ अकेले!!
टूटे अनुबंधों जैसे,
रूठे संबंधों जैसे,
बिखर रहे पल-अनुपल हम--
फूटे तटबंधों जैसे;
झरे-गिरे पीत पात से,
भरे-भरे गीत गात से;
पीड़ाओं में घुले-मिले,
आंसू से जी भर खेले!
शापित वरदान सरीखे,
बुझ कर भी जलते दीखे;
अर्थ हीन जीवन जीना,
जग आकर हमसे सीखे;
अपनों के तेवर बदले,
सपनों के जेवर बदले;
प्रज्वलित पलाश से नयन,
जैसे गेरू के ढेले!
सांसें घनसार हो गईं,
आशाएं क्षार हो गईं;
अधरों पर चिपकीं बेबस,
मुसकानें भार हो गईं;
रोम-रोम जलती होली
भाल लगी उलझन-रोली;
एक भाव से तटस्थ हो,
फाग-आग दोनों झेले!
रंगों के मनहर मेले!!

सब मेले तुम्हारे मन में हैं। ये सब रंग तुम्हारे मन में हैं। ये सब इद्रंधनुष तुम फैलाते हो। और फिर इन इंद्रधनुषों को फैलाते हो, फिर उनको पकड़ने चलते हो। फिर हाथ कुछ नहीं लगता तो रोते हो। फिर गालियां संसार को देते हो। मन के प्रति जागो! मन से जागो! मन के साक्षी बनो!
आनंद तीर्थ, मन के प्रति साक्षी बनते ही छुटकारा हो जाता है। इस संसार
से ही नहीं, उस पारलौकिक संसार से भी। जैसे ही तुम मन के प्रति जागे और तुमने देखा कि मन सारा खेल कर रहा है... मन एक प्रोजेक्टर है। तुम फिल्म देखने जाते हो न, तो तुम्हारी आंखें तो पर्दे पर अटकी रहती हैं, तुम पीछे तो लौट कर देखते भी नहीं, असली खेल पीछे चल रहा है। वह जो प्रोजेक्टर पीछे लगा हुआ है, फिल्म वहां है। पर्दे पर तो केवल प्रक्षेपित होती है। लेकिन तुम पर्दे पर उलझे हो जहां कुछ भी नहीं है, सिर्फ धूप-छांव का खेल है। मगर कैसे उलझते हो! अगर कोई दुखांत दृश्य आ जाता है तो आंसू टप-टप झर जाते हैं। अगर कोई सुखांत दृश्य आ जाता है तो हंसी के फव्वारे छूट जाते हैं। तुम कितने रंगों में से गुजर जाते हो एक फिल्म को देखते हुए! और जानते भलीभांति कि परदा है और कुछ भी नहीं। फिर भी धोखा खा जाते हो, जान-जान कर धोखा खा जाते हो! लेकिन असली प्रोजेक्टर पीछे है। वहां प्रोजेक्टर कोई बंद कर दे, परदा खाली हो जाए।
मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि संसार तो केवल परदा है, मन जो तुम्हारे भीतर छिपा है, वहां सारा खेल चल रहा है। उस खेल को तुम प्रक्षेपित करते रहते हो बाहर। जिस दिन भीतर मन से छूट जाओगे, उस दिन बाहर का संसार तत्क्षण बदल जाता है, इसके रंग-ढंग बदल जाते हैं। उस दिन संसार पाया ही नहीं जाता, परमात्मा ही पाया जाता है। उसका कोरा निर्दोष अस्तित्व तुम विकृत कर रहे हो। तुम डाले ही जाते हो अपनी आशाएं, अपनी तृष्णाएं। तुम फैलाए ही जाते हो ये मकड़ी के जाल! अपने ही भीतर से निकालती है मकड़ी और जाला रच देती है। ऐसे ही तुम भी अपने ही भीतर से निकालते हो ये जाले और रचते चले जाते हो। फिर अपने ही रचे जालों में उलझ जाते हो। फिर चीखते-चिल्लाते हो कि बचाओ!
अब तुम पूछ रहे हो, क्या संसार में निराशा ही निराशा हाथ लगती है? बहुत आशा की होगी, तो निराशा ही निराशा हाथ लगेगी। अगर आशा न की हो तो निराशा बिल्कुल हाथ नहीं लगती। मेरे हाथ तो निराशा बिल्कुल नहीं लगती। वर्षो से निराशा से मैं अपरिचित हूं। कभी-कभी कोशिश भी करता हूं कि निराशा हाथ लगे, नहीं लगती। प्रोजेक्टर टूट गया। और तुम कहते हो, क्या निराशा ही निराशा हाथ लगती है? सब तुम पर निर्भर है।
भूल कर भी तुम न आए!
आंख के आंसू उमड़ कर,
आंख ही में हैं समाए।।
सुरभि सेशृंगार कर--
नव वायु प्रिय-पथ में समाई,
अरुण कलियों ने स्वयं, सज,
आरती उर में सजाई।
बंदनाकार पल्लवों ने,
नवल वंदनवार छाए।।
मैं ससीम, असीम सुख से,
सींचकर संसार सारा।
सांस की विरुदावली से,
गा रहा हूं यश तुम्हारा।
पर तुम्हें अब कौन स्वर,
स्वरकार! मेरे पास लाए?
भूलकर भी तुम न आए!
परमात्मा को पुकारोगे तो तुमने पुकार में एक बात मान ली कि वह दूर है।
और जिसने उसे दूर मान लिया, उसके लिए दूर है। सब मान्यता का खेल है। सच्ची प्रार्थना पुकार नहीं होती, मौन होती है, निःशब्द होती है। निःशब्द प्रार्थना का अर्थ है कि इतने करीब हैं कि उससे बोलें क्या? उससे कहें क्या? हमारे कहने के पहले वह जान लेता है; हमारे जानने कि पहले वह जान लेता

है। हमें तो बहुत बाद में खबर होती है। हमें तो खबर होते-होते ही खबर होती है। पता चलते-चलते ही चल पाता है। वह तो हमारे अंतर्तम में विराजमान है। उससे कहना क्या है? उसे बताना क्या है? उसे सलाह क्या देनी है?
तुम मंदिरों में क्या कर रहे हो? मस्जिदों में क्या कर रहे हो? परमात्मा को सलाह दे रहे हो। ऐसा करो, वैसा करो, कि मेरी पत्नी बीमार है, उसको ठीक करो; कि मेरे बच्चे को नौकरी नहीं लग रही है, नौकरी लगाओ। मांगे जा रहे हो भिखमंगों की तरह। और अगर नौकरी न लगी तुम्हारे बेटे की, तो निराशा आ गई। अगर पत्नी ठीक न हुई, तो निराशा आ गई।
हो गई ठीक, संयोगवशत, तो भी झंझट है।
मैं जबलपुर में था। एक शाम अपने बगीचे में टहल रहा था और एक सज्जन मिलने आ गए; तो वहीं खड़ी कार से मैं टिक कर खड़ा हो गया और उनसे बातें करने लगा। उन्होंने जल्दी से नोट बुक निकाली, कुछ नोट करने लगे। मैंने कहा, क्या करते हो? उन्होंने कहा कि बस, इशारा आपने दे दिया। मैंने कहा, मैं अभी बोला भी नहीं, ऐसे तो मैं बोल-बोल कर परेशान हो जाता हूं तो भी लोगों को इशारे नहीं मिलते, तुम तो गजब के ज्ञानी मालूम होते हो! मैंने कहा, जरा देखूं, क्या नोट किया! नोट किया उन्होंने कार का नंबर। कहने लगे, मैं यही पूछने आया था कि लाटरी में कौन से नंबर का टिकट खरीदूं? आपने भी गजब कर दिया, नंबर से ही टिक कर खड़े हो गए। इशारा मैं फौरन समझ गया कि अरे वाह, मैंने कहा भी नहीं, पूछा भी नहीं अभी और आप हाथ रख कर नंबर पर ही खड़े हो गए। साफ कह दिया अब और क्या है! मैंने कहाः अब तुम मुझे झंझट में डालोगे। अगर यह नंबर न निकला, तब तो कुछ हर्जा नहीं, मेरा तुमसे छुटकारा हुआ, तुम कहीं और नंबर तलाशोगे। मगर संयोगवशात, भूल-चूक से यह नंबर कहीं अगर लग गया, तो तुम मेरी गर्दन से बंधे!
लोग वासनाओं से भरे हैं, तृष्णाओं से भरे हैं, अपनी कल्पनाओं के जाल
से भरे चल रहे हैं। अब मैं भी उनसे कह रहा हूं कि मेरा कोई इशारा नहीं है, यह तो सिर्प मैं टिक कर खड़ा हो गया, तुमसे बात करनी थी; यह मेरे घूमने का समय था, तुम बेवक्त आ गए हो, गाड़ी पास थी तो टिक कर खड़ा हो गया हूं, मुझे क्षमा करो, गलती हो गई, मगर वे मेरी सुनने को राजी नहीं। वे तो जल्दी से नमस्कार किए और चलते बने, उन्होंने कहा कि बस चलता हूं, बात हो गई। वासनाओं से भरा हुआ आदमी वही देखता है जो देखना चाहता है, वही सुनता
है जो सुनना चाहता है। वासनाएं उसे वह नहीं देखने देतीं, जो है; वह नहीं देखने देतीं, जो चारों तरफ मौजूद है। वासनाएं उसे छोटा सा जगत देखने देती हैं--और वह जगत भी उसका अपना निर्मित होता है।
चंदूलाल उन दिनों सड़क के किनारे विज्ञापनों के बड़े-बड़े बोर्ड बनाया करता था। एक दिन वह ऊपर की सीढ़ी पर से नीचे आ गिरा तो उसे बहुत चोट आ गई। ढब्बू जी उसे देखने अस्पताल पहुंचे। देखा चंदूलाल को जगह-जगह 179ौक्चर पर पट्टियां बंधी हैं--सारे शरीर पर 179ौक्चर ही 179ौक्चर हैं; कुछ दिखाई नहीं पड़ता, बस आंखें दिखाई पड़ती हैं और मुंह दिखाई पड़ता है। ढब्बू जी को बहुत दुख हुआ और कहा कि बहुत दुखी हूं। तुम्हें बहुत दुख हो रहा होगा? चंदूलाल ने कहा कि ऐसे नहीं होता, हां जब हंसता हूं, तब जगह-जगह बहुत दुख होता है। ढब्बू जी ने कहाः लेकिन इसमें हंसने की बात ही कहां है? हंसते काहे के लिए हो?
तो चंदूलाल ने कहाः हंसने का कारण यह है कि अब कुछ न पूछो! न पूछो तो अच्छा! अरे, मैं जिस जगह काम कर रहा था, उसके सामने वाले मकान की खिड़की में एक नवयुवती अपनी ड्रेस बदल रही थी। वह अपना आखिरी कपड़ा उतारने ही जा रही थी कि सीढ़ी टूट गई और मैं नीचे आ गिरा और यह हालत हुई!
ढब्बूजी ने आश्चर्य से पूछा कि लेकिन सीढ़ी टूटी कैसे? क्या तुम्हारे वजन से सीढ़ी टूटी? चंदूलाल बोलेः अरे साली मेरे वजन से कहां, वह तो पच्चीस आदमी और जो चढ़े हुए थे! उनके वजन के कारण टूटी।... कोई मैं अकेला थोड़े ही सीढ़ी पर था, पूरा गांव ही चढ़ा हुआ था। सीढ़ी भी कब तक ठहरती! और इसीलिए कभी- कभी रह-रह कर उनको हंसी आ जाती है कि वाह रे वाह!!
लोग जो देख रहे हैं, लोग जो सुन रहे हैं, वह वह नहीं है जो है, उनकी अपनी कल्पना के जाल हैं। उनके लिए वे काफी कीमतें चुका रहे हैं। जिंदगी भर

गंवाते हैं, हड्डी-पसली टूट जाती है, अस्थिपंजर रह जाते हैं, मगर रोग वही पुराने के पुराने। इसीलिए सत्य को कहना मुश्किल है।
कल रात ही एक भारतीय मित्र ने, जो अमरीका में निवास करते हैं, संन्यास लिया। मैंने उन्हें नाम दियाः अशोक मुनि। उनसे मैंने कहाः अशोक शब्द बुद्ध का शब्द है। बुद्ध के पहले ज्ञानी अशोक की बात नहीं करते थे। आनंद की बात करते थे। आनंद का अर्थ होता है विधायक और अशोक का अर्थ होता है, दुख नहीं, नकारात्मक। बुद्ध को मजबूरी में अशोक की बात करनी पड़ी कि लोग यह सुन कर कि परमात्मा सच्चिदानंद है, उसके प्रति ही वासना करने लगे। आनंद है तो पा कर रहेंगे। आनंद शब्द उनके भीतर गुदगुदी उठाने लगा। आनंद शब्द उनकी लार टपकाने लगा। आनंद शब्द पर उनको लोभ लगने लगा, वासना जगने लगी। आनंद है तो वे पा कर रहेंगे। आनंद से उन्होंने समझा कि महासुख, अंनत सुख, सुख ही सुख, जिसमें दुख बिल्कुल नहीं बचा, ऐसा, तो फिर दौड़ पड़े लोग! मगर आनंद की शर्त ही यही है कि जब तक वासना है तब तक उपलब्ध नहीं होता। परमात्मा ने भी खूब उलटी शर्तें लगा रखी हैं कि जब तक दौड़ोगे, जब तक वासना करोगे, तब तक आनंद उपलब्ध नहीं होगा। अब लगी फांसी! और आनंद चाहिए! मगर चाहिए तो मिलेगा नहीं। आनंद मिलता है उनको जिन्हें कुछ भी नहीं। जो कहते हैं, चाह ही गई। जिनके भीतर चाह का तूफान, अंधड़ नहीं रह जाता, उनको आनंद मिलता है।
लोग सोचते हैं परमात्मा तक को धोखा दे देंगे; वे कहते हैं, चलो यही सही, चलो चाह ही छोड़ देंगे! अगर चाह छोड़ने से ही आनंद मिलता हो तो हम इसके लिए भी राजी हैं। मगर भीतर उनके भाव अब भी वही हैंः मिलना चाहिए आनंद। चाह छोड़ने तक को राजी हैं! मुझसे लोग पूछते हैं, तब पक्का है कि मिलेगा? हम चाह भी छोड़ देंगे। मगर कहां चाह छोड़ रहे हो? तुम तो चाह को पक्का किए ले रहे हो। पक्का है, मिलेगा? चलो यह भी करेंगे, अगर चाह छोड़नी है तो यह शर्त भी पूरी कर देंगे, मगर ऐसा आदमी बीच-बीच में आंख खोल कर देखता रहेगाः अभी तक मिला नहीं! चाह की चाह गई और आनंद का कुछ पता नहीं! अब कितनी देर और लगेगी? मगर यह बीच-बीच में आंख खोल कर देखना ही बता देगा कि अभी चाह उतनी की उतनी मौजूद है जितनी पहले थी, छिपकर मौजूद है।
बुद्ध के पहले उपनिषदों ने परमात्मा की सीधी विधायक व्याख्या की थीः सच्चिदानंद; वह परम आनंद है। बुद्ध ने परिभाषा बदल दी। देखा कि लोग समझे नहीं उसे। लोगों ने गलत समझा। लोगों ने आनंद को ही अपना लक्ष्य बना लिया।
बुद्ध ने कहाः परम अवस्था का केवल इतना ही अर्थ है कि वहां दुख नहीं है।
सुख की मत बात करो, सिर्फ दुख नहीं है।
इस भेद को जरा समझना।
अगर कोई कहे कि वहां परम आनंद है, तो एकदम उछाह उठती है, उमंग उठती है,
कि पा लें! और कोई कहे कि वहां दुख नहीं है, तो दिल बैठ जाता है, कि दुख नहीं, बस इतना ही! कुछ और बताएं; मिलेगा क्या? बुद्ध कहते हैं: मिलेगा यही कि दुख नहीं है। दुख-निरोध। बुद्ध ने शब्द उपयोग कियाः दुख-निरोध। कि वहां दुख न रह जाएंगे। दोनों में बड़ा फर्क हो गया। बात एक ही थी। मगर वासनाग्रस्त लोगों को बुद्ध की बात नहीं जमी। इसलिए आज भी वे उपनिषद दोहराए जा रहे हैं और बुद्ध को तो कब का भुला चुके हैं! भारत से तो बुद्ध की जड़ें उखाड़ कर फेंक दीं। हालांकि बुद्ध ने जो किया था, वह महत कार्य था। बहुत अदभुत कार्य था। बुद्ध ने चेष्टा की थी कि तुम्हारे भीतर वासना को बिल्कुल ही काट दिया जाए, ताकि तुम्हें आनंद मिल जाए। मगर तुम चूक गए। तुम बुद्ध से चूके, तुम बुद्धों से चूकते रहे हो, क्योंकि तुम्हारी भाषा का जाल बुद्ध ने तोड़ने की कोशिश की। बुद्ध ने नई भाषा रची। बुद्ध ने कहाः वह परम अवस्था, उसका नाम मोक्ष नहीं, उसका नाम निर्वाण। क्यों, मोक्ष क्यों नहीं? क्योंकि मोक्ष का अर्थ होता है: मैं रहूंगा वहां, मुक्त होकर रहूंगा। लेकिन मैं रहूंगा और मुक्त होकर रहूंगा। लेकिन जब तक "मैं" है तब तक कहां मुक्ति? मुक्ति तो तभी है जब "मैं" गया। "मैं" से मुक्ति ही मोक्ष है। यह परिभाषा है मोक्ष की। और सुनने वालों ने कहा कि यह तो बड़ी अच्छी बात है, मोक्ष, कोई झंझट नहीं, कोई बंधन नहीं पत्नी, बच्चे, संसार, कोई उपद्रव नहीं। बैठे हैं सिद्धशिला पर, भोग रहे आनंद ही आनंद, एकदम वर्षा हो रही है अमृत की, झड़ी लगी है--मगर मैं हूं। अगर मैं हूं, तो मोक्ष नहीं। लेकिन मोक्ष

शब्द में "मैं" बच जाता है। मोक्ष से ऐसा भाव लगता है कि मैं तो रहूंगा, मुक्त होकर रहूंगा।
बुद्ध ने कहा कि नहीं, तुम नहीं रहोगे। इसलिए निर्वाण शब्द चुना। निर्वाण का अर्थ होता हैः दीये का बुझ जाना। तुम तो ऐसे बुझ जाओगे जैसे दीया बुझ जाता है, तुम तो रहोगे ही नहीं। अब यह बात कुछ वासना जगाएगी? लोग बुद्ध से पूछे हैं बहुत बार कि आपकी बातें बड़ी अजीब हैं। अगर हम रहेंगे ही नहीं तो किसलिए हम ध्यान करें और किसलिए हम साधना करें? मिटने के लिए? आदमी "होने" के लिए कुछ करना चाहता है, मिटने के लिए नहीं। यह तो आप अजीब शिक्षा दे रहे हैं कि शून्य हो जाओगे। अरे, शून्य हमें होना ही नहीं है। हमें पूर्ण होना है। उपनिषद ठीक कहते हैं, लोगों ने कहा, वह पूर्ण है और उस पूर्ण से पूर्ण ही पैदा होता है। उस पूर्ण से पूर्ण को निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण ही शेष रहता है। उस पूर्ण में पूर्ण को जोड़ दें तो भी पूर्ण पूर्ण ही रहता है।
यह बात जंचती है। पूर्ण में कुछ आकर्षण मालूम होता है। पूर्णता अहंकार को और सजावट दे देती है,शृंगार दे देती है। बुद्ध कहते हैंः शून्यता, निर्वाण। उपनिषद कहते हैंः आनंद, बुद्ध कहते हैंः दुख-निरोध। उपनिषद कहते हैं: फूल ही फूल खिल जाएंगे, बुद्ध कहते हैंः कांटे नहीं होंगे। मगर कांटे नहीं होंगे, यह बात किसको राजी करेगी तप करने के लिए, योग करने के लिए! अगर तुम योग कर रहे हो, उपवास कर रहे हो, सिर के बल खड़े हो, महीनों का उपवास कर रहे हो, कोई पूछेः किसलिए? तुम कहोगे कि वहां दुख-निरोध। कि वहां दुख नहीं होगा। और इतना दुख यहां पा रहे हैं, नाहक, और कुल परिणाम इतना होते वाला है दुख-निरोध नकारात्मक। लेकिन जहां दुख नहीं है, वहीं आनंद का आविर्भाव है। बुद्ध उसको कहते नहीं। उसको कहने से भूल हो जाती है। क्योंकि तुम वही समझ सकते हो जो तुम समझ सकते हो।
एक सिनेमागृह में अच्छी फिल्म लगी हुई थी। चंदूलाल ने अपनी प्रेयसी
से कहा कि पीछे की सीट के टिकट ले लेते हैं। प्रेयसी बोली, और अगर पीछे की सीट की टिकट न मिले तो? तो चंदूलाल बोलाः तो क्या, फिर पिक्चर ही देखेंगे! लोगों की अपनी भाषाएं हैं। लोगों के अपने हिसाब हैं। लोग बड़े बचकाने हैं।
छोटा बच्चा अपनी बूढ़ी दादी से पूछता हैः दादी मां, क्या आप टें बोल सकती हैं? दादी मां ने कहा: हां बेटे, क्यों नहीं बोल सकती!
बच्चा बोलाः अच्छा तो बोलिए! क्योंकि मां कह रही थी कि जब यह बुढ़िया टें बोलेगी तो बहुत सारा पैसा मिलेगा।
लेकिन बच्चे को क्षमा किया जा सकता है। वह बेचारा जितना समझ सकता था उतना समझा। कि सिर्फ टें बोलने की बात है तो बोल ही दो टें, बहुत सारा पैसा मिल जाए। उसे क्या पता कि टें बोलने के पीछे बड़े राज हैं। लेकिन बड़े-बड़ों की भी गति यही है। न तो तुम से जो कहा जाता है वह तुम समझते हो, न तुम जो देखते हो, वह तुम समझते हो। जब तक मन है तब तक तुम सब कुछ विकृत कर लोगे। मन से मुक्त होकर ही सत्य दिखाई पड़ना शुरू होता है। तब यह संसार अदभुत है। तब यह संसार माया नहीं है। माया इसे तुम्हारे मन ने बनाया है। माया का जाल तुम्हारे मन ने इस पर फैलाया है।
भरथरी घर-द्वार छोड़ कर जंगल चले गए। जंगल में ध्यान करने बैठे। सम्राट थे बहुत धन-दौलत थी, सब छोड़ आए थे। सुबह-सुबह अंधेरे में ध्यान कर रहे हैं, तभी सूरज की पहली-पहली किरणें उतरनी शुरू हुईं, प्रभात हुई, आंख खुली ध्यान से, देखा सामने ही पगडंडी पर एक बड़ा हीरा पड़ा है--सुबह की रोशनी में चमकता हुआ। इससे बड़े-बड़े हीरे छोड़ कर आए थे... आदमी का मन देखते हो! ... लेकिन एक क्षण को लालसा जग गई कि उठा लूं। चौंक गए, सम्हल गए, नहीं उठाया, मगर एक क्षण को वासना ने घेर लिया। एक क्षण को मन वापस लौट आया। भूल ही गए कि मैं सब छोड़ आया, इससे बड़े-बड़े हीरे छोड़ आया हूं, इस हीरे की क्या औकात, क्या बिसात! मेरे पास खजाने थे, जिनमें हीरे ही हीरे भरे थे, इनको छोड़ कर आया हूं और इस हीरे को, रास्ते पर पड़े हुए हीरे को उठाने की इच्छा उठ रही है! इसलिए घर छोड़ कर आया हूं, महल छोड़ कर आया हूं! मगर एक क्षण को वासना पकड़ ली।

वासना इतनी तीव्रता से पकड़ती है, इतनी गतिमान है... कहते हैं प्रकाश की गति बहुत तेज है। होगी, पर वासना के मुकाबले नहीं। कहते हैं वैज्ञानिक कि प्रकाश एक सेकेंड में एक लाख छियासी हजार मील चलता है। एक सेकेंड में सूरज की किरण एक लाख छियासी हजार मील पार कर जाती है। इससे बड़ी कोई गति नहीं। मगर वासना! वासना तो एक सेकेंड में कहां से कहां पहुंच जाए! उसका कोई हिसाब नहीं। कोई बंधी हुई गति भी नहीं है। अभी यहां, अभी चांद पर, अभी सूरज पर।... एक क्षण में, क्षण के एक अंश में भरथरी खो गए; चौंक गए, सम्हाल लिया, नहीं गिरे, मगर तभी एक और दुर्घटना घटी।
दो घुड़सवार दोनों तरफ से रास्ते पर आए, दोनों की नजर एक साथ उस हीरे पर पड़ी, दोनों ने तलवारें निकाल कर हीरे पर टेक दीं और दोनों ने दावा किया कि पहले नजर मेरी पड़ी है, इसलिए हीरा मेरा है। भरथरी थोड़े मुस्कुराए भी। क्योंकि नजर तो पहले उनकी पड़ी थी। फिर इस बात पर मुस्कुराए कि मैं मुस्कुरा रहा हूं, तो अभी भी मैं दावेदार हूं। हालांकि अभी-अभी मैंने सोचा था कि अरे, यह मैंने क्या किया? यह कैसी वासना उठी? अब फिर मन में एक लहर उठी कि हो जाऊं खड़ा--पुराने क्षत्री! --कि बता दूं इनको कि नजर किसकी पहले पड़ी! फिर रह गए, फिर सम्हल गए। उठ-उठ आ रही है माया; उठ-उठ आ रही है वासना। और वे दोनों क्षत्री तो जूझ गए! वह तो कोई पीछे हटने को राजी नहीं था, पीछे हटना उन्होंने सीखा नहीं था, वह उनकी भाषा में नहीं था। तलवारें खिंच गयीं, तलवारें चल गयीं, घड़ी भर में यह सब हो गया, नहीं होना था, वह हो गया। दोनों गर्दनें कट गयीं; एक साथ दोनों की तलवारें एक-दूसरे पर पड़ीं। लाशें वहां पड़ी हैं, हीरा अपनी जगह जहां पड़ा था वहीं पड़ा है। हीरे को कुछ लेना- देना नहीं। न भरथरी से कोई प्रयोजन है, न ये दो आदमी मर गए, इनसे कोई प्रयोजन है।
हीरा माया है? हीरे में माया है? या माया मन में है? भरथरी को एक झोंका माया का आया था, फिर दूसरा झोंका भी आया, मगर सम्हाल गए। मगर ये दो आदमी मर मिटे। उस हीरे के लिए, जिस हीरे को इन दोनों का कोई कभी पता ही न चलेगा। उस हीरे के लिए, जिसको इन दोनों से कुछ लेना-देना न था, जो किसी का भी नहीं है; है तो परमात्मा का, नहीं तो किसी का भी नहीं है। और हीरा हीरा है, यह भी बस हमारी मान्यता है, नहीं तो पत्थर है। मानते हो तो हीरा है, जान लो तो पत्थर है। चमकदार होगा, सुंदर होगा, मगर है तो पत्थर ही!
जगत अगर हम मन से मुक्त होकर देखें, अति सुंदर है, अति आह्लादपूर्ण है, दिव्य है। लेकिन अगर हम मन से भर कर देखें, तो फिर उपद्रव ही उपद्रव है। फिर आशा-निराशा के खेल हैं; फिर सफलता-असफलता का जाल है; फिर अपने ही हाथ से लगाई गई फांसी है।
आनंद तीर्थ, संसार को दोष न दो, संसार तो बहुत प्यारा है, क्योंकि संसार तो परमात्मा की अभिव्यक्ति है, मन को पकड़ो, अपने मन को पकड़ो क्योंकि वहीं से क्रांति हो सकती है। मन को पकड़ने का उपाय ही ध्यान है। मन से जागने का उपाय ही ध्यान है। मन के अतिक्रमण का नाम ध्यान है। मन के साक्षी हो जाने का नाम ध्यान है। मन के साक्षी बनो! जैसे भरथरी ने दो बार मन को पकड़ लिया साक्षीभाव से, ऐसे ही मन को पकड़ते रहो। जब भी मन अपने जाल फैलाए, दूर हट कर खड़े हो जाओ। कहो मन से कि खेल खेल, मैं सम्मिलित नहीं हूं। अलग-थलग खड़े रहो। धीरे-धीरे मन पुरानी आदतें छोड़ देगा। देखेगा कि तुम्हारा अब कोई रस न रहा। पुकारेगा तुम्हें, बहुत तरह से लुभाएगा तुम्हें, बहुत तरह से समझाएगा तुम्हें, लेकिन अगर तुमने तय ही कर लिया, निर्णय ही कर लिया, संकल्प ही कर लिया, और आनंदतीर्थ, संन्यास का अर्थ यही हैः संकल्प। इस बात का संकल्प कि अब मन के जाल में नहीं पड़ेंगे, अब मन से जागेंगे और साक्षी बनेंगे। जिस दिन साक्षी बन जाओगे, उसी दिन न कोई माया है, न कोई मन है, न कोई निराशा है, न कोई हताशा है। तब जीवन महोत्सव है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं जब से यहां आया हूं तब से बस आपकी ही याद हृदय में समाई रहती है। शेष सब असार प्रतीत होता है। अब मैं क्या करूं?

कमलेश्वर! शेष सब असार प्रतीत हो, इससे ज्यादा सद्भभाग्य और क्या होगा! कुछ करके बाधा डालना चाहते हो! देखते रहो, घबड़ाओ मत--घबड़ाहट लगेगी, क्योंकि सब असार मालूम होगा। जहां-जहां सार था कल तक, वहां-वहां असार मालूम होगा, तो डर भी लगेगा कि यह मुझे क्या हो रहा है? कहीं विक्षिप्त तो नहीं हो रहा? क्योंकि सारी दुनिया जिन चीजों की तरफ दौड़ी जा रही है, वे मुझे असार दिखने लगीं। सारी दुनिया जिसके लिए पागल है--धन के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए--मुझे उसमें सार नहीं मालूम होता। इतने सारे लोग तो विक्षिप्त नहीं हो सकते!
लेकिन तुमसे एक बात कहूं, इतने सारे लोग बुद्ध नहीं हो सकते। विक्षिप्त हो सकते हैं। हैं ही। बुद्ध तो इने-गिने हैं, अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं, अबुद्धों की भीड़ है, और तुम उसी भीड़ से हो, इसलिए स्वभावतः मन में बड़ी चिंताएं उठने लगेंगी कि मुझे कुछ गड़बड़ तो नहीं हो रहा! फिर कल तक जो चीजें सार मालूम होती थीं, उनके कारण जीवन में व्यस्तता थी, काम था, आज वे असार मालूम होने लगेंगी, तो व्यस्तता कम हो जाएगी, समय काटे नहीं कटेगा, लगेगा अब करना क्या है? यही तुम पूछ रहे हो कि अब मैं क्या करूं? अब परमात्मा को करने दो! तुमने बहुत कर लिया। पाया क्या? कर-कर के भी क्या पाया? हाथ क्या लगा? अब छोड़ ही दो उस पर। कहो कि अब तू कर। अब हम तेरी मर्जी से चलेंगे। जो करवाएगा, वह करेंगे, मगर अब हम कर्ता न बनेंगे, अब हम साक्षी ही रहेंगे। करना है तो करेंगे, तेरी आज्ञा है तो करेंगे, तू दुकान करवाए तो दुकान करेंगे, तू बाजार करवाए तो बाजार करेंगे, तू जो करवाएगा, करेंगे, लेकिन अब हम कर्ता नहीं होंगे, कर्ता तू है, अब तू समझ। पाप तेरे, पुण्य तेरे, धर्म तेरा, अधर्म तेरा, नीति तेरी, अनीति तेरी हमारा अब कुछ भी नहीं है। हम तो सिर्प साक्षी रहेंगे। हम तो दृष्टा से हिलेंगे नहीं, डिगेंगे नहीं। यह करोः दृष्टा से मत डिगो।
कमलेश्वर, एक शुभ घड़ी तुम्हारे जीवन में उदय हो रही है। लेकिन जब भी इतनी क्रांतिकारी घड़ियां आती हैं, जब इतने आमूल रूपांतरण होते हैं, तो बेचैनी भी होती है, क्योंकि सब अस्त-व्यस्त हो जाता है, कल का सब बना-बनाया सारा खेल एकदम खत्म। अब तक जिसको इतनी चेष्टा से, इतने श्रम से रचा था, वह एकदम तिरोहित हो गया। जैसे ताश का किसी ने घर बनाया, हवा का झोंका आया और घर गिर गया। जरा सा झोंका! और यहां तुम पहली ही दफा आए हो, हवा का जरा सा झोंका ही लगा है और तुम्हारा घर गिर गया है। तुम्हारी बेचैनी भी मैं समझ सकता हूं। तुमको लग रहा होगा; अब क्या करूंगा? अभी तक एक दौड़ थी, लगा रहता था; एक धुन थी; उलझा रहता था, एक रस था, एक लगाव था, यह करना, वह करना, यह सब छिन गया, अब चाहूंगा भी कि उसमें रस लूं तो मुश्किल मालूम होगा। रस तो तभी तक हो सकता था जब तक मूर्च्छा थी। अब तो करना भी पड़ेगा तो विरस होकर करूंगा। इसी को वैराग्य कहते हैं। वैराग्य का अर्थ भाग जाना नहीं है, वैराग्य का अर्थ हैः करना तो वही जो परमात्मा करवा रहा है, लेकिन अब उसमें रस न रह जाए, विरस हो जाए। अभिनय रह जाए। बस, एक नाटक। गंभीरता से न लेना, हलके-फुलके मन से लेना। फिर कोई बोझ बोझ नहीं है।
ऐसे कुछ बदल गए हम!
बेमानी अब हर मौसम!!
रंग बरसे या झड़ी लगे,
वासंती ज्वार-ज्वर जगे,
किंतु नहीं सरसेंगे अब--
सपने पतझार के सगे,
सुमनों की हार हो गई,
बदशकल बहार हो गई,
ऐसे कुछ छाया भ्रम-तम,
धुंधलाया दिनकर का क्रम! मन अब उन्मन-बेहाल हो,
कैसे जीवन निहाल हो;
सांसों का काफिला लुटा,
क्या अबीर क्या गुलाल हो;

टेसू के फूल जल रहे,
आग में पलाश ढल रहे;
ऐसे कुछ आंख हुई नम,
दृष्टि-दृष्टि लगती पुरनम! फागुनी धमार क्या करें,
गूंजता खुमार क्या करें; तार-तार अश्रु से कसा,
तान बेशुमार क्या करें;
मीड़ों में भरा क्लेश है,
केवल अवरोह शेष है;
ऐसे कुछ राग गए थम,
मौन हुआ असमय सरगम!
अब तक एक गीत गा रहे थे, अचानक टूट गया। अब तक एक सितार बजा रहे थे, तार छिन्न-भिन्न हो गए। तुम्हारी बेचैनी मैं समझ सकता हूं। मगर यह बेचैनी शुभ है। अगर तुम इसे झेलने को राजी हो जाओ, तो तुम्हारे जीवन में सूर्योदय हो सकता है। डर जाओ, पीठ मोड़ लो, फिर भागकर पुराने खेल में लग जाओ--और जोर से लग जाओ ताकि पता ही न चले, तो बात दूसरी। तो आ गए थे करीब कि तुम्हारे भीतर भी दीया जल जाता और आते-आते छिटक गए दूर। और पास आना तो कठिन, दूर जाना बहुत आसान। क्योंकि दूर जाना पुरानी आदत के अनुकूल और पास आना बिल्कुल नई घड़ी है।
कहते हो तुम, मैं जब से यहां आया हूं तब से बस आपकी ही याद हृदय में समाई रहती है। समाई रहने दो। ऐसे ही तो मैं तुम्हारे भीतर के पुराने तार तोडूंगा, पुरानी जड़ें काटूंगा। ऐसे ही तो मैं तुम्हारी पुरानी आदतों को उखाडूंगा। ऐसे ही तुम्हारी पोर-पोर में यह याद समा जाए तो तुम नए होकर आविर्भूत हो सकोगे, तुम्हारा पुनर्जन्म होगा। तुम द्विज बनोगे। तुम ब्राह्मण हो सकते हो, लेकिन मध्य-काल कठिनाई का होगा। पुराना चला जाएगा और नया आएगा नहीं और बीच में तुम त्रिशंकु की भांति बहुत दिन तक अटके रहोगे। यह तुम पर निर्भर है कि कितनी देर लगाओगे। अगर साहस हो तो यह समय जल्दी पूरा हो जाता है। एक क्षण में भी पूरा हो सकता है। और अगर साहस न हो तो जन्मों-जन्मों तक भी कोई त्रिशंकु की भांति लटका रह सकता है। न इधर का न उधर का।
एक बात पक्की है कि अब तुम कोशिश भी करोगे तो भी पुराने को फिर से जमाने में सफल न हो पाओगे। हवा का झोंका अगर एक बार गिरा गया तुम्हारे ताश के महल को, तो अब तुम लाख उपाय करो, इस बात को कैसे भुलाओगे कि यह ताश का महल है, हवा का एक झोंका इसे गिरा देने को काफी है। कागज की नाव एक दफा डूबते तुमने देख ली, तो अब कैसे अपने को समझाओगे कि यह कागज की नाव नहीं है और अब कभी नहीं डूबेगी।
सत्संग का इतना ही अर्थ है। सदगुरु तो एक हवा का झोंका है। डुबा दे तुम्हारी कागज की नावें, गिरा दे तुम्हारे ताश के महल। सद्गुरु तो आता है पहले एक चोट की तरह ही; झंझावात की तरह, एक तूफान की भांति। लेकिन जो उसे झेलने को राजी हो जाते हैं; वे निखर जाते हैं; वे साफ-सुथरे हो जाते हैं; वह तूफान उनकी धूल-धवांस झाड़ ले जाता है। मगर सद्गुरु को झेलने की कला है। लाओत्सु ने कहा है--और उस वचन में लाओत्सु ने सत्संग का पूरा राज रख दिया है--कहा है लाओत्सु ने कि तूफान आता है बड़ा, बड़े-बड़े पेड़ अकड़े खड़े रहते हैं, तूफान से लड़ते नहीं, तूफान जिस दिशा में जा रहा हो, उसी दिशा में झुक जाते हैं। तूफान से लड़ते हैं, तो गिर जाते हैं। गिर गए तो फिर उठ नहीं सकते। छोटे-छोटे घास के पौधे तूफान आता है तो झुक जाते हैं, तूफान के साथ ही झुक जाते हैं; तूफान के साथ अपना तालमेल जोड़ लेते हैं, समर्पित हो जाते हैं, तूफान उनकी धूल-धवांस झाड़ कर चला जाता है, वे घास के पौधे फिर खड़े हो जाते हैं। वे जो बड़े-बड़े अहंकार से भरे हुए वृक्ष थे, अब दुबारा खड़े नहीं हो सकते।
सत्संग की कला हैः विनम्र होना, समर्पित होना, घास के पौधे हो जाना। अगर तुम अकड़ कर खड़े रहे, मैं जो कह रहा हूं अगर तुमने उससे किसी तरह का

विरोध अपने भीतर किया, प्रतिरोध किया, अपने को बचाने की कोशिश की, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। अगर तुम झुक गए, राजी हो गए, सहज भाव से स्वीकार कर लिया; देखा, समझा, पहचाना और जो रंग यहां बरस रहा है, उस रंग में अपने को डूब जाने दिया; और जो फूल यहां उड़ रहे हैं, जो गंध यहां उड़ रही है, उस गंध में अपने को निमज्जित हो जाने दिया, तो फिर कोई चिंता नहीं है, तुम ताजे हो जाओगे, तुम नए हो जाओगे। और तब वह जो बीच की घड़ी है, ज्यादा लंबी नहीं होगी। वह एक पल में पूरी हो सकती है। संक्रमण का काल कठिन तो होता है, लेकिन लंबा हो जाए तो दुखदाई हो जाता है। लंबा करना न करना तुम्हारे ऊपर निर्भर है। मत पूछो कि अब क्या करूं? अब करना छोड़ो! अब सिर्प देखो। जो हो रहा है, उसे देखो। देखो कि सब असार हो गया। देखो कि तुम्हारे जीवन में एक नई घटना घट रही है, कि कोई नई याद तुम्हारे भीतर समाई जा रही है। न मैं तुम्हें धन दे सकता, न पद दे सकता, न प्रतिष्ठा दे सकता। मेरे साथ चलोगे तो शायद होगा भी तुम्हारे पास यह सब तो छिन जाएगा। मेरे कारण तुम्हें समाज में सम्मान नहीं मिलेगा, समादर नहीं मिलेगा। मेरे साथ चलोगे, पत्थर पड़ सकते हैं, अपमान हो सकता है, पागल समझे जाओगे। मेरे साथ चलना मंहगा सौदा है। लेकिन महंगा तभी तक लगता है जब तक तुम्हें वह दिखाई पड़ता है जो खो रहा है, जिस दिन तुम्हें वह दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है जो मिल रहा है, फिर महंगा नहीं दिखाई पड़ता। फिर कौड़ियों के मोल मोती खरीद लिए, हीरे खरीद लिए। फिर फिर मिट्टी गवाईं और अमृत पा लिया कमलेश्वर शुभ घड़ी है इसे ऐसे ही मत बीत जाने देना।
आजीवन रहना है,
सुधि के तहखानों में!
नयनों में चुभी सुई,
बूंद-बूंद नींद चुई;
पीर से फकीर बने,
प्रीत चश्मदीद हुई;
लाज बनी दीवानी,
करती है मनमानी;
और एक नाम लिखो,
मीरा-रसखानों में!
अगर मेरी बात समझ में आने लगे, तो तुम्हारा नाम भी मीरा और रसखानों में लिखा जाए!
आजीवन रहना है,
सुधि के तहखानों में!
अब तो सुरति में जीओ! सुधि में, बोध में।
आजीवन रहना है,
सुधि के तहखानों में!
नयनों में चुभी सुई,
बूंद-बूंद नींद चुई;
यह मैं क्या कर रहा हूं? तुम्हारी आंखों में सुई चुभा रहा हूं। तभी तुम जागोगे। इससे कम उपाय काम करने वाला नहीं।
आजीवन रहना है,
सुधि के तहखानों में!
नयनों में चुभी सुई,
बूंद-बूंद नींद चुई;
पीर से फकीर बने,
प्रीत चश्मदीद हुई;
लाज बनी दीवानी,
करती है मनमानी;
और एक नाम लिखो,
मीरा-रसखानों में!

लेकिन इससे चूके अगर--चूक सकते हो; बहुत आते हैं और चूक जाते हैं; पाते- पाते चूक जाते हैं। नदी तट पर आ जाते हैं और अंजुलि नहीं बना पाते और जल नहीं पी पाते।
खुद से आजिज ऊबे,
तंहाई में डूबे;
मेरे तो भाल लिखे,
दो आंसू के सूबे;
ज्यों इतनी उमर कटी,
सकुची सिमटी-सिमटी;
बाकी भी गुजरेगी,
गम के मयखानों में!
चूके तो फिर गम के मयखाने हैं। फिर पिओ शराब और। तरह-तरह की शराबें हैं; धन की, पद की, प्रतिष्ठा की। जो-जो बेहोश करे, वही शराब। फिर पिओ शराब और डूबे रहो।
खुद से आजिज ऊबे,
तंहाई में डूबे;
मेरे तो भाल लिखे,
दो आंसू के सूबे;
अगर वही तुमने तय कर रखा है कि यही हमारी किस्मत है कि आंसू के सूबे ही
बस हमारा राज्य होने वाले हैं, तो तुम्हारी मर्जी! मैं तुम्हारे आंसुओं को मोती बनाने को तैयार हूं, मैं तुम्हें वे सूबे देने को राजी हूं जो मोतियों से भरे हैं, मगर लेने की भी हिम्मत चाहिए। इस दुनिया में सबसे बड़ी हिम्मत परमात्मा को लेने की हिम्मत है। क्योंकि उसके लिए तुम्हें पूरी- पूरी शून्यता को अर्जित करना होता है। तुम्हें अपने पात्र को पूरा शून्य करना होता है, रिक्त करना होता है।
खुद से आजिज ऊबे,
तंहाई में डूबे;
मेरे तो भाल लिखे,
दो आंसू के सूबे;
ज्यों इतनी उमर कटी,
सकुची सिमटी-सिमटी;
बाकी भी गुजरेगी,
गम के मयखानों में!
तुम्हारी मर्जी फिर! फिर लौट जाओ.गम के मयख़ानों में! लेकिन लौट भी न सकोगे। चेष्टा कर सकते हो; हार जाओगे।
एक मित्र ने लिखा है कि कुछ दिन यहां आकर मस्त हुए, फिर थोड़ा डर लगा कि मस्ती कहीं सीमा के बाहर न हो जाए, तो भाग गए। लेकिन फिर घर टिक नहीं सके पांच दिन। पांच दिन बाद अब फिर आ गए हैं। अब क्या होगा, पूछा है। अब तुम्हारी मर्जी! या तो फिर भागो... अब की बार तीन दिन में लौटोगे... और या फिर ऐसे डूबो कि भागने की जरूरत न रह जाए। अगर जाओ भी तो डूब कर जाओ। तो फिर तुम जहां हो, वहीं मैं हूं। फिर कुछ आने की बात नहीं। या कभी-कभार जयराम जी करने चले आए। नहीं तो तुम जहां हो वहीं ठीक हो।
अब क्या सोचूं-समझूं,
कैसे सम्हलूं-सुलझूं;
दूर रहूं तो भी मन--
करता फिर-फिर उलझूं;
श्वांसों में घुलूं-मिलूं,
पलकों में खुलूं-खिलूं;
मन के माणिक मिलते,
ममता की खानों में!
यह तो प्रेम की दुनिया है, ममता की खान, यहां तो प्रेम लिया-दिया जा रहा है, यह तो प्रेम का मंदिर है, यह तो प्रेम की मधुशाला है--उलझो, डूबो! अब

क्या सोचूं-समझूं! मत सोचो-समझो अब। सोच-सोच खूब तो गंवाया। अब जरा बिनसोचे भी एक कदम लो।
अब क्या सोचूं-समझूं,
कैसे सम्हलूं-सुलझूं;
दूर रहूं तो भी मन--
करता फिर-फिर उलझूं,
श्वांसों में घुलूं-मिलूं, पलकों में खुलूं-खिलूं;
मन के माणिक मिलते,
ममता की खानों में!

आजीवन रहना है,
सुधि के तहखानों में!

नयनों में चुभी सुई,
बूंद-बूंद नींद चुई;
पीर से फकीर बने,
प्रीत चश्मदीद हुई;
लाज बनी दीवानी,
करती है मनमानी;
और एक नाम लिखो,
मीरा-रसखानों में!

तीसरा प्रश्नः ओशो, मैं आपको समझ क्यों नहीं पाता हूं?

किशोर! कौन समझ पाता है! इससे चिंता न करो। यही समझने की शुरुआत है। यह समझ पाना कि मैं नहीं समझ पाता हूं, समझने की शुरुआत है। जो सोचते हैं कि समझ पाते हैं, वे ही चूक रहे हैं। जिनको ख्याल है कि हम तो जानते ही हैं, जो पहले से ही बैठे हैं माने कि ज्ञान उन्हें हो चुका है, संभावना है कि वे चूकेंगे।
किशोर, तुम न चूकोगे। यह पहली किरण उतरी कि मैं समझ नहीं पा रहा हूं।
यह अहंकार पर पहली चोट पड़ी। और तुमने ठीक पूछा कि मैं आपको क्यों नहीं समझ पाता हूं? न समझ पाने का कारण क्या होगा? कारण अज्ञान नहीं होता, कारण सदा ज्ञान होता है। ज्ञान अटका होगा कहीं न कहीं। और इस देश में तो ज्ञान की कमी नहीं है। यह देश तो ज्ञान से मरा जा रहा है। इस देश के गले में ज्ञान की फांसी लगी है। जो देखो वही ज्ञानी है। अज्ञानी है ही कहां! खोजने निकलो, कोई मिलेगा अज्ञानी? पूछना जरा रास्ते पर किसी से कि भाई, क्या तुम अज्ञानी हो? एकदम गर्दन पकड़ लेगा वह कि तुमने समझा क्या है? शायद ही एकाध आदमी मिले, कोई सिरफिरा, जो कहे कि हां, मैं अज्ञानी हूं। कहो, क्या काम है? नहीं तो ज्ञानी ही ज्ञानी हैं।
ज्ञान सस्ती चीज है और अहंकार के लिए बड़ा आसान आभूषण है। मगर ज्ञान में रखा क्या है? गीता कंठस्थ हो गई, बाइबिल कंठस्थ हो गई, कुरान कंठस्थ हो गई--मिलेगा क्या? कंठ तक ही बात रहेगी। खोपड़ी में गूंजते रहेंगे ये शब्द, ये तुम्हारे प्राणों का रूपांतरण नहीं करेंगे। हां, एक खतरा जरूर हो जाएगा कि इन शब्दों के खोपड़ी में गूंजने के कारण तुम कुछ अगर कभी भूले- चूके भी किसी सदगुरु के पास पहुंच गए, तो उसे समझ नहीं पाओगे। क्योंकि ये शब्द अड़चन डालेंगे। तुम्हारे निष्कर्ष बाधा खड़ी करेंगे। तुम भीतर गुनतारा बिठाते रहोगे कि गीता से मेल खाती है यह बात या नहीं? कुरान के विपरीत तो नहीं जाती? बाइबिल में इसका समर्थन है या नहीं? और तुम इसी में उलझे रहोगे।
अगर तुम्हें लगेगा कि हां, इसका समर्थन है, तो भी तुम चूके, क्योंकि तब तुम्हारा आना व्यर्थ हुआ, बाइबिल तो तुम जानते ही थे। अगर बाइबिल के जानने से ही कोई क्रांति होनी थी तो पहले ही हो गई होती। मेरे द्वारा और बाइबिल

को समर्थन मिल गया--और क्या हुआ? और अगर यह बाइबिल के विपरीत पड़ गया, तो तुम क्रुद्ध हो जाओगे, तुम नाराज हो जाओगे। और नाराजगी में थोड़े ही समझा जा सकता है! रुष्ट अवस्था में थोड़े ही कुछ समझा जा सकता है! समझ तो प्रीति मांगती है। प्रीति के सेतु से ही समझ चलती है। फिर जो एक चीज को जानता है, उसको यह भ्रांति होने लगती है कि वह सब जानता है। वह अपने ज्ञान को जगह-जगह लगाता फिरता है।
हेरोडोटस पहला आदमी था जिसने औसत का सिद्धांत खोजा। स्वभावतः जब उसने स्वयं सिद्धांत खोजा था, तो वह चौबीस घंटे औसत के सिद्धांत में उलझा रहता था। हर चीज में औसत निकालता रहता। पिकनिक को गया था पत्नी-बच्चों को लेकर, एक छोटे-से नाले को पार करना पड़ा, मौका चूका नहीं वह--पंडित मौके चूकते भी नहीं। पत्नी ने कहा कि बच्चों को सम्हालो नदी से, हाथ पकड़ लो, उसने कहा, तू रुक, तूने समझा क्या है? अरे, मैं हेरोडोटस, जिसने औसत का सिद्धांत खोजा! अभी निकालता हूं औसत बच्चों की ऊंचाई और औसत नदी की गहराई। जल्दी से--फुटा तो वह अपने साथ ही रखता था--बच्चे नापे, पांच-सात जगह जाकर नदी को नापा, रेत पर बैठ कर हिसाब लगाया, रेत पर ही लिख कर गणित किया और उसने कहा, बेफिक्र रहो, बच्चों की औसत ऊंचाई नदी की औसत गहराई से ज्यादा है; कोई चिंता की बात नहीं। अब पति कहे, तो पति तो परमात्मा है... और फिर हेरोडोटस जैसा ज्ञानी पति... पत्नी ने कहाः जब कहते हो तो ठीक है। हालांकि पत्नी को थोड़ा संदेह था। पत्नियां जल्दी से इस तरह सिद्धांत वगैरह मानती नहीं। मगर अब मजबूरी थी कि ठीक है!
पांच-छह बच्चे, आगे-आगे हेरोडोटस चला अपना फुटा लेकर, बीच में बच्चे चले, पीछे पत्नी चली--कुछ बच्चे बीच-बीच में डुबकी खाने लगे। पत्नी ने कहा कि बच्चे डुबकी खा रहे हैं, भाड़ में जाए तुम्हारा औसत का सिद्धांत, बच्चों को बचाओ! मगर हेरोडोटस ने बच्चों को नहीं बचाया, वह भागा, उसने कहा तो फिर गणित में कोई गलती हुई होगी। पंडित तो पंडित। किसी तरह पत्नी ने बच्चों को पकड़ा, किसी तरह बचाया। हेरोडोटस तो फिर अपना हिसाब रेत पर लगाने लगा था। कहीं कुछ भूल होनी चाहिए, नहीं तो यह हो ही कैसे सकता है!
दुनिया में सरकारें औसत के सिद्धांत से चलती हैं।
उन्नीस सौ सत्रह में जब रूस में क्रांति हुई तो उन्होंने औसत के सिद्धांत का खूब उपयोग किया, बड़ा प्रचार किया। पश्चिम से एक यात्री आया हुआ था, उसने कहा कि मैंने सुना कि आपके देश में शिक्षा सौ प्रतिशत बढ़ गई है। इतनी शीघ्रता से इतना विकास कैसे हुआ? जिस अधिकारी से उसने कहा था, उसने कहाः आओ, हम दिखाते हैं। वह पास के गांव में ले गया। वह यात्री तो बड़ा हैरान हुआ, वहां केवल एक शिक्षक था और दो विद्यार्थी, उसने कहा, हम कुछ समझे नहीं। उसने कहा कि क्रांति के पहले एक ही विद्यार्थी था, अब दो विद्यार्थी हैं। शिक्षा एकदम दुगुनी हो गई है।
सिद्धांत तो बिल्कुल सच है। सिद्धांतों से जीने वाले लोग हवाई कल्पनाओं में जीते हैं। फिर चाहे वे सिद्धांत गणित के हों, विज्ञान के हों, धर्म के हों, दर्शन के हों, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता।
एक दिन ढब्बू जी ने देखा कि चंदूलाल अपनी प्यारी-प्यारी कोमल-कोमल श्वेत शुभ्र बिल्ली को साबुन लगा-लगा कर, अच्छा मल-मल कर स्नान करवा रहे हैं। और बिल्ली भाग निकलने की पूरी चेष्टा कर रही है। मगर चंदूलाल हैं कि लगे हैं पूरे प्राणपण से। जब ढब्बूजी ने देखा यह सब, तो वे चंदूलाल से बोले कि चंदूलाल, क्या आज मार ही डालोगे इसे? अरे, ये ठंड के दिन और तुम इसे नहला रहे हो!
चंदूलाल बोले कि तुम चिंता मत करो, आज इसे अच्छी तरह नहलाना है। और यह पानी कोई साधारण नहीं, गंगा का है, सो इसके जन्म-जन्म के पाप भी कट जाएंगे। अरे, गंगाजल में तो मुर्दे जिंदा हो जाते हैं, पापी पुण्यात्मा हो जाते हैं! और यह बिल्ली है, न मालूम कितने चूहे खा चुकी है, मैं इसका भविष्य सुधार रहा हूं। खुद भी चंदूलाल गंगा की यात्रा करते हैं, स्नान कर आते हैं--और पानी भी ले आते हैं दूसरों की सहायता के लिए।
आखिर चंदूलाल नहीं माने। और एक घंटे बाद जब ढब्बू जी लौट कर आए तो देखा कि बिल्ली मर चुकी है और उसके पास चंदूलाल बैठे हैं। बिल्ली को मरा

देख ढब्बू जी बोले कि देखो, आखिर मार डाला न तुमने इसे! मैंने तुमसे पहले ही कहा था कि इतनी ठंड में इसे मत नहलाओ, मगर तुम ठहरे पंडित, तुम मानो कैसे!
चंदूलाल ने कहाः स्नान करने से यह मरी नहीं, स्नान करने से यह मर सकती नहीं। --यह गंगाजल है, शुद्ध गंगाजल! वह तो स्नान कराने के बाद जब मैंने इसे निचोड़ा, तब मरी।
पंडित हैं, उनके अपने सिद्धांत हैं।
तुम कहते हो, मैं आपको समझ क्यों नहीं पाता हूं? किशोर, कहीं-कहीं पांडित्य अटका होगा। जानकारी छोड़ो। नहीं तो गंगाजल बिल्ली को मारेगा। और ठंड के दिन हैं! और ऐसे न मरी तो निचोड़ने में मरेगी। तुम ज्ञान को सरका कर अलग रख दो, फिर तुम मुझे समझ पाओगे। मैं जो बातें कह रहा हूं, सीधी-साफ हैं। जरा भी उलझी नहीं हैं। मैं कोई पंडित नहीं हूं। संस्कृत का क ख ग भी मुझे आता नहीं। न फारसी जानता हूं, न अरबी। जो कह रहा हूं, वही सीधी-सादी बात है। कामचलाऊ, रोज की भाषा में बोल रहा हूं, इसमें कुछ उलझन नहीं है। यह कोई सैद्धांतिक लफ्फाजी नहीं है। यह सत्यों का सीधा-सीधा इशारा है, इंगित है। लेकिन तुमने अच्छा किया कि पूछा। तुम्हारा मस्तिष्क बीच में उपद्रव खड़े कर रहा है। नए-नए आए भी हो, यह स्वाभाविक भी है। जो लोग धीरे-धीरे यहां बैठते-बैठते इस नये ढंग की गुफ्तगू में शरीक होते-होते रच-पच जाते हैं, उनको फिर बाधा नहीं पड़ती। मैं जितना कहता हूं उतना तो सिर्फ इंगित है, वे वह भी समझने लगते हैं जिसकी तरफ इंगित कर रहा हूं। जो कहता हूं, वह तो वे समझ ही जाते हैं, वह भी समझ जाते हैं जो नहीं कहा जा सकता। और आनंद तो उसी को समझने में है जो नहीं कहा जा सकता। कहना तो केवल निमित्त है, बहाना है। मगर जब तक तुम अपने मन को हटा कर न रख सकोगे, तब तक यह अदभुत राज समझ में नहीं आ सकता। बात सीधी-सादी है, बात छोटी है, मगर बड़ी गुरु-गंभीर है, बड़ी रहस्यपूर्ण है। जीवन की पोथी को हम पढ़ रहे हैं यहां--और किसी पोथी पर मेरा भरोसा नहीं है। तुम भी जीवन की पोथी पढ़ने को राजी हो जाओ। बस, मन को हटाने की कला सीखो!
तो सिर्प मुझको सुनो मत, ध्यान भी करो! जो सिर्फ मुझे सुनेगा, उसे यह अड़चन आती ही रहेगी। साथ-साथ ध्यान भी करो। वह उसका अनिवार्य अंग है। ध्यान तुम्हारी भूमिका को तैयार करेगा, क्योंकि मन को हटाएगा। इसलिए ध्यान के इतने आयोजन यहां चल रहे हैं। जो तुम्हें रुच जाए! मगर एक ध्यान में डुबकी मारो। ध्यान में नहाओ और फिर मुझे सुनो! फिर बात सीधी-सीधी पहुंच जाएगी। एकदम हृदय से हृदय तक पहुंच जाती है। यह हृदय की हृदय से बात है। इसमें सिर का कोई काम नहीं है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, ऐसा लगता है कि हाथी मर चुका और मैं पूंछ को नाहक
ही पकड़े हूं। सद्गुरु साहिब, कृपा करो ताकि यह अंधकार जाए अब!

संत! महाराज, न तो कोई हाथी है न कोई पूंछ! समझा-बुझा कर किसी तरह तुम्हें राजी किया तो हाथी को तो निकल जाने दिया, मगर पूंछ को पकड़े हो--इस आशा में कि कभी जरूरत पड़े तो हाथी को भी खींच लेंगे वापस। हाथी निकल कर जाएगा कहां जब तक पूंछ अपने हाथ में है! और संत जरा मजबूत आदमी हैं! सो सोच रहे होंगे कि कोई फिकर नहीं, निकल जाओ बेटा, पूंछ तो हाथ में है। जैसे ही लगा कि गलती हुई जा रही है, फौरन खींचकर भीतर कर लेंगे।
न कहीं हाथी है, संत, न कहीं पूछ है! सब ख्याल हैं! न तुम्हें किसी ने बांधा है, न तुम हो कि बांधे जा सको। अहंकार से बड़ा झूठ इस संसार में कुछ भी नहीं है। और अहंकार के झूठ से फिर हजार झूठ पैदा होते हैं। अहंकार के झूठ से मृत्यु का झूठ पैदा होता है। पहले अहंकार को मान लेते हो कि "मैं" हूं, फिर डर लगता है कि अब मरना पड़ेगा। मैं हूं ही नहीं, तो डर भी गया, मरने का डर भी गया, बात ही खत्म हो गई--जब हूं ही नहीं तो मरेगा कौन? पहले मान लेते हो कि मैं हूं, फिर डर लगता है कि कहीं पाप न हो जाए, कहीं नरक में न सड़ना पड़े, तो पुण्य करूं, कि स्वर्ग में मजा लूंटू। यह सिर्फ "मैं" के कारण सारा उपद्रव पैदा हो रहा है। और यह "मैं" अगर रहा, तो तुम्हारा नरक, तुम्हारा

स्वर्ग, सब तुम्हारी कल्पनाएं मात्र हैं। न कहीं कोई नरक है, न कहीं कोई स्वर्ग है। जो है, यहां है, अभी है। जो होश से भरे हैं, वे अभी स्वर्ग में हैं जहां हैं वहीं स्वर्ग में हैं। और जो बेहोश हैं, वे जहां हैं वहीं नर्क में हैं। बेहोशी नरक है; होश स्वर्ग है।
संत, होश में आओ! कहां का हाथी, जरा गौर से तो देखो! कहीं कोई हाथी नहीं है। तो पूंछ तुम कैसे पकड़ोगे? और जब हाथी तक को निकल जाने दिया, तो इतनी कृपा और करो कि अब पूंछ को भी काहे को पकड़े हो! और नकली हाथी! तो हो सकता है हाथी जा ही चुका हो, सिर्प प्लास्टिक की पूंछ--और तुम बैठे हो पकड़े! जरा हिला-डुला कर भी तो देखो!
एक शराबघर में एक आदमी प्रविष्ट हुआ। उसने जाकर शराबघर के मालिक को कहा कि मैं अपनी एक आंख को काट सकता हूं, चाट सकता हूं।
आंख को काट सकता हूं, चाट सकता हूं! शराबघर का मालिक भी, इस तरह के झक्कियों से तो दिन-रात पाला पड़ता था, तो उसने कहा कि तुम्हारा प्रयोजन क्या है? तो उस आदमी ने कहा ये पांच सौ रुपये लगाता हूं दांव पर, अगर न काट सकूं, न चख सकूं, तो पांच सौ रुपये दूंगा। और अगर काट सकूं, चख सकूं, तो पांच सौ रुपये लूंगा।
दुकानदार ने भी सोचा कि पांच सौ हाथ आ रहे हैं, यह आदमी पागल मालूम पड़ता है, आंख को कैसे काटोगे, कैसे चखोगे? दांव लगा लिया। उस आदमी ने अपनी एक आंख बाहर निकाली--वह नकली आंख थी--जब उसने आंख बाहर निकाली, उसकी छाती पर सांप लोट गया, उसने कहा, मारे गए! उसने काटा भी और चखा भी और वापस लगा ली आंख; पांच सौ रुपये उठा कर खीसे में रख लिए। फिर बोला कि और इरादा है? दूसरी आंख भी काट सकता हूं और चख सकता हूं।
दुकानदार ने कहा कि दोनों आंखें अगर नकली हों तो यह आदमी यहां तक आ ही नहीं सकता। सीधा चला आया, न टकराया, न कुछ, न दरवाजे पर किसी से पूछा। अब तो यह हद कर रहा है! तो शराबघर के मालिक ने कहा कि ठीक है, मगर अब हजार रुपये दांव पर लगाऊंगा।
हजार लगा लो!
हजार रुपये दांव पर लगा दिए। उस आदमी ने अपने दांत निकाले--वे नकली थे--दांत निकाल कर उसने आंख को काट कर बता दिया। दुकानदार ने सिर ठोंक लिया। उसने कहा, हद हो गई; यह मैंने सोचा ही नही! उसने हजार रुपये उठा कर खीसे में रख लिए और बोलाः और इरादे हैं?
दुकानदार ने पूछाः अब और क्या कर सकता है तू? अरे, दो ही आंख होती हैं,
अब क्या करेगा? उसने कहाः देखते हो, वह दूसरे कोने पर जो प्याली रखी है टेबल पर, यहीं से उसमें पेशाब कर सकता हूं। होगा कोई पचास फीट का फासला। दुकानदार ने कहाः हद हो गई! अब यह क्या करेगा? अब अपने दिए पैसे भी निकाल लेना ठीक है। उसने कहाः अब पांच हजार दांव पर लगाता हूं।
उसने कहाः ठीक। और उस आदमी ने पेशाब करनी शुरू कर दी। अब वह कहां पहुंचने वाली थी वहां तक! वह यहीं गिरने लगी कोई तीन-चार फीट की दूरी पर। टेबिल पर गिरी, फर्श पर गिरी और वह दुकानदार लेकर गमछा हंसता जाए; और पोंछता जाए, और उसने कहा कि अब मारे गए!
अरे, उसने कहा, तू बिल्कुल फिकर न कर! वह देखता है बाहर तीन आदमी खड़े हैं? उनसे मैंने शर्त लगाई है कि सारे शराबघर में पेशाब करूंगा और तुम देखोगे यह आदमी हंस-हंस कर अंगोछे से पोंछेगा। दस हजार रुपये की शर्त लगाई है!
संत महाराज, आंख नकली, दांत नकली, मगर वह दुकानदार नई-नई झंझटों में फंसता गया! पहले एक झंझट में फंसा, फिर दूसरी उसकी समझ में न आई, फिर दूसरी में फंस गया, फिर तीसरी भी उसकी समझ में न आई। जिंदगी बड़ी अदभुत है! एक झंझट से निकलो, दूसरी में फंसे; दूसरी से निकलो, तीसरी में फंसे। अब हाथी ही निकल गया, अब तुम पूंछ में उलझे हो! जरा छोड़ कर भी तो देखो कि पूंछ कहीं जाती कि नहीं? यहीं गिर पड़ेगी तीन-चार फीट दूर। इससे ज्यादा नहीं जा सकती। प्लास्टिक की पूंछ है।
लेकिन संत महाराज ध्यान करते रहते हैं बैठे... पहरेदारी का काम करते हैं, रात भर जगते हैं, सो उनको दिन में हाथी दिखाई पड़ते होंगे। अब रात भर

जगोगे, तो उलटी-सीधी चीजें दिखाई पड़ती हैं! यहां कहां हाथी! यह कोई साधुओं की पुरानी जमात थोड़े ही है!
जाएगी, महाराज, पूंछ भी जाएगी, फिक्र न करो! भरोसा रखो! अरे, हाथी ही चला गया तो पूंछ कितने दिन बच सकती है!
और मैं देख रहा हूं, संत में क्रांतियां होती जा रही हैं। संत जब शुरू- शुरू में आए थे, तो पक्के पंजाबी थे। ध्यान भी करते थे... सक्रिय ध्यान उनका देखने लायक होता था। क्या घूंसे चलाते थे--हवा में! और क्या नपी-तुली गालियां देते थे--पंजाबी में! एक तो गाली और फिर पंजाबी में! लोग मुझसे आकर कहते थे कि और सबका ध्यान तो ठीक है, मगर ये संत किस तरह का ध्यान करते हैं? भरा हुआ पड़ा है, पंजाब भरा हुआ पड़ा है, सो उसका निकलना जरूरी था। वह निकल गया। वहा तूफान गया। अब शांत हो गए हैं। अब न घूंसा चलाते, न गाली निकालते। अब वे दिन गए। अब एक गहन शांति आ गई है, जैसे तूफान के बाद एक शांति आती है। इसीलिए प्रश्न उठा है, इसीलिए पूछ रहे हैं कि भगवान, ऐसा लगता है कि हाथी जा चुका... हाथी यानि वही पंजाबी... और मैं पूंछ को नाहक ही पकड़े हूं। सदगुरु साहिब, कृपा करो ताकि अंधकार मिट जाए अब! जाएगा, महराज! जल्दी न करो! क्योंकि जल्दी चला जाए तो लौट कर आ जाता है। जाते-जाते जाने दो। इतने दिन धीरज रखा है, और धीरज रखे रहो। एक दिन तुम आकर कहोगे कि गया। पूंछ कहां है, एक दिन पूछोगे कि कम से कम पूंछ तो रहने देते। हाथी गया सो गया, अरे पूंछ थी हाथ में, तो कुछ भरोसा था।
जल्दी न करो! जीवन की क्रांति जन्मों-जन्मों के अंधकार को तोड़ना है; जन्मों-जन्मों के कचरे से छुटकारा पाना है। और अच्छा है कि आहिस्ता- आहिस्ता हो। क्योंकि जल्दी हो जाए तो शायद परिपूर्ण न हो पाए, समग्र न हो पाए।
मगर मैं खुश हूं, संत! तुम्हारे विकास को देख कर मैं परम आह्वदत हूं! ... मैं इस अर्थों में सौभाग्यशाली हूं कि मेरे पास जो लोग साधना में लगे हैं, वे सच में ही साधना में लगे हैं। वे किसी ढोंग में नहीं पड़े हैं-- यहां ढोंग में पड़ने का उपाय नहीं है। वे किसी पाखंड में नहीं उलझे हैं-- यहां पाखंड में उलझने का उपाय नहीं है। यहां मेरे पास जो लोग हैं, वे निश्चित ही गहन साधना में संलग्न हैं।
बुद्ध के बाद पृथ्वी पर संन्यास की इतनी विस्तीर्ण प्रक्रिया फिर कभी नहीं हुई और इस बार तो बात और भी बड़ी होती है। क्योंकि अभी तो यह शुरुआत है, अभी तो यह गंगोत्री है, अभी तो गंगा बहुत बड़ी होनी है। और जितनी बड़ी गंगा होगी, और जितने संन्यासियों का विस्तार होता जाएगा, उतनी ही साधना सुगम होती जाएगी। क्योंकि प्रत्येक संन्यासी अपने प्राणों की ज्योति से संन्यास को जगमग करेगा; प्रत्येक संन्यासी अपनी शांति का, अपने आनंद का, अपने उत्सव का दान करेगा। यह महोत्सव विराट होने को है। इस नाव में अनंत-अनंत लोग बैठ कर उस पार जाने को हैं।
संत, तुम्हारी जगह निश्चित है, तुम निश्चित रहो! पहरेदार तो बिठालना
ही पड़ेगा न, कि नाव पर हर कोई न चढ़ जाए।
... पूंछ भी जाएगी!

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
नौवां प्रवचन

बिगस्यो कमल फुल्यौ काया बन

जौपे कोई प्रेम को गाहक होई।
त्याग करै जो मन की कामना, सीस-दान दै सोई।।
और अमल की दर जो छोड़ै, आपु अपन गति जोई।
हरदम हाजिर प्रेम-पियाला, पुलिक-पुलिक रस लेई।।
जीव पीव महं पीव जीव महं, बानी बोलत सोई।
सोई सभन महं हम सबहन महं, बूझत बिरला कोई।।
वाकी गती कहा कोई जानै, जो जिय सांचा होई।
कह गुलाल वे नाम समाने, मत भूले नर लोई।।

अंखियां प्रभु-दरसन नित लूटी।

हौं तुव चरनकमल में जूटी।।
निर्गुन नाम निरंतर निरखौं, अनंत कला तुव रूपी।
बिमल बिमल बानी धुन गावौं, कह बरनौं अनुरूपी।।
बिगस्यो कमल फुल्यौ काया बन, झरत दसहुं दिस मोती।
कह गुलाल प्रभु के चरनन सों, डोरि लागि भर जोती।।
क्षण भंगुर जीवन के--
चार सुमन जीवन के!
चार सुमन जीवन के!!
आंगन में सूर्य घोल,
चंदा से बोल-बोल;
मोल लिए नटखट ने--
स्वर के व्यंजन अमोल;
चुटकी में बीत गए--
महंगे क्षण बचपन के!
चार सुमन जीवन के!!
अर्पित हो मन्मथ में,
तरुणाई के रथ में;
गलबांही डाल चले--
प्रीति-प्यार जन-पथ में;
झूम-झूम चूम लिए--
मादक प्रण यौवन के!
चार सुमन जीवन के!!
अंजुरी भर बीते पल,
नयनों में गंगाजल;
लपटों की बाहों में--
पिघल गए स्वप्न-महल;
माटी में घुले-मिले,
मेघ-सुअन कंचन के!
चार सुमन जीवन के!!
क्षण भंगुर जीवन के--
चार सुमन जीवन के!
जीवन बहुत छोटा है। और जैसे हम उसे जीते हैं, उससे तो और भी छोटा होता जाता है। हम कमाते कम, गंवाते ज्यादा हैं। हमारा जीवन जीवन कहा जा सके, ऐसा भी नहीं। जीवन तो दूर, हमारा ठीक से जन्म भी नहीं हो पाता। जिन्हें स्वयं का होना केवल देह, मन, इनसे ही बंधा मालूम होता है, उन्होंने अभी जाना ही नहीं कि वे क्या हैं और वे क्या हो सकते हैं! जीवन का वास्तविक जन्म तो चैतन्य के अनुभव से शुरू होता है। आत्मानुभव के बिना कोई जन्म नहीं है। आत्मा को न पहचाना, न जाना, तो सोए-सोए सब गंवाया।

और जो हम गंवा रहे हैं, उसका भी हमें पता कैसे चले? वह तो पता तब चलेगा
जब तुम कुछ कमाओगे। झरत दसहुं दिस मोती, यह तो कब पता चलेगा, जब तुम्हारी आंखें खुलेंगी। अभी तो तुम्हें लग रहा है, जो है बस यही है; जितना दिखाई पड़ता है, बस इतना ही है; जितना सुनाई पड़ता है, बस इतना ही है। नहीं-नहीं, बहुत कुछ है जो दिखाई नहीं पड़ता। जो दिखाई पड़ता है, वह तो ना-कुछ है, जो नहीं दिखाई पड़ता, वही सब कुछ है। जो सुनाई पड़ता है, वह तो शोरगुल है, जो नहीं सुनाई पड़ता, वह निःशब्द, वह मौन, वह शून्य, वह ध्यान, वह समाधि, वही सब कुछ है। हाथ जिसे छू नही पाते, कान जिसे सुन नहीं पाते, आंख जिसे देख नहीं पाती, जिस दिन उसका अनुभव होगा, उस दिन रोओगे भी बहुत, हंसोगे भी बहुत। पहले अनुभव पर व्यक्ति रोता भी है और हंसता भी है।
झेन फकीर रिंझाई को जब पहली दफा ज्ञान हुआ तो वह खूब रोया और खूब हंसा। उसके संगी-साथियों ने पूछा कि पागल तो नहीं हो गए हो? क्योंकि इस दुनिया में केवल पागल ही एक साथ यह दो काम कर सकते हैं--हंसने और रोने का। होशियार-समझदार आदमी या तो रोता है या हंसता है। निर्णय होता है उसका। हंसने योग्य हो बात तो हंसता है, रोने योग्य हो बात तो रोता है। सिर्प पागल ही ऐसी दुविधा में हो सकता है। क्या तुम पागल हो गए, रिंझाई?
रिंझाई ने कहाः पागल था, आज पहली दफे पागलपन से मुक्त हुआ हूं। और हंस रहा हूं, रो रहा हूं, साथ-साथ, लेकिन कारण दोनों के अलग-अलग हैं। हंस रहा हूं यह जान कर कि कितना अपूर्व अवसर उपलब्ध था और हम चूके जा रहे थे। कितना अनंत आनंद उपलब्ध था और हमें इसकी खबर ही न थी। आज बरस पड़ा है मेघ, आज हृदय भर गया है अमृत रस से, इसलिए हंस रहा हूं। और रो रहा हूं इसलिए कि कितने दिन व्यर्थ गंवाए, कितने जन्म व्यर्थ गंवाए! यह अमृत तब भी बरस रहा था; बस मेरी याली उलटी रखी थी। यह सौंदर्य तब भी तुझे घेरे हुए था, मगर मैं अंधा था; या आंख बंद किए था। यह अदृश्य मुझे तब भी घेरे हुए था, मगर मैं दृश्य में ऐसा उलझा कि सुध ही न रही कि अस्तित्व दृश्य पर समाप्त नहीं है।
इस बात की सुधि आ जाने का नाम संन्यास है कि जगत दृश्य पर समाप्त नहीं
है; कि जगत इंद्रियों पर समाप्त नहीं है, अतींद्रिय है। इंद्रियों पर तो केवल जो दिखाई पड़ रहा है वह जगत की परिधि है, उसका वास्तविक केंद्र नहीं। जैसे कोई सागर की लहरों को ही सागर समझ कर और वापस लौट आए। सागर है मीलों गहरा, लहरें हैं उथली। लहरों में क्या रखा है! सागर न हो तो लहरें नहीं होंगी। हां, सागर बिना लहरों के भी हो सकता है। लहरें तो क्षणभंगुर हैं; अभी हैं, अभी गईं; मगर हम क्षणभंगुर से उलझ गए हैं। इससे सुलझना है।
गुलाल जिन मोतियों की बातें कर रहे हैं, वे बरस रहे हैं। प्रतिपल बरस रहे हैं, तुम चाहे जागो, चाहे सोओ; तुम चाहे होश में आओ, चाहे बेहोश रहो; तुम चाहे खोए रहो हजार-हजार मूर्च्छाओं में, या बन जाओ साक्षी, मोती तो बरस ही रहे हैं। जिनने भी जाना है, वे सब गवाह हैं। लेकिन तुम्हें कुछ दिखाई नहीं पड़ता। तुम सुन भी लेते हो बुद्धों को, जाग्रत पुरुषों को, इनकार भी नहीं कर सकते उन्हें, क्योंकि उनका अस्तित्व प्रमाण देता है, उनका आनंद पर्याप्त प्रमाण है, मगर तुम भी क्या करो, तुम्हारे अस्तित्व में तो कोई प्रमाण मिलते नहीं; तुम्हारे जीवन में तो कंकड़-पत्थर ही बरसते मालूम होते हैं। रंगीन कंकड़-पत्थर बीनते रहते हो और सोचते हो, कर ली कमाई। चढ़ जाते हो थोड़ी सी सीढ़ियां पदों की, प्रतिष्ठाओं की और समझ लेते हो, पा लिया सब कुछ पाने योग्य। गंवा दिया! यही समय सार्थक हो सकता था अगर सम्यक दिशा में गति होती।
रवि की बुझती किरणों से क्या मेरा भी है नाता?
मैं नहीं जानती दिनकर किस नभ में रात बिताता।
ये कान नहीं सुन पाते "अवसान" तान क्या गाता!
किस कारण शशि अंबर में मुसकाता सा है आता?
तारों के हार बना कर रजनी श्रृंगार सजाती।
कर मुक्त केश अंबर में किसको उलझाने आती?

है मुझे अपरिचित-सा ही इस जग का "कल-रव" सारा, जैसे हो और कहीं पर मेरा "नंदन-वन" प्यारा।

है जिसकी मधुर हंसी से जग-मग स्वर्गच्गा-धारा, मेरी "आंखों का तारा" है सचराचर से न्यारा।

अब याद नहीं है मुझको अपना ही "कूल-किनारा।" किस "महासिंधु" में जाकर "लय" होगी "जीवन-धारा"

मानो इस "अंधियारे" में मैं अपनी "रात" बिता कर, फिर "उड़" जाऊंगी "ऊपर" अंबर में पर फैला कर।

दो "गीतों" में जीवन का मैं सारा "मूल्य" चुका कर फिर "महागान" में जाकर "मिल" जाऊंगी इठला कर।

इस जग के कोलाहल से है मेरी तान निराली।
जग के वैभव से खाली मेरे जीवन की प्याली।

पत्थर के इन टुकड़ों पर क्यों दुनिया आपा खोती? सब परख लिए हैं मैंने इस जग के मानिक मोती।

मैं रहती उन्मन मन से सब जग से अलग अकेली।
दुनिया को मैं, मुझको वह लगती है गूढ़ पहेली।

क्यों पागल प्यास बनी है मेरे प्राणों को प्याली?
किस कारण मुझ पर देते "पल्लव-दल" पल-पल ताली?

यह "कली" हिचकती मन में, कैसे जग में मुसकावे?
कैसे लोभी "अधरों" को प्रेमामृत पान करावे?

जग की जगमग को कैसे देखूं, आंखें सकुचाती।
जग के प्रमत्त उत्सव में मैं भाग न लेने पाती।
हम यहां परदेस में हैं। यह जो मूर्च्छा का लोक है हमारा, यह जो अचेतन जीवन व्यवस्था है हमारी, यह परदेस है। यह हमारा स्वभाव नहीं है। यह हमारा विभाव है। यह हमारी मूल प्रकृति नहीं है। इसलिए तो हम इतने पीड़ित हैं। कुछ भी मिल जाए, तृप्ति नहीं। धन के अंबार लग जाएं, तृप्ति नहीं। पद हो, तृति नहीं प्रतिष्ठा मिले, तृप्ति नहीं। तृप्ति मिल सकती नहीं। तृप्ति तो तभी मिलेगी जब हमारे स्वभाव के अनुकूल कुछ घटे। यह सब प्रतिकूल है। स्वभाव के अनुकूल जो घटता है, उसी क्षण जीवन में क्रांति; जीवन में सूर्योदय हो जाता है।
गुलाल के ये वचन तुम्हें तुम्हारे असली घर की याद दिलाएंगे। गुलाल के
इन वचनों में आवाहन है, चुनौती है। जिनमें साहस हो, वे चुनौती को स्वीकार करें। चलें इस अनंत यात्रा पर, इस अंतर्यात्रा पर।
जौपे कोई प्रेम को गाहक होई।
पर वे कहते हैं कि पहले ही साफ कर दूं, जो प्रेम के मार्ग पर चलने को राजी हो, वही सुने, वही गुने। जो प्रेम का सौदा करने को तैयार हो, ... यह सौदा जरा महंगा सौदा है। इसमें अपने को पूरा-पूरा दांव पर लगाना होता है। आंशिक रूप से दांव पर लगाने से नहीं चलता। ऐसे तो कितने लोग प्रार्थनाएं कर रहे हैं, पूजा कर रहे हैं, आराधनाएं कर रहे हैं; मंदिर हैं, मस्जिद हैं, गिरजे हैं, गुरुद्वारे हैं, सब भरे हैं, लेकिन यह सारी प्रार्थनाएं ऐसा लगता है व्यर्थ ही चली जाती हैं। ये सारी पूजाएं यहीं शोरगुल पैदा करके समाप्त हो जाती हैं। इन प्रार्थनाओं में पंख नहीं हैं। इन पूजाओं के दीप झूठे हैं। इन पूजाओं के दीप वे नहीं हैं जो संतों ने कहा है बिन बाती बिन तेल। ये अर्चनाएं औपचारिक हैं। बस ऊपर-ऊपर हैं। तुम्हारे प्राणों की पुकार नहीं मालूम होती। कर लेते हो, करना चाहिए, इसलिए; सिखाया गया है, इसलिए; बचपन से

आरोपित किया गया है, इसलिए। यह एक तरह का सम्मोहन है। तुम चले मंदिर, चले मस्जिद; तुम नहीं जा रहे हो, तुम्हें सम्मोहित किया गया है।
सम्मोहन का शास्त्र सीधा-साफ है। सम्मोहन का शास्त्र इतना सा ही है
कि एक ही बात को बार-बार दोहराते रहो, इतना दोहराओ, इतना दोहराओ कि वह व्यक्ति के चेतन से उतरते-उतरते उसके अचेतन में जाकर बैठ जाए। बस। एक बार अचेतन में बैठ गई कि सक्रिय हो जाती है। फिर वह व्यक्ति उस काम को ऐसे करेगा जैसे स्वयं ही कर रहा है। यद्यपि स्वयं नहीं कर रहा है, वह केवल सम्मोहित है।
तुमने कभी सम्मोहन का कोई प्रदर्शन देखा? सम्मोहन के प्रदर्शन में सम्मोहन करने वाला व्यक्ति जिसको सम्मोहित कर लेता है, उससे फिर जैसे काम करवाना चाहता है वैसे काम करवा लेता है। और तुम यह जान कर चकित होओगे कि सम्मोहित करने वाले व्यक्ति की कोई शक्ति नहीं होती। इस भ्रांति में मत रहना जैसा लोग सोचते हैं कि सम्मोहन करने वाले की आंखों में कोई जादू है, कि हाथों में कुछ जादू है। जादू से इसका कुछ लेना-देना नहीं। यह तुम कर सकते हो। यह कोई भी कर सकता है। सौ में से तैंतीस प्रतिशत व्यक्ति सम्मोहित होने के लिए बिल्कुल तैयार बैठे हैं--एक-तिहाई आदमी सम्मोहित होने को तैयार हैं। वे राजी हैं, कुछ भी, कैसा भी झूठ बार-बार दोहराए जाओ, वे उसे सच मान लेंगे। वे बड़े संवेदनशील हैं। तुम दस आदमियों पर प्रयोग करके देखो, तीन पर तुम सफल हो जाओगे।
छोटे-मोटे प्रयोग करो। किसी आदमी को कह दो कि तू अपने हाथ की अंगुलियां एक-दूसरे में फंसा कर बैठ जा। और उसके सामने तुम दोहराते रहो दो-तीन मिनट तक कि अब तू हाथ खोल नहीं सकेगा; लाख कोशिश कर, तू खोल नहीं सकेगा; तू सारी ताकत लगा दे तो भी खोल नहीं सकेगा; अब कोई सामर्थ्य तेरे हाथ को नहीं खोलने देगी। और तीन मिनट बाद उस व्यक्ति से कहना कि खोल, लगा ताकत; तुम भी हैरान होओगे, वह भी हैरान होगा, सारी ताकत लगा देता है लेकिन हाथ नहीं खुलते। जितनी ताकत लगाता है उतनी ही मुश्किल हो जाती है, हाथ नहीं खुलते। घबड़ा जाएगा। लगेगा कि तुम्हारे पास कोई शक्ति है, कोई सिद्धि है। न कोई सिद्धि है, न कोई शक्ति है। तुमने इतना दोहराया कि बात अचेतन तक उतर गई। अब तुम्हें उससे कहना पड़ेगा, फिर दोहराना पड़ेगा कि हां तू हाथ खोल सकता है, मैं तुझे आज्ञा देता हूं। और हाथ खुल जाएंगे।
और यह हाथ के संबंध में ही बात नहीं है, अगर इसमें तुम गहरे प्रयोग करो, तो तुम चकित होओगे। इस तरह की घटनाएं सम्मोहन के द्वारा प्रमाणित हो चुकी हैं जो कि विज्ञान के नियमों के विपरीत जाती मालूम पड़ती हैं। जैसे सम्मोहित व्यक्ति के हाथ में जलता हुआ अंगारा रख दो और कहो कि यह साधारण कंकड़ है, ठंढा, उसके हाथ में फफोला नहीं पड़ेगा। उसके अचेतन ने बात इतनी मान ली, इतनी मान ली कि उसका शरीर भी उसके मन के पीछे हो लिया। शरीर तो मन का गुलाम है। और तुम ठंढा कंकड़ उसके हाथ पर रख दो और कहो कि यह अंगार है जलता हुआ और हाथ पर फफोला आ जाएगा।
तुम हिंदू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, जैन हो, बौद्ध हो, तुमने कभी सोचा; क्यों? सम्मोहन के कारण। मां-बाप ने दोहराया, पंडित-पुरोहितों ने दोहराया--इधर बच्चा पैदा हुआ नहीं कि उसे सम्मोहित करने के उपाय शुरू हो जाते हैं। इसको लोग कहते हैंः धार्मिक शिक्षा। यह धार्मिक शिक्षा नहीं है, यह बच्चे की स्वतंत्रता को नष्ट करने की बड़ी गहरी तरकीब है, जालसाजी है, शडयंत्र है। जिस दिन यह शड्यंत्र बंद होगा, उस दिन इस दुनिया में सच्चे मनुष्यों का उदय होगा। नहीं तो झूठे आदमी रहेंगे। हिंदू रहेंगे, मुसलमान रहेंगे--ये सब झूठे आदमी हैं। झूठे इन अर्थो में कि इनसे जो कहा गया है, वह इन्होंने मान लिया है। जो इन्होंने माना है, वह जाना नहीं है। इसलिए इनकी प्रार्थना झूठी है। इनकी स्वयं की बुद्धिमत्ता से उसका आविर्भाव नहीं होता। स्वयं की बुद्धिमत्ता से उठे प्रार्थना, तो अहोभाग्य। तब तुम्हारी छोटी-मोटी प्रार्थना भी तुम्हारे जीवन को सुगंध से भर देगी। लेकिन स्वयं की बुद्धिमत्ता से तभी उठ सकती है, जब तुममें साहस हो। यह सम्मोहन तुम्हें कायर बना देता है। तुम्हारा साहस छीन लेता है। अज्ञात में कदम उठाने की तुम्हारी हिम्मत ही समाप्त हो जाती है। ठीक कहते हैं गुलाल--

जौपे कोई प्रेम को गाहक होई।
त्याग करै जो मन की कामना, सीस-दान दै सोई।।
प्रेम का रास्ता ऐसा है कि वहां अगर कोई अपना सीस चढ़ाने को राजी हो, तो
ही चल सकता है। वहां पहले कदम पर ही सीस मांग लिया जाता है।
दो मार्ग हैं परमात्मा को पाने केः एक संकल्प, एक समर्पण। संकल्प के रास्ते पर अंतिम क्षण में सीस मांगा जाता है और समर्पण के रास्ते पर प्रथम क्षण में ही सीस मांगा जाता है। इसलिए संकल्प का रास्ता सुगम है, कठिन दिखाई पड़ते हुए भी, क्योंकि आखिरी घड़ी में तुमसे जीवन दान मांगा जाएगा। जब तक तुम तैयार हो चुके होओगे, निखर चुके होओगे। लेकिन प्रेम-पंथ? "प्रेम-पंथ ऐसा कठिन!" उसकी कठिनाई क्या है? ऐसे तो बड़ा प्यारा है, प्रेम-पंथ है, प्रीतिकर है, मन को भाता है, रसभीगा है, आनंद में डूबा है, फूल ही फूल हैं प्रेम के पथ पर, लेकिन इतना कठिन क्यों? कठिन इसलिए कि पहली ही शर्त उसकी यह है कि जो सीस को उतार कर रख दे। और न केवल उतार कर रख दे, निश्चिंतता से उतार कर रख दे और सो भी जाए। इतनी निश्चिंतता से उतार कर रख दे कि चिंता ही न पकड़े, दे दे सब कुछ उसकी मर्जी पर, कह दे परमात्मा कोः जो तुझे करना हो, कर, मैं हटा जाता हूं। सीस काटने का अर्थ हैः मैं हटा जाता हूं; मैं बीच में न आऊंगा, मैं बाधा न दूंगा।
सीस काटने का कोई ऐसा अर्थ नहीं है कि तलवार उठा कर तुम अपनी गर्दन काट लेना। ये प्रतीक हैं। तलवार उठा कर गर्दन काट लेना इतना कठिन काम नहीं है। बहुत से लोग आत्महत्या करते ही हैं। अगर आत्महत्या करने से मोक्ष मिलता होता तो दुनिया में और सरल और क्या बात थी! पी लेते जहर, कूद जाते पहाड़ से, कोई उपाय कर लेते, ... अब तो बड़े सुगम उपाय हैं। बिजली की कुर्सियां हैं, जिन पर बैठे, बटन दबा दिया, मामला खत्म हो गया। एक क्षण भी नहीं लगता, कोई पीड़ा भी नहीं। मगर परमात्मा तुमसे आत्महत्या थोड़े ही चाहता है। परमात्मा चाहता हैः आत्मिक जीवन, आत्महत्या नहीं। और अभी तो तुम ऐसी नींद में हो कि आत्मिक जीवन तो दूर, आत्महत्या भी करो तो शायद वह भी न कर पाओ। मैं एक घर में नया-नया मेहमान हुआ। पतली दीवालें, आधुनिक दीवालें, पड़ोस में जो थे उनकी आवाज मुझे सुनाई पड़ती थी। पहला ही दिन था और पति-पत्नी में झगड़ा होने लगा। पति प्रोफेसर थे विश्वविद्यालय में। मैं भी उस विश्वविद्यालय में प्रोफेसर होकर नया-नया पहुंचा था। मैं थोड़ा चिंतित हुआ, बात बिगड़ने लगी--न भी सुनना चाहूं तो कोई उपाय न था। वह सुनाई पड़ ही रहा था। इतने जोर-जोर से बात चल रही थी। आखिर पति ने कहा कि मैं आत्महत्या ही कर लूंगा, बहुत हो चुका, मैं यह चला! तब तो मुझे और भी चिंता पकड़ी। मैं बाहर आया, लेकिन पति तो एकदम भन्नाए हुए निकल ही गए घर से। मैंने उनकी पत्नी को कहा कि यद्यपि मैं अपरिचित हूं, न आपके पति को जानता, न आपको जानता, लेकिन यह मामला ऐसा है कि इसमें परिचय को बाधा नहीं बनना चाहिए; परिचित बाद में हो लेंगे, अभी मैं किसी काम आ सकूं तो बोलें। पत्नी ने कहा, आप बिल्कुल निश्चिंत रहें, यह कोई नया नहीं, यह तो उनकी आदत है। अभी आ जाएंगे दस-पंद्रह मिनट में, घबड़ाएं न आप। उसने कहा तो भी मुझे चिंता लगी कि यह बेचारा आदमी, गया, इतना भनभनाया है कि कहीं कुछ कर ही न गुजरे! मैंने कहा कि कहो तो मैं जाऊं, उनको बुला कर लाऊं। कहा कि नहीं, बुला कर लाने से देर लगेगी; वे और अकड़ेंगे। वे अपने आप आते हैं, आप घबड़ाएं तो मत, आप जरा बैठें। आप नये-नये हैं, मैं तो उनके साथ पंद्रह साल से रह रही हूं, यह तो आए दिन की घटना है। ऐसा तो वे कई दफा कर चुके हैं। और ठीक पंद्रह मिनट के भीतर वे आ गए। जब मैंने उनको आते देखा--बिल्कुल शांत चले आ रहे थे--तो मैंने पूछाः अरे, आप लौट आए? उन्होंने कहाः लौटूं नहीं तो क्या करूं? देखते नहीं कि बूंदाबांदी होने लगी, स्टेशन तीन मील दूर है और ट्रेन का कोई भरोसा आजकल! कितनी लेट हो जाए, क्या हो जाए! अब रात भर खराब करनी है क्या?
मरने गए थे, बूंदाबांदी से लौट आए।
फिर तो उनके बाबत मुझे बाद में बहुत कहानियां पता चलीं। कि एक बार वे मरने गए, तो टिफिन लेकर साथ गए। और जब टिफिन रख कर पटरी पर लेटे, तो पास में ही एक चरवाहा अपनी गाएं चरा रहा था, उसे भी बड़ी हैरानी हुई। एक तो पटरी पर वे ऐसी लेटे जिस पर गाड़ियां निकलती ही नहीं थीं। कभी पहले निकलती रही

होंगी, अब वह पटरी बंद हो गई थी, पर गाड़ियां निकलती नहीं थीं--वह तो पटरी देख कर ही साफ था, वह जंग खाई हुई थी पटरी। जिस पर गाड़ियां निकलती हैं, वह तो चमकती है चांदी की तरह। वही देख कर तो वे लेटे थे उस पर कि जंग खाई हुई है, कोई डर नहीं है। और टिफिन भी बगल में रखे हुए हैं तो चरवाहे ने कहा कि आप क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहाः मैं आत्महत्या कर रहा हूं। तो पहले तो उसने कहा कि इस पटरी पर कोई गाड़ी मैंने तो निकलते नहीं देखी, दस साल से तो मैं यहां गाय-भैंसें चराता हूं। तो उन्होंने कहा, तुझे बीच में बोलने की क्या जरूरत है? हम मरेंगे जहां हमें मरना है! अब हमें यहीं मरना है, तो हम यहीं मरेंगे। हम तो तुझसे पूछ नहीं रहे, हम किसी से सलाह नहीं ले रहे। और उसने पूछा कि एक बात और पूछनी है कि यह टिफिन आप किसलिए लाए हैं? उन्होंने कहा कि क्या भरोसा, ट्रेन कितनी लेट आए, तो क्या भूखे मरना है!
तब तो फिर उनके संबंध में बहुत कहानियां पता चलीं। कि यह तो उनका रोज
का ही काम था। यह तो पूरा विश्वविद्यालय जानता था कि मरने में वे बड़े कुशल हैं। इतने कुशल कि अभी तक वे मरे ही नहीं।
आत्महत्या तो लोग करते हैं, दस में से नौ लोग इस ढंग से करते हैं कि कहीं हो ही न जाए। कोई गोली ले लेता है नींद की, मगर लेता इतनी है कि सुबह तक जिंदा रह जाए, अस्पताल पहुंच जाए फिर इसके बाद देख जाएगा। सौ में से निन्न्यानबे लोग इस तरह से मरने का उपाय करते हैं कि कहीं मर ही न जाएं। मरना भी उनकी एक राजनीति है। वह भी उनका दबाव डालने का ढंग है। एक तरह का सत्याग्रह समझो। जैसे कोई अनशन करता है। वह भी क्या है? वह यह कह रहा है कि फिर मर जाएंगे। अनशन वाला कहता है कि हम मरेंगे। दो-तीन महीने लगेंगे मरते-मरते, दो-तीन महीने सताएंगे, तुम्हारी छाती पर दाल दलेंगे कि हम मर रहे हैं, कि देखो हम मर रहे हैं और शोरगुल मचाएंगे अखबार में और उपद्रव मचेगा, आखिर तुमको सोचना ही पड़ेगा। ऐसा ही लोग उपाय करते आत्महत्या का। परमात्मा तुम्हारी आत्महत्या में उत्सुक नहीं है। तुम्हें जीवन ही क्यों देता? इसलिए सीस चढ़ाने से तुम कुछ ऐसा मत समझ लेना कि सीस ही चढ़ाना होता है। क्योंकि कुछ पागलों ने ऐसा ही समझ लिया है। ये प्रतीक हैं। मैंने एक आदमी को देखा... काशी में मैं था, उन्हें मिलने लाया गया, उनकी बड़ी पूजा और उनका बड़ा आदर! मैंने पूछाः कारण? तो उन्होंने कहा कि उन्होंने अपनी जबान काट कर परमात्मा को चढ़ा दी। मैंने कहा, यह उन्होंने क्यों किया? तो उन्होंने किसी शास्त्र में पढ़ा था कि जब तक अपनी जबान तुम परमात्मा को न दोगे, तब तक कुछ भी न होगा। अब हो गया न पागलपन! जबान देने का मतलब यह था कि तुम न बोलो, उसे बोलने दो। जबान देने का मतलब यह था कि वाणी को त्याग दो, मौन हो जाओ। फिर मौन से अगर कुछ निकले, तो वह तुम्हारा नहीं है। तुम बांसुरी बन जाओ। बांस की पोली पोंगरी। छोड़ दो परमात्मा के ओंठों पर, गाना चाहे गीत, कोई गाए, न गाना चाहे, न गाए, तुम मौन हो रहो, मुनि हो रहो। फिर उसे स्वर पूंकने दो। वह जरूर पूंकता है। नहीं तो भगवद्गीता कैसे पैदा हो? कृष्ण ने जबान काट दी होती तो भगवद्गीता नहीं पैदा होती। और मोहम्मद ने जबान काट दी होती तो कुरान नहीं होता। और बुद्ध और महावीर ने जबानें काट दी होतीं तो यह दुनिया इतनी दरिद्र होती जिसका हिसाब नहीं था।
मैंने कहा, इनको तुम महात्मा कहते हो! यह आदमी पागल है। इसने प्रतीक
को प्रतीक है इतना भी नहीं समझा, जबान काट दी। जबान वस्तुतः काट दी। और जबान काटने से कोई मौन हो सकता है? विचार तो खोपड़ी के भीतर चल रहे हैं, जबान का क्या कसूर है! जबान में थोड़े ही विचार होते हैं। जीभ थोड़े ही विचारों को पालती-पोसती है। जीभ तो केवल उपकरण है।
आंखें फोड़ने वाले संतों की कथाएं हैं। संत न रहे होंगे, विक्षिप्त रहे होंगे। आंखें फोड़ दीं ताकि रूप आकर्षित न करे। तो क्या तुम सोचते हो आंख बंद कर लेने से रूप आकर्षित नहीं करेगा? और ज्यादा आकर्षित करेगा। आंखें खुली रखोगे तो थोड़े न बहुत दिनों में पहचान ही जाओगे कि रूप में कुछ है नहीं, सब सजा-बजा ताजिया है। रंग-बिरंगे कागज। बस ताजिए ही हैं। कभी भी सिर हिलने लगेगा। इसमें ज्यादा देने नहीं लगने वाली। लेकिन अगर आंख बंद कर ली तो यह तुम्हें कभी पता नहीं चलेगा कि यह ताजिया है। तुम्हारी भ्रांतियां, मोह, आकर्षण बने ही रहेंगे। इसलिए जो भगोड़े संन्यासी हैं,

जिनको तुमने सदियों से पूजा है, उनके चित्त से वासना का अंत नहीं होता। हो नहीं सकता। इस जगत को गौर से देखो, आंख को खोल कर देखो, तुम आंख फोड़ने चले हो! अरे, आंख को जरा खोलो! अधमुंदी आंख से भी मत देखो, पूरी आंख खोल कर देखो। इस जगत में रखा क्या है जिससे इतना डरे हो! अगर डरते हो, तो सिर्प एक ही खबर देते हो कि तुम्हारे भीतर भय है। तो भय किस बात का सबूत है? कि कहीं जगत फांस ही न ले! अभी तुम्हें जगत में रस दिखाई पड़ता है।
तो न तो सिर काटना है, न जबान काटनी है, न संसार से भाग जाना है। यह तो प्रतीक है। सिर प्रतीक है अहंकार का। वाणी प्रतीक है, जबान प्रतीक है विचार की। आंखें, जिनसे तुम परिचित हो, ये बाहर देखने की प्रतीक हैं। देखना है भीतर। बाहर की आंख को भीतर की तरफ मोड़ना है, अंतर्मुखी करना है, फोड़ना नहीं है। जो कान बाहर सुनते हैं, वे भीतर का नाद सुनें। और जो आंखें बाहर का सौंदर्य देखती हैं, वे भीतर का सौंदर्य देखें।
और सीस तो सिर्फ अहंकार का प्रतीक है। इसलिए तो जब हम किसी के सामने विनम्र होते हैं, तो सिर झुकाते हैं। और जब किसी पर क्रोध आ जाता है तो उठा कर जूता उसके सिर पर लगा देते हैं। हालांकि जूता सिर पर लगाने से क्या होगा? लेकिन प्रतीक है कि हमने उसके अहंकार को नीचा करने का उपाय किया। सिर अहंकार का प्रतीक है, विचार का प्रतीक है, विक्षिप्तता का प्रतीक है, विवाद का प्रतीक है, संदेह का प्रतीक है। सिर इन सारे रोगों का घर है। इसको चढ़ा दो परमात्मा को--तो ही समझना कि तुम्हारे भीतर प्रेम जगा है। "जौपे कोई प्रेम को गाहक होई।" तभी जानना कि तुम गाहक हो, खरीदार हो। पूछने-पाछने तो बहुत लोग आते हैं। दुकानों पर यों ही दाम पूछते फिरते तो बहुत लोग होते हैं। कुछ लोगों को तो धंधा ही यह होता है कि इन्हें और कुछ काम नहीं होता, शाम को निकल पड़े। उनसे पूछो, कहां जा रहे हैं? शापिंग को जा रहे हैं! शापिंग वगैरह कभी दिखती नहीं कि क्या करते हैं वे, मगर पूछताछ करते रहते हैं।
मैं एक सज्जन को जानता हूं, जो ऐसी ही चीजें पूछेंगे दुकानों पर जाकर,
जो बाजार में नहीं हैं। अपना समय खराब करेंगे, दुकानदारों का समय खराब करेंगे, चीजें उलटेंगे-पलटेंगे और खरीदनी उन्हें ऐसी चीज है जो है नहीं बाजार में। जिसका उन्हें बिल्कुल पक्का है कि जो मिलने ही वाली नहीं है। और अगर कभी भूल-चूक से चीज मिल भी जाए, तो उसमें इतने दोष निकालेंगे कि खरीदने का कभी सवाल ही न उठे। उन जैसा मैंने खरीदार नहीं देखा! और रोज खरीदने निकलते हैं। जैसे और कोई काम ही नहीं है। है भी क्या काम लोगों को! समय है और समय को काटना है।

हैरानी की बात है, समय इतना बहुमूल्य है कि लौटता नहीं और उसको तुम काटते हो! एक क्षण वापस नहीं पाया जा सकता और उसको तुम गंवाते हो! और एक-एक क्षण मोती बन जाए!
जौपे कोई प्रेम को गाहक होई।
तो वे कहते हैं कि पहले ही मैं सावधान कर दूं कि अगर तुम प्रेम के गाहक हो, तो इतना ख्याल रखना, सीस चढ़ा कर निश्चिंत सोने की हिम्मत होनी चाहिए। आत्महत्या से अर्थ नहीं है, अहंकार-विसर्जन से अर्थ है। और तुम नींद में इतने हो, तुम्हारी आत्महत्या क्या, तुम कुछ उलटा-सीधा कर लोगे।
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन आत्महत्या करने गया। सब आयोजन करके गया ताकि भूल-चूक न हो जाए। गया नदी के तट पर चढ़ गया एक पहाड़ी पर कि पहाड़ी से कूदेगा। तो पहले तो कूदने में ही मर जाएगा--इतनी ऊंची पहाड़ी! अगर कूदने में नहीं मरा तो नदी इतनी गहरी कि डूब कर मर जाएगा। मगर कौन जाने, सब उपाय कर लेने ठीक हैं--होशियार आदमी--कोई विधि खाली नहीं छोड़ी। तो साथ में मिट्टी का तेल भी ले गया कि ऊपर से डाल कर और आग लगा लूंगा; रस्सी भी ले गया कि एक झाड़ से, किनारे पर ऊगे झाड़ से रस्सी बांध कर गर्दन अटका लूंगा; और साथ में आखिरी उपाय की तरह एक पिस्तौल भी ले गया। और जब घंटे भर बाद लोगों ने उसे घर वापस आते देखा, तो लोगों ने कहाः हद हो गई, क्या हुआ? तो उसने बताया कि मैं चढ़ गया पहाड़ी पर, गले में फंदा अटका लिया, तेल डाल दिया, गोली मारी सिर में मगर गोली सिर में न लगी, रस्सी में लगी, सो रस्सी कट गई। और उसके

पहले कि मैं जलता पानी में गिर पड़ा, सो आग बुझ गई। और वह तो यह कहो कि मुझे तैरना आता था, नहीं तो आज मारे गए थे! आज लौटना मुश्किल था! सो तैर कर घर आ गए हैं। वह सब किए उपाय व्यर्थ हो गए। सोए हुए आदमी के उपायों का क्या अर्थ हो सकता है! लेकिन जो व्यक्ति सब दांव पर लगाने को राजी हो जाए, दांव पर लगाने से ही जागरण की शुरुआत हो जाती है।
शीशमहल सपनों का टूटा,
जब से तुमने आंखें फेरीं!
अविरल आंसू की धारा से--
धूमिल नयन-मुकुर की गरिमा,
किसे हृदय का हार पिन्हाऊं,
मुझसे अविदित मेरी प्रतिमा; किसकी अगवानी में लोचन,
अपलक ठगे-ठगे से आकुल;
रंगमहल भावों का रूठा,
जब से तुमने आंखें फेरीं! अंधकार के तिमिर-वनों में-- एक परग भी चलना दूभर,
बहुत कठिन है पंथ पिया का,
मिलना तो उससे भी ऊपर;
लक्षागृह-से मोह-जगत में--
पांडु-सुतों सा वंदी-जीवन;
रूपमहल का वैभव रूठा,
जब से तुमने आंखें फेरीं!
परमात्मा की आंख हमसे फिरी हुई है, ऐसा हमें लगता है। ऐसा लगना स्वाभाविक है। लेकिन बात ठीक उलटी है। हमारी आंख उससे फिरी हुई है। हम उसकी तरफ पीठ किए हुए खड़े हैं। और उसकी तरफ मुंह करके खड़े होने में हम भयभीत हैं, हम डरते हैं। क्योंकि उसकी तरफ मुंह करके खड़े होना मिटने की तैयारी है। उतने विराट को लेने के लिए मिटना ही होगा। बूंद अगर सागर से मिलना चाहे और चाहे कि मैं अपने को बचा भी लूं, ये दोनों बातें नहीं हो सकतीं। बूंद को मिटने की तैयारी रखनी ही होगी तो ही सागर हो सकती है। और हम बूंदें हैं और परमात्मा सागर है। और हम बचे हैं, हम डरे हैं, हम भयभीत हैं। हम बातें परमात्मा की करते हैं, लेकिन हम भागे हुए हैं कि कहीं मिलन हो ही न जाए। क्योंकि अगर परमात्मा का आमना-सामना हो गया, तो एक बात निश्चित है कि हम खो जाएंगे। दूसरी बात भी निश्चित है कि हम परमात्मा हो जाएंगे। लेकिन दूसरी बात तो बाद में होगी; उसका क्या भरोसा; हो, न हो! पहली बात घबड़ा देती है। पहली बात ही हमें चौंका देती है। पहली बात में ही हम भाग खड़े होते हैं।
त्याग करै जो मन की कामना, ...
गुलाल कहते हैं कि संसार छोड़ने की कोई जरूरत नहीं, मन की कामना छूटनी चाहिए। मन की कामना ही संसार है। वही मैं कल तुमसे कह रहा था; संसार संसार नहीं है, मन संसार है। संसार में तो कुछ भी बुराई नहीं है, इसमें तो जगह-जगह परमात्मा के हस्ताक्षर हैं, इसमें तो जगह-जगह उसके चरण-चिह्न हैं, यह संसार तो पवित्र है, यह संसार तो परमात्मा की अभिव्यक्ति है--कहो उसका गीत, कहो उसका नृत्य, अगर यह वीणा है तो यह वीणावादक है, यह संसार अगर चित्र है तो वह चितेरा है, अगर यह संसार सृष्टि है तो वह स्रष्टा है--यह संसार तो बुरा नहीं और लोग संसार से भागते हैं। और देखते ही नहीं यह बात कि अगर कहीं कोई बुराई है, अगर कहीं कोई भूलचूक होती है, तो वह हमारे मन में है। संसार से भाग जाते हैं, मन से नहीं भागते। क्योंकि मन से भागना कठिन मामला है। मन से भागने का एक ही उपाय हैः मन से जागना। हिमालय चले जाओ तो भी मन
तो साथ रहेगा। काबा जाओ कि काशी, मन तो साथ रहेगा। गृहस्थ रहो कि संन्यासी, मन तो साथ रहेगा। मन से जागना, ध्यान का कोई और अर्थ नहीं होता, मन से जागना, मन के साक्षी हो जाना, मन को दूर खड़े होकर देखने की कला कि मैं मन नहीं हूं, जिस दिन यह बात प्रगाढ़ रूप से तुम्हारे भीतर स्थापित हो जाती है

कि मैं मन नहीं हूं, संसार से मुक्ति हो गई। क्योंकि मन का फैलाव ही संसार था। और मन क्या है? मांग है--और, और... । कितना ही दो, मांग जारी रहती हैः और, और... ।
त्याग करै जो मन की कामना, सीस-दान दै सोई।।
और अमल की दर जो छोड़ै, आपु अपन गति होई।
"और अमल की दर जो छोड़ै", बड़ा क्रांतिकारी वचन है। गुलाल कह रहे हैंः और
सब चरित्र की बकवास छोड़ो, और सब आचरण की व्यर्थ बकवास छोड़ो, और सब आचरण झूठा, और सब चरित्र झूठा; और अमल की दर जो छोड़ै, वे दरवाजे छोड़ो, आपु अपन गति होई, एक ही काम कर लो, अपने भीतर गति कर लो, बस। लेकिन हम ऐसे बाहर हो गए हैं, अपने से ऐसे बाहर हो गए हैं कि बाहर ही हमारा धन है, बाहर ही हमारा धर्म भी है; बाहर ही हमारा पद है और बाहर ही हमारा परमात्मा भी है। अगर हम परमात्मा का भी विचार करते हैं तो आकाश की तरफ देखते हैं कि जैसे वहां दूर कहीं ऊपर बादलों के बैठा है; अगर हम परमात्मा की भी बात करते हैं तो हमें तत्क्षण मंदिरों में बैठी हुई प्रतिमाओं का स्मरण आता है। कृष्ण याद आते हैं, राम याद आते हैं, बुद्ध याद आते हैं, महावीर याद आते हैं। परमात्मा की बात भी जब हम करते हैं तो हमें कोई बाहर का याद आता है। हमारा बाहर होना भयंकर बीमारी की तरह हमारे पीछे लगा है। ऐसी जड़ जमाई है हमारे बाहर होने ने कि हम जो भी सोचते हैं, बाहर; हमारा चरित्र भी बाहर। अगर हम चरित्र का निर्माण भी करते हैं तो सिर्प इसलिए कि उससे प्रतिष्ठा मिलती है।
मैं जिस स्कूल में पढ़ता था, उस स्कूल की कक्षा में, ... उस स्कूल के जो प्रिंसिपल थे, उनको बड़ा शौक था अच्छे-अच्छे वचन लिखवाने का, तो उन्होंने छांट-छांट कर अच्छे वचन लिखवाए हुए थे। और मैं भी उनके वचनों को ले-ले कर पहुंच जाता था कि इसमें गलती है। आखिर एक दिन उन्होंने अपना सिर पीट लिया और उन्होंने कहा कि फिर तुम्हीं ले आओ, क्या लिखवाना है? मैंने कहाः खाली दीवाल बेहतर। कुछ भी आप लिखोगे... उन्होंने मेरी कक्षा की दीवाल पर लिखवा छोड़ा था कि चरित्रवान का सभी जगह समादर होता है। मैंने उनसे कहा कि वह आदमी चरित्रवान ही नहीं जो समादर के लिए चरित्रवान बने। यह सूत्र ही गलत है। इसको साफ करो। आदर की आकांक्षा अहंकार की आकांक्षा है। लेकिन यही हम सिखाते हैं बच्चों को कि तुम्हारा समादर होगा, सम्मान होगा, प्रतिष्ठा होगी--इस लोक में नहीं, पर लोग में भी--चरित्रवान बनो! झूठ मत बोलना। उससे अप्रतिष्ठा होती है। और कोई पाप नहीं है! तो होशियार लोग जो हैं वे इस तरह से झूठ बोलते हैं कि झूठ भी बोल लेते हैं, अप्रतिष्ठा भी नहीं होती; फिर क्या हर्जा है! होशियार लोग जो हैं, वे अपने जीवन में दो दरवाजे रख्ते हैं। एक बाहर का दरवाजा है, बैठकखाना, जहां वे लोगों का स्वागत करते हैं--वहां की सजावट और--और एक भीतर का दरवाजा है, जहां वे जीते हैं; वह बिल्कुल और है, वह उनकी निजी दुनिया है। जितना कुशल आदमी होता है उतना ही पाखंडी हो जाता है। क्योंकि तुम सम्मान देते हो जिन-जिन बातों को, उन-उन बातों को वह अपने ऊपर रंग लेता है, पोत लेता है, मुखौटे ओढ़ लेता है। तुम जो कहते हो, वैसा ही हो जाता है। तुम कहते हो, परमात्मा का यह लक्षण, तो वही करने लगता है बेचारा। और भीतर की दुनिया उसकी अपनी है।
एक आदमी मरा। देवदूत उसे लेकर परलोक पहुंचे। उसे बिठाया गया स्वागत-कक्ष में। वह बड़ा चिंतित है कि मैं जहां लाया गया हूं, वह स्वर्ग है या नरक? कुछ समझ में नहीं आता। चारों तरफ देखता है लेकिन कुछ पक्का नहीं हो पाता। और पूछने में थोड़ा डरता भी है कि कहीं नरक ही न हो, कहीं नरक ही न निकले। अभी जब तक बात तय नहीं है तब तक कम से कम इतनी सुविधा तो है कि सोच सकते हैं कि शायद स्वर्ग ही हो। कहीं यह साफ ही कोई कह दे कि नरक है! तो लोग आ रहे हैं, जा रहे हैं, वह किसी से कुछ पूछता नहीं, देख रहा है कि स्थिति क्या है? तभी उसने देखा कि एक महात्मा जिन्हें वह जानता था कि इस लोक में बड़े प्रसिद्ध थे, वे प्रविष्ट हुए, तब तो वह निश्चिंत हो गया, उसकी बांछें खिल गईं, उसने कहा, हो न हो पक्का स्वर्ग है! इतना बड़ा महात्मा आ रहा है! महात्मा को ले जाया गया बगल के एक विशेष कक्ष में बिठाया गया।
वह खुश हो ही रहा था कि तभी सब खुशी ताश के महल की तरह गिर गई, क्योंकि उसी नगर की एक महा वेश्या, वह भी आई। तब तो वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, हो

न हो यह नरक है। इस वेश्या को स्वर्ग मिले, यह तो हो ही नहीं सकता। मगर महात्मा और वेश्या, अब करूं क्या? और दुविधा बढ़ गई। जैसे ही वेश्या अंदर घुसी, महात्मा ने एकदम हमला कर दिया वेश्या पर। तब तो वह और चौंका। और महात्मा ने आव देखा न ताव, वे तो एकदम वेश्या के साथ प्रेम करने में लग गए। वेश्या चीख रही, चिल्ला रही, महात्मा सुनें ही नहीं। महात्मा ही थे, वे कहीं बाहर की चीजें सुनें इत्यादि, वे सब कान वगैरह तो बंद ही कर चुके थे बहुत पहले! कनफटा योगी रहे होंगे। अब उसने कहा पता लगा लेना ठीक है कि यह मामला क्या है? यह हो क्या रहा है? यह मैं देख क्या रहा हूं?
जाकर द्वारपाल से पूछा कि एक सवाल है कि यह स्वर्ग है या नरक? द्वारपाल ने कहा, खुद ही देख लो और पहचान लो! उसने कहा कि इसीलिए तो पूछ रहा हूं। अब तक तो थोड़ा संदेह था, अब तो मैं बहुत ही दुविधा में पड़ गया हूं। यह महात्मा देखो, तुम्हें आवाज नहीं सुनाई पड़ रही है, वह वेश्या गरीब चिल्ला रही है और वह मुस्तंड महात्मा... जिंदगी भर और तो उन्होंने कोई काम किया ही नहीं था। दंड-बैठक लगाई थी, मुस्तंड तो वे थे ही... वह उस गरीब वेश्या को किस बुरी तरह सता रहा है, व्यभिचार हो रहा है आंख के सामने, मुझसे नहीं देखा जाता। वह तो महात्मा की वजह से मैं चुप हूं, नहीं तो दो हाथ मैं ही लगा देता इस महात्मा को! मगर महात्मा बड़ा है और बड़ा प्रसिद्ध था, और सदा उसके चरण छुए हैं, तो जरा संकोच होता है। तो उस द्वारपाल ने कहा कि अब तुम सच्ची बात ही जानना चाहते हो तो यह कि महात्मा के लिए यह स्वर्ग है और वेश्या के लिए यह नरक है। महात्मा अपने पुण्यों का फल पा रहा है, वेश्या अपने पापों का फल पा रही है।
यही समझाया गया है सदियों से तुम्हें कि अगर इस जगत में त्याग किया तो परलोक में भोगोगे; वहां अप्सराएं तुम्हारी राह देख रही हैं, एकदम पलक-पांवड़े बिछाए बैठी हैं; शराब के झरने बह रहे हैं; ... यहां दारूबंदी चल रही है, वहां शराब के झरने अब भी बह रहे हैं! दिल खोल कर पीओ! पीना ही क्या है, डुबकी मारो, तैरो! कोई कुल्हड़ों का सवाल है, मटकियां भरो, जो दिल में आए करो, झरने बह रहे हैं! सब तरह के सुखों की वहां सुविधा है। झाड़ों पर फूल नहीं लगते, हीरे-जवाहरातों के फूल लगते हैं। पत्ते क्या हैं? माणिक-मोती हैं। कंकड़-पत्थर तो वहां होते ही नहीं।
ये किन लोगों ने कल्पनाएं की हैं स्वर्ग की? और किनने तुम्हें कहा है
कि अगर चरित्र हुआ तो ये चीजें मिलेंगी? ये तुम्हारे लोभ को प्रलोभन हैं। यह तुम्हारे लोभ को उकसाना है। इस लोभ के आधार पर जो चरित्र बनेगा, उसका दो कौड़ी भी मूल्य नहीं।
या फिर नरक का भय है कि वहां सड़ाए जाओगे। बुरी तरह सड़ाए जाओगे। आग में जलाए जाओगे। कड़ाहे जल रहे हैं, सतत जलते रहते हैं कड़ाहे पर कड़ाहे और लोग उसमें चुड़ाए जाते हैं; ... इधर तेल की कमी हो रही है, उधर तेल की कोई कमी नहीं है। सदियों से चल रहा है, कड़ाहे चढ़े हुए हैं और पापी सताए जा रहे हैं। और कीड़े-मकोड़े तुम्हारे शरीर में दौड़ेंगे। और प्यास तुम्हें लगेगी लेकिन पानी तुम पी न सकोगे, क्योंकि तुम्हारे ओंठ सिए हुए होंगे। क्या-क्या गजब के सोचने वाले लोग! जरा इन दुष्टों की कल्पना तो देखो! और ये शास्त्र रचते हैं! इनसे तो हिटलर इत्यादि को सलाह लेनी चाहिए कि क्या, किस तरह सताएं लोगों को। कीड़े-मकोड़े शरीर में दौड़ेंगे, छेद पर छेद कर देंगे, छिन्न-भिन्न कर डालेंगे तुमको, लेकिन मरोगे नहीं, यह ख्याल रखना। मरने नहीं देते हैं नरक में किसी को, क्योंकि मर गए तो मजा ही चला गया। सताओ जितना सताना है, मरने भर मत देना।
तो या तो यह नरक का भय है।
मैंने सुना है, एक राजनेता मरे। राजनेता थे, तो जैसे ही नरक में पहुंचे तो पहले तो बहुत नाराज हुए, एकदम गुस्से में आ गए, आगबबूला हो गए-- लेकिन शैतान ने कहा, आगबबूला न हों, यहां नेतागिरी नहीं चलेगी, यह कोई दिल्ली नहीं है! और माना कि आप खादी पहने हुए हैं, मगर यहां खादी का क्या मूल्य? माना कि आप गांधी टोपी लगाए हुए हैं, उसे लगाए रहो, यह नरक है और यहां मेरी चलती है! मगर आप नेता थे और बड़े नेता थे, और जमीन पर जब तक रहे, हमारे बड़े काम आए, एक तरह से हमारे एजेंट ही थे वहां, तुम्हारे जरिए हमने

कई लोगों को फांसा; आज जो कई लोग नरक में पड़े हैं, तुम्हारे बिना नहीं पड़ सकते थे; तो तुमने हमारी बड़ी सेवा की जाने-अनजाने, इसलिए तुम्हें थोड़ी सी हम सुविधा देंगे। यहां नरक के तीन खंड हैं, तुम कोई भी चुन सकते हो; यह सुविधा हर किसी को नहीं मिलती। नेता थोड़े प्रसन्न हुए कि चलो, कुछ विशेषता तो अपने लिए दी जा रही है। तो उन्होंने कहा, मैं तीनों देखना चाहूंगा, फिर चुनूंगा।
पहले में गए तो देखा बड़ी हालत खराब है। लोग नंगे खड़े हैं और कोड़े मारे
जा रहे हैं, लहू झर रहा है और पिटाई चल ही रही है--सतत। पूछा शैतान से कि यह पिटाई बंद कब होगी? उसने कहा, यह कभी बंद नहीं होने वाली। छुट्टी वगैरह? कोई यहां छुट्टी वगैरह नहीं। छुट्टी की तो बात छोड़ो, उसने कहा कि चाय-काफी पीने का भी समय नहीं मिलता। यह चलती ही रहती है। सोने का मौका मिलता है? उसने कहा, यहां कहां सोना वगैरह! सो लिए वहां बहुत दिल्ली में! यहां तो चौबीस घंटे। तो उन्होंने कहा, यह तो बड़ा कठिन मामला है। दूसरा नरक दिखाओ दूसरा खंड दिखाया।

वहां वही कड़ाहे चढ़े हुए थे। उन्होंने कहा, इसके बाबत तो मुझे पता था
और पहले ही पढ़ा है पुराणों में, लोग जलाए जा रहे हैं--बिल्कुल जैसे आदमी न हों पकौड़े हों, उलटाए-पलटाए जा रहे हैं और भयंकर दुर्गंध उठ रही है... अब आदमियों को तुम कड़ाहों में जलाओगे! ... कि नेता ने एकदम अपनी श्वास बंद कर ली और कहा कि यहां तो मैं खड़ा नहीं रह सकता एक मिनट। अब तीसरा दिखाओ। तीसरे में गए। हालत तो वहां भी बड़ी बदतर थी मगर फिर भी बेहतर थी, उन दो
की तुलना में बेहतर थी। लोग गले-गले मल-मूत्र में खड़े थे! पर नेता ने कहा कि चलो, यह ठीक है। स्व-मूत्र तो मैं पहले ही से पान करता रहा था, सो मलमूत्र में पचास प्रतिशत अपना जाना-पहचाना, पचास प्रतिशत की कमी रह गई थी सो वह यहां अनुभव हो जाएगा। कोई हर्जा नहीं! और न केवल लोग गले-गले मलमूत्र में खड़े हैं, कोई काफी पी रहा है, कोई चाय पी रहा है--कोई कोकाकोला! उन्होंने कहा कि कम से कम कुछ थोड़ा यहां सुख भी मालूम पड़ता है। हालांकि बदबू भी है, दुख भी है, मगर पहले से यह हालत अच्छी है, मैं यही चुन लेता हूं। नेता जैसे ही अंदर प्रविष्ट हुए, गले-गले मल-मूत्र में खड़े हुए, तभी जोर से घंटी बजी और एक शैतान का शिष्य प्रकट हुआ और उसने कहा कि बस, चाय-पानी का समय खतम, अब सब लोग शीर्षासन करो। तब उनको असलियत पता चली कि अब मारे गए!
नरक के भय लोगों ने बिठा रखे हैं। तो कुछ लोग चरित्र का निर्माण करते हैं भय के कारण, कुछ लोग लोभ के कारण। भय और लोभ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अक्सर तो दोनों का ही उपयोग किया गया है--इधर भय, इधर लोभ। इधर लोभ मारता है, उधर भय मारता और दोनों के बीच में तुम किसी तरह अपने चरित्र को सम्हाल लेते हो। यह चरित्र किसी भी मूल्य का नहीं है, दो कौड़ी भी मूल्य का नहीं है! इससे सामाजिक प्रतिष्ठा मिल जाए, सम्मान मिल जाए, मगर इससे धर्म का कोई अनुभव नहीं होगा, इससे परमात्मा की कोई प्रतीति नहीं होगी।
इसलिए यह बहुत अदभुत क्रांतिकारी वचन है--
और अमल की दर जो छोड़ै, ...
... और सब चरित्र, और अमल का दरवाजा छोड़ो सिर्प एक ही अमल, एक ही चरित्र,
एक ही आचरण करने योग्य है--
... आपु अपन गति जोई।
बस, अपने भीतर उतरो, अपने भीतर चलो--अंतर्यात्रा में। अपने भीतर डूबो, डूबते जाओ, वहां तक जहां तक केंद्र न मिल जाए। स्वयं का केंद्र जब तक न मिल जाए तब तक अंतर्यात्रा जारी रहे।
घोर तम छाया चारों ओर
घटाएं घिर आईं घन घोर
वेग मारुत का है प्रतिकूल
हिले जाते हैं पर्वतमूल;
गरजता सागर बारंबार,
कौन पहुंचा देगा उस पार?

तरंगें उठीं पर्वताकार
भयंकर करतीं हाहाकार;
अरे उनके फेनिल उच्छ्वास तरी का करते हैं उपहास,
हाथ से गई छूट पतवार,
कौन पहुंचा देगा उस पार? ग्रास करने तरणी, स्वच्छंद घूमते फिरते जलचर-वृंद;
देख कर काला सिंधु अनंत
हो गया हा साहस का अंत!
तरंगें हैं उत्ताल अपार, कौन पहुंचा देगा उस पार? बुझ गया वह नक्षत्र-प्रकाश चमकती जिस में मेरी आश;
रैन बोली सज कृष्ण दुकूल विसर्जन करो मनोरथ फूल;
न लाए कोई कर्णाधार,
कौन पहुंचा देगा उस पार? सुना था मैंने इसके पार,
बसा है सोने का संसार,
जहां के हंसते विहग ललाम मृत्यु-छाया का सुन कर नाम! धरा का है अनंतशृंगार,
कौन पहुंचा देगा उस पार? जहां के निर्झर नीरव गान सुना करते अमरत्व प्रदान; सुनाता नभ अनंत झंकार
बजा देता है सारे तार;
भरा जिसमें असीम सा प्यार! कौन पहुंचा देगा उस पार? पुष्प में है अनंत मुस्कान त्याग का है मारुत में मान; सभी में है स्वर्गीय विकास वही कोमल कमनीय प्रकाश;
दूर कितना है वह संसार!
कौन पहुंचा देगा उस पार? सुनाई किसने पल में आन
कान में मधुमय मोहक तान?
"तरी को ले जाओ मंझधार,
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुंचा देगा उस पार!"
डूबो अपने में। सबसे बड़ी गहराई वहां है। प्रशांत महासागर की भी गहराई इतनी गहराई नहीं। हालांकि पांच मील गहरा है प्रशांत महासागर, मगर तुम्हारी गहराई के सामने कुछ भी नहीं। चेतना की गहराई अनंत है। और चेतना की ऊंचाई भी अनंत है। गौरीशंकर भी इतना ऊंचा नहीं जितनी चेतना की ऊंचाई है। चेतना ऊंचे से ऊंचा तत्व है--और गहरे से गहरा भी।
सुनाई किसने पल में आन
कान में मधुमय मोहक तान?
"तरी को ले जाओ मंझधार,
डूब कर हो जाओगे पार;
विसर्जन ही है कर्णाधार,
वही पहुंचा देगा उस पार!"

विसर्जन की कला सीखो। डूबने की कला सीखो। और कहीं और किसी चीज में नहीं डूबना है, अपने में डूबना है।
हरदम हाजिर प्रेम-पियाला, ...
--डूब सको तो यह अनुभव में आए--
हरदम हाजिर प्रेम-पियाला, पुलिक पुलिक रस लेई।।
जीव पीव महं पीव जीव महं, बानी बोलत सोई।
डूब सको मझधार में, अपने ही प्राणों में, अपनी ही चेतना में सारे अहंकार को विसर्जन करके एक हो जाओ, एकाकार हो जाओ, तो--
हरदम हाजिर प्रेम-पियाला, पुलिक पुलिक रस लेई।।
"जीव पीव महं"... तब तुम जानोगे कि वह परमात्मा, वह प्यारा तुम्हारे भीतर है; "पीव जीव महं"... और तुम उस परमात्मा में हो। जिसने स्वयं को जाना, उसने यह भी जाना कि मेरे और परमात्मा के बीच कोई फासला नहीं, कोई भेद नहीं। भेद की रेखा भी नहीं। "बानी बोलत सोई", ... उस दिन फिर तुम जो बोलोगे, वह परमात्मा की वाणी है, तुम्हारी नहीं। वही बोलता है फिर। ऐसे वेद जन्मे, उपनिषद जन्मे, कुरान, गीता, बाइबिल जन्मे। ऐसे जन्मे, जब कोई भीतर अपने डूब गया। इसलिए तो हमने वेद को अपौरुषेय कहा है। अपौरुषेय का अर्थ हैः ये किन्हीं पुरुषों के द्वारा नहीं रचे गए; ये व्यक्तियों ने नहीं रचे, व्यक्ति जब मिट गए, तब अवतरित हुए। इसलिए तो कुरान को इलहाम कहा जाता है। इलहाम का अर्थ हैः यह मोहम्मद की कृति नहीं है, यह मोहम्मद पर अवतरित हुआ; उतरा, इलहाम। इसलिए तो जीसस बार-बार कहते हैं कि जो मैं कह रहा हूं, वह वही है जो परमात्मा कहे। मुझमें और मेरे पिता में, मुझमें और परमात्मा में कोई भी भेद नहीं है। मैं और वह एक हूं। उपनिषद कहते हैंः तत्वमसि, तुम वही हो। "सोई सभन महं", ... और जो भीतर पाओगे, वही सब में पाओगे; "हम सबहन महं", ... अपने को सब में फैला हुआ जिस दिन देखोगे उस दिन तुम्हारे आनंद का पारावार न रह जाएगा। सबको अपने में समाया पाओगे और सब में अपने को समाया पाओगे। "बूझत बिरला कोई", ... बहुत कम धन्यभागी लोग हैं जो इस रहस्य को बूझ पाए हैं। सुनते तो तुम हो, पढ़ते भी तुम हो, मगर तुम्हारा पांडित्य तुम्हारा ज्ञान नहीं है, बासा और उधार है।
एक महापंडित पागलखाना देखने गया था। महापंडित आया पागलखाने में तो उसे घुमाया सुपरिन्टेंडेंट ने। महापंडित ने पूछा सुपरिन्टेंडेंट को कि जब कोई पागल ठीक हो जाता है तो तुम्हें कैसे पता चलता है कि वह ठीक हो गया? तो उसने कहा कि इसकी एक छोटी सी तरकीब है। यह सामने आप टब देखते हैं? हम नल खोल देते हैं और पागल को कहते हैं कि टब को खाली करो। तो वह बाल्टी से उलीच कर टब को खाली करने लगता है। बस, इससे पता चल जाता है कि पागल है या नहीं है? महापंडित ने कहा, मैंने कुछ समझा नहीं। इससे कैसे पता चलेगा कि पागल है या नहीं?
सुपरिन्टेंडेंट ने कहा कि अगर वह नल की टोंटी पहले बंद कर देता है और फिर पानी खाली करता है, तो हम समझ जाते हैं कि पागल नहीं है अब। नल को जारी रहने देता है और पानी खाली करने में लग जाता है, तो हम समझ लेते हैं कि अभी पागल है।
महापंडित ने कहाः यह तो हद हो गई। मैं तो इसकी कल्पना भी नहीं कर सकता
था, यह नल की टोंटी बंद करने की। यह तो मेरे ख्याल में ही बात न आई थी।
फिर महापंडित आया है तो उसका प्रवचन करवा दिया पागलों के बीच। और पागलों ने ऐसी तालियां बजाईं और ऐसे प्रसन्न हुए, ऐसे पुलक-पुलक होकर नाचे कि महापंडित ने कहा कि मैं तो सोचता था कि पागल क्या समझेंगे! सामने ही बैठे जो पागल बहुत ही तालियां बजा रहे थे, बहुत ही मस्त हुए जा रहे थे, उनसे पूछा कि भाइयो, मैंने बड़ी-बड़ी सभाओं में व्याख्यान दिए, इतने आनंदित श्रोता मैंने कहीं नहीं पाए, आखिर तुम्हें कौन सी बात इतनी रुच रही है? उन्होंने कहा, हमें इस बात का आनंद आ रहा है कि अरे वाह रे वाह, तुम जैसे पागल बाहर और हम जैसे समझदार भीतर, खूब मजा चल रहा है दुनिया में! परमात्मा के खेल तो देखो, तुम महापंडित और हम पागल!
जिनको तुम महापंडित कहते हो, वे इस जीवन की सबसे बड़ी बुनियादी भूल के शिकार हैं। वह बुनियादी भूल है कि सत्य उधार मिल सकता है। कि शास्त्र से,

शब्दों से, कि दूसरों से सत्य उधार मिल सकता है। इससे बड़ी और कोई भूल नहीं हो सकती। सत्य का अनुभव करना होता है स्वयं में। न तो शास्त्र दे सकता, न कोई और। सत्य को तो स्वानुभाव से ही पाया जाता है। क्योंकि वह तो तुम्हारे अंतर्तम में मौजूद है। उसे कहां तुम गीता में खोज रहे हो, कुरान में खोज रहे हो! हां, यह बात जरूर सच है कि जिस दिन अपने भीतर पा लोगे, उस दिन कुरान और गीता में भी दिखाई पड़ेगा। मगर उसी दिन दिखाई पड़ेगा। उसके पहले तो तुम कोरे शब्दों को याद कर लोगे, तोते की तरह। तोते भी शायद थोड़े ज्यादा समझदार होते हैं। इतने समझदार भी तुम्हारे पंडित नहीं होते। मैं पंडितों को जानता हूं। मैं ऐसे पंडितों को जानता हूं जिन्होंने ध्यान पर बड़ी सुंदर किताबें लिखी हैं और फिर मुझसे पूछने आए कि ध्यान कैसे करें? मैंने उनसे पूछा कि आपने इतनी सुंदर किताब लिखी--भेजी थी, तो मैंने किताब आपकी देखी। शक तो मुझे तब भी हुआ था। लेकिन आपने चमत्कार किया। लिख कैसे सके? उन्होंने कहाः अरे, किताब लिखने में क्या रखा है! दस किताबें ध्यान पर पढ़ लीं और एक ग्यारहवीं तैयार कर दी। ध्यान कभी किया? नहीं, ध्यान तो कभी नहीं किया। पुस्तकों से फुरसत मिलती तो ध्यान करते! बड़े अजीब लोग हैं मगर ऐसे ही लोगों से दुनिया भरी हुई है।
एक महिला लेखिका हालैंड से यहां आई। उसने मेरे खिलाफ एक किताब लिखी
और किताब मुझे भेजी और साथ में पत्र लिखा कि एक बात की क्षमा मांगना चाहती हूं, आई तो मैं जरूर पूना और तीन सप्ताह वहां रही भी, क्योंकि मुझे किताब लिखनी थी, इस किताब को लिखने के लिए मुझे पैसा मिलने वाला था, लेकिन किताब लिखने में मैं इतनी उलझी रही कि ब्लू-डायमंड होटल के कमरे को छोड़ कर आश्रम आ ही नहीं सकी। अब यह मजा देखे हो! मेरे खिलाफ किताब लिखी है, वह आश्रम आई ही नहीं! फुरसत ही नहीं मिली आश्रम आने की, किताब लिखने में इतनी उलझी रही। किताब कैसे लिखी इसने? सारी किताब ऊलजलूल है। होने ही वाली है। मगर उसकी हजारों प्रतियां बिक रही हैं। और उस किताब को पढ़कर दूसरे किताब लिखेंगे। अब यह सिलसिला जारी रहेगा।
लोगों ने ऐसे-ऐसे लेख लिखे हैं कि उनके लेख जब मेरे पास आते हैं तो चित्त आनंदित हो जाता है!
एक सज्जन ने लिखा है कि जब मैं आश्रम के द्वार पर पहुंचा, सुबह पांच बजे, ब्रह्ममुहूर्त में, तो एक नग्न स्त्री ने दरवाजा खोला। पहले तो मैं थोड़ा चौंका, लेकिन जब आया ही था आश्रम देखने इतनी दूर से, परदेस से, तो भीतर प्रवेश हुआ थोड़ा डरता-डरता और वह स्त्री मुझे एक वृक्ष के पास ले गई, उसने एक फल तोड़ा जो कि सेब जैसा मालूम होता था और मुझसे कहा कि इसे खाएं, इसे खाने से आदमी सदा जवान रहता है।
... मैंने तत्क्षण "लक्ष्मी" को बुलाया कि यह वृक्ष कहां है?! अजनबियों को फल बांटे जा रहे हैं! अपने कई संन्यासी वृद्ध हुए जा रहे हैं! पहले उनको मिलना चाहिए!
अब यह चलेगी बात। अब इसे दूसरे लेख उद्धरण करेंगे।
मगर यह तो कुछ भी नहीं! पंजाब से एक पत्रिका आई है। पंजाबियों का तो मुकाबला ही नहीं! कोई सरदार जी ने अपनी पूरी बुद्धि लगा दी--जितनी भी होगी--लिखा है कि आश्रम छह वर्गमील... छह एकड़ जमीन पर आश्रम है... छह वर्गमील आश्रम का विस्तार है। कल्पना की भी कोई सीमा होती है। इन छह वर्गमीलों में बड़ी-बड़ी झीलें हैं, जिनमें हजारों संन्यासी-संन्यासियां नग्न स्नान करते हैं। जलप्रपात हैं कृत्रिम; ... मैं कभी आश्रम में गया नहीं, तो मैंने कहा हो न हो, सरदार जी कह रहे हैं तो ठीक ही कह रहे होंगे, ... अंडरग्राउंड एअरकंडीशंड भवन हैं, जिसमें दस हजार संन्यासी रोज सुबह प्रवचन सुनते हैं; ... तुम जरा गौर से देख लेना, सब अंडरग्राऊंड बैठे हुए हो! ... और उससे भी बड़ी बात कि वहां बैठने का नियम ही यह है कि सबको नग्न बैठना पड़ता है।... ऐसे यह बात सच है, कपड़ों के भीतर सभी नग्न हैं। कपड़े क्या खाक नग्नता को मिटाएंगे! नग्नता तो स्वाभाविक है, ऊपर से कपड़ा ओढ़ लिया है, इससे क्या होता है? तो तुम सब नग्न यहां बैठे हुए हो! अंडरग्राउंड! दुनिया को इसका पता भी नहीं चल रहा है।... और लिखा है कि जब तक मैं रहता हूं मौजूद तब तक तो ठीक और जब मैं चला जाता हूं, तो फिर रासलीला होती है। फिर संन्यासिनियां और

संन्यासी प्रेम-क्रीड़ा में संलग्न होते हैं, जो घंटों चलती है।... अंधे को बड़ी दूर की सूझी! सरदारजी ने दिखता है ठीक बारह बजे लेख लिखा होगा!
मगर ये बातें चल पड़ती हैं। और चल पड़ती हैं तो फिर इनको रोकने का कोई उपाय नहीं। फिर एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे, फिर ये बढ़ती जाती हैं, फिर ये इकट्ठी होती जाती हैं।
दुनिया की सारी भाषाओं में इतना कुछ लिखा जा रहा है इस आश्रम के बाबत
कि यहां तो किसी को फुरसत भी नहीं है कि उस सबको देखे। पचास व्यक्ति तो सिर्प प्रेस-आफिस में यहां सिर्प इकट्ठा करने को बैठे हैं कि वह जो-जो लिखा जाता है, उसको इकट्ठा करना, उसका ट्रांसलेशन करना--क्योंकि दुनिया की अलग-अलग भाषाओं में लिखा जाता है, क्या लिखा जा रहा है? पहले तो मैं थोड़ा देखता भी था फिर मैंने "लक्ष्मी" से कहा कि यह सब कचरा यहां लाने की जरूरत नहीं है। मगर यह कचरा निर्णायक होगा। पंडित इसी कचरे पर जीते हैं।
ध्यान पर दस किताबें पढ़ ली हैं और ग्यारहवीं उन्होंने लिख दी। उनकी ग्यारहवीं किताब पढ़ कर कोई बारहवीं लिखेगा। और ध्यान का कोई अनुभव नहीं है। जिन्होंने प्रेम नहीं जाना, वे प्रेम पर शास्त्र लिखते हैं, जिन्होंने ध्यान नहीं जाना, वे ध्यान पर शास्त्र लिखते हैं। इतना सस्ता नहीं है मामला। अनुभव करना होगा। और अनुभव का एक ही उपाय हैः अपने भीतर उतरो। यह बहिर्यात्रा हैः शास्त्र भी बहिर्यात्रा है।
वाकी गती कहा कोई जानै, जो जिय सांचा होई।
कितना प्यारा वचन है! उस परमात्मा की गति वही जान पाता है, जो अपने भीतर जीवन में सच्चा होता है। जो जिय सांचा होई। जो जीता है सत्य को, जो सत्य रूप हो जाता है, वही केवल उसकी गति को जान पाता है। नहीं, और कोई दूसरा उसकी गति को नहीं जान पाता।
कह गुलाल वे नाम समाने...
और गुलाल कहते हैं कि वे नाम समा गए; जिन्होंने उसको जाना, वे उसी में समा गए। वे अलग न रहे, भिन्न न रहे, अभिन्न हो गए।
... मत भूले नर लोई।।
और बाकी आदमियों की तुम पूछो, तो वे तो मत-मतांतर में भूले हुए हैं। कोई हिंदू, कोई मुसलमान, कोई ईसाई। इतने से भी बस नहीं चलता, तो छोटे-मोटे संप्रदाय, फिर उप-संप्रदाय! इतने उपद्रव मचा रखे हैं लोगों ने कि जिसका हिसाब नहीं है। तीन सौ तो धर्म हैं पृथ्वी पर और कम से कम तीन हजार संप्रदाय और कम से कम तीस हजार उप संप्रदाय होंगे इनके। और उप-संप्रदायों में भी छोटे-छोटे अपने-अपने घेरे बना रखे हैं लोगों ने। सत्य एक, तो इतना उपद्रव क्यों? लेकिन वह सत्य तो तुम्हारे भीतर है, वहां तुम जाते नहीं, बाहर तो मत-मतांतर ही हो सकते हैं। बाहर तो शब्दों की मार-पीट है, तर्कजाल है। खूब तर्क चलते हैं बाहर, खूब विवाद चलते हैं बाहर--और ऐसी-ऐसी मूढ़तापूर्ण बातों पर विवाद चलते हैं सदियों तक कि जब पीछे तुम लौट कर देखोगे तो तुम्हें हैरानी होगी!
मध्य-युग में यूरोप में तीन सौ सालों तक एक विवाद चला, जिसमें यूरोप
के सारे बड़े धर्मशास्त्री सम्मिलित रहे। बड़े पादरी, बड़े पुरोहित, बड़े पोप। और विवाद क्या था कि सुई की नोक पर कितने देवदूत खड़े हो सकते हैं? अब किसको लेना-देना! और फिकर पड़ी हो तो सुई को पड़े, इनको क्या चिंता हो रही है? या देवदूतों को चिंता हो। मगर सवाल यह था कि देवदूतों में कितना वजन होता है, कि नहीं होता? हलके होते हैं, इतने हलके-फुलके होते हैं कि उनका कोई वजन ही नहीं होता। इतने सूक्ष्म होते हैं कि एक सुई की नोक पर खड़े हो सकते हैं। मगर कितने? फिर सवाल उठेगा कि आखिर कितने? अब इसकी कोई सीमा होगी, कितने खड़े हो सकते हैं?
सदियों से यह विवाद चल रहा है कि परमात्मा ने सृष्टि कब बनाई? यूरोप
के एक धर्मशास्त्री ने तो बिल्कुल तारीख, दिन, सब तय कर दिया। एक जनवरी, ... निश्चित ही, कि एक जनवरी से साल शुरू होती है, अब कोई परमात्मा बीच साल में थोड़े ही दुनिया शुरू करेगा! और बीच साल में दुनिया शुरू करेगा तो जो महीने बीत गए, उनमें क्या किया? वे खाली ही चले गए! तो एक जनवरी बात जंचती है। और सोमवार का दिन। बिल्कुल ठीक है। ऐसे भी शुभ। और जीसस से चार हजार चार वर्ष

पहले। यह उसने कैसे निकाला? इसके संबंध में बड़े प्रश्न उठे कि जनवरी भी ठीक, सोमवार भी ठीक, जंचती है बात, मगर चार हजार चार वर्ष पहले ठीक, यह तुम्हें कैसे पता चला? इसको वह कहता है, यह उसने अंतर्चक्षु से देखा! अब अंतर्चक्षु के बाबत तो कोई झगड़ा ही नहीं हो सकता! जैसे अब सरदारजी ने देखा कि अंतर्चक्षु से यह आश्रम छह वर्गमील में फैला हुआ है। झील, जलप्रपात, अंडरग्राउंड दस-दस हजार लोग नग्न बैठे हुए ध्यान कर रहे हैं, दस-दस हजार लोग रासलीला में सम्मिलित हो रहे हैं। यह जरूर अंतर्चक्षु से देखा होगा नहीं तो यह कैसे दिखाई पड़ेगा? अंतर्चक्षु से तो कोई झगड़ा ही नहीं कर सकता। अब अंतर्चक्षु तो निजी बात है। अब तुम्हारे अंतर्चक्षु से नहीं दिखाई पड़ता, मतलब तुम्हारे अंतर्चक्षु खराब हैं। इलाज करवाओ। अगर ठीक होंगे तो तुमको भी दिखाई पड़ेगा।
एक सम्राट के दरबार में एक चालबाज आदमी आया और उसने कहा कि मालिक, और
सब तो ठीक है, आपके पास धन है, जितना चाहिए उससे ज्यादा, आपका राज्य इतना बड़ा कि जिसमें सूर्य का अस्त नहीं होता, लेकिन एक चीज की कमी अखरती है मेरे दिल को, जब कि मैं वह कमी पूरी कर सकता हूं। सम्राट ने कहा, वह क्या? --उसको लोभ जगा, लार टपकी--वह क्या चीज की? बोलो, तुम बोलो, जो भी तुम्हारा पुरस्कार होगा, मैं दूंगा। उसने कहा कि आपके पास देवताओं के वस्त्र चाहिए। आदमी के वस्त्र आप पहनें, यह शोभा नहीं देता! आप तो पृथ्वी पर देवता हैं, दिव्य हैं। है भी राजा, सदियों से कहा जाता रहा कि वह भगवान का प्रतिनिधि। उसने कहाः यह बात तो ठीक है, मगर देवताओं के वस्त्र कहां मिलेंगे? उसने कहाः वह मैं ला दूंगा! खर्च काफी होगा! क्योंकि जाना देवताओं तक, फिर वहां भी रिश्वत चलने लगी है। रिश्वत देना, पहरेदारों से लेकर और आखिर तक, बड़ी झंझट का काम है! मगर निकाल लाऊंगा--इतना वचन देता हूं। राजा को शक हुआ कि यह कोई धोखा तो नहीं देगा। उस आदमी ने कहाः आप इसकी फिकर ही छोड़ दें। आप एक महल मुझे दे दें, चारों तरफ पहरा लगवा दें; जितना धन मैं मांगूं, वह मुझे मिलते जाना चाहिए, महीना भर लगेगा। महीने भर में मैं लेकर मंजूषा देव-वस्त्रों की हाजिर हो जाऊंगा।
पहरा लगा दिया गया। अब कोई डर भी नहीं था। उसने करोड़ पर करोड़ मांगे, राजा भी थकने लगा; महीने भर में उसने थका डाला कि रोज ही मांग आए कि आज दो करोड़ भेजो, आज पांच करोड़ भेजो; उसने अरबों-खरबों रुपये खाली कर दिए खजाने से महीने भर के भीतर। राजा भी जिद्दी था, उसने कहा कि जाएगा कहां, रुपए भी लेकर कहां जाएगा? महल चारों तरफ से घिरा हुआ है और वह महल के भीतर है, या तो कपड़े लाएगा, नहीं तो सारे रुपए भी वसूल कर लेंगे और सजा अलग।
लेकिन ठीक तीस दिन बीतने पर वह आदमी आ गया, एक बड़ी सुंदर मंजूषा में कपड़े लिए हुए। दरबार में आकर उसने मंजूषा रखी और उसने कहा कि बड़ी मुश्किल तो आई मगर निकाल लाया। ये वस्त्र आ गए। ये वस्त्र आपके पहनने योग्य हैं! लेकिन इसके पहले कि मैं पेटी खोलूं, एक शर्त आपको बता दूं जो कि देवताओं ने मुझसे कही। ये वस्त्र अदृश्य हैं, जैसे कि देवता अदृश्य होते हैं। फिर भी मैंने कहा कि अदृश्य हैं, वह तो ठीक, मगर पृथ्वी पर अदृश्य वस्त्रों को कौन समझ पाएगा? कुछ विशेष हमें छूट दो! करोड़ों रुपये इसी में लग गए, लेकिन विशेष छूट भी ले आया। अब विशेष छूट यह है कि ये वस्त्र उन लोगों को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुए हों। राजा ने कहाः फिर कोई बात नहीं। दरबारियों ने कहा, फिर कोई बात नहीं। सब अपने बाप से पैदा हुए हैं, इसमें क्या अड़चन है।
उसने पेटी खोली, राजा ने देखा पेटी खाली है। छाती पर सांप लोट गए। यह
तो हद दर्जे की शरारत हुई जा रही है! मगर अब यह बोलना कि मुझे दिखाई नहीं पड़ते वस्त्र, अब स्वर्गीय पिता को भी बदनाम करना और अपनी इज्जत सदा के लिए मिट्टी में मिला देना, अब तो किसी तरह इसको सह लो, जो हुआ हुआ! उसने उसकी पगड़ी ली, राजा की पगड़ी, कीमती पगड़ी, हीरे-जवाहरात जड़ी, वह तो पेटी में डाली और खाली हाथ पेटी से बाहर निकाला और खाली हाथ राजा के सिर पर रखा और कहा कि देखते हैं पगड़ी, इसको कहते पगड़ी! और तालियां पिट गईं। दरबारियों ने कहाः वाह! एक से एक बढ़ कर कहने लगे कि वाह! क्योंकि कौन दरबारी कहे कि हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा है! जो कहे, उसको यह झंझट हो जाए। इस बात से बचने के लिए

प्रत्येक दरबारी जोर-जोर से, एक-दूसरे से ज्यादा जोर से प्रशंसा करने लगा। राजा ने कहा कि सबको दिखाई पड़ रहा है और मुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है, हो न हो गड़बड़ मेरे ही साथ है। इस आदमी ने धोखा नहीं दिया। और बाकी दरबारियों ने भी सोचा कि सबको दिखाई पड़ रहा है, सिर्प मुझे दिखाई नहीं पड़ रहा है, तो अब जो हो गया सो हो गया, अपनी बात छिपा कर रखो, चुपचाप रहो, अब बोलने में कोई सार नहीं, सबको तो दिखाई पड़ रहा है, सदा के लिए बदनामी हो जाएगी।
और वह आदमी भी चालबाज पक्का था। उसने धीरे-धीरे सब कपड़े उतार लिए। अब अंडरवियर भी उतारा जाने लगा तो राजा थोड़ा झिझका कि अब क्या करना? यहां तक तो सह गया! लेकिन अब न करना, मतलब सब बात भद्द हो जाएगी। और लोग इतनी ताली पीट रहे हैं और इस तरह गुहार मचा रहे हैं, हर चीज पर वाह-वाह हो रही है कि राजा ने कड़ी हिम्मत की, आंख बंद कर लीं कि अब जो हो रहा है होने दो, कि भैया, निकाल ले, तू अंडरवियर भी निकाल ले। उसने अंडरवियर भी निकाल लिए। अब राजा बिल्कुल नंग-धड़ंग खड़ा है, और लोग उसके वस्त्रों की प्रशंसा कर रहे हैं। और वह आदमी भी पक्का चालबाज था, उसने कहा, महाराज, ये वस्त्र पहली दफा पृथ्वी पर आए हैं, सारा नगर देखने को उत्सुक है, राजमहल के बाहर सड़कों पर लाखों लोग इकट्ठे हैं, अब आपका जुलूस निकलेगा--शोभायात्रा! राजा ने कहाः मारे गए! पृथ्वी फट जाए, उसमें हम समा जाएं, अब क्या करें, क्या न करें! यह रुपए लेता दुष्ट, वह भी ठीक था; रुपए भी गए, अपने बाप से भी हाथ धोया और अब यह भद्द करवाने पर पूरी उतारू है! मगर अब मना करना ठीक नहीं। बैठे रथ पर, नंग-धड़ंग, लेकिन डुंडी पीटता जाए एक आदमी आगे-आगे कि ये वस्त्र केवल उन्हीं को दिखाई पड़ेंगे जो अपने बाप से पैदा हुए हों। सबको दिखाई पड़ने लगे। राजा आश्वस्त हुआ। उसने कहा, जो हो, मगर लोगों को दिखाई पड़ रहे हैं।
सिर्फ एक आदमी अपने छोटे बच्चे को कंधे पर बिठा कर ले आया था दिखाने,
उस बच्चे ने कहा कि दद्दू, राजा नंगा है! दद्दू ने कहा कि चुप रह, बे नालायक! जब तू बड़ा हो जाएगा, तब तुझे ये वस्त्र दिखाई पड़ेंगे। ये छोटे-छोटे बच्चों को नहीं दिखाई पड़ते। इसके लिए अनुभव चाहिए। और अगर अब दुबारा बोला, तो ऐसा चपत लगाऊंगा कि जिंदगी भर याद रहेगी! लड़का थोड़ी देर चुप रहा लेकिन उसने कहा, दद्दू, तुम कुछ भी कहो, है तो राजा बिल्कुल नंगा! सो दद्दू अपने बेटे को लेकर भागे घर की तरफ। उसने कहा कि यह हमारी भी बदनामी करवा देगा, पत्नी की बदनामी करवा देगा। हालांकि कह रहा है सच, मगर इसकी सच कौन माने! अक्सर बच्चे सच कह देते हैं। सत्य के लिए बच्चों-जैसा निर्दोष भाव चाहिए भी। बड़े तो कुटिल हो जाते हैं, कपटी हो जाते हैं। उम्र लोगों को ज्ञान नहीं देती, चालबाजी देती है। उम्र से लोग प्रौढ़ नहीं होते, सिर्फ बूढ़े होते हैं। होशियार हो जाते हैं, चतुर हो जाते हैं, मगर सारी चतुराई और होशियारी कूटनीति बन जाती है, राजनीति बन जाती है। और तुम इसी तरह के जालों में पड़े हुए हो, जहां कुछ भी नहीं है, उन सिद्धांतों में उलझे हुए हो, मगर चूंकि बापदादे मानते रहे, सदी-सदी से मानते रहे, परंपरा से मानते रहे, तो तुम कैसे न मानो! तुम भी माने चले जा रहे हो। तुम्हारे बच्चों को भी तुम मनवाए जाओगे।
मुझे बचपन से मंदिर ले जाया जाता था। मेरे हृदय में कभी यह भाव नहीं उठता था कि सिर झुकाऊं; क्योंकि वहां मुझे कुछ दिखाई ही न पड़े कि सिर झुकाने का है क्या? मैं जिस परिवार में पैदा हुआ, वहां तो मूर्ति भी नहीं होती मंदिर में, शास्त्र ही होते हैं सिर्प। जैसे कि सिक्ख शास्त्र की पूजा करते हैं, ऐसे जैनों मुझे में एक तारण-पंथ है--जिसमें मैं पैदा हुआ-- वह भी, नानक के समय में ही तारण हुए; वही काल, वही भाव-दशा, तो उनकी वाणी ही पूजी जाती है, कोई मूर्ति नहीं। मैं कभी यह समझ ही नहीं पाया कि तुम लाख किताब को मखमल में बांध कर रख दो, जरी चढ़ा दो, हीरे लगा दो, मगर किताब को सिर झुकाने का क्या मतलब है? लेकिन मेरे बड़े बुजुर्ग कहें, बड़े होओगे तब समझ लोगे। अब भी मैं नहीं समझ पाया। अब कब समझूंगा? राजा नंगा है, अभी भी नंगा है! और जिनने मुझसे कहा था कि समझ, बड़ा हो जाएगा तो समझ में आ जाएगा, वे झूठ कह रहे थे; कोई उसका कसूर नहीं था।
यही हम किए जाते हैं अपने बच्चों के साथ।

बच्चों को देख कर हंसी आती है तुम्हारे गणेश जी को, मगर तुम कहते हो, नहीं, इनको देख कर हंसना नहीं। अब बच्चे कहते हैं कि यह भी कोई आदमी है! अरे, ये आदमी भी नहीं, भगवान होना तो दूर। यह कोई ढंग है आदमी होने का! और शरम भी नहीं आती, चूहे पर सवार हैं। छोटी ही सवारी चाहिए तो रिक्शा पकड़ लेते। न सही इम्पाला, चलो गधा, घोड़ा, कुछ, --चूहा! और शरीर तो देखो इनका! बच्चों को हंसी आती है।
मेरे एक शिक्षक थे, बड़ी उनकी तोंद थी और बड़ी पग्गड़ बांधते थे वे। संस्कृत के शिक्षक थे और बड़ा टीका, तिलक और--पुराने ढब के आदमी थे--अंगरखा, और उनको देख कर ही कोई कितना ही उदास हो, चित्त प्रसन्न हो जाता था। हम सब उन्हें भोलेनाथ कहते थे। सीधे आदमी थे, मगर भोलेनाथ कहने से चिढ़ते थे। वे जैसे ही आते, बोर्ड पर लिख दिया जाता--"जय भोलेनाथ।" बस, वह आते ही से फिर जो, पढ़ाई-लिखाई एक तरफ, वे ऐसे गुस्से में बोलते और गुस्से में फिर ऐसे संस्कृत के श्लोक उद्धृत करते और शास्त्रों का उल्लेख देते, कि पुराने जमाने में कैसे शिष्य और गुरु होते थे, और आज का यह कलियुग कि तुम अपने गुरु की हंसी-मजाक उड़ा रहे हो। अरे, मैं कोई नौटंकी का पात्र थोड़े ही हूं! फिर वे मरे। अब मरना तो सभी को पड़ता है। वे मरे तो सारा मोहल्ला इकट्ठा हुआ, मैं भी गया, सारे बच्चे भी गए और बड़ी हैरानी तो यह हुई कि पता नहीं कैसे यह घटना घटी कि उनकी पत्नी एकदम भीतर से आई, उनकी लाश रखी थी, एकदम उनकी छाती पर गिर पड़ी और बोलीः हाय भोलेनाथ! तो मैंने लाख रोका, हंसी न रुकी। अब कोई मरे और हंसो! तो मुझे कान पकड़ कर वहां से उठा दिया गया और कहा कि तुम बदतमीज हो। मैंने कहाः बदतमीज है उनकी पत्नी। अरे, जिंदगी में हम कहते रहे, वह ठीक, मगर मरे पर मजाक करना! पर लोगों को तो पता नहीं था, उन्होंने कहा कि तुम कहीं सभा-सोसाइटी में ले जाने लायक हो ही नहीं! अब कभी भी कोई मरे, तुम जाना ही मत वहां। यह कोई हंसने की बात थी!
हालांकि और क्या हंसने की बात हो सकती है? हंसी की ही बात थी। संयोग अदभुत था। वे मरे पड़े हैं, अब वे कुछ कह भी नहीं सकते, जिंदा होते तो उठ कर बैठ जाते, हमेशा डंडा अपने हाथ में रखते थे, डंडा उठा लेते, अब बेचारे मर गए, अब वे कुछ कह भी नहीं सकते और उनकी पत्नी कह रही हैः "हाय भोलेनाथ!" और यही तो हम कहते थे उनसे; और इसके लिए कितनी उन्होंने डंड-बैठकें लगवाईं, कितना खड़ा रखा बाहर, और यह मरते वक्त भी विदाई उनकी "हाय भोलेनाथ" से हो रही है!
बचपन का एक अपना जगत है, जहां कुटिलता नहीं होती, जहां चीजें सीधी-साफ दिखाई पड़ती हैं। वैसा ही पुनः हो जाने का नाम संन्यास है। फिर से बच्चे की आंख चाहिए। निर्दोष, चतुर-चालाकी से मुक्त, आश्चर्यविमुग्ध, अवाक। लेकिन तुम खोए हो शब्दों में, शास्त्रों में, चालाकियों में, पांडित्यों में, न मालूम किस-किस तरह के मत-मतांतरों में; व्यर्थ की बातों में, जिनका कोई मूल्य नहीं, कोई प्रयोजन नहीं। उन पर तलवारें उठ जाती हैं, गर्दनें कट जाती हैं। धर्म के नाम पर कितना खून बहा है, इतना किसी और चीज के नाम पर नहीं बहा। अधर्म के नाम पर तो निश्चित ही नहीं बहा। अगर खून के हिसाब से नापो तो अधर्म धार्मिक मालूम होता है; अधार्मिक और नास्तिक धार्मिक मालूम होते हैं, आस्तिक नहीं। यह कैसी विडंबना है! ठीक कहते हैं गुलाल--
कह गुलाल वे नाम समाने, ...
जिन्होंने जाना, जो सरल हुए, जिन्होंने अपने भीतर डुबकी मारी, जिन्होंने आश्चर्य-विमुग्ध, विस्मय भाव से अपनी चेतना में गोता मारा, वे तो समा गए उसी में। फिर क्या हिंदू, क्या मुसलमान, क्या जैन, क्या बौद्ध! फिर उनका कोई शास्त्र नहीं, कोई सिद्धांत नहीं, कोई दर्शन नहीं। फिर तो उनका अनुभव ही सब कुछ है। और अनुभव एक है। और अनुभव में जो जी रहा है, वह अलग-अलग नहीं है।
जीव पीव महं पीव जीव महं, बानी बोलत सोई।
सोई सभन महं हम सबहन महं, बूझत बिरला कोई।।
अंखियां प्रभु-दरसन नित लूटी।

और काश तुम खो सको, तो प्रतिपल लूटो! आनंद बरस पड़ा रहा है, अमृत बरस रहा है। अंखियां प्रभु दरसन नित लूटी। अपने भीतर जाओ, परमात्मा वहां विराजमान है, काबा में नहीं, काशी में नहीं।
हौं तुव चरनकमल में जूटी।
बस, उसके चरनकमलों में जुट जाओ, झुक जाओ, समर्पित हो रहो!
निर्गुन नाम निरंतर निरखौं, ...
और फिर तो वह प्रतिपल दिखाई पड़ता है। "... अनंत कला तुव रूपी।"... और सब तरफ उसकी ही कलाएं प्रकट होती हैं। सब तरफ उसकी अभिव्यक्ति है। पक्षियों की गूंज में वह है। तब पक्षियों की गूंज वेद की ऋचाओं जैसी हो जाती है। और हवाएं जो वृक्षों से गुजरती हैं, उपनिषद का उच्चार करती हैं। और नदियों की कलकल भगवद्गीता हो जाती है।
बिमल बिमल बानी धुन गावौं, ...
और गुलाल कहते हैं, तबसे बस उसका ही गुण गाता हूं, उसकी बिमल-बिमल वाणी
को गुनगुनाता हूं। "... कह बरनौं अनुरूपी।।" यद्यपि बहुत गाता हूं, फिर भी उसे कह नहीं पाता; उसका यथार्थ रूप प्रकट नहीं कर पाता।
बिगस्यो कमल फुल्यौ काया बन, ...
इतना ही कह सकता हूं, गुलाल कहते हैं कि कमल विकसित हो गया है चेतना का; बिगस्यो कमल फुल्यौ काया बन, इतना ही नहीं कि चेतना का कमल खिल गया, मेरी काया भी उस चेतना के कमल के साथ फूल बन गई है--फुल्यौ काया बन। "... झरत दसहुं दिस मोती।" और मेरे चारों तरफ मोतियों की वर्षा हो रही है।
मैं भी तुमसे कहता हूं कि मोतियों की वर्षा हो रही है; अभी हो रही है, इसी वक्त हो रही है, सदा हो रही है, सदा होती है, सदा होती रहेगी, क्योंकि परमात्मा प्रतिपल हवा के लहर-लहर में, कण-कण में विराजमान है, मोती न बरसेंगे तो और क्या होगा?
बिगस्यो कमल फुल्यौ काया बन, झरत दसहुं दिस मोती।
कह गुलाल प्रभु के चरनन सों, डोरि लागि भर जोती।।
बस, इतना कर लो कि उसके चरणों से तुम्हारी डोरी बांध लो; बस, वहां समर्पित हो जाओ; सिर काट दो; अपने अहंकार को मिटा दो और झुक जाओ।
यह जीवन बहुमूल्य है। लेकिन तुम्हें मुफ्त मिला है, इससे यह मत समझ लेना कि व्यर्थ है। तुम्हें भेंट की तरह मिला है, इससे भूल मत जाना। तुमने कमाया नहीं है, तुम इसके पात्र नहीं हो, यह उसकी अनुकंपा है, इसलिए विस्मरण मत कर बैठना। स्मरण करो, बार-बार स्मरण करो उसकी अनुकंपा का और अनुग्रह से भरो, झुको, ताकि किसी दिन यह अपूर्व अनुभव तुम्हारा भी अनुभव बन सके-- बिगस्यो कमल फुल्यौ काया बन, झरत दसहुं दिस मोती।

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
दसवां प्रवचन

सार-असार की कसौटी ध्यान है

पहला प्रश्न: ओशो, संन्यास की पुरानी धारणा और आपके संन्यास में मौलिक भेद क्या है?

रामनारायण! संन्यास की पुरानी धारणा जीवन-विरोधी थी। मेरा संन्यास जीवन के प्रति अनुग्रह, प्रेम और आनंद-उत्सव है। पुराना संन्यास निषेधात्मक था, नकारात्मक था। ठीक से कहूं तो पुराना संन्यास नास्तिक था। मेरा संन्यास आस्तिक है।
नकारात्मकता नास्तिक ही हो सकती है। लाख ईश्वर की बात करो, स्वर्ग, नरक, मोक्ष, लेकिन अगर जीवन को स्वीकार करने की सामर्थ्य भी तुममें नहीं है, तो तुम कल्पनाजाल में उलझे हो। तुम्हारा ईश्वर थोथा, तुम्हारे स्वर्ग-नरक केवल तुम्हारे सपने हैं। तुम्हारे बड़े-बड़े सिद्धांत केवल तुम्हें छिपाने के लिए, ओढ़ लेने के लिए वस्त्र और उपाय हैं। आड़ें हैं, दीवालें हैं, जिनके पीछे तुम अपने अंधेरे ग 167ों को छिपा लो, अपने घावों को छिपा लो। ज्यादा से ज्यादा सांत्वनाएं हैं, सत्य नहीं।
वास्तविक आस्तिकता का अर्थ होता हैः जीवन के प्रति सम्मान, सत्कार, स्वागत। जीवन का आलिंगन कर लेने का सामर्थ्य का नाम आस्तिकता है। जीवन के रस को जो पूरा पीता है, वही जानता है कि परमात्मा है। दूसरे तो बातें करते हैं। और दूसरों को ही नहीं फंसाते बातों में, अपनी बातों में खुद भी फंस जाते हैं। मेरे लिए स्रष्टा और सृष्टि में कोई भेद नहीं है। मेरे लिए सृष्टि से अतिरिक्त कोई स्रष्टा नहीं है। स्रष्टा केवल नाममात्र है सृजन की महत प्रक्रिया का। यह जो बीज फूटता है और अंकुर बनता है, यह जो नदी बहती है और सागर से मिलती है, ये जो चांद-तारे आकाश में परिभ्रमण करते हैं, ये जो अनंत-अनंत विस्तार है अस्तित्व का, इसकी समग्रता का नाम ही ईश्वर है। इससे भिन्न कोई नहीं है। इसके जोड़ का नाम ही ईश्वर है। ईश्वर केवल संज्ञा मात्र है, ईश्वर कोई व्यक्ति नहीं है।
पुराना संन्यास बड़ा आश्चर्यजनक था। इस समग्र को तो इनकार करता था, जो है, जो प्रत्यक्ष है, जिसे हम जी रहे हैं, जिसमें हम जी रहे हैं, जिसके बिना हम क्षण भर नहीं हो सकते, इसको तो माया कहता था और जो नहीं है, जिसका हमें कोई पता नहीं है, जिसका कोई अनुभव नहीं है, उस धारणा में, ईश्वर की कल्पना में भरोसा करता था। और जो नहीं हैं, उसके लिए सिखाता था उसे छोड़ दो, जो है। पुराने संन्यास ने मनुष्य-जाति का जितना अहित किया है, उतना किसी और बात ने नहीं। अच्छी बातें कभी-कभी बड़ी महंगी पड़ जाती हैं। देखने में अच्छी लगती हैं, लेकिन भीतर जहर भरी हो सकती हैं। और अक्सर झूठ शुरू में मीठे होते हैं। सत्य शुरू में कड़वे होते हैं। झूठ मनमोहक होते हैं सम्मोहक होते हैं। क्योंकि हमारा मन भी झूठ है, हमारा अहंकार भी झूठ है, हमारे अहंकार से इन झूठों का तालमेल बैठ जाता है, जुगलबंदी हो जाती है।
पुराना संन्यास अहंकारी था। त्याग जितना अहंकार देता है मनुष्य को उतना कोई और चीज नहीं दे सकती। भयंकर अहंकार जन्म पाता है। लात मार दी लाखों रुपयों पर, पद पर, प्रतिष्ठा पर, सम्मान पर, सत्कार पर, संसार पर; मुंह फेर लिया सबसे; जहां सब भागे जा रहे हैं कीड़े-मकोड़ों की तरह, वहां से मैं हट आया हूं। पुराना संन्यास तुम्हें अहंकार का एक शिखर बना देता था। इसलिए अगर तुम पुराने संन्यासियों को क्रोधी पाओ तो आश्चर्य नहीं। अगर दुर्वासा जैसे ऋषि हुए तो आश्चर्य नहीं। होंगे ही। क्रुद्ध, अहंकार से भरे हुए, अभिशाप से भरे हुए--उनकी आत्मा ही अभिशाप से भरी हुई है। ऐसे व्यक्ति ऋषि और मुनि! और उनका दान क्या है जगत को? तुम जब किसी महात्मा की प्रशंसा करते हो, तो कभी तुमने सोचा तुम्हारी प्रशंसा किन मूल्यों पर आधारित होती है? कितना उसने छोड़ा। नकार होता है तुम्हारी प्रशंसा का आधार। इसलिए लोग जो छोड़ आए, उसे बड़ा-चढ़ा कर बताते हैं।

जैनों से पूछो। महावीर ने कितना छोड़ा? तो उनके शास्त्रों में बड़ी संख्याएं लिखी हैं। इतने हाथी, इतने घोड़े, इतने रत्न, इतने महल। सब सरासर झूठ है। क्योंकि महावीर एक बहुत छोटे से राज्य के राजकुमार थे। उस राज्य में इतने हाथी-घोड़े खड़े करने की भी जगह नहीं हो सकती थी। महावीर के समय भारत में दो हजार राज्य थे। महावीर की हैसियत एक तहसीलदार से ज्यादा की नहीं थी। या बहुत समझ लो तो डिप्टी कलेक्टर। इतने हाथी-घोड़े वगैरह थे नहीं। मगर जिन्होंने शास्त्र लिखे, उनको लिखना पड़े। और जैसे-जैसे तुम आगे बढ़ोगे, तुम पाओगे संख्या बढ़ती जाती है। हर नये शास्त्र में संख्या बढ़ती जाती है; पुराने शास्त्र से ज्यादा हो जाती है। क्योंकि एक प्रतियोगिता चल रही थी बुद्ध के साथ। उधर बुद्ध के शिष्य अपने हाथी-घोड़े बढ़ाए जा रहे थे, तो इधर महावीर के शिष्य अपने हाथी-घोड़े बढ़ाए जा रहे थे। क्योंकि त्याग का और मूल्य क्या? नापो कैसे? कितना छोड़ा!
यह तो बड़े मजे की बात हुई। संसार में भी तुम नापते हो धन से, कि कितना
है और संन्यास में भी नापते हो धन से, कि कितना छोड़ा? दोनों की तराजू एक है। कितनी सुंदरियां छोड़ीं, कितने महल छोड़े? कितना धन था, कितने अंबार छोड़े? इसलिए तो जैनों के चौबीस तीर्थंकर राजपुत्र हैं। किसी गरीब को तीर्थंकर मानते भी तो कैसे मानते! क्योंकि पहला सवाल यह थाः उसके पास छोड़ने को क्या है? बुद्ध भी राजपुत्र हैं और कृष्ण और राम भी। हिंदुओं के अवतार, बौद्धों के बुद्ध, जैनों के तीर्थंकर इस देश में सभी राजपुत्र। कारण साफ है। गरीब आदमी हो ही कैसे सकता है तीर्थंकर या अवतार! छोड़ेगा क्या? नंगा नहाएगा तो निचोड़ेगा क्या? पहले निचोड़ने को कुछ होना चाहिए, तभी तुम दावा कर सकते हो कि मैंने नहाया।
मगर जितनी बातें हैं, उतना कुछ था नहीं। लेकिन शास्त्र अतिशयोक्तियों
से भरे हैं।
कुरुक्षेत्र में अठारह अक्षौहिणी सेनाएं खड़ी हुईं। हो ही नहीं सकतीं खड़ी। कुरुक्षेत्र का मैदान ही छोटा सा है। एक फुटबॉल मैच हो जाए तो बहुत! लेकिन अठारह अक्षौहिणी सेनाएं! पूरा उत्तर भारत अगर युद्ध का मैदान बनता तो संभव था। फिर इनके हाथी, घोड़े और बड़ा लश्कर था! और सारी दुनिया से अलग-अलग देशों से राजे-महाराजे अपनी सेनाएं ले कर आए थे। जिसको तुम महाभारत कहते हो, वह कोई बहुत बड़ा युद्ध नहीं था। एक पारिवारिक कलह थी। एक छोटा- मोटा झगड़ा था। एक छोटे-मोटे मैदान में हुआ। लेकिन हमें अतिशयोक्ति की आदत हो गई है। जब तक हम बड़ा करके न बताएं, हमारे अहंकार को तृप्ति नहीं मिलती। हमारा अहंकार बड़ा किए जाता है।
तीन बच्चे स्कूल जा रहे थे। एक बच्चे ने कहा कि तैरना तो कोई मेरे पिताजी से सीखे! अरे, पांच-पांच, सात-सात मिनट तक डुबकी मार जाते हैं! दूसरे बच्चे ने कहा, यह कुछ भी नहीं। तैरना सीखना हो तो मेरे पिता जी से कोई सीखे! आधा-आधा घंटा निकलते ही नहीं। तीसरे ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। मेरे पिता जी से सीखो अगर तैरना सीखना है! सात साल हो गए, डुबकी मारी, निकले ही नहीं। एक ही दिक्कत है कि उनको तुम कहां पाओगे, कैसे उनसे सीखोगे? उनको खोजना मुश्किल। जो मार गए डुबकी सो मार गए डुबकी।
अब जब अतिशयोक्ति ही चल रही है, तो फिर क्या पांच-सात मिनट, फिर बढ़ाए चले जाओ अतिशयोक्ति को।
पुराना संन्यास चूंकि त्याग पर खड़ा था, इसलिए असृजनात्मक था; बोझ था, भार था पृथ्वी पर। उसका कोई भविष्य नहीं है, वह मर चुका है। उसकी लाश तुम कुछ दिन तक ढो सकते हो, वह तुम्हारी मौज! लाश से भी छूटने में मुश्किल होती है।
कहते हैं जब पार्वती की मृत्यु हुई तो शंकर उसकी लाश को ले कर बारह वर्षों तक घूमते रहे। जब शंकर की यह हालत, तो तुम्हारी क्या हालत होगी? लिए लाश को घूमते रहे कि मिल जाए कोई वैद्य, कि कोई मिल जाए चमत्कारी... मगर क्या करते, उस वक्त सत्य साईं बाबा थे ही नहीं! सो शंकर जी भटकते रहे। कोई मदारी न मिला। कोई जादूगर न मिला। पार्वती के अंग-अंग टूट कर गिरने लगे--सड़ ही गए, तो गिरेंगे नहीं तो क्या होगा! मगर शंकर भी अपनी धुन के आदमी थे। फिकर ही नहीं। हाथ गिर गए, पैर गिर गए, खोपड़ी गिर गई, मगर वे जो बचा उसको ही

लिए घूमते रहे। शास्त्र कहते हैं, जहां-जहां पार्वती के अंग गिरे वहां- वहां तीर्थ बन गए। वह जो भी हो! मगर शंकरजी की बुद्धि को भी तो ध्यान दो। ये मरी औरत को लिए घूमते रहे। यहां जिंदा औरतों को छुड़वाने का उपाय चल रहा है और शंकर जी मुर्दा को नहीं छोड़ रहे।
पुराना संन्यास तो लाश है अब। ढोओ; जितने दिन ढोना है, ढो सकते हो! अंग-अंग गिर रहे हैं उसके, दुर्गंध उठ रही है उससे--उठनी ही चाहिए। कारण साफ हैः क्योंकि असृजनात्मक है। संन्यास ने कुछ दान दिया दुनिया को। इसे सुंदर नहीं बनाया। इसे थोड़ा काव्य नहीं दिया, संगीत नहीं दिया, नृत्य नहीं दिया। दिया क्या संन्यास ने! तो जब भी तुम महात्मा की तारीफ करते हो, तुम बताते हो उसने कितना छोड़ा।
छोड़ना कोई गुण नहीं है। निर्माण क्या किया? यह गुण होगा। उसने लाख रुपये छोड़े हों, तो भी मैं गुण नहीं मानता। और एक कविता बनाई हो या एक सुंदर चित्र रंगा हो या एक चित्र भी रंगा, या एक प्यारा बगीचा लगाया हो, दो फूल खिलाए हों, तो मेरे लिए ज्यादा मूल्य है। लाख रुपये छोड़ दिए, इससे क्या होता है। करोड़ों रुपये पैदा करने की कोई विधि निकाली हो, कोई तकनीक, कोई टेक्नालॉजी खोजी हो, कोई विज्ञान दिया हो, तो मूल्य है।
लेकिन तुम महात्माओं की तारीफ इस बात से नहीं करते। तुम अलबर्ट आइंस्टीन को महात्मा नहीं कहोगे। तुम रदरफोर्ड को महात्मा नहीं कहोगे। न्यूटन को महात्मा नहीं कहोगे। हालांकि न्यूटन के बिना एक मिनट नहीं जी सकते हो--तुम्हारे सब महात्मा न होते तो भी तुम मजे से जी सकते थे, न्यूटन के बिना एक मिनट नहीं जी सकते, ख्याल रखना। न्यूटन ने कोई एक हजार आविष्कार किए। बिजली का बल्ब नदारद हो जाएगा, न्यूटन न हो तो ग्रामोफोन रिकॉर्ड नदारद हो जाएगा। रेडियो नदारद हो जाएगा। और जहां रेडियो नहीं होगा, वहां टेलीविजन कैसे हो सकता है! और जहां बिजली नहीं होगी, वहां बिजली का पंखा कैसे हो सकता है? तुम जरा सोचो, न्यूटन के बिना तुम एक दिन न जी सकोगे। बिजली का पंखा नहीं, बिजली नहीं, रेडियो नहीं, टेलीविजन नहीं। लेकिन न्यूटन को तुम महात्मा कहोगे? इसने एक हजार आविष्कार किए, लेकिन तुम्हारे मन में कोई सम्मान नहीं है। और कोई मूढ़ सिर के बल खड़ा है और तुम एकदम चरणों में लोटे जा रहे हो। क्योंकि महात्मा शीर्षासन कर रहा है! कोई मूढ़ कांटों पर लेटा हुआ है और तुम्हारे सम्मान का अंत नहीं है। इस तरह के कृत्य मूढ़ ही कर सकते हैं। पहले तो मूढ़ होने ही चाहिए वे और अगर पहले न होंगे तो बाद में हो जाएंगे। क्योंकि सिर के बल जो ज्यादा देर खड़ा रहेगा, वह निश्चित मूढ़ हो जाएगा।
वैज्ञानिक कहते हैं कि आदमी में यह जो मानसिक ज्योति दिखाई पड़ रही है,
यह जो चैतन्य दिखाई पड़ रहा है, यह जो मनुष्य के भीतर प्रतिभा दिखाई पड़ रही है, यह दो पैर के बल खड़े होने से हुई। बंदरों में नहीं है, हाथियों में नहीं है, घोड़ों में नहीं है--क्या कारण है? आदमी ही में क्यों है? आदमी दो पैर के बल खड़ा हुआ। इसका एक परिणाम हुआ, गहन परिणाम हुआः उसका सिर गुरुत्वाकर्षण के विपरीत हो गया। तो खून को सिर तक पहुंचने में बहुत मुश्किल होने लगी। सभी जानवर गुरुत्वाकर्षण के अनुकूल हैं, समतल हैं। घोड़ा है, गुरुत्वाकर्षण के समतल है; जितना खून उसकी पूंछ में जाता है, उतना ही खून उसके मस्तिष्क में जाता है। तो मस्तिष्क कुछ पूंछ से ज्यादा विकसित नहीं हो पाता। मनुष्य का मस्तिष्क विकसित हो सका एक ही आधार पर, क्योंकि खून की गति उस तरफ कम हो गई। खून की गति कम हो जाने से सूक्ष्म तंतु निर्मित हो सके। बारीक तंतु निर्मित हो सके। इतने बारीक तंतु हैं कि तुम्हारा बाल भी मोटा है।
वैज्ञानिक कहते हैं कि एक लाख मस्तिष्क के तंतुओं को एक के ऊपर एक करके रखा जाए तो एक बाल की मोटाई के होंगे।
तुम्हारे इस छोटे से मस्तिष्क में सात करोड़ तंतु हैं। ये पैदा नहीं
हो सकते थे अगर खून की धारा बहती रहती। क्योंकि खून की धारा इनको तोड़ देती। इसलिए सिर के बल जो ज्यादा खड़ा होगा, अगर पहले बुद्धू नहीं रहा होगा--पहले तो होना ही चाहिए बुद्ध, नहीं तो क्यों सिर के बल खड़ा होगा? तुमने परमात्मा की कोई मूर्ति देखी शीर्षासन करते हुए? कि रामचंद्र जी

खड़े हैं; कि कृष्णजी सिर के बल खड़े हैं और बांसुरी बजा रहे हैं! महात्मा की खूबी क्या है अगर कोई पूछे, तुम कहते हो--तीन-तीन घंटा शीर्षासन करते हैं। गए काम से! तो पहुंच गए उसी हालत में जिसमें बंदर थे! इनके मस्तिष्क के सब सूक्ष्म तंतु मर जाएंगे। इसलिए तुम्हारे महात्माओं में प्रतिभा नहीं दिखाई पड़ती। और जहां प्रतिभा न हो, वहां क्या सृजन होगा? इनसे कुछ नहीं होता-जाता! ये चमीटा बजा सकते हैं, धूल लगा सकते हैं, धूनी लगा कर बैठ सकते हैं, राम-राम की धुन मचा सकते हैं।
तुमसे कोई पूछे कि तुम्हारे महात्मा की खूबी क्या? तुम कहोगे, इतना उपवास करते हैं। महीनों उपवास करते हैं। कुछ ये ऐसा करें कि जिससे जिनके पेट भूखे हैं उनके भूखे पेट भरें, तो कुछ गुण की बात हुई! ये भूखों में और खुद भूख बढ़ाते हैं। खुद भी भूखे खड़े हो गए। दस आदमी बीमार थे, ये और जा कर लेट गए कि हम भी चलो बीमार! इनके भूखे होने से दुनिया में भोजन नहीं बढ़ जाएगा। इनके भूखे होने से दुनिया की भूख नहीं मिट जाएगी। इनका भूखे रहने का जो यह पूरा का पूरा आयोजन है, केवल एक बात का सबूत है कि इनके भीतर कहीं न कहीं आत्मघात की प्रवृत्ति होगी। ये दुष्ट प्रकृति के आदमी मालूम होते हैं। ये चाहते तो थे कि किसी और को सताते, लेकिन उतनी हिम्मत भी नहीं है, तो खुद ही को सता रहे हैं। दुनिया में सबसे असहाय व्यक्ति कोई अगर है तो वह तुम हो अगर तुम अपने को सताने लगो, तो बचाने वाला भी कोई नहीं है फिर। कोई रक्षा नहीं है। अगर तुम दूसरे को भूखा मारो, अदालत पकड़ेगी। तुम लाख कहो कि हम इसको उपवास करवा रहे थे, अदालत कहेगी कि ऐसे उपवास किसी को नहीं करवा सकते। जब यह नहीं करना चाहता, तुम कैसे करवा सकते हो? तुम कहोगे, हम धार्मिक बना रहे थे, कांटे पर लिटा रहे थे, सिर के बल खड़ा कर रहे थे, ये तो महात्माओं के लक्षण हैं--कोई अदालत न सुनेगी। लेकिन अगर तुम खुद को ही सताओ, तो अदालत के मजिस्टेट भी आ कर तुम्हारे चरण छू जाएंगे। सुप्रीम कोर्ट के जज आ जाएंगे--महात्मा को नमस्कार करने!
इस नकारात्मक प्रक्रिया का परिणाम यह हुआ है कि हम मूल्य गलत चीजों
को देने लगे।
दिगंबर जैन-मुनि अपने बाल नोचता है। इसका मूल्य हो गया। कुछ पागल होते हैं जो अपने बाल नोंचते हैं। पागलपन में अक्सर बाल नोंचते हैं लोग। तुम भी अपने घर में देखो, अगर स्त्री जब बहुत बिफर जाती है, तुम्हारी पत्नी जब बहुत ही आपे के बाहर हो जाती है, तो नोचना तो तुम्हारे बाल चाहती है, लेकिन परमात्मा हो तुम, पति हो तुम, तुम्हारे कैसे नोचे--तुमने ही खूब समझा रखी हैं बातें उसको, नहीं तो नोंच कर रख देती तुम्हारे बाल कभी के--अपने ही नोंचने लगती है। जब तुम्हारी पत्नी अपने बाल नोंचे, एकदम गिर कर साष्टांग दंडवत करना--यह जैन-मुनि हो रही है। यह बड़ी साधना कर रही है। जैन-मुनि केश-लुंच करते हैं, हजारों की भीड़ इकट्ठी होती है।
मैं एक गांव से गुजर रहा था, बड़ी भीड़ देखी, मैंने पूछाः बात क्या है? उन्होंने कहाः मुनि महाराज केश-लुंच कर रहे हैं। मैंने कहाः हद्द पागलपन है! एक आदमी अपने बाल नोंच रहा है तो नोंचने दो, इसमें इतना शोरगुल मचाने की क्या जरूरत? मगर लोगों की आंखों से आंसू बह रहे हैं कि अहाह, मुनि महाराज महात्याग कर रहे हैं! मैंने कहाः मूढ़ो, अगर तुमको इसमें ही रस है, तो नाइयों की दुकान के सामने बैठ गए, और रोते रहे कि अहाह, कि बिल्कुल सिर घुट गया, कि यह देखो दुष्ट नाई बिल्कुल ही काटे दे रहा है, सारे बाल निकाले दे रहा है! मगर नहीं, वह नोंचने में रस है। नोंचने में जो कष्ट होता है, जो दुख होता है, उसको ये आदर दे रहे हैं।
पुराना संन्यास दुखवादी था। सैडिस्ट। मैसोचिस्ट। मनोविज्ञान ये दो शब्द उपयोग करता है--पर-दुखवादी और स्व-दुखवादी। खुद को भी दुख देता था और दूसरों को भी दुख देने की तरकीबें ईजाद करता था। और संन्यास तो होना चाहिए उल्लास, आनंद; संन्यास तो होना चाहिए उत्सव! लेकिन तुम्हारे सारे मूल्य गलत हैं। भविष्य तुम पर हंसेगा। लोग आश्चर्य करेंगे कि तुम इन लोगों को आदर क्यों देते थे, किस बात का आदर देते थे? एक आदमी सर्दी में नंगा खड़ा हो गया, तुम इसको ही आदर दोगे। इसमें आदर की क्या बात है! तुम भी अगर कुछ दिन खड़े रहो, तो चमड़ी इसके लिए समायोजित हो जाती है। आखिर सारे जानवर बिना

वस्त्रों के हैं! ठंढ की क्या कहो? ठंढे पानी में मछलियां देखो--और गैरिक रंग की मछलियां, बिल्कुल संन्यासी नंग-धड़ंग और ठंढे से ठंढे पानी में मजे से तैर रही हैं। सारे पशु-पक्षी नंगे हैं। आदमी हजारों सालों तक जंगलों में नंगा रहा है। आज भी आदिवासी नंगे हैं। तुम्हारा चेहरा, तुम्हारे हाथ अब भी ठंढ को अनुभव नहीं करते। नाक छूकर देखो अपनी, तो बरफ जैसी ठंढी मालूम होती है। मगर नाक को पता नहीं चलता। आदत हो गई, समायोजन हो गया।
तो अगर नग्न रहोगे कुछ दिन, तो धीरे-धीरे चमड़ी तुम्हारी संवेदनहीन हो जाएगी। उसकी संवेदना मर जाएगी। चमड़ी के जो सूक्ष्म तंतु संवेदना अनुभव करते हैं, वे जड़ हो जाएंगे। और इसको तुम सम्मान दे रहे हो? यह आदमी संवेदना मार रहा है, यह आदमी अपनी चमड़ी को नष्ट कर रहा है, मुर्दा कर रहा है, इसको तुम सम्मान दे रहे हो! गर्मियों में लोग हैं कि कंबल ओढ़े बैठे हुए हैं, काली कमली वाले, वे गर्मी में भी कंबल ओढ़े हुए हैं। उनको भी आदर मिल रहा है, क्योंकि गर्मी में कंबल ओढ़े हुए हैं। मगर तुम भी ओढ़ो तो थोड़े दिन में आदी हो जाओगे।
शरीर की एक खूबी है कि शरीर सब तरह के समायोजन कर लेता है। इसीलिए तो दुनिया की विभिन्न-विभिन्न भौगोलिक स्थितियों में, अलग-अलग हवाओं में, अलग-अलग वातावरण में, अलग-अलग तापमानों में भी रहने में कुशल है। सब जगह अपना समायोजन कर लेता है। भूमध्य रेखा पर भयंकर से भयंकर अग्नि बरस रही है, वहां भी जीता है। और दूर ध्रुव प्रदेशों में, जहां साल के अधिकांश महीनों में बर्प जमी रहती है, वहां भी जीता है। धीरे-धीरे समायोजन इतना गहरा हो जाता है कि बच्चे समायोजन लेकर ही पैदा होते हैं।
तुमने कभी सोचा कि भूमध्य रेखा के आस-पास रहने वाले लोग काले क्यों हैं? सदियों-सदियों में समायोजन हो गया है। काले रंग की एक खूबी है, वह ज्यादा धूप को सह सकता है। गोरा रंग ज्यादा धूप को नहीं सह सकता। गोरा रंग धूप से बहुत ज्यादा संवेदित हो जाता है। फर्क बहुत ज्यादा नहीं है। वैज्ञानिक कहते हैं कि थोड़े से पिगमेंट का फर्क है चार-छह आने के रंग का फर्क है, बस। चार-छह आने का इंजेक्शन मार दिया जाए कि नीग्रो हो जाओगे। आज नहीं कल इसकी व्यवस्था हो जाएगी कि जो सफेद चमड़ी के लोग हैं, उनको अगर भूमध्य रेखा पर रहना है तो पहले इंजेक्शन ले लें, तो इनकी चमड़ी में काला रंग फैल जाएगा। काला रंग फैल जाए तो शरीर के भीतर किरणें प्रवेश नहीं कर पातीं। सफेद रंग हो तो किरणें प्रवेश कर जाती हैं। सफेद रंग ठंढे इलाके के लिए ठीक है, गरम इलाके के लिए ठीक नहीं है।
शरीर सब तरह के आयोजन कर लेता है। जब आदमी नंगा रहता था तो उसके सारे शरीर पर बाल ऊगते थे। जब उसने कपड़े पहनने शुरू कर दिए तो धीरे-धीरे बाल नदारद हो गए। बालों की जरूरत न रही। जो काम बाल करते थे, वह कपड़े करने लगे। तुम किन कारणों से आदर देते रहे हो संन्यासियों को, जरा उन कारणों पर पुनर्विचार करना। कोई पत्नी को छोड़ भागा है, कोई बच्चों को छोड़ भागा है। ये आदर के कारण हैं! ये कायर और भगोड़े, ये जो पीठ दिखा गए जीवन के संग्राम को, इनको तुम आदर दे रहे हो! इनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो नहीं जुटा सके दो रोटी, कि जिन्हें जीवन का भार झेलने की सामर्थ्य नहीं थी। तो शादी क्यों की? तो बच्चे क्यों पैदा किए? बच्चे पैदा करने में बड़े कुशल! बच्चे पैदा करने में कहते हैं, हम क्या करें, परमात्मा की मर्जी! और भागते वक्त? भागते वक्त इनकी मर्जी! भागते समय ये संन्यास ले रहे हैं। भागते वक्त इनको सत्कार मिलना चाहिए। बच्चे भूखे मरेंगे कि पत्नी वेश्या हो जाएगी, इसका इन्हें कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हारे संन्यासियों ने कितने बच्चों को अनाथ कर दिया और कितनी स्त्रियों को पति के जीते जी विधवा कर दिया! और कितनी स्त्रियां भूखों मरीं, भीख मांगी और कितनी स्त्रियों ने अपने शरीर बेचे! और कितने बच्चे बड़े ही न हुए, मर ही गए! ये सब तुम्हारे संन्यासियों के नाम पर लिखी जाएंगी बातें। और इनको तुम कहते होः महापुण्य।
और फिर ये भगोड़े संन्यासी जो छोड़ कर भाग आए हैं, इनके जीवन में कोई क्रांति तो होती नहीं। जंगल में भी बैठ कर करेंगे क्या? तुम क्या सोचते हो सच में आकाश से अप्सराएं उतरती हैं? कहां की अप्सराएं! लेकिन अगर किसी ने बिना जीवन-रूपांतरण के घरद्वार छोड़ दिया है, तो जंगल में बैठ कर पत्नी की

याद करेगा। स्त्री उसके मन को डांवाडोल करेगी, आंदोलित करेगी। वह स्त्रियों के संबंध में सोचेगा दिन-रात। जपेगा राम-राम, माला फेरेगा, ऊपर होगा राम-राम, भीतर होगा काम-काम। एक ऐसी अवस्था आ जाएगी उसके भीतर दमित वासना की कि वह खुली आंख सपने देखने लगेगा। वे ही सपने हैं अप्सराएं। कोई अप्सराएं आतीं नहीं। और तुम्हारे इन महात्माओं के पास आएंगे भी किसलिए? ये जो शरीर पर भभूत रमाए हुए, धूनी लगाए हुए शरीर को सब तरह के कष्ट दे रहे हैं--अप्सराओं को कोई और नहीं मिलता कि इन बेचारे दीन-हीन लोगों की तलाश में जाएं! ये खुद भी अगर अप्सराओं की तलाश में जाएंगे तो अप्सराएं भाग खड़ी होंगी। इन्हें दूर से ही देख कर भाग खड़ी होंगी कि आ रहा है महात्मा, भागो! जैनमुनि स्नान नहीं करते। इनको देख कर अप्सराएं आएंगी? दातौन नहीं करते, मुंह से बास आती है--अप्सराएं इनका आलिंगन करेंगी, चुंबन करेंगी? अप्सराएं पागल हो गई हैं? इनकी दुर्गंध इनकी सुरक्षा करेगी। अप्सराएं तो छोड़ो, कोई फिल्म अभिनेत्री, एक्सटर इत्यादि भी शायद इनका पीछा करे! लेकिन इनके कल्पना-जाल में अप्सराएं उतरती हैं। दमित वासना कल्पना बन जाती है। पुराना संन्यास दमन था। मेरा संन्यास रूपांतरण है। पुराना संन्यास भगोड़ापन था। मेरा संन्यास जीवन को जीने की कला है। मैं चाहता हूं, तुम जहां हो वहीं इस ढंग से जिओ कि तुम्हारा जीवन-कमल खिल सके। पुराना संन्यास सरल है। मेरा संन्यास कठिन है। हालांकि लोग तुमसे उलटी ही बात कहेंगे, वे कहेंगे मैंने संन्यास को सरल बना दिया। उनके लिहाज से ठीक ही है, क्योंकि मैं तुमसे बाल नोंचने को नहीं कहता, मैं कहता हूं, बाल कटवाने हों तो जाकर नाई से कटवा लेना। अगर नाई से कटवाने में तुम्हें बहुत अड़चन होती हो कि इसमें परालंबन हो जाएगा, तो अपने घर ही रे.जर रखना, खुद ही बना लेना अपने हाथ से। इस लिहाज से लग सकता है कि मेरा संन्यास सरल है। लेकिन यह बात सरल नहीं है। मेरा संन्यास अति कठिन है। क्योंकि मैं तुमसे कह रहा हूं, बीच बाजार में शांत हो जाओ।
और जो बीच बाजार में शांत हो गया, वह कहीं भी शांत रहेगा। उसे तुम नरक में भी भेज दो तो वह स्वर्ग में रहेगा। उसे तुम नरक भेज ही नहीं सकते। मेरे संन्यासी के मन को डोलाया नहीं जा सकता। कोई अप्सरा उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। मेरे इतने संन्यासी हैं, एक लाख संन्यासी हैं, अनेक से मैं पूछता हूं कि भई, अप्सरा वगैरह आईं? कहते हैं, अभी तक तो नहीं आईं। वे आएंगी ही नहीं। उनके आने के लिए पहली बुनियादी बात चाहिएः दमित चित्त। मैं चूंकि दमन नहीं सिखा रहा हूं, इसलिए इस तरह की मूढ़तापूर्ण कल्पनाएं, रुग्ण, विक्षिप्त कल्पनाएं पैदा भी नहीं होंगी।
देख सहजशृंगार तुम्हारा,
संन्यासी मन डोल न जाए!
संन्यासी मन डोल न जाए!!

मैं वह सुख-सपना अनदेखा--
निखर गया जो दर्द-महल में,
मैं ऐसा सूरज अनजनमा--
डूब गया जो उदयाचल में;
अवरोधों की अंधी आंधी,
कांप रहा तिनकों जैसा मन; देख अलक-भ्रम-जाल तुम्हारा, पीर-पखेरू बोल न जाए!
संन्यासी मन डोल न जाए!!

रूप-रतन के सुख-सागर में-- मैं अरूण को खोज रहा हूं, संयम की नौका में तिर कर-- मैं अनूप को खोज रहा हूं; अनथाही सरिता जीवन की,
अभी बहुत बाकी गहराई;

उफनाती आकर्षण-धारा
बांध हृदय का खोल न जाए!
संन्यासी मन डोल न जाए!!

कुछ न रहेगा मेरे पीछे,
जल पर मेरा नाम लिखा है;
मुरझाऊं खिलने से पहले,
यह मेरा परिणाम लिखा है;
महामोह की शून्य परिधि से--
घिरा-घिरा-सा उन्मन-उन्मन,
सम्मोहक उपकार तुम्हारा,
जीवन में रस घोल न जाए!
संन्यासी मन डोल न जाए!!
ये पुराने संन्यासी के संबंध में सच हो सकता है, मेरे संन्यासी के संबंध में नहीं। उसका मन डोल नहीं सकता। जिन चीजों से उसका मन डोल सकता है, मैं उनसे कह रहा हूं कि उनसे गुजरो! उनसे भागो मत! उनसे मुक्त होने का एक ही उपाय है, उनको जीओ। उनको भरपूर जी लो। वासना की व्यर्थता को अनुभव से देख लो। कामना की असारता को तुम्हारे रोएं-रोएं में, अंग-अंग में समा जाने दो। फिर तुम्हें कुछ भी डोला न सकेगा।
पुराना संन्यासी तो बहुत भयभीत था; बहुत डरा हुआ था! हर वक्त घबड़ाया हुआ था। किससे घबड़ाया हुआ है? किससे डरा हुआ है? और ऐसे डरपोकों के लिए मोक्ष है। घबड़ाया हुआ है अपने से।
विनोबा जी के सामने अगर तुम रुपये ले जाओ, वे एकदम आंख बंद कर लेते हैं। अब रुपये में ऐसा क्या है कि आंख बंद करो! जरूर कोई आकर्षण कहीं अटका रह गया होगा। नहीं तो रुपया देख कर आंख बंद करने की क्या जरूरत है? रुपया रुपया है, सो अपनी जगह है, तुम्हारी आंख में घुसा जा नहीं रहा है, कोई धूल-धवांस भी नहीं है कि आंख बंद करो; अरे, नोट है, यह आंख में कोई चला थोड़े ही जाएगा, इससे इतना क्या डर! हाथ से नहीं छूते। उनके एक शिष्य मुझे मिलने आए थे, कहने लगे, विनोबा जी रुपया हाथ से नहीं छूते। तो मैंने कहा, क्यों? तो कहाः रुपया मिट्टी है। तो मैंने कहाः मिट्टी तो छूते हैं कि नहीं? उस से तो रोज हाथ धोते हैं। तो मैंने कहाः उनसे जा कर कहना कि नोट वगैरह से हाथ धोया करें, मिट्टी को क्यों खराब कर रहे हो। और नोट छूने से इतना डर क्या है? नोट कोई शूद्र है। अगर शूद्र है तो हरिजन। लेकिन भय कहीं भीतर छिपा होगा। कहीं भीतर मोह है, कहीं आकर्षण है, कहीं आसक्ति है।
पुराने संन्यास ने तो भय सिखाया, डर सिखाया, मैं तुम्हें निर्भय होना सिखा रहा हूं। मैं कह रहा हूं, धन का उपयोग है, करो उपयोग। धन से इतना डरना नहीं है; धन में है क्या? एक कामचलाऊ व्यवस्था है। दस का नोट है कि सौ का नोट है, एक कामचलाऊ बात है। हमने तय कर रखा है, इसे सौ का नोट मान लिया है-- यह उपयोगी है विनिमय के लिए।
मुझसे एक व्यक्ति मिलने आए थे, संन्यासी, पुराने ढंब के। मैंने उनसे कहाः कल सुबह ध्यान के लिए आ जाओ। उन्होंने कहाः कल सुबह मैं न आ सकूंगा। क्यों? तो उन्होंने कहाः आप देखते हैं मेरे साथ ये सज्जन बैठे हुए हैं, इनके बिना मैं नहीं आ सकता। कल इनका अदालत में मुकदमा है। मैंने कहाः इनके बिना तुम क्यों नहीं आ सकते? तुम संन्यास हो, सब छोड़-छाड़ चुके, यह कौन है? इनके बिना तुम क्यों नहीं आ सकते? ये तुम्हारी गृहस्थी हैं, क्या मामला क्या है? तुम पत्नी छोड़ चुके, ये तो पुरुष हैं--ये तुम्हारी पत्नी हैं या क्या मामला है? उन्होंने कहाः नहीं-नहीं, आप समझे नहीं। बात यह है कि मैं पैसा नहीं छूता। पैसा ये रखते हैं। और आप तक आने के लिए टैक्सी में आना पड़ेगा, तो पैसा कौन रखेगा? यही चुकाते हैं पैसा। तो मैंने कहाः पैसा किसका रखते हैं ये। कहने लगे, जो लोग मुझे चढ़ा जाते हैं, वह ये रखते हैं, मैं छूता नहीं। मैं संन्यासी हूं, मैं धन इत्यादि नहीं छूता।
यह भी एक खूब जाल रहा। पैसा तुम्हारा है, रखते ये हैं, यह एक नया जाल फैलाया तुमने, एक आदमी को और उलझाया। अब यह तुम्हारे पीछे-पीछे फिरें, तुम

इनके पीछे-पीछे फिरो। तुम अपनी जेब में ही रख लेते और अपने ही हाथ से निकाल लेते तो कुछ हर्जा था? इनकी जेब में रखते हो, इनके हाथ से निकलवाते हो! टैक्सी में तुम बैठते हो, यह भी खूब रही! तुम भी मूढ़ हो और यह आदमी और भी मूढ़ है। वह दूसरा आदमी एकदम कहने लगा कि मैं मूढ़ नहीं हूं। अरे, मेरा क्या बिगड़ता है, मुझे तीन सौ रुपया महीना देते हैं। मैं तो नौकरी कर रहा हूं। आखिर कहीं तो काम मुझे करना पड़ेगा और इससे सरल काम क्या? मैंने पूछा कि तीन सौ तो तनख्वाह मिलती है, ऊपर भी कुछ मार देते हो कि नहीं? उन्होंने कहाः वह बहुत मुश्किल है, क्योंकि बाबाजी हिसाब रखते हैं। वे देखते रहते हैं--कितना पैसा आया? रोज रात पूछ लेते हैं कि आज कितना आया?
हिसाब भी बाबा जी रखते हैं, टैक्सी में बाबा जी चलते हैं--और इस गरीब आदमी को तीन सौ रुपया और चुकाते हैं! मैंने उनसे कहाः तीन सौ रुपया और तुम अपने काम में ला सकते थे। और जब हिसाब ही रखना है और पैसा का उपयोग भी करना है--करना ही पड़ेगा; मैं कुछ कह नहीं रहा हूं कि मत करो उपयोग--मगर यह जाल क्यों? मगर इसके कारण उनका सम्मान है। पैसा छूते नहीं।
हमारे अजीब सिद्धांत हैं, अजीब धारणाएं हैं! कभी इनकी मूढ़ता पर विचार करो, इनकी जड़ता पर विचार करो। और फिर ऐसा आदमी भयभीत तो रहेगा, डरा तो रहेगा। ऐसे आदमी की भी एक सीमा होगी। समझो कि ऐसा आदमी दस रुपये न छुए, हजार न छुए, दस लाख? तो शायद डांवाडोल हो जाए। सोचे कि अब दस लाख मिल रहे हैं, अब एक दफा भूल ही कर लो। और दुनिया में लोग इतनी भूलें कर रहे हैं और हमने एक दफे की तो हर्ज क्या? और फिर कर लेंगे तीर्थयात्रा, कि कुछ पुण्य कर लेंगे, कुछ सत्यनारायण की कथा करवा देंगे।
चंदूलाल पर एक मुकदमा था। चंदूलाल का एक दोस्त वकील था। चंदूलाल ने सोचा, वकील के मार्पत सब अधिकारियों से जान-पहचान कर ली जाए तो ठीक रहेगा। वकील ने कहा तुम मेरे साथ आज कचहरी चलो, वहीं सबसे परिचय करवा दूंगा। वकील ने सबसे पहले एक मुंशी से मिलवाया। बताया कि ये मुंशी जी हैं, बड़े काम के आदमी हैं। फिर चंदूलाल के कान में कहा, दस रुपये इसे दे दो, तो यह तत्काल काम कर देता है। इसके बाद एक इंस्पेक्टर से मुलाकात कराते समय कान में कहा, सौ रुपये दो और चाहे जो काम करवा लो। इसी तरह एस. पी. से परिचय कराने के बाद वकील दोस्त ने चंदूलाल के कान में कहाः तीन सौ रुपये में खुश! मजिस्टेट से भी पहचान कराते समय जब दोस्त ने चंदूलाल के कान में कहा, पांच सौ रुपये, तो चंदूलाल से न रहा गया, वह बोला, आश्चर्य है, न्यायालय में जब इतनी रिश्वतखोरी चलती है तो फिर न्याय कैसे होगा? क्या इस इंसाफ के मंदिर में कोई पवित्र और चरित्रवान अधिकारी काम नहीं करता? करता है, जरूर करता है--वकील ने जवाब दिया--मगर प्यारे चंदूलाल, उसे खरीदना और खुश करना तुम्हारी औकात के बाहर है।
सबकी सीमाएं हैं। कब तक आंख बंद रखोगे? और एकदम से अगर--झरत दसहुं दिस मोती, फिर क्या करोगे? फिर भूल-भाल कर एकदम बीनने लगोगे कि अब छोड़ो न मौका! चारों तरफ देख लो कि कोई देख तो नहीं रहा है, ऐसा अवसर न चूको! ऐसे ही अप्सराएं उतरीं। झरत दसहुं दिस मोती! फिर ऋषि-मुनियों से न रहा गया। फिर ऋषि-मुनियों की पतन की कहानियां हैं। पहले उनको दमन सिखाओ, फिर बेचारों का पतन करवाओ! तुमने उन्हें कहीं का न रखा, न घर का न घाट का, धोबी के गधे हो गए।
मैं एक संन्यासी की नई धारणा दे रहा हूं। मौलिक भेद यही है कि मैं संन्यासी को सृजनात्मक देखना चाहता हूं। उसकी कीमत उसके उपवास करने से नहीं होगी, वह कितना पैदा करता है इस दुनिया में, इससे होगी। उसकी कीमत उसने क्या छोड़ा, इससे नहीं होगी, क्या निर्माण किया, इससे होगी। उसकी कीमत उसने शरीर को कितना कुरूप और अपंग किया, इससे नहीं होगी, बल्कि शरीर को कितना सुंदर किया, स्वस्थ किया, इससे होगी। इस संसार को तुमने जैसा पाया है, उससे कुछ थोड़ा सुंदर छोड़ जाओ, तो तुम संन्यासी हो। इस संसार को कुछ थोड़ा सा प्रीतिकर कर जाओ, थोड़ा प्रेम में पग जाए यह संसार, तो तुम संन्यासी हो। इस संसार में थोड़े फूल खिला जाओ थोड़ी सुगंध बिखरा जाओ, तो तुम संन्यासी हो। तुम्हारा मूल्य तुम्हारी सृजनात्मकता से तय होगा और तुम्हारे भगोड़ेपन से नहीं। जीवन को उसकी सघनता में जीओ, मगर ऐसे जीओ जैसे

कमल जल में। जल में रहे और जल छूए भी न। नहीं तो तुम अगर भागे कच्चे, तो अटके रहोगे। और तुम्हारा पुराना संन्यास कच्चा था। वह तुम्हें जीवन को उसकी गहराई में नहीं जाने देता था। जीवन से तुम्हें डरा देता था। जीवन पाप है। जीवन दुष्कर्मों का फल है। नहीं, बिल्कुल नहीं, हजार बार नहीं। जीवन पुरस्कार है। जीवन अवसर है विकास का, प्रौढ़ता का। तुम्हें खिलना है। जीवन उस खिलने के लिए एक मौका है, एक भूमिका है।
दृग-गगन में तैरते हैं,
रूप के बादल रुपहले!

मन पराया हो रहा है,
तन उनींदा सो रहा है;

क्या करें, ऋतु का विपर्यय,
धैर्य-साधन खो रहा है;
इस नशीली चांदनी में,
चंद्रवदना यामिनी में;
रे हठी! मत झिझक तू भी,
आज मन की बात कह ले!
मधुवनों ने सुरा पीली,
सुरभि-वेणी हुई ढीली;
प्रस्तरों को बेधती हैं-- रेशमी किरणें नुकीली;
अब न कोई बच सकेगा;
यह नियम क्रम रच सकेगा;
बेखुदी में डूब तू भी,
ज्योत्सना की बांह गह ले! चांदनी ने चिटख तोड़े,
लाज के बंधन निगोड़े;
निर्वसन अंबर दिगंबर,
दिग्वधू से गांठ जोड़े;
इस धुले वातावरण में,
झिलमिलाते मधु-क्षरण में;
एक पल को ही सही, पर--
अमिय-सरि में मुक्त बह ले!
मेरा संदेश संन्यासियों को यही है--
एक पल को ही सही, पर--
अमिय-सरि में मुक्त बह ले!
इस जीवन की अमृत धारा में मुक्त भाव से बह लो एक क्षण को भी, तो तुम जाग जाओगे। जीवन ही जगा देगा, भागना नहीं पड़ेगा। जीवन की असारता ही तुम्हें दिखा देगी कि इसके पार भी कुछ होना चाहिए जो सार है। जीवन की क्षणभंगुरता तुम्हें बेध देगी, तुम्हें चौंका देगी, तुम्हें उस खोज में लगा देगी जो शाश्वत की खोज है, जो समयातीत की खोज है। चारों तरफ जाग कर जीओगे तो मृत्यु को देखोगे नहीं? द्वार-द्वार मृत्यु दस्तक दे रही है; और मृत्यु तुमसे कुछ कहेगी या नहीं कहेगी? मृत्यु कहेगी कि यह घड़ी तुम्हारी भी आती है। इसके पहले कि यह घड़ी आए, जान लो कुछ, पहचान लो कुछ जो अमृत है--और वह अमृत तुम्हारे भीतर छिपा है।
जंगलों में होता तो मैं भी कहता कि जंगल भाग जाओ। वह अमृत तुम्हारे भीतर छिपा है। बाल उखाड़ने से मिलता होता तो मैं भी कहता, बाल उखाड़ो। मगर बाल उखाड़ने से उस अमृत के मिलने का कोई संबंध नहीं। नग्न होने से मिलता होता तो मैं भी कहता कि नग्न हो जाओ, सब दिगंबर हो जाओ। मगर वस्त्र भी बाहर हैं और नग्नता भी बाहर है--और अमृत भीतर है। वस्त्र पहनने वाला भी बहिर्मुखी है और जो नग्न हो कर खड़ा हो गया है, वह भी बहिर्मुखी है--और यात्रा अंतर की करनी है। भोजन भी बाहर है, उपवास भी बाहर है--भोजन तुम्हारी

आत्मा में नहीं जाता, तुम्हारे शरीर में ही जाता है; और उपवास भी तुम्हारे शरीर में ही अटका रह जाता है, तुम्हारी आत्मा में नहीं जाता। तुम चाहे पैर के बल खड़े होओ, चाहे सिर के बल खड़े होओ, तुम्हारे सिर के बल खड़े होने से तुम आत्मवान नहीं हो जाते। तमाशा हो जाते हो, सर्कस हो जाते हो, मगर आत्मवान नहीं हो जाते। शरीर को इरछा-तिरछा करो, तरह-तरह के आसन-व्यायाम करो, इस सबसे कुछ भी न होगा, जाना होगा भीतर--और भीतर जाने की एक ही प्रक्रिया हैः ध्यान।
मैं संन्यास को सिर्प ध्यान का पर्याय मानता हूं। संन्यास अर्थात ध्यान। ध्यान अर्थात संन्यास। ध्यान से ज्यादा कुछ और करने की जरूरत नहीं है। ध्यान सध जाए, संन्यास सध गया। ध्यान सधने का अर्थ हैः तुमने जान लिया कि मैं देह नहीं, मन नहीं, आत्मा हूं। और मेरे कहने से नहीं--मेरे कहने से क्या होगा; मैं लाख कहूं, इससे क्या होगा--तुम्हारा अनुभव होना चाहिए, तुम्हारा साक्षात्कार होना चाहिए।
मैं जीवन के साथ प्रेम सिखाता हूं। क्योंकि प्रेम के द्वारा ही जीवन
की गहराइयों को जान सकोगे। और जानोगे तो मुक्त हो सकोगे। ज्ञान के अतिरिक्त और कोई मुक्ति नहीं है। और मैं भयभीत होना नहीं सिखाता। और मैं नहीं कहता कि भूलें करना ही मत। क्योंकि जो भूलें नहीं करता, वह सीखता भी नहीं। हां, एक ही भूल दुबारा मत करना। एक ही भूल दुबारा करने वाला मूढ़ है। नई-नई भूलें करना ताकि नया-नया सीखने को मिले। मैं तुमसे नहीं कहता कि भटकना मत कभी; क्योंकि भटकता वही नहीं जो बैठा ही रहता, चलता ही नहीं, उठता ही नहीं। मगर जो उठता ही नहीं, चलता ही नहीं, वह पहुंचता भी नहीं। भटकना, बेफिकरी से भटकना, क्या घबड़ाने की बात है, परमात्मा सब तरफ व्याप्त है। भटकोगे भी तो भी उसी में भटकोगे, उसके पार नहीं जा सकते, उससे दूर नहीं जा सकते। लेकिन हर भटकाव बोधपूर्वक हो, ताकि हर भटकाव के बाद जब तुम वापस लौटो तो कुछ ज्ञान की संपदा लेकर लौटो, कुछ हीरे-जवाहरात लेकर लौटो, हर भूल के बाद कुछ नया जागरण, कुछ नई किरण बोध की तुम्हारे हाथ लगे--लगनी चाहिए, लगती है।
इसलिए मैं न तो भूलों का विरोधी हूं, न भटकावों का विरोधी हूं, न जीवन
का विरोधी हूं। मैं कहता हूंः जीवन को उसकी समग्रता में जीओ--निर्भय होकर, छोड़ कर सब धारणाएं परिणामों की। लोग बिल्कुल डरे हुए खड़े हैं, बंधे हुए खड़े हैं, सब ने लक्ष्मण-रेखाएं खींच रखी हैं, उनके बाहर नहीं निकलते। अपने- अपने घेरे में हैं। और वे ही घेरे तुम्हारा नरक बन गए हैं। निकलो बाहर, तोड़ो लक्ष्मण-रेखाएं! पहले डर लगेगा, क्योंकि अज्ञात में प्रवेश हमेशा डर देता है।
मैं नहीं सिखाता तुम्हें चरित्र, मैं तुम्हें सिखाता हूं चैतन्य। चरित्र दो कौड़ी का होता है, ऊपर से थोपा होता है। तुम्हारा पुराना संन्यास चरित्र पर निर्भर था, मेरा संन्यास चैतन्य पर निर्भर है। चैतन्य भीतरी घटना है, चरित्र ऊपरी घटना है। चरित्र तो ऐसा है जैसे रंग लिए ओंठ। लाल रंग लो, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि तुम्हारे ओंठों में खून का प्रवाह हो रहा है! चरित्र तो थोथा है, ऊपरी है, नकली है। चैतन्य जैसे तुम्हारे ओंठ में जीवन का, रक्त का, यौवन का प्रवाह हो रहा हो। तब ओंठ लाल हों तो ठीक। लिपस्टिक से लाल कर लिए और चल पड़े!!
... लिपस्टिक लगाई हुई औरतें जितनी भद्दी और बेहूदी लगती हैं--सुंदर से सुंदर स्त्रियां बेहूदी और भद्दी लगने लगती हैं। मगर हम झूठ पर हर तरफ से भरोसा किए हुए हैं। शर्म भी नहीं आती स्त्रियों को। सब झूठ है। चोलियां पहन रखी हैं, जो कि झूठ है, जोकि स्तनों को उभार कर दिखलाने की चेष्टा है। चाहे स्तन हों या न हों, चाहे स्तन कभी के ढल चुके हों, मगर रबर की गद्दियां! और इसको इस देश में, इस पुण्य-भूमि में बड़ा महत्वपूर्ण समझा जाता है! लोग कोट के कंधों में रुई भरवा लेते हैं, कोट की छाती में रुई भरवा लेते हैं--और चले अकड़ कर! भीतर छाती हो या न हो! मगर रबर के कंधे, रबर की छाती अकड़ कर चलने के लिए थोड़ा सुख दे जाते हैं। मगर किसको धोखा दे रहे हो? और ये साधारण लोग करते रहें तब तो ठीक है, जिनको तुम महात्मा कहते हो, उनका भी मामला यही है। सारा चरित्र थोपा हुआ है, आरोपित है, ऊपर-ऊपर है।

चैतन्य से नहीं उठा है। आरोपित चरित्र का लक्षण होता है कि वह भय के कारण होता है। या लोभ के कारण होता है। तुम पूछो अपने महात्मा से कि तुमने क्यों संन्यास लिया? तुमने क्यों संसार छोड़ा? तो वह कहेगा कि क्या मुझे नरक में सड़ना था! नरक के भय से संसार छोड़ा है। ये बच्चे हैं। जैसे बच्चे भय से स्कूल जाएं, मास्टर की मार-पीट से डर कर पढ़ाई करें। या लोभ के कारण छोड़ा है। कि स्वर्ग पाना है, स्वर्ग के सुख पाने हैं। जैसे बच्चे पुरस्कार के लोभ में--कि गोल्ड मेडल मिलेगा--मेहनत करें। ये तुम्हारे महात्मा भी बच्चे हैं। और बड़ी हैरानी तो तब होती है कि छोटों से लेकर बड़ों तक वही मूढ़ता! अभी कलकत्ता की मदर टेरेसा को नोबल प्राइज मिल गई। वे लेने पहुंच गईं। बच्चों को छोड़ो ये बातें! ये पुरस्कार! इससे तो बर्नार्ड शॉ ने ठीक किया। जब उसे नोबल प्राइज मिली तो उसने कहा कि नहीं, अब मैं उस उम्र के पार हो चुका जब पुरस्कार मुझे आनंदित कर सकते थे, यह किसी युवक लेखक को, कथाकार को दो। लेकिन मदर टेरेसा... खाक मदर! ... पहुंच गईं नोबल प्राइज लेने। अब जगह-जगह प्राइज मिल रहीं, जगह-जगह पुरस्कार; अब भारतरत्न हो गईं!
कागज इकट्ठे करते फिरते हैं लोग। सम्मान, सत्कार। और यही आशा आगे भी
है कि स्वर्ग में भी पुरस्कार मिलेंगे। तो झेल लो, यहां तो थोड़े दिन की बात है, थोड़े दिन, चार दिन की बात है, अरे, दुख में भी झेल लिए तो कोई हर्ज नहीं, फिर पीछे तो शाश्वत सुख है। ये तुम्हारे महात्मा बचकाने हैं। ये प्रौढ़ भी नहीं हैं, महात्मा तो बहुत दूर। इनको कम से कम इतना तो पता होना चाहिए कि चरित्र भय और लोभ के आधार पर निर्मित होगा तो झूठा होगा, मिथ्या होगा। असली चरित्र चैतन्य से निर्मित होता है। तुम जागते हो भीतर, ध्यान तुम्हारी ऊर्जा को प्रज्वलित करता अग्नि की भांति, तुम्हारे भीतर दीया जलाता है और उस दीये के प्रकाश में तुम देखते हो क्या ठीक, है, और क्या गलत है। न तो गीता से तुम जीते हो, न कुरान से, न बाइबिल से, न महावीर से, न बुद्ध से, तुम जीते हो अपनी रोशनी में। और यही परम बुद्धों ने कहा है। बुद्ध का अंतिम संदेश पृथ्वी पर यही थाः अप्प दीपो भव। अपने दीये बनो। अपने दीये खुद बनो। तुम्हारे भीतर ध्यान का दीया जले, फिर तुम्हें दिखाई पड़ता है क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है। फिर तुम वही करते हो जो करने योग्य है। फिर चाहे शास्त्र के अनुकूल हो, चाहे प्रतिकूल हो। क्योंकि शास्त्रों में सभी बातें सही नहीं हैं। अगर शास्त्रों के अनुकूल ही कोई चले, तो समय तो रोज बदलता जाता है, शास्त्र तो बदलते नहीं। शास्त्र जब लिखे गए थे तब के लिए शायद कोई बात ठीक रही भी हो, उस समय के अनुकूल रही हो, अब हजारों साल बीत गए, वह बात ही कचरा हो गई। आदमी बहुत आग निकल चुका। अब तुम उस शास्त्र के अनुसार जीओगे तो सिर्प अबुद्धि का परिचय दोगे। अब भारत के शास्त्रों में ऐसे यज्ञों का वर्णन है जिनमें बलि दी जाती थी। अश्वमेध-यज्ञः उसमें अश्व की बलि दी जाती थी। और अश्वमेध-यज्ञ ही होता तो भी ठीक था, नरमेध-यज्ञ भी होते थे, जिनमें मनुष्यों की बलि दी जाती थी। अब अगर शास्त्र की मान कर चलोगे--और अभी भी कुछ लोग मान कर चलते हैं। तो तुम आए दिन खबरें पढ़ लेते हो अखबारों में कि किसी ने अपने बेटे की ही बलि दे दी। वह कर रहा है शास्त्र के अनुकूल काम। मगर शास्त्र लिखे गए थे पांच हजार साल पहले। जिनने लिखे थे, रहे होंगे जंगली और बर्बर। बलि की बात ही अधार्मिक है। मगर करीब-करीब दुनिया के सारे धर्मों में बलि की प्रथा जारी रही। हटते-हटते हटी। अब भी पूरी नहीं हट गई है। शास्त्रों में तो सती की प्रथा लिखी है। सब शास्त्र पुरुषों ने लिखे। अगर स्त्रियां भी लिखतीं तो "सता" की थी प्रथा लिखतीं, कि जब स्त्री मर जाए तो पति "सता" हो जाना चाहिए। जिंदगी भर तो सताया, अब "सता" होओ। अब कहां जाते हो बच कर? लेकिन चूंकि शास्त्र पुरुषों ने लिखे, इसलिए वे अपने लिए क्यों लिखेंगे? मर्द बच्चे की बात ही और! इधर एक औरत मरी नहीं, मरघट से लोग लौटते वक्त विचार करने लगते हैं कि अब भई, कहां लगाएं, शादी कहां लगानी है, कहां करनी है? किसकी लड़की ढूंढें? क्या करें क्या न करें? और स्त्री को सती हो जाना चाहिए!
और तुमने लाखों स्त्रियों को जलाया। और यह मत सोचना कि वे अपनी इच्छा
से सती हुई थीं। अपनी इच्छा से कोई सती हो तो समझ में आती है बात। इतना प्रेम रहा हो, इतना प्रगाढ़ प्रेम रहा हो कि किसी के लिए जीना असंभव ही हो

जाए प्रेमी के बिना। तो ऐसा तो दिखाई नहीं पड़ता। वही पति पत्नी जिंदगी भर कलह करते रहे, एक-दूसरे की छाती पर मूंग दलते रहे और मर कर एकदम से प्रेम हो गया! इतना प्रेम कि जीवन दे दिया! नहीं, हालत कुछ और ही थी। हालत बिकुल उलटी थी। सतियां इच्छा से नहीं होती थीं--हां, हजार में कोई एकाध होती होगी, उसकी बात छोड़ दो; अपवाद को मत गिनो, उससे नियम सिद्ध होता है, खंडित नहीं होता--नौ सौ निन्नयानबे स्त्रियां जबरदस्ती धक्का दे कर सती की गईं। इस तरह का इतंजाम करते थे; खूब बैंड-बाजे बजाते थे और खूब घी फेंकते थे और बड़ी चिता जलाते थे। घी से इतना धुआं उठता कि किसी को कुछ दिखाई नहीं पड़ता कि क्या हो रहा है और उसमें जिंदा स्त्री को बिठा देते। और चारों तरफ ब्राह्मण पुरोहित मशालें लेकर खड़े रहते थे कि वह स्त्री भागती थी--जिंदा आदमी को तुम जलाओगे! जरा, अपना हाथ तो आग में डाल कर देखो! तुम्हें पता ही नहीं चलेगा कब हाथ बाहर आ गया! बाद में पता चलेगा जब हाथ बाहर आ जाएगा। इसको वैज्ञानिक कहते हैंः कंडीशंड रिफ्लेक्स। इसमें तुम्हें कुछ करना नहीं पड़ता। जैसे कोई आदमी तुम्हारे आंख के पास हाथ लाए तो आंख एकदम झपक जाती है--तुम्हें झपकाना थोड़े ही पड़ती है! अगर तुम पहले विचार करो कि आंख झपकनी है कि नहीं झपकनी है, तब तक तो मामला ही खराब हो जाए! इतना सोच-विचार का मौका नहीं दिया जा सकता, आंख जैसी नाजुक चीज, तो कंडीशंड रिफ्लेक्स, आंख की पलक खुद ही झपक जाती है। अपने से झपक जाती है।
रात तुम सो रहे हो, पैर पर कोई चींटा चढ़ने लगा, पैर झटक देता है उसको। इसके लिए जगने की कोई जरूरत नहीं होती। नींद में तुम मच्छर को हाथ से उड़ा देते हो, जगने की कोई जरूरत नहीं होती। अगर तुम आग में हाथ डालोगे तो हाथ अपने से बाहर आ जाता है, तुम्हें लाना नहीं पड़ता। जिंदा स्त्री को, पूरी स्त्री को तुम बिठा लोगे आग में, वह भाग कर बाहर नहीं निकल आएगी! अपने से निकल आएगी। निकलना नहीं चाहेगी तो भी निकल आएगी।
तो वे पंडित-पुरोहित खड़े होते थे जोर-जोर से मंत्रों का उच्चार करते हुए और इतना धुआं पैदा करते थे घी डाल कर कि किसी को दिखाई न पड़े असलियत और मशालों से उस स्त्री को वापस धक्के देकर चिता में गिरा देते थे। यह सीधी नरहत्या थी। यह महापाप था। लेकिन इसको बड़ी चरित्र की बात समझी जाती थी। हां, अगर यह चैतन्य से उठे, तब बात और है। तो चैतन्य से तो किसी लैला को उठ सकती है, कि किसी मजनू को; कि किसी शीरीं को, कि किसी फरहाद को। यह तो कभी बात घट सकती है। और उसके लिए न तो धुआं पैदा करना पड़ेगा और न मंत्रोच्चार करना पड़ेगा। सच तो यह है कि अगर यह बात चैतन्य से घटेगी तो उस स्त्री को या पुरुष को चिता में जाने की जरूरत ही न रहेगी। इधर एक के प्राण निकलेंगे कि उधर दूसरे के प्राण उड़ जाएंगे; श्वास चलेगी ही नहीं। अगर प्रेम इतना सघन होगा तो बात खतम ही हो गई। श्वास चलने का कोई कारण ही न रहा। तब तो यह बात कुछ और होती। नहीं तो बस सब थोपी हुई बातें हैं।
शास्त्रों के अनुसार जीने से तुम चरित्रवान हो जाओगे, इस भ्रांति में
मत रहना। फिर शास्त्र तो अलग-अलग बातें कहते हैं। फिर किस शास्त्र की मानोगे? द्रौपदी के पांच पति थे, यह शास्त्रानुकूल है, इसमें कोई हर्जा नहीं है, पाप नहीं हो सकता, क्योंकि पाप हो तो द्रौपदी महापापी हो जाएगी-- और द्रौपदी तो पंच-कन्याओं में एक है। तो किसी स्त्री को पांच पति अगर करने हों, तो इसमें कुछ चरित्रहीनता नहीं है, शास्त्र के अनुकूल बात हो रही है। हालांकि कानून के खिलाफ होगी और पांचों पति और स्त्री सब जेलखाने में बंद होंगे, वह दूसरी बात है। लेकिन चरित्र के संबंध में कोई बात नहीं है। नहीं तो द्रौपदी के चरित्र पर संदेह पैदा हो जाएगा।
अगर शास्त्रों को देखते हो तो तुम्हारा धर्मराज युधिष्ठर जुआ खेलते हैं और उनको धर्मराज कहते हो! शर्म भी नहीं आती! धर्मराज जुआ खेल रहे हैं। और छोटा-मोटा जुआ नहीं खेल रहे, सब हार गए। सब हार गए, वह भी ठीक, पत्नी को भी दांव पर लगा दिया। अब तो बेशर्मी की हद हो गई! आदमियों को कहीं दांव पर लगाया जाता है? पत्नी कोई चीज-वस्तु, कोई तुम्हारी मालकियत? लेकिन उन दिनों यही ख्याल था, शास्त्र यही कहतेः स्त्री-धन। पुरुष-धन नहीं कहते, स्त्री-धन। बाप बेटी को दान कर देता है, कन्यादान! जैसे यह कोई सामान है कि कर दिया दान। स्त्रीधन, अगर धन है तो फिर ठीक है, फिर दांव पर लगा कर हार

गए। तो जुआ खेलने में कोई पाप नहीं। और धर्मराज धर्मराज ही रहे! स्त्री को भी दांव पर लगा कर हार गए। तो जुआ खेलने में कोई पाप नहीं है। जब धर्मराज हो सकता है कोई व्यक्ति जुआ खेल कर, तुम मजे से जुआ खेल सकते हो, इसमें क्या अड़चन है! तुम्हारे साधु-संत सदियों से गंजड़ी-भंगेड़ी! इसको अगर तुम चरित्र कहते हो, तो फिर दुश्चरित्रता और क्या होगी?
नहीं, कोई दूसरा निर्णायक नहीं हो सकता। और तुम दूसरे के आधार से चरित्र को सोच कर जीना भी मत। निर्णय तो तुम्हारे भीतर से आना चाहिए। अगर तुम बाहर निर्णय खोजने गए, तो बहुत मुश्किल में पड़ोगे। कुछ भी तय करना मुश्किल हो जाएगा। फिर तो तुम जो चाहो वह करो, उसके लिए तुम शास्त्रों में हमेशा समर्थन पा जाओगे। शास्त्रों में हर चीज का समर्थन है। एक शास्त्र में नहीं मिलेगा, दूसरे शास्त्र में मिल जाएगा। दूसरे में नहीं तो तीसरे में मिल जाएगा। तुम अपने मनोनुकूल शास्त्र चुन लेना। और एक धर्म में नहीं तो दूसरे धर्म में। मांसाहार करना हो तो आधार मिल जाएंगे। मांसाहार न करना हो तो आधार मिल जाएंगे।
और कैसे-कैसे अदभुत आधार लोगों ने खोज लिए हैं। जहां बिल्कुल नहीं मिल सकते थे वहां भी खोज लिए हैं।
बौद्ध सारे जगत में मांसाहार करते हैं, हालांकि बुद्ध अहिंसा के परम उपदेष्टा थे और सारे बौद्ध मांसाहार करते हैं। जापान में, चीन में, कोरिया में, सब जगह मांसाहारी हैं। एक छोटी सी घटना से मांसाहार शुरू हो गया। बुद्ध ने अपने भिक्षुओं से कहा था--सोचा भी नहीं होगा बेचारे बुद्ध ने
कि ऐसा भी हो सकता है, कि आदमी इतना चालबाज और बेईमान है--अपने भिक्षुओं को कहा था कि तुम्हारे पात्र में जो भी मिल जाए, उसको स्वीकार कर लेना। इसलिए कहा था, नहीं तो फिर भिक्षु इशारा करने लगते हैं। मैं जैन मुनियों को जानता हूं, वो भीक्षा लेने जाते हैं तो इशारा करते हैं। ढंग से इशारा करते हैं--बोलते नहीं, बोलने की मनाई है। मांग नहीं सकते कि यह दो, मगर जो लेना हो, उस तरफ आंख कर देते हैं। थाली सजा कर रखी जाती है, जो लेना हो उस तरफ आंख कर देते हैं, जो न लेना हो उस तरफ सिर हिला देते हैं। इसकी मनाही है ही नहीं शास्त्र में कि आंख मत करना, सिर मत हिलाना! जो और लेना हो तो सिर और हिला देते हैं कि हां, थोड़ा और। अब गाजर का हलुआ है तो कहते हैं--थोड़ा और! महावीर ने उनको समझाया था मांगना मत। क्योंकि मांगने लगो तुम तो बोझ
हो जाओगे। तो मांगते नहीं हैं, मुंह से नहीं बोलते, एक शब्द नहीं बोलते, मगर आदमी इतना होशियार है कि मांगने न मांगने का क्या सवाल है इशारे तो कर ही सकता है। इशारे के लिए तो मनाही की नहीं--वह महावीर भी चूक गए।
बौद्धों के शास्त्रों में तैंतीस हजार नियम हैं जो भिक्षु को पालन करना चाहिए। तैंतीस हजार! जिनकी संख्या भी इतनी है कि पूरे नियम भी याद नहीं रखे जा सकते। इतने नियम के बाद भी मांसाहार की तरकीब खोज ली। बुद्ध ने कहा था कि जो तुम्हारे पात्र में पड़ जाए वह ले लेना। रूखी-सूखी जो मिल जाए, यह मत कहना कि मैं तो पुड़ी लूंगा, कि मैं तो हलुआ लूंगा, कि मैं तो यह लूंगा।
एक दिन एक भिक्षु भिक्षा मांग कर आ रहा था और एक चील उड़ी और उसके मुंह
से मांस का एक टुकड़ा उसके पात्र में गिर गया। अब यह बिल्कुल संयोग की बात है। उसने सोचा, अब क्या करना! क्योंकि बुद्ध ने तो कहा कि जो पात्र में पड़ जाए। तब तक मांसाहार शुरू नहीं हुआ था बौद्धों में। उस भिक्षु ने जाकर बुद्ध को पूछा कि अब आप क्या कहते हैं? बुद्ध थोड़ी देर सोच में पड़े। बुद्ध ने सोचा कि यह कोई चील इस तरह का काम कोई रोज-रोज तो करेंगी नहीं, यह संयोग की बात है। सिर्प इस कारण अगर मैं इतना कहूं कि तुम चुन सकते हो; जो तुम्हें न लेना हो, गलत तुम्हारे पात्र में पड़ जाए, छोड़ देना, तो बस उपद्रव शुरू हो जाएगा। फिर लोग हटा देंगे रूखी-सूखी रोटी, चुन लेंगे अच्छा-अच्छा, और इससे बहुत सा भोजन भी नष्ट होगा, लोगों पर बोझ भी पड़ेगा--और चील तो कोई रोज यह काम करेगी नहीं, तो अपवाद है, तो बुद्ध ने कहा, कोई फिकर नहीं, जो तुम्हारे पात्र में पड़ गया वह स्वीकार कर लो। उस दिन मांसाहार हुआ! फिर बात आई और गई हो गई।

बुद्ध के समाप्त हो जाने पर भिक्षुओं ने सोचा कि अब क्या करना? मांसाहार के बाबत क्या करना, क्योंकि मांसाहार हो चुका। एक भिक्षु ने तो मांसाहार कर लिया--और बुद्ध के सामने किया, बुद्ध की आज्ञा से किया। सवाल इतना ही है कि पात्र में जो पड़ जाए। तो बस, इशारे। एजेंटों ने खबर कर दी होगी। एजेंट तो होते ही हैं महात्माओं के, उन्होंने खबर कर दी होगी कि भिक्षुओं के पात्रों में मांस डाला जा सकता है। और मांस डाला जाने लगा। और भिक्षु मांस को लेने लगे।
बुद्ध ने कहा था कि मांस बुरा नहीं है अगर मरे हुए जानवर का लिया जाए, क्योंकि उसमें हिंसा नहीं होती। बिल्कुल तात्विक बात कही थी। मारने में हिंसा है। कोई जानवर मर ही गया है, उसका मांस लेने में कोई हिंसा नहीं है। इससे उन्होंने तरकीब निकाल ली। तो अब जापान में या चीन में तुम्हें होटलों के सामने तख्तियां लगी मिलेंगी--जैसे भारत में मिलेंगी, दुकानों पर लगा रहता हैः "यहां शुद्ध घी बिकता है।" पक्का समझ लेना कि यहां शुद्ध घी क्या, घी शायद ही बिकता हो। शुद्ध घी! घी काफी है, शुद्ध की क्या जरूरत? लेकिन शुद्ध लिखना जरूरी है, क्योंकि शुद्ध कहीं मिलता नहीं--चीन-जापान की होटलों में लिखा रहता हैः यहां मरे हुए जानवरों का मांस ही पकाया जाता है। अब इतने जानवर कहां मरते हैं रोज? चीन की संख्या है अस्सी करोड़। इतने जानवर रोज कहां मरते हैं? और फिर चीन में अगर जानवर इतने रोज मरते हैं, तो हजारों जो कसाई खाने हैं वो किसलिए हैं? और चीन में तो सभी बौद्ध हैं। कोई गैर-बौद्ध तो है नहीं। जापान में भी सभी बौद्ध हैं, कोई गैर-बौद्ध तो है नहीं। तो कसाईखाने किसलिए हैं? मगर कसाईखानों में काटे जाते हैं जानवर और होटलों में बेचे जाते हैं। और होटलें लिखकर रखती हैं कि यहां मरे हुए जानवर के मांस मिलता है, बस वो सूत्र मिल गया बुद्ध में कि मरे जानवर का खाने में क्या हिंसा है!
आदमी बहुत होशियार है। अगर तुम बाहर से चरित्र खोजोगे, तो तुम जैसा चाहोगे वैसा रास्ता निकाल लोगे। ऐसा रास्ता लोगों ने निकाल लिया है। सब तरह के रास्ते लोगों ने निकाल लिए हैं।
चरित्र तो भीतर से ही आ सकता है। संन्यास तो चरित्र की आत्यंतिक अवस्था है। अंतिम ऊंचाई, पराकाष्ठा, परम प्रकाश, परम सुगंध। यह तो केवल चैतन्य से ही संभव हो सकता है। यह तुम्हारे पास देखने की अंतर्दृष्टि होनी चाहिएः क्या करने योग्य है, क्या करने योग्य नहीं है। जैसे दीया जल रहा हो घर में, तो तुम दरवाजे से निकलते हो, टटोलते नहीं। दीया न जल रहा हो घर में, तो टटोलना भी पड़ता है, और कभी-कभी दीवाल से भी टकरा जाते हो, कभी फर्नीचर से भी टकरा जाते हो, कभी कोई सामान भी गिरा देते हो। ऐसे ही तुम्हारे भीतर दीया जल रहा हो तो दरवाजा दिखाई पड़ता है। वही दरवाजा चरित्र है।
मैं ऊपर से चरित्र थोपने के विरोध में हूं। पुराना संन्यास ऊपर से चरित्र को थोपता था। वह कहता था, ऐसा करो। मैं कहता हूं, ध्यान को जगाओ। फिर ध्यान से जो भी फलित हो, शुभ है। इसलिए मेरा जोर चरित्र पर बिल्कुल नहीं है, बल्कि थोथे चरित्र के मैं विरोध में हूं, क्योंकि थोथे चरित्र के कारण आदमी ध्यान की तरफ मूड़ता ही नहीं। वह तो सोचता है, करना क्या, मैं तो चरित्रवान हो गया!
हमारे चरित्र भी बड़े अदभुत हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बेटे को समझा रहा था कि व्यवसाय में हमेशा नीति का ध्यान रखना चाहिए। चरित्र बड़ा मूल्यवान है। जैसे, उदाहरण के लिए कल की ही बात है। एक आदमी सौ रुपये के एक नोट की जगह भूल से दो नोट दे गया, जो एक-दूसरे से चिपके हुए थे। अब नैतिक सवाल उठता है कि मैं अपने पार्टनर को बताऊं कि नहीं बताऊं? अब देख रहे है नैतिक सवाल! वह जो आदमी दे गया है, उसको बताऊं कि नहीं, यह सवाल तो उठता ही नहीं। अब सवाल यह उठता है कि अपने साझीदार को बताऊं कि नहीं बताऊं?
जब मुल्ला मरने लगा, अपने बेटे को कहा, आखिरी संदेश देता हूं। दो नियम
का सदा पालन करना, ये व्यवसाय के आधार-स्तंभ हैं। यही चरित्र है, यही शील

है व्यवसाय में। पहला कि जो वचन दो, उसे पूरा करना। और दूसरा कि कभी भूल कर किसी को वचन मत देना।
ढब्बूजी ने अपने जिगरी दोस्त चंदूलाल को बताया, गजब हो गया, यार! यही समझो कि सब कलयुग का प्रताप है। लोगों में नैतिकता तो नाममात्र भी नहीं रही। जानते हो, अभी जो मेहमान आए थे हमारे यहां, वे जनाब जाते समय हमारी खूबसूरत अटैची मार कर ले गए। बेईमानी की भी हद होती है, भाई!
चंदूलाल ने सहानुभूति जताते हुए कहाः राम-राम, राम-राम! यह बीसवीं सदी
तो चरित्र के पतन की सदी है, दोस्त! दुख न करो! क्या वह अटैची बहुत महंगी थी? क्या मालूम महंगी थी कि सस्ती, ढब्बू जी बोले, अपने को तो रेल के डिब्बे में पड़ी मिली थी।
अगर भीतर की आंख न हो तो यह होने ही वाला है। तुम्हें दुनिया भर का दुश्चरित्र व्यवहार दिखाई पड़ेगा। सिर्प दीया तले अंधेरा रहेगा। सिर्फ तुम्हें तुम स्वयं दिखाई नहीं पड़ोगे। और सब दिखाई पड़ेगा। और तुम सब की भूलें देख लोगे सिर्प अपनी भूलें नहीं दिखाई पडेंगी। औरों की भूलें देखने में तो हम उत्सुक होते ही हैं। अपनी भूल देखने में उत्सुक नहीं होते। अपनी भूल से तो आघात लगता है। दूसरों की भूल को तो हम बड़ी करके देखते हैं। उसको बड़ी करके देखने में बड़ा रस आता है। उससे ऐसा लगता है कि अरे, इससे तो हम ही अच्छे! संसार भर की भूलें देख कर कि कलयुग है, अरे, पाप ही पाप है, राम-राम, राम-राम, दिल को बड़ी राहत मिलती है, कि हम ही एक सतयुगी। दुनिया भर के पाप इतने बड़े अगर कर लो तुम, तो स्वभावतः लगता है कि तुम सतयुगी हो।
महामहिम मटकानाथ ब्रह्मचारी ने बड़ा आश्रम खोल रखा था। पांच सौ साधु
और पांच सौ साध्वियां तपश्चर्या और कठिन योग-साधना करते हुए सच्चे ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते थे। धीरे-धीरे उनके आश्रम की ख्याति कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैल गई। एक बार नई दिल्ली में आयोजित सर्व-धर्म-सम्मेलन में उनके आश्रम के एक वक्ता को भी निमंत्रण मिला। ब्रह्मचारी जी ने साध्वियों की प्रधान निर्मला देवी से सलाह-मशविरा कर आश्रम के नाम की धूम मचाने हेतु आश्रम की अल्पायु किंतु सर्वाधिक प्रतिभाशाली साध्वी सीतामणि को भेजने का निश्चय किया। वह अभी मात्र बारह वर्ष की ही थी, लेकिन उसे सारे उपनिषद और चारों वेद कंठस्थ थे। चूंकि वह पहली ही बार आश्रम के बाहर की दुनिया में कदम रख रही थी, इसलिए प्रधान साध्वी निर्मलादेवी ने उसे अकेले में बुला कर कुछ बातें समझा देना उचित समझा। उन्होंने कहाः बेटी सीतामणि, अभी तू अल्पायु है, अतः कुछ निर्देशों का ख्याल रखना बाहर का कलुषित जगत और कलयुग का समय हमारे पवित्र आश्रम से बिल्कुल भिन्न है। वहां पुरुष रहते हैं जो बड़े मायावी होते हैं। वे स्त्रियों को मीठी-मीठी बातों द्वारा फुसला कर मौका पाते ही किसी एकांत स्थल में ले जाते हैं। सीतामणि ध्यानपूर्वक सुनने लगी। प्रधान साध्वी कहती गईः इन कामुक युवकों के जाल से बचने की जी-जान से कोशिश करना, बेटी! वे बड़े लुभावने होते हैं। सुनसान कमरे में ले जा कर वे प्रकाश बुझा देते हैं। और फिर सम्मोहित करके धीरे-धीरे नारी के वस्त्र उतारने लगते हैं। सीतामणि के कान खड़े हो गए, उसकी श्वासें तेज चलने लगीं। निर्मला देवी ने आगे कहा, तब वे दुष्ट स्त्रियों के साथ ऐसे घृणित कृत्य करते हैं कि उनका वर्णन करने में मेरी जीभ लड़खड़ाने लगती है। नारी की इज्जत लूट कर वे नीच दस रुपये का एक नोट उन्हें देकर वहां से भगा देते हैं।
दस रुपये! यह सुन कर तो आश्चर्य से सीतामणि की आंखें फटी रह गईं। उसने बड़ी उत्सुकता से प्रश्न किया, हे निर्मला देवी, वे पापी पुरुष अंत में दस रुपये का नोट क्यों थमा देते हैं? उत्तर मिला, तुम नहीं समझोगी, बेटी, वे संसारी धूर्त जो न करें सो कम है। गजब की बात है, परम पूज्य माता जी--भोली- भाली सीतामणि बोली--समझ नहीं आता कि वे लोग दस रुपये क्यों थमा देते हैं, जब कि हमारे आश्रम के साधु तो मात्र एक संतरा देकर ही भगा देते हैं। और ब्रह्मचारी महाराज, वे तो एक संतरा तक नहीं देते; कहते हैं, अभी तू बहुत छोटी है।
ऊपर से थोपोगे तो पाखंड ही पैदा होने वाला है।

पुराना संन्यास शुद्ध पाखंड था। अन्यथा हो ही नहीं सकता था। उसके भीतर कुछ और, बाहर कुछ और। मेरा संन्यास जैसा भीतर, वैसा बाहर। मेरा संन्यासी पाखंडी नहीं हो सकता। उसका उपाय ही नहीं है। क्योंकि मैं उसे कोई नियम नहीं दे रहा हूं। क्योंकि मैं उसे कुछ आवरण नहीं दे रहा हूं। क्योंकि मैं उसे कुछ आचरण नहीं दे रहा हूं। इसलिए उसके पाखंडी होने का कोई उपाय नहीं है। वह धूर्त नहीं हो सकता। धूर्त होने की उसे कोई जरूरत नहीं है। अगर उसे जीवन जीना है, जैसा जीना है, मैं उसे कहता हूं वैसा ही जीवन तू जी, बस इतना ही ख्याल रख, ध्यानपूर्वक जी! और अगर ध्यान तुझे मुक्त करा सके व्यर्थता से, तो ठीक। अगर न करा सके, तो ठीक। जो असार है, ध्यान उससे मुक्त करा ही देगा। और जो असार नहीं है, ध्यान उससे मुक्त नहीं कराएगा, उसको और मजबूत कर देगा। सार-असार की कसौटी ध्यान है।
पुराना संन्यास ध्यान तो भूल ही गया।
मेरे पास पुराने संन्यासी आते हैं--जैन, हिंदू, बौद्ध--मैं उनसे पूछता हूं कि तुम तीस, बीस, पच्चीस साल से संन्यासी हो और अब तुम पूछने आए कि ध्यान कैसे करें? तुम संन्यासी कैसे हुए? ध्यान तो उन्हें किसी ने बताया ही नहीं। ध्यान की तो जैसे बात ही नहीं है। और ध्यान के नाम पर जो बताया जाता है, वह बिल्कुल थोथा है, कि बैठे राम-राम जपो। अब राम-राम दोहराने से क्या होगा? थोड़ी बहुत बुद्धि होगी, वह भी कुंठित हो जाएगी। अगर राम-राम कोई दोहराता रहेगा, दोहराता ही रहेगा, दोहराता ही रहेगा, तो ज्यादा से ज्यादा इससे एक ही बात हो सकती है, अच्छी नींद आ जाए। क्योंकि मन थक जाए। और थकने से नींद आती है। और बकवास तुम लगाए रखोः राम-राम, राम-राम, और मन को भगाने का कोई उपाय न मिले, तो वह नींद में सरक जाए। यह तो पुरानी विधि है, स्त्रियां जानती हैं, बच्चों को सुलाने के लिए यही तो उपयोग करती हैं वे। राजा बेटा, सो जा; राजा बेटा, सो जा! यह मंत्र! राजा बेटा कुनमुनाता है, करवट बदलता है, मगर माताराम बिल्कुल उसकी छाती पर बैठी हैं कि राजा बेटा, सो जा, थोड़ी-बहुत देर वह कोशिश करता है, हाथ-पैर तड़फड़ाता है, उठने की कोशिश करता है, फिर जब देखता है कोई उपाय नहीं, माताराम छोड़ेंगी नहीं, सुला कर ही मानेंगी, और राजा बेटा, सो जा, राजा बेटा, सो जा सुनते-सुनते, सुनते-सुनते न भी हो राजा बेटा, तो भी सो जाता है। यह तो पतिदेव पर प्रयोग करो तो भी काम आएगा कि राजा बेटा, सो जा, राजा बेटा, सो जा। नहीं भी आएगी नींद तो भी पति सो जाएगा।
मुल्ला नसरुद्दीन को नींद नहीं आती थी सब डाक्टरों को हरा दिया, सब चिकित्सकों को हरा दिया। होम्योपैथ आए, आयुर्वेदिक आए, हकीम आए, नेचरोपैथ आए, उरलीकांचन ले गए, मगर सबको हरा दिया। उसके लड़के बड़े परेशान। आखिर एक हिप्नोटिस्ट को, एक सम्मोहन-विद को लाए। वह आखिरी उपाय था! सम्मोहनविद ने कहा कि कोई फिकर न करो, मैंने अच्छे-अच्छों को सुला दिया है। अब सम्मोहनविद आया, उसने कमरे के लाइट बुझवा दिए, नसरुद्दीन को कहा लेट जाओ, हाथ-पैर ढीले छोड़ दो, समझे कि नींद आ रही। आ रही, आ रही, नींद आ रही, पलकें भारी हो रही हैं, पलकें भारी हो गईं, हाथ-पैर बिल्कुल सुस्त हो गए, गहन नींद उतर रही है... वह कहता ही रहा, कहता ही रहा, कहता ही रहा। नसरुद्दीन सो गया, एकदम घुर्राटे लेने लगा। लड़के तो बड़े प्रसन्न हुए नसरुद्दीन के। उन्होंने हिप्नोटिस्ट को बहुत धन्यवाद दिया, उसको दुगनी फीस दी, उसे बाहर छोड़ कर लौटे। जैसे ही भीतर आए, नसरुद्दीन ने एक आंख खोली और कहा कि वह हरामजादा गया कि नहीं? मेरी जान खा गया कि आ रही, आ रही, आ रही! न कोई आया, न कोई गया। पलकें भारी हो रही हैं, भारी हो रही हैं। मैंने देखा यह दुष्ट जाएगा ही नहीं, सो मैं बन कर घुर्राटे लेने लगा कि इससे छुटकारा तो हो, नींद आए कि न आए!
ऐसे ही तुम्हारे मनुष्य हैं। राम-राम, राम-राम, या लगे रहो अल्लाह-अल्लाह, या जो तुम्हारी मर्जी। दोहराते रहोगे, दोहराते रहोगे, भीतर तुम्हारा मन कहेगाः हरामजादा मानता ही नहीं, बके ही जा रहा है, सो जाओ। तुम्हारे मंत्रों से सिर्प तंद्रा पैदा होती है और कुछ भी नहीं होता। मंत्रों में ध्यान नहीं है, निद्रा है। नींद आ जाएगी। और नींद कोई बुरी चीज नहीं है, आ जाए तो अच्छी चीज है। सुबह तुम थोड़ा ताजा अनुभव करोगे। मगर

इससे कोई आत्मानुभव नहीं जाएगा, कोई भीतर की रोशनी नहीं जल जाएगी, कोई भीतर की मशाल नहीं जल उठेगी। भीतर की मशाल तो जलती है निर्विचार से, निर्विकल्पता से।
मेरा संन्यास है निर्विचार, निर्विकल्प की साधना। बाहर का मैं कोई भी आडंबर तुम्हें नहीं देना चाहता! यह गैरिक वस्त्र दिए हैं, वह भी दो कारणों से। एक तो कि गैरिक वस्त्रों को पुराने संन्यासियों ने बहुत बदनाम कर दिया, सो गैरिक वस्त्रों को उस बदनामी से मैं मुक्त करना चाहता हूं। दूसरे, ताकि गैरिक वस्त्रों के कारण तुम्हें सतत याद रहे। स्मरण रहे। यह तो केवल आलंबन है, एक खूंटी की तरह, निमित्त। और इसका परिणाम होता है।
एक मित्र मेरे पास आए और उन्होंने कहा कि बड़ी मुश्किल में डाल दिया आपने। मैं सिनेमा का शौकीन था, अब सिनेमा नहीं जा सकता। अब कल की ही बात है, क्यू में खड़ा था, अच्छी पिक्चर लगी है, एक आदमी आया, एकदम साष्टांग मेरे पैरों पर गिर पड़ा और कहाः महात्मा जी, आप यहां कहां खड़े हैं? उससे मैंने पूछाः क्या बात है, भाई? मैं तो समझा कोई धार्मिक सभा की क्यू लगी है--कहना ही पड़ा मुझे! अरे, उसने कहाः धार्मिक सभा नहीं, यहां फिल्म लगी है, यह आपका काम नहीं है। सो मन मार कर मुझे घर लौटना पड़ा। अब मैं डरता हूं जाने से कि कहीं कोई फिर न मिल जाए।
एक मित्र ने संन्यास लिया, वे शराबी हैं। कहने लगे, मैं शराबी हूं। मैंने कहाः रहो; कौन नहीं है शराबी? हां, तरह-तरह की शराबें हैं, अलग-अलग ढंग की शराबें हैं। कोई मद की पीता है, कोई पद की पीता है, तुम अंगूर की पीते हो, कुछ बुरा नहीं, फलाहार है। शाकाहारी हो। कम से कम मोरार जी देसाई से तो भले हो। कम से कम स्व-मूत्र तो नहीं पीते। चलो, अंगूर की ही ढली पीते हो, कोई हर्जा नहीं, पीओ। पर उन्होंने कहाः संन्यास आप देने को राजी हैं! मैंने कहाः मैं किसी को छोड़ता ही नहीं संन्यास देने से।
पंद्रह-बीस दिन बाद आकर बोले, कि अब मैं समझा कि आप क्यों किसी को भी संन्यास दे देते हैं। अब मुसीबत में पड़ा। अब शराबघर नहीं जा सकता। खुद शराबघर का मालिक उठ कर मेरे चरण छूता है। जब वह चरण छूता है तो मुझे आशीर्वाद देना पड़ता है। करना भी क्या! वह पूछता है, कैसे आए, तो मैं कहता हूं कि ऐसे ही आशीर्वाद देने चला आया--और वापस।
गैरिक वस्त्र तुम्हें याद दिलाए रखेंगे, बस, कि तुम संन्यासी हो। तुमने अंतर-खोज का व्रत-नियम लिया। तुमने अंतर-खोज की कसम खाई। तुम एक अभियान पर निकले हों बस, इतना ही। अन्यथा मैं बाहर का तुम्हें कोई आवरण नहीं दे रहा हूं। एक माला दे दी है, जिसमें मेरा चित्र लगा हुआ है; वह भी तुम्हें बदनाम करवाने को। वह भी सिर्फ इसलिए कि लोग देखते ही समझ जाएं कि यह आया!! अब तो सारी दुनिया में, कहीं भी तुम जाओ, बस माला देख कर लोग एकदम सावधान हो जाते हैं। कि सावधान, यह आदमी खतरनाक है! तुमसे पूछेंगे कि तुम्हें क्या हो गया? इससे बात चल पड़ती है। इससे तुम्हें मेरी चर्चा करनी ही पड़ती है। और इस चर्चा में कई लोग आए हैं। इस चर्चा के कारण कई लोग आए हैं। तुम्हारी मस्ती, तुम्हारा आनंद देख कर कई लोग आए हैं। कई लोग उत्सुकता से ही आ गए हैं कि देखें मामला क्या है? हवाई जहाज पर संन्यासी मिल जाते हैं किसी को, वह सोचता है कि चलो, एक चक्कर हम भी मार आएं देखें क्या मामला है? जब इतने लोग पागल हो रहे हैं, तो कुछ न कुछ बात होगी! जब इतने लोग दीवाने होने को राजी हैं, तो अकारण नहीं हो सकता।
तो तुम पहचाने जा सको कि तुम मेरे पागलों में से एक हो, कि मेरे दीवानों में से एक हो, इसलिए बाहर का थोड़ा सा उपाय दिया है, बाकी यह कोई आचरण नहीं है, कोई चरित्र नहीं है। जोर तो सिर्प एक बात पर हैः ध्यान। उतना सध जाए तो सब सध गया। इक साधे सब सधे। वही एक ध्यान। भीतर निर्विचार होने लगो, भीतर धीरे-धीरे साक्षीभाव को आने दो, भीतर देखों न तुम देह हो, न तुम मन हो, न तुम विचार, न वासना और धीरे-धीरे एक बात तुम्हारे सामने साफ हो जाए कि तुम सिर्प साक्षी हो कि संन्यास फलित हुआ। संन्यास उस दिन नहीं होता। जिस दिन तुम संन्यास लेते हो उस दिन तो केवल औपचरिक रूप से शुरुआत होती है। संन्यास उस दिल फलित होता है, जिस दिन तुम साक्षी का अनुभव कर लेते हो।

आखिरी प्रश्नः मैं संन्यास लेने से डरता हूं। ऐसे ही बहुत सी मुसीबतें हैं, ओशो, अब संन्यास की मुसीबत लेने से जी डरे तो आश्चर्य नहीं। मार्गदर्शन दें!

सागरमल! जब ऐसे ही बहुत मुसीबतें हैं तो एक और सही! इतनी मुसीबते लीं, बिना मुझसे पूछे लीं--और जहां तक मैं समझता हूं, बिना किसी और से पूछे लीं-- तो अब यह मुसीबत भी क्या पूछ कर लेते हो! इतना ही मैं कह सकता हूं कि संन्यास इतनी बड़ी मुसीबत है कि बाकी सब मुसीबतें छोटी पड़ जाएंगी, तुम घबड़ाओ मत! और छोटी मुसीबतों से छुटकारे का एक ही उपाय हैः बड़ी मुसीबत ले लो। तो छोटी अपने आप भूल जाती है। छोटी इतनी छोटी हो जाती है। मैं तो नहीं देखता कि तुम्हारी जिंदगी में सिवाय मुसीबतों के और क्या है! हालांकि छोटी-छोटी मुसीबतें हैं। क्योंकि तुम्हारी छोटी-छोटी ही आकांक्षाएं हैं! छोटी-छोटी अभीप्साएं हैं। संन्यास तो बड़ी मुसीबत है! क्योंकि बड़ी आकांक्षा है, बड़ी अभीप्सा है। परमात्मा को पाने की प्यास। इससे बड़ी तो कोई और मुसीबत नहीं हो सकती।
एक बार मुल्ला नसरुद्दीन ट्रेन से सफर कर रहा थाः और उसने बगैर किसी कारण के अपने छोटे बच्चे की पिटाई कर दी। एक बार, दो बार, तीन बार। सामने बैठी हुई महिला से जब यह न देखा गया तो वह बोली कि देखो जी, अब यदि तुमने एक भी चांटा इस बच्चे को मारा तो मैं तुम्हें मुसीबत में डाल दूंगी।
मुल्ला ने उसे देखा और कहाः बाई, तू कौन सी मुसीबत में मुझे डालेगी! अरे, मैं पहले से ही इतना परेशान हूं। सुन! अभी पिछले माह ही मेरे पिता की टी.बी. से मृत्यु हो गई और हम लोग यहां दिल्ली से जा रहे हैं जहां मेरी सास मृत्युशय्या पर पड़ी है, मैं खुद कैंसर का मरीज हूं, रेलवे प्लेटफार्म पर मेरी पत्नी मुझसे बिछुड़ गई है, इस छोटे बच्चे ने खिड़की में अपनी अंगुली कुचल ली है, मंझले लड़के ने यात्रा की टिकटें चबा डाली हैं, और अभी-अभी मुझे पता चला है कि हम लोग गलत टेन में यात्रा कर रहे हैं--अब तू और कौन सी मुसीबत में डाल सकती है!!
मैं डालूंगा भी तो तुम्हें और कौन सी मुसीबत में डालूंगा! गलत ट्रेन में बैठे हो, टिकट कब का मंझला बेटा चबा चुका है, पत्नी कहां बिछुड़ गई, पता नहीं--और डरे हुए हो कि कहीं मिल न जाए--सास मरणशय्या पर पड़ी है--और भयभीत हो कि कहीं बच न जाए!
संन्यास तुम्हें क्या मुसीबत में डाल देगा? हां, थोड़ी जगहंसाई होगी।
सो सबकी हुई। मीरा की हुई, कबीर की हुई, गुलाल की हुई। हां, लोकलाज खोनी पड़ेगी। सो मीरा ने खोई, सो दादू ने खोई। सो नानक ने खोई लोकलाज में रखा भी क्या है? बचा कर भी क्या करोगे? मूल्य क्या है उसका? हां, लोग दीवाना समझेंगे, परवाना समझेंगे, सो ठीक ही समझते हैं, मैं दीवानगी ही सिखा रहा हूं। और संन्यास केवल शुरू में ही मुसीबत है, पहले कदम पर ही मुसीबत है, जैसे ही तुम्हारे भीतर ज्योति का, ज्योतिर्मय का आविर्भाव शुरू होता है, वैसे ही आनंद की वर्षा होने लगती है। झरत दसहुं दिस मोती! जैसे ही तुम्हारे भीतर शून्य निराकार का अवतरण होना शुरू हो जाता है, सब मुसीबतें ऐसे भाग जाती हैं जैसे सूरज के ऊगने पर तारे विदा हो जाते हैं आकाश से, खोजे नहीं मिलते। जैसे ही तुम्हारे भीतर समाधि का स्वर बजेगा, वैसे ही मुसीबतें ऐसे उड़ जाएंगी जैसे सूर्य के ऊगने पर सुबह ओस के कण वाष्पीभूत हो जाते हैं।
लेकिन पहले तो मुसीबत मालूम होगी।
मगर मैं कहता हूं, यह मुसीबत लेने योग्य है। यह मुसीबत प्यारी है, मधुर है, अनंत संभावनाओं से भरी है। और तुमने दो कौड़ी की मुसीबतें ले लीं जिसमें कोई संभावना नहीं है और बिना पूछे ले लीं--और इस मुसीबत के लिए सोच-विचार कर रहे हो! छोड़ो सोच-विचार। क्योंकि संन्यास अंततः सोच-विचार छोड़ना ही है, उसका नाम ही संन्यास है। शुरुआत ही सोच-विचार छोड़ कर करो।
शुरू से ही, पहले कदम पर ही निर्णय लेकर मत संन्यास लो। सब तरह से सोच कर, विचार कर, गणित बिठा कर संन्यास मत लो अन्यथा चूक जाओगे। यह छलांग है।

ऐसी छलांग जैसे परवाना आता और शमा पर जल मरता। मगर इस मृत्यु के पीछे पुनर्जन्म है। इस जन्म के लिए यह मृत्यु जरूरी है।
संन्यास तो सूली है। पर ध्यान रहे, सूली ऊपर सेज पिया की। जैसे ही तुम
इस सूली से पार हुए कि परमात्मा स्वागत के लिए तैयार खड़ा है।
घबड़ाओ मत, सागरमल! बूंद घबड़ाती है सागर होने से। मगर बूंद सागर हो ही
तब सकती है जब सागर में अपने को खोने को राजी हो जाए। मिटो। मिटो ताकि हो सको। मरो संन्यास में ताकि सत्य में जन्म पा सको। खो जाओ अहंकार की तरह ताकि परमात्मा की तरह तुम्हारा आविर्भाव संभव हो सके।
तुम परमात्मा होने को पैदा हुए हो और संन्यास के बिना यह संभव नहीं है। संन्यास के बिना तुम्हारी नियति पूरी नहीं होगी, वसंत नहीं आएगा, मधुमास नहीं आएगा, तुम्हारा फूल नहीं खिलेगा; तुम बिना खिले ही विदा हो जाओगे। इसके पहले कि मृत्यु आए, संन्यास आने दो ताकि फिर मरने की कोई जरूरत न रह जाए। जो संन्यास में मरा, फिर उसे मरने की कोई जरूरत नहीं रह जाती, क्योंकि वह अमृत को जान लेता है।

आज इतना ही।

रंग-रास के बिखरे प्रण!!
जीवन जैसा हम जीते हैं, उसमें असफलता सुनिश्चित है; उसमें विषाद अंतिम परिणाम है। उसमें संताप का ही फल लगेगा। कोई अपवाद नहीं हो सकता। निरपवाद रूप से हमारा जीवन सुगंध को उपलब्ध नहीं होता, दुर्गंध को उपलब्ध होता है। हम सिर्फ मरते हैं, महाजीवन का हमें कोई अनुभव नहीं होता। हम व्यर्थ दो कौड़ी की बातों में उलझे रहते हैं और समय की धार हमारे पास से गुजर जाती है। हम पीठ किए रहते हैं समय की तरफ।
एक भ्रांति जिसमें प्रत्येक मनुष्य जीता है, वह यह है कि जैसे मुझे मरना नहीं; जैसे सदा दूसरा मरता है। और एक अर्थ में यह बात ठीक भी लगती है। क्योंकि जब भी मरता है, कोई और मरता है। तुम तो जब भी किसी को मरते देखते हो, किसी और को ही मरते देखते हो। तुमने बहुतों को मरते देखा, अपने को तो कोई मरते देखता नहीं--देखेगा भी नहीं--इसलिए यह तर्क मन में बैठता चला जाता है कहीं गहरे में कि मृत्यु औरों पर लागू होती है, मुझ पर नहीं। मैं तो जीऊंगा। मैं तो सदा-सदा जीऊंगा। दम टूटते-टूटते तक आदमी इसी भरोसे में रहता है कि मृत्यु घटने वाली नहीं है; कोई न कोई उपाय मिल जाएगा; कोई न कोई बहाना मिल जाएगा; कोई न कोई औषधि बचा लेगी; कोई चमत्कार होकर ही रहेगा--मैं कोई साधारण व्यक्ति हूं! साधारण व्यक्ति मरते हैं। मैं असाधारण हूं। और यह भ्रांति सबकी है।
सूफियों में एक कहानी है कि परमात्मा बड़ा मजाकी है और जब भी वह किसी
को बनाता है और उसे भेजता है दुनिया में, तो आखिरी विदाई के क्षण में उसे पास बुला कर कान में कुछ फुसफुसाता है। हरेक के कान में फुसफुसाता है। एक ही बात फुसफुसाता है। हरेक से एक ही बात कह देता है कि और सब साधारण है, तू असाधारण है।
प्रत्येक व्यक्ति इसी भ्रांति में जीता है। कहे न कहे; जाहिर करे न जाहिर करे; मगर गहरे में तुम जानते हो, तुम असाधारण हो, तुम कुछ खास हो। छोड़ो इस भ्रम को! मृत्यु के समक्ष कोई भी विशिष्ट नहीं। और जब मृत्यु के समक्ष ही कोई विशिष्ट नहीं, तो जीवन में कैसे विशिष्ट होगा! यह विशिष्टता की भ्रांति सिर्फ अहंकार है। एक झूठी भावदशा है। इस झूठ से कैसे सुगंध निकले? इस झूठ से तो दुर्गंध ही निकलेगी। इस झूठ में कैसे सफलता के फल लगें? सफल का अर्थ ही वही होता है; फल का लग जाना, फूल का लग जाना। जीवन भर दौड़ते हैं लेकिन पहुंचते कहां? मार्ग ही मार्ग है, मंजिल मिलती ही नहीं। फिर भी तुम्हें यह ख्याल नहीं आता कि जिस मार्ग पर मंजिल न मिलती हो, क्या उसे मार्ग कहना उचित है? ऐसे तो कोल्हू का बैल भी सोचता होगा कि मार्ग पर चल रहा है--दिन भर चलता है, चलता ही रहता है। लगता है इतना चल रहा हूं, कहीं न कहीं पहुंच कर रहूंगा! ऐसी ही हमारी जिंदगी है। चलते तो बहुत हैं, कोल्हू के बैल की तरह हमारी गति है, गोल-गोल घूमते हैं, पहुंचते कहीं भी नहीं। वही क्रोध, वही लोभ, वही काम, वही मोह, वही मद, वही मत्सर। कुछ नया है जीवन में? जैसे गाड़ी का चाक घूमता है। वही चाक, कभी एक आरा ऊपर आ जाता है तो दूसरा आरा नीचे चला जाता है, दूसरा आरा ऊपर आ जाता है तो पहला आरा नीचे चला जाता है। क्रोध है, काम है, लोभ है, मोह है, ये सब आरे हैं तुम्हारे जीवन के चाक के। और जीवन का चाक घूमता रहता है। और घूमने से यह भ्रांति बनी रहती है कि कुछ हो रहा है, कुछ घट रहा है, हम कहीं पहुंच रहे हैं! हां, जरूर पहुंचते हो कहीं, कब्र में पहुंचते हो। और कहीं भी नहीं पहुंचते। लेकिन कब्र में पहुंच कर भी वह जो जीवन भर का धोखा है, हम तोड़ना नहीं चाहते। कभी कब्रिस्तान पर जाओ, कब्रों पर लगे पत्थर पढ़ो, तुम चकित होओगे।
मुल्ला नसरुद्दीन एक कब्रिस्तान से गुजरता था। उसने संगमरमर का एक पत्थर लगा हुआ देखा। पत्थर पर लिखा थाः "यहां शेख अब्दुल्ला सोए हुए हैं।" मरे अभी भी नहीं। सोए हुए हैं! मर गए हैं मगर भ्रांति नहीं तोड़ना चाहते। मुल्ला ने पत्थर को हिला कर कहा कि भैया, शेख अब्दुल्ला, तुम किसको धोखा दे रहे हो? मर चुके मगर अब भी सोच रहे हो कि सो रहे हो?
मृत्यु के बाद भी हमने कल्पनाएं कर रखी हैं कि हम जीएंगे--स्वर्ग से जीएंगे, परलोक में जीएंगे। मैं नहीं कहता कि परलोक नहीं है, मगर तुम्हारी कल्पनाएं परलोक से कुछ संबंध नहीं रखतीं। तुम्हारी कल्पनाएं तो बस तुम

जीओगे, इस भ्रांति का ही विस्तार है। तुमने जाना नहीं है कि कोई परलोक है। तुमने इस लोक को भी अभी कहां जाना!
मेरे पास लोग आते हैं, वे पूछते हैं कि क्या मृत्यु के बाद जीवन होता है? मैं उनसे पूछता हूं, पहले यह तो पूछो कि क्या मृत्यु के पहले जीवन होता है? फिर यह दूसरी बात पूछना। तुम अभी जीवित हो? --यह तो पूछो--कि मर चुके कभी के? कि पैदा ही नहीं हुए? सच तो यह है कि पैदा ही नहीं हुए। जब तक कोई ब्रह्म को न जान ले, तब तक क्या खाक जन्म हुआ। इसलिए ब्रह्म को जानने वाले को हम द्विज कहते हैं, ब्राह्मण कहते हैं। ब्राह्मण के घर में कोई ब्राह्मण नहीं होता पैदा, पैदा तो सभी शूद्र होते हैं, हां, जो ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्राह्मण हो जाता है। द्विज तो कमाई है, ऐसी मुफ्त मिलती नहीं, पात्रता चाहिए। मगर कुछ भ्रांतियां छोड़ोगे तो ही, नहीं तो समय भागा जा रहा है, समय तुम्हें लूटे लिए जा रहा है। और तुम मजे से लुट रहे हो। तुम इस ख्याल में लुट रहे हो कि तुम्हें और कोई लूट सकता है! तुम दुनिया को लूट रहे हो, तो तुम्हें यह भ्रांति नहीं हो सकती कि तुम्हें कोई लूट सकता है। लेकिन समय अदृश्य है। उसके पैरों की आहट भी सुनाई नहीं पड़ती और एक दिन दरवाजे पर मौत को ले आता है। और जब ले आता है, तब तो बहुत देर हो गई होती है! चिड़िया चुग गई खेत, अब पछताए होत का!
लोग पछताते हुए मरते हैं।
मेरे अवलोकन में जो व्यक्ति हंसता हुआ मर सकता है, समझना कि उसने जीवन
को जाना था। जो उत्सवपूर्वक मर सकता है, समझना कि उसने जीवन को पहचाना था, वह जीया, उसका जन्म हुआ था, वह द्विज है। जो रोता हुआ मरता है, जो मरते-मरते दम तक भी एक क्षण और जी लूं इसकी चेष्टा करता रहता है, जो मरते-मरते दम भी जीवन को पकड़े रखता है, जीवन के साथ अपने को बांधे रखना चाहता है; छूट गई नाव, किनारे से टूट गए सब बंधन, मगर अभी भी अपने को अटकाए रखना चाहता है-- किसी बहाने, कुछ देर और सही, थोड़ी देर और सही! जीवन भर रहे, तब कुछ न किया, थोड़ी देर और रह लोगे तो क्या करोगे?
कहते हैं, महान सिकंदर जब मर रहा था तो उसने अपने चिकित्सकों से कहा
कि मुझे चौबीस घंटे और जिंदा रहना है--सिर्फ चौबीस घंटे--क्योंकि जो मैंने जिंदगी में नहीं किया, सोचता रहा कि अभी तो बहुत जिंदगी पड़ी है, वह कर लूं। उसके चिकित्सकों ने कहाः यह हमारे हाथ के बाहर है, लेकिन एक बात हम आपसे कह सकते हैं कि जब आपने जिंदगी गंवा दी तो आप चौबीस घंटे भी गंवा देंगे। चौबीस घंटे की क्या बिसात!
उपनिषदों में कथा है, ययाति की। वह सौ वर्ष का हो गया, उसकी मौत आई। ययाति घबड़ा गया। सम्राट था, उसने मृत्यु से कहा, दया कर; मैं तो खोया ही रहा, जो कमाने योग्य था, कमाया ही नहीं; जिंदगी कब बीत कई, मैंने ध्यान ही न दिया; मैं तो व्यर्थ में उलझा रहा। मुझे सौ वर्ष और दे। इतनी दया कर! मृत्यु ने कहा कि मैं दे सकती हूं सौ वर्ष, मगर मुझे तब किसी और को ले जाना पड़ेगा। तुम्हारे सौ बेटे हैं--उसकी अनेक रानियां थीं, सौ बेटे थे--तो उनसे पूछ लो, कोई जाने को राजी हो तो मैं उसको ले जाऊं तुम्हारी जगह।
देखते हैं बूढ़े ययाति का अंधापन? वह अपने बेटों से पूछता है; वह बेटों
के सामने गिड़गिड़ाता है कि तुम्हें मैंने जन्म दिया, क्या तुम इतना मेरे लिए नहीं कर सकते? उसे शर्म भी नहीं आती, संकोच भी नहीं होता। क्योंकि वह तो सौ साल जी लिया है, उसका कोई बेटा अभी सत्तर साल का है, कोई साठ का है, कोई पचास का है, कोई चालीस का है, ये तो अभी सौ साल भी नहीं जीए हैं। आखिर इनकी भी जीवेषणा है। ये भी जीना चाहते हैं।
बड़े बेटे तो इधर-उधर ताक-झांक करने लगे--बूढ़े हो गए थे, चालबाज हो गए थे, होशियार हो गए थे। आमतौर से बुढ़ापा सिर्फ चालबाजी लाता है, बुद्धिमानी नहीं लाता। चालाक बना देता है लोगों को, चतुर बना देता है, प्रज्ञावान नहीं।
अक्सर बाल धूप में ही पकते हैं। बहुत मुश्किल से कोई मिलेगा जिसके बाल धूप में नहीं पकते।
धूप में पकने का इतना ही अर्थ है कि व्यर्थ ही समय बीत गया, तुम अनभीगे
रह गए; जीवन आया और चला गया, तुम डूबे नहीं; मोती बरसे नहीं, तुम्हारे जीवन

में वह घड़ी न आई कि गुलाल की तरह कह सकतेः झरत दसहुं दिस मोती। कंकड़-पत्थर, कंकड़-पत्थर, उन्हीं को इकट्ठा करते रहे। अब लगा है ढेर और मौत द्वार पर खड़ी है!
बड़े तो इधर-उधर ताकने-झांकने लगे; बड़ों ने कहा, इस बूढ़े को देखो--दिल में सोचा--खुद तो सौ साल का हो गया, सब भोग चुका, सौ बेटे हैं, सैकड़ों रानियां हैं, राज्य है, अब और किसलिए जिंदा रहना है? सच तो यह है, बड़े बेटे सोचते थे, कब यह बूढ़ा विदा हो तो हम गद्दी पर बैठें। यह हमको विदा करने की तैयारी कर रहा है! लेकिन सबसे छोटा बेटा खड़ा हो गया। उसकी उम्र तो अभी बहुत कम थी। वह तो कोई अभी पच्चीस साल का ही था। उसने कहा कि मैं तैयार हूं। मौत को भी दया आ गई। मौत ने उस बेटे के कान में फुसफुसाया कि पागल, तू देखता नहीं तेरा सौ साल का बाप भी जाने को राजी नहीं, तेरे बड़े भाई सत्तर साल के, साठ साल के, पचास साल के, वे कोई जाने को राजी नहीं, तू तो सबसे छोटा है, तूने अभी जिंदगी देखी कहां, तू अभी-अभी तो गुरुकुल से वापस लौटा है--पच्चीस वर्ष में तो गुरुकुल से वापस लौटते थे विद्यार्थी--तू अभी जिंदगी में भागीदार भी नहीं हुआ है, तू तो अभी तब बच्चा ही था, अब जवान हुआ है, मुझे तुझ पर दया आती है।
उस युवक ने हंस कर कहा कि मत दया करो, व्यर्थ दया मत करो, जब मेरा पिता
सौ साल में कुछ अनुभव न कर सका, तो मैं क्या खाक कर लूंगा! जब मेरे इतने भाई निन्यानबे भाई इतने वर्षों में जीकर भी कुछ न पा सके, तो मैं क्या खाक पा लूंगा! मेरे निन्यानबे भाई और मेरे पिता का अनुभव पर्याप्त है, तू मुझे ले चल, दया की कोई जरूरत नहीं, बात खत्म हो गई, यह जिंदगी बेकार है, इस जिंदगी में कुछ पाने योग्य नहीं है।
यद्यपि यह बेटा बूढ़ा नहीं था मगर प्रौढ़ था। इसको प्रौढ़ता कहेंगे। भला इसके बाल सफेद न हों, मगर इसकी आंतरिक उम्र, इसकी मानसिक उम्र इसके बाप से ज्यादा है। इसका बाप बचकाना है। इसके बाप की उम्र बारह-तेरह साल से ज्यादा की नहीं है। उतनी ही मानसिक उम्र है।
औसत आदमी की मानसिक उम्र बारह वर्ष है, यह तुम्हें पता होना चाहिए। शारीरिक उम्र कुछ भी हो, मन से लोग वहीं अटके रहते हैं, बारह-तेरह साल के करीब। उनकी कल्पनाओं में तुम देखो, सपनों में तुम देखो, वही खेल-खिलौने। खेल-खिलौने बड़े होने लगते हैं उम्र बड़ी होने लगती है तो; मगर बड़े खेल-खिलौने से कोई जिंदगी बड़ी नहीं होती। छोटे बच्चे छोटे-छोटे घर बनाते हैं, तुम बड़े-बड़े घर बनाते हो। छोटे बच्चे कागज की छोटी-छोटी नावें बनाते हैं, तुम बड़ी-बड़ी नावें बनाते हो--मगर सब कागज की नावें, सब डूब जाएंगी, सब गल जाएंगी। छोटे बच्चे भी अकड़े फिरते हैं और तुम भी अकड़े फिरते हो। छोटे बच्चों की मूंछें हों तो वे भी ताव दें--बिना मूंछों के भी ताव देते हैं-- तुम मूंछों पर ताव देते हो, फर्क क्या है? छोटे बच्चे नकली मूंछें लगा लेते हैं। चार आने की मूंछ खरीद लाते हैं, मूंछ लगा कर अकड़ कर बैठ जाते हैं। तुम्हारी मूंछ भी कुछ बहुत असली नहीं है, नकली ही है। हालांकि तुम्हारे शरीर में ही निकली है, फिर भी नकली है, क्योंकि बाल तो मुर्दा हैं। इसलिए तो काटने से दर्द नहीं होता। जिंदा नहीं है। ये तुम्हारे शरीर के मुर्दा हिस्से हैं जो बाहर फेंके जा रहे हैं। ये मर ही चुके अंग हैं। इसलिए तो काटते हो तो दर्द नहीं होता। अंगुलियां काटो तो दर्द होगा, सिर्फ नाखून और बाल काटने से दर्द नहीं होता, क्योंकि ये दोनों मुर्दा हैं; ये मर चुके हैं, शरीर इनका त्याग कर रहा है, इनको छोड़ रहा है। चाहे बाजार से नकली खरीद लाओ, चाहे जिनको तुम असली समझते हो उन पर ताव दो, सब मूंछें नकली हैं। मगर अकड़ में ही जीते हैं लोग, भ्रांतियों में जीते हैं लोग। और बच्चों को तो माफ भी कर दो, बड़ों को कैसे माफ करोगे!
ययाति का बेटा चला गया मौत के साथ। मौत को भी उसकी बात माननी पड़ी। बात
तो सच थी। ययाति का बेटा दया योग्य नहीं था, ययाति का बेटा बुद्धिमान था।
बुद्धिमान को मृत्यु से दया की भिक्षा नहीं मांगनी पड़ती।
सौ साल फिर बीत गए और ययाति की मौत दुबारा आई और बात वही की वही रही।
ययाति ने कहा कि अरे, सौ साल बीत गए, और मैं तो वहीं का वहीं हूं! एक बार और

दया करो! ऐसी कहानी चलती है। और हर बार एक बेटा मौत ले जाती है। ऐसे हजार साल ययाति जिंदा रहा।...
यह ययाति-कथा बड़ी महत्वपूर्ण है। यह तुम्हारी कथा है। यह सबकी कथा है। मौका तुम्हें मिले तो तुम भी यही करोगे। लाख कहते हो कि बेटे के लिए मर जाऊंगा, लेकिन अगर यह मौका मिले कि बेटे की उम्र तुम्हें लग जाए तो तुम बेटे को देने को राजी हो जाओगे।...
ययाति हजार साल जीया और हजारवें साल में भी जब मौत आई तब भी उतना ही खाली था, उतना ही कोरा, उतना ही रिक्त--और वही गिड़गिड़ाहट, वही उम्र तेरह साल की, वही उम्र बचकानी। मृत्यु ने कहा, अब बहुत हो गया, अब और नहीं। ययाति ने कहा कि नहीं, अब और मैं मांग भी नहीं रहा हूं। यज्ञपि मैं अब भी खाली हूं, मगर एक बात मेरी समझ में आ गई कि मैं कितना ही मांगूं, मैं खाली ही रहूंगा। मैं जैसा मूढ़ हूं, मेरी मूढ़ता जब तक नहीं टूटती, उम्र से क्या होगा, समय से क्या होगा?
ठीक कहा सिकंदर के चिकित्सकों ने कि तुम चौबीस घंटे और जीकर भी क्या करोगे? ऐसे हम कुछ कर नहीं सकते, जी तुम सकते नहीं, मगर अगर जी भी सकते होते तो भी क्या करोगे? जिंदगी गुजर गई, चौबीस घंटे भी गुजर जाएंगे। तुम सिर्फ भ्रांति में हो कि चौबीस घंटे मिल जाएंगे तो तुम कुछ कर लोगे।
तुम भी सोचो, चौबीस घंटे मिल जाएंगे तो क्या करोगे? शायद एक फिल्म और देख आओगे। कि एक बार और शतरंज की बाजी जमा लोगे। कि एक बार रोटरी-क्लब और हो आओगे। और क्या करोगे? कि रह गया होगा कोई झगड़ा, तो पत्नी से और कर लोगे। मरते दम कुछ और उपद्रव रह गए होंगे तो वे और कर जाओगे--मोहल्ले वालों को सताने का कोई इंतजाम कर जाओगे।
मैंने सुना है, एक आदमी मर रहा था, जिंदगी भर उसने लोगों को सताया और
जब मरने लगा, अपने बेटों को पास बुलाया और कहा कि बस एक ही मेरी प्रार्थना है कि जब मैं मर जाऊं--तो मैं तो मर ही गया, अब शरीर को तो गड़ा ही दोगे, इसके पहले इसका उपयोग कर लेना। बेटों ने कहा कि बाप को आज बड़ा दयाभाव हो रहा है! शायद बाप कह रहा है कि मेरी आंखों को दान कर देना अस्पताल में, या मेरे शरीर के और अंग, किडनी इत्यादि को दान कर देना। मगर यह तो बाप का ढंग ही नहीं था! बेटे तो बाप को भलीभांति जानते थे। यह क्या हो गया बाप को? कहीं बुढ़ापे में अंट-संट तो नहीं बक रहा है? सन्निपात में तो नहीं है? बाप सन्निपात में नहीं था। जब उसने कहा तब बेटों को पता चला। उसने कहा, एक काम करना, मैं तो मर ही गया, तुम मेरे हाथ-पैर काट कर मोहल्ले वालों के घर में फेंक देना और पुलिस में रिपोर्ट करवा देना। सब साले बंधे हुए जाएं! बस, मेरी आत्मा को ऐसी शांति मिलेगी! जाते-जाते देख लूं इनको कि चले जा रहे हैं बंधे हुए, तो समझो मैं तृप्त हुआ! तुम समझ लेना कि तुमने अपने पिता के प्रति जो भी ऋण चुकाना था, चुका दिया। इसको कहते हैं आत्मशांति!
मरते दम भी आदमी करेगा तो वही जो उसने जिंदगी भर किया है। लाख तुम कुछ बदलने की कोशिश करो, फर्क नहीं पड़ता। ऐसी सस्ती बदलाहट होती नहीं। जिंदगी हमारी यूं बीत जाती है--इतनी बहुमूल्य जिंदगी है, जिसमें क्या नहीं हो सकता था, जिसमें सब कुछ संभव था--जिसमें परमात्मा संभव था, जिसमें परमात्मा का फूल लगता।
दृष्टि तंद्रिल, श्रवण सोए,
अश्रु-पंकिल नयन खोए;
मन कहां है, क्या हुआ है?
लग रहे कुछ भग्न से हो,
भ्रम-शिला-संलग्न से हो;
कर रहे हो ध्यान किसका,
क्यों स्वयं में मग्न से हो; लग रहे हो समय-बाधित,
आप अपने से पराजित;
हाय! यह कैसी विवशता है?
किस बुरे ग्रह ने छुआ है? क्यों हुए उद्विग्न इतने,

पथ-प्रताड़ित विघ्न जितने; सोच कर देखो तनिक तो--
श्वास है निर्विघ्न कितने; क्या चरण कोई नहीं है,
काल-कववित जो नहीं है;
हर तरफ तम की विरासत,
धुंध है, कडुआ धुआं है!
तंतु-प्रेरित गात्र हो तुम; एक पुतले मात्र हो तुम;
इस जगत की नाटिका के--
क्षणिक भंगुर पात्र हो तुम;
इसलिए हर भूमिका में,
रंग भरो तुम भूमिजा में;
बन सको निरपेक्ष, तो फिर--
क्या दुआ, क्या बद्भदुआ है?
मन कहां है, क्या हुआ है?
इस जीवन में अगर सीखने योग्य कोई कला है तो एक, वह हैः साक्षी की कला। तंतु-प्रेरित गात्र हो तुम,
एक पुतले मात्र हो तुम;
इस जगत की नाटिका के--
क्षणिक भंगुर पात्र हो तुम;
इसलिए हर भूमिका में,
रंग भरो तुम भूमिजा में;
बन सको निरपेक्ष, तो फिर--
क्या दुआ, क्या बद्भदुआ है?
मन कहां है, क्या हुआ है?
बस, निरपेक्ष बन सको, देख सको देह को अपने से भिन्न, देख सको मन को अपने
से भिन्न, जाग कर स्वयं के भीतर इस पहचान को कर सको कि मैं सिर्फ चैतन्य मात्र हूं, चिन मात्र, तो तुम्हारे जीवन में क्रांति घट गई। फिर मृत्यु तुम्हारा कुछ बिगाड़ न पाएगी, तुमसे कुछ भी छीन न पाएगी। और तुम्हारे जीवन में पहली बार परमात्मा का पदार्पण होगा। तुम्हारा नया जन्म होगा। तुम समय के पार उठ जाओगे। कालातीत से तुम्हारा मिलन होगा।
यह मिलन न हो जाए तो समझना कि तुम जीवन को गंवा रहे हो! और जितने जल्दी सम्हल जाओ उतना अच्छा, क्योंकि कल का क्या भरोसा है!
संध्या के पट के पीछे "निशि" की नूपुर-ध्वनि आई।
कण-कण में "गान" करुणतम देता है मुझे सुनाई।
इस "अंधकार" में किसने शशि-सी मृदु "कोर" दिखाई?
इस संधि-समय में आंखें क्यों इतना जल भर लाईं?
चुंबन करता है कोई आ-आ "अवगुंठन" मेरा,
पर, देख नहीं पाती हूं, है चारों और "अंधेरा!" "भव" की ये निधियां सारी बन गईं मुझे क्यों रौरव? मानो, मैं लुटा चुकी हूं अपना सब वैभव--गौरव! "नीड़ों" की और विहग-दल उड़ते हैं, करते कलरव।
मैं सूनी आंख निरखती संध्या का "मिलन-महोत्सव।"
वह "क्षितिज" रोकता है पथ, "उस पार" "बसेरा" मेरा,
"माया" ने डाला मेरे जीवन पर कैसा "घेरा?"
जागो! थोड़ा विचार करो, पुनर्विचार करो!
वह "क्षितिज" रोकता है पथ, "उस पार" "बसेरा" मेरा,
"माया" ने डाला मेरे जीवन पर कैसा "घेरा?"
तुम्हारे जीवन पर माया का बड़ा घेरा है। और माया से मैं किसी बड़े तात्विक, सैद्धांतिक शब्दजाल को नहीं रचना चाहता हूं, माया से अर्थ हैः तुम मन की मान कर चल रहे हो तो माया। तुम मन से जाग जाओ और चलो, तो माया का अंत। कोई अद्वैतवाद की बहुत गहरी समीक्षा में जाने की जरूरत नहीं है कि

क्या माया, क्या ब्रह्म, कौन सत्य, कौन असत्य? उस तरह के व्यर्थ के ऊहापोह से कुछ सार नहीं निकलता। और तुम जान भी लो कि ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या, तो भी कुछ होगा नहीं। तुम मान भी लो... कितने तो वेदांती हैं। अक्सर दांत गिरते-गिरते लोग वेदांती हो जाते हैं। वेदांत का मतलब होता हैः जिनके दांत गिर गए, बे-दांत हो गए, तो वेदांती हो गए। अब करने को भी कुछ न बचा। दांत ही न रहे तो अब और क्या बचा! ... लोगों ने बड़े-बड़े सिद्धांत गढ़ लिए हैं, मगर सब बचाव हैं। माया से मेरा तो सीधा-सीधा अर्थ है और वह हैः मन की मान कर चलना। मन जो करवाए, वह करना, माया और मन से जाग जाना, भिन्न हो जाना और फिर जीना, वह ब्रह्म।
बात को व्यावहारिक बनाओ। धर्म को नगद बनाओ। उधार नहीं। धर्म कोई तत्व-दर्शन नहीं है, धर्म जीवन-रूपांतरण की प्रक्रिया है। धर्म एक कीमिया है। यह कोई मतमतांतर की बात नहीं है, यह तो जीवन को नया ढंग, नई शैली देने की व्यवस्था है। और इतना तुम कर सको तो तुम्हारे जीवन में अभी बरस जाएं मोती।
कल्लोलिनी लहराती है--तट से मृदु क्रीड़ा करती,
ऊपर उस नील गगन की रत्नों से थाली भरती!
माधुरी मुदित अंबर से अवनी पर आज उतरती।
शशि-सुधा-कलश से मद की धारा धरणी पर झरती।
कहते नक्षत्र गगन के तुम नाचो आज परी-सी।
हम चरणों पर आ लौटें, है निशि उन्माद भरी-सी।
शीतल मृदु मलय पवन है उपवन में मुक्त विचरती।
क्यों स्पर्श-मात्र से उसके यह जीवन-लता सिहरती?
अभी बरसने लगे अमृत, अभी घिर आएं घटाएं, अभी आ जाए आषाढ़, अभी नाचें मोर--एक क्षण की भी देर न हो--तुम साक्षी भर हो जाओ।
आज के सूत्र--
झरत दसहुं दस मोती!
दसों दिशाओं में मोती झर रहे हैं। लेकिन दिशाएं ग्यारह हैं और गुलाल
ने केवल दस की बात कही। तुम भी थोड़ा चौंकोगे, क्योंकि तुम भी सोचते हो, मानते हो कि दिशाएं दस हैं। किताबों में दस ही लिखी हैं, भूगोल में दस ही हैं। आमतौर से तो हम चार दिशाएं जानते हैं, फिर चारों दिशाओं के बीच-बीच में एक-एक दिशा, तो आठ; फिर एक दिशा ऊपर, और एक दिशा नीचे, तो दस। मगर एक दिशा भीतर। ये दसों तो बाहर की हैं, ग्यारहवीं दिशा अंतर्यात्रा की है। मगर क्यों गुलाल ने दस की ही बात कही? क्योंकि ग्याहरवीं दिशा में तो तुम देखोगे, वहां तो तुम द्रष्टा होओगे। दसों दिशाओं में मोती झरेंगे, तुम द्रष्टा होओगे। तुम्हारे चारों तरफ झरेंगे--ऊपर से, नीचे से, सब दिशाओं से झरेंगे, लेकिन तुम? तुम तो मात्र द्रष्टा होओगे। तुम पर बूंदा-बांदी होगी मोतियों की, अमृत-कलश ढलकेगा, तुम्हारे प्याले में भरा जाएगा जीवनरस, लेकिन तुम तो द्रष्टा हो। वह ग्यारहवीं दिशा है द्रष्टा की। बाकी दसों दिशाएं दृश्य हैं और ग्यारहवीं दिशा है द्रष्टा की। ग्यारहवीं दिशा में थिर हो जाने का नाम समाधि है।
दीनानाथ अनाथ यह, कछु पार न पावै।
बरनों कवनी जुक्ति से, कछु उक्ति न आवै।।
गुलाल कहते हैं कि मैं तो बेपढ़ा-लिखा आदमी हूं, साधारणजन हूं, न कोई पंडित हूं, न कोई ज्ञानी हूं, न कोई शास्त्री हूं, कैसे कहूं जो हो रहा है उसे! ये जो मोती बरस रहे हैं दसों दिशाओं से, यह जो अमृत की झड़ी लगी है, यह जो नाद, अनहद नाद उठ रहा है, यह जो वीणा जब रही है, यह जो ओंकार गूंज रहा है दसों दिशाओं में, इसे कैसे कहूं! इस आनंद को किन शब्दों में प्रकट करूं? इस अमृत को किन सिद्धांतों में बांधूं, कैसे बांधूं?
कबीर कहते हैंः गूंगे केरी सरकरा। जैसे गूंगे ने मिठास चख ली हो, कहे
तो कैसे कहे!
दीनानाथ अनाथ यह, ...
वे कहते हैं कि मैं तो बिल्कुल ही दीन-हीन हूं। तुम हो दीनानाथ, मैं हूं अनाथ।

... कछु पार न पावै।
मैं लाख कोशिश करता हूं, तुम अनंत हो, तुम्हारे ओर-छोर भी नहीं देख पाता; तुम्हारी अजस्र धारा बह रही है, तुम कहां प्रारंभ होते हो, कहां अंत होते हो, कुछ पता नहीं चलता। तुम्हारा कोई कूल-किनारा नहीं है।
बरनों कवनी जुक्ति से, ...
ऐसी कोई युक्ति भी मुझे नहीं आती जिससे तुम्हारा वर्णन कर सकूं। और बिना कहे भी रहा नहीं जाता।
यह अपूर्व घटना प्रत्येक सिद्धपुरुष को घटती है। जो देखता है, वह शब्दातीत। जो अनुभव में आता है, वर्णन में नहीं आता। जिसकी प्रतीति होती है, उसकी व्याख्या नहीं होती। मगर सब जानते हुए कि न व्याख्या हो सकती, न निर्वचन हो सकता, न शब्दों में बांधा जा सकता, न गीतों में गाया जा सकता, फिर भी भीतर एक आंधी उठती प्रकट करने की, चिल्ला-चिल्ला कर कह देने की, घर की मुंडेरों पर चढ़ जाने की, लोगों को झकझोर-झकझोर कर समझाने की। ये दोनों बातें एक साथ घटती हैं। इसलिए प्रत्येक रहस्यवादी संत बड़ी मुश्किल में पड़ जाता है। एक तरफ अड़चन कि जो अनुभव में है, कहा नहीं जा सकता और दूसरी अड़चन कि बिना कहे रहा नहीं जा सकता। कहना ही पड़ेगा। अनिवार्यरूपेण कहना पड़ेगा। चुप रहा नहीं जा सकता। भीतर जो घुमड़ रहा है, वह फूटना चाहता है, वह विकीर्णित होना चाहता है।
दीया जलेगा तो किरणें फैलेंगी। और फूल खिलेगा तो गंध उड़ेगी। और सूरज निकलेगा तो पक्षी गीत गाएंगे ही गाएंगे, और पृथ्वी जागेगी ही जागेगी, और वृक्ष रात भर के सोए पुनः अंगड़ाई लेंगे। जैसे यह स्वाभाविक है, वैसे ही यह भी स्वाभाविक है। जैसे प्यासे आदमी को जल मिल जाए, पी ले, तृप्ति हो, मगर कैसे बताए तृप्ति को? और यह जल कोई साधारण जल तो नहीं। जन्मों-जन्मों से तलाशते थे और मिला नहीं। और इतने पास था, पास से भी पास था, हाथ भी बढ़ाने की जरूरत न थी, सिर्फ साक्षी होने की जरूरत थी।
और कहना इसलिए भी अनिवार्य हो जाता है, अपरिहार्य हो जाता है कि लोग टटोल रहे हैं, इसी को टटोल रहे हैं; चारों तरफ लाखों-लाखों लोग, करोड़ों- करोड़ों लोग इसी को टटोल रहे हैं जो उनके भीतर है। इसी को खोज रहे हैं, भाग रहे हैं, दौड़ रहे हैं--और वह उनके भीतर पड़ा है। जिस हीरे की तलाश चल रही है, उसकी तलाश करने की जरूरत ही नहीं है, वह खोजने वाले में ही छिपा है। उसकी खोज करना ही भ्रांत है। उसकी खोज में जाना दूर निकल जाना है। अगर उसे पाना हो तो सब खोज छोड़ कर अपने भीतर बैठ जाना जरूरी है। इतने लोगों को इतनी बेचैनी में देख कर, इतनी भाग-दौड़ में देख कर, इतनी आपाधापी में देख कर कैसे कोई चुप रह जाए! करुणा भी उमगती है।
बुद्ध ने कहा हैः समाधि का अनिवार्य परिणाम है करुणा। समाधि तो घटेगी भीतर, करुणा बहेगी बाहर। करुणा का पहला कृत्य होगा कि मैं कह दूं लोगों को कि ईश्वर है। और भी एक मुश्किल खड़ी होती है, पहले तो कहना मुश्किल होता है, फिर कहो तो कोई मानता नहीं। कहो तो लोग हंसते हैं। कहो तो लोग कहते हैं कि पागल हो गए हो! अरे, कुछ होश की बातें करो! कहां का ईश्वर, कैसा ईश्वर? अब तुमने गंवाई बुद्धि! सिद्ध करो तर्क से! जिसे कहा नहीं जा सकता, उसको सिद्ध कैसे करोगे? जिसे बताया नहीं जा सकता, उसके लिए प्रमाण क्या हो सकता है? हां, तुम नाच सकते हो, तुम गा सकते हो, तुम इकतारा लेकर गुनगुना सकते हो। तुम्हारे सब उपाय छोटे हैं। मगर करने ही पड़ेंगे। जानते हुए कि छोटे हैं, ओछे हैं, करने ही पड़ेंगे।
और उचित है कि करने ही पड़ते हैं। लाखों लोग सुनेंगे, शायद कोई एकाध समझने को राजी होगा। मगर उतना ही क्या कम है।
इस पृथ्वी पर एक व्यक्ति भी जब परमात्मा के निकट सरकता है तो सारी पृथ्वी की चेतना परमात्मा के निकट सरक जाती है। पता चले, न चले! जब भी एक व्यक्ति प्रबुद्ध होता है, तो मनुष्य की चेतना एक सीढ़ी ऊपर चढ़ जाती है। पता भी नहीं चलता तुम्हें। तुमने कभी धन्यवाद भी नहीं दिया है महावीर को, बुद्ध को, कृष्ण को, क्राइस्ट को, मोहम्मद को, तुमने कभी धन्यवाद भी नहीं दिया है। लेकिन तुम जो कुछ हो आज, उनकी अनुकंपा से हो। काश, हम ये दस-पंद्रह नाम पृथ्वी के इतिहास से अलग कर दें, तो तुम किसी झाड़ पर बैठे होते!

डार्विन को सिद्धांत नहीं खोजना पड़ता कि मनुष्य बंदर से विकसित हुआ है, मनुष्य बंदर ही होता। आखिर तुम्हारे बहुत से पूर्वज अभी भी झाड़ों पर बैठे ही है। ये दस-पंद्रह नाम जिनके प्रति तुमने कोई अनुग्रह भी प्रकट नहीं किया है--और किया भी होगा तो औपचारिक भर। जैन घर में पैदा हुए हो तो जाकर महावीर की मूर्ति पर सिर टेक आते हो; न कोई भाव है, न कोई आनंद है, न तुम रसमग्न हो। जाना था, जाना पड़ा है, तो चले गए हो। सब जा रहे हैं, न जाओ तो अच्छा नहीं लगता। धार्मिक कहलाने का भी एक अहंकार है, वह भी तृप्त हो जाता है। बौद्ध घर में पैदा हुए हो तो बुद्ध की मूर्ति को नमस्कार कर लेते हो। और हिंदू घर में पैदा हुए हो तो कृष्ण की मूर्ति को नमस्कार कर लेते हो। लेकिन न तो कृष्ण की बांसुरी तुम्हारे भीतर बजती है, न कृष्ण के आस-पास तुम नाचते, न रास होता। सच तो यह है कि अगर हिंदू से ठीक से पूछो खोजबीन करके, अगर वह ईमानदार हो, तो वह कृष्ण के पूरे जीवन को मानने को राजी भी नहीं होगा। उसमें काट-छांट कर देगा। सबने काट-छांट की है।
सूरदास कृष्ण के बचपन के ही गीत गाते हैं, उनकी जवानी की बात नहीं करते। क्योंकि जवानी से जरा भयभीत होते होंगे। बचपन तक ठीक है कि कंकड़ी मार दे बच्चा और किसी की गगरी फोड़ दे, यह ठीक है; अब जवान आदमी और झाड़ पर चढ़ जाए और नहाती स्त्रियों के कपड़े ले जाए उठा कर, तो इसकी इत्तला तो पुलिस में करनी होगी। हिंदू से हिंदू मन इस बात को स्वीकार करने में डरता है। इससे बचने के लिए वह कई तरकीबें निकालता है। वह कई व्याख्याएं करता है। पहली तो व्याख्या वह इस तरह की करना शुरू कर देता है कि यह सिर्फ प्रतीकात्मक है, वस्तुतः कोई तथ्य नहीं है कि कृष्ण स्त्रियों के वस्त्रों को लेकर और वृक्ष पर चढ़ गए। यह तो प्रतीक है। स्त्रियां यानी इंद्रियां। अब यह किसने इनको कह दिया कि स्त्रियां यानी इंद्रियां? मगर कुछ रास्ता निकलना पड़ेगा। स्त्रियां यानी इंद्रियां। और स्त्रियों के वस्त्र यानी इंद्रियों को उघाड़ना ताकि तुम इंद्रियों का सत्य देख सको। खूब तरकीब निकाली! तुमने बात ही झुठला दी!
तो कृष्ण की सोलह हजार रानियां? हिंदू से हिंदू मन भी थोड़ा चिंतित होता है, थोड़ा बेचैन होता है, थोड़ी असुविधा अनुभव करता है कि कैसे स्वीकार करो, सोलह हजार रानियां, यह तो जरा बात गड़बड़ होती मालूम होती है। अरे, एक हो, दो हों, ठीक है--और मुसलमान भी रहे होते तो भी चार; मोहम्मद ने भी बहुत हिम्मत की तो नौ, मगर सोलह हजार! तो कुछ रास्ता तो निकालना पड़ेगा। हालांकि यह ऐतिहासिक तथ्य है और घबड़ाने जैसा नहीं है कुछ। निजाम हैदराबाद की पांच सौ स्त्रियां अभी थीं, पचास साल पहले! अगर पचास साल पहले निजाम हैदराबाद की पांच सौ स्त्रियां हो सकती हैं, तो मामला कुछ बहुत बड़ा नहीं है। सोलह हजार मतलब बत्तीस गुनी। सो बत्तीस का गुणा कर दो। और निजाम हैदराबाद की हैसियत से कृष्ण की हैसियत बत्तीस गुनी तो माननी ही पड़ेगी। निजाम हैदराबाद की क्या हैसियत है? उन दिनों जितनी स्त्रियां होतीं तुम्हारी, उससे अंदाज लगता था कि तुम कितने समृद्ध हो। और कोई रास्ता नहीं था समृद्धि के नापने का। स्त्रियां एक तरह के सिक्के थीं, कि तुम्हारे पास कितने सिक्के? अलग-अलग लोगों के अलग-अलग सिक्के होते हैं।
एक देहात में एक आदमी नये-नये खुले बैंक में उधार लेने गया। बैंक के मैनेजर ने पूछा, तुम्हारा काम क्या है? उसने कहा, मैं गाय-बैल बेचने का काम करता हूं। तुम्हारे पास कितने गाय-बैल हैं? उसने कहा, पांच सौ। ठीक है। उसको कोई ज्यादा चाहिए भी नहीं था, केवल दो हजार रुपये उधार मांग रहा था। दो हजार उसने उधार दे दिए। दो महीने बाद वह आकर पैसे चुका गया। जब उसने पैसे चुकाए और थैली खोली, तो उसके पास कम से कम पचास हजार रुपये थे। दो हजार उसने निकाल कर दे दिए नोट और बाकी नोट समेट कर उसने थैली में रख दिए-- ऐसे जैसे कागज-पत्तर हों! मैनेजर ने पूछा, इतने रुपये तुम्हारे पास हैं, इनको बैंक में जमा कर दो, ब्याज भी मिलेगा। उसने कहा, ठीक है, तुम्हारे पास कितनी गाय-भैंसें हैं? जब दो हजार रुपये उधार दिए तो पांच सौ गाय-बैल, गाय-भैंसें; तो पचास हजार रुपये दे रहा हूं! गाय-भैंसें कहां हैं?
ठीक है, अपनी-अपनी भाषा होती है। गाय-भैंस वाले के पास एक ही भाषा होती है; तुम्हारे पास कितनी?

स्त्री को धन कहा है भारत में। अपमानजनक है यह। गर्हित है, इसकी निंदा होनी चाहिए। लेकिन अगर धन कहा है तो फिर धन मापदंड हो जाता था। तो कितनी स्त्रियां तुम्हारे पास? तो रही होंगी सोलह हजार, कुछ आश्चर्य की बात नहीं है, कुछ हैरानी की बात नहीं है। और उन दिनों इतने युद्ध होते थे, इतने पुरुष मर जाते थे कि स्त्रियों की संख्या हमेशा ज्यादा हो जाती थी। आजकल के युद्ध एक लिहाज से अच्छे हैं, क्योंकि बम गिरे तो वह कोई पकड़-पकड़ कर पुरुषों को नहीं मारते। कम से कम थोड़े से समाजवादी हैं। स्त्री हो कि पुरुष, बच्चा हो कि बूढ़ा, इसकी कोई फिकर नहीं, बम तो सभी को मार देता है। हिरोशिमा पर गिरा तो सबको खत्म कर दिया। मगर उन दिनों के युद्ध में तो स्वभावतः पुरुष मरता था। स्त्रियों की संख्या बढ़ती जाती थी। इसलिए मोहम्मद ने निर्णय दिया की चार स्त्रियां मुसलमान रख सकते हैं। उसका कुल कारण इतना था कि अरब में उस समय स्त्रियों की संख्या चार गुनी हो गई थी पुरुषों से। कृष्ण के जमाने में संख्या बहुत ज्यादा रही होगी। आए दिन लड़ाई-झगड़े, हत्याएं, पुरुषों का मरना।
मगर हिंदू मन को भी घबड़ाहट होती है कि सोलह हजार! इससे तो बड़ा मुश्किल
हो जाएगा, लोग क्या कहेंगे? ये कैसे भगवान? सोलह हजार स्त्रियां! अरे, साधारण आदमी एक से चला लेता है काम। सोलह हजार स्त्रियां! नाम-धाम, पता- ठिकाना रखना भी मुश्किल होता होगा। मुंशी लगा रखे होंगे। दफ्तर खोल रखा होगा। नंबर बांट रखे होंगे। और सोलह हजार रानियों का समझो कि सोलह हजार दिन में एक रानी के लिए एक दिन मिलता होगा। तब तक भूल ही जाते होंगे, कि बाई, तू कौन है? कहां से आई है? क्या काम है? तो कुछ रास्ता निकालना पड़ेगा। तो उन्होंने रास्ता निकाल लिया। वह रास्ता यह है कि यह स्त्रियों की बात नहीं है, मनुष्य के भीतर सोलह हजार नाड़ियां होती हैं। नारियां नहीं, नाड़ियां। ये सोलह हजार नाड़ियों की मालकियत, इनके पति हो जाना, इनके स्वामी हो जाना। सो एक भी न बची नारी! सब नाड़ियां हो गईं। कुछ तो दया करो! कम से कम दो-चार तो नारियां रहने देते। तुमने सभी नाड़ियां कर दीं। तो यह राधा वगैरह, सब नाड़ियां! तो ये सब मूर्तियां वगैरह, मंदिर इत्यादि सब झूठ। मगर स्वीकार करने की कठिनाई, बेचैनी। तो समादर क्या खाक करोगे! स्वीकार करने में ही डरते हो।
श्वेतांबर जैन कहते हैं कि हां, महावीर नग्न थे, मगर वस्तुतः नग्न नहीं थे। क्योंकि नंगा मानना जरा जंचता नहीं, कि अपने स्वामी, अपने भगवान और नंगे! मगर कोई रास्ता निकालना पड़ेगा। थे तो वे नंगे ही--ऐसे नंगे होने में कोई खराबी भी नहीं है। परमात्मा सभी को नग्न ही बनाता है--वे सहज, निर्दोष व्यक्ति हो गए, वस्त्रों की कोई जरूरत न रही, क्योंकि छिपाने को कुछ बचा नहीं; छिपाने योग्य कुछ नहीं बचा, छोड़ दिए होंगे वस्त्र, कोई इसमें हैरानी की बात नहीं है। मगर मन में कचोट होती है। और फिर नग्न को पूजना! फिर बच्चे पूछते हैं कि दद्दू, ये महावीर स्वामी नंगे खड़े हैं और इतनी सर्दी पड़ रही है! कम से कम पायजामा पहनाओ, कोट पहना दो, एक झग्गा तो कम से कम डाल ही दो! ये नंगे क्यों खड़े हैं? तो श्वेतांबरों ने एक तरकीब खोज ली कि वे नग्न नहीं थे, सिर्फ दिखाई पड़ते हैं नग्न।
कैसी खोजी तरकीब उन्होंने यह!
तरकीब उन्होंने यह खोजी कि जब उन्होंने वस्त्र छोड़ दिए तो देवता आकाश
से उतरे और उन्होंने उन्हें अदृश्य वस्त्र दिए। तो वे दिखाई नहीं पड़ते वस्त्र--हैं तो, मगर दिखाई नहीं पड़ते। दैवी वस्त्र हैं। अदृश्य। अब उन्होंने तरकीब खोज ली। अदृश्य हैं, श्वेत हैं। इसलिए वे श्वेतांबर कहलाते हैं।
दिगंबर भी अपनी मूर्तियां बनाते हैं, तो महावीर को इस ढंग से बैठाते हैं पालथी मार कर कि उनकी नग्नता दिखाई न पड़े।
मैं एक दिगंबर घर में मेहमान था। बड़ा सुंदर चित्र महावीर का लगा था। मैंने कहाः चित्र तो बहुत सुंदर है, मगर चालबाजी है इसमें! उन्होंने कहाः क्या चालबाजी है? महावीर को दिखाया है एक वृक्ष की आड़ में खड़ा हुआ और वृक्ष की शाखाएं इस तरह दिखाई हैं कि शाखाओं ने लंगोटी का काम कर दिया। सो महावीर स्वामी नग्न भी खड़े हैं! मैंने कहा कि मगर बड़ी मुश्किल होती होगी,

इस वृक्ष को कहां-कहां ले जाते होंगे! यह तो एक झांकी हो गई समझो। कि टक में खड़े हैं और वृक्ष भी लगा है टक में--और चले जा रहे हैं। ताकि नंगे भी रहें और वृक्ष लंगोटी लगाए रहे। तो लंगोटी ही क्यों नहीं लगा लेते? इतना बड़ा वृक्ष लगाए फिरो... ! उन्होंने कहाः हां, यह बात तो है, यह आपने खूब याद दिलाई! मगर यह मुझे कभी ख्याल नहीं आई। जो भी आता है, इसको पसंद करता है चित्र को। मैंने कहाः पसंद क्यों नहीं करेगा? तुम्हारे घर आने-जाने वाले लोग होंगे दिगंबर जैन। उन्होंने कहाः हां, वे ही आते-जाते हैं, मैं खुद भी दिगंबर जैन हूं। वे सब पसंद करेंगे। उनको बात जंचेगी।
तुम कैसे सम्मान करोगे, तुम स्वीकार भी नहीं कर सकते! इनके वचनों का
भी तुम अर्थ अपने ही हिसाब से निकाल लोगे। इनके जीवन का भी अर्थ तुम अपना करोगे।
महात्मा गांधी को बहुत अड़चन थी महाभारत के युद्ध से। होनी ही चाहिए। क्योंकि अहिंसा! और गीता से उन्हें लगाव! हिंदू होने से वह भी एक झंझट। तो गीता को कहेंः माता। मगर माता का जन्म हुआ युद्ध में। इन माई को भी कोई और स्थान न मिला! युद्ध के मैदान में जन्मीं! अब उनको बड़ी अड़चन थी। गांधी के जीवन में जीवन भर अड़चन रही। क्योंकि थे तो वे हिंदू मगर पले जैन प्रभाव में। गुजरात की वह हालत है। गुजरात है तो हिंदू मगर प्रभाव जैन है। भारी प्रभाव जैन है। तो गुजराती घर का न घाट का।... अब बाकी तुम समझ लो! ... वह न तो हिंदू है न जैन है। वह दोनों के बीच में अटका है।
अब महात्मा गांधी यह भी नहीं कह सकते कि गीता गलत है, क्योंकि हिंदू हैं। और यह भी नहीं मान सकते कि युद्ध, कृष्ण और युद्ध करवाएं! यह तो बात ही गलत हो जाएगी। हां, सत्याग्रह करवाते, अनशन करते, जेल भरते, घेराव करते--और कुछ भी करते, मगर युद्ध! और बेचारा अर्जुन तो भाग कर जैन मुनि होने की तैयारी कर रहा था। वह यही तो कह रहा था कि महाराज, मारने में क्या सार है? अरे, क्षुद्र वस्तुओं के लिए, धन के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए हत्या करनी, हिंसा करनी, पाप करना, इससे तो मैं संन्यासी हुआ जाता हूं! जंगल में बैठेंगे और मंगल करेंगे! इस युद्ध में क्या रखा है? उसके शिथिल गात और उसका गांडीव गिरने लगा। और कृष्ण ने उसे भड़काया, समझाया-बुझाया कि नहीं बेटा, जूझो! परमात्मा की जो मर्जी वह पूरा करो! अब यह कैसे पक्का कि परमात्मा की यही मर्जी है कि जूझो? परमात्मा की मर्जी यही हो कि भागो! यह कौन जिम्मा ले कि परमात्मा की मर्जी क्या है? परमात्मा कृष्ण से बोल रहा है कि अर्जुन से, किसको पता? अगर महात्मा गांधी से पूछो तो उनको तो लगेगा कृष्ण से तो नहीं बोल रहा, बोल रहा है वह अर्जुन से ही। मगर यह कहने की हिम्मत कैसे जुटाएं? तो फिर तरकीब निकालनी पड़ती है।
तो तरकीब यह है कि युद्ध कभी हुआ नहीं, युद्ध तो केवल परिकल्पना है--एक मेटाफर, एक प्रतीक मात्र। प्रतीक है अच्छाई और बुराई के बीच युद्ध का। कोई ऐतिहासिक युद्ध नहीं। यह तो मनुष्य के अंतर्तम का युद्ध है, जहां बुराई और भलाई में युद्ध हो रहा है।
कौन बुरा है, कौन भला है? गांधी से किसी से पूछा नहीं कि इसमें बुरा- भला कौन है? दुर्योधन और कौरव बुरे हैं? और पांडव अच्छे हैं? ये सब पांडव जुआरी थे। और हरकत पांडवों की तरफ से शुरू हुई।
पांडवों ने एक लाख का भवन बनाया और उसमें दुर्योधन को निमंत्रित किया। वह भवन इतनी कला और कारीगरी से बनाया गया था कि जहां दरवाजे नहीं थे, वहां दरवाजे दिखाई पड़ते थे और जहां दरवाजे थे, वहां दरवाजे नहीं, दीवाल दिखाई पड़ती थी। स्थापत्य कला का एक नमूना रहा होगा! इस तरह बनाया जा सकता है।
अभी मेरे पास किसी ने भेंट भेजी है अमरीका से। एक छोटा सा खिलौने जैसी चीज है, मगर उसे देख कर मुझे तत्क्षण याद आ गई यह जो पांडवों ने भवन बनाया था, उसकी। एक प्याली है। लेकिन प्याली इस तरह से बनाई गई है और प्याली के भीतर वैज्ञानिक ढंग से, गणित के आधार पर इस तरह चांदी का लेप किया गया है कि प्याली के भीतर किसी चीज को तुम रख दो तो वह भीतर नहीं दिखाई पड़ती, वह प्याली के ऊपर दिखाई पड़ती है। प्याली से पड़ती हुई किरणें उस चीज से इस तरह टकराती हैं कि उसका प्रतिबिंब ऊपर बन जाता है। तुम अगर दूर से देखोगे तो

तुम बड़े चकित हो जाओगे; चीज ऊपर दिखाई पड़ती है! एक बुद्ध की प्रतिमा उसके ऊपर रख दी है, वह प्रतिमा ऊपर दिखाई पड़ती है। जहां नहीं है वहां तुम हाथ फेरो, कुछ भी नहीं है। मगर दिखाई पड़ती है। आंखें गवाही देती हैं कि है। हाथ फेरो, कुछ भी नहीं है। जब तुम पास आकर झांकोगे तब तुमको पता चलेगा कि प्रतिमा अंदर रखी है। लेकिन दिखाई ऊपर पड़ती है।
यह अगर एक छोटी सी प्याली में हो सकता है, तो यह बड़े भवन में भी हो सकता है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। सिर्फ किरणों का, दर्पणों का ठीक-ठीक आयोजन करने की जरूरत है। और वहां दुर्योधन जब गिरने लगा दीवालों से टकरा कर, तो द्रौपदी हंसी। और उसने कहा कि गिरेगा क्यों नहीं, है अंधे का बेटा! अंधा है, इसलिए गिर रहा है।
यह हंसी अखर गई।
यह कोई भली बात थी। यह कोई शुभ बात थी? आदमी अंधे को भी अंधा नहीं कहता, कहते हैंः सूरदासजी! यह दुर्योधन का इस तरह अपमान करने की क्या जरूरत थी? और फिर अपमान का बदला लिया जाएगा। इसमें बुरा कौन है, भला कौन है? और फिर ये सब जुआरी! धर्मराज सब लगा दिए दांव पर। पत्नी भी लगा दी है। इनमें कौन अच्छा है, कौन बुरा है? गांधी जी से कोई पूछे! लेकिन वे बताते हैं कि शुभ और अशुभ के बीच युद्ध हो रहा है। यह भगवान और शैतान के बीच युद्ध हो रहा है। यह युद्ध वास्तविक नहीं है, ऐतिहासिक नहीं है, प्रतीक मात्र है। इस तरह हम तरकीबें निकालते हैं, हम अपने अर्थ निकालते हैं। हम सम्मान क्या खाक करेंगे! हम स्वीकार भी नहीं कर सकते तथ्यों को। हम तथ्यों को झुठलाते हैं।
लेकिन इन थोड़े से ही लोगों को, जिनको हम झुठलाते हैं, जिनको हमने जहर पिलाया और फांसी दी और जिनके हाथ-पैर काटे और जिन्हें हमने मारा, इन थोड़े से ही लोगों के कारण हम मनुष्य हैं, इसे स्मरण रखना।
बरनों कवनी जुक्ति से, कछु उक्ति न आवै।।
गुलाल कहते हैंः मुझे तो कुछ उक्ति आती नहीं, कैसे कहूं, कहे बिना रहा जाता नहीं।
यह मन चंचल चोर है...
--इतना ही कह सकता हूं--
यह मन चंचल चोर है, निसुबासर धावै।
लोगों से में यही कह रहा हूं, यही कह सकता हूं, कि इस चंचल मन से बचो! क्योंकि जब तक मैं इसमें उलझा था, मैंने परमात्मा को नहीं जाना। तब तक यह मोतियों की झड़ी लगी थी, मुझे दिखाई न पड़ी। मैं अंधा रहा, आंख के रहते अंधा रहा। कान के रहते बहरा रहा। हृदय के रहते मैंने प्रेम नहीं जाना, भक्ति नहीं जानी। कारण केवल एक थाः "यह मन चंचल चोर है, निसुबासर धावै।" यह मन बिल्कुल चोर है, बेईमान है, धोखेबाज है। यह चौबीस घंटे हमले कर रहा है। निसुबासर। यह तुम्हें हर तरफ से लपेटे हुए है। और इसके जाल ऐसे हैं, एकदम से समझ में नहीं आते। यह बड़ा तार्किक है। यह अपनी हर चीज के लिए तर्क देता है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने एक बार अचानक नसरुद्दीन के आफिस में प्रवेश किया। सामने ही देखा कि मुल्ला की खूबसूरत स्टेनो मुल्ला के गोद में बैठी हुई है। पत्नी तो क्रोध से तमतमा उठी। मुल्ला ने देखा कि पत्नी भड़कने ही वाली है, तो जोर से स्टेनो को धक्का देते हुए बोला, सुनो जी, आफिस में स्टूल और चेयर्स की कमी है, ठीक है, मगर इसका यह मतलब तो नहीं कि तुम मेरी गोद में बैठो! अरे, खड़े होकर नोट्स लो!
मन तरकीबें निकाल लेता है। तत्क्षण तरकीबें निकाल लेता है। हर हालत में तरकीबें निकाल लेता है। तुम जरा देखना, तुम्हारा मन कैसी-कैसी तरकीबें निकालता है! तुम कैसे-कैसे बहाने खोजते हो!
मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन एक बगीचे में चोरी करने घुस गया। जा रहा था रास्ते से, दरवाजा खुला पड़ा था, पहरेदार था नहीं, पके हुए फल, लार टपक गई उसकी। रोकना भी चाहा कि यह ठीक नहीं है तो भीतर से आवाज आई--क्या ठीक नहीं है? अरे, फल तो परमात्मा के हैं, सबै भूमि गोपाल की, फल किसी के बाप के हैं! फल तो सबके हैं। परमात्मा की भूमि, परमात्मा का आकाश, उसकी हवा, उसकी

रोशनी, क्या डरना! इसमें चोरी क्या है? चोर असल में वह है जो दावा कर रहा है कि ये मेरे हैं। मुल्ला ने कहाः बिल्कुल ठीक, अंतर्वाणी पर तो विश्वास करना ही पड़ेगा! घुस गया बेधड़क। बाजार जा रहा था सब्जी खरीदने, झोले में उसने भर लिए--जो भी उसको मिला। टमाटर थे तो टमाटर भर लिए, तरबूज-खरबूज भर लिए, और तभी मालिक आ गया! उसने रंगे हाथ उसको पकड़ लिया। पूछा कि यह क्या कर रहे हो? मुल्ला ने कहा कि क्या बताऊं, बड़ी हैरानी की बात हुई। मैं रास्ते से जा रहा था, जोर की आंधी आई, कि आंधी मुझे उड़ा कर भीतर ले आई। और आंधी का जोर ऐसा था... ! मैं तो सब्जी खरीदने जा रहा था। तो उसने कहाः ठीक है, चलो यह भी हम मान लेते हैं कि आंधी आई और आंधी बड़ी जोर की थी--हालांकि ऐसी आंधी यहां कभी आई नहीं; मैंने तो अपने जीवन में नहीं देखी, मगर ठीक है, अब तुम कहते हो, बूढ़े आदमी हो, आई होगी आंधी, मगर ये टमाटर तुम्हारे झोले में कैसे पहुंच गए? उसने कहाः वही आंधी की वजह से। झोला मैं हाथ में लिए था, आंधी ने सब उखाड़-पछाड़ मचा दी, कुछ टमाटर मेरे झोले में पड़ गए। उसने कहाः चलो यह भी ठीक है। मगर तरबूज-खरबूज? मुल्ला ने कहाः वही तो मैं सोच रहा हूं कि टमाटर तक तो ठीक है, मगर ये तरबूज-खरबूज कैसे पहुंच गए अंदर? आपने ठीक पूछा, यही मैं सोच रहा हूं। यही मेरी समझ में भी नहीं आ रहा है!
आदमी खोजता रहता। तुम जैसा भी जीवन जीते हो, उसके लिए ही तर्क खोज लेते हो। और तुम जैसा जीवन जीना चाहते हो, मन तुम्हें वैसे ही जीवन जीने के लिए तर्क देने को राजी होता है। तुम चोर हो, तो मन चोरी के लिए तर्क देने लगता है। तुम बेईमान हो, तो मन कहता है सारी दुनिया बेईमान है; यहां ईमानदार रहे कि लुटोगे, मरोगे, यहां बेईमान मजा कर रहे हैं। तुम किसी की जेब काटना चाहो, मन कहेगा--बेफिकरी से काटो, क्योंकि तुम्हारी भी तो कितनी बार जेब काटी गई है। और जैसे को तैसा, यही तो नियम है।
सुना है मैंने कि अकबर बादशाह किसी बात पर नाराज हो गया और उसने बीरबल
को एक चांटा मार दिया। भरी सभा में चांटा, बीरबल भी तमतमा गया, हाथ उठा लिया, मगर फिर भीतर समझ भी आई कि बादशाह को चांटा मारना--फिर महंगा पड़ जाएगा! मगर उठा हाथ नीचे करना भी ठीक नहीं, सो जो आदमी बगल में खड़ा था, उसको उसने चांटा मार दिया। उस आदमी ने कहाः वाह रे वाह! तेरे को सम्राट ने चांटा मारा, तू मुझे क्यों मारता है? बीरबल ने कहाः तू बगल वाले को मार, बात खत्म कर! चलने दे! कभी न कभी बादशाह पर पहुंच जाएगा।
हम तरकीबें खोज लेते हैं। तुम्हें दफ्तर में मालिक ने बहुत परेशान किया, उससे तुम कुछ नहीं कह सकते, वहां तो तुम कहते हो, जी हुजूर, जी हुजूर, बिल्कुल ठीक, मगर घर आकर पत्नी पर टूट पड़ते हो। और तुम कभी नहीं सोचते कि यह बीरबल वाली कहानी दोहर रही है। मगर तुम तरकीब खोज लोगे। रोटी जली हुई मिलेगी आज--रोज वही रोटी मिलती थी, यही पत्नी है--सब्जी में नमक नहीं है; हजार उपद्रव तुम खोज लोगे आज--रोज यही होता था, मगर कभी तुमने इसमें कोई गड़बड़ न देखी थी। आज तुम देखना चाहते हो। आज तुम चाहते हो कि पत्नी को फांस कर इसकी छाती पर चढ़ बैठो। आज जो मालिक से नहीं कर सके हो, वह इसको करके दिखा देना चाहता हो। मगर तुम साफ नहीं कर पाओगे कि तुम्हारा मन एक जाल फैला रहा है। और पत्नी, तुमसे कुछ न कहेगी, पति हो, परमात्मा हो, पतिदेव से क्या कहना, और भारत में तो बिल्कुल ही नहीं कुछ कहा जा सकता। पश्चिम में मामला बदल गया है। पतिदेव इतनी आसानी से पत्नी पर नहीं टूट सकते। टूटने की तो बात ही अलग, आत्मरक्षा के लिए जो भी उपाय कर सकते हैं, करते हैं। पत्नी टूटती है। पश्चिम में पत्नियां तकिए मारती हैं, सामान फेंकती हैं। यहां भी कुछ पत्नियां, जो जरा विकसित हो गई हैं... प्रगतिशील जिनको कहें। मुल्ला नसरुद्दीन से मैंने पूछा कि कैसी चल रही है? कहा कि बड़े मजे की
चल रही है। हम दोनों ही खुश हैं, पत्नी भी खुश, मैं भी खुश। मैंने कहा कि यह मामला जरा मुश्किल है; सच कह रहे हो? उसने कहाः बिल्कुल सच कह रहा हूं। तुम दोनों कैसे खुश हो सकते हो? उसने कहाः बात आपको समझा कर कहूं। वह कभी प्लेट फेंक कर मारती है, कभी डिब्बा फेंक कर मारती है। अगर लग गया तो वह खुश होती है, अगर नहीं लगा तो हम खुश होते हैं। ऐसे हम दोनों ही खुश हैं। कभी-कभी लग जाता है, कभी-कभी नहीं भी लगता। फिफ्टी-फिफ्टी, उन्होंने कहाः दोनों मजे में हैं। ठीक चल रही है।

पत्नी तो पति को नहीं मार पाएगी, तो बच्चे को मारेगी। देखेगी राह, आने
दो स्कूल से। ये सब अचेतन प्रक्रियाएं हैं। और बच्चा तो मां को क्या कर सकेगा? जाकर अपनी गुड़िया की टांग तोड़ देगा। कहां बॉस, दफ्तर में, उसकी टांग तोड़नी थी और कहां गुड़िया की टांग टूटी! और गुड़िया का बेचारी को कोई कसूर ही न था। गुड़िया का कुछ लेना-देना न था। मगर आखिर तो कहीं खत्म होगी बात। कहीं तो आकर पूर्णविराम लगेगा। वह गुड़िया पर पूर्णविराम लगा।
तुम जरा अपने मन को जाग कर देखने लगो, तो तुम इन सारे तर्कों से सजग हो जाओगे। तुम बड़े हैरान होओगे कि मन बहुत चोर है, बहुत बेईमान है और बहुत चालबाज है--चतुर है, कूटनीतिज्ञ है, राजनीतिज्ञ है।
यह मन चंचल चोर है, निसुबासर धावै।
यह चौबीस घंटे हमले कर रहा है। हर जगह तरकीबें खोज रहा है।
टिकिट चेकर को देख कर एक व्यक्ति जल्दी से बर्थ के नीचे दुबक गया। टिकट चेकर ने उसे देख लिया। वह जल्दी-जल्दी उस बर्थ के पास पहुंचा और उस व्यक्ति को खींच कर बाहर निकाला, देखा तो चंदूलाल थे। बोला टिकट? चंदूलाल गिड़गिड़ाते हुए बोले, माई-बाप, लड़की की शादी है। शादी की तैयारी में इतना खर्च हो गया कि टिकट के पैसे भी नहीं बचे। चेकर को दया आई, चंदूलाल को छोड़ दिया। और तभी उसने देखा कि सामने की ही बर्थ पर एक दूसरे सज्जन भी नीचे छिपे हुए हैं। उन्हें खींच कर उसने बाहर निकाला और कहा कि क्या तेरी लड़की की भी शादी होने वाली है? वे थे ढब्बूजी, बोले, हुजूर, मैं इस बुड्ढे का दामाद हूं।
कोई न कोई रास्ता तो निकालना ही पड़ेगा!
और मन रास्ते निकालने में कुशल है। अति कुशल है। जब तक तुम मन की राजनीति न समझोगे--और मन की राजनीति बड़ी राजनीति है। वे बाहर के राजनीतिज्ञ तो कुछ भी नहीं हैं। यह भीतर जो तुम्हारे बैठा राजनीतिज्ञ है, वह बहुत अदभुत है। यह जन्मों-जन्मों से तुम्हें धोखे दे रहा है, आश्वासन दे रहा है; जन्मों-जन्मों से तुम्हें गड्ढों में गिरा रहा है--उन्हीं- उन्हीं गड्ढों में--मगर इतना कुशल है कि हर बार उसी गड्ढे में गिरने के लिए नये आधार खोज लेता है। उसी गड्ढे में गिरने के लिए नये बहाने बताता है, नये आसार बताता है, नई आशाएं बंधाता है, नये आश्वासन देता है। वही गड्ढा, जिसमें तुम कई बार गिर चुके हो और निर्णय कर चुके हो कि अब नहीं गिरूंगा, बहुत हो गया, आखिर एक सीमा होती है, मगर फिर वही गड्ढा सामने आता है और मन फिर कोई नई तरकीब खोज लेता है और कहता है, एक बार तो और देख लो! पिछली बार चूक गए, मजा नहीं आया, शायद इस बार आए! फिर यह गड्ढा वही गड्ढा थोड़े ही है। अरे, जरा गौर से तो देखो, यह दूसरा ही गड्ढा है!
भूलें तुम नई भी कहां करते हो? वही पुरानी भूलें। कसमें कई बार खा चुके मगर किए चले जाते हो। जरूर मन बहुत कुशल होगा। मन कुशल विक्रेता है। वह हर चीज को बेच देता है। वह जो चीज भी चलाना चाहे, चला देता है। तुम्हें खोटे सिक्के पकड़ाए रखता है। और जैसे ही तुम्हें पता चलता है कि ये खोटे हैं तब तक वह दूसरे सिक्के पकड़ा देता है--जो कि उतने ही खोटे हैं। मन के सब सिक्के खोटे हैं। मन के पास सच्चे सिक्के होते ही नहीं। सच्चे सिक्के आत्मा के पास हैं।
काम क्रोध में मिलि रह्यो, ईहैं मन भावै।।
यह तुम्हारा जो मन है, हर चीज में मिल जाता है--काम में, क्रोध में, मद में, मत्सर में; हर एक चीज की आड़ ले लेता है। यह हमेशा आड़ से खेल खेलता है।
वही इसकी राजनीति है। दूसरों के कंधों पर बंदूक रख लेता है।
मुल्ला नसरुद्दीन शिकार खेलने गया। मुझसे भी कहा, आप भी आइए। मैंने कहाः भाई, मैं शिकार नहीं करता। नसरुद्दीन ने कहाः लेकिन मेरा शिकार देखना! तो मैंने कहा कि चलो। बड़े सज-बज कर मुल्ला ने शिकार का आयोजन किया। एक झील के किनारे एक उड़ते हुए हंस को--पंक्ति उड़ रही थी हंसों की--गोली मारी। किसी हंस को गोली लगी नहीं। मुल्ला मेरी तरफ देख कर बोला देख रहे हैं, चमत्कार देख रहे हैं, मरा हुआ हंस उड़ रहा है! इसके पहले कि मैं कहूं कि गोली लगी ही नहीं, वह मुझसे बोला, कि देख रहे हैं चमत्कार, इसको कहते हैं शिकार, हंस मर भी गया और उड़ रहा है!

मन हमेशा हर चीज के बहाने खोज लेगा। जिसको जीवन में क्रांति लानी है, उसे हर बहाने को पहचान लेना होगा। ठीक-ठीक पहचान लेना होगा ताकि दुबारा वही बहाना न खोजा जा सके। मन क्रोध करेगा तो कहेगा, करना जरूरी है। अगर न करें क्रोध तो लुट जाएंगे। मन बेईमानी करेगा, तो कहेगा, करना जरूरी है। अगर यह कोई बड़ी बेईमानी है! दुनिया में बड़ी-बड़ी बेईमानियां चल रही हैं; यह तो कुछ भी नहीं, यह तो जीवन व्यवहार है। मन झूठ बोलेगा तो कहेगा कि बोलना जरूरी है। यह तो केवल औपचारिकता है, शिष्टाचार है।
काम क्रोध में मिलि रह्यो, ईहैं मन भावै।।
हर चीज के पीछे छिपा है मन। और मन को यह बात बहुत भाती है। यह छिपा हुआ खेल है। क्योंकि तुम उसे सीधे पकड़ भी नहीं पाते। तुम उसे एक तरफ से पकड़ते हो, तुम कहते हो, कसम खाता हूं, अब क्रोध नहीं करूंगा, वह सरक कर काम के पीछे हो जाता है। तुमने यह ख्याल किया कभी कि जो व्यक्ति कसम खा लेता है कि अब कामवासना में नहीं उतरूंगा, उसका क्रोध बढ़ जाता है। वह क्रोधी हो जाता है। वह दुर्वासा मुनि हो जाता है। वह एकदम भीतर जलने लगता है आग से। क्योंकि वह जो वासना दमित रह गई, जिसके पीछे से मन खेल खेलता था, अब मिलती नहीं उसको, अब वह काम को छोड़ कर क्रोध के पीछे ही पूरा पड़ जाता है।
जो आदमी क्रोध छोड़ देगा, वह लोभी हो जाएगा। उसका सारा क्रोध, ऊर्जा जो क्रोध बनती थी, लोभ बन जाएगी।
यह कोई आश्चर्यजनक नहीं है कि जैन समाज लोभी हो गया। वह अहिंसा का परिणाम है। महावीर ने कह दिया कि बिल्कुल हिंसा नहीं करनी, तो मन जो हिंसा करने के पीछे छिपा था, उसने दूसरी तरकीब खोज ली, वह धन के पीछे पड़ गया। महावीर ने कहा कि खेती-बाड़ी भी नहीं करनी है, क्योंकि उसमें भी हिंसा होती है--पौधे उखाड़ोगे तो पौधे में भी प्राण होते हैं, फसलें काटोगे तो उसमें भी तो प्राण होते हैं--तो खेती भी मत करो। क्षत्रिय हो नहीं सकते, क्योंकि तलवार उठानी पड़ेगी। कृषक हो नहीं सकते, क्योंकि उसमें हिंसा होती है। शूद्र कौन होना चाहता है? क्योंकि मल-मूत्र कौन ढोएगा? ब्राह्मण घुसने नहीं देंगे तुम्हें कि तुम ब्राह्मण हो जाओ। बहुत मुश्किल मामला है ब्राह्मण होना। वह तो जन्म से ही कोई हो सके। उन्होंने अपना अड्डा जमा रखा है। वह सबके शिखर पर बैठे हैं। ऐसे हर किसी को घुस जाने दें तो सभी लोग ब्राह्मण हो जाएं। फिर तो कोई दूसरा वर्ण बचा ही नहीं, सभी घोषणा कर दें कि हम ब्राह्मण हैं। लोग करते भी रहते हैं।
मैं एक सज्जन को जानता हूं, पहले वे सिन्हा हुआ करते थे। फिर सक्सेना
हो गए। फिर एक दिन मुझे मिले तो शर्मा हो गए। मैंने कहाः मामला क्या है? उन्होंने कहा कि अपने को जो रुचे! अरे किसी ने ठेका लिया है? सक्सेना, सिन्हा, शर्मा! अपने को जो रुचे! अपना नाम है! हमने तो शर्मा कर लिया। मैंने उनसे कहा, तुम्हें मालूम है शर्मा का मतलब क्या होता है? उन्होंने कहाः शर्मा का मतलब ब्राह्मण। मैंने कहाः वह तो ठीक है, शर्मा का अर्थ होता हैः महाब्राह्मण। उन्होंने कहाः महाब्राह्मण का क्या मतलब होता है? मैंने कहाः अब तुमको खोज-बीन करनी पड़ेगी। शर्मा उस ब्राह्मण को कहते थे वैदिक काल में जो वेद में वर्णित यज्ञों में पशुओं की बलि देता था। शरमन का अर्थ होता हैः काटना, गर्दन काटना। शर्मा का मतलब होता हैः गर्दन काटने वाला। मैंने कहाः भैया तुम सक्सेना ही अच्छे थे; सिन्हा भी ठीक थे; शर्मा क्यों हो गए? उन्होंने कहाः तो क्या बिगड़ा, बदल लेंगे। वे अब वर्मा हैं! ब्राह्मण हो नहीं सकते थे, इतना आसान नहीं था, तो महावीर के अनुयायी क्या करते? हिंसा गई। तो क्रोध गया। क्रोध करें तो हिंसा आ जाएगी। तो सारी ऊर्जा इकट्ठी हो गई लोभ पर। इसलिए जैन समाज अगर धनी हो गया तो आश्चर्यजनक नहीं है। स्वाभाविक परिणाम है। मगर धन हिंसा का ही एक रूप है। क्योंकि जब तक तुम चूसोगे नहीं तब तक धन इकट्ठा होगा कैसे? पानी छान कर पीओ, खून बिना छाने पी जाओ। खून को कोई छान कर पीता है! धन तो खून है। यह तुम अगर लोगों के चारों तरफ जीवन देखोगे तो तुम पहचान लोगे कि किस तरह मन चालबाजियां करता है। एक तरफ से हटाओ, दूसरे दरवाजे से घुस आता है।
करुनामय किरपा करहु, ...

इसलिए गुलाल कहते हैं कि उस परमात्मा से प्रार्थना करना कि हे करुणामय, कृपा कर!
... चरनन चित लावै।
एक ही क्रांति की संभावना है कि मेरा अहंकार तेरे चरणों में गिर जाए, मेरा मन तेरे चरणों में गिर जाए। मगर तेरी कृपा के बिना यह भी नहीं हो सकता। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं। तेरी अनुकंपा हो तो ही यह हो सकता है, नहीं तो मन बहुत चालबाज है, मुझे धोखा देता रहा जन्मों-जन्मों, आगे भी देता रहेगा।
सतसंगति सुख पायकै, निसुबासर गावै।।
इतनी ही कृपा कर कि मुझे सत्संग मिल जाए। ऐसे लोगों का साथ मिल जाए जो
मन के पार उठ गए हों। या कम से कम उठने का प्रयास कर रहे हों। ऐसे लोगों का साथ मिल जाए जो मन के साक्षी हो गए हों, या साक्षी होने की प्रक्रिया में संलग्न हों।
सतसंगति सुख पायकै, निसुबासर गावै।।
तो मैं फिर तेरे गीत गाऊं, दिन-रात गाऊं। अभी तो इस मन के ही जाल में उलझा रहता हूं, गीत गाने की फुरसत कहां! यह मन तो गालियां ही दिलवाता है।
गीत तो उठने नहीं देता। यह मन तो कांटे बोता है, फूल तो ऊगने ही नहीं देता।
अब कि बार यह अंध पर, कछु दया कीजै।
और कितने जन्म हो गए, इस अंधे पर अब दया करो!
जन गुलाल बिनती करै, अपनो कर लीजै।।
इतनी प्रार्थना कर सकता हूं--और तो करूं भी क्या! --कि अपना कर लो मुझे; मिटा लो अपने में; जैसे नदी सागर में खो जाए, ऐसे मुझे अपने में खो जाने दो।
तुम्हरी, मोरे साहब, क्या लाऊं सेवा।।
और मेरे पास कुछ नहीं है--यह मैं तुमसे कह दूं--कि तुम्हारी सेवा में
ला सकूं।
अस्थिर काहु न देखऊं, सब फिरत बहेवा।।
इस जगत में तो मैं किसी को भी थिर नहीं देखता, स्थिर नहीं देखता, सब बहे जा रहे हैं। एक अंधी दौड़ है, जिसमें दौड़े जा रहे हैं।
सुर नर मुनि दुखिया देखों, ...
आदमियों की तो बात छोड़ दो, देवता भी दुखी हैं, मुनि भी दुखी हैं, सब दुखी हैं। हिम्मत की बात कही!
सुर नर मुनि दुखिया देखों! तुम्हारे देवता भी सुखी नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। तुमने कहानियां तो पढ़ी होंगी पुराणों में कि इंद्र हमेशा ही घबड़ाए रहते हैं, उनका इंद्रासन डोलता रहता है। कोई करने लगा तपश्चर्या, उनका इंद्रासन डोला! उनको घबड़ाहट लगी रहती है कि इंद्रासन पर न चढ़ जाए। तो यहां तो भय और दुख--यह क्या इंद्रासन हुआ! और कितनी चालबाजियां और राजनीतियां देवताओं के लोक में चल रही हैं! सब एक-दूसरे की पत्ती काटने में लगे हैं। सबकी आकांक्षा है कि इंद्र बन जाएं, देवताओं के देवता बन जाएं। तो वहां जहां पद की दौड़ है, लिप्सा है, वहां सब उपद्रव होगा, सब तरह की बेईमानियां होंगी। और इंद्र ने हर तरह की बेईमानियां की हैं। कथाएं कहती हैं कि ऋषि-मुनि बैठते हैं ध्यान करने और इंद्र भेज देता है अप्सराओं को। यह भी कोई बात हुई! ये भी कोई भले आदमी के लक्षण हुए! कोई बेचारा ऋषि- मुनि ध्यान कर रहा है... और वह भी पुराने जमाने के ऋषि-मुनि, आजकल के नहीं! आजकल के ऋषि-मुनि की तो बात अलग।
एक मां अपने बेटे को समझा रही थी कि बेटे, ब्रह्ममुहूर्त में उठा कर! ऋषि-मुनि ब्रह्ममुहूर्त में उठते हैं। बेटा ने कहाः तुम बिल्कुल गलत कहती हो, मां, तुम्हें कुछ पता ही नहीं है! ऋषि-मुनि नहीं उठते ब्रह्ममुहूर्त में! ऋषिकपूर आठ बजे के पहले नहीं उठता। और दादामुनि अशोक कुमार दस बजे के पहले नहीं उठते हैं। तुम क्या खाक बातें कर रही हो! कौन से ऋषि-मुनि की बात कर रही हो।
अब तो गए ऋषि-मुनि, अब तो ऋषिकपूर और दादामुनि अशोक कुमार!
कोई ऋषि-मुनि ब्रह्ममुहूर्त में उठ आए, ध्यान करे बेचारा, नहाए-धोए ठंड में, योगासन करे और इंद्र को घबड़ाहट हो जाती है। भेज देता है स्वर्ग की

अप्सराओं को। स्वर्ग की अप्सराएं यानी स्वर्ग की वेश्याएं। यह भी खूब रही! देवता को किसी के ध्यान में सहयोग देना चाहिए कि विघ्न-बाधा खड़ी करनी चाहिए! तो फिर दानव क्या करते हैं और? अगर देवता ही यह कर रहे हैं तो फिर राक्षस और क्या करेंगे? राक्षसों के लिए तो कोई काम ही न बचा। फिर तो यही समझो कि राक्षसों को तो सहायता करनी पड़े मुनियों की, कि खबर कर दी पहले ही से कि भैया, सावधान, आज ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने मत जाना, आज ध्यान करने मत बैठना।
सूफियों में एक कहानी है।
एक फकीर सुबह-सुबह झपकी खा गया। रोज का नियम था उठ कर नमाज पढ़ने का, उस दिन सो गया। किसी ने उसको झकझोर कर उठा दिया। उठा तो उसने पूछा कि भाई, तुम कौन हो? तुमने मुझ पर बड़ी कृपा की! उसने कहाः मैं इबलीस हूं।... इबलीस है मुसलमानों में शैतान का नाम।... वह फकीर तो बहुत हैरान हो गया, उसने कहा, इबलीस! इबलीस का तो काम है लोगों के ध्यान में बाधा डालना। और मैं तो सो गया था, तुमने मुझे उठा कर ध्यान के लिए तैयार कर दिया, यह तुम्हारे ढंग कब से बदल गए! इबलीस ने कहाः पिछली बार तुम सो गए थे, तो मैं बहुत खुश हुआ था। लेकिन फिर जाग कर तुम इतने पछताए, इतने पछताए कि तुम्हारी हजार-हजार प्रार्थनाओं से भी तुम परमात्मा के इतने प्यारे नहीं हो सकते थे जितने पछतावे से हो गए। सो मैंने कहाः भैया, बेहतर है जगा दो! मरने दो, करने दो ध्यान! नहीं तो पीछे पछताएगा और परमात्मा का और प्यारा हो जाएगा।
मगर यहां इस देश के पुराणों में देवता बड़े बेचैन हैं, घबड़ाहट से भरे हैं, प्रतिस्पर्धा है, डर है कि ये मुनि देवता हो जाएंगे, तो इंद्रासन न छीन लें। और शायद इन मुनियों के भीतर भी इंद्रासन छीनने की आकांक्षा है। और इनको डांवाडोल करने का प्रयास चल रहा है। यह तो धर्म न हुआ। यह तो दिल्ली का पागलखाना हो गया। यह तो इंद्र न हुए, मोरारजी देसाई हो गए। कि चरणसिंह ने की साधना और दिया पटका एक! और अब चरणसिंह भी चारों खानों चित पड़े हैं--दोनों पड़े हैं!
सुर नर मुनि दुखिया देखों, सुखिया नहीं केवा।
किसी को यहां मैं सुखी नहीं देखता हूं, सब दुखी दिखाई पड़ रहे हैं।
डंक मारि जम लुटत है, लुटि करत कलेवा।।
और हरेक का कलेवा मृत्यु कर रही है। हरेक को मृत्यु खा जाती है।
अपने-अपने ख्याल में सुखिया सब कोई।
हालांकि अपने ख्याल में प्रत्येक सोचता है कि मैं सुखी हूं, लेकिन बस
वह ख्याल है! कल्पना है, वस्तुतः यथार्थ नहीं है। तुम भी सोचते हो कि तुम सुखी हो--नहीं तो अहंकार गिर जाए। अहंकार को सम्हाल कर रखना पड़ता है कि माना कि बहुत सुखी नहीं हूं, लेकिन औरों से तो ज्यादा सुखी हूं। इसलिए लोग दूसरों की निंदा करते में रस लेते हैं। निंदा का रस यही है। उससे पता चलता है कि दूसरे और भी भ्रष्ट, गर्हित, नारकीय, और भी दुख भोग रहे हैं, इनसे तो हम बेहतर। निंदा करने से दूसरों की बुराई का पता चलता है, अपनी भलाई उभर कर दिखाई पड़ने लगती है। जैसे अंधेरी रात में दीया भी खूब चमचमाता है। दिन में तो तारे भी छिप जाते हैं। तो अंधेरी रात खड़ी कर लो अपने चारों तरफ, सबकी निंदा करो, सबकी बुराई करो, सबको दिखाओ दुखी, तो उनकी अंधेरी रात में, अमावस में तुम्हारा छोटा-मोटा दीया भी हुआ, जुगनू भी हुई, तो भी टिमटिमाएगी।
अपने-अपने ख्याल में सुखिया सब कोई।
लेकिन सच्चाई नहीं है यह, बस एक कल्पना-जाल है।
मूल मंत्र नहिं जानहीं, दुखिया मैं रोई।।
और गुलाल कहते हैं कि मैं इन सब तथाकथित सुखी लोगों को देख कर रोता हूं, क्योंकि इनको मूल-मंत्र ही पता नहीं, इन्हें साक्षीभाव पता नहीं, जहां से सुख का सागर उमड़ता है--और ये अपने को भ्रांतियों में भटकाए हुए हैं।
अब की बार प्रभु बीनती सुनिए दे काना।
हे प्रभु, हे परमात्मा, इस बार मेरी बिनती सुन लो!
जन गुलाल बड़ दुखिया, दीजै भक्ती-दाना।।

मैं नहीं कहता कि मैं सुखी हूं। सुखी तो यहां प्रत्येक अपने को कह रहा है। मैं तो साफ कहे देता हूं, खोल कर रखे देता हूं अपने को नग्न कि मैं दुखी हूं। तुम मुझे भक्ति का दान दो! और कुछ नहीं मांगता, और कोई धन नहीं मांगता--और धन है भी नहीं जगत में। भक्ति! भक्ति सबसे बड़ा धन है। क्योंकि जिसको भक्ति मिली, उसे भगवान मिला। भक्ति द्वार है भगवान का। भक्ति मंदिर है भगवान का।
कहते हैं, सिर्फ भक्ति दे दो। मैं प्रेम कर सकूं, बेशर्त प्रेम कर सकूं तुम्हें, तुम्हारे अस्तित्व को; अपने को बिल्कुल मिटा सकूं, तिरोहित कर सकूं, विसर्जित कर सकूं, बिल्कुल न हो जाऊं, शून्य हो जाऊं, ऐसी मुझ पर अनुकंपा करो, ऐसी मुझ पर कृपा करो!
यह प्रार्थना गुलाल की सुनी गई। यह प्रार्थना एक दिन पूरी भी हुई। जिस दिन पूरी हुई, उस दिन गुलाल कह सकेः झरत दसहुं दिन मोती! तुम भी इस प्रार्थना में डूबो, तुम्हारी भी यह पूरी होगी। प्रत्येक व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है कि परमात्मा को पा ले। अगर हम न पाएं, तो हमारे अतिरिक्त और कोई जिम्मेदार नहीं है।

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
बारहवां प्रवचन

मैं तो यहां एक प्रेम का मंदिर बना रहा हूं

पहला प्रश्नः ओशो, आपके पास आकर मुझे जो आनंद मिला, वह मुझे आज से पहले कभी न मिला था। परंतु मैं इतनी कृतघ्न हूं कि बार-बार आपको छोड़ कर चले जाने का कुविचार मन में उठता है। फिर भी न जाने ऐसी कैसी अनदेखी डोर है जो मुझे बांधे हुए है। क्या मैं माफी के काबिल हूं?

रेखा! आनंद को झेलना आसान नहीं है। दुख को झेलना बहुत आसान है। दुख को झेलना इसलिए आसान है कि दुख के हम आदी हैं--सदियों-सदियों से, जन्मों- जन्मों से। दुख हमारा परिचित है, संगी-साथी है। दुख के साथ हमारी सगाई हुई है, बार-बार हुई है। आनंद अपरिचित है। अपरिचित से भय लगता है। पुलक भी उठती है, भय भी उठता है। और जितना बड़ा आनंद हो उतना ही भयाक्रांत करता है। सबसे बड़ा भय तो यह है कि पता नहीं कहां ले जाए!
दुख के रास्ते तो जाने-माने हैं। जाने-माने हैं, इसलिए हम निश्चिंत भाव से दुख में जीते हैं। आनंद के रास्ते अनजाने हैं। आनंद ले जाता है अज्ञात में। अज्ञात में ही नहीं, अंततः अज्ञेय में। सो प्राण कंपते हैं। जैसे कोई छोटी सी नौका को लेकर महासागर में उतरे और प्राण कंपें, ऐसे ही प्राण कंपते हैं। नौका है छोटी, सागर है विराट; दूसरा किनारा कहीं दिखाई पड़ता नहीं और यह किनारा छूटा जाता है... ! माना कि यह किनारा दुख से भरा है, मगर फिर भी किनारा तो किनारा है। दुख ही सही, कंकड़-पत्थर ही सही, राख ही राख सही, मगर किनारा फिर भी किनारा है। और हीरे-मोती सही सागर में, मगर जीवन को खतरा है। डूबने की तैयारी किसकी है!
दुख कभी डुबाता नहीं। कितना ही दुख हो, तुम दुख से अलग ही बने रहते हो, दुख से भिन्न ही बने रहते हो। दुख और तुम्हारे बीच फासला बना ही रहता है, बना ही रहता है। क्यों? क्योंकि दुख विजातीय है। और आनंद तुम्हारा स्वभाव है। दुख पर-भाव है, दुर्घटना है; इसलिए कभी तुम उसके साथ एकरूप नहीं हो सकते। उतनी दूरी तुम्हें निश्चिंत रखती है। दुख तुम्हें डुबा नहीं पाता। टूट पड़े पहाड़ की तरह, तो भी तुम अछूते रहते हो। रोओगे, परेशान होओगे, मगर दुख तुम्हें मिटाएगा नहीं। और आनंद तुम्हें मिटा डालेगा। तुमने जैसा अपने को जाना है, तुमने जो अहंकार अपने को माना है, तुमने जो तादात्म्य देह और मन के साथ किया है--सब तोड़ देगा। तुम्हारी सब धारणाएं छिन्न-भिन्न हो जाएंगी। तुम वही नहीं रह सकते जो आनंद को जानने के पहले थे। सो प्राण कंपते हैं।
यह बिल्कुल स्वाभाविक है। रेखा, इसमें माफी मांगने की बात ही नहीं।
अगर आनंद के साथ-साथ भागने का भाव पैदा न हो, तो आनंद झूठा है। आनंद के साथ-साथ भागने का भाव पैदा हो, तो आनंद सच्चा है। तुझे अड़चन हो रही है, क्योंकि यह बात तर्कानुकूल नहीं मालूम होती। जब आनंद मिल रहा है, तो तर्क कहता हैः फिर भागने की बात क्यों? अरे, आनंद की ही तो हम जीवन भर तलाश करते थे और आज जब मिल रहा है, तो यहां से दूर जाने का बार-बार विचार क्यों उठता है? तो तू इसको कुविचार कह रही है। तू इसकी निंदा कर रही है। तेरी बात भी मेरी समझ में आती है। तू एक दुविधा में पड़ी है। क्योंकि साधारणतः हम सोचते हैं... मगर साधारणतः हम जो सोचते हैं उसका मूल्य ही क्या है? वह अक्सर ही गलत होता है। वह शायद ही सही होता है। वह सही हो नहीं सकता। क्योंकि जो हमारी साधारण सोच-विचार की धारा है, उसका ध्यान से जन्म नहीं होता; वह तो केवल उथली है, ऊपर-ऊपर है, तर्क की है, बौद्धिक है, आत्मिक नहीं है; आत्मिक तो दूर, हार्दिक भी नहीं है। तो तर्क कहता है कि यह बात समझ में नहीं आती, यह तो पहेली हो गई। तर्क कहता है जहां आनंद हो, वहां से तो हटना ही नहीं चाहिए। तो या तो आनंद नहीं है, इसलिए भागने का मन हो रहा है। मगर आनंद तुझे प्रतीत हो रहा है, उसे झुठलाया भी नहीं जा सकता! तो फिर सवाल उठता है, कोई अदृश्य डोर तुझे बांधे हुए भी लगती है, तो फिर यह विचार क्यों उठता है बार-बार? कहां से उठता है? तो तू चाहती है कि कोई सुलझाव मिल जाए इस दुविधा

में। तू शायद सोचती होगी मैं कहूंगा कि तेरे पिछले जन्मों के पापकर्मो के कारण यह कुविचार उठता है। उसे सांत्वना मिल सकेगी। उससे दुविधा कुछ समय के लिए हल हो जाएगी। मगर वह उत्तर झूठ है
सच्चा उत्तर तो यही है कि आ नंद मिलेगा, तो भागने का भाव छाया की तरह उसके पीछे आता है। और जितना बड़ा होगा आनंद, उतने ही भागने की गहन होगी प्रवृत्ति। हालांकि भाग भी न सकोगी। तब और मुश्किल पर मुश्किल होती चली जाती है। भागना असंभव है। भाग भी जाओ तो लौट आना पड़ेगा। क्योंकि आनंद का स्वाद लगा, अब इस जीवन में कहीं भी रस न आएगा। सब जगह विरसता मालूम होगी। यह गीत तुम्हारे कान में पड़ गया, अब कोई गीत तुम्हें लुभाएगा नहीं। ये मोती तुम पर बरसे झरत दसहुं दिस मोती... अब कंकड़-पत्थरों में कैसे अपने को उलझाओगे? जब तक नहीं जाना था तब तक एक बात थी, तब तक कंकड़-पत्थर ही मोती थे, तो उनको इकट्ठा करते आसानी थी। अब मोती पहचाने, मोतियों की झलक मिली, अब कंकड़-पत्थरों में मन उलझाया नहीं जा सकता। जीवन का एक आधारभूत नियम है कि ज्ञान की किसी भी सीढ़ी पर चढ़ जाओ, उससे वापस नहीं उतरा जा सकता।
हमारी भाषा में एक शब्द हैः योगभ्रष्ट। वह शब्द गलत है। योग हो तो भ्रष्ट होना असंभव है। और अगर भ्रष्ट होना हो जाए, तो जो था, वह योग नहीं था।
योग का अर्थ होता हैः मिलन, सम्मिलन। परमात्मा के आलिंगन में जो पड़ गया हो, परमात्मा का स्वाद जिसने चख लिया हो, उसका पतन हो जाए, वह भ्रष्ट हो जाए, वह गिर जाए, यह असंभव! यह हो ही नहीं सकता। यह कभी हुआ ही नहीं। हां, योग के नाम से कुछ और कर रहा होगा, कुछ का कुछ कर रहा होगा--योग के नाम से प्राणायाम कर रहा होगा, व्यायाम कर रहा होगा; कुछ उल्टा-सीधा कर रहा होगा; तो भ्रष्ट हो सकता है। लेकिन अगर योग हुआ हो--योग अर्थात मिलन--अगर परमात्मा के साथ जरा सा भी संयोग हुआ हो... संयोग में भी वही शब्द हैः योग... अगर जरा सी भी एक क्षण को भी हमारी परिधि और उसकी परिधि एक-दूसरे में लीन हो गई हो; एक क्षण को ही सही, हम उसमें खो गए हों और वह हम में खो गया हो, तो फिर गिरने का कोई उपाय नहीं। तब गिरना असंभव है। लेकिन तुम्हारा योग भी योग कहां! योग के नाम से कूड़ा-करकट चल रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन की नई-नई शादी हुई। लेकिन शादी के दूसरे दिन ही उसकी बीबी गुलाबो कहने लगीः "मैं अपनी मां के यहां जा रही हूं। " शादी के दूसरे दिन यह होता ही है। पहले दिन ही क्यों नहीं होता, यह आश्चर्य की बात है! इतनी देर भी क्यों लगती है, यह भी सूझ-बूझ के परे है! इस जगत में मिलना क्या है, झगड़ना ही है। पश्चिम के मनोवैज्ञानिक तो पति-पत्नी को अब मित्र नहीं मानते; शत्रु भी नहीं कह सकते, इसलिए एक नया शब्द उन्होंने गढ़ा हैः इंटिमेट एनिमी, अंतरंग शत्रु। अब अंतरंग शत्रु का क्या मतलब होता है? ऐसे देखने में बड़े अंतरंग, बड़े अपने--और चौबीस घंटे एक-दूसरे की गर्दन काट रहे हैं।
बहुत नसरुद्दीन ने समझायाः "शोभा नहीं देता यह। अभी कल ही शादी हुई और
आज तू चली। अरे, चार दिन बाद चली जाना!" लेकिन गुलाबो न मानी सो न मानी। उसने कहाः "मैं तो जा रही हूं। हां, एक बात ख्याल रखना कि पांच बजकर पांच मिनट पर रेडियो से खाना बनाने की तरकीबें नस्र होती हैं, सो तुम लिख लेना। जब मैं वापस आऊंगी तो खाना बना दूंगी। "
सो मुल्ला कागज-पेंसिल लेकर रेडियो के सामने बैठ गया। रेडियो उसका अपना तो था नहीं, दहेज में मिला था। और दहेज में जैसी चीजें मिलती हैं सो तुम जानते ही हो! इसलिए एक-एक साथ दो-दो स्टेशन बोल रहे थे। एक जगह से खाना बनाने की तरकीबें और दूसरी जगह से वर्जिश के तरीके आ रहे थे। उसने पूरी लिस्ट बनाई। जब गुलाबो वापस आई तो उसने मुल्ला से लिस्ट पूछी। मुल्ला ने लिस्ट पढ़ कर सुनाई।
लिखा था--
एक प्याला लीजिए, फिर सीना फुलाइए। उसमें दो अंडे फोड़कर डालिए, फिर पेट अंदर कर लीजिए। इसके बाद स्टोव जलाइए, फिर सिर के बल खड़े हो जाइए। स्टोव में और हवा भरिए, आंच को बढ़ाइए, फिर डंड-बैठक लगाइए। आंच को और तेज करिए, अब उल्टे लेट जाइए। उसके बाद पतेली में थोड़ा-सा नमक, काली मिर्च और

असली घी डालने के बाद सीधे खड़े हो जाइए। सीधे खड़े होने से कुंडलिनी जाग्रत होती है। अब यही अमल बार-बार करिए। अब अंडा करीबन तैयार हो चुका है। अब उछलिए-कूदिए। अंडा खाने से बहुत लजीज लगेगा। योग-शास्त्र का निचोड़ यही है।
योग से कोई भ्रष्ट होता है! मगर ऐसा योग हो... ! पहले तो पहुंचना ही मुश्किल है। इसलिए प्रक्रियाएं साधना, कि इधर सीना फुलाओ, इधर स्टोव में हवा भरो! मगर जितनी उलटी-सीधी बातें हों उतनी लोगों को रुचती हैं। जितनी असंभव मालूम पड़ें उतनी अहंकार को तृप्तिदाई होती हैं।
मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूंः परमात्मा में बहुत कम लोग उत्सुक हैं, क्योंकि परमात्मा को पाना सरलतम घटना है--तुम्हारा स्वभाव है! --सिर के बल खड़े होने को बहुत लोग उत्सुक हैं, क्योंकि वह तुम्हारा स्वभाव नहीं है। उलटा-सीधा करने में अहंकार को तृप्ति मिलती है कि देखो, मैं कर सकता हूं, कोई और तो करके दिखाए!
क्या-क्या नहीं योग के नाम पर होता रहा है!
पाल ब्रंटन ने भारत के योगियों की खोज की। उसने ऐसे-ऐसे उल्लेख लिखे हैं--अभी इस सदी में ही; वर्षो तक मेहनत की उसने; गांव-गांव, पहाड़ी-पहाड़ी, गुफा-गुफा खोज में लगा रहा--उसने लिखा है, एक जगह उसे एक योगी मिला, जो अपनी दोनों आंखों को निकाल कर लटका लेता था, और फिर वापिस उनको लगा लेता था। उसकी बड़ी ख्याति थी!
आंखों को निकालकर लटकाया जा सकता है। कठिन प्रक्रिया है, घातक भी, मूर्खतापूर्ण भी--क्योंकि इससे कुछ हल नहीं होगा। आंखें निकाल कर भी लटकाओगे तो कोई अंतर्दृष्टि नहीं खुल जाएगी। सिर्प ये आंखें और खराब हो जाएंगी। लेकिन उसकी ख्याति थी। ख्याति यही थी कि यह काम कोई दूसरा नहीं कर सकता। उसने ऐसे लोगों को खोजा जो जहर पी लेते थे, जो सांप से अपनी जीभ पर कटा लेते थे--ऐसे सांपों से जिनका काटा हुआ बचता ही नहीं; इधर काटा कि उधर मरा। मगर उनकी बड़ी ख्याति थी।
मगर सांप को कटाने से और ईश्वर के पाने का क्या संबंधछहै? या कि तुम सोचते हो कोई संबंध है! सांप को कटाने से इतना ही सिद्ध होता है कि तुमने जहर पीने का लंबा अयास कर लिया। इसके अयास की प्रक्रिया होती है। थोड़ी- थोड़ी मात्रा में लोग जहर पीना शुरू करते हैं, जितनी मात्रा में पचाया जा सके। फिर रोज-रोज मात्रा बढ़ाए जाते हैं, बढ़ाए जाते हैं, बढ़ाए जाते हैं। फिर ऐसे सांपों से कटवाना शुरू करते हैं कि जिनका काटा हुआ मरता नहीं, बेहोश होता है सिर्प। फिर धीरे-धीरे और खतरनाक सांप। धीरे-धीरे उनका पूरा शरीर विषाक्त हो जाता है इतना विषाक्त हो जाना है कि सांप काटे तो सांप मर जाए। तुमने विष-कन्याओं की कहानियां सुनी होंगी कि पुराने जमाने में राजा- महाराजा विष-कन्याएं रखते थे। उन्हें बचपन से ही जहर पिला कर बड़ा किया जाता था। यह ऐतिहासिक तथ्य है। वे इतनी जहरीली हो जाती थीं--सुंदर लड़कियां, उनके रक्त में इतना जहर मिल जाता था कि रक्त बचता ही नहीं था, जहर ही जहर जैसे उनके रक्त में घूमता था। उनका सौंदर्य ऐसा होता था कि कोई भी उनसे मोहित हो जाए। वे जिसको चूम लें, वह आदमी चुंबन से ही मर जाता था। इन विष-कन्याओं को भेज देते थे अपने दुश्मन राजाओं के पास। स्वभावतः उनको देख कर कोई भी आकर्षित हो जाए--और राजाओं का तो धंधा ही कुछ और नहीं था, स्त्रियों को बढ़ाए जाओ, हरम को बड़ा किए जाओ। तो जो सुंदर स्त्री दिखाई पड़ जाए, वह हरम में आजाए। मगर यह स्त्री जीवन का अंत कर देती थी। इससे एक दफे चुंबन कर लिया कि मारे गए। फिर बचना संभव नहीं।
तो यह हो सकता है लंबे अयास के बाद सांप भी तुम्हें काटे, भयंकर सांप
भी तुम्हें काटे, तो भी तुम्हें जहर न चढ़े। लेकिन इससे परमात्मोपलब्धि का क्या संबंध है! यह तो सब मदारीगिरी है।
इस तरह के काम करने वाले लोग भ्रष्ट हो सकते हैं। मगर पहली बात जान लेना कि वे योगी थे ही नहीं। इसलिए योगभ्रष्ट शब्द बिल्कुल गलत है। हां, कोई बुद्ध कभी भ्रष्ट नहीं हुआ है, कोई जिन कभी भ्रष्ट नहीं हुआ है। हो नहीं सकता। परमात्मा को पा लेने के बाद गिरने का उपाय नहीं है। तुम चाहो तो भी उपाय नहीं है।

रेखा! जो तुझे घट रहा है, वह बिल्कुल स्वाभाविक है। माफी तो मांग ही मत! अगर आधा हिस्सा, जिसके लिए तू चिंतित है, जिसको तू कुविचार कह रही है, न घट रहा होता तो माफी मांगने की बात थी। वह घट रहा है तो बिल्कुल नियम के अनुकूल घट रहा है। वह सबूत है कि आनंद उपलब्ध हो रहा है। और मैं तुझे जानता हूं; तूने जीवन में सिवाय दुख के जाना क्या है? लेकिन चूंकि जीवन भर का अयास है दुख का, तो दुख छोड़ा नहीं जाता। लौट-लौट कर मन होता है अपने पुराने घर में समा जाने का। और दुख में कई मजे थे।
एक मजा तो यह था कि सबकी सहानुभूति मिले, सांत्वना मिले। लोग सहानुभूति के दीवाने हैं। क्योंकि प्रेम तो मिलता नहीं इस दुनिया में। प्रेम है असली सिक्का। लोग चाहते तो हैं प्रेम, मगर प्रेम तो मिलता नहीं, तो ठीक है, चलो झूठा सिक्का सही। सहानुभूति झूठा सिक्का है। सहानुभूति कोई सदगुण नहीं है। सहानुभूति नकली बात है, मिथ्या है। लेकिन जब प्रेम न मिले तो लोग सहानुभूति की आकांक्षा करने लगते हैं।
पति अगर पत्नी को प्रेम न करता हो तो पत्नी बीमार रहने लगेगी। क्योंकि जब वह बीमार रहती है तो पति आकर बैठता है, सिर पर हाथ रखता है--बे- मन से ही सही, झल्लाया है भीतर, कि थका-मांदा दप 132 तर से लौटा हूं, सोचा था कि चल कर बैठ कर टेलीविजन देखूंगा, कि रेडियो सुनूंगा, कि अखबार पढूंगा, कि आराम से बिस्तर पर लेटूंगा, मगर वह भी भाग्य में नहीं है। इधर पत्नी पहले से ही बिस्तर पर लेटी हुई है। पत्नी स्वस्थ हो तो कोई चिंता की जरूरत नहीं, लेकिन पत्नी अगर बीमार हो तो पति को कम से कम थोड़ी आदमियत तो दिखानी पड़ती है। तो सिर पर हाथ रखेगा, कुशल समाचार पूछेगा, ... और पत्नी की कुल आकांक्षा थी प्रेम की!
अगर दुनिया में प्रेम हो तो मेरे निरीक्षण से सत्तर प्रतिशत बीमारियां समाप्त हो जाएं। कम से कम सत्तर प्रतिशत बीमारियां समाप्त हो जाएं। लेकिन समाज प्रेम के खिलाफ है, राज्य प्रेम के खिलाफ है... प्रेम तो पाप है। हम तो प्रेम को जड़ से काट देते हैं। हम चाहते नहीं कि एक युवक और युवती मे प्रेम हो। हम चाहते हैं विवाह हो। विवाह का मतलब दूसरे निर्णय लें। मां-बाप निर्णय लें। समझदार लोग निर्णय लें। जैसे कि उम्र बढ़ जाने से कोई समझ आजाती है! काश, समझ इतनी सस्ती होती! जैसे कि बूढ़े होने से कोई समझ आजाती है! काश, बुढ़ापा और समझदारी पर्यायवाची होते तो दुनिया में बुद्ध ही बुद्ध हो जाते--बूढ़े होते-होते सभी बुद्ध हो जाते!
बूढ़े उतने ही बुद्धू रहते हैं जितने पहले थे। थोड़े ज्यादा ही हो जाते हैं। क्योंकि उम्र का अनुभव, बुद्धूपन का लंबा विस्तार और सघन हो जाता है। ये दूसरे निर्णय करेंगे। और स्वभावतः निर्णय का मतलब है कि प्रेम को जगह नहीं रहेगी। और हर चीज को जगह रहेगी। ये सोचेंगे कि धन-दौलत कितनी मिलेगी, दहेज कितना मिलेगा, परिवार की प्रतिष्ठा कैसी है, घर कुलीन है कि नहीं, घर का इतिहास कैसा है--हजार बातें सोचेंगे सिर्प एक बात नहीं सोचेंगे कि युवक और युवती में प्रेम भी है या नहीं! वह तो बात ही सोचने की नहीं है! और सब बातें विचार करने की। ऐसे सदियों-सदियों से हम विवाह कर रहे हैं, प्रेम को जड़ से काट देते हैं। फिर पत्नी भी आकांक्षा से भरी है प्रेम की, वह भी चाहती है प्रेम मिले, प्रेम मिलता नहीं--सहानुभूति मिल सकती है ज्यादा-से- ज्यादा। सहानुभूति भी तभी मिल सकती है जब वह बीमार हो, रुग्ण हो, परेशान हो। और पति भी सहानुभूति से ही अपने को तृप्त कर सकता है। तो जहां सहानुभूति मिल जाती है, उन्हीं को वह मित्र समझ लेता है। जो उसके दुख में दो आंसू गिराते हैं, उन्हीं को मित्र समझ लेता है। तुम किसको मित्र कहते हो? जो तुमसे सहानुभूति प्रकट करता है, जो तुम्हें सांत्वना देता है। रेखा, तू भूल ही गई है कि प्रेम क्या है! सभी को भुला दिया गया है। और
जब दुख छूटने लगता है तो सहानुभूति छूटने लगती है। यहां तो रोज मेरे पास शिकायतें आती हैं कि आपके संन्यासी सहानुभूतिपूर्ण क्यों नहीं हैं? वे किसी के प्रति कोई सहानुभूति नहीं दिखाते। तुम अगर कीचड़ में भी पड़े हो तो वे चुपचाप तुम्हारे पास से गुजर जाते हैं। कि तुम्हारी मौज, अगर कीचड़ में तुम्हें मजा आ रहा है तो यह सज्जनोचित नहीं है कि इसमें बाधा डाली जाए। तुम ग 167े में पड़े हो और वे हाथ भी नहीं बढ़ाते निकालने को। क्योंकि वे

भलीभांति जानते हैं, तुम ग 167े में जान कर पड़े हो। तुम पड़े ही इसलिए हो कि कोई हाथ बढ़ाए। और जब तक लोग हाथ बढ़ाते रहेंगे तब तक तुम ग 167ों में गिरते रहोगे। जब लोग हाथ बढ़ाना बंद कर देंगे, तभी तुम ग 167ों में गिरना बंद करोगे।
तो लोगों को लगता है कि मेरे संन्यासी जैसे हृदयहीन हैं, संवेदनशून्य हैं, कठोर हैं, किसी के प्रति सहानुभूति नहीं दिखलाते। तुम अगर रो भी रहे हो, संन्यासी तुम्हारे पास से निकलते जाएंगे। कोई यह भी नहीं पूछेगा कि आप क्यों रो रहे हैं? आपकी मर्जी! दिल खोलकर रोइए! कोई रोकेगा नहीं। रोकना उचित भी नहीं है। आंसू बह जाने दो। आंसू बह जाएंगे तो हलके हो जाओगे। मगर अगर तुम आंसू इसलिए गिरा रहे थे कि कोई तुम्हारे कंधे पर हाथ रखे, कोई तुम्हारे सिर पर हाथ रखे, कोई पुचकारे, तो यह मेरे संन्यासी नहीं कर सकते! क्योंकि उसका अर्थ हुआ कि वह तुम्हारे दुखी जीवन में सहयोगी हो रहे हैं और तुम्हें दुखी रखने का उपाय कर रहे हैं। प्रेम तो दे सकते हैं वे, लेकिन सहानुभूति नहीं।
मगर प्रेम पाने का ढंग और होता है, सहानुभूति पाने का ढंग और होता है। सहानुभूति पाने का ढंग होता हैः रुग्ण होना और प्रेम पाने का ढंग होता है स्वस्थ होना। प्रेम पाने का ढंग होता हैः नाचो, गाओ, उल्लसित होओ; तो तुम्हें प्रेम मिलेगा। और सहानुभूति पानी है तो दुखी होओ, रोओ, अपंग हो जाओ, कुरूप हो जाओ, लंगड़े हो जाओ, लूले हो जाओ। तुम देखते हो रास्तों पर भिखमंगे बैठे हुए हैं! उनमें सभी लंगड़े नहीं है; न सभी लूले हैं, न सभी अंधे हैं।
एक दिन एक आदमी ने एक पुल के पास बैठे हुए अंधे भिखारी को अठन्नी दी।
उस अंधे ने अठन्नी को देखा और कहा कि नकली है। उस आदमी ने कहा, हद हो गई! मैं चला-चला कर हैरान हो गया, कहीं नहीं चली जब तो तुझे दी। मगर यह सोच कर दी कि तू अंधा है। तू कैसे समझा कि नकली है? उसने कहा कि मैं अंधा नहीं हूं। यहां जो भिखारी रोज बैठता है, वह अंधा है। वह आज सिनेमा देखने गया है। मैं तो गूंगा हूं, जो पुल के उस तरफ रोज बैठता है। आज यह जगह खाली थी, इसलिए यहां बैठ गया हूं।
ऐसे गूंगे हैं जो बोल रहे हैं! ऐसे अंधे हैं सिनेमा देखने गए हैं!
पैरों पर पट्टियां बांधे हुए हैं, पैरों से दुर्गंध उठ आई है, पैरों
को सड़ाया हुआ दिखला रहे हैं--क्योंकि तुम्हारी सहानुभूति पानी है। अगर कोई स्वस्थ आदमी आकर खड़ा हो जाता और कहता कि दो पैसे दे दो, तो तुम फौरन नाराज हो जाते, कि भले-चंगे हो, क्या जरूरत तुम्हें दो पैसे की? कुछ काम करो! स्वास्थ्य का कोई सम्मान नहीं है तुम्हारे मन में। तुम प्रेम से दे ही नहीं सकते। तुम्हें तो मजबूर किया जाए--यही आदमी लंगड़ा होकर आए, अंधा होकर आए, तो तुम बेचैनी में पड़ जाते हो कि अब न दो तो जरा अच्छा नहीं लगता, अपराध-भाव पैदा होता है कि अरे, अंधे को लौटा दिया! बेचारा अंधा! चलो, दो पैसे दे ही दो, छुटकारा करो! तुम दो पैसे इसको नहीं दे रहे हो, अपने अपराध-भाव से बचने के लिए दे रहे हो।
वह जो पति आकर पत्नी के सिर पर हाथ रखे है, अपराध-भाव से बचने के लिए रखे हुए है।
रेखा, दुख में हमारे बड़े न्यस्त स्वार्थ हैं। इसलिए दुख छूटते-छूटते
ही छूटता है। समझपूर्वक, जागरूकता रखी, तो ही छूट पाएगा। और अब संभव है जागरूकता, क्योंकि आनंद की तुझे पहली झलक मिलनी शुरू हुई है।
मैं तो यहां एक प्रेम का मंदिर बना रहा हूं। यहां सहानुभूति की गुंजाइश नहीं है। यहां लूले-लंगड़े, अंधे भिखमंगों को पैदा करने का उपाय नहीं किया जा रहा है। और पृथ्वी लूले-लंगड़े-अंधों से भरी हुई है।
मैं ऐसे घरों में ठहरा हूं... वर्षो तक मैं यात्रा कर रहा था तो सब तरह
के घरों में ठहरा। शास्त्रों में जो नहीं मिला, वह घरों में ठहरने से मिला।... पत्नी मुझसे बैठी भली-चंगी बात कर रही है; एकदम प्रसन्न, सब ठीक; और पति ने घंटी बजाई, बस वह लेट गई बिस्तर पर। मैंने पूछाः क्या हो गया तुझे? मेरे सिर में दर्द हो रहा है।

पति का आगमन और सिर में दर्द, एकदम! और मैं यह भी नहीं कहता हूं कि वह झूठ कह रही है। यह भी मैं नहीं कहूंगा। मैं यह नहीं कह सकता कि वह कल्पना कर रही है। इतने बार किया है यह दर्द कि अब यह कल्पना नहीं रहा है, अब यह वास्तविक हो गया है। एक घंटी बजी कि यह दर्द पैदा हुआ! ऐसा नहीं है कि यह दर्द नहीं हो रहा है अब, यह हो ही रहा है! निरंतर अयास का यह परिणाम है। पावलफ ने, रूस के एक बड़े मनोवैज्ञानिक ने इसके लिए सिद्धांत ही खोजा-- कंडीशंड रिप 132 लेक्स। वह अपने कुत्ते को रोटी देता है। रोटी दिखाता है तो कुत्ते के मुंह से लार टपकती है। साथ में घंटी बजाता है। अब घंटी बजाने से कुत्ते के मुंह से लार नहीं टपकती; घंटी से और लार टपकने का क्या संबंध! घंटी की आवाज में कोई स्वाद होता है! लेकिन रोटी देता है और घंटी बजाता है, तो घंटी और रोटी दोनों धीरे-धीरे जुड़ जाते हैं, संयुक्त हो जाते हैं। उनका एक साहचर्य हो जाता है, ऐसोसिएशन हो जाता है। फिर पंद्रह दिन बाद सिर्प घंटी बजाता है और कुत्ते के मुंह से लार टपकने लगती है। अब कुत्ता घंटी बजने से तत्क्षण रोटी की सोचता है। अब घंटी उसके लिए रोटी का पर्यायवाची हो गई।
हमारी जिंदगी करीब-करीब ऐसे ही साहचर्यो से भरी है। वह जो पति की घंटी बजी न, स्त्री को सिरदर्द हुआ। पावलफ को इतनी खोजने की जरूरत नहीं थी। उसने बेचारे ने कोई तीस साल के बाद खोजा। यह मैं दो-चार घरों में ठहर कर समझ गया। उसने कुत्ते पाल रखे थे। कोई पांच सौ कुत्ते पाल रखे थे। वह कुत्तों पर प्रयोग करता रहा। जिंदगी कुत्तों में ही बिताई उसने। इसके लिए इत्ती कोई जरूरत नहीं थी, यह तो जरा आदमी को गौर से देखो और तुम पाओगे वह आदमी में ही मिल जाएगा सिद्धांत।
तुम भी जानते हो कि नींबू का कोई नाम ले दे तो तुम्हारे मुंह में पानी आजाता है--इसके लिए कोई पावलफ को खोजने की जरूरत है! अब नींबू शब्द में कोई स्वाद तो नहीं है, मगर साहचर्य है। नींबू शब्द कहा नहीं कि बस, लार बहनी शुरू हई! मगर यह बहेगी सिर्प उनको जो नींबू शब्द का अर्थ समझते हैं। अब यहां इटालियन बैठे हैं, 179ोंच बैठे हैं, जर्मन बैठे हैं, उनको कुछ नहीं होगा। हालांकि यही शब्द नींबू वे भी सुन रहे हैं। मगर कोई लार इत्यादि नहीं बह रही है। क्योंकि यह साहचर्य उनको नहीं हुआ।
तो निश्चित ही उन स्त्रियों को सिरदर्द हो जाता था। पति को देखकर और स्त्री को सिरदर्द न हो तो समझो कि पतिभक्त नहीं है, पतिव्रता नहीं है। इसका मन कहीं और लगा है। पति को देखकर सिरदर्द होने लगे तो समझो कि पतिव्रता है; अभी भी पति से कुछ संबंध है। अरे, सात फेरे पड़े हैं और सिरदर्द भी न हो तो सब मंतर-तंतर जो पढ़े गए, बेकार गए!
एक बूढ़े ने विवाह किया बुढ़ापे में। किया भी एक बुढ़िया से। और तो कोई उससे राजी भी नहीं था करने को। भारत में तो यह हो नहीं सकता। यहां तो जवान तक झिझकते हैं विवाह करने से। चारों तरफ विवाह की जो दशा देखते हैं उससे घबड़ाहट होती है। यह अमरीका की कहानी होगी। यहां तो हालत बड़ी खराब है।... मैं विश्वविद्यालय से आया तो मुझसे पूछा गया कि विवाह? मेरे पिता के
एक मित्र थे, वकील थे, उन्होंने पूछताछ की मुझसे। वकील थे तो उन्होंने कहाः मैं समझाऊंगा-बुझाऊंगा। मैंने उनसे कहाः विवाह! तो इस पर हम दोनों विवाद कर लें। अगर मैं जीत जाऊं तो विवाह फिर तुम्हें अपना छोड़ना पड़े, तलाक लेना पड़े पत्नी से। तुम जीत जाओ, मैं विवाह करने को राजी हूं। उन्होंने यह नहीं सोचा था। वह तो सिर्प मुझे समझाने आए थे। मैंने कहा कि एकतरफा नहीं हो सकता सौदा। और यह विवाद एकांत में नहीं होगा। पूरे गांव को खबर की जाएगी, एक न्यायाधीश को बिठाया जाएगा, अगर तुमने सिद्ध कर दिया कि विवाह अनिवार्य है, शुभ है, उपादेय है, तो मैं विवाह करूंगा। और अगर मैंने सिद्ध कर दिया कि उपादेय नहीं है, अशुभ है, घातक है, तो तुम्हें तलाक लेना पड़ेगा। उस दिन से वे जो नदारद हुए तो दिखाई ही न पड़े! मैं उनके घर जाऊं तो उनकी पत्नी कहे कि वे बाहर गए हुए हैं!
जब कई दफा मैं गया तो उनकी पत्नी ने कहाः क्यों उनके पीछे पड़े हुए हो? क्योंकि उन्होंने बताया पत्नी को कि यह आदमी तो खतरनाक है। मैंने तो सिर्प समझाने के लिए कि भई, युवक है अभी, समझा दो, अब यह मेरे पीछे पड़ गया

है। यह कहता है कि विवाद करवाएंगे। और समझ लो कि मैं जीत गया--जिसकी संभावना कम है, क्योंकि यह आदमी तेज है। और सच तो यह है कि मैं विवाह के पक्ष में कहूंगा क्या? मुहल्ला भर हंसेगा। क्योंकि मेरे-तेरे बीच जो हो रहा है, जितना मैं अनुभव करता हूं, कौन जानता है कि विवाह में क्या-क्या झेलना पड़ी। और यह सब उठाएगा मामले! इसको एक-एक बात पता है। यह बचपन से हमारे घर में आता-जाता रहा है। यह हो सकता है तुझ तक को ले जाए विवाद में घसीट कर। तो नाहक की भद्द होगी, फजीहत होगी! और मैं झूठ भी नहीं बोलना चाहता। सच तो यही है कि अगर मैं भी बच सकता--लेकिन अब तो बहुत दूर निकल आया, अब बचने का उपाय नहीं। मैं इसको किस मुंह से कहूं कि तू विवाह कर! ...
तो भारत में तो युवा भी विवाह करने में धबड़ाए होते हैं। कहानी अमरीका
की रही होगी।
एक अस्सी साल के बूढ़े ने एक पचहत्तर साल की बुढ़िया से विवाह कर लिया।
अब विवाह किया तो हनीमून के लिए जाना पड़ा। एक चीज में से दूसरी चीज निकलती है। डब्बे के भीतर डब्बा! अब हनीमून अस्सी साल की उम्र में! न आंखों से सूझे, न पैरों से चला जाए, अस्थि-पंजर बचे मात्र, हनीमून के लिए गए! जाना पड़ा। क्योंकि पत्नी एकदम पीछे पड़ी है कि विवाह किया तो हनीमून को तो जाना ही पड़ेगा। चलो, हनीमून सही! अब हनीमून में क्या करोगे? तो बूढ़े ने बुढ़िया का हाथ हाथ में लिया--अब और क्या करे? --थोड़ी देर हाथ को दबाता रहा--ज्यादा दबा भी नहीं सकता था--फिर दोनों सो गए। फिर दूसरे दिन थोड़ा कम दबाया, क्योंकि पहले दिन बहुत थक गया। और तीसरे दिन जब हाथ दबाने को उसने पत्नी का हाथ पकड़ा तो पत्नी ने कहाः आज तो मेरे सिर में दर्द है; और वह करवट लेकर सो गई।
सिर में दर्द, सहानुभूति पाने के उपाय, बीमारियां--बच्चे सीख जाते हैं
यह कला। और बुढ़ापे तक यह कला पीछे चलती है। लोग इसीलिए तो अपना दुख का रोना रोते हैं। दुख का रोना ही क्यों रोते हैं? इसलिए कि कोई सहानुभूति दे। रेखा, क्यों सहानुभूति से राजी होना? प्रेम मिल सकता है। प्रेम बरस रहा है। सिर्प हम सहानुभूति के योग्य ही रह गए हैं, तो हम प्रेम से वंचित हैं। और आ नंद जब मिलेगा, तो अहंकार गलेगा। उससे भय पैदा होता है, भयंकर उत्पात भीतर पैदा होता है, क्योंकि अहंकार ही हमारा सब कुछ है। "मैं कुछ हूं!" और आनंद मिला कि उसने मिटाया यह "मैं" का भाव। "मैं" को तो गला ही डालेगा, राख कर देगा, दग्ध कर देगा। यह "मैं" का बीज ही तो महापाप है। यह "मैं" का बीज ही तो तुम्हें जन्मों-जन्मों तक ले जाता है। आनंद आएगा तो उसकी बाढ़ में यह "मैं" बह जाएगा--यह कूड़ा-करकट है। और इस "मैं" के बहने में घबड़ाहट लगती है।
फिर तुझे और भी डर लगते होंगे। तेरे पति भी यहां हैं, तू उन पर निगरानी रखती है, वे तुझ पर निगरानी रखते हैं। पति-पत्नी का काम ही क्या है? पारस्परिक निगरानी! एक-दूसरे की जांच-पड़ताल! कहां थे, क्या किया, क्यों गए वहां, क्या बोले? और पत्नियां इसमें इतनी कुशल हो जाती हैं कि मैं इस बात की भविष्यवाणी करता हूं कि आने वाले दिनों में पुलिस इंस्पेक्टर और जासूसी विभाग के अधिकारी स्त्रियां ही होंगी। पुरुषों को इतनी अकल नहीं है। स्त्रियों को तो, ऐसा हिसाब लगाती हैं वे कि जरा सा इशारा उनको पकड़ में आजाए! जैसे कोट पर एक बाल मिल गया, बस पर्याप्त है। वे खोज लेंगी औरत किसका यह बाल है। ये बड़े-बड़े जासूस भी इतना काम नहीं कर सकते। इसी पति से निकलवा लेंगी। इसकी ऐसी जान खाएंगी कि इसको उगलना ही पड़ेगा। जब तक यह उगल न देगा तब तक वे इसकी जान खाती ही रहेंगी। सिर्प आत्मरक्षा के लिहाज से यह कहेगा कि अच्छी बात! और नहीं उगलेगा तो भी वे इसकी जांच-पड़ताल करके पता लगा लेंगी। इससे बचा नहीं जा सकता। और पति भी नजर लगाए बैठे हैं कि जब दप 132 तर जाते हैं तो पत्नी किससे बात करती है, क्या बात करती है? मोहल्ले में किसी के साथ राग-रंग तो नहीं चल रहा है? किसी से दोस्ती तो नहीं बन रही है?
पति भयभीत है, क्योंकि उन्होंने पत्नी पर कब्जा कर रखा है। पत्नी भयभीत है, क्योंकि पति पर कब्जा कर रखा है।
यहां मेरे आश्रम में आते ही जो सबसे बड़ा उपद्रव खड़ा होता है, वह होता
है पति-पत्नी के लिए। क्योंकि यहां एक मुक्त वातावरण है। यहां स्त्री-

पुरुषों के बीच दीवालें नहीं हैं।... पुराने ढब के संन्यासी कभी-कभी मुझे आकर कहते हैं कि कम से कम इतना तो करो कि बीच में एक रस्सी! स्त्रियां इधर बैठें, पुरुष इधर बैठें!
एक जैन मुनि सुनने आना चाहते थे तो उन्होंने पहली खबर यह भिजवाई कि इतना ख्याल रखना कि मुझे किसी स्त्री के पास न बैठना पड़े! क्या इतना भय है स्त्री से? ! क्या इतनी घबड़ाहट है? ! मगर हम आदी हो गए हैं इस तरह की रेखाओं के, बांटने के। यहां कोई बंटाव नहीं है, यहां किसी को फिक्र नहीं है। यहां एक मुक्त आकाश है। और जो पति-पत्नी हमेशा बंधे रहे और एक-दूसरे को बांधे रहे, जब वे यहां आते, तो उनको बड़ी मुश्किल खड़ी होती है। क्योंकि इस मुक्त आकाश में और पक्षी उड़ रहे हैं, और उसमें पति भी पंख मारना चाहता है, पत्नी भी पंख मारना चाहती है। जब सभी उड़ रहे हैं, तो पंख फड़फड़ाते हैं लोग!
अब रेखा के पति हैं वेदांत, वे पंख फड़फड़ाते हैं। हालांकि अमरीका में थे, मगर अमरीका में नहीं रेखा ने उन्हें पंख फड़फड़ाने दिया। यह आश्रम अमरीका से बहुत आगे जा चुका है! सो डर लगता है, सुरक्षा को भी डर लगता है कि कहीं ऐसा न हो कि यह पति नदारद ही हो जाएं। भय लगता है। रोज यहां जोड़े टूट जाते हैं। क्योंकि मैं किसी को जबरदस्ती साथ नहीं रखना चाहता। प्रेम जोड़े तो काफी। अगर प्रेम ही न जोड़ता हो तो फिर और जोड़ना सब व्यर्थ है। यहां आकर कई जोड़े टूट जाते हैं। जो जोड़ा यहां आकर न टूटे, समझना वही जोड़ा था। बाकी काहे का जोड़ा था! "कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा!"... जोड़ा वगैरह कुछ नहीं... "भानुमती ने कुनबा जोड़ा!"... बंधे थे किसी तरह।
स्वभावतः स्त्रियों को ज्यादा भय पकड़ता है पुरुषों की बजाय। उसका कारण है कि स्त्रियों को हमने अपंग कर दिया है सदियों-सदियों में। उनकी आर्थिक स्वतंत्रता छीन ली है। वे पतियों पर पूरी तरह निर्भर हो गई हैं। घबड़ाहट उनको ज्यादा आनी स्वाभाविक है। बच्चे हैं, आर्थिक रूप से सब कुछ पति पर निर्भर है और यह पति कल चल पड़े, यह किसी और का हाथ गह ले, तो फिर मेरा क्या हो? तो पत्नी चिंतित होती है। भय लगता है उसे।
मगर रेखा, कोई भी की जरूरत नहीं है! कम्यून के जीवन का अर्थ ही यही है
कि तेरी जिम्मेवारी, तेरे बच्चों की जिम्मेवारी, सबकी जिम्मेवारी अब कम्यून की है। एक बार इस संघ का हिस्सा बन गई, अब फिक्र छोड़, कोई सुरक्षा की चिंता न कर! और जबरदस्ती बांध कर रखने से कुछ हल है? और मैं नहीं मानता कि वेदांत बहुत दूर जा सकते हैं! थोड़ा उड़ लेने दे। थोड़े यहीं चक्कर मारेंगे, जैसे कबूतर चक्कर मारते हैं और फिर आकर अपने घर बैठ जाते हैं। और थोड़े चक्कर मारने के बाद पहली दफा उनको समझ में आना शुरू होगा कि सभी स्त्रियां एक जैसी हैं। लेकिन स्त्रियां यह समझने नहीं देतीं, यह मौका ही नहीं देतीं। सभी पुरुष एक जैसे हैं। ऊपर के भेद हैं। जैसे इस गाड़ी का बानेट इस ढंग का और उस गाड़ी का बानेट उस ढंग का, बस इस तरह के भेद हैं। और कोई ज्यादा भेद नहीं है--बानेट के भेद हैं।
किसी की नाक जरा लंबी है, किसी की जरा छोटी है। अब नाक क्या है? एक बानेट। छोटी नाक से भी श्वास चलती है मजे से, लंबी नाक से भी सांस चलती है मजे से, चपटी नाक से भी चलती है। सवाल सांस चलने का है। हां, श्वास न चले तो कुछ चिंता की बात है। श्वास चलती रहे तो फिर ठीक है! नाक लंबी हो कि छोटी हो, क्या फर्क पड़ता है? कि किसी के बाल काले हैं और किसी के सफेद हैं और किसी के और रंग के हैं; किसी की आंखें हरी हैं, और किसी की नीली हैं और किसी की काली हैं; ये सब ऊपर-ऊपर के भेद हैं; इनमें कुछ सार नहीं है। लेकिन अगर लोग एक-दूसरे का अनुभव कर सकें तो इन व्यर्थ की बातों से जल्दी ही ऊपर उठ जाते हैं--और तभी जीवन में पहली दफा सार्थक संबंध शुरू होते हैं। मगर हम व्यर्थ से ही मुक्त नहीं होने देते तो सार्थक संबंध कैसे शुरू हों? पत्नी घेरा डाले है, पति घेरा डाले है। उस घेरे के कारण यह आशा बनी रहती है कि पता नहीं दूसरे जगह क्या-क्या हो रहा है? पता नहीं दूसरी स्त्रियों में कैसा सौंदर्य है? पता नहीं दूसरे पुरुषों में कैसा आनंद है? यह भ्रांति बनी रहती है। यह भ्रांति टूट जाए, सरलता से टूट जाए। मैं एक ऐसी दुनिया चाहता हूं जहां यह भ्रांति टूट जानी चाहिए। जहां यह बात समझ

में आजानी चाहिए कि ऊपर के भेदों में कुछ फर्क नहीं है, असली सवाल आंतरिक है। और आंतरिकता बड़ी और बात है।
अब रेखा प्रेम करती है वेदांत को। वेदांत भी प्रेम करते हैं रेखा को। दोनों में मैंने झांककर देखा और पाया कि दोनों के मन में एक-दूसरे के प्रति प्रेम है, लगाव है। मगर जीवन में कभी स्वतंत्रता नहीं मिली, तो जीवन में कुछ उत्सुकताएं बाकी रह गई हैं। उनसे निपट ही लेने दो! उन उत्सुकताओं से पार हो जाने दो।
घबड़ाओ मत, भयभीत न होओ! संघ का यही अर्थ होता है, संघ के सदस्य होने का यही अर्थ होता है कि अब जिम्मेवारी संघ की है। तुम्हारे बच्चे संघ के हैं, तुम संघ की हो। अब कोई असुरक्षा नहीं है। अब व्यक्तिगत भाषा में सोचना बंद करो! संघम शरणम गच्छामि। अब तो संघ के शरण में अपने को समर्पित करो। तो यह भय चला जाएगा। यह भागने की बात भी चली जाएगी।
और भागना भी चाहो तो भाग न सकोगी। जीवन भर तुमने दर्द ही तो पाया है, भागकर जाओगी कहां? उस अतीत के जीवन में सिवाय दर्द के और कुछ भी नहीं है। हां, अपने को हम ढांके रखते हैं, छिपाए रखते हैं--यही सज्जनोचित मालूम होता है। क्या फायदा कि अपने दुख को रोएं? लेकिन मेरे सामने कुछ भी छिपेगा नहीं। मेरी आंखें आर-पार देखती हैं। मैं तुम्हारे भीतर सिर्प दुख ही दुख देखता हूं। अतीत तो व्यर्थ गया है, लौट कर जाने की शरण कहां है वहां, आगे बढ़ो! कोई नहीं चाहता कि अपने दर्द में किसी को साझीदार बनाए, क्योंकि दीनता मालूम होती है, हीनता मालूम होती है। इसलिए हम ऊपर से मुस्कराते रहते हैं। ऊपर से एक वेश बनाए रखते हैं।
लेकिन दर्द के अपने ढंग हैं कहने के। तुम कितना ही हंसो, तुम्हारी हंसी में भी आंसू हो सकते हैं। क्योंकि आंसुओं में भी कभी हंसी होती है। ऐसे भी आंसू हैं जो आनंद के होते हैं और ऐसी मुस्कराहटें हैं जो सिर्प दुख को छिपाती हैं--और ठीक से छिपा भी नहीं पातीं। तुम्हारी भाव-भंगिमा कह जाती है; तुम्हारा उठना-बैठना कह जाता है।
अब रेखा को जब भी मैं देखता हूं तो मुझे पीड़ा होती है। पीड़ा इस बात की
कि उसने दुख ही जाना है। मगर यह उसकी ही पीड़ा नहीं है, सारी मनुष्यता की पीड़ा है।
मैंने कभी न चाहा जग को दुख का साझीदार बनाऊं
पर अनजाने ही गीतों में मन का दर्द उभर आता है!

नयनों का हर मोती मेरा पर सुख के पल सदा बिराने,
अनुभव-सागर में डूबा तो सत्य लगा मुझको अपनाने;
विरहाकुल हो जब भी भटका कण-कण में तुमको ही देखा,
पर यदि पास हुए तुम मेरे परिचित भी सब लगे अजाने।

मैंने कभी न चाहा तुमको पलकों में ही सीमित कर लूं, पर अनजाने ही अंतर में कोई रूप निखर आता है।

मन का दर्द उभर आता है!!

कुछ कहते हैं इन गीतों में कोई शाश्वत सार नहीं है, दुख का ही सरगम है इनमें सुख की मधु मनुहार नहीं है; कण-कण में पीड़ा मुसकाती, अंबर की पलकें भीगी हैं, धरती रोए पर मैं गाऊं मुझको यह स्वीकार नहीं है;

मैंने कभी न चाहा जग को इन गीतों से विह्व कर दूं,
पर अनजाने विकल स्वरों में दर्द स्वयं मुझको गाता है!

मन का दर्द उभर आता है!!

यदि कुरूपता साथ न होती सुंदरता का मान न होता,

पतझर में यदि धरती हंसती मधुऋतु का सम्मान न होता;
करुणा-ममता यहां न होती यदि आंसू का हार न होता;
मनुज अधूरा ही रह जाता यदि अभाव का ज्ञान न होता;
मैंने कभी न चाहा पथ को कांटों से ही दुर्गम कर दूं,
पर अनजाने ही फूलों में कोई शूल संवर आता है!

मन का दर्द उभर आता है!!
मैं जब भी देखता हूं किसी संन्यासी के भीतर, किसी व्यक्ति के जो दीक्षा लेने को तत्पर होकर आया है, तो दर्द ही दर्द, पीड़ा ही पीड़ा, कांटे ही कांटे। एक फूल नहीं खिला तुम्हारे अतीत में। भाग कर जाने की जगह कहां है! और अब जब कि मधुमास आने के करीब है; और अब जब कि वसंत द्वार पर दस्तक दे रहा है; रेखा, भागोगी भी कैसे? भाग कैसे सकोगी? और मैंने जो पुकार दी है, वह कहीं भी सुनाई पड़ती रहेगी। कितने ही दूर जाओ, भाग जाओ वापिस सनफ्रांसिस्को, तो भी कुछ नहीं होगा। मेरी आवाज वहां भी कानों में आती ही रहेगी। इसलिए ये भागने इत्यादि की बातों में व्यर्थ समय मत गंवाओ, व्यर्थ ऊर्जा मत लगाओ। यही ऊर्जा जागने में लगाओ--भागने में क्या है! पिछली जिंदगी तो जी लिए एक ढंग से, कुछ पाना होता तो पा लिया होता, कुछ पाया नहीं, हाथ खाली हैं। अब मैं कहता हूं कि मोतियों से भर जाती है झोली, मोती बरस रहे हैं; मुझ पागल की बात मानो; होशियारों की बात मान कर पिछला जीवन गंवाया, अब किसी पागल की बात मानकर भी देख लो; कौन जाने होशियार जहां हार गए वहां पागल जीत जाए!
अपने इस मन को बहुत ज्यादा सम्मान मत दो। अपने इस मन से थोड़ा अलगाव करो, थोड़ी पृथकता बनाओ, थोड़ी दूरी साधो। वही ध्यान है। और वही संन्यास का सार है। साक्षी बनो!
मुझसे तू रूठ नहीं
मुझसे मत बन!
ओ मेरे मन!!

क्षितिजों तक मत जा रे--

ऐ नासमझ समझ,

बिन समझे-बूझे यूं--
व्यर्थ मत उलझ;
रे हठी तुनक मिजाज,
शोर मत मचा,
कुछ तुक की बातें कर,
पागल मत बन!
ओ मेरे मन!!

मिल-जुल कर बैठ तनिक,
रार मत बढ़ा,
चढ़ती दोपहरी को--
और मत चढ़ा;
अपने को देख-भाल,
दुनिया को छोड़;
इतना कुछ पढ़-लिख कर,
पागल मत बन!
ओ मेरे मन!!

विष-बुझी घटाओं को--
पलकों में भर,
नन्हे से जी को यूं--

हल्का मत कर;
जस-अपजस भूल यार,
साथ-साथ चल;
इत्ता सा प्यार करें,
इत्ती अनबन!
ओ मेरे मन!!
थोड़े मन को देखने की कला सीखो! हम मन के साथ एक ही हो जाते हैं। हम मन
के साथ तादात्म्य किए हुए हैं। मन जो कहता है, लगता है हम कह रहे हैं। मन जो करता है, लगता है हम कर रहे हैं। नहीं, हजार बार नहीं। तुम मन से पृथक हो। तुम चैतन्य हो। तुम शुद्ध साक्षी हो। तुम मन के द्रष्टा हो। उठने दो मन में ऊहापोह--भागने के, जाने के, कल्पनाओं के अनेक जाल, उठने दो; दूर खड़े होकर देखते रहो; जैसे कोई नदी के तट पर बैठ कर नदी में उठती लहरों को देखता हो, ऐसे मन के तट पर बैठ जाओ, मन की लहरों को देखते रहो और एक अद्भभुत चमत्कार घटता है! देखते-देखते, देखते-देखते ये सारी लहरें शांत हो जाती हैं। देखते-देखते यह पूरे मन की धार तिरोहित हो जाती है। देखते-देखते एक दिन सन्नाटा और शून्य उतर आता है। और जहां शून्य है, वहां पूर्ण है। जहां शून्य है, वहां परमात्मा के आने के लिए हमने तैयारी कर ली, हम पात्र हो गए। क्योंकि सूनी प्याली में ही, खाली प्याली में ही उसका अमृत भर सकता है। हम भरे हैं अपने ही कूड़ा-करकट से।
खाली करो रेखा, अपने मन को कूड़ा-करकट से खाली करो और साक्षी बनो!! अगर भागना ही हो तो भीतर की तरफ भागो! अब बाहर की तरफ भागने से कुछ भी न होगा। एक झेन फकीर की कहानी है। उसे मित्रों ने निमंत्रण दिया था। सात मंजिले एक मकान पर भोजन का आयोजन था; कोई तीस-पैंतीस उसके भक्त इकट्ठे हुए थे। भोजन चल रहा था, तभी भूकंप आगया। लकड़ी का मकान--जापान में लकड़ी के मकान होते हैं--सारा मकान कंपने लगा। अब गिरा तब गिरा। लोग भागे। गृहपति भी भागा। लेकिन संकरा जीना और भीड़ बहुत हो गई जीने पर; तो गृहपति ने पीछे लौटकर देखा कि जिस संन्यासी को बुलाया है, उसका क्या हुआ? देख कर वह चकित हो गया, अवाक रह गया। उस संन्यासी ने तो अपनी ही कुर्सी पर पालथी मार ली है, आंखें बंद कर ली हैं। वह इतना शांत बैठा है जैसे बुद्ध की प्रतिमा हो। उसका वह दिव्य रूप, उसका वह झरता हुआ प्रसाद--गृहपति को ऐसा बांध लिया, ऐसा सम्मोहित कर लिया कि मन की सारी इच्छा को त्यागकर भागने की, रुक गया वह भी। फिर उसे यह भी लगा जब अतिथि रुका है और आतिथेय भाग जाए, यह उचित नहीं। मेहमान को छोड़ कर मेजबान भाग जाए, यह उचित नहीं। बैठ गया। --कंप रहा है! कोई आधा मिनट ही भूकंप के कंपन आए। भूकंप चला गया। झेन पकीर ने आंखें खोलीं और बात जहां टूट गई थी भूकंप के आने से वहीं से शुरू कर दी। लेकिन गृहपति ने कहा, क्षमा करें, अब मुझे कुछ याद नहीं कि पहले हम कौन-सी बातें कर रहे थे। यह इतना बड़ा भूकंप आ गया है; मकान गिर गये हैं, लोग दब गए हैं; यह मकान भी कैसे बच गया है, यह आश्चर्य है; सारे लोग भाग गए हैं, पूरी टेबल खाली है; मैं भी कैसे रुक गया हूं, मुझे भरोसा नहीं आता; आपकी थिरता ने, आपकी शांति ने कैसा जादू किया है! एक बात पूछनी है, अब पुरानी बातें जाने दें, एक बात पूछनी है कि यह भूकंप हुआ, आप भागे नहीं!
वह फकीर हंसने लगा। उसने कहा, भागा तो मैं भी। तुम बाहर की तरफ भागे, मैं भीतर की तरफ भागा। और मैं तुमसे कहता हूंः बाहर भागना व्यर्थ है! क्योंकि छठवीं मंजिल पर भी भूकंप है, पांचवीं मंजिल पर भी भूकंप है, चौथी मंजिल पर भी भूकंप है, तीसरी मंजिल पर भी भूकंप है, दूसरी पर भी, पहली पर भी। और भूकंप तुम जहां जा रहे हो वहां सब जगह है। भागकर भी कहां जाओगे? ! मैं वहां भाग गया जहां कोई भूकंप कभी नहीं पहुंचता। मैं अपने भीतर पहुंच गया। मैं उस भीतर के केंद्र पर बैठ गया जाकर जहां कोई कंपन कभी नहीं पहुंचा है, न पहुंच सकता है।

रेखा, उस भीतर की यात्रा पर चलो! भागना ही हो, तो भीतर की तरफ भागो। क्योंकि भीतर की तरफ भागने में परमात्मा से मिलने की संभावना है। अमृत, आनंद, सब कुछ तुम्हारा हो सकता है!

दूसरा प्रश्नः ओशो, धर्म के नाम पर जो कुछ हुआ है, उससे हानि किसकी हुई है?

रूपकिशोर! किसकी हानि होगी? तुम्हारी। मनुष्यों की। धर्म के नाम पर बहुत पाखंड हुआ है। और तुम सबको पाखंडी कर गया। तुम्हें पता भी नहीं चलता कि तुम पाखंडी हो, इतना पाखंडी कर गया। होश भी खो दिया है तुमने। होश भी होता और पाखंड होता, तो शायद छूटना आसान होता। होश भी नहीं है अब। अब तो पाखंड तुम्हारी सहज जीवनशैली हो गई है। सच तो जैसे तुमसे निकलता ही नहीं। झूठ तुमसे सहज प्रवाहित होता है।
झूठ बोलने में लोग एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं। कौन कितना झूठ बोल लेता है और किस कुशलता से कि कोई पकड़ न पाए, कि कोई पहचान न पाए, वह बड़ा नेता हो जाता है। उसका नाम इतिहास में लिखा जाएगा। राजनीति झूठ बोलने की कला है। इस तरह का झूठ बोलो कि सच जैसा लगे। इस तरह का मुखौटा ओढ़ो कि लोगों को लगे यही तुम्हारा असली चेहरा है। खादी की टोपी लगाओ, खादी के कपड़े पहनो--और भीतर लाख कालिख रहे, रहने दो, कोई फिकर नहीं, बाहर सफेदी पोत लो! जीसस ने कहा है कि तुम ऐसे हो जैसे कब्रें, जो सफेद चूने से पोत दी गई हैं। जीसस ने भी गजब किया! महात्मा गांधी के पहले महात्मा गांधी के शिष्यों का जीसस को पता कैसे चला! ये सफेद कपड़े, यह दिल्ली में जगमग होते सफेद कपड़ों की नुमाइशें, ये सफेद कब्रें हैं। जीसस कहते हैंः चूना पोती हुई हैं। भीतर सिर्प मुर्दे हो तुम। थोथे, सड़ रहे। लाश है वहां; क्योंकि तुमने जीवन को जीने का कभी कोई उपक्रम नहीं किया, कोई अभियान नहीं किया, कोई चुनौती स्वीकार नहीं की। तुमने अपने को जगाने की कोई चेष्टा भी नहीं की। तुम गहरी नींद में पड़े हो।
पाखंड धर्मो के नाम पर चला है। और कारण सीधा है। और कारण ऐसा तर्कयुक्त मालूम पड़ता है कि तुम्हें ख्याल में भी नहीं आता।
धर्म सिखाते हैं चरित्र और चरित्र का अंतिम परिणाम पाखंड है। बात एकदम बेबूझ लगेगी। क्योंकि तुम तो सोचते हो, चरित्र? चरित्र ही तो असली चीज है। चरित्र बिल्कुल असली चीज नहीं है। चैतन्य असली चीज है। चरित्र होता है बाहर, चैतन्य होता है भीतर। तुम्हारे चैतन्य से जिओ तो तुम जो करो, वही ठीक है। लेकिन धर्म तुम्हें सिखाते हैंः चैतन्य वगैरह की फिकर छोड़ो। चैतन्य तो यह तो कुछ अवतारी पुरुषों की बात है। यह तो कोई बुद्ध, कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई क्राइस्ट, कोई मोहम्मद, पैगंबर, अवतार, तीर्थंकर, ईश्वरपुत्र, इन कुछ थोड़े से लोगों को छोड़ दो, यह तुम्हारे बस की बात नहीं, यह तुम्हारे बलबूते की बात नहीं। तुम तो हड्डी-मांस-मज्जा के आदमी हो। तुम तो चरित्र। चरित्र का मतलब यह कि दूसरों ने जो कहा है, उस ढंग से जिओ। खुद के बोध से नहीं। दूसरों ने जो बताया है। लेकिन यहीं मुश्किल खड़ी हो जाती है। क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इतना भिन्न है, इतना अनूठा है कि किसी दूसरे की मान कर जिएगा तो झूठा हो ही जाएगा। होना ही पड़ेगा।
अब समझ लो कि तुम महावीर की मान कर नग्न खड़े हो जाओ, और ठंड लगे, और जी तड़पे कि कंबल मिल जाए! फिर तरकीबें निकालोगे। तुम्हें मालूम है दिगंबर जैन मुनि ने क्या तरकीबें निकाली हुई हैं? उसको बंद कमरे में सुलाते हैं रात, खिड़की, द्वार-दरवाजा सब बंद कर देते हैं--वह खुद नहीं करता बंद, क्योंकि वह शास्त्र में लिखा नहीं है; वह तो फिर सर्दी से बचाव का उपाय हो गया। लेकिन दूसरे कर दें। दूसरे कर दें तो तुम क्या करो! शास्त्र में यह नहीं लिखा है कि दूसरों को न करने देना। बात खत्म हो गई। सो दूसरे सब खिड़की-दरवाजे बंद कर देते हैं, बिल्कुल बीच के कमरे में ठहरा देते हैं जहां कि किसी तरह हवा न पहुंचे। और जमीन पर पुआल बिछा देते हैं, जो गर्मी देती है।
शास्त्रों में लिखा हैः कंबल न बिछाना। मगर पुआल न बिछाना, यह कहीं लिखा नहीं है। और जब मुनि महाराज लेट जाते हैं, तो ऊपर से भी पुआल डाल देते हैं। अब शास्त्रों में यह भी नहीं लिखा है कि कोई ऊपर से पुआल डाले तो उसको

रोकना। सो नीचे पुआल, ऊपर पुआल। और पुआल इतनी गरम होती है जितनी कि रुई भी नहीं होती। और चारों तरफ से दरवाजे बंद!
अब यह व्यर्थ का उपद्रव हुआ। महावीर के जीवन में कहीं उल्लेख नहीं है
कि पुआल बिछाई। महावीर और ढंग के आदमी रहे होंगे। ढंग-ढंग के आदमी हैं। तरह-तरह के आदमी हैं। महावीर को ठंड रास आती होगी। सबको अलग-अलग चीजें रास आती हैं। मुझे ठंड रास आती है। मेरे संन्यासी मुझे पत्र लिखते हैं कि आप गर्मी में भी यही कपड़े पहने रहते हैं, सर्दी में भी यही कपड़े पहने रहते हैं। कम से कम सर्दी में तो कुछ सर्दी का बचाव किया करें। और मेरी हालत उलटी है। मेरे लिए दिक्कत खड़ी होती है गर्मी में। तब मुझे सवाल उठता है कि कैसे बचाव करूं? सर्दी तो मुझे जमती है। मेरे संन्यासी लिखते हैं कि हम आपके अंगूठे को देखते हैं कि बिल्कुल नीला पड़ा जा रहा है। मगर जब तक मेरा अंगूठा नीला न पड़े, मुझे मजा आता नहीं। अब करना तो क्या करना!
अब मेरा कमरा तो बिल्कुल ऐसा रहता है जैसा कि बर्पघर। विवेक को उसमें आना-जाना पड़ता है, उसके प्राण निकलते हैं। वह एकदम चाय देकर और भागती है। अभी वह इंग्लैंड से वापस लौटी, कहने लगी कि मैं तो सोचती थी इंग्लैंड ठंडा है, मगर यह कमरा ज्यादा है। इससे तो इंग्लैंड बेहतर है।
मुझे सर्दी रास आती है! मुझे भी हैरानी होती है। क्योंकि अगर बहुत गर्मी हो, तो मुझे सर्दी हो जाती है। और अगर खूब सर्दी हो, तो मुझे सर्दी नहीं होती।
महावीर को रास आती रही होगी। अब तुम महावीर की मान कर चलोगे तो पाखंड खड़ा होगा। तुम महावीर को महावीर पर छोड़ो। तुम अपनी सुध लो। बुद्ध को इतनी सर्दी रास नहीं आती होगी जितनी महावीर को आती थी, तो वे एक चादर ओढ़े रखते थे। लेकिन एक चादर की वजह से जैनियों की दृष्टि में वे नीचे गिर गए। तो जैनी कहते हैं कि महात्मा हैं, लेकिन भगवान नहीं। भगवान तो तब हों जब चादर भी छोड़े। चादर ने डुबाया बेचारों को! चादर भी गजब की है! एक चादर के पीछे मोक्ष गया हाथ से!
तुम जब भी किसी दूसरे की मान कर चलोगे, अड़चन में पड़ोगे। क्योंकि दूसरा
जो कहेगा, वह अपने अनुभव से कहेगा। उसका अनुभव उसका ही अनुभव है और कभी किसी दूसरे का अनुभव नहीं हो सकता। चरित्र का अर्थ होता हैः दूसरे जैसा कहें वैसा करो। जहां बिठाएं वहां बैठो, जहां उठाएं वहां उठो। तुम पाखंडी हो जाओगे। पाखंड का मतलब क्या होता है? तुम ऐसी कोई चीज कर रहे हो जो तुम्हारे स्वभाव के अनुकूल नहीं है। तुम अपने स्वभाव को झुठला रहे हो। तुम अपनी प्रामाणिकता खो रहे हो।
चैतन्य पर मेरा जोर है। मैं कहता हूंः अपनी चेतना से जिओ। इसलिए मैं अपने संन्यासियों को कोई चरित्र नहीं दे रहा हूं। उनसे कहता ही नहीं कि ऐसा करो या वैसा करो; यह पहनों, वह पहनों; यह खाओ, वह पिओ; कब सोओ, कब जागो; कुछ उनसे इन सब बातों के संबंध में कह ही नहीं रहा हूं। क्योंकि मैंने ही अपने अनुभव से यह पाया कि मैंने करीब-करीब सब तरह के उपाय करके देखे... जैसे कि मैं उठा करता था तीन बजे। जब विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था, तो तीन बजे उठता था। ऋषि मुनियों को तीन बजे उठना ही चाहिए! मगर मुझे कभी रास नहीं आया। मुझे दिन भर नींद आती। एक बात साफ हो गई कि अगर ऋषि-मुनि होने का यही ढंग है, तीन बजे उठना, तो अपने को ऋषि-मुनि नहीं होना है। क्योंकि दिन-भर नींद आए!
मगर लोग तरकीब निकाल लेते हैं।
महात्मा गांधी को भी दिन भर नींद आती थी--आएगी ही; वही तीन बजे का उपद्रव! तो वे कई दफा दिन में सो लेते दस-दस, पंद्रह-पंद्रह मिनट। मगर लोग तो अद्भभुत अंधे हैं, वे इसकी खूब तारीफ करते कि वाह! कैसे शांत व्यक्ति हैं कि जब देखो तब सो जाते हैं! कुछ मामला नहीं है। अरे, तीन बजे उठो तो तुम भी सो जाओगे, जब देखो तब! इसमें कुछ कला नहीं है। जरा तीन बजे उठो तो, बस दिन भर आंखें झपकती रहेंगी! क्योंकि असली नींद का समय ही दो बजे से और छह बजे के बीच में है। उसी समय वे दो घंटे घटते हैं जो गहरी से गहरी नींद के हैं। किसी को दो बजे से लेकर चार बजे के बीच में घटते हैं। जिसको दो से चार के बीच घटते हैं, वह चार बजे उठ आए, दिन भर ताजा रहेगा। लेकिन किसी को चार से

छह के बीच घटते हैं, वह अगर चार और छह के बीच में उठ आए, तो दिन भर उदास रहेगा; उसकी शक्ल मातमी रहेगी; रोता-रोता मालूम पड़ेगा।
वह मुझे जमा नहीं।
ऋषि-मुनियों को जल्दी सो जाना चाहिए। विनोबा भावे आठ बजे शाम को सो जाते हैं। विश्वविद्यालय में मैं था तो मैंने भी सब तरह से सोकर देखा। आठ बजे सो जाऊं। सो तो जाऊं आठ बजे, मगर नींद आए बारह बजे। अब कोई सोने ही से नींद आती है। और चार घंटे कवायद जो करनी पड़े, बदलो करवट, मैंने कहा यह भी पागलपन है, नींद तो आती नहीं आठ बजे! और बारह बजे तक जब तुम करवट बदल लोगे, और बारह बजे तक जब परेशान हो लोगे, तो बारह बजे तक परेशान होने के बाद बारह बजे भी नींद आनी मुश्किल हो जाती है। इतना उपद्रव झेल चुके, अब कैसे नींद आए!
सब समय पर मैंने सोकर देखा और मैंने पाया कि मुझे तो ठीक बारह बजे जमता है। शायद पिछले जन्म का सरदार हूं या क्या! ठीक बारह बजे, जहां दोनों कांटे मिलते हों, उसको मैं कहता हूंः योग-स्थल, अद्वैत, वह वेदांत की पराकाष्ठा है, जहां दो कांटे मिल कर एक हो जाते हैं, बस मुझे ठीक उस वक्त जो नींद आती है, वह और किसी वक्त नहीं आती।
अब मैं किसकी मानूं? महावीर की मानूं, बुद्ध की मानूं, ऋषि-मुनियों की मानूं--या अपनी मानूं? उनकी मान कर मैंने सब तरह से उपाय करके देखे हैं, वे सब व्यर्थ हैं। उनके लिए ठीक रहे होंगे। मेरे लिए ठीक नहीं हैं। अब मैं तुमसे कहूं कि तुम भी बारह बजे सोओ, क्योंकि मैं बारह बजे सोता हूं; अगर बारह बजे नहीं सोए तो तुम ऋषि-मुनि नहीं हो, अब तुम मुश्किल में पड़ जाओगे! अगर तुम्हें नौ बजे नींद आती है तो बारह बजे तक घूमो-फिरो, घर के चक्कर लगाओ! और अगर तुम्हें नौ बजे नींद आती है, बारह बजे तक तुम जागने की कोशिश करो, तो फिर बारह बजे भी नींद नहीं आएगी।
नहीं, तुम अपने चैतन्य से जिओ। भोजन के संबंध में, नींद के संबंध में, जीवन के सारे अंगों के संबंध में। मेरा काम है कि तुम्हारे भीतर चैतन्य कैसे आविर्भूत हो, इसकी प्रक्रिया तुम्हें दूं। तुम्हें ध्यान दूं, बस। फिर ध्यान से आचरण अपने-आप आएगा। आना चाहिए।
तो धर्मो ने पाखंड फैलाया, क्योंकि चरित्र पर जोर दिया। और धर्मो ने हिंसा फैलाई यद्यपि बातें अहिंसा की कीं, घृणा फैलाई। बातें प्रेम की कीं, युद्ध फैलाए। लेकिन युद्ध भी शांति की रक्षा के लिए। इस्लाम खतरे में है! इस्लाम शब्द का अर्थ होता हैः शांति। तो शांति की रक्षा के लिए युद्ध करो। खूब मजे की बात हो गई! युद्ध के लिए भी युद्ध और शांति के लिए भी युद्ध! तब युद्ध से बचना कैसे होगा?
धर्म के नाम पर हत्याएं हुईं। क्योंकि धर्मो ने तुम्हें सिर्प सिद्धांत दिए थोथे; प्रेम का अनुभव नहीं दिया, प्रेम का सिद्धांत दिया। प्रेम की परिभाषा देने की कोशिश की, लेकिन प्रेम के अनुभव से रोका। क्योंकि प्रेम का अनुभव खतरनाक है। जो भी व्यक्ति प्रेम के अनुभव में उतरता है, वह चर्चो से मुक्त हो जाएगा, संप्रदायों से मुक्त हो जाएगा। उसका तो परमात्मा से सीधा नाता हो गया, वह पंडित-पुरोहित को बीच में क्यों लेगा? उसके लिए पोप की कोई जरूरत नहीं है। प्रेम तो सीधा ही जोड़ देता है। "सबसे ऊंची प्रेम सगाई"। फिर वहां कोई बीच में रहता ही नहीं। और पंडित और पुरोहित जीता है बीच में रहने से। उसका काम यह नहीं है कि तुम्हें परमात्मा से मिलाए, उसका काम यह है कि तुम्हें परमात्मा से न मिलने दे। तुम जब तक नहीं मिले हो, तभी तक उसकी जरूरत है। जिस दिन तुम मिले, उसी दिन उसकी जरूरत खत्म हुई। वह तो एजेंट है, दलाल है।
और धर्मो ने तुम्हें बांटा, खंडों में बांटा--हिंदू, मुसलमान, ईसाई। बजाए इसके कि उन्होंने पृथ्वी को एक बनाया होता, अखंड बनाया होता, इसको खंडित किया। और जितने खंड हो गए पृथ्वी के, उतनी दुश्मनी बढ़ी। स्वभावतः। हर खंड चाहता है मालिक हो जाए। हर खंड फैलकर पूरी पृथ्वी पर छा जाना चाहता है। ईसाइयत चाहती है पूरी पृथ्वी ईसाई हो जाए। हिंदू चाहते हैं पूरी पृथ्वी हिंदू हो जाए। मुसलमान चाहते हैं पूरी पृथ्वी मुसलमान हो जाए। अब

यह हो कैसे? यह तो असंभव मालूम होता है। अगर तुम हिंदू हो तो तुम मुसलमान नहीं हो; अगर तुम मुसलमान हो तो ईसाई नहीं हो।
मैं एक नई दृष्टि दे रहा हूं कि तुम धार्मिक हो जाओ, ध्यानस्थ हो जाओ। हिंदू-मुसलमान, ईसाई, इन व्यर्थ के विशेषणों को जाने दो। और तुम पूछते हो कि धर्म के नाम पर जो कुछ हुआ, उससे हानि किसकी हुई? हानि तुम्हारी। और तो किसकी होगी।
धान कटे कि गेहूं कटे
कोदो कटे कि ज्वार
हमें लगे भइया
हम ही कटे
हाथ कटे हर बार

पानी गिरे कि पसीना गिरे मोती गिरे कि नगीना गिरे दुख में माटी
गोद खिलाए
बांह गिरे कि सीना गिरे,
नीम कटे कि बबूल कटे
बेर कटे कि उजार
हमें लगे भइया
हम ही कटे
हाथ कटे हर बार

दादी लगाए कि बाबा लगाए
अम्मा लगाए कि अब्बा लगाए भूख का पेड़
प्यास की खेती
काशी लगाए कि काबा लगाए,
दीन कटे कि धरम कटे
नेक कटे कि गंवार
हमें लगे भइया
हम ही कटे
हाथ कटे हर बार,

रिश्ते बोए कि चेहरे बोए ऊसर बोए कि गहरे बोए
सयों के अधनंगे
शहर में
गाली बोए कि ककहरे बोए,
बस्ती कटे कि नारे कटे
आखर कटे कि अंधियार
हमें लगे भइया
हम ही कटे
हाथ कटे हर बार,
देश लिखे कि ठेस लिखे
पोथी लिखे कि परिवेश लिखे पिसती हुई
चक्की में जवानी
शेष लिखे कि अशेष लिखे,
मोड़ कटे कि सड़क कटे
लोक कटे कि कतार
हमें लगे भइया
हम ही कटे

हाथ कटे हर बार,
तुम्हारे अतिरिक्त और कौन कटेगा? आदमी ही कटता है। चाहे मुसलमान कटे, चाहे हिंदू कटे, चाहे ईसाई कटे, चाहे कम्युनिस्ट कटे, चाहे कैथोलिक कटे-- आदमी ही कटता है। और कब यह समझ आएगी? लेकिन अगर जापान कट रहा हो, तो हम सोचते हैंः हमें क्या करना! चीनी कट रहा हो, हमें क्या लेना-देना! ईरानी कट रहा हो, उनका आंतरिक मसला है, हमें क्या करना! तो तुम जब कटोगे, तुम्हारा आंतरिक मसला है, उन्हें क्या करना! हमेशा आदमी कट रहा है। हर हाल में आदमी कट रहा है। आदमी ही लूटा जा रहा है।
लेकिन हमें समझाया गया है कि हम आदमी पीछे हैं, पहले हिंदू, पहले मुसलमान, पहले ईसाई। और ये बड़ी-बड़ी बीमारियां काम नहीं आयीं, काफी नहीं पड़ी, तो छोटी-छोटी बीमारियांः हिंदुओं में भी सनातनी हो कि आर्यसमाजी? जैसे कैंसर काफी नहीं है, तो कौन सा कैंसर? हड्डी का कि खून का? तो फिर कैंसर में और छोटे-छोटे कैंसर हैं।
तीन सौ धर्म हैं पृथ्वी पर और तीन हजार संप्रदाय और समझ लो कि तीन लाख पंथ। काटते जाओ!! और आज मुसीबत और भी घनी हो गई है। इसलिए घनी हो गई है कि पहले तो लोग अपने-अपने शास्त्रों से परिचित थे, अपने-अपने छोटे-छोटे कुएं में जीते थे, वही सागर था, अब दूसरे शास्त्रों से भी परिचित हुए हैं, तो बड़ी दुविधा पैदा हो गई है, कि सत्य कौन है? बाइबिल सत्य है कि कुरान सत्य है कि वेद सत्य है? अब मनुष्य की दुविधा का अंत नहीं है। और जब तय ही न हो पाए कि सत्य कौन है, तो हम किसका आचरण करें? तो जब तक तय नहीं होता तब तक दुराचरण करो। तब तक करेंगे भी... कुछ तो करना ही होगा! अभी तय तो हो जाए पहले कि ठीक क्या है! जब तक तय नहीं होता तब तक गैर-ठीक ही करो! और यह तय कभी होने वाला नहीं। इस विवाद से कोई हल कभी होने वाला नहीं है। इस विवाद में प्रश्न तो प्रश्न उत्तर और खतरनाक हैं। प्रश्न तो ठीक ही हैं, कभी-कभी प्रश्नों से ज्यादा खतरनाक उत्तर होते हैं। धर्म के जगत में वही हुआ है।
मैंने सुना है एक बार बीरबल ने दरबार में यह बात कही कि कभी-कभी प्रश्न से भी ज्यादा खतरनाक उत्तर होता है। अकबर ने कहा, यह बात जंचती नहीं। बीरबल ने कहा, कभी समय मिलेगा तो जंचा दूंगा।
कोई पांच-सात दिन पीछे की बात है। अकबर आईने के सामने खड़ा होकर अपने बाल संवार रहा है कि बीरबल पीछे से आया और एक लात मारी। अकबर तो गिरते- गिरते बचा, आईना फूटते-फूटते बचा। अकबर ने लौट कर देखा और कहाः हरामजादे, यह कोई ढंग है? और माना कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, इसका मतलब यह नहीं है कि तू सम्राट को लात मारे!
बीरबल ने कहाः हुजूर, क्षमा करें! मैं तो समझा कि बेगम साहिबा हैं। सम्राट ने कहाः क्या मतलब? तो तू बेगम को लात मार रहा था? तेरा गला कटवा दूंगा!
बीरबल ने कहाः वह जो आपको करना हो करना, मैं तो सिर्प उदाहरण दे रहा हूं कि कभी-कभी प्रश्न से उत्तर और भी ज्यादा खतरनाक होता है।
प्रश्न तो सीधे-सादे हैं, लेकिन उत्तर बहुत हैं, उत्तरों की भीड़ लगी है। उत्तर बहुत खतरनाक हैं। और कोई न कोई उत्तर तुम्हें पकड़ लेगा। और तब दुविधा खड़ी होगी, क्योंकि और भी उत्तर कतार लगाए खड़े हैं, जो कहते हैंः हमारी भी सुनो!
पाठशाला के सभी बच्चे गुरुजी को कुछ न कुछ भेंट दिया करते थे। सिर्प
एक लड़का फजलू, जो कभी कुछ न लाता था। जब एक दिन वह कटोरे भर खीर लेकर आया तो सभी चकित रह गए। गुरुजी ने आश्चर्य से पूछाः क्यों रे फजलू, आज क्या बात है?
फजलू बोलाः मेरे पिता जी ने कंजूसी छोड़ कर दानी होने का व्रत लिया, इसलिए आज मेरे घर में खुशी मनाई जा रही है। उसी खुशी में खीर-लड्ड 208-पेड़े-रसगुल्ले बने थे। पिता जी बोले कि एक कटोरा खीर अपने गुरुजी को दे आओ।
गुरुजी ने अचरज से भ रकर पूछाः तो तुम्हारे दानी पिता ने अकेली खीर ही क्यों भेजी? रसगुल्ले वगैरह क्यों नहीं भेजे?

सीधे-सादे फजलू ने कहाः जी, दरअसल बात यह थी कि खीर में एक छिपकली गिर
गई थी। पिता जी बोले गाय-बकरी के देने की बजाए अपने गुरुजी को ही दे आओ। ब्राह्मण-दान ही असली सच्चा दान है। यह सुन कर गुस्से में झल्लाते हुए गुरुजी ने खीर ऐसी फेंकी कि सारे फर्श पर फैल गई और कटोरे के टुकड़े-टुकड़े हो गए। फजलू जोर-जोर से रोने लगा। गुरुजी ने कहाः क्यों रोता है बे, नसरुद्दीन के बच्चे? चोर की चोरी, ऊपर से सीनाजोरी!
मेरी अम्मा मुझे मारेगी, फजलू ने बताया, आपने कटोर जो तोड़ दिया न! अब मेरी मां छोटे भैया को पेशाब काहे में कराएगी?

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
तेरहवां प्रवचन

इस्क करहु हरिनाम कर्म सब खोइया

निरमल हरि को नाम ताहि नहीं मानहीं।
भरमत फिरैं सब ठांव कपट मन ठानहीं।।
सूझत नाहीं अंध ढूढत जग सानहीं।
कह गुलाल नर मूढ़ सांच नहिं जानहीं।।

माया मोह के साथ सदा नर सोइया।
आखिर खाक निदान सत्त नहिं जोइया।।
बिना नाम नहिं मुक्ति अंध सब खोइया।
कह गुलाल सत, लोग गाफिल सब सोइया।।

दुनिया बिच हैरान जात नर धावई।
चीन्हत नाहीं नाम भरम मन लावई।।
सब दोषन लिए संग सो करम सतावई।
कह गुलाल अवधूत दगा सब खावई।।

साहब दायम प्रगट ताहि नहिं मानई।
हरदम करहि कुकर्म भर्म मन ठानई।।
झूठ करहि व्योहार सत्त नहिं जानई।
कह गुलाल नर मूढ़ हक्क नहिं मानई।।

गर्व भुलो नर आय सुझत नहिं साइंया।
बहुत करत संताप राम नहिं गाइया।।
पूजहिं पत्थल पानि जन्म उन खोइया।

भजन करो जिय जानिके प्रेम लगाइया।

भजन करो जिय जानिके प्रेम लगाइया।
हरदम हरि सों प्रीति सिदक तब पाइया।।
बहुतक लोग हेवान सुझत नहिं साइंया।
कह गुलाल सठ लोग जन्म जहंड़ाइया।।

आसिक इस्क लगाय साहब सों रीझई।
हरदम रहि मुस्ताक प्रेमरस पीजई।।
बिमल बिमल गुन गाइ सहज रस भीजई।
कह गुलाल सोइ चार सुरति सों जीजई।।

आपु न चीन्हहिं और सबै जहंड़ाइया।
काम क्रोध को संगम सबै भुलाइया।।
रटत फिरै दिनरैन थीर नहिं आइया।
कह गुलाल हरि हेतु काहे नहिं गाइया।।

खोलि देखु नर आंख अंध का सोइया।।
दिन-दिन होतु है छीन अंत फिर रोइया।।
इस्क करहु हरिनाम कर्म सब खोइया।।
कह गुलाल नर सत्त पाक तब होइया।।

निराश्रित भी चलेंगे, पर--
कहां तक? कह नहीं सकते!
कहां तक? कह नहीं सकते!

फिर वही मधुकण झरेंगे,
निशि-दिवस पुलकित करेंगे-- फिर सरस ऋतुपति धरा को--
फूल से फल से भरेंगे;
पर न अब तुम दुख हरोगे,
मन-सुमन पुलकित करोगे;
ध्वंस में भी पलेंगे, पर-- कहां तक? कह नहीं सकते!

फिर वही सरगम सजेंगे,
रागमय नूपुर बजेंगे;
फिर सजग हृत्तंत्रियों के-- गीतमय सप्तक मंजेंगे;
पर न अब तुम फिर बजोगे,
श्लोक बन-बन कर सजोगे;
मौन में भी ढलेंगे, पर--
कहां तक? कह नहीं सकते!

फिर वही दीपक जगेंगे,
ज्योति के मेले लगेंगे;
फिर सजीली घाटियों को--
किरण-कंचन कर रंगेंगे;
पर न तुम अब फिर जगोगे,
ज्योति बन जीवन रंगोगे;
धूम्र में भी जलेंगे, पर--
कहां तक? कह नहीं सकते!
हम जिसे जीवन कहते हैं, वह मृत्यु के द्वार पर लगी हुई एक कतार है। कोई
आज गया, कोई कल जाएगा। देर-अबेर की बात है। वसंत ऐसा ही आता रहेगा, पृथ्वी ऐसी ही दुल्हन बनती रहेगी, पक्षी ऐसे ही गीत गाएंगे, फूल भी खिलेंगे, सूरज भी ऊगेगा, चांद-तारे भी चलेंगे, लेकिन तुम? तुम नहीं होओगे। तुम धूल में मिल चुके होओगे। खोजे से भी तुम्हारा कोई निशान न मिलेगा। कहीं कोई पग-चिह्न भी नहीं पाए जाएंगे। हम हैं क्या, पानी पर खींंची गई लकीरें हैं। बन भी नहीं पाते और मिट जाते हैं।
चाहे कोई सत्तर साल जिए और चाहे सात सौ साल, भेद नहीं पड़ता; मौत तो खड़ी
ही है अंत में। और जब मौत अंत में खड़ी है, एक विराट प्रश्नचिह्न बनकर, तब तुम्हें जीवन को थोड़ा सोच कर जीना चाहिए। ऐसे जीओ कि मौत को जीत सको। ऐसे जीओ कि मौत तुम्हें मिटा न सके। ऐसे जीओ कि तुम्हारे भीतर कुछ अनुभव में आ जाए जो अमृत है। तो तुम धार्मिक हो। और अगर ऐसे जीए कि जो भी कमाया, मौत ने छीन लिया, जो भी बचाया, मौत ने लूट लिया, तो तुम सांसारिक हो।
लोग मुझसे पूछते हैं, संसारी और संन्यासी की परिभाषा क्या? सीधी-सादी परिभाषा है। संसारी वह है, जिसकी सारी संपदा मृत्यु छीन लेगी। मृत्यु के बाद जिसके पास कुछ भी न बचेगा। और संन्यासी वह है कि मृत्यु कितना ही छीने, जो असली है, मूल्यवान है, उसे नहीं छीन पाएगी। उसने अनुभव कर लिया है अपने भीतर शाश्वत का।
पर हम दौड़ रहे बाहर, भीतर का अनुभव भी हो तो कैसे हो! हम बटोर रहे व्यर्थ, सार्थक की प्रतीति हो तो कैसे हो! हम दबे जा रहे हैं व्यर्थ के पहाड़ से, इसलिए विवेक हमारे भीतर जन्मता नहीं। हम विचार में ही उलझे रह जाते हैं, विवेक को जन्मने का अवसर कहां! हमारी ऊर्जा विचारों में ही खो जाती है, बचती ही नहीं, तो विवेक हमारे भीतर सोया ही पड़ा रह जाता है। और विवेक का जागरण जीवन का वास्तविक प्रारंभ है।
विवेक का अर्थ हैः तुम्हारे भीतर चैतन्य का आविर्भाव, इस बात की प्रतीति कि मैं कौन हूं। उपनिषद कहते हैं, वह नहीं; मैं जो कहता हूं, वह

नहीं; गुलाल जो कहते हैं, वह नहीं; तम्हारा अनुभव, निज का अनुभव कि मैं कौन हूं जिस दिन भीतर दीये की तरह जलता है, उस दिन मृत्यु पराजित हो गई। उस दिन तुम्हारी विजययात्रा पूर्ण हो गई। उस दिन पहुंच गए सिंहासन पर, जहां से हटाए नहीं जा सकते।
आज के सूत्र इस अंतर्यात्रा में बड़े सहयोगी हो सकेंगे। एक-एक सूत्र
को ध्यानपूर्वक हृदय में उतर जाने देना।
निरमल हरि को नाम ताहि नहीं मानहीं।
सरल है परमात्मा की बात, सीधी-साफ है। निर्दोष चित्त को जल्दी ही समझ में आ जाए, ऐसी है। मगर हमारे चित्त बड़े कपटी; हमारे चित्त बड़े जालसाज; हमारे चित्त बड़े उलटे--निर्दोषता तो छू नहीं गई।
जीसस ने कहा हैः जब तक तुम एक छोटे बच्चे की भांति न हो जाओगे, तुम्हारा परमात्मा से कोई मिलन न होगा। एक बार पुनः छोटे बच्चे की भांति होना पड़ता है। ऐसा मत समझना कि सभी बच्चों को परमात्मा का अनुभव हो रहा है। किसी बच्चे को नहीं हो रहा है। पुनः जब कोई बच्चा होता है तब अनुभव होता है। बच्चे तो अज्ञानी हैं, अभी तो उन्हें सब भटकावों से गुजरना होगा, अभी तो उन्हें बहुत भूलें करनी होंगी, अभी तो उन्हें सब मूर्च्छाओं में खोना होगा, अभी तो पद की, प्रतिष्ठा की, महत्वाकांक्षा की दौड़ में वे जाएंगे, अभी जाना जरूरी है, लेकिन जब कोई इन सबसे थक कर वापस लौटता है पुनः, तब अज्ञानी नहीं होता। तब उसकी सरलता साधुता है। तब एक निर्मल भाव उसमें होता है। चित्त के दर्पण पर कोई धूल नहीं रह जाती। देख लिया संसार को और पाया वहां कुछ भी नहीं है।
बच्चे तो कैसे यह मानें कि वहां कुछ भी नहीं है। बच्चे तो दौड़ेंगे, दौड़ कर ही जानेंगे, गिरेंगे तो जानेंगे, बार-बार गिरेंगे तो जानेंगे--बार-बार गिर कर भी जान लें तो भी सौभाग्य है। कितने तो हैं जो गिरते ही रहते हैं और जानते ही नहीं। वही व्यक्ति ठीक अर्थों में प्रौढ़ होता है जो पुनः बच्चे की भांति सरल हो जाता है। उसके जीवन का वर्तुल पूरा हो गया। बच्चे की तरह शुरू हुई थी यात्रा, बच्चे की तरह ही यात्रा पूर्ण हो गई। जब कोई वृद्ध बच्चे की भांति सरल होता है, तो उस दशा का नाम ही संतत्व है। वही है ऋषि की परम अवस्था। वहीं से बहते हैं उपनिषद, गीता, कुरान--उसी गंगोत्री से, उसी निर्मल जलस्रोत से।
निरमल हरि को नाम...
ईश्वर की बात तो बड़ी सरल है, सरल से सरल को समझ में आ जाती है, लेकिन हम उलटे हैं।
... ताहि नहीं मानहीं।
लेकिन हमारा मन उस सरल को मानना नहीं चाहता।
हमारा मन जटिल को मानता है, इस सत्य को ठीक से समझो।
हमारा मन जटिल में बहुत रस लेता है। लोग पहेलियां सुलझाते हैं।
तुम्हें कोई पहेली पकड़ा दे, बेकार की पहेली, तो भी तुम सुलझाते रहते हो।
जानते भी हो कि सुलझा कर भी क्या होगा, मगर नहीं, तुम्हारी खोपड़ी पहेली सुलझाने में लग जाती है। क्योंकि तुम्हारे अहंकार को चुनौती दे दी उसने। तुम्हारा अहंकार जब तक सुलझा न ले तब तक तुम्हें बेचैनी बनी रहेगी, तुम ठीक से सो न पाओगे, रात नींद में भी पहेली तुम्हारे आस-पास तैरती रहेगी, तुम्हारे सपनों में भी झांकती रहेगी। जितनी कठिन बात हो उतने हम ज्यादा आकर्षित होते हैं। इसीलिए तो पद आकर्षित करते हैं, क्योंकि उनको पाना कठिन है। करोड़ों लोग दौड़ रहे हैं, बड़ी भयंकर प्रतिस्पर्धा है--गलाघोंट-- जहां सब एक-दूसरे की गर्दन काटने को तैयार हैं। तुम भी चले, लेकर अपने धनुष-बाण! तुम भी तत्पर हुए! तुमने भी बांध ली जिद कि दिखला कर रहेंगे! साधुता सरल है। साधु शब्द का अर्थ ही होता हैः सरल। साधु का अर्थ ही होता हैः निर्मल। साधुता किसी को आकर्षित नहीं करती। सरल होने में क्या रखा है! अरे, सरल तो पौधे भी हैं, पशु भी हैं पक्षी भी हैं। मजा तो जटिल होने में है। और तुम अगर अपने मस्तिष्क के भीतर झांकोगे, तुम पाओगे कितनी जटिलताएं तुमने पाल रखी हैं! कैसी-कैसी जटिलताएं! और कितनी पहेलियां इकट्ठी कर ली हैं, जिनको तुम बूझ नहीं पाए। वे सब तुम्हारी छाती पर तीरों

की तरह चुभी हैं और घाव बना रही हैं। फिर इस जटिल चित्त से जो सरलतम है उसको सुलझाना मुश्किल हो जाता है। क्योंकि यह जटिल अयासी हो जाता है जटिल को सुलझाने का। सरल से इसकी बात ही नहीं पड़ती। इसे तो इरछी-तिरछी हो तो ही दिखाई पड़ती है। इसके देखने का ढंग और रवैया ही ऐसा हो जाता है।
मुल्ला नसरुद्दीन को किसी ने बाजार में चलते देखा; एक पैर में काला जूता पहने है, दूसरे में लाल। पूछा कि भइया, कोई नई फैशन निकली है? ! एक जूता लाल एक काला! मुल्ला ने कहा नहीं जी, कोई फैशन नहीं निकली, यह उल्लू के पट्ठे उस दुकानदार की हरकत है। दो जोड़ी जूते खरीदे हैं, दोनों डिब्बों में ऐसे ही जूते बांध दिए हैं--एक काला, एक लाल।
सीधी-सी बात है। मगर जटिल चित्त को दिखाई पड़नी मुश्किल हो जाती है और मुल्ला नसरुद्दीन को हम क्षमा कर सकते हैं, और यह कहानी शायद कल्पित हो, लेकिन इस तरह की वास्तविक घटनाएं हैं।
बड़ा वैज्ञानिक हुआ, न्यूटन। उसने दो बिल्लियां पाल रखी थीं। बड़ा गणितज्ञ। लेकिन उसे बड़ी दिक्कत होती थी, कभी-कभी रात को बिल्लियां देर से आतीं--बिल्लियां तो बिल्लियां--तो उसको जागना पड़ता, उनकी राह देखनी पड़ती, जब वे आ जातीं, उनको सुला देता, तब सोता। किसी ने सलाह दी कि ऐसा क्यों नहीं करते कि दरवाजे में एक छेद कर दो, जब आएंगी अपने छेद से निकल कर अंदर आकर सो जाएंगी, तुम परेशान होने से बच जाओगे। अब कहां... कभी-कभी आधी रात तक बैठे रहते हो, बिल्ली नहीं आई है! उसने कहा, यह बात तो जंची।
दूसरे दिन जब मित्र ने देखा तो बहुत हैरान हुआ, उसने दो छेद बना रखे हैं। पूछा, दो किसलिए? तो न्यूटन ने कहाः एक बड़ी बिल्ली के लिए, एक छोटी बिल्ली के लिए।
अब यह बड़ा गणितज्ञ है। इसको यह ख्याल में ही नहीं आ सका कि एक ही छेद
से दोनों निकल सकती हैं। आगे-पीछे निकल सकती हैं। कोई एक ही साथ निकलने की जरूरत है! मगर गणित गणित है। दो बिल्लियां हैं तो दो छेद की जरूरत है। बड़ी के लिए एक बड़ा, छोटी के लिए एक छोटा। मित्र ने तो सिर ठोंक लिया। उसने कहा, ख़ाक तुम गणित समझते हो!
मगर न्यूटन गणित समझता है। गणित समझने के कारण ही यह जीवन की छोटी-सी बात समझ में नहीं आ रही है। गणित तो बड़े गंभीर समझता है, बड़े दूर-दूर के समझता है... !
अल्बर्ट आइंस्टीन ने इस सदी में गणित के सबसे कठिन सवाल हल किए हैं; मगर जीवन के छोटे-छोटे मामलों में उन्हें बहुत झंझट हो जाती थी। बाथरूम में बैठ जाते तो घंटों न निकलते। छह-छह घंटे! पत्नी परेशान, पूरा घर परेशान। उनसे पूछो तो वे कहते कि मैं समय भूल जाता हूं। और समय के संबंध में जितने बड़े जानकार वे थे, उतना बड़ा जानकार इस सदी में कोई दूसरा नहीं था। उनके सारे जीवन की खोज ही टाइम और स्पेस, समय और आकाश, इसी पर बंधी है। एक दिन एक मित्र ने उनको बुलाया था अपने घर, भोजन के लिए। रात देर हो गई, मित्र बार-बार घड़ी देखे कि अब वे जाएं, वे जाएं ही न! जम्हाइयां लें, वे बार-बार घड़ी देखें, आखिर मित्र के बर्दाश्त के बाहर हो गया--बड़े आदमी को ऐसे एकदम कहा भी नहीं जा सकता कि अब आप अपने घर जाइए--आखिर जब बहुत देर हो गई, दो बजने लगे, दो का घंटा बजा जब घंटाघर से, तो मित्र ने कहा कि अब तो कुछ करना ही पड़ेगा नहीं तो यह आदमी रात भर जगाएगा! न कोई बातचीत करने को है-- दोनों जम्हाई ले रहे हैं, दोनों घड़ी देखते हैं और बैठे एक-दूसरे की शक्ल देख रहे हैं!

आखिर उस मित्र ने कहा कि आपकी पत्नी राह देखती होगी। अलबर्ट आइंस्टीन
ने कहा कि मेरी पत्नी! तो तुम जाते क्यों नहीं अपने घर? उसने कहाः मैं अपने घर जाऊं! मैं अपने घर हूं! अलबर्ट आइंस्टीन ने कहाः तो भले आदमी, पहले क्यों नहीं बताया कि यह तेरा घर है! मैं यही सोच-सोच कर बार-बार घड़ी देखता हूं कि भइया, यह जाए तो मैं सोऊं! और यह जमा ही हुआ है, अब कहते भी ठीक नहीं लगता किसी मेहमान से, इसलिए मैं सोच-सोच कर रह जाता हूं। यह जब घड़ियाल में दो बजे तो मेरी बरदाश्त के बाहर हुई जा रही थी बात। अगर तुम न कहते तो मैं कहता, तुमने मेरी जबान से बात छीन ली।

तब उठा जब पक्का हो गया कि मेहमान मैं हूं, मेजबान यह है।
जीवन के बड़े सवाल हल करने में आइंस्टीन की प्रतिभा का कोई मुकाबला नहीं है। लेकिन जीवन के छोटे-छोटे मसले! अक्सर ऐसा हो जाता है, जिस यंत्र से दूर की चीजें दिखाई पड़ती हैं। उस यंत्र से पास की चीजें दिखाई नहीं पड़तीं। जो दूरदर्शी यंत्र होता है, वह खुर्दबीन नहीं है। दूरदर्शी यंत्र लेकर तुम अपनी पत्नी को खोजने घर में मत निकल जाना। मिलेगी ही नहीं। उससे चांद-तारे खोज सकते हो तुम, जो नहीं दिखाई पड़ते खाली आंखों से; पत्नी कहां दिखाई पड़ेगी।
मस्तिष्क के भी दो ढंग हैं। एक है, दूर की बात देखने का ढंग, दूरदर्शी।
और एक है, निकट की बात देखने का ढंग। परमात्मा निकट है। परमात्मा चांद-तारों की तरह दूर नहीं है। सब जगह है। और हम पास देखना भूल गए हैं। तुम जाकर आंख के डाक्टर से पूछना, उसके पास दो तरह के मरीज आते हैं। एक जिनको दूर तो ठीक दिखाई पड़ता है, पास नहीं दिखाई पड़ता। और एक वे जिनको पास तो ठीक दिखाई पड़ता है, दूर... । और कुछ मरीज ऐसे भी होते हैं कि जिनको दोनों तरफ देखने में अड़चन होती है--पास भी दिखाई पड़ना मुश्किल है, दूर भी दिखाई पड़ना मुश्किल है। तो उनका चश्मा दो ढंग का बनाना पड़ता है, उसमें दो ढंग के कांच होते हैं। ऊपर एक तरह का कांच होता है, नीचे दूसरी तरह का कांच होता है। नीचे के कांच से वे पास की तरफ देखते हैं, जब पढ़ते-करते हैं; और जब उन्हें दूर की चीज देखनी होती है, आंख उठाते हैं, तो ऊपर के कांच से देखते हैं। मस्तिष्क की भी ये दो अवस्थाएं हैं। परमात्मा पास है। पास से भी पास। तुमसे भी ज्यादा पास। उसे जानने के लिए कोई बहुत गणित, कोई तर्कशास्त्र, कोई जटिल विचार की प्रक्रिया नहीं चाहिए। उसके लिए सरलता चाहिए, ध्यान चाहिए, निर्मलता चाहिए, निर्विचार भाव चाहिए। उसके लिए छोटे बच्चे की भांति होना जरूरी है। ठीक कहते हैं गुलाल।
निरमल हरि को नाम ताहि नहीं मानहीं।
लेकिन तुम उसे नहीं मानोगे। क्योंकि बात इतनी सरल है। तुम कहोगे, प्रमाण? तुम कहोगे, तर्क, आधार? और परमात्मा के लिए कोई तर्क नहीं दिया जा सकता। परमात्मा तो सभी तर्कों का आधार है, इसलिए उसके लिए कोई तर्क नहीं हो सकता। परमात्मा तो सारे तर्को के पार है। इसलिये उसके लिये कोई तर्क नहीं हो सकता। उसके लिए क्या प्रमाण होगा? वही तो है प्रमाण देने वाला, वही तो है प्रमाण मांगने वाला, उसके लिए कैसे प्रमाण होगा? तुम्हारे भीतर जो देखता है, वही तो है परमात्मा, तुम परमात्मा को कैसे देखोगे?
इस बात को जरा ख्याल में लेना।
लोग कहते हैं, हमें परमात्मा को देखना है। यात्रा ही गलत शुरू हो गई! पहला ही कदम भ्रांति का उठा लिया! --परमात्मा को देखना है। परमात्मा तो वह है, जो तुम्हारे भीतर देखता है। देखने की क्षमता, तुम्हारी दर्शन की क्षमता परमात्मा है। तुम्हारा द्रष्टा-भाव, साक्षीभाव परमात्मा है। तुम साक्षीभाव को कैसे देखोगे? उसे तो देखने का कोई उपाय नहीं है। सब देख सकते हो, स्वयं के देखने को कैसे देखोगे? कोई मार्ग नहीं है।
परमात्मा बाहर होता, हम खोज लेते--कभी का खोज लेते। तारों पर पहुंच सकते हैं, चांद पर पहुंच सकते हैं, गौरीशंकर पर पहुंच सकते हैं, क्या परमात्मा को नहीं खोज लेते? लेकिन परमात्मा बैठा है तुम्हारे हृदय की धकधक में; जहां तुम्हारे प्राणों का प्राण है, वहां। वह इतने पास बैठा है कि तुम्हारी समझ में नहीं आता कि वहां जाएं तो कैसे जाएं! न कोई टेन जाती वहां, न कोई हवाई जहाज जाता वहां; पद-यात्रा तक नहीं कर सकते! नहीं तो चल पड़ते पदयात्रा पर। वहा कोई यात्रा ही संभव नहीं है। वहां तो सब यात्राएं छोड़ कर बैठ जाना पड़ता है।
कुछ चीजें हैं जो दौड़ कर पाई जाती हैं--संसार की सब चीजें दौड़ कर पाई जाती हैं। इसमें जो जितना दौड़ में कुशल है, उतना सफल होगा। लेकिन परमात्मा बैठ कर पाया जाता है, रुक कर पाया जाता है। जो रुक जाने में सफल हैं, जो बैठ जाने की कला सीख लिए हैं... । ध्यान और है क्या? शांत हो कर बैठ जाने की कला। थोड़ी देर को दौड़ना नहीं, आपा-धापी नहीं, छोड़ देना सब यात्राएं, थोड़ी देर को

ऐसे हो जाना जैसे तुम हो ही नहीं, बस यही निर्मलता है। न हो जाना निर्मलता है। और परमात्मा निर्मल को उपलब्ध होता है।
विचार तो मल है, वह तो कूड़ा-करकट है। जितने तुम विचार से भरे हो, उतने
ही व्यर्थ जंजाल से भरे हो।
निरमल हरि को नाम ताहि नहीं मानहीं।
भरमत फिरैं सब ठांव कपट मन ठानहीं।।
सारी दुनिया में भरमते फिरते हो, बड़े-बड़े कपट ठाने हुए हो, सबको धोखा देने में लगे हो, और एक बात भूल ही गए कि धोखा देने में अपने को तुम सबसे बड़ा धोखा दे रहे हो। सबकी जेबें काट रहे हो और यह भूल ही गए कि इसी बीच तुम्हारी जेब कट गई।
दो जेबकतरे जेलखाने से एक साथ छूटे। सो दोनों बार-बार अपनी जेब टटोल
कर देख लें। आखिर एक से न रहा गया, उसने कहाः बार-बार क्या जेब टटोलते हो? उसने कहाः और क्या करें; तुम्हारी मैं टटोल नहीं सकता, क्योंकि तुम भी इस कला में प्रवीण हो; मेरी तुम टटोल नहीं सकते, क्योंकि मैं भी इस कला में प्रवीण हूं; मगर कौन जाने कौन ज्यादा प्रवीण हो! तुम्हारी तो मैं झंझट में पड़ना नहीं चाहता, अपनी बचाना चाहता हूं। मैं तुम्हारी जेब के ख्याल में लग जाऊं और मेरी कट जाए! इसलिए बार-बार अपनी जेब देख लेता हूं कि अभी है कि नहीं, बची कि गई?
कभी तुम अपनी जेब तो टटोलो! जेबकतरों के बाजार में हो, जरा संभल कर चलो! मगर तुम्हें अपनी जेब टटोलने की फुरसत कहां? दूसरे की जेब इतना आकर्षित कर रही है कि तुम एक जेब से दूसरे की जेब, दूसरे जेब से तीसरे की जेब पर चले जाते हो। इस बीच तुम्हारी कब कट जाती है, तुम्हें पता ही नहीं चलता। जब पतंग कट जाती है तब पता चलता है। मगर फिर कुछ हो नहीं सकता। जिंदगी भर दूसरों को धोखा देने में लग जाती है, आखिर में पता चलता हैः खुद धोखा खा गए। जो गड्ढे औरों के लिए खोदे थे, उसमें खुद गिर गए। जो फंदे औरों को फांसने के लिए बनाए थे, वे खुद के लिए फांसी बन गए। यह बहुत बाद में पता चलता है, बड़ी देर में पता चलता है, यह आखिरी क्षण में पता चलता है। इसीलिए तो लोग रोते हुए मरते हैं। मृत्यु के डर से नहीं रोते हैं वे। मृत्यु का क्या डर! मृत्यु तो विश्राम की तरह है। चिरनिद्रा है। मृत्यु से कोई नहीं डरता। डरते हैं, रोते हैं इसलिए, भयभीत होते हैं इसलिए कि अरे, यह जिंदगी का अवसर हाथ से गया, हम औरों के पीछे लगे रहे, खुद ही धोखा खा गए--बुरा धोखा खा गए!
भरमत फिरैं सब ठांव कपट मन ठानहीं।।
कहां-कहां नहीं भरमते फिरते हो! पद के पीछे, धन के पीछे, प्रतिष्ठा के पीछे। क्या-क्या नहीं करते हो तुम! तुम कुछ भी करने को राजी हो खुशामद करने को राजी हो। चापलूसी करने को राजी हो--कुछ भी करने को राजी हो। बेईमानी करने को राजी हो, गला काटने को राजी हो, हिंसा करने को राजी हो, लेकिन सीढ़ियां बन जाएं, किसी तरह तुम पद पर पहुंच जाओ, प्रतिष्ठा पर पहुंच जाओ, कुछ ठीकरे तुम्हारे पास इकट्ठे हो जाएं!
सूझत नाहीं अंध ढूढत जग सानहीं।
कुछ सूझता नहीं है तुम्हें, बिल्कुल अंधे हो तुम, मगर बड़ी अकड़ में संसार में धन को, पद को, प्रतिष्ठा को खोजने निकले हो! बड़ी शान से।
सूझत नाहीं अंध ढूढत जग सानहीं।
बड़ी शान से चल पड़े हो, बड़ी अकड़ से, इसकी फिकर ही नहीं कि अंधे हो। जाओगे कहां! पहले आंख तो ठीक कर लो, परतें देखना तो सीख लो पहले द्रष्टा तो बन जाओ, फिर खोजने निकलना! धर्म सीधी सी बात कहता है कि पहले देखना तो सीख लो! अगर तुम्हें सत्य मिल भी गया और तुम्हारे पास देखने की आंखें ही न हुईं, तो क्या करोगे?
तुमने अंधों की कहानी तो सुनी ही कि पांचों अंधे हाथी को देखने गए। हाथी को तो देखने चले गए, इसकी फिकर ही न की कि हम अंधे हैं, हाथी मिल भी जाएगा तो देखेंगे कैसे? फिर जैसा देखा वैसा अंधे ही केवल देख सकते थे! किसी ने पैर टटोला और समझा कि यह रहा हाथी; और किसी ने कान टटोला और समझा कि यह रहा हाथी; और किसी ने पीठ टटोली और समझा कि यह रहा हाथी! फिर भारी विवाद

चला अंधों में, बैठ कर उनमें भारी तर्क-वितर्क हुआ, क्योंकि एक ने कहा कि अंधा मैं नहीं हूं, तुम हो; मैंने तो भलीभांति देखा कि हाथी जो है, वह एक मंदिर के खंबे की तरह है। उसने पैर को छूआ था हाथी के। दूसरे ने कहा, झूठ, बिल्कुल झूठ; तुम अंधे हो; आंख वाला मैं हूं। मैंने टटोल कर देखा, दीवाल की तरह था। अनुभव से कहता हूं; अरे, अनुभव की मानो! तीसरे ने कहाः सरासर झूठ, सौ प्रतिशत झूठ। तुम भी अंधे हो। मैंने भी टटोल कर देखा था, खूब टटोल कर देखा, बार-बार टटोल कर देखा--उसने कान टटोला था--उसने कहा, हाथी तो ऐसा है जैसे सूप होता है, जिसमें स्त्रियां चावल-दाल इत्यादि साफ करती हैं। पांचों एक-दूसरे को अंधा कह रहे हैं। और प्रत्येक अपने को सिद्ध कर रहा है--मैं आंख वाला हूं। इसके पहले कि तुम सत्य की तलाश में निकलो कि आनंद की तलाश में निकलो, कम से कम आंख तो बना लो, कम से कम आंख तो खोल लो! सूझत नाहीं अंध ढूढत जग सानहीं।
कह गुलाल नर मूढ़ सांच नहिं जानहीं।।
ऐसे मूढ़ नर कभी भी सत्य को नहीं जान सकेंगे, क्योंकि उन्होंने बुनियाद ही गलत रख दी, यह मंदिर कभी बनेगा नहीं। बुनियाद रखनी चाहिए दृष्टि की निर्मलता से। देखने की कला पहले सीखनी चाहिए। इसके पहले कि अंधे हाथी के पास जाते, किसी वैद्य के पास जाना था, किसी बुद्ध के पास जाना था बुद्ध वैद्य ही हैं, जो तुम्हारी भीतर की आंख को निर्मल करते हैं, जो तुम्हारी भीतर की आंख का परदा हटा दें। जाना था किसी वैद्य के पास कि तुम्हारी आंखों की जाली काट दे, कि तुम देख सको, लेकिन चले हाथी के पास!
यह सारा संसार उन अंधों से भरा है जो हाथियों के पास जा रहे हैं। यहां शायद ही कोई कभी इसकी फिकर करता है कि पहले मैं अपनी आंख ठीक कर लूं, फिर जाऊंगा; पहले अपनी लरजती आवाज तो सम्हाल लूं, फिर गीत गाऊंगा; पहले अपने पैर उठाना तो सीख लूं, फिर दौडूंगा। पहले भीतर घटना घट जाने दूं, फिर बाहर तो अपने से घट जाती है।
माया मोह के साथ सदा नर सोइया।
मनुष्य सोया हुआ है, नींद में है, वही उसका अंधापन है। सोया है माया में, सोया है मोह में।
माया का अर्थ होता हैः तुम्हारे द्वारा संसार पर आरोपित कल्पनाएं। माया का यह अर्थ मत समझना जो तुम्हारे तथाकथित महात्मा तुम्हें समझाते हैं कि यह सारा जग माया है। जरा एक चपत लगा कर देखो उनको और फौरन डंडा उठा लेंगे! और तब तुम उनसे कहना कि सब माया है, महात्मा जी! कैसी चपत! यह कैसे आप नाराज हुए जा रहे हैं! लेकिन चपत माया नहीं है, सारा संसार माया है, और डंडा उठा लिया। डंडा माया नहीं है। यह जो बातें कर रहे हैं कि सारा संसार माया है, इनकी जरा तुम परीक्षा तो करो! और तुम्हें पता चल जाएगा कि ये सब बकवास कर रहे हैं। अगर जगत माया है, तो फिर ये त्याग की क्या बातें कर रहे हैं? कि हम सब संसार छोड़ कर चले आए। जब माया ही है तो क्या खाक छोड़ोगे! जब है ही नहीं, तो छोड़ोगे क्या! जब तुम्हारे पास कुछ था ही नहीं पहले से, तो त्योगोगे क्या? कोई अपनी छाया तो नहीं त्यागता।
माया जगत नहीं है। जगत सत्य है, उतना ही जितना परमात्मा, क्योंकि जगत परमात्मा है। लेकिन हां, जगत के परदे पर तुम अपनी कल्पनाओं के बहुत से जाल बुनते हो, वे जाल तुम्हारे हैं, वे तुम बुनते हो। तुम्हारा मन स्रोत है माया का, जगत नहीं।
मुल्ला नसरुद्दीन की जवानी की घटना है--
अंततः मां-बाप और रिश्तेदारों ने खूब सोच-समझ कर शेख नियाज की खूबसूरत बेटी गुलजान से नसरुद्दीन का निकाह करने का निर्णय किया। बाप ने नसरुद्दीन से कहा कि बेटा, लड़की के साथ बैठ कर घड़ी भर बातचीत कर लो। आखिर तुम दोनों को जीवन भर साथ-साथ रहना है, सो अभी एक-दूसरे को अच्छी तरह पहचान लो।
नसरुद्दीन उन दिनों बड़ा नैतिक और धर्मपरायण युवक था। उसने पहला सवाल किया--हे हिरणी सी आंखों और गुलाब की पंखुरी से ओंठों वाली गुल.जान, क्या तुम खुदा की कसम खाकर कह सकती हो कि तुमने कभी कोई पाप नहीं किया है?

गुलजान बोलीः ऐ सूरज की रोशनी को भी मात कर देने वाले बुद्धिमान युवक,
सच कहती हूं, मैंने अपनी इस छोटी सी सत्रह वर्ष की जिंदगी में बस एक ही पाप किया है, वह यह कि मैं घंटों आईने के सामने खड़ी होकर अपनी ही छवि को निहारती रहती हूं। मुझे अपने हुस्न पर नाज है। और मैं मानती हूं कि इस दुनिया में मुझ से ज्यादा खूबसूरत कोई भी नहीं है।
नसरुद्दीन ने गुस्से में कहा कि जो पूछा गया है, उसका जवाब दो, जी! मैंने तुमसे पाप के संबंध में पूछा था और तुम अपने भ्रमों के संबंध में बता रही हो।
दर्पण के सामने खड़े होकर जो तुम देखते हो, वह जरूरी नहीं कि सिर्प तुम्हारी चेहरे की तस्वीर हो; उसमें बहुत कुछ तुम्हारी धारणाएं मिली होती हैं, कल्पनाएं मिली होती हैं। तुम दर्पण को ही प्रतिफलित नहीं करने देते कि तुम क्या हो, तुम उसमें बहुत कुछ जोड़ देते हो, बहुत रंग डाल देते हो।
यहां मूढ़ से मूढ़ आदमी संसार में समझता हैः वह ज्ञानी। जितना मूढ़ उतना ज्यादा अपने को ज्ञानी समझता है।
... ज्ञानी तो समझने लगते हैं कि हमें कुछ नहीं आता।
सुकरात ने कहा है कि मैं एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ नहीं जानता।
यह तो ज्ञानी का वचन। और मूढ़ों से पूछो! वे सब जानते हैं। तुम जो पूछो, वह जानते हैं। ऐसी कोई चीज ही नहीं जो वे न जानते हों। तुम ऐसा कोई सवाल नहीं पूछ सकते, जिसका जवाब उनके पास न हो। इसके पहले कि तुम सवाल पूछो, जवाब तैयार है। मूढ़ों को भ्रांतियां होती हैं। न उनसे ज्यादा कोई ज्ञानी है, न उनसे ज्यादा कोई सुंदर है, न उनसे ज्यादा कोई मेधावी है, न उनसे ज्यादा कोई योग्य है किसी बात में। कहें, न कहें वे, मगर इन भ्रांतियों को भीतर लेकर चलते हैं। और जीवन के पर्दे पर इन्हीं भ्रांतियों को डालते रहते हैं। इसीलिए तो दुनिया में चापलूसी चलती है। नहीं तो चापलूसी चल नहीं सकती। दुनिया में इतने चमचे कैसे हैं? कहां से आते हैं? कोई फैक्टरी चमचे नहीं बनाती। चम्मचें बनाती है छोटी-छोटी। ये बड़े-बड़े चमचे, एकदम आकाश से आ जाते हैं! नहीं, इसके पीछे कारण है। क्योंकि लोग भ्रांतियों में रहते हैं। लोग भ्रांतियों में रहते हैं, तुम उनकी भ्रांतियों को अगर सहारा दो, वे तुमसे प्रसन्न हो जाते हैं। तुम उनसे झूठ कहो, झूठ से झूठ कहो, तो भी मान लेते हैं। इनकार करना मुश्किल हो जाता है। तुम उनकी भ्रांति का सहारा कर रहे हो।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने बगल के सेठ से एक कटोरा मांग लाया कि घर में मेहमान आए हैं, गरीब आदमी हूं, कटोरा नहीं है; सुबह लौटा जाऊंगा। सेठ ऐसे तो कृपण था, लेकिन उसने सोचा कि क्या हर्जा है, सुबह कटोरा लौटा जाएगा, कोई सदा के लिए मांग भी नहीं रहा है। कोई लेकर भाग जाए, ऐसा आदमी भी नहीं है। और एक कटोरे के पीछे घरद्वार छोड़ कर भागेगा कहां? दे दिया कटोरा।
सुबह नसरुद्दीन लौटा, एक कटोरा भी लाया, साथ में एक छोटी कटोरी भी लाया। सेठ ने पूछाः यह कटोरी कहां से ले आए? यह कटोरी किसलिए? उसने कहा कि रात कटोरे ने कटोरी को जन्म दिया। आपका कटोरा गर्भवान था। सेठ ने कहा कि हद हो गई! मानने का जी तो न हुआ, लेकिन मानने का जी हुआ भी। बात तो सरासर झूठी थी, मगर अब यह कटोरी चांदी की साथ ले आया है, इसको छोड़ना भी उचित नहीं! प्रसन्नता से रख लिया।
पांच-सात दिन बाद नसरुद्दीन आया और उसने कहा कि मेहमान घर में आए हैं, कड़ाही की जरूरत है; खीर बनानी है। सेठ बड़ा खुश हुआ। कहाः जरा सम्हाल कर ले जाना, कड़ाही गर्भवती है। और सेठ रात भर सो नहीं सका कि देखें कल क्या होता है? और कल वही हुआ जो सोचा था सेठ ने। एक छोटी कड़ाही लेकर नसरुद्दीन आ गया। सेठ भी चौंका कि यह भी हद कर रहा है! यह मैंने कभी सोचा ही नहीं था, मगर कुछ न कुछ राज है। नसरुद्दीन ने कहा कि आप कहते थे कि कड़ाही गर्भवती है; यह छोटी कड़ाही पैदा हुई है। आपकी संपत्ति सम्हालिए। कड़ाही आपकी है, उसका बच्चा भी आपका है। वह भी सम्हाल लिया।
कोई महीना भर बाद नसरुद्दीन आया और कहा कि बड़ी जरूरत पड़ गई है, बहुत से लोगों को दावत दी है, तो कई थालियां चाहिए, कटोरियां चाहिए, पतेलियां चाहिए, कड़ाहियां चाहिए। सेठ ने कहा कि ले जाओ, जो चाहिए ले जाओ, मगर ख्याल

रखना कि सब गर्भवती हैं। नसरुद्दीन ने कहा कि वह तो मैं दो दफे देख ही चुका हूं, कि आपके यहां के बर्तन कोई साधारण बर्तन नहीं हैं, वह तो अपने अनुभव से देख चुका, आपको कहने की जरूरत नहीं। उस रात तो सेठ सो ही नहीं सका। लेकिन दूसरे दिन नसरुद्दीन नहीं आया। तो बड़ा चिंतित हुआ। तीसरे दिन नहीं आया तो चौथे दिन उसने आदमी को भेजा। नसरुद्दीन बैठा रो रहा था। आदमी ने कहा क्या हुआ? उसने कहा कि सब मर गए। पता नहीं क्या हुआ, फुड पाय.जनिंग हो गया या क्या हुआ, मगर सब मर गए। एक नहीं बचा! आज तीन दिन से मातम मना रहा हूं। आज आने की सोच ही रहा था, तीसरा पूरा हो गया, बस आज आता ही था, तुम्हें आने की कोई जरूरत न थी।
नौकर तो भागा, सेठ से बोला कि यह आदमी पागल है। यह कह रहा है, सब बर्तन
मर गए। बर्तन कहीं मरते हैं! अब सेठ को समझ आई कि अब खुद फंस गए। भागे हुए गए कि क्यों रे नसरुद्दीन के बच्चे, निकाल बर्तन! नसरुद्दीन ने कहा कि मालिक, सब मर गए! सेठ ने कहा कि कहीं बर्तन मरते हैं! नसरुद्दीन ने कहा कि जब बाल-बच्चे पैदा करते हैं, तो मरेंगे नहीं? मीठा-मीठा गप, कड़वा-कड़वा थू? जब मीठा पी गए, अब कड़वा भी पिओ--अब मैं भी क्या कर सकता हूं! मैं तो दफना भी चुका।
तुमसे जब कोई झूठ कहता है तुम्हारे बाबत, अगर वह प्रीतिकर हो, तो तुम स्वीकार कर लेते हो। अगर तुम्हारे अहंकार को भरता हो, तुम अंगीकार कर लेते हो। इसीलिए तो चापलूसी एक कला है। यह पहचानना कि इस आदमी की क्या भ्रांतियां हैं, कोई छोटी-मोटी बात नहीं और इसकी भ्रांतियों को बढ़ावा देना, इसकी भ्रांतियों को बढ़ा-चढ़ा कर बताना! बिल्कुल सींकचा आदमी हो, उससे भी कहो कि अरे क्या मोहम्मद अली तुम्हारे सामने, तो वह भी सीना फुला कर कहता है कि हां, वह क्या मोहम्मद अली क्या करेगा? देख रहे हो कि बिल्कुल सींकचा पहलवान है, कि कोई एक तमाचा लगा दे तो फिर उठेगा ही नहीं, फिर कभी उठेगा ही नहीं, मगर उससे भी कहो कि मोहम्मद अली कुछ नहीं तुम्हारे सामने, तो उसका भी अहंकार मानने को राजी हो जाता है। कुरूप से कुरूप स्त्री को कहो कि तुम तो सुंदर हो, तुम से सुंदर कौन, वह भी मानने को राजी हो जाती है। इसी स्त्री को आखिर मुल्ला नसरुद्दीन विवाह करके ले आया था। मुसलमानों में रिवाज है कि जब पत्नी आती है, तो वह पति से पूछती है कि मैं किसके सामने अपना बुर्का उठा सकती हूं? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि मुझे छोड़ कर सबके सामने उठा सकती हो। जिन-जिन को डरवाना हो, डरवा! बस, मुझ पर दया कर! ऐसे भी मैं दिन भर घर आता नहीं। रात आऊंगा सो आते ही से दीया बुझा दूंगा, पहला काम। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। जब तू दिखाई ही नहीं पड़ेगी, तो अंधेरे में सभी सुंदर हैं!
लेकिन कुरूप से कुरूप स्त्री भी यह सुनना नहीं चाहेगी। तुम बूढ़ी से बूढ़ी स्त्री को कहो कि होगी आपकी उम्र कोई चालीस के करीब और वह एकदम प्रसन्न होकर मान लेती है--कि तुम मिले पहली दफा!
मुझे एक कालेज में भर्ती होना था। एक कालेज से निकाल दिया गया था और कोई दूसरा कालेज लेने को तैयार भी नहीं था। अब यह एक ही कालेज बचा था। ऐसे गांव में बीस कालेज थे जहां मैं था, मगर कोई कालेज लेने को राजी नहीं था। क्योंकि वह जो झंझट एक कालेज में हो गई थी, उसकी वजह से वे कहते थे, हम झंझट नहीं लेना चाहते। वह झगड़ा यहां भी खड़ा होगा। क्योंकि हर प्रोफेसर से मेरा विवाद हो जाए, उपद्रव हो जाए, बातचीत हो जाए। और जब तक कोई निर्णय न हो जाए तब तक मैं विवाद जारी रखूं--और निर्णय तो विवादों के होते ही नहीं, सो महीनों बीत जाएं! कभी-कभी तो यह हालत हो जाए कि कक्षा में कोई आए नहीं, मैं और प्रोफेसर अकेले। उसको बेचारे को आना पड़े, क्योंकि उसको अपनी तनख्वाह लेनी है। और मुझे आना ही है, क्योंकि मुझे वह विवाद पूरा, उसका निष्कर्ष निकलवाना है। मुझसे एकांत में प्रोफेसर कहें, हम आपके हाथ जोड़ते हैं, क्या आप शांत नहीं बैठ सकते? मैंने कहा, क्यों शांत बैठें? पढ़ने-लिखने आए हैं, शांत बैठने आए हैं क्या? शांत ही बैठना होता अपने घर बैठते। पढ़-लिख कर फिर शांत बैठेंगे। अभी तो पढ़ना-लिखना चल रहा है।
अब कोई उपाय न देख कर मुझे उस कालेज के प्रिंसिपल के पास जाना पड़ा। उनके घर गया। उनके संबंध में कई कहानियां सुन रखी थीं, थोड़े झक्की थे, तो

मैंने कहा शायद बन जाए मेल! और घर पहुंचा तो देखा कि हैं पक्के झक्की! एक तो बड़े मोटे-तगड़े, बिल्कुल काले रंग के--यमदूत मालूम होते थे। बस, भैंसे की कमी थी! और जरा सी लंगोटी बांधे हुए काली की पूजा कर रहे थे जब मैं उनके घर गया--जय काली!! जय काली मैंने कहा, इनसे जमेगा। जब वे बाहर आए तो मैंने भी कहा, जय काली! उन्होंने मुझे चौंक कर देखा। मैंने कहाः मैंने बहुत महात्मा देखे, मगर आपका कोई मुकाबला नहीं। इस कलयुग में और आप जैसा भक्त! क्या भजन कर रहे थे आप! उन्होंने एकदम मुझे गले लगा लिया। वह बोले कि तुम पहले आदमी हो जो मुझे पहचाने। मेरे मोहल्ले-पड़ोस के लोग तो समझते हैं मैं पागल हूं! फिर तो उन्होंने कालेज में मुझे जगह भी दी, मेरी फीस भी माफ की, स्कॉलरशिप भी दी। और वे कहते फिरते थे कि अगर किसी ने मुझे पहचाना है, इस व्यक्ति ने पहचाना है। बस, वे जहां मुझे मिल जाते, इतना ही करना पड़ता मुझे कि जय काली! बस इतना सुनते ही से वे प्रसन्न हो जाते थे। उनकी भ्रांति को मैं बल दे रहा हूं, बस, सब ठीक है।
न कहीं कोई काली है, न कुछ है न कुछ है, नाहक सिर फोड़ रहे हैं! मगर यह तो मैंने बाद में उनसे कहा! तब से मुझसे बहुत नाराज हैं कि अगर तुमने पहले ही कहा होता, तो मैं तुमको कालेज में कदम नहीं रखने देता। इसीलिए तो, मैंने कहा, पहले मैंने कहा नहीं। कालेज में कदम मुझे रखना ही था--कहीं न कहीं रखना ही था!
जिस दिन कालेज छोड़ा, मैंने कहा मैं अब आपको असलियत बता दूं, जय काली का राज समझा दूं। उन्होंने कहा, क्या राज है? तो मैंने पूरी कहानी उनको बता दी कि बात कुल इतनी है, कि जब मैं बाहर बैठा तो मैंने कहा कि है तो यह आदमी बिल्कुल झक्की; लोग जो कहते हैं, उससे भी गया-बीता, महा मूढ़ता के काम कर रहा है--अब यह कोई काम है! और तब से जब की मैं आपको जब भी जय काली कहता था, तो दिल ही दिल में हंसता था कि वाह री दुनिया, मूढ़ों की मूढ़ता को सहायता दो और वे प्रसन्न होते हैं!
वे मुझसे इतने नाराज हुए कि अगर कभी रास्ते पर भी मिल जाते थे, दूर से
ही देख लेते कि मैं आ रहा हूं, रास्ता बदल देते। मैं कहता, सुनो तो भी, जय काली! कहां जा रहे?
एक दिन मुझसे बोले कि अब यह जय काली कहना बंद कर दो, क्योंकि जब तुम्हें भरोसा ही नहीं है काली में तो तुम क्यों जय काली कहते हो? मैंने कहा, वह तो मैं सिर्प आपको याद दिलाता हूं कि आपके धोखे को मैंने जरा सा बल दिया और आप प्रसन्न हो गए! कब जागेंगे?
कोई जागना नहीं चाहता। लोग सोए हैं, सपने देख रहे हैं। फिर काली का सपना हो कि राम का हो कि कृष्ण का हो कि बुद्ध का हो, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। जब तक तुम जागे हुए नहीं हो, तब तक तुम जो भी देख रहे हो वह सपना है। धार्मिक हो, अधार्मिक हो, कोई फर्क नहीं पड़ता। नास्तिक हो, आस्तिक हो, कोई फर्क नहीं पड़ता।
माया का अर्थ होता हैः तुम्हारे आरोपित कल्पनाओं के जाल। संसार सिर्फ पर्दा है, उस पर्दे पर तुम जो चाहो, वह आरोपित कर सकते हो।
माया मोह के साथ सदा नर सोइया।
और मोह का अर्थ होता हैः वह जो तुमने आरोपित कर दिए हैं अपने कल्पनाओं
के जाल, वे कहीं टूट न जाएं, इसका आग्रह, उनको बचाए रखो। चाहे खुद टूट जाऊं, मगर उनको बचाए रखूं। लोग मरने को राजी हैं, मगर अपने भ्रमों को छोड़ने को राजी नहीं हैं। और चारों तरफ लोग हैं जो कहते हैं कि हां, यह तो है ही, यही तो बहादुरों के लक्षण हैं, ... शहीदों की चिताओं पर जुड़ेंगे हर बरस मेले! मूढ़ मूढ़ों को और सहायता दे रहे हैं, वे उनको कह रहे हैं, घबड़ाओ मत, मर जाओ, बेफिक्री से मर जाओ, तुम्हारी चिता पर मेला जुड़ेगा। जिंदगी भर मेला नहीं जुड़ा, वह आदमी सोचता है कि चलो, मर कर ही जुड़ेगा मगर जुड़ेगा तो! मेला जुड़ना चाहिए। तुम्हारा निशान रह जाएगा, तुम्हारी स्मृति रह जाएगी, इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्ण अक्षरों में तुम्हारा नाम लिखा जाएगा!
लोग राजी हैं अपनी भ्रांतियों पर मरने के लिए। मुसलमान राजी है मरने
के लिए, अगर इस्लाम खतरे में है, इसका कोई शोरगुल मचा दे--बस, शोरगुल काफी है! इस मुसलमान को इस्लाम जीने की कोई इच्छा नहीं है, ... जीने की झंझट में

कौन पड़े? जीना लंबा सिलसिला है, मरना बिल्कुल आसान काम है, क्षण में हो जाता है। एक आवेश का क्षण और मौत हो जाती है। लोग हिंदू धर्म के लिए मरने को राजी हैं। मेरे पास आ जाते हैं।
एक सज्जन ने कुछ दिन पहले आकर मुझसे कहा कि बस, मुझे तो आपकी बात जंच गई, मैं तो आपकी बात पर मर मिटने को राजी हूं। मैंने कहा, ठहरो! मेरी बात पर मिटने की कोई जरूरत नहीं है। मेरी बात पर जीने को राजी हो कि नहीं, यह कहो? मर मिटने को तो कई मूढ़ राजी हो सकते हैं। जीना असली सवाल है! जीना लंबा मामला है, चौबीस घंटे सजग होना होगा, वर्षों तक सजगता साधनी होगी। मरने में क्या रखा है! जाओ, लेट जाओ ट्रेन के नीचे, मर जाओगे। फिर चाहे जय काली, जय काली कहते मर जाना--जो तुम्हें करना हो, करना।
मरना बहुत आसान है, याद रखना।
और दुनिया में कुछ लोग हैं जिनमें आत्मघात की वृत्ति है। वे रुग्ण लोग हैं। वे शहीद होने के लिए ही दीवाने रहते हैं। उनको शहीद होना ही है। वे शहीद होकर ही रहेंगे। तुम लाख उपाय करो, वे कोई न कोई रास्ता निकाल कर शहीद होंगे। देश के लिए मरेंगे, ... कहां का देश! सब रेखाएं नक्शों पर खींची हुई हैं। झंडों के लिए मर जाएंगे! सब झंडे काल्पनिक हैं; प्रतीकात्मक हैं। मूर्ति किसी ने तोड़ दी, उसके लिए मर जाएंगे। मस्जिद के सामने किसी ने बाजा बजा दिया, उसके लिए मर जाएंगे। गजब के लोग हैं! मस्जिद के सामने किसी ने बाजा बजा दिया!
मैं एक गांव में था। वहां हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया। मैंने पूछा कि बात क्या है? कुछ नहीं, मस्जिद के सामने लोग बाजा बजाते निकल गए। निकल जाने दो बाजा बजाते! मस्जिद का कुछ बिगड़ा नहीं। और ये बाजा कहीं तो बजाएंगे ही और परमात्मा सब जगह है--जितना मस्जिद में उतना मस्जिद के बाहर-- अगर बाजे से परमात्मा परेशान ही हो रहा है, तो वह कहीं भी परेशान होगा, ये बाजा तो बजाने ही वाले हैं! सिर्प मस्जिद के सामने दस कदम रोक दें, तो बस, ठीक। नहीं तो हिंदू-मुस्लिम दंगा हो गया। लोग कट गए। कोई पंद्रह आदमी मारे गए। और कई मकान जला दिए गए।
आदमी कुछ शहीद होने को एकदम उत्सुक है, आतुर है। तुम्हें इन रुग्णताओं का पता नहीं है, ख्याल में नहीं है कि अच्छी-अच्छी बातों के पीछे भी कभी-कभी सिर्प मानसिक रोग होते हैं और कुछ नहीं।
अभी मुझसे किसी संन्यासी ने पत्र लिख कर पूछा है--अब वे हैं मेरे संन्यासी, मगर उनको पता नहीं कि कहीं न कहीं भीतर रोग है उनको। उन्होंने लिखकर पूछा है कि जीसस को सूली लगी, मंसूर को सूली लगी, आपको सूली क्यों नहीं लगती? अब उनको इससे बेचैनी हो रही है। जब तक मुझे सूली न लगे, तब तक उनको चैन न मिले। अड़चन मैं उनकी समझता हूं। अड़चन उनकी यह हो रही है कि मुझे सूली लग जाए, तो वे कह सकें--देखा हमारा गुरु! अरे, जीसस और मंसूर की कोटि में उठ गया! उनको बड़ी हैरानी हो रही है कि मुझे सूली क्यों नहीं लग रही! दुश्मन भी मुझे सूली लगाने में उत्सुक हैं और मेरे मित्र भी। मित्रों
की अड़चन भी मैं समझता हूं। सूली लग जाए तो उनको निश्चिंतता हो जाए कि हां भाई, था कोई पहुंचा सिद्धपुरुष! अब उनकी तकलीफ यह है कि मैं कुछ अजीब ही किस्म का सिद्धपुरुष हूं! सूली की बात छोड़ो, मैं रहता महल में, चलता रॉल्स रॉयस में! सूली भी लगेगी तो रॉल्स रॉयस में बैठ कर ही जाने वाला हूं, इसका तुम ख्याल रखना! तुम्हें बाद में भी लोग सताएंगे कि हां, सूली लगी थी मगर रॉल्स रॉयस में बैठ कर क्यों गए?
उससे भी... वह भी उन्होंने लिखा है कि यह क्या मामला है? आप तो कहते हैं, सत्य बोलने वाले को सूली लगती है, आपको सूली तो लगती नहीं, उल्टे आप रॉल्स रॉयस में चलते हैं!
दो हजार साल में कुछ तो अकल बढ़ी आदमी की। तुम्हारी नहीं, बुद्धों की अकल थोड़ी बढ़ी। अब हम भी समझदार हो गए कि सूली कैसे बचाना और रॉल्स रॉयस में कैसे चलना। तुम क्या समझ रहे हो कि जो तुमने जीसस के साथ किया, वही तुम मेरे साथ कर पाओगे! तो यह दो हजार साल में सब, कुछ हम सीखे ही नहीं! तुम तो वहीं के वहीं हो, लेकिन बुद्ध बहुत आगे निकल गए।

मगर तुम्हारा प्रश्न सूचक है। और जिस एक ने पूछा है, उसका ही सूचक नहीं है, तुममें से अधिकांश के मन में ये ही सवाल उठते रहते हैं। मुझे रहना चाहिए किसी झोपड़े में। तो तुम्हारे चित्त को बड़ी शांति मिले! तकलीफ मुझे हो, शांति तुमको मिले! यह भी खूब रही! मेरी तकलीफ से तुम्हें क्या शांति! लेकिन तुम्हारा चित्त प्रसन्न हो, तुम चारों तरफ पताका फहराने लगो कि देखो, गुरु इसको कहते हैं, सदगुरु इसको कहते हैं, देखो झोपड़े में रहते हैं, नग्न रहते हैं! और सचाई तुम मुझसे पूछो तो मैं तुमको बता देना चाहता हू। मैंने गरीब की भांति रह कर भी देख लिया, अमीर की भांति रह कर भी देख लिया, अब तुम मानो या न मानो, अमीर की भांति रहने में जो मजा है, वह गरीब की भांति रहने में नहीं है। तुम्हें न मानना हो न मानो। अमीरी का मजा ही कुछ और है! लेकिन तुम्हारे भीतर एक रुग्ण चित्तदशा है, सदियों पुरानी। एक रोग है। दुखवादी हो तुम। तुम दुख को गरिमा देते हो, गौरव देते हो, सम्मान देते हो। सूली लगे, शहीद हो जाओ--तुम न हो सको तो कम से कम तुम्हारा गुरु हो जाए! तुम मेरे कंधे पर भी रख कर बंदूक चलाने के इरादे रखते हो। असंभव!
यह जो हमारा दुखवाद है, यह किस बात का सबूत है? यह एक बात का सबूत है,
हम अपने भ्रमों में इतना ज्यादा अपने को जोड़ रखते हैं कि हमारे किसी भ्रम को हम टूटने नहीं देना चाहते। जैसे तुमने सदगुरुओं के संबंध में भी भ्रम बांध रखे हैं, वे पूरे होने चाहिए। तुम्हारे भ्रम पूरे करने को मेरा कोई दायित्व है! तुम पालो भ्रम, पूरे मैं करूं! सदगुरु कैसा होना चाहिए, निर्णय तुम करो--और उस हिसाब से चलूं मैं! लेकिन हर चीज के संबंध में तुम्हारे मोह है, माया है; तुम्हारा जाल है, तुम्हारे प्रक्षेपण हैं। तुम फिर उन्हीं के हिसाब को चलते हो मानकर। तुम उन्हीं को पकड़ कर चलते हो। और तुम चाहते हो कि वे पूरे होने चाहिए। उनके पूरे होने का नाम मोह है। पूरे होने की आकांक्षा का नाम मोह है।
माया है प्रक्षेपण; तुम्हारे प्रक्षेपण पूरे होने चाहिए, इसका आग्रह, इसकी आसक्ति मोह है। और इन दोनों के बीच तुम्हारी नींद लगी है।
ठीक कहते हैं गुलाल--
माया मोह के साथ सदा नर सोइया।
आखिर खाक निदान सत्त नहिं जोइया।।
फिर इसका परिणाम यही होगा कि मिट्टी में मिल जाओगे सत्य को देखे बिना, सत्य को जाने बिना।
बिना नाम नहिं मुक्ति अंध सब खोइया।
और जब तक सत्य का अनुभव न हो तब तक सब अंधे खो जाते हैं मृत्यु के अंधकार में।
कह गुलाल सत, लोग गाफिल सब सोइया।।
गुलाल कहते हैं, मैं तुमसे सच कहता हूं, इसे गांठ बांध लो, इसे भूल मत जाना, इसकी सदा याद रखना कि लोग सब गाफिल हैं और गहरी नींद में सोए हुए हैं। इनसे तुम कुछ कहो भी तो ये अपनी नींद में कुछ का कुछ समझते हैं। इनकी नींद की पर्ते इतनी गहरी हैं कि इन तक सत्य की आवाज भी पहुंचाना चाहो तो विकृत होकर पहुंचती है, कुछ का कुछ अर्थ निकाल लेते हैं।
फेफड़ों के एक विशेषज्ञ ने, जो कि संगीत-प्रेमी भी थे, छात्रों को समझाते हुए कहा, जो व्यक्ति रोज सुबह चार बजे उठ कर ऊंचे स्वरों में राग अडाणा में एक घंटे तक गाना गाएगा, उसे कभी बुढ़ापे में भी फेफड़ों की बीमारी नहीं होगी। एक छात्र बीच में ही बोल उठा कि आप ठीक कहते हैं, सर, ऐसे व्यक्ति के बूढ़े होने की नौबत ही नहीं आएगी, पड़ोसी पहले ही उसे मार-मार कर उसका खात्मा कर देंगे।
एक घंटे तक राग अडाणा! जैसे ही तुमने आऽआऽआऽऽ किया कि पड़ोसी दौड़े! वे तुमको चुप करा कर रहेंगे!
एक संगीतज्ञ से उसके पड़ोसी एक दिन कहे कि आपकी पेटी जरा... हारमोनियम चाहिए और तबला भी। संगीतज्ञ तो बड़ा खश हुआ। उसने कहा कि क्या घर में कोई बैठक हो रही है, संगीत की कोई महफिल हो रही है? उन्होंने कहा, अब आपसे क्या छिपाना, आज रात हम सोना चाहते हैं। आज महीने भर से आप ऐसे राग अलाप रहे हो... ।

इसी संगीतज्ञ के संबंध में मैंने सुना है कि एक पड़ोसी ने खिड़की खोली
और कहा कि भइया, अब बंद करो, रात के चार बज चुके हैं, अब और बरदाश्त नहीं होता! तुमने एक राग और अलापा कि मैं पागल हो जाऊंगा! संगीतज्ञ ने खिड़की खोली और कहा, तुम बातें क्या कर रहे हो, मैं तो घंटे भर पहले कभी का बंद कर चुका!
यह आदमी पागल हो ही चुका है। वे घंटे भर पहले बंद कर ही चुके। राग अलाप
ही नहीं रहे हैं अब। मगर इसको सुनाई पड़ रहे हैं। ऐसे-ऐसे संगीतज्ञ पड़े हैं! मगर संगीत को समझना हो तो संगीत से कुछ तालमेल होना चाहिए, संगीत की कुछ रुचि, संगीत के साथ कुछ संबंध होना चाहिए। नहीं तो नहीं समझ सकोगे। और जितना ऊंचा होगा संगीत, उतना ही मुश्किल हो जाएगा। हां, कोई हिंदी फिल्म का धूम-धड़ाका हो, तो सभी को समझ में आता है। क्योंकि संगीत तो उसमें कुछ भी नहीं है। उछल-कूद है, कवायद है--वर्जिश! एक तरह का योग समझो। कि कुछ लोगों की कुंडलिनी जाग गई, वे एकदम से कूद रहे हैं, उछल रहे हैं, ढोल-ढवांस पीट रहे हैं। यह सबको समझ में आता है। भांगड़ा! यह सबको समझ में आता है। इसमें कोई समझने की जरूरत नहीं है। कुछ न बने तो भांगड़ा तो कर ही सकते हो।
लेकिन जितना ही संगीत ऊंचा होगा उतना ही मुश्किल होता जाएगा। और सत्य
तो परम संगीत है। उससे पार तो कुछ भी नहीं है। उसे तुम अपनी नींद में न समझ सकोगे। उसे समझने के लिए तो जरूरी होगा कि तुम जागो। सत्य केवल जागरण में ही समझा जा सकता है।
बिना नाम नहिं मुक्ति अंध सब खोइया।
कह गुलाल सत, लोग गाफिल सब सोइया।।
सारे लोग गाफिल सोए हुए हैं।
दुनिया बिच हैरान जात नर धावई।
लोग पागल की तरह दौड़े जा रहे हैं। रोज हैरान होते जाते हैं, और हैरानी
बढ़ती जाती है, मगर भागे जाते हैं।
दुनिया बिच हैरान जात नर धावई।
चीन्हत नाहीं नाम भरम मन लावई।।
सत्य को तो पहचानता नहीं जो खोजने योग्य है और न मालूम कहां-कहां के भ्रम पालता है, पोसता है। जिनको पाकर कभी कुछ पाया नहीं जाता, हाथ में सिर्फ धूल लगती है और प्राण हो जाते हैं रिक्त दौड़ने में, भीतर हो जाता है खालीपन, एक रिक्तता, एक सूनापन--सूनापन जैसा मरघट में होता है। मरने के पहले लोग मर जाते हैं, ख्याल रखना। मरने तक कहां बचते हैं? मरने के बहुत पहले मर जाते हैं। सड़ जाते हैं। क्योंकि जीवन जिन चीजों से पोषण पा सकता है, आत्मा जहां से पोषण पाती है, ऐसे तो उनके कोई संबंध ही नहीं होते। शरीर भला उनका ठीक-ठाक हो, लेकिन आत्मा सड़ चुकी होती है। भीतर ही सब कुछ असार हो चुका होता है। ऊपर से चाहे रंगे-पुते ठीक-ठाक दिखाई पड़ते हों, लेकिन भीतर? भीतर उनके कुछ भी नहीं होता। और भीतर ही असली संपदा हो सकती है। बाहर की संपदा तो काम नहीं आती। किसी के काम नहीं आई, तुम्हारे भी काम नहीं आएगी। चीन्हत नाहीं नाम भरम मन लावई।।
जरा भी नहीं चीन्हते कि सत्य क्या है, संपदा क्या है। जिसको तुम संपत्ति कहते हो, वह तो विपत्ति है। संपदा कहते हो, वह विपदा है। एक और संपदा है भीतर की। और ध्यान रखना, मैं बाहर की चीजों का विरोधी नहीं हूं। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि बाहर को छोड़-छाड़ कर भाग जाओ। मैं यह कह रहा हूं कि बाहर अभिनय मात्र है। खेलो, अभिनय से ज्यादा मत समझो उसे। उसमें ज्यादा मत डूबो। गंभीर मत बन जाओ। जीवन का असली उपक्रम भीतर है। बाहर अभिनय है, जीवन का सत्य भीतर है।
सब दोषन लिए संग सो करम सतावई।
कह गुलाल अवधूत दगा सब खावई।।
गुलाल कहते हैं, मैं कहे देता हूं पहले से ही कि दगा खाओगे बहुत, चेत सको तो चेत जाओ!
साहब दायम प्रगट ताहि नहिं मानई।
ईश्वर जो कि बिल्कुल प्रगट है, हवा के कण-कण में व्याप्त है, सूरज की किरण-किरण में, हर पत्ते पर जिसका हस्ताक्षर है, निकट से भी जो निकट है, वह

तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा। "साहब दायम"... हमेशा प्रकट, हमेशा प्रकट है; ... "ताहि नहिं मानई," उसे तो तुम मानते नहीं।
हरदम करहि कुकर्म भर्म मन ठानई।।
मगर मन में भ्रमों को ठानकर और उनके लिए कोई भी कुकर्म करने को राजी हो।
लोग सोचते हैं कि कुकर्म करने से क्या हर्जा है! नहा लेंगे, गंगा हो आएंगे, कि काबा की यात्रा कर लेंगे, मगर अभी तो जो करना है कर गुजरो; अवसर मिला है, इसको चूको मत। लाख रुपए रास्ते के किनारे पड़े मिल जाएं तो तुम्हारा मन कहेगा कि माना कि यह पाप है, मगर अभी चूकना ठीक नहीं। दस हजार दान कर देंगे, ब्राह्मणों को भोजन करवा देंगे, कन्याओं को खिला देंगे, मंदिर बनवा देंगे एक छोटा-मोटा, पत्थर पर पोत देंगे रंग और हनुमान जी खड़े कर देंगे, कुछ रास्ता निकाल लेंगे सस्ता, या गंगा स्नान कर आएंगे बहुत ही हुआ तो, मगर ये लाख नहीं छोड़े जाते!
हरदम करहि कुकर्म भर्म मन ठानई।।
कुकर्म करने को भी राजी है आदमी इस भ्रम में कि कुकर्म से छुटकारा पाने के कोई सस्ते उपाय हैं--सत्यनारायण की कथा करवाएंगे, यज्ञ करवा लेंगे। इतना आसान नहीं है। कुकर्म से छूटने का एक ही उपाय है कि भीतर की मूर्च्छा टूटे। और हर कुकर्म उस मूर्च्छा को बढ़ाता है। और कुकर्म का इतना ही अर्थ है कि जो तुम जानते हो भली-भांति कि नहीं करना चाहिए, वह भी कर लेते हो--क्योंकि अवसर!
मुल्ला नसरुद्दीन पर अदालत में मुकदमा था। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि तुम ठीक-ठीक बताओ नसरुद्दीन कि तुमने पत्नी को बुहारी से क्यों मारा? नसरुद्दीन ने कहा, हुजूर, अवसर की बात है। मजिस्ट्रेट ने कहा, अवसर! इसमें अवसर का क्या सवाल?
मुल्ला ने कहाः आपको मैं पूरी बात बताता हूं और आप भी तो शादीशुदा हैं
सो समझ जाएंगे। कौन शादीशुदा ऐसा है जो नहीं समझ जाएगा! सर्दी की सुबह धूप निकली हुई सुंदर, पीछे का दरवाजा खुला, पत्नी की पीठ दरवाजे की तरफ, और पत्नी के पैर में चोट सो दौड़ सकती नहीं, और हाथ में बच्चा--बच्चे को दूध पिला रही--और बुहारी पड़ी थी! सो मैंने सोचा, क्यों चूकना! सो उठा कर बुहारी मार दी और पीछे के दरवाजे से भाग खड़ा हुआ। देखा कि यह पीछा भी नहीं कर सकती, भाग भी नहीं सकती, इसकी पीठ भी इस तरफ है। सो मैंने सोचा, एक अवसर मिला है मुश्किल से हाथ में, इसको छोड़ना उचित नहीं। अब जो भी आपको सजा देनी हो दे दो!
मजिस्ट्रेट ने बहुत दया से उसे देखा और कहा कि तुम्हारा इस स्त्री से विवाह हुआ, यह काफी सजा है। तुम अपने घर जाओ। यही तुमको ठिकाने लगा देगी। मगर तुम्हारी बात मुझे जंची, कि अवसर मिले तो आदमी को चूकना नहीं चाहिए। लोगों को अवसर मिल जाए तो किसी चीज से नहीं चूकेंगे। तुम अगर साधु हो,
तो सिर्प इसीलिए कि शायद अवसर न मिल रहे हों। अक्सर यही है कि जिनको हम सच्चरित्र कहते हैं, वे वे लोग हैं जिनको अवसर नहीं मिल रहा।
महात्मा गांधी के सब शिष्यों का क्या हुआ? बड़े साधु थे। बैठ कर चरखा कातते थे, अपना कपड़ा बुनते थे, जेल जाते थे, उपवास करते थे! फिर जब सत्ता आई, अवसर मिला, फिर उसे किसी ने नहीं चूका। फिर अवसर का सबने लाभ उठाया। फिर उन्होंने बिल्कुल फिकर नहीं की। फिर चरखा वगैरह उठा कर रख दिए। अब तो सिर्फ एक दिन के लिए उठाते हैं वे--छब्बीस जनवरी को उठा लिया एक दिन चरखा। और वह भी कब जब फोटोग्राफर आता है, तो उसके सामने बैठ कर चरखा काता, फोटो उतरवा ली, बात खतम हो गई। कहां गए ये सारे साधु-संत जो महात्मा गांधी ने पैदा किए थे? अवसर खा गया। साधु-संत थे अवसर न होने की वजह से। अवसर मिलते ही असलियत खुल गई।
अवसर मिलते ही पता चलता है कि तुम्हारा वास्तविक स्वरूप क्या है।
अगर नपुंसक आदमी ब्रह्मचर्य का व्रत ले ले, इसका कोई मूल्य है? इसका कोई मूल्य नहीं है। बूढ़ा आदमी जब मांसाहार पचा न सकता हो, शाकाहारी हो जाए, इसका कोई मूल्य है? इसका कोई भी मूल्य नहीं है। मूल्य तो तब है जब अवसर रहते तुम जागरूकता से व्यवहार करते हो और वही करते हो जो करने योग्य है।

यह भगोड़ा संन्यास जो पैदा हुआ था, इसीलिए पैदा हुआ था कि अवसर से हट जाओ। भगोड़ेपन का और कोई मतलब न था। अवसर ही न रहेगा तो तुम कैसे पाप करोगे? लेकिन अवसर का न होना पाप का अभाव नहीं है। पाप भीतर बैठा रहेगा, फिर कभी अवसर मिल जाएगा तो निकल कर बाहर आ जाएगा।
मैंने इसीलिए संन्यासी को अपने कहा हैः भागना मत, अवसर के बीच में रहना और अवसर के बीच में ही जागना; अवसर भी हो और अवसर का उपयोग मत करना, तो कुछ तुम्हारे भीतर बल पैदा होगा, आत्मबल पैदा होगा। तुम्हारे भीतर जन्म होगा वस्तुतः एक व्यक्तित्व का--गरिमापूर्ण, संगीतमय।
झूठ करहि व्योहार सत्त नहिं जानई।
सारा व्यवहार तुम्हारा झूठ है। सच पूछा तो हम झूठ को ही अब व्यवहार कहने लगे हैं। हमारा व्यवहार इतना झूठ हो गया कि व्यवहार का मतलब ही होता है कि झूठ।
जैनों में दो नय कहे जाते हैंः निश्चय नय और व्यवहार नय। बड़े पंडित भी क्या-क्या खोजते रहते हैं! निश्चय नय का अर्थ हैः सत्य जैसा है वैसा कहना। और व्यवहार नय का अर्थ हैः जैसा कहना चाहिए, जैसा रुचे, जंचे लोगों को, वैसा कहना। निश्चय नय की कोई बात नहीं करता। क्योंकि निश्चय नय की बात करनी तो खतरनाक है। निश्चय नय तो यह है कि तुम कभी परतंत्र नहीं थे और न तुम परतंत्र हो और न हो सकते हो--तुम आत्मा हो, तुम परम ब्रह्म हो, यह निश्चय नय है। मगर यह किसी से कहना जैन पंडित उचित नहीं मानता। क्योंकि अगर लोगों से यह कहो कि तुम स्वयं परमात्मा हो, तो फिर पंडित की क्या जरूरत? फिर मंदिर का क्या उपयोग? फिर पूजा-पाठ क्या होगा? फिर मंतर-जंतर कैसे चलेंगे? तो यह निश्चय नय है, यह कहने की बात नहीं।
व्यवहार नयः मंदिर जाओ, पूजा करो... परमात्मा से पूजा करवा रहे हो! पत्थर की मूर्तियों की!
शंकराचार्य भी कहते हैं कि एक होता है परमार्थ सत्य और एक होता है व्यवहार सत्य। परमार्थ सत्यः सब ब्रह्म है। और व्यवहार सत्य कि एक शूद्र ने शंकराचार्य को छू दिया तो वे नाराज हो गए और कहा कि तूने मुझे छूकर अपवित्र कर दिया, मुझे फिर स्नान करना पड़ेगा। उस शूद्र ने कहाः महाराज, जब सभी ब्रह्म है और ब्रह्म ब्रह्म को छुए, तो इसमें कैसे अपवित्रता हो जाएगी! मैं भी आत्मा, आप भी आत्मा, आत्मा ने आत्मा को छुआ, इसमें इतने नाराज क्यों हो रहे! मेरे छूने से तो शायद अपवित्र आप नहीं हुए, लेकिन अब क्रोध करके आप जरूर अपवित्र हो रहे हो, यह ख्याल रखना।
शंकराचार्य, जो कहते हैं सब मिथ्या है, उनके लिए भी शूद्र मिथ्या नहीं है; वह सत्य है। मगर सत्य में दो भेद कर लिए। होशियार लोग इंतजाम कर लेते हैं। सब ब्रह्म है, यह परमार्थ सत्य है, यह अंतिम सत्य; यह तो सिद्धपुरुषों के अनुभव की बात है; रहे तुम जो कि असिद्धपुरुष हो, सिद्ध हो नहीं, तुम्हारे लिए तो अभी केवल व्यवहार सत्य कहा जा सकता है। व्यवहार सत्य में ब्राह्मण भी होता है, शूद्र भी होता है, वैश्य भी होता है! व्यवहार सत्य का अर्थ ही होता है: झूठ सत्य। अब यह हद हो गई। झूठ सत्य, इसका क्या मतलब होगा? जब झूठ है तो सत्य नहीं और सत्य है तो झूठ नहीं। दो में से कुछ एक तय कर लो; एक दफा निर्णय कर लो।
झूठ करहि व्योहार सत्त नहिं जानई।
कह गुलाल नर मूढ़ हक्क नहिं मानई।।
ऐसे व्यवहार में उलझे रहोगे, सत्य को मानोगे नहीं, तो यह मूढ़ता टूटेगी कैसे?
गर्व भुलो नर आय सुझत नहिं साइंया।
अहंकार में भूले हो, अकड़े हो अहंकार में, इसीलिए साईं दिखाई पड़ता नहीं, इसीलिए मालिक दिखाई पड़ता नहीं कोई और बाधा नहीं है सिवाय अहंकार के। यह अकड़ कि मैं कुछ हूं, यही अकड़ तुम्हें परमात्मा से वंचित किए है। जरा अकड़ को छोड़ो, जरा विश्राम में आओ, जरा सरल होओ, जरा निर्दोष होओ-- और फिर देखो! अकड़ छोड़ो हिंदू होने की, मुसलमान होने की, जैन होने की; अकड़ छोड़ो ब्राह्मण की, क्षत्रिय की; अकड़ छोड़ो! विश्राम में, विराम में थोड़ा अनुभव करो और तुम

चकित हो जाओगेः परमात्मा ही है और कुछ भी नहीं है। और यह परमार्थ सत्य, व्यवहार सत्य सब बकवास है। सत्य तो सिर्प परमार्थ ही है।
बहुत करत संताप राम नहिं गाइया।।
और इस अहंकार के कारण जीवन तुम्हारा संताप से भरा हुआ है। और यही संताप राम का गीत भी बन सकता था। यही ऊर्जा जो सिर्प गाली-गलौज बन रही है, यही ऊर्जा, यही शष्द, यही शक्ति परमात्मा का गुणगान बन सकती थी।
पूजहिं पत्थल पानि जन्म उन खोइया।
खो रहे हो जन्म पत्थरों को और नदियों को पूज कर।
कह गुलाल नर मूढ़ सभै मिलि रोइया।।
एक दिन सब मिलकर रोओगे।
भजन करो जिय जानिके प्रेम लगाइया।
प्राणों को लगाकर भजन में डूबो!
हरदम हरि सों प्रीति सिदक तब पाइया।।
जब परमात्मा से प्रेम जोड़ोगे--और प्रेम के जोड़ने का एक ही रास्ता हैः
अहंकार को गिर जाने दो। अहंकार अप्रेम की अवस्था है, निरहंकारिता प्रेम
की अवस्था है।
हरदम हरि सों प्रीति सिदक तब पाइया।।
तब तुम्हें सत्य मिलेगा।
बहुतक लोग हेवान सुझत नहिं साइंया।
और जब तक परमात्मा नहीं जाना तब तक अपने को आदमी भी मत मानना, तब तक तो हैवान ही समझना। परमात्मा ही नहीं जाना तो पशु में और आदमी में भेद क्या है? वही एक भेद है।
कह गुलाल सठ लोग जन्म जहंड़ाइया।।
लोग खुद धोखा खा रहे हैं, दूसरों को धोखा दे रहे हैं। यहां सब ठग हैं।
और सबसे बड़े ठग तुम हो, क्योंकि अपने को ही धोखा दे रहे हो। और किसी को भी दो तो भी ठीक है।
आसिक इस्क लगाय साहब सों रीझई।
आशिक बनो! प्रेम सीखो! रीझो इस अस्तित्व पर! यह प्यारा अस्तित्व उसकी अभिव्यक्ति है। यह प्यारा अस्तित्व उसका सृजन है। यह उसका गीत है, उसका संगीत है, उसका नृत्य है, उसका उत्सव है, रीझो इस पर!
हरदम रहि मुस्ताक प्रेमरस पीजई।।
एक ही अभीप्सा करो कि पीकर रहूंगा प्रेमरस, कि भरूंगा अपनी प्याली को हृदय की प्रेम के रस से। और प्याली भर जाती है। प्याली तुम्हारी बड़ी छोटी है। सागर का सागर उतर आता है! एक छोटी सी हृदय की प्याली इतनी सामर्थ्य है कि पूरे सागर को अपने में उतार ले।
बिमल बिमल गुन गाइ सहज रस भीजई।
फिर तुम्हारे जीवन में बड़े गीत होंगे, बड़े फूल खिलेंगे, तुम सहज रस में भीजोगे। तुम्हारा जीवन तब ऊपरी चरित्र नहीं होगा--थोथा, आरोपित; जबरदस्ती बांध-बूंध कर अपने को तुम चरित्रवान नहीं रखोगे। अभी तो जिसको तुम चरित्र कहते हो, वह बांधा-बूंधा है। जबरदस्ती, किसी तरह अपनी छाती पर चढ़े बैठे हो। सहज, जैसे श्वास चलती है, ऐसा ही तुम्हारा चरित्र होना चाहिए, ऐसा ही तुम्हारा आचरण होना चाहिए। तुम्हारी चेतना में और तुम्हारे चरित्र में जरा भी भेद नहीं होना चाहिए।
तब रस से भीजोगे। रस परमात्मा का नाम है। रसो वै सः। दुनिया में बहुत परमात्मा की परिभाषाएं की गईं, लेकिन इससे सुंदर कोई परिभाषा नहीं। वह रसरूप है। पीओ!
कह गुलाल सोइ चार सुरति सों जीजई।।
इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक--
कह गुलाल सोइ चार सुरति सों जीजई।।...
सौ में कोई शायद चार आदमी ऐसे होंगे जो इतनी सुरति, इतने स्मरण से जीते हैं। यह एक अर्थ। यह बहुत ठीक अर्थ नहीं। आमतौर से किया गया अर्थ यही है। यह शाब्दिक अर्थ। यह इसका आध्यात्मिक अर्थ नहीं है। आध्यात्मिक अर्थ थोड़ा गहरा है।

कह गुलाल सोइ चार सुरति सों जीजई।।
चार सुरतियां हैं। चार स्मृतियां हैं। बुद्ध ने चार स्मृतियां कहीं। काया के प्रति जागना, पहली स्मृति। काया के प्रति जागने से पता चलता है कि मैं देह नहीं हूं। फिर विचार के प्रति जागना, दूसरी स्मृति। उससे पता चलता है मैं मन नहीं हूं। फिर भाव के प्रति जागना, तीसरी स्मृति। उससे पता चलता है मैं हृदय नहीं हूं। और फिर अस्मिता के प्रति जागना, चौथी स्मृति। उससे पता चलता हैः मैं हूं ही नहीं। जब ये चार स्मृतियां पूरी हो जाती हैं तो जो शेष रह जाता है, वह ब्रह्म है, वह परमात्मा है, वह निर्वाण है।
आपु न चीन्हहिं और सबै जहांड़ाइया।
खुद धोखे में पड़े हो और दूसरों को भी डाल रहे हो। यह बड़ी चकित करने वाली बात है। जिन बातों का तुम्हें पता नहीं है, वे तुम दूसरों को भी समझा देते हो। तुम्हें ईश्वर का कोई पता नहीं; जिंदगी मंदिर-मस्जिद में बिताई, कुछ जाना नहीं, कुछ पाया नहीं--अपने बच्चे को भी वहीं ले चले। कुछ तो दया करो! कुछ तो करुणा करो। कुछ तो होश लाओ! जब तुम्हें नहीं मिला इस सबसे, तो इस बच्चे को क्यों भटका रहे हो? इस बच्चे को कहो कि कम से कम मंदिर-मस्जिद तो जाना ही मत, क्योंकि मैंने जाकर देख लिया, नहीं पाया, तू कहीं और खोज! ये दो दरवाजे तो व्यर्थ हैं। कि मैंने गीता में देख लिया, कुरान में देख लिया, सब कंठस्थ कर लिया, मुझे नहीं मिला, अब इस झंझट में तू मत पड़ना!
अगर बेटे से तुम्हें प्रेम है, तो तुम यह कहोगे मैंने यहां-यहां खोजा
और नहीं पाया। अब तू कम से कम वहां खोज जहां मैंने नहीं खोजा। शायद वहां हो! अगर प्रत्येक बाप अपने बेटे को इतनी शिक्षा देता जाए कि मैं कहां-कहां असफल हुआ हूं, यह दुनिया में अभी क्रांति हो जाए, आज क्रांति हो जाए! अगर बाप अपने बेटे से कह सके कि मैंने धन बहुत खोजा, पाया भी और कुछ पाया भी नहीं; पद पाया और कुछ मिला भी नहींः प्रतिष्ठा भी मिली, मगर क्या सार! नहीं लेकिन मरते-मरते भी बाप बेटे को यही समझाते जाता है, आखिरी दम तक!
एक मारवाड़ी मर रहा था। मारवाड़ी बड़ी मुश्किल से मरते हैं! मगर मर रहा था। वे जिए ही चले जाते हैं! मर जाते हैं, फिर भी पगड़ी-वगड़ी बांधे चलते ही रहते हैं! मारवाड़ी को मारना भी बहुत मुश्किल। क्योंकि उसकी जान उसकी तिजोरी में होती है उसको मारना हो तो तिजोरी को गोली मारो। तब मरेगा। नहीं तो वह नहीं मरने वाला। यह मारवाड़ी मर रहा था। मरते वक्त संध्या हो गई है, अंधेरा हो रहा है, वह अपनी पत्नी से पूछता है कि बड़ा बेटा कहां है? पत्नी तो भीग गई प्रेम में, उसने कहा कि देखो, मरते वक्त भी अपनों की याद! तो कहा, बड़ा बेटा तुम्हारे बाएं हाथ पर बैठा हुआ है, निश्चिंत रहो! मझला कहां है? कहा, वह भी तुम्हारे पास बैठा हुआ है, तुम्हारे पैर की तरफ। और सबसे छोटा कहां है? वह भी बैठा हुआ है तुम्हारे पैर के पास। सब यहीं हैं, मत घबड़ाओ! वह उठ कर बैठ गया, उसने कहा कि सब यहीं हैं! तो फिर दुकान कौन चला रहा है?
मर रहा है यह आदमी और उसने कहा कि अरे नालायको, मेरे जिंदा रहते जब यह हालत है कि सब यहीं जमे हो, तो मेरे मरने के बाद क्या करोगे! तुम मुझे लुटवा कर रहोगे! तुम दिवाला निकलवा कर रहोगे!
मरते वक्त भी एक ही स्मरण है कि दुकान चल रही है कि नहीं चल रही।
काश, मां-बाप अपने बच्चों से कह सकें कि हमारा जीवन व्यर्थ हुआ! अहंकार कहने नहीं देता। कह सकें कि हमने जो खोजा, वह पाया नहीं। पाया तो भी नहीं पाया और नहीं पाया तो तो पाया ही नहीं। अगर कह सकें कि हमने बहुत पूजा-पाठ किया, मगर कोई सार नहीं। हमने बहुत यज्ञ-हवन करवाए, ये पंडित-पुरोहितों के जाल हैं, शोषण के उपाय हैं और कुछ भी नहीं, तुम इन जालों में मत पड़ना। हम हिंदू रहे, मुसलमान रहे, जैन रहे और हमने जिंदगी गंवाई, अब तुम इन भेदों में मत पड़ना। धार्मिक होना काफी है, हिंदू-मुसलमान होने की कोई आवश्यकता नहीं है। काश मां-बाप अपने बच्चों को इतना कहते जाएं तो धीरे- धीरे इस दुनिया में एक नये मनुष्य का अवतरण हो सकता है। कोई बाधा नहीं है। होना ही चाहिए।
मगर शठ लोग हैं। खुद बेईमान हैं और दूसरों को भी बेईमानी सिखाए जाते हैं।
आसिक इस्क लगाय साहब सों रीझई।

हरदम रहि मुस्ताक प्रेमरस पीजई।।
बिमल बिमल गुन गाइ सहज रस भीजई।
कह गुलाल सोइ चार सुरति सों जीजई।।
आपु न चीन्हहिं और सबै जहंड़ाइया।
खुद न पहचानते हैं, न दूसरों को पहचानने देते।
काम क्रोध को संगम सबै भुलाइया।
बस, काम और क्रोध में उलझे हुए हैं। काम का अर्थ हैः मुझे यह मिल जाए।
क्रोध का अर्थ हैः अगर कोई बाधा डाले; मैं जो पाने चला हूं, उसमें कोई अड़चन डाले, तो क्रोध पैदा होता है। काम और क्रोध सौतेले भाई हैं, संग-साथ है उनका। कहो एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। जब तक काम है तब तक क्रोध रहेगा। काम का अर्थ हैः तुम्हें धन चाहिए और किसी ने अड़ंगा डाल दिया--अड़ंगे डालने वाले तो मिलेंगे ही, क्योंकि उनको भी धन चाहिए। तुम पा लोगे तो उनको कैसे मिलेगा? तो सब तरफ से लोग अड़चनें, बाधाएं खड़ी करेंगे। इससे तुम्हारे भीतर क्रोध जगेगा। अवरुद्ध काम क्रोध बन जाता है।
क्रोध सिर्प एक बात का सबूत है कि तुमने जैसा चाहा था वैसा नहीं हो रहा है। क्रोध तो केवल उसका ही जाता है जिसकी चाह ही चली जाती है। जो कहता है, परमात्मा की जो मर्जी, वही मेरी मर्जी। वह जैसा करवाए, वही ठीक। फिर क्रोध असंभव हो जाता है।
अभी तो हालत यह है कि लोग परमात्मा तक पर क्रोध कर गुजरते हैं। अगर तुमने बहुत पूजा-पाठ किया, मूर्ति का सब किया और तुम्हारा काम, तुम्हारी वासना पूरी नहीं हुई, एक दिन आ गए गुस्से में उठा कर मूर्ति-वूर्ति सब डाल दी कुएं में, कि जाओ भाड़ में, सब झूठ है! ... ऐसा मैं एक आदमी को जानता हूं, जिसने सारी मूर्ति वगैरह उठा कर कुएं में फेंक दी; कि हो गया, तीस साल हो गया सिर मारते, एक प्रार्थना पूरी नहीं हुई!
तुम तो प्रार्थना भी करते हो तो कामना ही है वह, वासना ही है वह। प्रार्थना का तुम्हें पता ही नहीं। तुम तो प्रेम भी लगाते हो तो उसमें शर्ते कि ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करोगे तो मेरा प्रेम पाओगे, इससे भिन्न न हो जाए, इससे अतिरिक्त न हो जाए, नहीं तो मेरा क्रोध, मैं भड़क उठूंगा, आग जल उठेगी।
काम क्रोध को संगम सबै भुलाइया।
इन दो चीजों के संगम में सारे लोग भूले हुए हैं।
रटत फिरै दिनरैन थीर नहिं आइया।।
इसलिए राम-राम भी रटते रहते हैं मगर थिर नहीं हो पाते। क्योंकि राम-राम रटने में भी काम ही लगा हुआ है। राम के पीछे काम ही छिपा हुआ है। राम के पीछे भी क्रोध ही छिपा हुआ है। तुम देखते हो, माला जपता रहता है आदमी बैठा- बैठा। जितना आसान माला जपने वाले को क्रोधित कर देना है उतना किसी दूसरे को नहीं।
मेरे गांव में एक सज्जन थे। राम के बड़े भक्त। उन्होंने एक मंदिर भी बनवाया हुआ था। राम मंदिर! सुबह ही से वे माला लेकर मंदिर चले जाते, घंटों बैठे माला जपते। ऐसी जगह बैठ कर जपते कि रास्ते से निकलने वाले सब लोग देखें। मैंने एक दिन तय किया कि देखूं कितनी गहरी भक्ति है राम की? सो वे माला जप रहे थे, मैंने कहा जयरामजी! तो उन्होंने कहा, जयरामजी!! फिर अपनी माला जपने लगे। मैं थोड़ी देर में फिर लौभ कर आया, मैंने कहाः जयरामजी! अब की दफा तो उनकी आंखों में बिल्कुल अंगारे आ गए, कहा कि जयरामजी!!! अपनी माला फिर जपने लगे मैं फिर थोड़ी देर में घूम कर आया। मुझे दूर से ही देख कर बोले कि क्या बार-बार जयरामजी लगा रखी है!? मैंने कहा, भई, इस बार तो मैंने कही नहीं। अभी तो मैं कुछ बोला ही नहीं। और आप राम के भक्त हैं और जयरामजी से नाराज हो रहे हैं! यह क्या खाक राम की भक्ति है! तुम्हें तो खुश होना चाहिए। मैंने कहा, आज से मैं कश्त करता हूं कि तुम जहां भी मुझे मिलोगे, मैं जयरामजी करूंगा। और मैंने सारे स्कूल में खबर करवा दी बच्चों को भी कि जहां भी मिल जाएं--जयरामजी!
पांच-सात दिन बाद उन्होंने मुझे घर में बुलाया। कहने लगे, बेटा, मिठाई खाओ! और क्या करूं तुम्हारे लिए, बोलो! मगर यह तुमने क्या उपद्रव लगा दिया?

जहां जाता हूं-- जयरामजी, जयरामजी! अरे, एकाध दफे कोई करे, ठीक है; एक ही आदमी अगर बार-बार करने लगे तो गुस्सा आना स्वाभाविक है।
मैंने कहा, राम से अगर लगाव हो, तो प्रसन्न होना चाहिए कि चलो इस बहाने
यह आदमी कित्ती दफे राम-राम कर रहा है, राम का नाम ले रहा है, राम का यश फैल रहा है; तुम काहे के लिए परेशान होते हो! और आजकल तुम मंदिर में सामने बैठते भी नहीं! कहा, क्या ख़ाक बैठें मंदिर में सामने, यही स्कूल का रास्ता, एक हजार लड़कों को निकलना, और एक नहीं चूकता; जयरामजी! जयरामजी! तुम मुझे जीने दोगे कि नहीं?
जितना आसान है भजन-कीर्तन करने वाले को नाराज कर देना, उतना आसान किसी दूसरे को नहीं। क्योंकि वह सोचता है, बड़ा पवित्र कार्य कर रहा हूं, महान कार्य कर रहा हूं--और तुम बाधा डाल रहे हो, व्यवधान खड़ा कर रहे हो मेरी पवित्रता में, मेरे धर्म में! उधर तो आग जल रही है। वह धर्म-वर्म क्या है? पवित्रता कहां है? प्रार्थना कहां है? कामना उबल रही है और कोई बाधा डाल रहा है; --बस अड़चन शुरू हो गई।
रटत फिरै दिनरैन थीर नहिं आइया।
और ध्यान इस तरह नहीं होता कि राम-राम रटते रहो। ध्यान का अर्थ हैः थिर होना, रुक जाना, चित्त की गति का ठहर जाना, चित्त का शून्य हो जाना, मौन हो जाना।
कह गुलाल हरि हेतु काहे नहिं गाइया।
और ये क्यों क्रोधित हो जाते हैं? ये जो रटत फिरैं दिनरैन, ये क्यों थिर नहीं हो पाते? इनको हर छोटी-मोटी चीज क्यों विघ्न-बाधा मालूम होती है? उसका कारण है। हरि हेतु नहिं गाइया। इन्होंने हरि के लिए नहीं गाया है। ये अपने लिए ही हरि-हरि जप रहे हैं। ये प्रभु के प्रेम में दीवाने नहीं हैं, मस्त नहीं हैं; ये मस्ती से नहीं गा रहे हैं; इनके कुछ इरादे हैं, इनकी कुछ वासनाएं हैं जो ये परमात्मा से पूरी करवाना चाहते हैं। ये परमात्मा का भी उपयोग करना चाहते हैं अपनी वासनाओं की तरह। ये परमात्मा से भी सेवा लेना चाहते हैं। ये बड़ी कृपा कर रहे हैं परमात्मा पर कि देखो, हम तुम्हें एक अवसर देते हैं सेवा का, कर सको तो कर लो!
खोलि देखु नर आंख अंध का सोइया।
आंख खोल कर देखो, गुलाल कहते हैं, ऐ अंधो, कब तक सोए रहोगे?
दिन-दिन होतु है छीन अंत फिर रोइया।।
एक-एक दिन जीवन क्षीण होता जा रहा है, अंत दूर नहीं है, फिर रोओगे।
इस्क करहु हरिनाम कर्म सब खोइया।
सब कर्म उसी को दे दो। इसी का नाम प्रेम है।
इस्क करहु हरिनाम कर्म सब खोइया।
कह दो कि तू कर्ता है, मैं तो सिर्प दृष्टा हूं। मैं तो सिर्प अभिनेता हूं, तू जो करवाए, करूंगा। सब कर्म उसको दे दो। कर्ता का भाव गया कि अहंकार गया। और अहंकार गया कि प्रेम का उद्भभव हो जाता है।
कह गुलाल नर सत्त पाक तब होइया।।
और जब प्रेम की धारा उठती है तुम्हारे भीतर, तुम जब प्रेम में नहा उठते हो, तो पवित्रता आती है, तब सत्य उतरता है और जीवन को पवित्र कर जाता है।
सत्य की ही एकमात्र सुगंध है। सत्य की ही एकमात्र संपत्ति है। सत्य
के ही साथ एकमात्र--केवल एकमात्र द्वार है परमात्मा का। मगर सोए को वह द्वार नहीं मिल सकता। जागो! तो ही मिल सकता है। और जागना कठिन नहीं है, केवल निर्णय की बात है। थोड़ी सी समझ की बात है, थोड़े से विवेक की बात है। थोड़ी सी प्रतिभा का उपयोग करो। और प्रतिभा तुम्हारे भीतर छिपी पड़ी है। जैसे बीज के भीतर फूल छिपे पड़े हैं, ऐसे हर आदमी के भीतर परमात्मा छिपा पड़ा है। पुकारो उसे, जगाओ उसे! उसके जागरण के साथ ही तुम्हारे जीवन में उत्सव का प्रारंभ होगा, महोत्सव शुरू होगा। तब तुम रस भीगोगे। तुम भी कह सकोगेः रसो वै सः।

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
चौदहवां प्रवचन

रहस्य में डूबो

पहला प्रश्नः
ओशो,
नगर हो रहा निर्जन
पलटती सुध निज पर,
पथ बनता पगडंडी
लौ कंपती, थिरती,
अनजाना फिर भी कुछ
परिचित-सा लगता गुंजन।
पत्तों से झरते शब्द विचार; तर्कजाल--
जो रहा कभी मन का वैभव
प्रतिपल है मिटता तार-तार। मधु भरता
घड़ी, दिन, रैन, मास
लुक-छिप जाता
फिर-फिर शैशव,
धरा शीतल करने झरती
भीतर की ही जलधार।
शत-सहस्त्र
सूर्य-किरणों से मंडित
चेतना के उत्तुंग शिखर पर दीप्तिमान
हे, धवलपुंज!
शत, शत कमलों के ऊर्जास्त्रोत हे, महाप्राण!
ले अर्पित तेरे चरणों में उलटे-सीधे सब ताल, स्वर;
हे, राशि-राशि भर रत्न उलीचते
रत्नाकर!
नतमस्तक हूं
हे, अखिल विश्व के दिव्य-द्वार
नमस्कार, प्रभु, नमस्कार!

सत्य वेदांत! ऐसी घड़ी शुभ है। ऐसे अहोभाव का क्षण शुभ है। इससे भेद नहीं पड़ता कि अहोभाव किसके प्रति उठा है। जिसके प्रति उठा है, वह तो निमित्त मात्र है। क्रांति घटती है अहोभाव से। मेरे प्रति अहोभाव उठे कि उगते हुए सूरज के प्रति, कि रात तारों से भरे आकाश के प्रति, कि देख, कर हिमालय के उत्तुंग शिखरों को, कि निबिड़ जंगल में रात्रि का सन्नाटा--कोई भी घटना निमित्त बन सकती है। प्राण अहोभाव में भीग जाएं, तो अहोभाव ही क्रांति का कारण बनता है। फिर मंदिर में घटे कि मस्जिद में कि गिरजे में कि गुरुद्धारे में, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। कहीं भी घट सकती है यह घटना। कुरान को गुनगुनाते घट सकती है, पक्षियों के गीत सुनते हुए घट सकती है। शर्त एक है सिर्प: तुम्हारा हृदय खुला हो।
मेरे कारण नहीं घट रही है यह घटना। मेरे कारण घटे तो सबको घट जाना चाहिए। जो भी यहां आए, उसको घट जाना चाहिए। लाखों लोग आते हैं, कुछ को घटती है। वही सौ में कोई दो-चार; उंगलियों पर गिने जा सकें, उनको घटती है। इसलिए मेरे कारण नहीं घटती है। उनको घट जाती है, जो हृदय को खोल कर सुन पाते हैं। यह प्रश्न मुझे समझने का नहीं है। यह प्रश्न तो रहस्य में डूबने का है। समझ तो बुद्धि की बात है--ऊपर-ऊपर है, थोथी है। समझ से भी गहरी अनुभूति

चाहिए। समझ में भी न आए, ऐसी अनुभूति चाहिए। शब्दों में बंधे न, सिद्धांतों में प्रकट न हो सके, अपरिभाष्य हो, अव्याख्य हो--ऐसी अनुभूति चाहिए। और अहोभाव उसी अनुभूति का प्रारंभ है।
अहोभाव मेरी दृष्टि में प्रार्थना का सार-निचोड़ है। अहोभाव में झुके
कि प्रार्थना हो गई। फिर जरूरत नहीं है कि तुम दोहराओ कोई बंधी-बंधाई प्रार्थना--हिंदुओं की, मुसलमानों की, ईसाइयों की, जैनों की; कि पढ़ो गायत्री मंत्र, कि नमोंकार। अहोभाव में झुक गए कि गायत्री खिल गई, कि नमोंकार उठने लगा, कि नमाज पूरी हो गई। शुरू भी न हुई और पूरी हो गई। बोले भी नहीं और बात पहुंच गई! बोल कर तो बात पहुंचती भी नहीं। परमात्मा तुम्हारी कोई भाषा तो समझता नहीं।
पृथ्वी पर कोई तीन हजार भाषाएं हैं। और वैज्ञानिक कहते हैं, कम से कम पचास हजार पृथ्वियां हैं जिन पर जीवन है। तो अगर एक-एक पृथ्वी पर इतनी- इतनी भाषाएं हों और पचास हजार पृथ्वियां हों, परमात्मा तो पागल ही हो जाएगा। कभी का हो चुका होगा पागल। परमात्मा भाषा नहीं समझता, भाव समझता है। और भाव निःशब्द हैं, मौन हैं।
तुम एक शुभ घड़ी से गुजर रहे हो! इस घड़ी में निःसंकोच डूबो बेशर्त डूबो। इस अहोभाव को, इस नमस्कार को ही तुम्हारी प्रार्थना बनने दो। पर स्मरण रहे कि मैं केवल निमित्त मात्र हूं, कारण नहीं। यह मेरे कारण नहीं हो रहा है; हो रहा है तो तुम्हारे ही साहस के कारण हो रहा है, क्योंकि तुम हृदय को खोलने को तत्पर हुए हो।
हृदय को खोलने की तत्परता का नाम श्रद्धा है। और जब हृदय श्रद्धा में खुलता है, तो अहोभाव की सुगंध उठती है। जैसे ही अहोभाव की सुगंध तुम्हारे भीतर उठने लगी, तुम्हारे भीतर एक कृतज्ञता अनुभव होने लगी कि मैं धन्यभागी हूं--किसी कारण नहीं, हूं, इसीलिए धन्यभागी हूं। इस विराट अस्तित्व में मैं भागीदार हूं, यह पर्याप्त सौभाग्य है। इस रहस्यमय लोक में मैं भी एक किरण हूं, मैं भी एक जीवन हूं! इस विराट सागर में चैतन्य के, मैं भी एक लहर हूं! मेरा भी अपना नृत्य है, मेरा भी अपना गीत है! परमात्मा ने मुझे भी चुना है। उसके द्वारा चुना गया हूं, तभी तो हूं! ऐसी प्रतीति हो तो बस, तुम्हारा जीवन उस नये आयाम में प्रवेश कर जाएगा जिसको मैं संन्यास कहता हूं।
तुम ठीक कह रहे होः
"नगर हो रहा निर्जन"
वेदांत भीतर के नगर की बात कर रहे हैं। भीतर एक भीड़ है। भीतर तुम्हारे कितने लोग बसे हैं! कभी तुमने गिनती की? कभी भीतर का हिसाब लगाया? बाजार भरे हैं। भीड़ पर भीड़ है। लोग आते ही चले जाते हैं। तुम एक नहीं हो, अनेक हो। और तुम्हारी अनेकता तुम्हारी विक्षिप्तता है। तुम एक हो जाओ। तो विमुक्त हो जाओ। अनेक होना विक्षिप्तता की परिभाषा है; एक होना, विमुक्तता की। तुम एक हो जाओ तो "एक" को जान लोगे। तुम अनेक रहे तो तुम्हें जगत में अनेक ही दिखाई पड़ता रहेगा, क्योंकि तुम जो हो वही तुम्हें दिखाई पड़ता है, उससे अन्यथा दिखाई नहीं पड़ सकता। जिसके भीतर नकार है, उसे सब तरफ नास्तिकता दिखाई पड़ेगी। और जिसके भीतर स्वीकार है, उसे सब तरफ आस्तिकता का अनुभव होगा। जिसके पास आंख है, उसे रोशनी दिखाई पड़ेगी--और रंग-बिरंगे फूल और आकाश में खिल गए इंद्रधनुष! और जो अंधा है, वह इन सब चीजों पर संदेह ही करता रहेगा; उसके भीतर संदेह के अतिरिक्त कुछ भी न उठेगा। अंधेपन में संदेह ही उठ सकता है।
भीतर तुम्हारे एक नगर है, एक भीड़ है।
हमारे पास जो शब्द है... इस देश ने जो शब्द चुने हैं, वे सोचने जैसे हैं। दुनिया की किसी भाषा में उस तरह के शब्द नहीं हैं, क्योंकि दुनिया की भाषाएं बुद्धों से इतनी प्रभावित नहीं हुईं जितनी इस देश की भाषाएं बुद्धों से प्रभावित हुईं। स्वाभाविक था। बुद्धों की एक श्रृंखला थी। उनकी एक दीपमालिका है, अनंत। एक दीए से दीया जलता गया है। ज्योति से ज्योति जले! और स्वभावतः चाहे हमने सुना हो, न सुना हो, मगर जाने-अनजाने उनकी छाप हमारी भाषा पर, हमारे जीवन पर, हमारे उठने-बैठने पर, हर चीज पर पड़ी

है। उनका प्रसाद चाहे हमने जान कर लिया हो, चाहे न लिया हो, मगर कुछ न कुछ हमारी झोली में पड़ गया है। थोड़ी बूंदाबांदी सब पर हो गई है। इस देश के प्रत्येक अंग पर बुद्धों की कहीं न कहीं छाप है।
जैसे हम एक शब्द का उपयोग करते हैं, वह शब्द है--पुरुष। इस पर थोड़ा विचार करना। "पुर" का अर्थ होता है: नगर। "पुरुष" का अर्थ होता है: नगर के बीच में जो छिपा बैठा है। किस नगर की बात हो रही है? तुम जंगल में भी बैठे हो तो भी तुम पुरुष हो। यह "पुर" भीतर है।
एक सूफी फकीर के पास एक युवक आया, चरणों में झुक कर नमस्कार किया और कहा कि मैं दीक्षित होने आया हूं, मुझे अंगीकार करें! उस सूफी फकीर ने कहा कि अंगीकार! पहले भीड़-भाड़ को छोड़ कर आ! उस युवक ने आसपास देखा, पीछे लौटकर देखा, वहां कोई भी न था, मस्जिद खाली थी। उस युवक ने पूछा: कौन-सी भीड़-भाड़? फकीर ने कहाः इधर-उधर मत देख, भीतर देख! इधर-उधर की भीड़ की मैं बात नहीं कर रहा हूं। उस युवक ने आंखें बंद कीं, भीतर देखा--सच ही भीड़ थी! पत्नी थी, बच्चे थे, परिवार के जन थे, मित्र थे, गांव के बाहर जो छोड़ने आए थे, उसे दूर तक, वे सब चेहरे अभी भी भीतर सजीव थे। यूं बाहर तो घटना अतीत हो चुकी थी, भीतर अभी भी वर्तमान थी। और उस फकीर ने कहाः देखी भीड़? इसे छोड़ कर आ! जिनको तू छोड़ आया है, वह तो बाहर की भीड़ थी, उसको तो छोड़े न छोड़े कुछ फर्क नहीं पड़ता। क्योंकि जो जानता है अकेले होने की कला, वह भीड़ में भी अकेला होता है। और जो नहीं जानता अकेले होने की कला, वह अकेले में भी बैठ जाए, हिमालय की गुफा में भी बैठ जाए, तो भी भीड़ में ही होता है।
तुमने भी कभी देखा? आंख बंद करके अगर अकेले में भी बैठ गए हो, तो क्या तुम अकेले हो पाते हो? शायद इससे ज्यादा अकेले तो तुम तब होते हो, जब लोग तुम्हें घेरे होते हैं। जब कोई तुम्हें नहीं घेरे होता, तब भीतर के सब सोए स्वर भनभनाने लगते हैं; तब भीतर के सब सोए हुए लोग उठ-उठ कर अपनी आवाज, अपनी गुहार देने लगते हैं; तब तुम्हारा ध्यान आकर्षित करने की चेष्टाएं शुरू हो जाती हैं। हर वासना, हर इच्छा, हर कल्पना, हर स्मृति कहती हैः मुझे देखो, मेरी तरफ देखो। वहां कहां देख रहे हो? तुम्हारे भीतर एक रस्साकसी शुरू होती है।
... वेदांत उसी नगर की बात कर रहे हैं--
नगर हो रहा निर्जन"
होना ही चाहिए। यही तो मेरा प्रयास है यहां कि तुम भीतर के नगर से मुक्त हो जाओ। इसलिए मैं बाहर के नगर से मुक्त होने को तुमसे कहता नहीं, क्योंकि उससे कुछ लेना-देना नहीं है। घर में रहो, गृहस्थी में रहो, बाजार में कि दुकान में, कुछ फर्क नहीं पड़ता; मगर भीतर निर्जन रहो। हिमालय की गुफा में जाने की जरूरत नहीं है, हिमालय की गुफा भीतर बनाने की जरूरत है। हृदय की गुफा में हिमालय की गुफा बनानी चाहिए।
नगर हो रहा निर्जन
पलटती सुध निज पर, ...
जैसे ही सुध निज पर पलटेगी, वैसे ही निर्जन होना शुरू हो जाएगा। भीतर
यह जो इतनी भीड़ है, यह है ही इसीलिए कि हम भीतर कभी देखते ही नहीं, वहां कितना कूड़ा-करकट इकट्ठा होता जा रहा है! जितनी हम घर की सफाई करते हैं उतनी भी भीतर की सफाई नहीं करते। जितने हम शरीर को मल-मल कर धोते हैं, उतनी भी भीतर की सफाई नहीं करते। भीतर एक-दो दिन की भी भीड़-भाड़ नहीं है, जन्मों की भीड़-भाड़ है, सदियों की भीड़-भाड़ है।
जो लोग भीतर मन की गहराइयों में उतरे हैं, उन सबका अनुभव है कि अतीत जन्मों की स्मृतियां फिर से जगाई जा सकती हैं। क्योंकि वे सब मौजूद हैं; वे नष्ट नहीं हुई हैं; वे अभी भी वहीं पड़ी हैं। सिर्प जरा-सी उनको उकसाने की जरूरत है कि उठनी शुरू हो जाती हैं। जैनों में इसके लिए एक विशेष प्रक्रिया हैः जाति स्मरण। एक ध्यान का विशेष ढंग है, जिससे तुम्हारी पुरानी स्मृतियां जग जाती हैं; जिनसे तुम अपने अतीत जन्मों में उतर सकते हो। इसका अर्थ हुआ कि तुम अपने सारे अतीत जन्मों को अपने भीतर लिए हो। दब गई हैं स्मृतियां--इस जन्म की स्मृतियों से दब गई हैं--लेकिन जरा कुरेदोगे, जरा खोदोगे तो मिल जाएंगी।... लेकिन जातिस्मरण जैसी प्रक्रिया में पड़ने

की कोई जरूरत नहीं है, क्योंकि वह है मन की ही बात। मन की ही पर्तो में उतरते रहोगे।
मन तो तुम नहीं हो। मन का तो साक्षी बनना है। इसी को मैं कहता हूं: सुध अपने पर लौट आए, निज पर। निज का तो एक ही अर्थ होता है: साक्षी। वह जो तुम्हारे भीतर द्रष्टा है, हर चीज को देखने वाला है--सुख हो तो सुख को देखता है, दुःख हो तो दुःख को देखता है, सफलता-असफलता, जवानी-बुढ़ापा, जीवन और मृत्यु, पूर्णिमा और अमावस, सबको देखता है--वह जो तुम्हारे भीतर देखने वाला है, वही एक तत्त्व है जो कभी बदलता नहीं। और सब बदलता रहता है। दृश्य बदलते रहते हैं, द्रष्टा स्थिर है। उस स्थिर को ही जानना है। उसको जानते ही तुम भीड़ से मुक्त होने लगते हो, भीतर निर्जन होने लगता है।
नगर हो रहा निर्जन
पलटती सुध निज पर,
पथ बनता पगडंडी----
वेदांत! तुमने मीठी बातें कहीं। और कहीं न कहीं तुम्हारे अनुभव में न
आई हों तो कहना मुश्किल है।
पथ बनता पगडंडी...
जब भीड़ छंट जाती है, तुम अकेले रह जाते हो, तो जो राजपथ था, वह अपने आप
खो जाता है; उसकी जगह रह जाती है पगडंडी। अकेले के लिए पगडंडी बहुत! कोई बहुत बड़े-बड़े जलयान तो नहीं चाहिए; एक छोटी-सी डोंगी बहुत।
पथ बनता पगडंडी
लौ कंपती, थिरती,
अंजाना फिर भी कुछ
परिचित-सा लगता गुंजन।...
ऐसा ही होगा। कुछ-कुछ अनजाना-सा और कुछ-कुछ जाना-सा! कुछ-कुछ ऐसा कि जैसे कभी सुना हो और फिर भी ऐसा कि जैसे कभी न सुना हो! यही तो इस जीवन का रहस्य है; समझ में आता भी, नहीं भी आता; और दोनों बातें साथ ही घटती हैं। कुछ-कुछ लगता कि समझ में आ रहा है। धागे हाथ में आते-आते छूट-छूट जाते हैं। लगता है रहस्य पकड़ा-पकड़ा और छिटक जाता है; मुट्ठी नहीं बांध पाते। खुले हाथ रखोगे तो जीवन तुम्हारे हाथ पर नाचेगा। मुट्ठी बांधनी चाही कि बस... जैसे कि पारा छितर-बितर हो जाए, ऐसा जीवन छितर-बितर हो जाता है। मुट्ठी मत बांधना!
मुट्ठी बांधने की हमारी स्वाभाविक वृत्ति होती है। हीरा मिल जाए तो जल्दी से मुट्ठी बांधना--पहली बात जो याद आती है वह यह कि मुट्ठी बांध लो। कि कोई देख-दाख न ले! कोई अपरिचित, अनजानी अनुभूति का हीरा जब हाथ लगता है, तो पहला तो मन होता है: मुट्ठी बांध लो। मगर मुट्ठी बांधते ही कुछ चीजें खो जाती हैं। उन पर तुमने मालकियत की कि वे खो गयीं।
रहस्य की मालकियत नहीं हो सकती। उल्टी ही बात होती है रहस्य के साथ। रहस्य को बन जाने दो तुम्हारा मालिक। तुम रहस्य को समझने की फिक्र छोड़ो-- डूबो! समझ कर करोगे भी क्या? समझ में आ भी जाए तो क्या होने वाला है? प्यासे आदमी को क्या फर्क पड़ेगा, अगर वह ठीक से भी समझ ले कि जल जो है वह एच. टू. ओ. के सूत्र से निर्मित होता है? उसे तुम कागज पकड़ा दो: एच. टू. ओ... कि दो हिस्से उद्भजन और एक हिस्सा ओक्सिजन, इनके मिलने से पानी बनता है, यह ले सूत्र, यह रहा तेरा गायत्री-मंत्र, अब प्यास-प्यास की बकवास न लगा। सब उसकी समझ में भी आ जाए, सूत्र भी हाथ में आ गया, मगर प्यास सूत्रों से नहीं बुझती। पानी चाहिए! जल चाहिए! और जल को नहीं समझते तो भी प्यास बुझती है। आखिर सदियों तक आदमी को पता नहीं था एच. टू. ओ. का। तो भी प्यास तो पानी बुझाता था। कुछ कम नहीं बुझाता था, इतनी ही बुझाता था।
जानने से कुछ भी फर्क नहीं पड़ता, भीगने से फर्क पड़ता है। रहस्य में भीगो। और कभी-कभी ऐसा होता है, जानने से बाधा पड़ती है। जैसे किसी वनस्पति- शास्त्री को तुम बगीचे में ले आओ, वह तुम्हें बगीचे का आनंद ही न लेने देगा। तुम गुलाब के फूल को देख कर मस्त होना चाहोगे, वह फौरन कहेगा यह कहां से आया। यह ईरानी जाति का मालूम पड़ता है।

मौलिक रूप से गुलाब ईरान से ही आया। इसलिए गुलाब के लिए हमारे पास कोई भारतीय शब्द नहीं है। गुलाब भारतीय शब्द नहीं है। गुल-आब। गुल यानी फूल। वह तो ईरानी शब्द हैः अरबी है, उर्दू है; भारतीय शब्द नहीं है। और आब यानी चमकता हुआ तेज। वैसे जैसा कि मोती में चमकता हुआ जल। वह जो फूल की आभा है, फूलों में जो श्रेष्ठतम आभा है, उसको गुलाब कहा। आया है ईरान से। फिर धीरे- धीरे और नस्लें पैदा हो गई हैं उसकी। अब तो बहुत तरह की नस्लें हैं पश्चिम से भी गुलाब आये हैं। वह भी गये तो ईरान से। लेकिन, पश्चिम जाकर उन्होंने गंध खो दी। गंध के लिए तो उष्ण देश चाहिए। उष्णता के बिना गंध मुक्त नहीं होती। जैसे उसमें भी एक प्रतीक छिपा हुआ है कि जब तक कोई साधना की आग न जलाए, जीवन की गंध प्रगट नहीं होती। भीतर सब ठंडा-ठंडा रहे, तो बस पश्चिमी ढंग से गुलाब होओगेः देखने में गुलाब, गंध इत्यादि कुछ भी नहीं! भीतर आग जले, ज्योति उठे ध्यान की, साधना की!
इसीलिए हमने सदियों-सदियों से संन्यास के लिए गैरिक रंग चुना है। गैरिक रंग अग्नि का रंग है--अग्निशिखा का रंग है। ज्योतिशिखा का रंग है! होती हुई सुबह का रंग है! खिले हुए फूलों का रंग है! जीवन का रंग है! सुखी यानी रक्त की सुर्खी; वह जीवन की धारा है।
अगर तुम किसी वनस्पतिशास्त्री को ले आए तो तुम्हें गुलाब का मजा नहीं लेने देगा। वह गुलाब के संबंध में एक प्रवचन देगा। वह गुलाब के संबंध में इतना समझाएगा कि गुलाब तो भूल ही जाएगा। यह गुलाब जो सामने नाच रहा है हवा में और सूरज की रोशनी में, इसको तो वह भुला देगा--इतना बीच में ज्ञान खड़ा कर देगा कि चीन की दीवाल बन जाएगी, उसके आर-पार तुम न जा सकोगे।
महात्मा भगवानदीन एक भारतीय साधु थे। प्यारे आदमी थे, मगर बहुत जानकारियों से भरे हुए थे। खासकर पौधों के संबंध में उनकी जानकारियां बहुत थीं। मैं जब छोटा था, तब वे मेरे घर मेहमान हुआ करते थे। और मेरा काम यह था कि सुबह-शाम उनके साथ घूमने जाऊं, उनको ले जाऊं घुमाने, क्योंकि उन्हें गाव के रास्तों का पता नहीं। वे मेरी जान खा डालते थे। यह वृक्ष क्या है? किस जाति का है? मैंने उनसे कहा कि एक बात आपसे साफ कह दूं। जाति इत्यादि की तो बात छोड़ो, मुझसे तो तुम नीम और आम का भी फर्क पूछो तो नहीं बता सकूंगा। मुझे कुछ पड़ी भी नहीं। मैं मस्त होता हूं इनकी हरियाली से! क्या लेना-देना है! हर चीज के बाबत जानकारी! और उनकी जानकारी का अंबार बड़ा था। वे बड़े पंडित थे। मगर ज्ञानी नहीं। पांडित्य उनका प्रगाढ़ था। वे भूल-भूल जाते। मुझे बार-बार उन्हें याद दिलानी पड़ती कि मुझे कोई रस नहीं है। पक्षी... कौन सा पक्षी है यह? किस जाति का है? कहां से आया है? किस देश से आया है? क्यों आया, इस मौसम में क्यों आया? फिर और मौसम में कहां चला जाता है? मैंने कहाः तुम जानो और पक्षी जाने! मेरा इससे कुछ लेना-देना नहीं है। जब आता है और गीत गाता है, मैं मस्त हो लेता हूं। जब चला जाता है, तब उसकी मर्जी; तब कोई दूसरा पक्षी होता है, उसके साथ मस्त हो लेता हू। और कोई भी न हो तो मैं अकेला ही मस्त हू। आप अपनी जानकारी अपने पास रखो! उनको मैं कहता भी, मगर वे फिर-फिर भूल जाते। आखिर एक दिन मैंने उनसे कहा कि अगर यह आदत आप अपनी नहीं छोड़ते, तो यह सुबह आपको घुमाने का और शाम आपको घुमाने का काम मुझे छोड़ देना होगा।
प्रकृति में इतना उल्लास है और तुम कहां के कूड़ा-करकट में लगे हुए हो!
मगर इससे लोग बड़े प्रभावित होते थे। हर कोई इससे प्रभावित हो जाता था। क्योंकि वे हर छोटी-मोटी चीज के संबंध में जानकारियां रखते थे, गहरी जानकारियां रखते थे। मगर जानकारी जानकारी है।
वेदांत, जब रहस्य का तुम्हारे जीवन में सूत्रपात हो, तो भूल कर भी समझने की कोशिश मत करना। समझने में न-मालूम कितने लोग चूक गए हैं! समझने की प्रक्रिया में ही उलझ कर रह गए हैं। समझ इत्यादि छोड़ो; प्रेम पर्याप्त है। जो विस्मय है इस जगत का, उससे प्रीति करो। जो रहस्य है इस जगत का, उसे आलिंगन करो। जानकारी तो मस्तिष्क की बात है; प्रीति हृदय की। और हृदय में ही खिलते हैं कमल! सिर में तो सिर्प कूड़ा-कचरा इकट्ठा होता है। कूड़ा-कचरा कितना ही तुम समझो कि मूल्यवान है, मूल्यवान नहीं है। वहां हीरों की खदानें नहीं हैं।

तो तुम ठीक कहते हो--
लौ कंपती, थिरती,
अनजाना फिर भी कुछ
परिचित सा लगता गुंजन।
शुरू-शुरू में ऐसा होगा ही। कभी क्षण भर को लौ ठहरेगी, थिरेगी, फिर कंपने लगेगी। मगर ख्याल करना, जब भी तुम जानने की चेष्टा में लगोगे तभी लौ कंपेगी। और जब तुम जानने की फिक्र छोड़ दोगे, लौ थिर हो जाएगी। और लौ की थिरता ही ध्यान है। और लौ का कंप जाना ही ध्यान से पतित हो जाना है। मगर जैसे ही तुमने जानने की कोशिश की, कि चूक हुई; तुम साक्षी के पद से नीचे उतर आए। तुम भूल गए कि मैं सिर्प साक्षी हूं। तुम दर्पण न रहे--मात्र दर्पण! तुम फोटो-प्लेट बनने लगे। फोटो-प्लेट पकड़ लेती है जो भी देखती है उसको। जकड़ लेती है जो भी देखती है उसको। सदा के लिए जकड़ लेती है। दर्पण? देखता सब है, पकड़ता कुछ भी नहीं। दृश्य बनते हैं, विदा हो जाते हैं, दर्पण खाली का खाली।
जब भी तुम पाओ कि लौ कंपती है तब समझ लेना कि तुम्हारा मन लौट आया पीछे
के द्वार से और कहता है: जान लो, ठीक से पहचान लो। क्यों? क्योंकि हमें सिखाया गया है स्कूलों में, कालेजों में, विश्वविद्यालय में कि ज्ञान शक्ति है। इसलिए हम सब ज्ञान के दीवाने हैं, हम ज्ञान के पीछे पड़े हैं-- जितना ज्यादा ज्ञान हो जाए! बाहर के जगत में यह बात सत्य है कि ज्ञान शक्ति है।
बेकन का यह वचन, नालेज इज पावर, बाहर के जगत में सत्य है, लेकिन भीतर के जगत में सत्य नहीं है। भीतर के जगत में तो निर्दोष चित्त, निर्मल चित्त, विस्मय-विमुग्ध चित्त--वह शक्ति है। बाहर के जगत में और भीतर के जगत में अलग-अलग नियम काम करते हैं।
लौ कंपती, थिरती,
अनजाना फिर भी कुछ
परिचित-सा लगता गुंजन।...
ये दोनों बातें एक साथ घटती हैं। क्योंकि जो तुम्हें मिल रहा है, वह सदा से तुम्हारा है--उसे तुमने एक क्षण को भी खोया नहीं था, वह तुम्हारे प्राणों के प्राण में बसा ही था। तो जाने-अनजाने उसकी आवाज तुम्हें सुनाई पड़ती ही रही थी। अनसुनी की होगी तुमने, लेकिन हृदय-तंत्री बजती ही रही थी। तुम शोरगुल से भरे थे, नहीं पकड़ पाए होओगे उसके स्वरों को, नहीं आनंदित हो पाए होओगे उसके गीत के साथ, लेकिन कभी न कभी तुम्हारे कान में वह गीत पड़ता ही रहा था। किन्हीं विश्राम के क्षणों में, किन्हीं शांति के क्षणों में, किसी पहाड़ी झरने के पास, बहुत दिनों के बाद मिले किसी मित्र का हाथ हाथ में लेकर बैठे हुए, कभी संगीत को सुनते हुए--बाहर के संगीत में ऐसे डूब गए होओगे कि भीतर का संगीत भी क्षण भर को उभर आया होगा--प्रेम में, प्रकृति में, गीत में, नृत्य में, कभी न कभी भीतर के कुछ न कुछ छोर हाथ में आ गए होंगे, कुछ न कुछ बात छू गई होगी, कहीं न कहीं स्पर्श हो गया होगा।
और भीतर का सत्य जहां भी स्पर्श कर जाता है वहीं मिट्टी को सोना कर जाता है। वह पारस है। इसलिए कुछ-कुछ पहचाना लगेगा। जैसे दूर से आई हुई ध्वनि! कुछ-कुछ पहचाना लगेगा और कुछ-कुछ अपरिचित लगेगा। और यह स्थिति अंत तक बनी रहेगी। यह स्थिति कभी समाप्त नहीं होती। जो ब्रह्म को जान भी लेते हैं, उनकी भी समात नहीं होती, उनको भी ब्रह्म कुछ परिचित, कुछ अपरिचित लगता है। क्योंकि ब्रह्म को कभी भी पूरा-पूरा नहीं जाना जा सकता। पूरा-पूरा जान लो तो उसकी सीमा बन जाएगी, वह असीम नहीं रह जाएगा। पूरा-पूरा नाप लो, तो अथाह नहीं रह जाएगा। ब्रह्म है अथाह, असीम। हां, कुछ जानोगे और बहुत कुछ जानने को सदा शेष रहेगा जितना जानोगे उतना ही यह भी जानोगे कि अभी बहुत जानने को शेष है।
पत्तों से झरते शब्द, विचार;
तर्कजाल--जो रहा कभी मन का वैभव,
प्रतिपल है मिटता तार-तार।...

इसलिए तो सत्संग है। तुम्हारे मन में विचार ऐसे ही लगते हैं जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं। मगर वृक्षों के पत्ते तो पतझर में झर जाते हैं, हर बार नए हो जाते हैं। तुम्हारा मन अजीब है। पुराने पत्ते भी लगे रहते हैं और नए भी निकलते आते हैं। पुराने पत्तों को तुम झरने ही नहीं देते। अगर झर भी जाएं तो सम्हाल-सम्हाल कर रख लेते हो, गिड्डियां बना लेते हो। जैसे लोग नोटों की गिड्डियां बनाते हैं, ऐसे ही तुम पुराने पत्तों की भी गिड्डियां बना-बनाकर भीतर उनको इकट्ठा करते जाते हो।
सत्संग का अर्थ ही यह है कि वहां शब्द तुम्हारे हाथ से छूटने लगें; वहां तुम्हारे विचार अब और संगृहीत न हों, विसर्जित होने लगें। तुम्हारे तर्कजाल, जिनसे तुम घिरे हो, जिनसे सभी घिरे हैं--कम-ज्यादा, कमोबेश, लेकिन सभी लोग तर्कजाल से घिरे हैं। जिनको तुम धार्मिक कहते हो, वे भी तर्कजाल से घिरे हैं। उनका ईश्वर भी केवल तर्क की एक निष्पत्ति है। उनसे पूछो कि ईश्वर है? और वे जवाब देने को तैयार हैं। पूछो, क्यों है? तो वे तर्क देने को तैयार हैं। इन्हीं मूढ़ों के कारण दुनिया में नास्तिकता पनपी है। क्योंकि जब तुम ईश्वर को सिद्ध करने के लिए तर्क देते हो, तो लोग उसको असिद्ध करने के लिए तर्क देने लगते हैं। और ध्यान रखना, तर्क असिद्ध करने में ज्यादा कुशल है बजाय सिद्ध करने के; क्योंकि तर्क की मूल आधारशिला नकार है, निषेध है, इंकार है। तर्क हां करना तो जानता ही नहीं; क्योंकि तर्क की मूल आधारशिला नकार है, निषेध है, इनकार है। तर्क हां करना तो जानता ही नहीं, ना करना ही जानता है।
इसलिए तुम कितना ही तर्क दो, तुम्हारे तर्क से कभी आस्तिकता फलित नहीं हो सकती; या होगी भी तो थोथी होगी, झूठी होगी। जैसे की तुम कहो कि हर चीज को बनाने वाला होता है, इसलिए जगत को बनाने वाला भी कोई होना चाहिए। धार्मिक लोग यही कहते रहे हैं सदियों से। शास्त्रों में यही लिखा हुआ है: जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है। अब घड़ा है तो कुम्हार का सबूत है। अगर तुम्हें घड़ा मिल जाए, तो स्वभावतः चाहे कुम्हारे मिले या न मिले, तुम्हें मानना पड़ेगा कि कोई बनाने वाला होगा। यह घड़ा अपने आप ही नहीं बन जाएगा। और घड़ा तो खैर बहुत सरल वस्तु है, और भी बहुत जटिल वस्तुएं हैं।
पश्चिम का बहुत बड़ा नास्तिक दिदरो कहता था कि अगर रेगिस्तान में तुम
जा रहे हो और तुम्हें एक घड़ी मिल जाए--घड़ा तो छोड़ो, घड़ी--तो क्या तुम यह कल्पना कर सकते हो कि यह अपने-आप बन गई होगी। असंभव। यह घड़ी का इतना सूक्ष्म यंत्र कैसे अपने आप बन जाएगा? न घड़ा बन सकता है अपने-आप, न घड़ी बन सकती है अपने-आप। तो यह इतना बड़ा विराट अस्तित्व कैसे अपने आप बन जाएगा? तो सदियों से धार्मिक लोग यह तर्क देते रहे हैं कि परमात्मा होना चाहिए स्त्रष्टा होना चाहिए। मगर नास्तिक क्या कहता है? नास्तिक कहता है : अगर यह अस्तित्व को बनाने के लिए परमात्मा चाहिए तो परमात्मा को किसने बनाया? बस उसने तुम्हारे पैर के नीचे की जमीन खींच ली। अगर घड़े को बनाने के लिए कुम्हार चाहिए तो कुम्हार को बनाने के लिए भी कोई चाहिए न! जब घड़े जैसी सीधी-सादी चीज अपने आप नहीं बनती, तो कुम्हार जैसा जटिल व्यक्ति कैसे अपने आप बन जाएगा? तो परमात्मा को किसने बनाया? बस तुम्हारा आस्तिक वहां लड़खड़ा जाता है। बड़े-बड़े आस्तिक वहां लड़खड़ा जाते हैं।
याज्ञवल्क्य से--इस देश के एक बड़े आस्तिक विचारक से--गार्गी ने यही पूछा था। जनक ने एक दरबार रचाया था, जिसमें देश के सारे महापंडित बुलाए थे और कहा था: जो जीत लेगा विवाद को... ब्रह्म के संबंध में विवाद हो रहा था... उसके लिए एक हजार गौएं भेंट करूंगा। उन गौओं के सींग सोने से मढ़े थे और उन पर हीरे-जवाहरात जड़े थे। वे एक हजार गौएं राजमहल के बाहर खड़ी थीं। पंडित विवाद में उलझे थे। कौन छोड़े इन एक हजार गौओं को! और इनके सींगों पर लगा हुआ सोना और जड़े हुए हीरे-जवाहरात--करोड़ों की कीमत थी उन गौओं की, श्रेष्ठतम गौएं थीं देश की। इनको छोड़ने को कोई राजी नहीं था। सभी तथाकथित ब्रह्मज्ञानी इकट्ठे हो गए थे विवाद के लिए। याज्ञवल्क्य जरा देर से पहुंचा। उसके शिष्यों ने कहा भी कि हम चलें, जल्दी करें! उसने कहा: तुम फिक्र न करो। पहले उनको कर लेने दो माथापच्ची। पीछे चलकर हम निपटारा कर लेंगे। थक लेने दो उनको!

जब दोपहर हो गई तब याज्ञवल्क्य अपने शिष्यों को लेकर आया। और आते ही उसने पहला काम क्या किया कि जनक भी चौंक गया! उसने अपने शिष्यों से कहा: बेटो, गायें थक गई हैं धूप में खड़े-खड़े, इनको तुम आश्रम ले जाओ। विवाद मैं निपटा लेता हूं। जनक की भी हिम्मत न पड़ी यह कहने की कि यह बात शोभन नहीं है; वह पुरस्कार है। लेकिन याज्ञवल्क्य को इतना आश्वासन था अपने ऊपर, अपने विवाद की प्रतिभा पर, अपने तर्कजाल पर कि उसने कहा: कोई फिक्र नहीं, वह मैं निपटा ही लूंगा। विवाद जीतना सुनिश्चित ही है। इसलिए तुम गौओं को तो ले जाओ, इनको क्यों बिचारी... पानी भी नहीं पिआ, धूप में खड़ी हैं, थक भी गई हैं! उसके शिष्यों ने तो गाएं फौरन खदेड़ दीं आश्रम की तरफ... सारा पंडितों
का समूह एक क्षण को तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। और याज्ञवल्क्य ने सबको विरोध में हरा दिया। तब गार्गी खड़ी हुई।
शुभ दिन थे वे जब कि स्त्रियों को भी उतनी ही आजादी थी जितनी पुरुषों
को; जब स्त्रियों का भी उतना ही सम्मान था जितना पुरुषों का; जबकि स्त्रियां भी विवादों में भाग ले सकती थीं; जबकि स्त्रियां भी पुरुष पंडितों के साथ बैठ सकती थींं। गार्गी खड़ी हुई और गार्गी ने कहा कि मैं यह पूछना चाहती हूं कि तुम कहते हो कि विश्व को परमात्मा ने बनाया, परमात्मा को किसने बनाया?
याज्ञवल्क्य जैसा विचारक आदमी भी आगबबूला हो गया। क्योंकि यह प्रश्न ऐसा था कि पैर के नीचे की जमीन खींच ले। वे गौएं जो चली गयीं, वे वापिस करनी पड़ें। वह तो भद्द हो जाएगी। एकदम क्रोध में आ गया और कहा: गार्गी, यह अतिप्रश्न है! अतिप्रश्न उस प्रश्न को कहते हैं जो नहीं पूछा जाना चाहिए। यह भी कोई बात हुई! कौन तय करेगा कि कौन-सा प्रश्न नहीं पूछा जाना चाहिए? और इतना क्रुद्ध हो गया याज्ञवल्क्य तो, उसने कहा, यह अतिप्रश्न है! अगर तू ऐसे प्रश्न पूछेगी, तेरा सिर धड़ से गिर जाएगा।
भूल ही गया ब्रह्मज्ञान इत्यादि! बातचीत तो दूर, मामला मारा-मारी पर आ गया। सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा।
उपनिषद कुछ और कहते नहीं कि गार्गी ने क्या कहा। भली नारी रही होगी, चुप हो गई होगी। इस बेहूदगी में पड़ना उसने ठीक न समझा होगा। यह बात अब सज्जनोचित न रही--कम-से-कम स्त्रियोचित तो न रही। अब गर्दन काटने इत्यादि की बात होने लगी, मामला सिर्प विचार का था। और गार्गी ने अतिप्रश्न नहीं पूछा था, मैं यह कहना चाहता हूं। गार्गी ने बिल्कुल समुचित प्रश्न पूछा था।
जब पृथ्वी को बनाने के लिए तुम कहते हो कि कोई बनाने वाला चाहिए, तो इसमें क्या अतिप्रश्न है कि कोई पूछे कि उस बनाने वाले को किसने बनाया? मगर याज्ञवल्क्य की तकलीफ भी मैं समझता हूं--तकलीफ यह है कि फिर इसका अंत कहां होगा? तुम कहो "अ" ने बनाया, तो वह पूछेगी "अ" को किसने बनाया? तुम कहो "ब" ने बनाया, तो वह पूछेगी "ब" को किसने बनाया? तुम कहो "स" ने बनाया, तो वह पूछेगी "स" को किसने बनाया? आखिर में तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। अंततः तुम्हें स्वीकार करना ही होगा, थक ही जाना होगा। एक जगह जा कर तुम्हें कहना ही होगा कि इसको किसी ने नहीं बनाया। और वहीं तुम हार जाओगे, क्योंकि अगर कोई एक चीज ऐसी हो सकती है, बिन-बनाई, तो सारी पृथ्वी बिन-बनाई क्यों नहीं हो सकती? अगर परमात्मा बिन-बनाया हो सकता है, तो घड़े में ऐसी क्या खूबी है, तो घड़ा भी बिन-बनाया हो सकता है! तो घड़ी भी बिन-बनाई हो सकती है! जब परमात्मा तक बिन-बनाया हो सकता है, इतना रहस्यपूर्ण जो है... ।
मेरे हिसाब में जिन्होंने परमात्मा के प्रमाण के लिए तर्क दिए हैं उन्होंने सिर्प नास्तिकों के लिए रास्ता खोला। वास्तविक जो आस्तिक हैं, जिन्होंने परमात्मा को जाना है, उन्होंने कोई तर्क नहीं दिए हैं। वे तर्क दे नहीं सकते। क्योंकि वह तर्कातीत है। न तर्क से जाना जा सकता है, न तर्क से सिद्ध किया जा सकता है। वह अनुभवगम्य है। ये तो बच्चों की बातें हैं। तुम छोटे बच्चों को ऐसे समझाओ तो चलेगा, कि भगवान ने सारी पृथ्वी बनाई। छोटे बच्चों की बातें हैं। तुम्हारे पुराण करीब-करीब ऐसे हैं कि सिर्प अब बच्चों के पाठ्यक्रम में रखे जा सकते हैं, इससे ज्यादा उनका कोई मूल्य नहीं है।

पृथ्वी को कौन सम्भाले हुए है? बड़े-बड़े ज्ञानी पूछ रहे हैं! पृथ्वी को कौन सम्हाले हुए है? कछुआ सम्हाले हुए है। कछुआ! तो कितना बड़ा कछुआ होगा, जरा सोचो तो! और भूकंप वगैरह क्यों आते हैं? कछुआ जरा थक जाता है, तो जरा करवट वगैरह लेने लगता है! कछुआ ही ठहरा! ज्यादा भूकंप नहीं आते, यही आश्चर्य है। आने चाहिए रोज ही। किसी दिन कछुआ-कछुवी में झगड़ा हो जाए, वह फेंक-फांक कर पृथ्वी एक तरफ कि आ जा पहले तुझे देखूं! तो यहां तो सत्यानाश हो जाए! कछुए का क्या भरोसा! और कब से बेचारे की पीठ पर लदी है पृथ्वी! इसका कसूर क्या है? और अगर पूछो कि कछुआ किस पर टिका है--अतिप्रश्न हो गया! सिर धड़ से गिर जाएगा! मैंने तो किसी का गिरते नहीं देखा। मैंने कई बार खुद पूछ कर देखा, बिल्कुल नहीं गिरता!
पृथ्वी को टिकने के लिए कछुए की जरूरत है! और कछुआ? तुम इस बात की मूढ़ता को देखते हो? और कछुआ अगर बिना ही किसी पर टिके टिका है, तो फिर बेचारे कछुए को नाहक तकलीफ क्यों देनी! पृथ्वी को टिका रहने दो बिना किसी पर टिके हुए। वही तो विज्ञान कहता है कि पृथ्वी अपने-आप टिकी है। कोई और टिकाने की आवश्यकता नहीं है।
मगर छोटे बच्चों को यह बात नहीं जंचेगी। छोटे बच्चों को कछुए वाली बात जंचेगी। प्रसन्न हो जाएंगे। वे कहेंगे: अरे यह बात ठीक! . . .कछुआ कहां है? कितना बड़ा है? उसके कितने पैर हैं, कैसा रंग है? शायद कछुए के संबंध में वे इतने उलझ जाएं कि वे भूल ही जाएं पूछना कि कछुआ किस पर टिका है। और बहुत ही पूछें तो होशियार आदमी हो तो कहना, वह हाथी पर टिका है और फिर हाथी ऊंट पर टिका है. . .और टिकाते जाना। आखिर दुनिया में इतनी चीजें हैं, टिकाना ही है तो टिकाते जाना! और बच्चे ज्यादा देर जिज्ञासा करते नहीं; इतनी स्थिरता नहीं होती। इधर पूछा कि पृथ्वी किस पर टिकी है, तुमने कहा कछुए पर, उन्होंने कहा, होगी। दूसरा प्रश्न पूछने लगते हैं कि वृक्ष हरे क्यों हैं; कि पक्षी आकाश में उड़ते क्यों हैं, आदमी क्यों नहीं उड़ता? इनको इतनी फुरसत कहां कि अब कछुए ही के पीछे पड़े रहें। इधर दुनिया में इतनी चीजें हैं... ! कभी किसी बच्चे के साथ सुबह घूमने गए हो? पूछता ही चला जाता है। तुम लाख उसको चुप करो!
कल मैं पढ़ रहा था एक लेखक की आत्मकथा है। उसने लिखा कि मेरा पहला बच्चा पैदा हुआ धर में, तीन साल का हुआ तो उसे एक खराब आदत पड़ गई। हर किसी से कहे: शट अप! हर किसी से! उसको ऐसी आदत पकड़ गई कि जिनसे कोई लेना-देना नहीं उसको. . .कोई घर में मेहमान आया है, बाप से बातें कर रहा है, वह बीच में आ कर कहे: शट अप! तो इसने उसको कहा कि देख. . .उसको वह शब्द ऐसा जंचे और उसका प्रभाव भी एकदम पड़े कि एकदम किसी से भी कह दे तो वह भी एक क्षण को तो ठहर ही जाए कि मामला क्या है! . . .उसके बाप ने उसको बुला कर कहा कि देख, यह बात तुझे बदलनी पड़ेगी; नहीं तो मैं तेरी कुटाई-पिटाई करूंगा। जब तेरे दिल में यह भाव उठे कहने का: शट अप, तो अपने से ही कहा कर कि शट अप!
यह बात लड़के को बहुत जंची। उसने कहा कि यह बिल्कुल ठीक। तीन-चार दिन बाद बाप ने देखा कि वह एक कुर्सी पर बैठा है और बीच-बीच में खिलखिलाता है, हंसता है और फिर अपने-आप शांत हो जाता है। बाप ने पूछा, क्या मामला है? तो उसने कहा कि यह जो आपने बताया, जब भी मेरे मन में यह भाव उठता है तो मैं कहता हूं: शट अप! और कोई डांटता भी नहीं। सो मुझे बहुत हंसी आती है कि यह अच्छा रहा! नहीं तो पहले हमेशा डांट पड़ती थी, मां डांटे, आप डांटें, जो देखो वही डांटे, नौकर-चाकर डांटें, स्कूल में जाऊं तो मास्टर डांटें। और मुझे यह कहने में मजा आता है, अब यह मुझे राज मिल गया कि मैं अपने से ही कह लेता हूं और देखता हूं, अब देखें कौन डांटता है! कोई डांटने वाला नहीं। इसलिए मैं हंस रहा हूं, प्रसन्न हो रहा हूं।
बच्चों की जिज्ञासाएं!
ईश्वर के संबंध में भी तुम जो पूछते हो, बचकानी जिज्ञासाएं हैं। फिर उनको सिद्ध करने के लिए जो तुम तर्क इकट्ठे करते हो, वे भी बचकाने हैं।
ईश्वर एक अनुभव है, जैसे प्रेम एक अनुभव है। कोई प्रमाण नहीं है, कोई तर्क नहीं है। तुम्हारे तर्क तार-तार करना है। तुम्हारे तर्कजाल तोड़ देने हैं।
यही सत्संग की उपादेयता है।

तुम ठीक कहते वेदांत--
पत्तों से झरते शब्द, विचार; तर्कजाल--
जो रहा कभी मन का वैभव
प्रतिपल है मिटता तार-तार। मधु भरता
घड़ी, दिन, रैन मास
लुक-छिप आता
फिर-फिर शैशव,
धरा शीतल करने झरती
भीतर की ही जलधार।
और मधु तो भरेगा। जब तर्क कटेगा तो मधु भरेगा। तर्क से खाली हुए कि मधु भरा। झरत दसहुं दिस मोती! तर्क को तोड़ डालो और सत्य उतरेगा। तर्क ही है जो सत्य को नहीं उतरने देता। यह तर्क ही है जो द्वार अवरुद्ध किए है। मधु तो तुम्हारे भीतर बह उठने को आतुर है। अनहद नाद बजना चाहता है, मगर तर्क बजने दे तब! तर्क तुम्हारे पैरों में जंजीरें बन कर पड़ा है; तुम नाच नहीं सकते। कोई हिंदू तर्क में बंधा है, कोई मुसलमान तर्क में, कोई कम्युनिस्ट तर्क में--तर्क ही तर्क हैं दुनिया में!
मैं उस व्यक्ति को धार्मिक कहता हूं जो सारे तर्को को तोड़ देता है। तर्क के टूटते ही मधु-वर्षा हो जाती है, मधु-वर्षण हो जाता है।
शत-सहस्त्र
सूर्य-किरणों से मंडित
चेतना के उत्तुंग शिखर पर
दीप्तिमान
हे, धवलपुंज! ...
लेकिन जो तुम मेरे लिए कह रहे हो, वह तुम्हारे लिए भी उतना ही सत्य है-- इसे स्मरण रखना, इसे भूल मत जाना। और तुम्हारे लिए ही नहीं, सबके लिए सत्य है--इसे स्मरण रखना, इसे कभी क्षण भर को न भूलना।
बुद्ध ने अपने पिछले जीवन की एक घटना कही है। जब वे बुद्ध नहीं थे, बुद्ध होने के सदियों पहले वे एक राजकुमार थे, और उस समय एक बहुत प्रसिद्ध बुद्ध हुए--दीपंकर--उनके दर्शन को गए थे। दीपंकर बुद्ध की प्रतिभा, उनका-- जाज्वल्यमान रूप, उनका प्रसाद देख कर यह राजकुमार उनके चरणों में झुका। जैसे ही चरण छू कर उठा था कि चकित हुआ कि दीपंकर बुद्ध उसके चरणों में झुके! घबड़ा गया। उठाया उन्हें और कहा: आप यह क्या करते हैं? मैं एक साधारणजन हूं, आप प्रबुद्ध पुरुष हैं, मैं आपके चरण छूऊं, यह तो ठीक; लेकिन आप मेरे चरण क्यों छूते हैं?
तो दीपंकर बुद्ध ने कहा: जो मैं प्रगट हो गया हूं, वह तू भी है लेकिन अभी अप्रकट है। तुझे पता नहीं, लेकिन मुझे तो पता है! मैं तो तेरे आर-पार देख सकता हूं। जिस दिन अपने आर-पार देखा, उसी दिन सबके आर-पार देखने की कला आ जाती है।
फिर तो बुद्ध ने भी, जब वे बुद्ध हुए तो कहा कि आज मैं समझा कि दीपंकर
ने क्या कहा था। तब मैंने सुन लिया था, लेकिन समझ में मेरे कुछ पड़ा न था। मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता था कि मैं और मेरे चरण छूने योग्य हो सकते हैं! मैं तो अपने भीतर सिवाय गर्हित भावनाओं के, कुत्सित कामनाओं के, वासनाओं के कुछ भी न पाता था। मेरे भीतर क्या है--अंधकार ही अंधकार! कोई दीया भी तो नहीं। और यह सूर्य जैसा जगमगाता हुआ व्यक्ति मेरे चरणों में झुके! यह कोई मजाक तो नहीं है, यह कोई व्यंग्य तो नहीं है? यह आदमी पागल तो नहीं है?
लेकिन अब मैं जानता हूं।
जब बुद्ध स्वयं बुद्ध हुए तो उन्होंने कहा कि जिस क्षण मैं बुद्ध हुआ,
उस क्षण मुझे जो पहली याद आई वह दीपंकर की आई। तब मैंने अज्ञात के चरणों में सिर झुकाया। खो गए विराट में दीपंकर को मैंने पहले स्मरण किया, कि तुम पहले थे जिसने मुझे पहचाना था; अब मैं भी अपने को पहचाना। और बुद्ध ने यह

भी कहा कि जिस क्षण मैं बुद्ध हुआ, उसी दिन मेरे लिए सारा अस्तित्व बुद्ध हो गया।
बस, दो ही तरह के लोग हैं दुनिया में। एक, जो जानते हैं कि कौन हैं और एक, जो नहीं जानते कि कौन हैं। मगर हीरे तो सब हैं, जानो कि न जानो!
हे, धवलपुंज!
शत, शत कमलों के ऊर्जास्त्रोत
हे महाप्राण!
ले अर्पित तेरे चरणों में
उल्टे-सीधे सब ताल, स्वर;
हे, राशि-राशि भर रत्न उलीचते
रत्नाकर!
नतमस्तक हूं
हे, अखिल विश्व के दिव्य-द्वार
नमस्कार, प्रभु, नमस्कार!
जो तुम मेरे लिए कह रहे हो, चाहूंगा कि एक दिन अपने लिए भी कह सको; क्योंकि तुम्हारे भीतर भी वही विराजमान है, रत्ती भर कम नहीं। इतना ही धवल शिखर तुम्हारा भी है। मगर तुम आंखें ऊपर नहीं उठाए। और इतनी ही गहराई तुम्हारी भी है। मगर न मालूम किन डरों से भरे हुए, कंपते हुए तुम झांकते नहीं।
मेरे जीवन में एक बार
तुम देखो तो अनुपम स्वरूप;
मैं तुममें प्रतिबिंबित होऊं,
तुम मुझमें होना ओ अनूप!
राका-शशि अपनी रश्मि-माल
जब रजनी को पहनाता हो;
अथवा जब फूलों के तन से
प्रेयसि सुगंधि का नाता हो, जब विमल ऊर्मि में लघु बुदबुद उल्लास-पीन लहराता हो,
जब तरु से लतिका का अंतर
मधु-ऋतु में कम पड जाता हो,
उस समय हंसो, तो बरस पड़े
कण-कण में विश्वों का स्वरूप।
मैं तुममें प्रतिबिंबित होऊं,
तुम मुझमें होना ओ अनूप!
गुरु और शिष्य के बीच जो नाता है वह ऐसा है जैसे दो दर्पण एक-दूसरे के सामने रखे हों। एक-दूसरे में प्रतिबिंबित होते जाएं--प्रतिबिंबित पर प्रतिबिंबित होते जाएं! दो दर्पण एक-दूसरे के सामने होंगे तो क्या होगा? वही शिष्य और गुरु के बीच घटता है, घटना चाहिए, तो ही समझना कि शिष्य और गुरु का संबंध हुआ है।
और वेदांत, मैं साक्षी हूं, गवाह हूं कि तुम्हारा वैसे संबंध का प्रथम सूत्रपात हो गया है।
मैं तुम्हारे नूपुरों का हास
लघु स्वरों में बंद हो
पाऊं चरण में वास।
मैं तुम्हारी मौन गति में
भर रहा हूं राग;
बोलता हूं यह जताने
हूं तुम्हारे पास।
चरण-कंपन का तुम्हारे
हृदय में मृदु भाव;
कर रहा हूं मैं तुम्हारे कंठ का अयास।

मैं तुम्हारे आगमन का
पूर्व लघु संदेश;
गति रुकी तो मौन हूं,
गति में अखिल उल्लास।
मैं चरण ही में रहूं
स्वर के सहित सविलास;
गति तुम्हारी ही बने
मेरा अटल विश्वास।
वह होना शुरू हुआ है। आस्था जगी है। आस्था में कोंपलें ऊगनी शुरू हुई हैं। मधुमास दूर नहीं है। मगर जब मधुमास करीब आता है, तब एक खतरा भी करीब आता है। और वह खतरा भी तुम्हारे चारों तरफ मंडरा रहा है। उस खतरे के प्रति भी तुम्हें सचेत कर देना जरूरी है।
जब यह महाक्रांति घटने के करीब होती है तो भागने का मन होता है। जब यह इतनी बड़ी श्रद्धा का जन्म होने लगता है, तो डर लगता है कि कहीं मैं डूब ही तो न जाऊंगा, बिल्कुल डूब ही तो न जाऊंगा! अपने को बचा लूं! भाग जाऊं! कहीं दूर निकल जाऊं! वैसा भाव उठे तो साक्षीभाव से उसे देख लेना, उसको संग-साथ मत देना। वह अपने से उठेगा, अपने से गिर जाएगा। जो अभी एक छोटी-सी किरण की तरह घटना घटनी शुरू हुई है, जल्दी ही महासूर्य बन जाएगी। बन सकती है। सब तुम पर निर्भर है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं कुंडलिनी जगाना चाहता हूं। अभी तक जागी नहीं। क्या मुझसे कोई भूल हो रही है? मार्गदर्शन दें।

जगदीश! भइया, कुंडलिनी ने तुम्हारा कुछ बिगाड़ा! सोई है, बिचारी को सोने दो! काहे पीछे पड़े हो? तुम्हें और कोई काम नहीं है? कुंडलिनी क्यों जगाना चाहते हो? फिर जग जाए तो फिर आ कर कहोगे कि अब इसे सुलाओ! कि अब यह कुंडलिनी जग गई, अब यह चैन नहीं लेने देती।
शब्द सुन लिए हैं।
और शब्द सुन लिए हैं तो शब्दों के साथ वासना जुड़ जाती है। कोई जैन आ कर नहीं पूछता कि मेरी कुंडलिनी क्यों नहीं जग रही है, क्योंकि उसके शास्त्रों में ये शब्द नहीं है। कोई बौद्ध नहीं पूछता, कोई मुसलमान नहीं पूछता, कोई ईसाई नहीं पूछता, कोई पारसी नहीं पूछता, कोई यहूदी नहीं पूछता-- यहां सब मौजूद हैं--हिंदुओं भर को यह शब्द पकड़ गया है: कुंडलिनी! और कुंडलिनी जगा कर रहेंगे! और नहीं जग रही है तो तुम्हें शक हो रहा है कि कहीं कोई भूल तो नहीं हो रही है!
जगदीश, तुमसे और भूल! जरा नाम तो देखो अपना--"जगदीश!" तुमसे भूल नहीं
हो सकती, भइया! तुमसे ही भूल होने लगी तो जगत का क्या होगा?
मुल्ला नसरुद्दीन का दावा था कि उससे कभी गलती नहीं हुई। लोग उससे ऊब
गए थे सुन-सुन कर यह बात। जब देखो तब; जहां देखो वहां; जब मौका मिल जाए, छोड़े ही नहीं अवसर यह बताने का कि मुझसे कभी कोई भूल नहीं हुई; जीवन में मैंने गलती की ही नहीं। किंतु एक दिन जब उसने कहा कि एक बार उससे सचमुच गलती हो गई थी, तो सुनने वाले एकदम चौंक पड़े। मित्रों को भरोसा न आया अपने कानों पर, कि नसरुद्दीन कहे कि मुझसे और गलती हो गई!
एक मित्र ने कहा कि नसरुद्दीन क्या कह रहे हो? तुमसे और गलती! कभी नहीं, कभी नहीं! ऐसा हो ही कैसे सकता है? क्या कह रहे हो, कुछ सोच रहे हो कि बिना सोचे बोल गए हो?
नसरुद्दीन ने कहाः हां भई, एक बार हो गई थी। एक बार मैंने सोचा था कि मैं गलती पर हूं, किंतु बाद में पता चला कि मैं ठीक था।
गलती वगैरह कुछ भी नहीं हो रही है। कुंडलिनी जगाने की भी कोई जरूरत नहीं है। कुंडलिनी जगाने का भी एक शास्त्र है, लेकिन उससे गुजरना आवश्यक नहीं है। जीसस बिना उससे गुजरे पहुंच गए, बुद्ध उससे बिना गुजरे पहुंच गए, महावीर पहुंच गए। उस रास्ते से जाना आवश्यक नहीं है। और उस रास्ते से जाना खतरनाक भी है; क्योंकि शरीर की प्रसुप्त शक्तियों को छेड़ना खतरे से खाली

नहीं है। अच्छ तो यह है कि उन्हें बिना छेड़े गुजर जाओ। उन्हें छेड़ने का सबसे बड़ा खतरा तो यह है कि हो सकता है कि तुम फिर उन पर काबू न पा सको। तुम्हारे भीतर इतना बड़ा विस्फोट हो कि तुम्हारी समझ के बाहर पड़ जाए। और समझ के बाहर पड़ ही जाएगा। और तुम अगर नियंत्रण न पा सको तो विक्षिप्त हो जाओगे।
इस सदी का एक बहुत बड़ा सदगुरु था--जार्ज गुरजिएफ। वह कुंडलिनी के बहुत खिलाफ था। खिलाफत के कारण कुंडलिनी को उसने नया नाम ही दे दिया था--"कुंडाबफर"।" बफर लगे रहते हैं न, तुमने देखे हों टेन के दो डिब्बों के बीच में जो लगे रहते हैं, उनको कहते हैं बफर। उससे कभी टक्कर वगैरह हो जाए तो डब्बे एक-दूसरे पर नहीं चढ़ जाते। वे जो बीच में बफर लगे रहते हैं, वे धक्के को पी जाते हैं। ऐसे ही कार में स्प्रिंग लगे रहते हैं, वे भी बफर हैं; ... उनके कारण भारतीय रास्ते पर भी कार चल सकती है! नहीं तो पूना से बंबई ही नहीं पहुंच सकते, और दूर की बात छोड़ो। स्प्रिंग तुम्हारी चोटों को पी जाते हैं, नहीं तो वे चोटें तुमको पीनी पड़ेंगी। मल्टी179ोक्चर हो जाएगा बंबई पहुंचते-पहुंचते। उतरोगे नीचे तो घर के लोग ही नहीं पहचान पाएंगे कि तुम्हीं हो।
एक दर्जी मुल्ला नसरुद्दीन को अचकन और चूड़ीदार पाजामा बेच रहा था। खींचतान कर किसी तरह उसको चूड़ीदार पाजामा पहना दिया--दो घंटे लगे। नसरुद्दीन ने कहा कि भई, यह तो बहुत कठिन काम है। और तुमने किसी तरह चढ़ा तो दिया, अब मुझे डर लग रहा है कि इसको मैं उतार सकूंगा कि नहीं। और आईने के सामने खड़ा हुआ तो बिल्कुल बंदरछाप काला दंतमंजन! उसने कहा कि भइया, यह तुमने मेरी क्या गति कर दी! यह दिल्ली में नेतागणों की होती रहे, होती रहे, मगर मुझे कोई काला दंतमंजन बेचना है? एक ढोल और दे दो मुझे! यह कहां का कपड़ा मुझे पहना दिया? निकालो!

मगर दर्जी भी दर्जी था। दर्जी ने कहा कि तुम समझ ही नहीं रहे। तुम्हें आधुनिक सयता का कोई बोध ही नहीं है। अरे, यह राष्ट की वेशभूषा है--राष्टीय वेश है! और तुम इतने सुंदर लग रहे हो! तुम जरा बाहर तो हो कर आओ! और तुम इतने जवान लग रहे हो कि तुम्हारे मित्र भी तुम्हें पहचान नहीं सकेंगे।
नहीं माना दर्जी तो मुल्ला जरा बाहर सड़क पर चक्कर लगाने लगा। चलना ही मुश्किल हो रहा था, अब गिरे तब गिरे की हालत थी--जो कि नेतागणों की रहती ही है, अब गिरे तब गिरे! जब तक न गिरे तब तक समझो चमत्कार है! गिरे तो उठना फिर बिल्कुल मुश्किल हो जाता है। उठ आए तो समझो महा चमत्कार है! कोई पांच-सात मिनट बाद ही वापिस लौट आया। जैसे ही भीतर आया, वह दर्जी उठ कर खड़ा हुआ -- कहिए, महाशय आइए, आपकी क्या सेवा करूं? आप कहां से आए हैं? आप अजनबी मालूम होते हैं इस बस्ती में। और कपड़े आपके क्या सुंदर! मैं तो बिल्कुल पहचान ही नहीं पा रहा हूं, दर्जी बोला।
यही हालत हो जाएगी--घर के लोग भी पहचान न सकें। पत्नी न पहचाने पति को, जिसने कि कसम खाई थी जन्मों-जन्मों तक पहचानने की।
वह तो... गुरजिएफ उसको कहता था कुंडाबफर।
शरीर की एक ऊर्जा है, जो शरीर और आत्मा के बीच बफर का काम करती है। नहीं तो शरीर के भीतर आत्मा का रहना मुश्किल हो जाए, असंभव हो जाए। उस ऊर्जा की एक पर्त तुम्हारी आत्मा को घेरे हुए है। तुम्हारी आत्मा और शरीर के बीच में उस ऊर्जा की एक पर्त है। इसलिए शरीर को लगी चोटें आत्मा तक नहीं पहुंचतीं। इसलिए शरीर जवान हो, बूढ़ा हो, जीए, मरे, कोई घटना आत्मा तक नहीं पहुंचती।
गुरजिएफ ने शब्द ठीक चुना था--कुंडाबफर। इसको जगाने की कोई जरूरत नहीं है। इसका काम भलीभांति हो रहा है। इसे जगा कर भी स्वयं तक पहुंचा जा सकता है, लेकिन वह नाहक की झंझटें मोल लेनी हैं। वह ऐसे ही है जैसे कोई कान अपना उल्टे घूम कर सिर के पीछे से पकड़ने की कोशिश करे! कोई प्रयोजन नहीं है। मगर योग की बहुत-सी प्रक्रियाएं उल्टी हो गयीं। उल्टी हो गई हैं, इसलिए कठिन। कठिन अहंकार को बहुत जंचता है। सिर के बल खड़े हैं तो बहुत जंचता है। जैसे कोई महान कार्य कर रहे हैं! सिर्प बुद्धू मालूम पड़ते हैं,

मगर सिर के बल खड़े हैं तो महान कार्य कर रहे हैं। शीर्षासन कर रहे हैं। शरीर को इरछा-तिरछा कर रहे हैं। शरीर को ऐसा आड़ा-तिरछा कर रहे हैं कि कोई दूसरा न कर सके। और दूसरे न कर सकें--क्योंकि इसके लिए अयास चाहिए--तो आप महात्मा हो गए, महान योगी हो गए। क्योंकि कोई दूसरा इसको एकदम नहीं कर सकता, जो आप कर रहे हैं।
ठीक उसी तरह कुंडलिनी का भी उपद्रव मोल लिया अहंकार ने ही। इसको जगाने से कुछ सिद्धियां उपलब्ध हो सकती हैं। और अहंकार सिद्धियों से बहुत-बहुत प्रसन्न होता है। जैसे अगर कुंडलिनी को तुम जगाओ... उसको जगाने की प्रक्रियाएं हैं। प्रक्रियाएं सब जटिल हैं और कठिन हैं, उलझनभरी हैं; सुगम नहीं, सरल नहीं। इसलिए भारत में एक परंपरा चली है, जो इसके बिल्कुल विपरीत रही है--सहज परंपरा, सहज-यान। जिसका कहना है: किसी तरह के उपद्रव में मत पड़ो! क्योंकि छोटी-मोटी चीजें पैदा हो जाएंगी। जैसे अगर तुम्हारी कुंडलिनी जाग जाए तो तुम दूसरे के विचार पढ़ सकते हो। मगर अपने ही विचार काफी नहीं हैं पढ़ने को? अब दूसरे की खोपड़ी का कचरा तुम पढ़ोगे, उससे क्या मिलने वाला है? अपनी खोपड़ी में ही काफी भरा है। इससे ही तो निपट नहीं पा रहे हो, कि अब दूसरों के विचार पढ़ोगे! हां, थोड़ा-बहुत चमत्कार लोगों को दिखाने लगोगे तुम। जैसे कोई आया और उसने पूछा ही नहीं कि समय कितना है और तुमने बता दिया कि साढ़े नौ बजे हैं। तो वह चौंकेगा एकदम, क्योंकि पूछने आया था कि कितना बजा है। मगर उसका सार क्या है? पूछ ही लेने देते, क्या बिगड़ रहा था? इसके लिए कुंडलिनी जगाई! और कुंडलिनी जगाने में वर्षो लगेंगे और यह काम तो क्षण भर में हो जाता, उसको पूछना था तो पूछ लेता। रामकृष्ण के पास एक आदमी आया, जिसकी कुंडलिनी जग गई थी। वह बोला कि मैं पानी पर चल लेता हूं।... कुंडलिनी जग जाए तो पानी पर चलने की संभावना है, क्योंकि कुंडलिनी तुम्हें पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से तोड़ दे सकती है। मगर खतरे भी हैं उसके, क्योंकि पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण से टूट गए तो तुम्हारे शरीर की बहुत-सी प्रक्रियाएं अस्त-व्यस्त हो जाएंगी, जो कि गुरुत्वाकर्षण से बंधे होने के कारण ही व्यवस्थित हैं।
वह आदमी पानी पर चल लेता था। उसने रामकृष्ण को आते ही से चुनौती दी कि तुम बड़े परमहंस... लोग कहते हैं महात्मा! अगर हो महात्मा तो आओ, चलो गंगा पर! मैं पानी पर चल सकता हूं!
रामकृष्ण ने कहा कि बहुत बढ़िया! कितना समय लगा पानी पर चलना सीखने में? उसने कहाः अठारह साल लगे। रामकृष्ण ने कहा: हद हो गई! मुझे तो जब उस पार जाना होता है, दो पैसे में पार चला जाता हूं। दो पैसे का काम अठारह साल में तुमने किया! और ऐसे मुझे ज्यादा जाना भी नहीं पड़ता, कभी चार-छः महीने में एक दफा। सो साल में समझो कि एक चार पैसे का खर्चा है। अठारह साल में समझो कि एक रुपए का खर्चा। एक रुपए के पीछे अठारह साल गंवा दिए। भइया, तू होश में है? और पानी पर चल कर करेगा क्या? ऐसा घूम-फिर कर फिर यहीं आ जाएगा।
रामकृष्ण ठीक कह रहे हैं। मगर वह आदमी अकड़ से भरा हुआ था, वह अहंकार से भरा हुआ था।
सूफी फकीर स्त्री हुई राबिया, उसके जीवन में भी ऐसा उल्लेख है। फकीर हसन उसके पास आया। हसन की लगता है कुंडलिनी जग गई थी।... और उसने कहा: राबिया, --राबिया सुबह-सुबह बैठ कर कुरान पढ़ रही थी--अरे, यहां क्या कुरान पढ़ रही है! चलो पानी पर टहलते हुए कुरान पढ़ेंगे। वह दिखाना चाहता था राबिया को। राबिया की ख्याति थी। राबिया हुई भी अद्भभुत स्त्री। उसी कोटि की जैसे रामकृष्ण, जैसे रमण।
राबिया ने कहा: हसन, पानी पर! कुरान पढ़ने के लिए! अरे, अगर दिल में कुछ जोश ही आ गया है, देखते हो वह बदली सफेद आकाश में तैर रही है, उस पर बैठ कर क्यों न पढ़ें! चलो, बदली पर बैठेंगे, वहीं पढ़ेंगे।
... यह तो राबिया ने मजाक किया।...
हसन ने कहा: बदली पर! बदली पर बैठना मुझे नहीं आता। ----इतनी कुंडलिनी अभी मेरी नहीं जगी।... तो राबिया ने कहाः और जगाओ! क्योंकि मुझे तो जब जोश मारती है कुंडलिनी... तो बस सीधे बदली पर बैठें! जब बदली पर बैठना आ जाए तब

आना। पानी में चलने में क्या रखा है! यह तो कोई भी कर ले। यह तो छोटे-मोटे लोग कर लेते हैं।
हसन को होश आया कि राबिया ठीक कह रही है, सार क्या है? मगर अकड़!
अहंकार को बहुत मजा आता है इस बात में कि मैं कुछ ऐसा करके दिखा दूं जो कोई दूसरा नहीं कर सकता। अब जगदीश, तुम्हें क्या फिकर पड़ी है? कहते हो? कुंडलिनी जगाना चाहता हूं। और इस तरह की बातों में पड़े, तो किसी झंझटी के हाथ में पड़ जाओगे। वह गोबरपुरी के बाबा चुक्तानंद, ऐसे किसी के चक्कर में पड़ जाओगे। उन्होंने कई का गुड़ गोबर कर दिया; तुम्हारा गुड़ भी गोबर कर देंगे। कुछ लोगों का धंधा ही यह है। और फिर मुझसे मत कहना कि अब गोबर को गुड़ करो! वह बहुत कठिन काम है। बिगाड़ना बहुत आसान, सुधारना बहुत मुश्किल है।
कुंडलिनी तुम्हें सिद्धि देगी, यह तो सिर्प एक संभावना है; ज्यादा संभावना तो यह है कि विक्षिप्तता देगी। इसलिए तुम अनेक साधु-संन्यासियों को पागल होते देखोगे। और पागल हो जाने का कारण क्या होता है? उन्होंने जीवन का जो सहज क्रम है, उसको तोड़ दिया। जो ऊर्जा किसी और काम के लिए बनी थी, उसको उन्होंने मस्तिष्क पर चढ़ा लिया।
कुंडलिनी जगने का अर्थ होता है कि जो ऊर्जा तुम्हारे काम-केंद्र पर सोई हुई है, इसे उठा कर मस्तिष्क में चढ़ा लो। यह खतरनाक धंधा है। क्योंकि खोपड़ी में वैसे ही काफी उपद्रव मचा हुआ है। वहीं तो तुम्हारा पागलखाना है। और कामऊर्जा को भी वहां ले जाओ! तो तुम विक्षिप्त हो सकते हो। कुंडलिनी जगाने वाले अधिक लोग विक्षिप्तता में पहुंच जाते हैं। मस्तिष्क फटा पड़ता है; क्योंकि ऊर्जा सम्हाले नहीं सम्हलती। और ऊर्जा इस हालत में ले आती है कि फिर संगत-असंगत कुछ भी नहीं सूझता; ऊलजुलूल बकेंगे।
लेकिन हमारा देश तो अद्भभुत है! कोई ऊलजुलूल बके तो हम कहते हैं: महात्मा सधुक्कड़ी भाषा बोल रहे हैं। सधुक्कड़ी! अगर महात्मा गाली दें और लोगों के पीछे डंडा लेकर भागें, तो हम समझते हैं प्रसाद दे रहे हैं। गाली बकें तो समझो कि आशीष। हमारे महात्मा भी अदभुत हैं और हम उनसे भी ज्यादा हैं! हम हर चीज में से कुछ-न-कुछ निकाल लेते हैं। पागल ही हो गए लोग... मैं ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूं, जो विक्षिप्त हुए हैं; जो होश में नहीं हैं; लेकिन उनके भक्तगण समझते हैं कि वे महासमाधि में लीन हैं। और अगर उनकी समझ में नहीं आता वे क्या बोल रहे हैं, तो उसका कारण यह है कि वे बड़ी गहरी बातें बोल रहे हैं। वे कुछ नहीं बोल रहे! जैसे कोई बहुत शराब पी ले और अल्ल-बल्ल बके; या कोई सन्निपात में आ जाए और ऊलजुलूल बके! अब तुम्हारी मर्जी हो तो एकदम उसके पैर पकड़ लेना। कहना कि यह महाज्ञान की बातें बोल रहा है।
मुझे ऐसे कई लोगों को मिलाया गया है, जो सिर्प विक्षिप्त हैं, जिनको मानसिक चिकित्सा की जरूरत है। और उनकी बुनियादी भूल वही है, जगदीश, जो तुम करना चाहते हो। और एक दफा मस्तिष्क में ऊर्जा तुम्हारी सामर्थ्य के बाहर पहुंच जाए तो तुम क्या करोगे? तुम्हारे वश के बाहर बात हो जाएगी। कुंडलिनी जगाने की कोई आवश्यकता नहीं है। यहां भी हम कुंडलिनी ध्यान करते हैं, लेकिन प्रयोजन कुंडलिनी जगाना नहीं है प्रयोजन कुछ और है। प्रयोजन है: भीतर वह जो कुंडलिनी की ऊर्जा है, उसको नृत्य देना। प्रयोजन बड़ा अलग है। तुम्हारे भीतर जो ऊर्जा है, अभी, सोई है; या तो जगाई जाए, तो जगाने के लिए धक्के देने होंगे, झकझोरना होगा। मेरा अपना अनुभव यह है कि जगाने की कोई जरूरत नहीं, इसे सिर्प नृत्य दिया जाए। इसे संगीतपूर्ण किया जाए। इसे आनंदोत्सव में बदला जाए।
तो धक्के देने की कोई जरूरत नहीं है।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा नर्तक निजिंस्की हुआ --अभी इसी सदी में हुआ। वह
जब नाचता था तो कभी-कभी ऐसी घटना घट जाती थी कि वह इतनी ऊंची छलांग लगाता था जो कि गुरुत्वाकर्षण के नियम के विपरीत है। वैज्ञानिक हैरान थे; यह हो नहीं सकता। इतनी ऊंची छलांग लग ही नहीं सकती; लगनी चाहिए नहीं; क्योंकि गुरुत्वाकर्षण का नियम इतने दूर तक तुम्हें उठने नहीं देगा। और भी चमत्कार की बात थी, वह यह, कि जब वह इतनी ऊंची छलांग लगाता था और वापिस

लौटता था, तो इतने आहिस्ते लौटता था जैसे कि कोई पक्षी का पंख आहिस्ता- आहिस्ता, डोलता-डोलता, हवा में तैरता-तैरता नीचे आ रहा हो। वह भी बिल्कुल उलटी बात है। गुरुत्वाकर्षण एकदम से खींचता है चीजों को, जैसे कोई पत्थर गिरे, न कि कोई पंख।
निजिंस्की से जब भी पूछा गया कि यह तुम कैसे करते हो, तो वह कहता कि यह मैं खुद भी सोचता हूं! लेकिन मैं करता हूं, यह बात ठीक नहीं है, यह हो जाता है। मैंने जब भी करने की कोशिश की है, तभी यह नहीं हुआ। करने की मैं कई दफा कोशिश कर चुका--क्योंकि इसका एकदम चमत्कार की तरह प्रभाव पड़ता है; एकदम सन्नाटा छा जाता है, दर्शक एकदम विमुग्ध हो जाते हैं, एकदम सांसें रुक जाती हैं लोगों की; समझ में ही नहीं आता क्या हुआ! और मुझे भी बड़ा आनंद आता है, अपूर्व आनंद आता है! एकदम भीतर शांति हो जाती है। जैसे नहा गया भीतर। जैसे आत्मा नहा गई। मगर जब भी मैं करने की कोशिश करता हूं, यह नहीं होता। यह कभी-कभी होता है जब मैं करने की कोशिश में होता ही नहीं, जब मैं नाच में लीन होता हूं, ऐसा लीन होता हूं कि मेरा अहंकार बिल्कुल मिट ही जाता है, तब यह घटना घटती है। तो अब तो मैंने करना छोड़ दिया, निजिंस्की कहता था। अब तो जब यह घटता है, घटता है, नहीं घटता है, नहीं घटता। एक सूत्र मेरी समझ में आ गया है कि यह किया नहीं जा सकता, सिर्प घट सकता है। और घटने का अर्थ है कि मेरा अहंकार लीन हो जाए तो बस, कुछ रहस्यपूर्ण ढंग से यह घटना घटती है। निजिंस्की अनजाने ही उस अवस्था में पहुंच रहा था, जिसमें मैं कुंडलिनी ध्यान के द्वारा तुम्हें ले जाना चाह रहा हूं। कुंडलिनी ध्यान का वही प्रयोजन नहीं है जो सदियों तक रहा है। मेरे हिसाब से हर चीज का मैं प्रयोजन बदल रहा हूं। कुंडलिनी ध्यान का यहां अर्थ है: तुम नाचो, मग्न होओ, डूबो! ऐसे डूब जाओ कि तुम्हारा अहंकार अलग न रह जाए, बस, फिर तुम्हारे भीतर कुछ घटेगा, तुम एकदम गुरुत्वाकर्षण के बाहर हो जाओगे; और तुम अचानक भीतर पाओगे, ऐसा सन्नाटा छाया है, ऐसा क्वांरा सन्नाटा, जो तुमने कभी नहीं जाना था! तुम गद्गद हो जाओगे। तुम लौटोगे जब वापिस, तुम दूसरे ही व्यक्ति हो जाओगे।
यह कुंडलिनी जगाने की पुरानी प्रक्रिया नहीं है। यह कुंडलिनी को नृत्य देने की प्रक्रिया है। यह बात ही और है। तो अगर तुम्हें कुंडलिनी जगाना है, तो भइया कहीं और! अगर कुंडलिनी को नृत्य देना है, तो यहां यह घटना घट सकती है।
और फासले बहुत हैं।
कुंडलिनी को नृत्य मिल जाए, भीतर की ऊर्जा नाचने लगे, तो कोई खतरा नहीं है, तुम विक्षिप्ता कभी नहीं होओगे। तुम और भी ज्यादा स्वस्थ हो जाओगे। तुम्हारी विक्षिप्ता कुछ होगी तो समाप्त हो जाएगी। और तुम्हारे अहंकार को कभी बल नहीं मिलेगा, कि पानी पर चल कर दिखा दूं, कि बादल में आकाश में बैठ कर दिखा दूं, कि हवा में उड़ कर दिखा दूं। क्योंकि अहंकार मिटेगा तभी यह नृत्य होगा। और जब भी अहंकार वापस लौटेगा, तुम यह कर ही नहीं पाओगे। यह तुम्हारे अहंकार के वश में नहीं होने वाली बात।
कुंडलिनी जगाने की जो प्रक्रियाएं हैं, वे तुम्हारे अहंकार को भर सकती हैं। यह प्रक्रिया तुम्हारे अहंकार को मिटाती है पोंछती है। पतंजलि ने जब सूत्र लिखे थे, उस समय को पांच हजार साल बीत गए। पांच हजार साल में आदमी को बहुत कुछ अनुभव हुए हैं। पतंजलि खुद भी अगर आज वापस लौटें तो मुझसे राजी होंगे, क्योंकि पांच हजार साल में जो मनुष्य को अनुभव हुए हैं पतंजलि को उनका हिसाब रखना पड़ेगा। उनके आधार पर फिर से योग-सूत्र लिखना होगा।
बुद्ध को ढाई हजार वर्ष हो गए, महावीर को हुए ढाई हजार वर्ष हो गए-- काफी समय है यह! दुनिया बैलगाड़ी से जेट विमान तक पहुंच गई। मनुष्य वैसा ही नहीं रहा जैसा था। और इस बीच हमने जो अनुभव किए हैं, उन अनुभवों ने हमें बहुत कुछ सिखाया है।
मैं जो भी ध्यान की प्रक्रियाएं दे रहा हूं, वे अधुनातन हैं। अगर पुरानी प्रक्रियाएं भी उपयोग कर रहा हूं, तो उनमें से उस सब को काट दिया है जिनसे तुम्हें खतरे हो सकते हैं और उस सब को जोड़ दिया है, जो कि इन ढाई-तीन

हजार, पांच हजार सालों के अनुभव से जोड़ा जाना चाहिए। यह एक अभिनव प्रयोग हो रहा है। अगर शब्द मैं पुराने भी उपयोग कर रहा हूं--क्योंकि शब्द तो पुराने ही हैं, सभी शब्द पुराने ही हैं, कोई न कोई शब्द उपयोग करना होगा--तो भी मैं उनको अर्थ अपने दे रहा हूं। पुराने शब्दों के वृक्षों पर अपने अर्थ की कलमें लगा रहा हूं। इसलिए तुम मेरे शब्दों को ठीक पुराने अर्थो में मत लेना। नहीं तो तुम मुझे नहीं समझ पाओगे। तुम कुछ का कुछ समझ लोगे। तुम वंचित ही रह जाओगे उस अनूठे प्रयोग से जो यहां चल रहा है।

आखिरी प्रश्नः ओशो, मैं तमाखू खाने की लत से परेशान हूं। क्या करूं?

दयानंद, तमाखू के बड़े गुण हैं!
बाजार में तमाखू का एक व्यापारी जोर-जोर से चिल्ला-चिल्ला कर तमाखू बेच रहा था। वह कह रहा था कि जो लोग तमाखू खाते हैं, उनके घर में चोर कभी नहीं घुसते। जो लोग तमाखू खाते हैं, कुत्ते उन्हें कभी नहीं काटते। अरे, काटना तो दूर, उनके पास तक नहीं फटक सकते। और तीसरा सबसे बड़ा फायदा यह है कि वे लोग कभी बूढ़े नहीं होते।
ब्रह्मचारी मटकानाथ ने जब यह सुना तो उन्हें तो बड़ा ही आश्चर्य हुआ
कि अरे तमाखू में इतने फायदे हैं! उन्होंने कहा कि भाई, जरा विस्तार से बताओ कि कैसे तमाखू खाने वालों के घर में चोर कभी नहीं घुसते और कैसे कुत्ते उन्हें काटते नहीं और सबसे बड़ा जो फायदा है वह यह है कि आदमी कभी बूढ़ा नहीं होता। ऐसी बातें न तो मैंने किन्हीं शास्त्रों में पढ़ीं, न किन्हीं ज्ञानियों से सुनीं। यह तमाखू का राज पहली दफा तुमसे सुन रहा हूं! व्यापारी बोला कि स्वामीजी, आप अपने ही वाले हैं, इसलिए बताए देता हूं वरना ये तो उस्तादों की बातें हैं। उस्ताद ही कहते हैं और उस्ताद ही समझते हैं। राज ही यह गहरा है। सुनिए। तमाखू खाने वाले को ऐसी खांसी चलती है--ऐसी खांसी कि रात सोना हराम हो जाए। और जब सोओगे ही नहीं रात-भर, खांसते ही रहोगे, तो किस चोर की मजाल जो घर में घुसे! और रही बात कुत्ते के काटने की, तो अरे जब तमाखू खाओगे या तमाखू पिओगे, तो खांसी चलने से जो कमजोरी आएगी, तो एक छड़ी तो कम-से-कम रखोगे न हाथ में! अरे, छड़ी टेक-टेक कर ही चलोगे न! और छड़ी देख कर तो दुश्मन भी भागें, फिर कुत्तों की क्या बिसात!
ब्रह्मचारी जी बोले: और आदमी कभी बूढ़ा नहीं होता, यह कैसे?
व्यापारी बोला: अरे स्वामीजी, बूढ़ा हो ही नहीं पाता, क्योंकि बूढ़ा होने के पहले ही मर जाता है।
दयानंद, मत छोड़ो! जी-भर कर पिओ! जी भर कर खाओ! ऐसे-ऐसे गुण हैं! तुम किसी
की बातों में मत पड़ना, कि तमाखू पाप है। यह सवाल क्यों उठता है कि मैं तमाखू खाने की लत से परेशान हूं, क्या करूं? अगर एक लत छोड़ भी दोगे तो कोई दूसरी लत पकड़ोगे। असली सवाल तमाखू नहीं है, असली सवाल लत है।
मैं लोगों को जानता हूं, एक आदत छोड़ने के लिए वे दूसरी पकड़ लेते हैं; दूसरी छोड़ने के लिए तीसरी पकड़नी पड़ती है। कोई-न-कोई परिपूरक चाहिए न! नहीं तो खाली-खाली लगता है। तमाखू बैठ-बैठे चबाते क्यों हो? अगर तमाखू नहीं चबाओगे, लोगों का सिर खाओगे। वह और भारी बीमारी है। उसमें लोग भी परेशान होंगे। इसमें तो तुम अपने बैठे चबा रहे हो तो चबाते रहो। तुम किसी दूसरे का तो सिर नहीं खाते। अपने बैठे-बैठे मुंह हिलाते रहते हो तो हिलाते रहे। अगर तमाखू नहीं खाओगे तो बकवास करोगे।
इस पर वैज्ञानिक शोध हुई है। ई जो लोग तमाखू खाते हैं--या अमरीका में चिविंगम बैठे बचाते रहते हैं--ये लोग बातचीत कम करते हैं। इनमें एक सद्गुण होता है। बातचीत करें कैसे? अब जो आदमी दो-दो पान रखे हुए है दोनों तरफ, वह बात करे तो पिचकारी चल जाए! सो अपनी पिचकारी सम्हाले कि बात करे? सो ऐसे आदमी बड़े भले होते हैं, चुपचाप बैठे अपना काम करते रहते हैं। भीतर ही भीतर उनका मजा चलता रहता है।
जो लोग तमाखू नहीं खाते, पान नहीं चबाते, चिविंगम नहीं चबाते, वे भी मुंह तो चलाएंगे। इसीलिए तो स्त्रियां ज्यादा मुंह चलाती हैं। कि न तुम

उन्हें तमाखू खाने दो, न सिगरेट पीने दो, न बीड़ी पीने दो, न चिलम पीने दो, तुम कुछ भी न करने दो, तो मुंह तो चलाएं!
चंदूलाल के पिताजी मरे, तो मित्रों ने पूछा कि मरते वक्त कुछ कह गए पिताजी? चंदूलाल ने सिर ठोंक लिया। कहा: बेचारे बड़ा कहना चाहते थे, मगर क्या करते, माताराम आखिर तक साथ रहीं! और जब तक माताराम बोलें, पिताजी को सुनना पड़ता था। और माताराम बोलती चली गयीं। पिताजी मर गए। लगता था कुछ कहना चाहते हैं, दो-चार दफा कोशिश भी की, मगर माताराम के सामने किसी कि चले तब!
स्त्रियां बहुत बकवास करती हैं।
मैंने सुना है, चीन में एक दफा एक प्रतियोगिता हुई कि सबसे बड़ा झूठ कौन बोले? और जो बोले उसे प्रथम पुरस्कार मिले। और जिसको मिला प्रथम पुरस्कार... बड़े-बड़े झूठ बोलने वाले आए। एक ने झूठ बोला कि मेरे पिता ने ऐसी पानी में डुबकी लगाई कि तीन साल बाद निकले। किसी ने कहा: यह कुछ भी नहीं है बात, मेरे पिता तो सात साल तक पानी में डुबकी मार दिए थे। एक ने कहा: यह कुछ नहीं है बात। जब मेरे पिता डुबकी मार कर निकले बारह साल के बाद, तो साथ में एक लालटेन लेकर निकले--जो उनको पानी में पड़ी मिल गई थी, जो नेपोलियन के जमाने की थी और जिसकी बत्ती अभी भी जल रही थी। ऐसी-ऐसी गप्पें मारी गयीं! मगर पुरस्कार मिला उस आदमी को जिसने कहा कि मैं एक बगीचे में गया, मैंने देखा दो औरतें एक बेंच पर बैठी हैं, आधा घंटे तक बोलीं ही नहीं! उसको प्रथम पुरस्कार। यह कहीं हो सकता है! यह हो ही नहीं सकता। नेपोलियन की लालटेन बुझी न हो, यह चल सकता है। दुनिया में चमत्कार होते हैं। मगर दो स्त्रियां बेंच पर बैठी बगीचे के और एक-दूसरे से बोलें ही न, आधा घंटा गुजर जाए, यह असंभव है!
स्त्रियां ज्यादा बकवास करती हैं। वह मुंह चलाने का जो समय बच गया. . .मुंह तो चलाएंगी।
खलील जिब्रान की बहुत प्रसिद्ध कथा है कि एक उपदेशक कुत्ते ने सारे कुत्तों की जान मुसीबत में डाल रखी थी, क्योंकि जो भी कुत्ता भौंकता मिल जाए, बस उसको पकड़ ले कि हमारी महान कुत्तों की जाति, बस यह भौंकने की वजह से बरबाद हुई! सब शक्ति भौंकने में निकल जाती है, कुंडलिनी बचती ही नहीं। भौंक-भौंक सब कुंडलिनी शक्ति गंवा देते हो। फिर रह गए खाली खोखले। कुत्तों को भी बात तो जंचे। थोड़े चुप भी हो जाएं उसके सामने। मगर कुत्ते कुत्ते हैं, बिना भौंके कैसे रह सकते हैं? वह लत कोई एक-दो दिन की है, वह बहुत पुरानी है। और कुत्ते भी बड़े हिसाब से भौंकते हैं, ऐसे कोई बेहिसाब नहीं भौंकते। जैसे कुत्ते कुछ चीजों के विरोधी हैं; उनके सिद्धांत के खिलाफ हैं। जैसे कि पुलिस वाला मिल जाए कि संन्यास मिल जाए, पोस्टमैन मिल जाए. . .वर्दी के खिलाफ हैं, वर्दी के दुश्मन हैं बिल्कुल। वर्दी देखी कि भौंके। वर्दी उन्हें बर्दाश्त नहीं होती। स्वतंत्रता- प्रेमी हैं। सो ऐसी जन्मों-जन्मों की आदत कैसे छोड़ दें! मगर धर्मगुरु कहता भी ठीक है। वह जो उपदेशक कुत्ता था, वह बात भी ठीक कहता है कि इसी में सब शक्ति निकल जाती है, इसीलिए कुत्तों की जाति पिछड़ गई है। आदमी, जिनमें कुछ भी नहीं है, वे सिरमौर हो गए। हमें उनके सामने पूंछ हिलानी पड़ रही है, जो हमारे सामने पूंछ हिलाते हैं। और कारण वह भौंकना।
उसने बस एक बात पकड़ ली थी कि भौंकने की वजह से. . .! सभी धर्मगुरुओं की
यह आदत होती है, एक बात पकड़ लेते हैं, उसी बात को समझाते फिरते हैं। महात्मा गांधी से तुम पूछो कि दुर्दशा का क्या कारण है? ... लोग चर्खा नहीं चलाते। चरखा ही नहीं चलाएंगे तो बस, खत्म। सारी दुनिया में कहीं कोई चरखा नहीं चला रहा और लोग बरबाद नहीं हो रहे, यहीं बरबाद हो रहे हैं चरखा नहीं चलाने से! सो चरखा चलाओ, सब ठीक हो जाएगा। और यह देश हजारों साल से चर्खा चलाता रहा है और कुछ खाक ठीक नहीं हुआ। मगर बस तथाकथित महात्माओं का यही हिसाब रहता है।
कोई मोरारजी देसाई से पूछो।. . .कि लोग "जीवनजल" नहीं पीते, इसलिए सब गड़बड़ हो रहा है। "जीवनजल" में सब कुंडलिनी निकल ही जाती है, बह ही जाती है।

अपना जल्दी से "जीवनजल" निकाला और खुद ही पी गए; तो कुंडलिनी के निकलने का कोई उपाय ही न रहा।
मैंने सुना है कि जब मोरारजी देसाई अमरीका गए, तो वे हैरान हों कि जहां भी पार्टी या कुछ में उनको बुलाया जाए, तो स्त्रियां दूसरे कोने पर खड़ी हों, बिल्कुल दूसरे... टेबल के। उन्होंने पूछा कि बात क्या है, जहां भी मैं जाता हूं... वे चलते-फिरते उनके पास भी जाएं तो स्त्रियां जल्दी से दूसरे कोने पर पहुंच जाएं... स्त्रियां मेरे पास क्यों नहीं आतीं? तो लोग पहले तो झिझके, फिर उन्होंने कहा अब आप बार-बार पूछते हैं तो... स्त्रियां डरती हैं कि मान लो आपको बीच में प्यास लग आए! सो वे दूर-दूर रहती हैं। अरे, प्यास का क्या भरोसा, कहां लग आए!
बस, उनका सिद्धांत एक ही है। सब लोग "जीवनजल" पिएं, सारी समस्याएं हल
हो जाती हैं।
बस एक सिद्धांत लोग पकड़ लेते हैं। सुगम बात। सो उस कुत्ते ने पकड़ रखी
थी कि भौंकना जब तक कुत्ते बंद नहीं करेंगे, कुत्तों की जाति खतरे में है, उसका अस्तित्व खतरे में है। उसने इतना समझाया, इतना समझाया कि एक दिन कुत्तों ने तय किया कि एक दफे तो कम-से-कम इसकी मान कर देखो! एक रात, अमावस की रात, उन्होंने कहा, आज की रात चाहे कुछ भी हो जाए, कितनी ही उत्तेजना पैदा हो और कितनी ही खराश गले में आए और पुरानी लत कितनी ही जोर मारे, मगर बिल्कुल मन मार कर पड़े रहेंगे! करवटें बदल लेंगे, सिर पटक लेंगे, मगर भौंकेंगे नहीं।
सो सब कुत्तों ने तय कर लिया कि दूर-दूर--क्योंकि अगर हम आसपास रहे, तो बहुत मुश्किल मामला है! एक भौंकता है, बस, फिर श्रृंखला शुरू हो जाती है, फिर दूसरा बर्दाश्त नहीं कर सकता। सो दूर-दूर पड़े रहे, गली-कूचों में जा-जा कर, सिर नीचे झुका कर. . .! बड़ी बेचैनी थी, तड़फ रहे थे, जैसे मछली तड़फे पानी के बाहर ऐसे तड़फ रहे, मगर तय कर लिया तो कर लिया तय--अरे, संकल्प भी कोई चीज है! नहीं भौंके, नहीं भौंके। बारह बज गए। उपदेशक कुत्ता बड़ा परेशान हुआ। -- किसको उपदेश दे! सच बात यह थी कि उसे भौंकने की जरूरत नहीं पड़ती थी, क्योंकि दिन भर उसका उपदेश में भौंकना हो जाता था। सुबह से रात उसको भौंकना ही पड़ता था--भौंकना ही था वह भी--उसको भौंकने के लायक बचता ही नहीं था कुछ समय--न समय, न शक्ति। थका-मांदा रात पड़ जाता, सुबह से फिर जनसेवा में लग जाता। न कुत्ते मानते, न उसकी जनसेवा बंद होती थी।
आज कुत्तों को क्या हुआ? क्या सब कमबख्त मान ही गए? बिल्कुल सन्नाटा है! अमावस की रात और ऐसा सुअवसर! उसके भीतर ऐसी खराश उठी... ! कई कुत्तों के पास गया, मगर वे सिर झुकाए पड़े हैं नीचे; आंखें ही न खोलें। जब उसके बर्दाश्त के बाहर हो गया, तो गया एक एकांत में और भौंकने लगा--उपदेशक कुत्ता भौंकने लगा! और जब एक भौंका, तो फिर क्या भौंकना हुआ उस गांव में, जैसा कभी न हुआ था! क्योंकि जब लोगों ने देखा, और बाकी कुत्तों ने देखा कि अरे, एक ने धोखा दे दिया, अब हम ही क्यों पड़े रहें! सो जो बारह बजे तक किसी तरह सम्हाला था, सारी ऊर्जा एकदम से विस्फोट हुई। कंपा दिए धरती-आकाश। आ गया उपदेशक कुत्ता वापिस, समझाने लगा लोगों को कि देखो, इसी में हमारी बरबादी हुई है। जब तक कुत्तों की जाति यह भौंकना बंद नहीं करेगी, बरबादी जारी रहेगी।
तमाखू तुम खाते हो, तमाखू तुम चबाते हो, तमाखू में उतना कुछ दोष नहीं है--तमाखू में क्या खाक दोष! बिल्कुल शाकाहार है। हां, थोड़ा-सा निकोटिन है, मगर इतना थोड़ा निकोटिन है कि अगर बीस साल में तुम जितनी तमाखू चबाओगे, उस सब तमाखू को इकट्ठा करके निकोटिन निकाला जाए, तो तुम मर सकते हो। मगर यह तो कभी होने वाला नहीं है। तुम खाते हो तमाखू, रोज शरीर उसको बाहर फेंक देता है। इसलिए कोई बीस साल में. . .घबड़ाना मत कि बीस साल का जहर इकट्ठा होकर मार डालेगा। शरीर रोज बाहर फेंकता रहता है जो चीजें व्यर्थ हैं। इसलिए कुछ इकट्ठा होता नहीं।
और साल-दो साल उम्र कम भी हो गई, तो क्या खाक बिगड़ जाएगा! ऐसे भी क्या करोगे? दो-चार साल ज्यादा ही रहे, या दो-चार साल कम रहे, इससे क्या फर्क

पड़ता है? वही रोना-धोना, वही झींकना! दो-चार साल कम झींके, कम रोए, कम परेशान हुए। जल्दी छुटकारा हो गया, मुक्ति हो गई।
सवाल तंबाकू नहीं है, सवाल गहरा होगा। तुम्हारे सिर में बकवास चल रही होगी। उस बकवास को रोकने का एक उपाय है यह: मुंह को भीतर चलाते रहो। इससे तुम एक तरह से संयत बने रहते हो। इसीलिए तो तरह-तरह की चीजें लोगों ने निकाल ली हैं।
बच्चा रो रहा हो, अंगूठा ही चूसने लगता है। तुम सोचते हो कि किसलिए अंगूठा चूस रहा है? अब बच्चा कोई भ्रष्ट थोड़े ही हो गया है। अभी भ्रष्ट करने वाले मिले ही नहीं; अभी तो अपने झूले में ही पड़े हैं। अभी तो कृष्ण-कन्हैया झूला झूल रहे हैं! झूला झूलें जवाहरलाल! अभी कहां! अभी तो भ्रष्ट संसार से इनका कोई मिलना हुआ नहीं। मगर अंगूठा ही चूस रहे हैं। पैर का अंगूठा तक पकड़ कर चूस रहे हैं। इनकी खोपड़ी में गरमाहट आनी शुरू हो गई, झूले पर पड़े-पड़े बेचैन हो रहे हैं। बेजैनी को निकालने के लिये कोई रास्ता निकाल रहे हैं। अंगूठा ही चूस रहे हैं। फिर अंगूठा नहीं चूसते बाद में, क्योंकि अंगूठा चूसना जरा जंचेगा नहीं, तो सिगरेट पीते हैं; वह अंगूठा चूसने का परिपूरक है। सिगार लगा ली मुंह में।
यहां मेरे पास लोग जब भी मुझसे पूछते हैं कि हम सिगरेट पीना कैसे छोड़ें? तो मैं उनसे कहता हूं, तुम अंगूठा चूसना शुरू कर दो। बोलते हैं: क्या कह रहे हैं आप? कोई देखेगा तो क्या कहेगा? मैंने कहा: देखने का कोई सवाल नहीं। सिगरेट पीते हो, दुनिया देखती है, कोई कुछ नहीं कहता। क्या कर लेगा कोई? अरे, अपना अंगूठा है! किसी के बाप का है? अपना अंगूठा न चूस सकें, यह कैसा लोकतंत्र, यह कैसी स्वतंत्रता!
और कुछ लोगों ने प्रयोग किया है--एकांत में, अकेले में, हिम्मत नहीं सबके सामने करने की--मगर सिगरेट पीना छूट जाता है। न हो तो तुम करके देख लेना। जब भी सिगरेट की तलफ उठे, जल्दी से अंगूठा चूसना। वही काम कर देगा अंगूठा जो सिगरेट करती है।
सिगरेट में थोड़ा-सा गुण और है कि उसमें से गर्म धुआं भीतर जाता है; तो उससे मां के स्तन की परिपूरकता हो जाती है। मां का स्तन बच्चा पीता है; जब मां का स्तन बच्चे को नहीं मिलता तो अंगूठा चूसता है। अंगूठा उतना अच्छा परिपूरक नहीं है... क्योंकि दूध भी भीतर जाता है--गर्म धार, उष्ण धार। और शुद्ध दूध! न ग्वाला मिला सकता है उसमें पानी. . .। सिगरेट में वही खूबी है: गर्म धुआं उष्ण दूध की याद दिलाता है। ये सब बाल-बच्चे हैं जो सिगरेटें पी रहे हैं। इनका मन नहीं भर पाया मां के स्तन से, तो सिगरेट पी रहे हैं। खोपड़ी में बेचैनी है, तम्बाकू चबा रहे हैं, पान चबा रहे हैं।
और ये ऊपर की आदतें छोड़ने से कुछ भी न होगा। फिर तुम कोई नया काम सीख लोगे। फिर वह करने लगोगे। असली जड़ को काटो। ध्यान में लगो! --दयानंद! -- तमाखू-वमाखू की बात छोड़ो! इससे कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। और तुम्हें भरोसा न हो, शास्त्रों में पढ़ लो। भगवान विष्णु तक स्वर्ग में तमाखू-चर्वण करते हैं। सो तुम्हारी क्या, तुम तो दयानंद ही हो! मान लिया कि महर्षि दयानंद, चलो कोई बात नहीं, मगर जब विष्णु तक तमाखू-चर्वण करते हैं, तो तुम्हारी क्या हैसियत! वे भी अपना लिए रहते हैं बटुआ। कोई फिक्र न करो।
मगर भीतर तुम्हारे मन में, खोपड़ी में बहुत-सी बेचैनियां चल रही हैं;
वे जड़ हैं। ध्यान करो! भीतर के, मन के विचारों के जाल के साक्षी बनो। वहां विचार का जाल कम हो जाएगा, तुम एक दिन चौंकोगे कि अब तुम चाहो भी कि तमाखू मुंह में रखो तो न रख सकोगे। क्योंकि तमाखू में कुछ भी स्वादिष्ट नहीं है। खांसी आएगी... और वही तीन गुण!

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
पंद्रहवां प्रवचन

बिगसत कमल भयो गुंजार

मन मधुकर खेलत वसंत। बाजत अनहत गति अनंत।।
बिगसत कमल भयो गुंजार। जोति जगामग कर पसार।।
निरखि निरखि जिय भयो अनंद। बाझल मन तब परल फंद।।
लहरि लहरि बहै जोति धार। चरनकमल मन मिलो हमार।।
आवै न जाइ मरै नहिं जीव। पुलकि पुलकि रस अमिय पीव।।
अगम अगोचर अलख नाथ। देखत नैनन भयो सनाथ।।
कह गुलाल मोरी पुजलि आस। जम जीत्यो भयो जोति-बास।।

चलु मोरे मनुवां हरि के धाम। सदा सरूप तहं उठत नाम।।
गोरख, दत्त, गए सुकदेव। तुलसी, सूर, भए जैदेव।।
नामदेव, रैदास दास। वहं दास कबीर कै पुजलि आस।।
रामानंद वहं लिय निवास। धना, सेन, वहं कृस्नदास।।
चतुरभुज, नानक, संतन गनी। दास मलूका सहज बनी।।
यारीदास वहं केसोदास। सतगुरु बुल्ला चरनपास।।
कह गुलाल का कहौं बनाय। संत चरनरज सिर समाय।।

देव! तुम्हारे कई उपासक कई ढंग से आते हैं।
सेवा में बहुमूल्य भेंट वे कई रंग की लाते हैं।।

धूमधाम से साजबाज से मंदिर में वे आते हैं।
मुक्ता-मणि बहुमूल्य वस्तुएं लाकर तुम्हें चढ़ाते हैं।।

मैं ही हूं गरीबिनी ऐसी जो कुछ साथ नहीं लाई।
फिर भी साहस कर मंदिर में पूजा करने हूं आई।।

धूप दीप नैवेद्य नहीं है झांकी का श्रृंगार नहीं।
हाय! गले में पहनाने को फूलों का भी हार नहीं।।

कैसे स्तुति मैं करूं तुम्हारी, है स्वर में माधुर्य नहीं।
मन का भाव प्रकट करने को वाणी में चातुर्य नहीं।।

नहीं दान है, नहीं दक्षिणा, खाली हाथ चली आई।
पूजा की विधि नहीं जानती फिर भी नाथ! चली आई।।

पूजा और पुजापा प्रभुवर! इसी पुजारिन को समझो।
दान दक्षिणा और निछावर, इसी भिखारिन को समझो।।
मैं उन्मत्त प्रेम की लोभी, हदय दिखाने आई हूं।
जो कुछ है, बस, यही पास है, इसे चढ़ाने आई हूं।।

चरणों पर अर्पित है, इसको चाहो तो स्वीकार करो।
यह तो बस्तु तुम्हारी ही है--ठुकरा दो या प्यार करो।।
भक्त के पास भगवान को चढ़ाने को कुछ है भी नहीं। जो है, उसका है। न चढ़ाओ
तो तुम एक भ्रांति में जीते हो कि मेरा है। मेरा यहां कुछ भी नहीं। "मैं" का ही कोई अस्तित्व नहीं तो "मेरे" का क्या अस्तित्व होगा! "मैं" एक झूठ है। और उस झूठ के फैलावे का नाम "मेरा" है। "मैं" केंद्र है हमारे अज्ञान का। और "मेरा" उस केंद्र की परिधि। न तो "मेरा" सच है, न "मैं" सच है। दोनों जहां गिर जाते हैं, वहां पूजा पूरी हो जाती है। फिर सब उसका है। जिस क्षण तुम ऐसा जानते हो कि सब उसका है, उसी क्षण सारी चिंताओं से मुक्त हो जाते हो। उसी क्षण संताप के दिन गए, संगीत के दिन आए। उसी दिन दुख की रात कटी,

सुख का सूरज ऊगा। उसी दिन पतझड़ तिरोहित हो जाता है और वसंत झरझर चारों ओर आंदोलित होने लगता है। झरत दसहुं दिस मोती!
वसंत उत्सव का प्रतीक है। फूल खिलते हैं, पक्षी गीत गाते हैं, सब हरा
हो जाता है, सब भरा हो जाता है। जैसे बाहर वसंत है, ऐसे ही भीतर भी वसंत घटता है। और जैसे बाहर पतझर है ऐसे ही भीतर भी पतझर है। इतना ही फर्क है कि बाहर का पतझर और वसंत तो एक नियति के क्रम से चलते हैं,शृंखलाबद्ध, वर्तुलाकार घूमते हैं, भीतर का पतझर और वसंत नियतिबद्ध नहीं है। तुम स्वतंत्र हो, चाहे पतझर हो जाओ, चाहे वसंत हो जाओ। इतनी स्वतंत्रता चेतना की है। इतनी गरिमा और महिमा चेतना की है।
लेकिन दुर्भाग्य है कि अधिक लोग पतझर होना पसंद करते हैं। पतझर का कुछ लाभ होगा, जरूर पतझर से कुछ मिलता होगा अन्यथा इतने लोग भूल न करते! पतझर का एक लाभ है--बस एक ही लाभ है, शेष सब लाभ उससे ही पैदा होते मालूम होते हैं--पतझर है तो अहंकार बच सकता है। दुख में अहंकार बचता है दुख अहंकार का भोजन है। इसलिए लोग दुखी होना पसंद करते हैं। कहें लाख कि हमें सुखी होना है, सुख की कोशिश में भी दुखी ही होते हैं। सुख की तलाश में ही और-और नये दुख खोज लाते हैं। निकलते तो सुख की ही यात्रा पर हैं, लेकिन पहुंचते दुख की मंजिल पर हैं। कहते कुछ हैं लेकिन होता कुछ है। और जो होता है, वह अकारण नहीं होता। भीतर गहन अचेतन में उसी की आकांक्षा है। ऊपर-ऊपर है सुख की बात, भीतर-भीतर हम दुख को खोज रहे हैं। क्योंकि दुख के बिना हम बच न सकेंगे। सुख की बाढ़ आएगी तो हम तो कूड़े-करकट की भांति बह जाएंगे। पतझर में अहंकार टिक सकता है। न पत्ते हैं, न फूल हैं, न पक्षी हैं, न गीत हैं, सूखा-साखा वृक्ष खड़ा है, लेकिन टिक सकता है। और वसंत आए--कि गए तुम! वसंत आता ही तब है जब तुम चले जाओ। तुम खाली जगह करो तो वसंत आता है। तुम मिटो तो फूल खिलते हैं। तुम न हो जाओ तो तुम्हारे भीतर गीतों के झरने फूटते हैं। और कुछ चढ़ाना नहीं है परमात्मा के चरणों में--और हम चढ़ाएंगे भी क्या?
और हमारे पास है भी क्या? अपने को ही चढ़ा सकते हैं। इस अहंकार को ही चढ़ा दो, इस अस्मिता को ही चढ़ा दो, इस मैं को ही सूली दे दो और पिया की सेज मिल जाएगी। सूली ऊपर सेज पिया की। किस सूली के ऊपर है पिया की सेज? यह अहंकार सूली चढ़ जाए। इधर गर्दन कटी अहंकार की कि उधर प्रभात हुई। और जैसे ही अहंकार जाता है, उसके साथ ही आशचर्यजनक रूप से सारी चिंताएं, सारी व्यथाएं, सारी विपदाएं, सारे संताप चले जाते हैं। वही ऊर्जा जो संताप बनती थी, वसंत बन जाती है। वही ऊर्जा जो तुम्हारे भीतर दुख के कांटे उगाती थी, फूलों में बदल जाती है। ऊर्जा तो एक ही है, जो चाहो बना लो। निर्णय तुम्हारा है। हकदार तुम हो।
जो पतझर में जीने का निर्णय लिया है, उसे मैं संसारी कहता हूं और जिसने वसंत में जीने का निर्णय लिया है, उसे मैं संन्यासी कहता हूं।
ये जो गैरिक रंग है, यह वसंत का रंग है। यह वासंती रंग है। यह उदासी का रंग नहीं है, यह उत्सव का रंग है। यह रोता हुआ रंग नहीं है, यह हंसता हुआ रंग है, खिलखिलाता हुआ रंग है।
वसंत को ध्यान में रखना। परमात्मा के नाम पर भी पतझर पकड़े लोग बैठे हैं। परमात्मा के नाम पर भी लोग उदास होकर बैठे हैं, उनकी हृदयतंत्री बजती नहीं। परमात्मा के नाम पर बहुत गुरु गंभीर होकर बैठे हैं। उनका हास खो गया है। परमात्मा के नाम पर बहुत कठोर होकर बैठे हैं। उनकी मृदुता, उनका माधुर्य खो गया है। परमात्मा के नाम पर तुम्हारे तथाकथित महात्माओं को अगर तुम गौर से देखोगे तो तुम सूखे-साखे वृक्ष पाओगे, जिनमें पत्ते भी ऊगते नहीं अब। मगर हम भी ऐसे मूढ़ हैं कि वृक्ष में जितने कम पत्ते हों, उतनी ही हमारी पूजा! कहते हैं, बड़ा उदासीन है! कहते हैं, देखो तो त्याग! पत्ते भी छोड़ दिए हैं, फूल भी छोड़ दिए हैं, ठूंठ की तरह खड़ा है; तपस्वी है, महात्मा है! ठूंठों को तुम महात्मा कह रहे हो! और जब तुम ठूंठों की पूजा करोगे तो आज नहीं कल, ठूंठ ही हो जाओगे। जैसी पूजा करोगे, जिसकी पूजा करोगे, वैसे ही हो जाओगे। हम पूजा ही उसकी करते हैं जैसे हम होना चाहते हैं। हम आदर ही उसको देते हैं जैसे हम होना चाहते हैं। तुम्हारा आदर अकारण

नहीं होता। तुम उसी मंदिर में जाना चाहते हो जो मंदिर तुम बन जाना चाहते हो।
गुलाल तुम्हें वसंत के लिए पुकारते हैं। ये प्रीति भरे शब्द, ये मधुरस भरे शब्द हृदय में उतर जाने देना। इन्हें पीना, समझना मत। यह बात समझ की नहीं, अगम है, अगोचर है।
मन मधुकर खेलत वसंत।...
वसंत एक उत्सव है। और जब तुम समझ लेते हो और अहंकार को चढ़ा देते हो, तो
हो गए एक भौंरे, नाचते हो परमात्मा के कमल के चारों तरफ, गुनगुनाते हो गीत, तुम्हारा जीवन एक गुंजार हो जाता है।
मन मधुकर खेलत वसंत।...
और वसंत का एक अर्थ हैः फाग, होली। कि चलीं पिचकारी पर पिचकारी। कि न केवल तुम रंग जाते हो, तुम औरों को भी रंगने लगते हो। न केवल तुम रंगों से भर जाते हो, भीग जाते हो, तुम औरों को भी भिगोने लगते हो। बुद्ध ने कितनों को भिगोया! कितनों के साथ वसंत खेला! महावीर ने कितनों को भिगोया! कितनों को तर-बतर कर दिया! या जीसस ने, या मोहम्मद ने, या कबीर ने, या नानक ने। वे वसंत को उपलब्ध हुए, लेकिन जैसे ही वे वसंत को उपलब्ध हुए कि उन्होंने वसंत बांटना शुरू कर दिया। भर लीं पिचकारियां, उड़ाने लगे रंग--उन पर भी, जिन्होंने कभी सोचा न था सपने में कि वसंत का अवतरण होगा। उनको भी रंग डाला, जिनके सपनों में भी सत्य की तलाश न थी, जिन्होंने कभी भूल कर भी मंदिर की राह न पकड़ी थी। ये खिलखिलाते रंग, ये गूंजते हुए गीत उन्हें भी बुला लाए, उनके लिए भी निमंत्रण बन गए।
मन मधुकर खेलत वसंत।...
गुलाल अपनी अवस्था कह रहे हैं; कि गए दिन रोने के, बीत गई पतझड़ की रात, सुबह हो गई--और मेरा मन तो भौंरा हो गया है, और परमात्मा के चारों तरफ नाच रहा है, वसंत खेल रहा है, परमात्मा के साथ फाग खेली जा रही है।
... बाजत अनहत गति अनंत।।
और जब से मैं मिटा हूं, तब से अनाहत नाद सुन रहा हूं।
वीणा तुमने सुनी, सुंदर है, मधुर है, लुभावनी है। मगर कुछ नहीं उस वीणा
के मुकाबले जो तुम्हारे भीतर बज रही है। तुमने बाहर सूरज का ऊगना देखा, सूर्योदय? सुंदर है, अति सुंदर है, पर उस सूरज के मुकाबले कुछ भी नहीं जो तुम्हारे भीतर प्रतीक्षा कर रहा है ऊग आने की। तुमने कमल खिले देखे झीलों में? आकर्षक हैं! लेकिन तुम्हारे चैतन्य की झील में जो कमल खिलता है, जो सहस्रदल कमल, उस के समक्ष कुछ भी नहीं। क्योंकि बाहर के सब कमल मुरझा जाते हैं और भीतर का कमल कभी मुरझाता नहीं। और बाहर जो सूर्योदय होता है, अभी सूर्योदय हुआ है अभी सूर्यास्त हो जाएगा; और भीतर का सूर्योदय हुआ तो हुआ। हुआ तो फिर हुआ ही हुआ, सदा के लिए हुआ। बाहर का वसंत आता है और विदा हो जाता है, भीतर का वसंत आता है तो सदा के लिए आजाता है। वह शाश्वत है। तुम्हारे भीतर एक नाद बज रहा है। तुम नहीं बजा रहे हो, कोई नहीं बजा रहा है, बजाने वाला नहीं है, लेकिन नाद उठ रहा है--नाद तुम्हारा स्वभाव है। उस नाद को ही हमने ओंकार कहा है।
... बाजत अनहत गति अनंत।।
अनंत स्वर तुम्हारे भीतर उठ रहे हैं। और जो नाद है, बेहद है। उसकी कोई सीमा नहीं है। उसे किसी शब्द में बांधा नहीं जा सकता। और कोई वाद्य संगीत का उसे बाहर अनुवादित नहीं कर सकता। जब भी कोई संगीतज्ञ संगीत की चरम पराकाष्ठा को छूता है, तो बस थोड़ी सी झलक पकड़ पाता है--बस, थोड़ी सी झलक! जैसे कोई चांद को पकड़ ले झील के प्रतिबिंब में, बस ऐसी! झील में चांद होता नहीं, सिर्प प्रतिबिंब बनता है। और जरा सी कंकड़ी डाल दो कि प्रतिबिंब खो जाता है। बाहर का संगीत अगर इतना भी पकड़ ले भीतर के संगीत को जितना चांद को पकड़ लेती है झील, तो भी बहुत। हमारे तानसेन और हमारे बैजू बावरा बस इतना ही कर पाते हैं। लेकिन उस झलक में भी कितने लोग डूब जाते हैं! उस झलक में भी कितने लोग आनंदित हो उठते हैं! काश, हम चांद को देख सकें, झलक में ही न उलझे रहें!

संगीत करीब से करीब संदेश देता है परमात्मा का। शब्द जो नहीं कह पाते,
वह संगीत कह पाता है; क्योंकि संगीत ध्वनि है, अर्थहीन ध्वनि है। उस में एक आनंद तो है, मगर अर्थ नहीं है; एक उत्सव तो है, मगर अर्थ नहीं है। बुद्धि कुछ कर सके, ऐसा संगीत में कुछ भी नहीं है। इसलिए बुद्धि थकी रह जाती है। संगीत बुद्धि को बच कर निकल जाता है और हृदय तक पहुंच जाता है।
संगीत शुद्धतम संभावना है जहां तक बाहर के जगत की गति है भीतर ले जाने
के लिए। लेकिन जिस दिन तुम भीतर का नाद सुनोगे, बाहर के सब नाद फीके हो जाएंगे। जिस दिन तुम भीतर का नाद सुनोगे, बाहर का सब संगीत केवल शोरगुल मालूम होगा और कुछ भी नहीं।
मन मधुकर खेलत वसंत।...
यह तुम्हारा हास आया।
इन फटे-से बादलों में कौन सा मधुमास आया?
यह तुम्हारा हास आया।
आंख से नीरव व्यथा के
दो बड़े आंसू बहे हैं,
सिसकियों में वेदना के
ब्यूह ये कैसे रहे हैं!
एक उज्जवल तीर सा रवि-रश्मि का उल्लास आया। यह तुम्हारा हास आया।
इन फटे से बादलों में कौन सा मधुमास आया? यह तुम्हारा हास आया।
आह, वह कोकिल न जाने
क्यों हृदय को चीर रोई?
एक प्रतिध्वनि सी हृदय में
क्षीण हो हो हाय, सोई।
किंतु इससे आज मैं कितने तुम्हारे पास आया!
यह तुम्हारा हास आया।
इन फटे से बादलों में कौन सा मधुमास आया?
यह तुम्हारा हास आया।
अभी तो हम फटे से बादल हैं, अभी तो हमारे पास कुछ भी नहीं, भिक्षा के पात्र हैं--खाली, रिक्त--लेकिन परमात्मा हमारे भीतर हंस सकता है, मुस्कुरा सकता है! और हंसे तो हमारे पास भी झड़ी लगे--झरत दसहुं दिस मोती! --हमारे पास भी रत्नों की वर्षा हो जाए। वर्षा शायद हो ही रही है। क्योंकि जब गुलाल के पास हुई, तो गुलाल के ही पास नहीं हुई, हो ही रही थी, गुलाल को दिखाई पड़ी। और थे अंधे, नहीं देख पाए! परमात्मा तो हंस रहा है, लेकिन तुम ऐसे उदास हो गए हो कि हंसी से तुम्हारा तालमेल नहीं हो पाता। तुम हंसना ही भूल गए हो। हंसने में भी कैसी कंजूसी हो गई है! तुम नाचना भूल गए हो। तुम्हें नृत्य की भाव-भंगिमा ही स्मरण नहीं रही। तुम न गाते हो, तुम न नाचते हो, न तुम हंसते हो, तुम्हारा वसंत से कैसे संबंध हो! कुछ तो वसंत जैसे होना पड़ेगा! क्योंकि समान से ही समान का संबंध हो सकता है।
और यही साधना है कि तुम थोड़े से वसंत जैसे होने लगो।
मैं यहां अपने संन्यासियों को यही कह रहा हूं--सुबह-सांझ, रोज--नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ, क्योंकि परमात्मा है!
एक तो नृत्य है, उत्सव है, परमात्मा को पाने के पहले। उससे पात्रता निर्मित होती है। और फिर एक उत्सव है, नृत्य है परमात्मा को पाने के बाद। उससे धन्यवाद प्रकट होता है, अनुग्रह प्रकट होता है। संन्यासी परमात्मा को पाने के पहले नाचता है, सिद्ध परमात्मा को पाने के बाद नाचता है। मगर संन्यासी ही सिद्ध हो सकता है। कोई और दूसरा सिद्ध नहीं हो सकता।
बिगसत कमल भयो गुंजार।...
गुलाल कहते हैंः कैसे विस्मय के द्वार खुले जा रहे हैं! मेरे भीतर कमल खिल गया है। जहां अंधेरे के सिवाय मैंने कभी कुछ पाया न था, जहां कुरूपता के सिवाय कुछ और मुझे मिला न था--क्रोध मिला था, घृणा मिली थी, वैमनस्य-ईर्ष्या मिली थी, द्वेष मिला था, अहंकार मिला था, तृष्णा मिली थी, वासना-

कामना मिली थी, जहां मैंने सिवाय दुर्गंधयुक्त भाव-दशाओं के और कभी कुछ न पाया था, कूड़ा-करकट ही पाया था, जहां गंदगी का ढेर लगा था, वहां क्या चमत्कार हुआ है! --बिगसत कमल भयो गुंजार! फूल खिल उठा है, कमल खिला है और गुंजार हो रहा है। कौन गा रहा है गीत? कौन खिला रहा है इस कमल को? कोई अदृश्य हाथ, जो पकड़ में नहीं आते। मगर होंगे, जरूर ही होंगे। कौन बजा रहा है इस वीणा को? कोई अदृश्य हाथ।
... जोति जगामग कर पसार।।
यह कौन है जो मेरे भीतर ज्योति को जगा दिया है? यह कैसा कमल है कि जिसके चारों तरफ संगीत गूंज रहा है और जिसके बीच से ज्योति उठ रही है? और यह ज्योति पसरती जा रही है, जगामग फैलती जा रही है। यह मुझ तक रुकेगी नहीं, यह दूर-दूर तक जाएगी, यह बात फैलेगी, यह गंध उड़ेगी, हवाएं इसे दूर-दूर तक ले जाएंगी, दिगदिगंत में पहुंचाएंगी। यह प्रकाश मेरे में समाएगा नहीं, यह मुझसे बड़ा है, यह मुझसे फूट कर बहेगा। यह बाढ़ की तरह है, मैं छोटा हूं, यह मेरे ऊपर से बह जाएगा, यह बहुतों तक पहुंचेगा।
... जोति जगामग कर पसार।।
और हम धन्यभागी हैं कि यह ज्योति किसी के भीतर समा नहीं पाती। नहीं तो बुद्ध चुप रह जाते। नहीं तो मोहम्मद से कुरान न उठती और कृष्ण ने गीता न गाई होती; और कबीर की अदभुत उलटबांसियां, आदमी उनसे वंचित रह जाता। तो बाउल फकीरों ने इकतारा न बजाया होता; और उनकी मस्ती हम कभी पहचान ही न पाते। ये थोड़े से लोग हमारी हवा को भी शराब से भर गए हैं। हमारे वातावरण को भी मदमस्त कर गए हैं। कारण कि जब भीतर की घटना घटती है, तो घटना इतनी बड़ी है कि तुम्हारी देह उसे सम्हाल नहीं सकती। न तुम्हारा मन उसे रोक सकता है। वह सब बांध तोड़ कर बहती है।
कलियो, यह अवगुंठन खोलो।
ओस नहीं है, मेरे आंसू

से ही मृदु पद धो लो।।

कोकिल-स्वर लेकर आया है
यह अशरीर समीर,
सुखमय सौरभ आज हुआ है
पंचबाण का तीर,
मन में कितना है रहस्य
ओ लघु सुकुमार शरीर!
व्योम तुम्हारे रुचिर
रंग में डूबा है गंभीर,
सुरभि-शब्द की एक लहर में,
तुम क्या हो, कुछ बोलो।
कलियो, यह अवगुंठन खोलो।।
तुम भी कली हो उसी कमल की जिसकी गुलाल बात कर रहे हैं। मगर जरा पर्दा उठाओ! मीरा कहती हैः घूंघट के पट खोल।
कलियो, यह अवगुंठन खोलो।
ओस नहीं है, ...
कोई फिकर नहीं, तो आंसुओं से ही पैर धो लो। उस परमात्मा के पैरों को आंसुओं से ही धो लो।
कोकिल-स्वर लेकर आया है,
यह अशरीर समीर,
यह जो समीर तुम्हारे चारों तरफ बह रही है, इस में अदृश्य रहस्य छिपे हुए हैं। इसमें ऐसी कोकिल की तान है, जो तुमने कभी सुनी नहीं--जो बाहर के कानों से सुनी भी नहीं जाती।
सुखमय सौरभ आज हुआ है
पंचबाण का तीर
मन में कितना है रहस्य

ओ लघु सुकुमार शरीर!
यह छोटी सी देह है, मगर रहस्यों पर रहस्य इसमें भरे हैं। यह छोटी सी देह ऐसा समझो कि जैसे एक छोटा सा पूरा विश्व है, इस पिंड में ब्रह्मांड समाया हुआ है। जैसे यह छोटा सा नक्शा है सारे अस्तित्व का!
व्योम तुम्हारे रुचिर
रंग में डूबा है गंभीर,
सुरभि-शब्द की एक लहर में,
तुम क्या हो, कुछ बोलो।
कलियो, यह अवगुंठन खोलो।।
यह अवगुंठन एक ही तरह से खुल सकता है कि तुम अपने से पूछो कि मैं कौन हूं। जितना गहरे में पूछोगे उतना ही पाओगेः मैं हूं ही नहीं; मैं नहीं हूं। एक दिन यह उत्तर तुम्हारे सामने खड़ा हो जाएगा--मैं नहीं हूं। फिर भी कुछ तो है। उस कुछ का नाम ही परमात्मा है। उसे कोई भी शब्द दिया नहीं जा सकता, वह निःशब्द है, अनिर्वचनीय है।
निरखि निरखि जिय भयो अनंद।...
और जिस दिन तुम उस का जरा सा भी अनुभव कर लोगे, तो नाचोगे।
निरखि निरखि जिय भयो अनंद।...
देखोगे तो ही आनंदित हो सकोगे। जिन्होंने देखा है उन्होंने तो बहुत कहा है कि आनंद है, सच्चिदानंद है, सुन भी लेते होतुम, मगर तुम्हारे भीतर कोई पुलक नहीं उठती, तुम्हारे भीतर प्राणों में कोई टंकार नहीं पड़ती, तुम्हारी वीणा में संगीत नहीं छिड़ जाता; न कमल खिलता है, न गंध उड़ती है, न दीया जलता है। दूसरों के कहे यह नहीं हो सकेगा! निरखि निरखि जिय भयो अनंद। जिस दिन तुम निरखोगे, जिस दिन तुम पहचानोगे, उस दिन प्राण आनंद से परिपूरित हो उठेंगे।
... बाझल मन तब परल फंद।।
तब पड़ोगे तुम परमात्मा के फंदे में; तब होगी सगाई; तब पहली दफा तुम जानोगे प्रीति का संबंध, प्रेम का नाता। बाझल मन तब परल फंद। ये जो मन भागा-भागा फिरता था, फिर नहीं भागेगा। ये जो मन सारे जगत में भागा फिरता था और कहीं शरण न पाता था, रत्ती भर न हटेगा। जब भौंरे को मिल जाता है कमल, तो बस बैठ जाता है। फिर कमल बंद भी हो जाए तो भी भौंरा भागता नहीं। कमल रात बंद हो जाता है, तो भौंरा भी उसके भीतर बंद हो जाता है। बंद होते कमल को देख कर भी भौंरा भागता नहीं। अब यह कारागृह नहीं है, यह उसका घर है; वह अपने घर आगया है; जिसकी तलाश थी, वह मिल गया है।
लहरि लहरि बहै जोति धार।...
और तब तुम भीतर देखोगे कि लहरों पर लहरें आरही हैं ज्योति की। और ऐसी ज्योति की जो किसी ईंधन से नहीं जलती; इसलिए चुक नहीं सकती; बिन बाती बिन तेल।
लहरि लहरि बहै जोति धार। चरनकमल मन मिलो हमार।।
और उसी लहर में तुम डूबते जाओगे, डूबते जाओगे; उस लहर में तुम लहर हो जाओगे और तभी तुम मिल पाओगे परमात्मा के चरणों से। तुम जब तक पिघलोगे नहीं, तरल न बनोगे--अभी तो बहुत ठोस हो, अभी तो चट्टान की तरह हो। अभी तो जितना तुम चट्टान की तरह होते हो उतना ही लोग कहते हैं कि यह है आदमी मजबूत! तरल आदमी का तो कोई सम्मान ही नहीं है जगत में। जो आंसुओं में बह जाए, उसकी तो तुम निंदा करोगे कि क्या मर्द होकर रोते हो! छोटे-छोटे बच्चों को हम कहने लगते हैं कि क्या लड़कियों जैसा रो रहा है! प्रकृति ने कुछ भेद नहीं किया है आदमी की आंखों में; चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष, एक सी ही ग्रंथियां हैं आंसू की। जितनी स्त्रियों की आंखों में आंसू की ग्रंथि हैं, उतनी ही पुरुषों की आंखों में। लेकिन पुरुषों को हम रोने तक नहीं देते। पुरुष क्या बनाते हैं उनको हम, पुरुष बना देते हैं, कठोर बना देते हैं। उनकी आंखों से आंसू तक छीन लेते हैं। आंसू ही नहीं छिनते आंखों से, उनके भीतर से सारा गीलापन खो जाता है, वे सूख जाते हैं, ठूंठ हो जाते हैं। और अब तो स्त्रियां भी मुकाबले में लगी हैं। वे भी स्पर्धा में हैं कि बहुत हो लिया, बहुत रो लिया, अब हम भी पुरुषों को मात कर के रहेंगे। अब तो

उनकी आंखें भी सूखने लगी हैं। अब तो वहां से भी आर्द्रता विलीन हुई जा रही है। जल्दी ही वहां भी हरियाली नहीं होगी। जल्दी ही वहां भी पत्ते झर जाएंगे और फूल नहीं खिलेंगे। स्त्रियों के भी महात्मा होने के दिन करीब आरहे हैं! पहले स्त्रियां महात्मा नहीं हो सकीं, क्योंकि इतनी कठोर नहीं हो सकीं। मुझसे लोग पूछते हैं कि बुद्ध हुए, महावीर हुए, कृष्ण हुए, ईसा हुए, मोहम्मद हुए, जलालुद्दीन, कबीर, फरीद, इतनी अनंतशृंखला हुई संतों की, सदगुरुओं की, स्त्रियां क्यों नहीं महात्मा पद पा सकीं? स्त्रियां तरल रहीं, सरल रहीं, आर्द्र रहीं। और तुमने महात्मा के नाम पर जो कल्पना गढ़ रखी है, वह कठोर होने की, वह बिल्कुल सूखे-साखे होने की।
शास्त्र कहते हैं कि महात्मा को सूखी लकड़ी जैसा होना चाहिए। क्यों? क्योंकि गीली लकड़ी में से धुआं उठता है। गीली लकड़ी को जलाओगे तो धुआं उठेगा। सूखी लकड़ी को जलाओगे तो धुआं नहीं उठेगा। तो महात्मा को क्या कोई चूल्हे में डालना है, क्या करना है! कि महात्मा पर क्या रोटियां पकानी हैं! फूल लगने दो! मगर फूल सूखी लकड़ियों में नहीं लगते। सूखी लकड़ियों में धुआं नहीं उठता, यह सच है, सो चूल्हे के काम की हैं, मगर फूल नहीं लगते उनमें। संसार को बगिया बनाना है कि एक चूल्हा!
सदियों से कठोरता सिखाई गई। स्त्रियां इतनी कठोर नहीं हो सकीं, इसलिए बड़ी पिछड़ गईं। महात्माओं के साथ उनका तालमेल नहीं बैठ सका। रोने लगें, गाने लगें, हंसने लगें! नाचने लगें! कुछ स्त्रियां पहुंचीं, मगर बामुश्किल। जैसे, मीरा। खूब निंदा सही। महात्मागण पक्ष में नहीं थे मीरा के--हो नहीं सकते थे। क्योंकि ये नाच, ये गीत, ये तम्बूरा, ये अलमस्ती, ये अल्हड़पन, ये आंसुओं की धार, इसमें कहां वीतरागता है? आंख तो बिल्कुल पत्थर की हो जानी चाहिए।
मैंने सुना है मुल्ला नसरुद्दीन एक दुकान पर कुछ सामान खरीदने गया। दुकानदार दाम ज्यादा बता रहा था। मुल्ला ने कहाः दाम दुगुने हैं। दुकानदार ने कहा कि दुगुने हों या तिगुने, इसी दाम में मैं चीजें बेचता हूं। मुल्ला ने कहाः सामने का दुकानदार आधे में बेच रहा है। तो उस दुकानदार ने कहाः वहीं से ले लो। उसने कहा कि वहां से कैसे लें, उस का स्टाक खत्म हो गया है! उस दुकानदार ने कहाः स्टाक जब मेरा खत्म हो जाता है तो मैं तो एक चौथाई में बेचता हूं, आधे की क्या बात!
ऐसे ही जिद्दमजिद चलती रही। आखिर उस दुकानदार ने कहाः भई, सिर पच गया; उसने कहा कि ऐसा कर, अगर तू एक काम कर दे तो आधे में दूंगा; अगर तू बता दे कि मेरी कौन सी आंख असली है और कौन सी नकली?
मुल्ला ने गौर से देखा और कहा कि बाईं आंख तुम्हारी नकली है। दुकानदार तो बड़ा हैरान हुआ, बाईं आंख उसकी नकली थी! मगर इस कला से बनाई गई थी कि पहचानना मुश्किल था कौन असली, कौन नकली। उसने कहा कि नसरुद्दीन, मान गए भाई! कैसे पहचाने कि बाईं आंख नकली है? नसरुद्दीन ने कहाः उसमें कुछ दया दिखाई पड़ती है। असली तो हो ही नहीं सकती। असली तो बिल्कुल कठोर है। असली महात्मा एकदम कठोर।
मीरा को बहुत गालियां सहनी पड़ीं, बहुत अपमान सहना पड़ा। घर के लोगों ने
ही जहर का प्याला भेजा। दुश्मनी की वजह से नहीं, बदनामी बचाने के लिए। अगर मीरा जैसी कोई एकाध स्त्री पहुंच गई, तो यह बावजूद पुरुषों के और पुरुषों की धारणाओं के। लेकिन अब स्त्रियां भी कठोर होती जा रही हैं। बहुत झेल लिया उन्होंने भी। अब और उनको लगता है कि बिना कठोर हुए पुरुष के साथ स्पर्धा नहीं की जा सकती। अगर बाजार में जूझना हो और गलाघोंट प्रतियोगिता में लगना हो, तो फिर अपनी-अपनी छुरी पर धार रखनी पड़ेगी। और हृदय कठोर करना पड़ेगा, जब गर्दनें काटनी हो एक-दूसरे की। यह धारणा कि महात्मा सूखी लकड़ी होना चाहिए--काष्ठवत--इस धारणा ने सारे धर्म को ही सूखी लकड़ी कर दिया। ऐसे नहीं कोई महात्मा होता! ये रुग्णचित्त लोग हैं जिनको तुमने महात्मा कहा है।
महात्मा तो होगा वसंत! लहरि लहरि बहै जोति धार। उसके भीतर तो नृत्य होगा ज्योति का। और भीतर ही नहीं होगा, जब भीतर होगा तो बाहर भी होगा। फैलेगी ज्योति। चरनकमल मन मिलो हमार। और सिवाय इसके कोई रास्ता नहीं है

कि तुम इतने तरल हो जाओ कि जैसे नदी सागर में मिल जाती है ऐसे तुम परमात्मा से मिल सको। मगर तरलता हो तो ही। अगर नदी जम गई हो और पत्थर की बर्फ बन गई हो, तो फिर सागर में नहीं मिल सकती--सागर तक पहुंच भी जाए तो भी बर्प की तरह जमी हुई नदी सागर में नहीं मिलेगी। सागर किनारे से बहता रहेगा, नदी अपनी अकड़ में अकड़ी रहेगी। तुम्हें बर्फ की तरह नहीं जम जाना है, जल की तरह तरल होना है। जितने तरल हो सको उतना शुभ है।
तुम्हें आज पाकर चंचल हूं,
मैं आशाओं के उभार में।
जैसे ये तारे देखो--
दुहरे-तिहरे हो उठे धार में।।
ध्वनि-लहरें हिल-डोल उठीं, इस पार और उस पार हमारे,
जैसे मौन सुरभि की लघु गति,
फैल गई है हार हार में।।
ज्योत्सना है, मानो अपने वे रजत स्वप्न सच होकर आ,
जुही झांकती है समीर को,
लता-कुंज के द्वार-द्वार में।।
आओ, अपनी छाया में हम प्रेम-मिलन के चित्र निहारें,
एक बार में दो मिलाप हैं,
देखो तो अपने विहार में।।
इसी मिलन के बल पर मैं, नश्वरता सुख से सहन करूंगा।
अपनेपन का भार खो चुका,
अश्रु-धार के एक ज्वार में।।
... रोने की कला आजाएगी तो आंसू ही बहा ले जाते हैं अहंकार को।...
अपनेपन का भार खो चुका,
अश्रु-धार के एक ज्वार में।।
तुम्हें आज पाकर चंचल हूं,
मैं आशाओं के उभार में।
नाचो, तरंगित होओ, चंचल होओ, जैसे कि झील में लहरें नाच रही हों।
जैसे ये तारे देखो--
दुहरे-तिहरे हो उठे धार में।।
तुमने देखा, आकाश में तारा एक हो, लेकिन नदी की लहरों में दोहरा-तिहरा
हो उठता है। लहरों में छितर जाता है। चांद निकलता है आकाश में और नदी में देखा? चांदी ही चांदी फैल जाती है! जब तुम नाचोगे तो परमात्मा तुम्हारे भीतर भी दोहरा-तिहरा हो उठता है। जितना तुम्हारा गहन नृत्य होगा, उतना ही परमात्मा तुम्हारे भीतर गहरा हो जाता है।
आवै न जाइ मरै नहिं जीव।...
और व्यर्थ की घबड़ाहटों में न पड़ो। नरकों से न डरो; स्वगों का लोभ न करो। आवै न जाइ... न तो तुम आए हो कहीं से, न तुम कहीं जाओगे। न तुम्हारा कोई जन्म है, न तुम्हारी कोई मृत्यु है। तुम शाश्वत हो! और तुम कैसी छोटी-छोटी चीजों से डर बैठे हो! क्या-क्या डर बिठाए हैं लोगों ने तुम्हें! पंडित-पुरोहितों ने तुम्हारे भयभीत होने का खूब शोषण किया है। तुम्हारे तथाकथित धर्म सब भय पर खड़े हैं। तुम्हारे भगवान की धारणा भी भय पर खड़ी है। और भगवान और भय का कहीं कोई संबंध हो सकता है! भगवान का अनुभव होता है प्रेम से। भय से तो भगवान भी शैतान जैसा मालूम होगा। जिसको हम भय करते हैं, उसको हम आदर से सकते हैं? जिसको हम भय करते हैं, उसको हम प्रेम कर सकते हैं? जिसको हम भय करते हैं, मौका मिल जाए तो हम उसको गोली मार दें। मौके की तलाश जारी रहेगी।
तुम अगर भगवान से भयभीत हो तो तुम्हारे और उसके बीच कभी प्रेम की सगाई नहीं हो सकती। और "सबसे ऊपर प्रेम सगाई।" भय से सगाई होगी कैसे? भय से तो टूट जाएगी और। मगर इस दुनिया में भी हमने भय की सगाई बना रखी है। और इसी को हम परमात्मा तक भी फैलाए हुए हैं। यहां लोग बंधे हुए हैं जोड़ों में--सिर्प भय के कारण! अब पत्नी सोचती है, जाएं तो कहां जाएं? और पति सोचता है कि अब ठीक है, अब इसको झेलते-झेलते इसके उपद्रवों के तो आदी हो गए, अब और किसके

नये उपद्रव झेलें! फिर लोकलाज है, पद-प्रतिष्ठा है, लोग क्या कहेंगे, तो बंधे रहो! लड़ते रहो, बंधे रहो! झगड़ते रहो, बंधे रहो! एक-दूसरे से भयभीत हैं। पति-पत्नी ऐसे डरते हैं एक-दूसरे से! अगर तुम किसी जोड़े को रास्ते पर चलते देखो और दोनों को उदास और परेशान, तो मझ लेना कि विवाहित हैं। और अगर कोई जोड़ा रास्ते पर चल रहा हो और प्रसन्नचित्त और आनंदित, सो समझना कि मामला गड़बड़ है! ये विवाहित नहीं हो सकते! पत्नी किसी ओर की होगी, पति किसी ओर का होगा!
मुल्ला नसरुद्दीन फिल्म देखने गया था। एक अभिनेता अद्भभुत अभिनय कर
रहा था। मुल्ला ने कहा, वाह, अभिनय हो तो ऐसा! वह जो प्रेम जतला रहा था, एकदम घुटनों को टेक कर खड़ा था... हिंदी फिल्मों में तो ऐसे अद्भभुत दृश्य आते ही हैं! हिंदी फिल्में तो गजब हैं! दुनिया में कहीं कोई गाना-वाना नहीं गाता, हिंदी फिल्मों को छोड़ कर। जरा ही मौका मिला कि गाना शुरू! और कहां से बैंड-बाजे आजाते हैं एकदम से, यह भी कुछ समझ में नहीं आता। जिंदगी में ऐसा तो नहीं होता कि तुम्हें दुख चढ़ा और तुमने एक दुख का गाना गाया और फौरन साज बजने लगा। कि पिया गए दूर और तुमने उनको पुकार लगाई और एकदम साज बजने लगा! यह साज कौन बजाते हैं? बड़े रहस्य हैं! मगर हिंदी फिल्मों में तो जो हो जाए सो थोड़ा! ----
तो बस, घुटने टेक कर अभिनेता एक स्त्री को प्रेम प्रकट कर रहा है। आंसुओं की धार बही जा रही है। कह रहा है कि तुम्हारे बिना जी ही नहीं सकता-- एक दिन भी नहीं जी सकता, सांस रुक जाएगी। तुम नहीं मिलीं तो सब खो जाएगा। मुल्ला ने अपनी पत्नी से कहा कि कितना कुशल अभिनेता है। और पत्नी ने कहाः तुम्हें मालूम है, यह जिसके सामने अभिनय कर रहा है, वह इसकी पत्नी है। वास्तविक जीवन में वह इसकी पत्नी है। मुल्ला ने कहाः तब तो गजब हो गया! तब तो पक्का ही अभिनेता है!! अपनी पत्नी से कोई ऐसी बातें कहे कि तुम्हारे बिना मर जाऊंगा, कि तुम्हारे बिना एक क्षण नहीं जी सकता! अपनी पत्नी से ऐसे कहीं कोई बातें कहता है! पति और पत्नी के बीच में यह शिष्टाचार आता ही नहीं। वहां तो हालतें ही उल्टी हैं।
मुल्ला बीमार था। डाक्टर उसको देखने आया। नब्ज देखी, छाती की धड़कन देखी, तापमान लिया और बोला कि ऐसा लगता हैकि कम-से-कम तीस साल से कोई खतरनाक बीमारी तुम्हारे पीछे पड़ी है।
मुल्ला ने कहाः धीरे बोल भइया, वह बगल के कमरे में ही बैठी है! और ठीक तीस साल हुए हैं, ... तूने भी गजब कर दिया! नाड़ी देख कर तूने भी क्या----बड़े- बड़े वैद्य देखे, मगर ठीक तीस साल... । मगर धीरे! अगर सुन लिया तो और मुसीबत हो जाएगी।
यहां भी हमने जीवन के सारे संबंध भय पर खड़े कर रखे हैं। मां-बाप बच्चों को डरा रहे हैं। और डरा कर सोचते हैं आदर मिलेगा। धमका रहे हैं। और बच्चे आदर देंगे। मगर आदर थोथा होगा, झूठा होगा। और जब तक छोटे हैं और जब तक बलशाली नहीं, तभी तक देंगे। जिस दिन बल आजाएगा, उस दिन बदला लेंगे। जिस दिन वे बलशाली हो जाएंगे और मां-बाप कमजोर होंगे--आखिर एक दिन मां-बाप बूढ़े होंगे और कमजोर हो जाएंगे, बच्चे जवान होंगे--फिर ये ही बच्चे उनको सताएंगे। फिर बूढ़े रोते फिरते हैं कि क्या हो गया, कलियुग आगया। कलियुग वगैरह कुछ नहीं आया, भइया, यह आपकी ही कृपा है! और सतयुग में भी तुम यही करते रहे। और अब भी तुम यही कर रहे हो। बच्चे जब कमजोर थे, तुमने सता लिया, अब तुम कमजोर हो गए हो, अब बदला मिल रहा है; अब बच्चे तुम्हें सता रहे हैं। हमने सब संबंध विकृत कर दिए हैं।
शिक्षक सदियों से बच्चों को मार रहा है, पीट रहा है और आशा करता हैः सम्मान। कि गुरु को सम्मान मिलना चाहिए। ये बच्चे गुरु की पिटाई नहीं करते, यही बहुत है। सम्मान क्या मिलना चाहिए? आजकल उन्होंने शुरू कर दी, पिटाई भी शुरू कर दी, क्योंकि अब छोटे-छोटे बच्चे नहीं रहे। प्राइमरी स्कूल में ठीक है कि तुम उनको डंडे के बल पर शांत रखो, लेकिन विश्वविद्यालय में वे तुम्हारी ही उम्र के हो जाते हैं।
मैं विश्वविद्यालय में विद्यार्थी था। मैं सुबह रोज तीन बजे उठ कर स्नान करने जाता। अंधेरा होता। बाथरूम में मैंने प्रवेश किया, ... तो मेरा

बाथरूम तो निश्चित था। उसमें मेरे डर से कोई प्रवेश भी नहीं करता था। और तीन बजे रात तो वैसे भी कोई प्रवेश करने वाला नहीं था।... उस दिन देखा मैंने, एक सज्जन उसमें नहा रहे हैं। मैंने उनको पकड़ा गर्दन से और बाहर निकाला कि तुम्हें पता है कि तीन बजे इसमें कोई प्रवेश कर ही नहीं सकता। उन्होंने ज्यादा गड़बड़ की तो मैंने उनको एक धौल भी लगा दी। अंधेरा था, मैंने देखा नहीं कौन हैं, क्या मामला है! वह तो सुबह पता चला कि वे नये-नये दर्शनशास्त्र में अध्यापक होकर आए थे। मुझे बुलाया वाइस-चांसलर ने, कहा कि यह बात ठीक नहीं है कि अध्यापक को तुमने धक्का मार कर बाहर निकाला और एक धौल भी लगाई। मैंने कहाः कौन अध्यापक? एक छोकरा नहा रहा था! उन्होंने कहा, वह छोकरा नहीं है, जी! वह अध्यापक है। वे नये-नये आए हैं। मैंने कहा कि अंधेरे में कौन किसको देखे! तीन बजे रात, कौन अध्यापक है, कौन विद्यार्थी है ब्रह्ममुहूर्त में सब समान है। ब्रह्ममुहूर्त में तो ब्रह्म के ही दर्शन होते हैं! मारने वाला भी ब्रह्म और मारा जाने वाला भी ब्रह्म! विश्वविद्यालय में तो विद्यार्थी अब जवान हैं। वे अध्यापकों से कैसे डरेंगे? किसलिए डरेंगे? तो परीक्षाओं में ले जाते हैं छुरा। टेबल पर छुरा गड़ा कर और फिर नकल शुरू कर देते हैं। बस, छुरा देखकर अध्यापक इधर-उधर देखता है। कौन झंझट मोल ले!
गुरु-शिष्य का संबंध भी भय पर। मां-बाप का बेटों-बच्चों से संबंध भी
भय पर। पति-पत्नी का संबंध भी भय पर। सारे संबंध तुमने भय पर खड़े कर रखे हैं। और अंतिम संबंध, कम से कम उसे तो दया करते, छोड़ देते, कम से कम परमात्मा और व्यक्ति का संबंध तो भय पर खड़ा न करते! उसको भी भय पर खड़ा कर रखा है, कि नरक में सड़ोगे।... अब नरक से जो डरें वे डरें। आजकल कोई नरक से डरता भी नहीं। पहले लोग कहते हैं कि नरक सिद्ध करो, है कहां? कोई लौट कर आया? और जब होगा तब देखा जाएगा। और होशियार आदमी यहां तरकीब खोज लेता है, वहां भी खोज लेगा।... कि स्वर्ग में तुम को पुरस्कार मिलेगा। यह भय और लोभ एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुमने बच्चे समझ रखा है लोगों को! कि स्वर्ग में पीपरमेंट की गोलियां और नरक में कुटाई-पिटाई!
इस तरह परमात्मा और मनुष्य का संबंध समाप्त ही हो गया।
गुलाल तुमसे कहना चाहते हैंः भयभीत होने की कोई भी जरूरत नहीं है। सभी संत तुमसे यही कहना चाहते हैं।
आवै न जाई मरै नहिं जीव।...
न तो तुम आए हो, न जाओगे। तुम अस्तित्व के अनिवार्य अंग हो। तुम परमात्मा के हिस्से हो! कहां का नरर्क, कहां का स्वर्ग! स्वर्ग है तो तुम्हारे भीतर और नर्क है तो तुम्हारे भीतर। वह तुम्हारा मनोविज्ञान है, कोई भौगोलिक स्थितियां नहीं।
... पुलकि पुलकि रस अमिय पीव।।
गुलाल कहते हैं, छोड़ो यह भय-लोभ और फिर नाचो, गाओ, और फिर पीओ अमृत को।
... अगम अगोचर अलख नाथ।...
वह परमात्मा अगम है। अगम्य है। हम उसे समझ कर भी समझ नहीं सकते। वह समझ में आजाए, ऐसा कोई दो और दो चार वाला गणित नहीं। वह रहस्य है। जितना समझोगे उतना ही पाओगे कि और समझने को शेष है। जितना समझोगे उतना पाओगे कि अरे, कुछ भी न समझा! अभी तो बूंद भी नहीं समझे और सागर सामने खड़ा है! इस बात को ख्याल रखना, इस दुनिया में जितने नासमझ लोग हैं, वे ही इस भ्रांति में जीते हैं कि समझ में आता है। समझदार तो कहते हैं, कुछ समझ में नहीं आता। यह बात इतनी बड़ी है। यह अस्तित्व इतना विस्मय-विमुग्ध भाव से देखने योग्य है। ज्ञान की अकड़ से मत देखो, तुम्हारा ज्ञान बाधा है, अज्ञान के भाव से देखो। छोटे बच्चे की तरह देखो। तुम कुछ नहीं जानते। गीता कंठस्थ होगी, कुरान याद होगा, मगर तुम जानते कुछ भी नहीं। और परमात्मा को जानने की सीमा में तुम कभी बांध भी न पाओगे। किसी तराजू पर उसे तोल नहीं सकते और किसी कसने की कसौटी पर कस नहीं सकते। कोई माप नहीं है जिससे माप सको। अमाप है। तर्कातीत है। अगम है। अगोचर है। इन आंखों से दिखाई पड़ने वाला नहीं है।
मगर तुम्हारी कोशिश यही है कि इन्हीं आंखों से दिखाई पड़ जाए।

इन्हीं आंखों से देखने के लिए तुमने मूर्तियां बना रखी हैं। फिर उन्हीं मूर्तियों को देखते-देखते तुम आंखें बंद करके भी उन मूर्तियों को देखने की कोशिश करते हो। इसको लोग समझते हैं साधना कर रहे हैं। पहले देखते हैं गणेश जी को बाहर बैठे, फिर आंख बंद कर लेते हैं, फिर आंख बंद करके गणेश जी को देखने की कोशिश करते हैं। कुछ दिन कोशिश करते रहोगे तो आंख बंद करके भी गणेश जी दिखाई पड़ने लगेंगे। एक तो गणेश जी का ढंग ऐसा है, कि तुम बचना भी चाहो तो न बच सकोगे, आंखें बंद की कि और-और दिखाई पड़ेंगे! कि हनुमान जी खड़े हैं, लाल लंगोट बांधे हुए। आंखे बंद करके देखोगे तो दिखाई पड़ेंगे। किसी भी चीज को तुम अगर आंख खोल कर बहुत दिन तक देखते रहोगे ध्यानपूर्वक, फिर आंख बंद करोगे तो उसकी प्रतिछवि रह जाती है। वह फिर भीतर दिखाई पड़ने लगती है। इसलिए बुद्ध ने कहा है कि जब तक भीतर तुम्हें कुछ भी दिखाई पड़ता रहे
तब तक जानना कि अभी ध्यान नहीं लगा। चाहे राम दिखाई पड़ें, चाहे कृष्ण, चाहे बुद्ध, चाहे महावीर, जब तक कुछ भी दिखाई पड़ता रहे भीतर तब तक समझना कि अभी ध्यान पूरा नहीं हुआ। अभी बाहर ही भटक रहे हो। आंख से दिखाई पड़ने वाली चीज ही नहीं है।
इसलिए सब मूर्तियां झूठी। सब मूर्तियां खिलौने। बच्चों को उलझा लो तो ठीक, लेकिन बूढ़े भी मूर्तियों में उलझे हैं। रामलीलाएं चल रही हैं! राम-सीता की बारात निकलती है! बाराती बन कर लोग सम्मिलित होते हैं। बच्चे गुड़ियों का विवाह रचाते हैं, तुम राम-सीता का विवाह रचाते हो। वही खेल कर रहे हो, जरा बड़े पैमाने पर। जरा शोरगुल ज्यादा, भीड़-भाड़ ज्यादा, रंग जरा धार्मिक दे दिया, पुट जरा धार्मिक दे दिया, मगर मामला वही का वही है। तुम्हारी मूर्तियां, तुम्हारे धार्मिक क्रियाकांड, सब बाह्य हैं। और परमात्मा तुम्हारी आंतरिकता का नाम है। इस जगत की जो आंतरिकता है, वही परमात्मा है।
अगम अगोचर अलख नाथ।...
उसे न कोई लक्ष्य बना सकता है, न वह किसी का लक्ष्य बनता है। अलक्ष्य है, अलख है।
अलक्ष्य शब्द को समझ लेना जरूरी है।
कभी भूलकर भी यह मत सोचना कि परमात्मा को पाना है। क्योंकि अगर तुमने परमात्मा को पाने की वासना अपने भीतर जगाई, तो वासना ही बाधा बन जाती है। परमात्मा पाया जाता है, लेकिन परमात्मा को पाने की वासना बाधा बन जाती है। फिर परमात्मा कैसे पाया जाता है? जब तुम्हारी सब वासनाएं क्षीण हो जाती हैं। परमात्मा के पाने की वासना भी सम्मिलित है उन सब वासनाओं में। जब तुम्हारे भीतर कुछ भी पाने की कोई आकांक्षा नहीं रह जाती। तब तत्क्षण उसका अनाहत नाद बज उठता है। उसका सूर्य उदय हो आता है। तब तुम्हारे भीतर ज्योति लहराने लगती है। परमात्मा तुम्हारी वासना का लक्ष्य नहीं है। न हो सकता है। परमात्मा तो निर्वासना का अनुभव है।
इसलिए बुद्ध ने परमात्मा की बात ही नहीं की। उन्होंने सिर्प इतना ही कहा, किस तरह वासना छूटे, यह मैं तुम्हें बताता हूं। वासना छूट जाएगी, फिर शेष सब अपने से हो जाएगा। फिर आगे की तुम बात पूछो ही मत। क्योंकि तुमने पूछी और तुमसे गलत हुई। तुमसे अगर कहा जाए कि परमात्मा है, तो तत्क्षण मन में वासना पैदा होती है कि उसे पाएं। और फिर अगर कहा जाए कि वह आनंद है, तब तो और भी वासना पैदा होती है। और अगर कहा जाए कि वह अमृत है और उसे पाकर तुम भी अमृत हो जाओगे, तब तो तुम्हारा प्राण एकदम ही लोभ से भर जाता है, कि जल्दी पाकर रहें, पाना ही है!
वासना से अगर तुम परमात्मा को पाने चले तो चूकते रहोगे। क्योंकि तुम कभी उस शांत अवस्था में ही न आपाओगे, वासना तुम्हें उद्विग्न रखेगी, व्यथित रखेगी, बेचैन रखेगी। वासना तुम्हें कभी वर्तमान में स्थिर न होने देगी, हमेशा भविष्य में भटकाए रखेगी, कल्पनाओं के जाल में उलझाए रखेगी। अगम अगोचर अलख नाथ।...
वह जो स्वामी है, इस जगत का जो मालिक है, न तो उसे हम अपनी वासना का लक्ष्य बना सकते हैं, न आंखों का दृष्य बना सकते, न बुद्धि के लिए विचार का विषय बना सकते।

... देखत नैनन भयो सनाथ।।
लेकिन एक और आंख है भीतर की, ये आंखें नहीं; एक और देखने का ढंग है, जिससे वस्तुएं नहीं देखी जातीं, जिससे चैतन्य देखा जाता है। देखना तो केवल कहने की बात है, अनुभव किया जाता है। देखत नैनन भयो सनाथ। और जिस दिन तुम उसे अपने भीतर अनुभव कर लोगे उस दिन तुम सनाथ हो जाओगे, उसके पहले तुम अनाथ हो।
मैं एक गांव में ठहरा हुआ था। सामने ही एक मकान बन रहा था, मैंने कहा,
यह क्या बन रहा है? उन्होंने कहाः अनाथालय बना रहे हैं। मैंने कहा, तुम नाहक बना रहे हो! पूरी पृथ्वी अनाथालय है, अब और एक अनाथालय की क्या जरूरत है! अनाथालय के भीतर अनाथालय! तुम तो ऐसा करो, एक सनाथालय बनाओ। कि जो सनाथ हो गए हों, उनके ठहरने की कोई जगह बनाओ। उन्होंने कहाः हम कुछ आप का मतलब नहीं समझे। तो मैंने गुलाल का यह वचन उनको कहाः
अगम अगोचर अलख नाथ। देखत नैनन भयो सनाथ।।
वही है सनाथ, जिसने परमात्मा को जान लिया, पहचान लिया, प्रतीति कर ली,
पी लिया; जिससे परमात्मा का आलिंगन हो गया, जो डूब गया उसमें और डूब जाने दिया उसे अपने में, जिसने भेद न रखा, जो अभिन्न हो गया, अभेद हो गया, जो अद्धैत हो गया, वही सनाथ है। मालिक से जुड़ोगे तो ही, अन्यथा तुम अनाथ ही हो।
कह गुलाल मोरी पुजलि आस।...
गुलाल कहते हैं, मेरी तो आशा पूरी हो गई। मेरी तो अभीप्सा पूरी हो गई।
... जम जीत्यो भयो जोति-बास।।
मैंने तो मृत्यु को जीत लिया और ज्योति में मेरा निवास हो गया। उस ज्योति में, जो कभी बुझती नहीं। उस ज्योति में, जो इस जगत का प्राण है, जो इस अस्तित्व का अस्तित्व है।
चलु मोरे मनुवां हरि के धाम।
तुम्हें भी पुकारते हैं कि आओ, तुम भी चलो। मैं तो पहुंच गया; अब प्यारे, तुम भी आओ! चलो, हम चलें हरि के धाम। तुम भी अपने मन को पुकारो--चलु मोरे मनुवां हरि के धाम।
बढ़ो, अभय, विश्वास-चरण धर!
सोचो वृथा न भव-भय कातर!
ज्वाला के विश्वास के चरण,
जीवन-मरण समुद्र संतरण,
सुख-दुख की लहरों के सिर पर,
पग धर कर पार करो भव सागर। बढ़ो-बढ़ो विश्वास-चरण धर!
क्या जीवन? क्यों, क्या जग कारण? पाप-पुण्य, सुख-दुख का वारण?

व्यर्थ तर्क! यह भव लोकोत्तर, बढ़ती लहर बुद्धि से दुस्तर; पार करो विश्वास-चरण धर!
जीवन-पथ तमिस्रमय निर्जन,
हरती भव-तम एक लघु-किरण,
यदि विश्वास हृदय में अणु भर,
देंगे पथ तुम को गिरि-सागर।
बढ़ो अमर विश्वास-चरण धर!
चलु मोरे मनुवां हरि के धाम।
लेकिन चलोगे कैसे? डर लगता, भय लगता। उस पार जाना है तो इस पार को छोड़ना होगा। और इस पार हमने कितनी आकांक्षाओं से, कितनी तृष्णाओं से अपने छोटे-छोटे-घरघूले बनाए हैं। ताश के पत्तों के ही घर सही, मगर नाम तो घर है! नाम से ही हम धोखा खा रहे हैं। इस किनारे पर हमने कितनी आशाओं के बीज बोए हैं, अभी फसल काटी कहां, उस पार कैसे चलें! और फिर उस पार! है भी कोई पार या नहीं? दिखाई तो पड़ता नहीं। अगम है, अगोचर है, अलख है। हमारी आंखें उस दूर-

265

दूर के पार को देख नहीं पातीं। और बीच में मझधार है और तूफान है और आंधियां हैं। तो डर लगेगा, भय लगेगा। लेकिन यह भय और डर तभी तक लगता है जब तक तुम्हारे भीतर श्रद्धा नहीं उमगी है। श्रद्धा का एक कण ही काफी है और सारे भय विसर्जित हो जाते हैं।
श्रद्धा कहां मिलती है? बाजार में तो बिकती नहीं, हाट में तो पाई नहीं जाती, लेकिन अगर किसी के जीवन में क्रांति घटी हो, किसी के भीतर लहर-लहर ज्योति बह रही हो, उसके पास बैठने से मिलती है, सत्संग से मिलती है, संगति से मिलती है। सत्संग के अतिरिक्त श्रद्धा का स्वाद और कहीं नहीं मिलता। ध्यान रहे, श्रद्धा का अर्थ विश्वास नहीं है। तुम तो विश्वास का मतलब
यह समझते हो कि मान लिया। मां-बाप कहते हैं--न उनको पता है--पंडित-पुजारी कहते हैं--न उनको पता है--जो स्वयं नहीं जानते, वे तुम्हारे भीतर विश्वास जगा रहे हैं! उनका विश्वास मिथ्या, थोथा तुम्हारा विश्वाश तो और भी मिथ्या। और थोथा होगा। उनका विश्वास उधार है। तुम्हारा विश्वास उधार होगा। और श्रद्धा नगद होती है, उधार नहीं होती।
नगद श्रद्धा कहां मिलेगी?
किसी जीवंत गुरु के पास ही मिल सकती है। किसी जागते गुरु के पास ही एकमात्र उपाय है। बगीचे में जाओगे तो गंध तुम्हारे वस्त्रों में भी समा जाएगी। वैसे ही किसी सत्संग में बैठोगे, जहां बूंदा-बांदी हो रही है अमृत की, जहां मोती झर रहे हैं, एकाध मोती भी तुम्हारे हाथ लग जाए तो बात हो जाए! फिर सब भय मिट जाता है। फिर अज्ञात में जाने की क्षमता और साहस का जन्म होता है। और वैसा साहस हो तो ही तुम कह सकोगे अपने सेः चलु मोरे मनुवां हरि के धाम।
आगे बढ़, आगे बढ़, आगे!
बीत गया है वह अतीत तो,
किसके लिए रुका तू?
पीछे छूट गया जो उसका,
रस तो लूट चुका तू!
पाकर नई अतृप्ति निरंतर
नये पाठ पढ़ आगे
आगे बढ़, आगे बढ़, आगे!
आगे अंधकार तो पीछे
अस्ताचल की लाली,
क्रम-क्रम से गिरती है उस पर अमिट यवनिका काली!
पर देखे हैं सभी दृश्य वे आरहस्यमय आगे
आगे बढ़, आगे बढ़, आगे!
गिर-गिर कर ही तो संभलेगा अटकेगा भटकेगा
तभी लगेगा न तू ठिकाने,
जब भूले-भटकेगा।
उठ, तू उठता ही जाएगा
ऊंचे चढ़-चढ़ आगे!
आगे बढ़, आगे बढ़, आगे!
गिरने से मत घबड़ाना। भटकने से मत घबड़ाना। भूल-चूक से मत डरना। जिसने भूल-चूक नहीं की, उसने कभी कुछ सीखा नहीं। जो गिरने से डरा, वह ऊपर उठा नहीं। कहीं कोई गलती न हो जाए, वह तो मुरदा हो गया जीते-जी। वह कदम ही उठाने में भयभीत होगा। यह तो अच्छा है कि छोटे बच्चे डरते नहीं कि कहीं चलने से गिर न पड़ें, नहीं तो कोई आदमी कभी चलेगा ही नहीं। तो बच्चे उठ-उठ कर चलने लगते हैं। मां-बाप रोकते भी हैं कि बेटा, गिर पड़ोगे, मत चलो, बच्चे सुनते नहीं। गिरते हैं, घुटने टूट जाते हैं, फिर-फिर उठ आते हैं; चल कर ही रहते हैं। अगर बच्चे भी तुम जैसे भयभीत हों और कहें कि कहीं चोट खा जाएं, कि

कहीं गिर जाएं, और बैठे ही रहें, तो बस गोबर-गणेश ही रह जाएं। फिर उनके जीवन में कुछ भी न हो।
अज्ञात की खोज पर भी निकलना एक नया जन्म है। डरना मत, भूल-चूक होंगी।
वही भूल-चूक बार-बार न करना, इतना ही काफी है। नई-नई भूल रोज-रोज करना, ताकि रोज-रोज सीख सको। और भटकना भी। क्योंकि भटकोगे नहीं तो कभी ठीक रास्ता मिलेगा नहीं। ठीक रास्ता मिलने का एक ही उपाय है कि सब रास्तों पर भटक लो। जो-जो गलत हैं, वह जान लोगे कि गलत हैं, तभी ठीक को पहचान सकोगे।
मेरे पास जो लोग आते हैं, उनसे मैं पूछता हूं कि और कहां-कहां गए? उनसे मैं कहता हूं, पहले और जगह हो आओ, और द्वार-दरवाजे खटका आओ, क्योंकि सही द्वार को पहचानने के लिए बहुत गलत द्वार पहचान लेने जरूरी हैं। नहीं तो पहचान ही न सकोगे। मूल्य भी न समझ पाओगे। मैं जो कह रहा हूं, वह तुम्हारी श्रद्धा न बन पाएगी। तुम बहुत जगह धोखा खाओ, डरो मत। धोखा खाना इस जीवन की अनिवार्य प्रक्रिया है। तुम बहुत जगह मिथ्या के जाल में उलझो, घबड़ाना क्या है! अरे, मिथ्या मिथ्या है, जाल कितनी देर चलेगा? आज टूटेगा, नहीं तो कल टूटेगा, नहीं तो परसों टूटेगा। और जब भी तुम मिथ्या के बाहर आओगे, तुम ज्यादा प्रौढ़, ज्यादा बुद्धिमान, ज्यादा कुशल, जीवन की परख को ले कर आओगे। जो लोग मेरे पास बहुत जगह भटक कर आते हैं, उनके आने का रंग और ढंग और होता है! जो लोग पहली दफा सीधे आजाते हैं, उनके आने का ढंग बड़ा साधारण होता है, रंग बड़ा कच्चा होता है। मेरा भी यह अनुभव है कि जीवन एक अवसर है, जिस में तुम दूर-दूर तक भटको, कोई हर्जा नहीं, हमेशा लौट सकते हो सही राह पर। मगर सही की पहचान गलत की पहचान के बिना होती नहीं।
कृष्णमूर्ति ठीक कहते हैं, असार को असार जान लेना सार को जानने का एकमात्र उपाय है। गलत गलत है, ऐसा पहचान लेना सही को पहचानने की कसौटी है। चलु मोरे मनुवां हरि के धाम। सदा सरूप तहं उठत नाम।।
वहां तो सदा ओंकार का नाद हो रहा है। वहां तो सदा वसंत है। वहां तो एक
ही ऋतु है, वसंत, वहां दूसरी ऋतु नहीं। वहां तो उत्सव ही उत्सव है।
गोरख, दत्त, गए सुकदेव।...
अनेक संतों के नाम वे गिनाते हैं। मगर छोटे-छोटे भेद के साथ। और वे भेद महत्त्वपूर्ण हैं। समझने जैसे हैं।
गोरख, दत्त, गए सुकदेव।...
गोरख के लिए, दत्त के लिए, सुकदेव के लिए शब्द प्रयोग किया--"गए।" गोरख महायोगी थे। उनके नाम से ही तो गोरखधंधा शब्द चला। उन्होंने इतनी प्रक्रियाएं साधीं, इतने जटिल साधन किए और इतनी पद्धतियां खोजीं कि साधारण आदमी उलझ जाए। सुलझना तो दूर, उलझ जाए। सो गोरख के नाम पर शब्द ही चल पड़ाः गोरखधंधा। कोई आदमी उलझा हो तो हम उसको कहते हैंः क्या गोरखधंधे में उलझे हो? हमें याद भी नहीं कि हमने अनजाने ही एक महापुरुष का नाम ले लिया--गोरख। और सब तरह से तो गोरख भूल ही गए, बस एक गोरखधंधा शब्द में बचे हैं।
मगर शब्द बना तो अकारण नहीं बना। गोरख ने इतनी विधियां खोजीं, जितनी भारत में किसी और ने कभी नहीं खोजीं। बड़े वैज्ञानिक हैं। और बड़े सतत श्रम से पहुंचे। इसलिए शब्द उपयोग किया--"गए।" चेष्टा से! श्रम से!
... तुलसी, सूर, भए जैदेव।।
तुलसी, सूर और जैदेव गए नहीं, भए। ये गा-गा कर हो गए। ये तो गुण गा कर हो गए। ये गए नहीं, ये हो ही गए। यह होना और गोरख के होने में फर्क है। यह होना सुगम है। इसमें विधि-विधान नहीं है; इसमें बहुत योग, तपश्चर्या, साधना नहीं है। जयदेव, तुलसी, सूर तो गीत गा-गा कर, उसकी प्रशंसा के गीत गा-गा कर डूब गए।
वही हो गए, जिसके गीत गाते थे, वही हो गए। गाते-गाते हो गए।
नामदेव, रैदास दास।...
नामदेव और रैदास ने दास्य-भाव की साधना की। समर्पण किया। जैसे गोरख
ने साधना की--संकल्प--वैसे नामदेव और रैदास ने समर्पण किया। सब उसी पर छोड़ दिया कि जो तेरी मर्जी! अपने हाथ में कुछ भी न रखा। हम कुछ करेंगे, हम कहीं

जाएंगे, हम पहुंचेंगे, यह बात ही न रखी। कहा, हमारी क्या बिसात! सब उसके चरणों में छोड़ दिया।
नामदेव, रैदास दास। वहं दास कबीर कै पुजलि आस।।
और कबीर भी उसीशृंखला में आते हैं--परम दासों की। इसलिए बार-बार कहते हैं कबीर अपने कोः "दास कबीर!" बड़े रस से कहते हैं, बड़े आनंद से कहते हैं! दुनिया में दास शब्द के लिए ऐसा आदर कहीं भी नहीं है। क्योंकि दुनिया "दास" का राज ही नहीं समझी।
मेरे पास पृथ्वी के सभी देशों से आए हुए संन्यासी हैं। जब मैं उनको नाम देता हूं तो कभी-कभी किसी को ऐसा नाम भी दे देता हूं जिसमें "दास" होता है। उनको समझाता हूं कि दास का अर्थ होता हैः स्लेव, गुलाम, सरवेंट। अब और क्या करो? दास जैसे प्यारे शब्द के लिए और कोई शब्द नहीं है अंग्रेजी में। वे सुन तो लेते हैं, फिर मुझे पत्र लिखते हैं कि यह आपने हमें कैसा नाम दिया! गुलाम, सरवेंट, स्लेव। इस संबंध में बड़ी बेचैनी होती है। कोई अच्छा सा नाम नहीं दे सकते आप हमें? अब "दास" से अच्छा नाम कुछ हो नहीं सकता। बहुत मुश्किल है इससे अच्छा नाम पाना। लेकिन दुनिया की किसी भाषा में इस शब्द का अनुवाद करना कठिन है। क्योंकि दुनिया की भाषा में केवल हम उन्हीं को दास कहते हैं, भौतिक अर्थो में जो गुलाम हैं। और गुलामी कोई अच्छी बात तो नहीं! तो उनको अखरे, यह आश्चर्य की बात नहीं है, स्वाभाविक है। पश्चिम में तो दास का मतलब ही यह हुआ कि आप भी क्या बात कर रहे हैं! दास-प्रथा कब की बंद हो गई और अभी आप दास शब्द दे रहे हैं! इससे बड़ी चोट लगती है।
उनको दास की गरिमा का पता नहीं। दास अगर जबरदस्ती बनाए जाओ, तो एक बात है, और अगर दास अपने हाथ से बन जाओ, तो बिल्कुल और बात है! जबदस्ती बनाए जाओ, तो अपमानजनक है, और अपने हाथ से बन जाओ, स्वेच्छा से तो इससे बड़ा कोई सम्मान नहीं।
वहं दास कबीर कै पुजलि आस।।
और जो दास हुआ, उसकी आशा सदा पूरी हो गई है। चाहे संकल्प वाला पहुंचा हो, न पहुंचा हो... क्योंकि संकल्प का रास्ता तो तलवार की धार की तरह है। पहुंचने की संभावना कम, गिरने की, कट मरने की ज्यादा। वह तो ऐसा है जैसे कोई नट रस्सी पर चले। पहुंच जाए, इसकी संभावना कम, गिर जाए, इसकी संभावना ज्यादा। संकल्प में खतरा है। खतरा है अहंकार का। वह गड्ढा है। संकल्प अगर रस्सी है, तो उसी के नीचे खाई है अहंकार की। जो संकल्प करेगा, उसकी अस्मिता बढ़ेगी कि मैं कुछ कर रहा हूं; कि देखो, मैंने इतनी साधना की, इतनी तपश्चर्या की, इतना योग, इतने व्रत-नियम-उपवास। खतरा है कि कहीं "मैं" मजबूत न हो जाए। संकल्प के साधक को स्मरण रखना पड़ता है कि संकल्प तो सघन हो, लेकिन "मैं" मजबूत न हो जाए। संकल्प कहीं भूल से भी "मैं" को भोजन न देने लगे। नहीं तो पहुंचने का रास्ता भटकने का रास्ता हो जाएगा। जिस सीढ़ी से सोचा था पहुंचेंगे, वह सीढ़ी गिराने का कारण हो जाएगी।... लेकिन दास को कोई खतरा नहीं है। क्योंकि दास तो पहले ही चरण में अहंकार को समर्पित कर देता है। संकल्प के मार्ग पर अहंकार अंतिम चीज है जिसको छोड़ना पड़ता है, और समर्पण के मार्ग पर अहंकार पहली चीज है। सब बीमारी पहले ही छोड़ दी जाती है, फिर खतरा है ही नहीं। इसलिए दास का रास्ता तो बड़ा मधुर है। उसकी आशा तो निरंतर पूरी होने वाली है। इसलिए गुलाल ठीक कहते हैं--
वहं दास कबीर कै पुजलि आस।।
जो भी वहां दास होकर गया, उसकी आशा पूरी हुई, सदा पूरी हुई।
रामानंद वहां लिय निवास।...
रामानंद ने वहां निवास कर लिया है। वे प्रभु के भीतर प्रविष्ट हो गए हैं। उन्होंने प्रभु को घर बना लिया है। प्रभु उनका मंदिर हो गए हैं। रामानंद भक्त हैं। भक्त तो भगवान के हृदय में प्रविष्ट हो जाता है। भक्त तो तीर की तरह भगवान के हृदय में प्रविष्ट हो जाता है। भक्त और भगवान के बीच जरा भी फासला नहीं बचता। इसलिए "निवास" शब्द का उपयोग किया है, कि "रामानंद वहां लिय निवास।"
... धना, सेन, वहं कृस्नदास।।

इसी तरह वहां धन्ना भगत पहुंचा, सेना नाई पहुंचा, कृष्णदास पहुंचे। भक्त होकर, प्रेम में लिप्त होकर। डूब कर।
चतुरभुज, नानक, संतन गनी।...
चतुर्भुज, नानक और न मालूम कितने संत, वे कैसे पहुंचे हैं? उनके पहुंचने का रास्ता वही है--"दास मलूका सहज बनी", जैसे मलूक दास की सहज बनी, कुछ किया न धरा, कुछ किया ही नहीं, न संकल्प, न समर्पण... दास मलूका अद्भभुत हैं। दास मलूका बेजोड़ हैं। दास मलूका तो कहते हैं कि समर्पण किया, उसमें भी करना आ जाएगा न। और करना जहां आगया, वहां संकल्प आगया। दास मलूका की पकड़ बड़ी गहरी है। इसलिए वे तो कहते हैंः
अजगर करै न चाकरी, पंछी करैं न काम।
दास मलूका कह गए, सबके दाता राम।।
वह तो हैं ही, समर्पण क्या करना है! उनका ही है सब! उन्हीं का उन्हीं को देने चले, कुछ तो शरम खाओ! दास मलूका कहते हैंः कुछ तो लजाओ! उन्हीं का उन्हीं को देने चले! उन्हीं का है ही, बात खतम हो गई! देना-लेना क्या है? एक है, संकल्प करता है। दूसरा उसके विपरीत समर्पण करता है। मलूकदास कहते हैं कि हम हैं ही कहां जो कुछ करें, वही है। इसलिए कहते हैं--
अजगर करै न चाकरी, पंछी करैं न काम।
दास मलूका कह गए, सब के दाता राम।।
वही मालिक है। करने-धरने की बात ही मत उठाओ! तो दास मलूका तो चादर ओढ़
कर पड़े रहे। ऐसे पाया उन्होंने जैसा किसी ने कभी नहीं पाया। सहज। दास मलूका कहते हैं परमात्मा पाया ही हुआ है, तुम भ्रांति में पड़े हुए हो कि छोड़ दिया, कि खो गए, कि भूल गए, कि भटक गए। न तुम कहीं दूर गए हो, न जा सकते हो--चाहो तो भी नहीं जा सकते। उससे दूर जाने का कोई उपाय ही नहीं। उससे अलग होने की कोई व्यवस्था ही नहीं है। इसलिए एक होने की व्यर्थ बकवास न उठाओ! ये कसमें मत खाओ कि मैं एक होकर रहूंगा। ये कसमें बताती हैं कि तुम अभी भ्रांति में पड़े हो कि अलग हो गए हो। यह मत कहो कि सब उसके चरणों में छोड़ता हूं। इसका तो मतलब यह हुआ कि तुम मानते हो कि तुम्हारा है और छोड़ रहे हो। बड़ी कृपा कर रहे हो उस पर।
दास मलूका बहुत अद्भभुत हैं! "दास मलूका सहज बनी!" कुछ नहीं किया--
न संकल्प, न समर्पण --बात बन गई।
यारीदास वहं केसोदास।...
यारी भी वहां हैं, केसोदास भी वहां हैं। ये सब ऐसे ही गए हैं, जैसे मलूकदास गए।... सतगुरु बुल्ला चरनपास।।
गुलाल के सतगुरु हैंः बुल्ला। तो अंततः उनको स्मरण करते हैं, वे कहते हैंः सतगुरु बुल्ला चरनपास। सतगुरु बुल्ला परमात्मा के चरणों के निकटतम हैं। भक्त कहीं और नहीं होना चाहता, बस चरणों के पास होना चाहता है। चरण पा लिए तो सब पा लिया। और कुछ पाने को क्या बच रहा! चरणों में सिर लग गया तो सब मिल गया। गुलाल कहते हैं कि मेरे सतगुरु हैं बुल्ला, उनको मैंने सबसे ज्यादा उनके चरणों के पास पाया गुलाल बुल्ला के चरण पकड़ लिए। बुल्ला परमात्मा के चरण पकडे हुए हैं। इस तरह परोक्ष रूप से गुलाल के, हाथों में भी परमात्मा के चरण आगए। वही ऊर्जा प्रवाहित होने लगी। वही लहर-लहर ज्योति।
कह गुलाल का कहौं बनाय।...
गुलाल कहते हैं, कैसे कहूं, किस तरह बात को बनाऊं? बनती नहीं; बनाता हूं, बिगड़-बिगड़ जाती है; कहना चाहता हूं, कह नहीं पाता। "कह गुलाल का कहौं बनाय", ... किस तरह बना कर कहूं कि तुम्हें समझ में आजाए?
... संत चरनरज सिर समाय।।
बस, इतना ही कह सकता हूं कि अगर कहीं कोई संत मिल जाए, तो उसके चरणरज में अपने सिर को समा जाने देना। बस, इतना पर्याप्त है। इतना तुमसे हो सके, तो सब हो जाएगा। झरत दसहुं दिस मोती! मोती झरने लगेंगे।
संत के चरण तुम पकड़ लो, संत परमात्मा के चरण पकड़े हुए हैं, तुमने अनजाने परमात्मा के चरण ही पकड़ लिए। धीरे-धीरे संत तो खो जाएगा, परमात्मा के चरण ही तुम्हारे हाथ में आजाएंगे। संत का अस्तित्व दोहरा है। हम जैसा

है एक तरह और एक तरफ से परमात्मा जैसा है। दृश्य है, हड्डी-मांस-मज्जा का, जैसे हम, और दूसरी तरफ अदृश्य, अलख, अगोचर। परमात्मा तो हमें दिखाई पड़ता नहीं, उसे पकड़ना भी चाहें तो कहां पकड़ें! लेकिन संत हमें दिखाई पड़ सकते हैं। संत परमात्मा के प्रकट रूप हैं। इसलिए संतों को हमने अवतार कहा है। अवतार का कुछ और अर्थ नहीं होता।
और ये गलतियां छोड़ देना कि केवल दस अवतार होते हैं, कि केवल चौबीस अवतार होते हैं। जहां भी किसी के भीतर का दीया जलता है, वहीं परमात्मा अवतरित होता है। अनंत अवतार होते हैं। अनंत अवतार हुए हैं, अनंत होते रहेंगे। यह भी हमारी कंजूसी है--हमारी कंजूसी भी हद की है। हम परमात्मा तक को भी फैलने नहीं देते, उसको भी सिकोड़ते हैं।
मुसलमानों से पूछो तो वे कहते हैंः बस, एक पैगंबर है। एक अल्लाह और एक उसका पैगंबर। दो पैगंबर हो जाएं, तुम्हें कुछ अड़चन होगी! दो पैगंबर हो जाएं तो मुसलमान को अड़चन होती है; कि फिर किस की मानें? उसके सब भीतर के संदेह खड़े होने लगते हैं, वह घबड़ाने लगता है। उसको अड़चन होती है कि फिर हमारे पैगंबर आधे ही रह गए, क्योंकि दूसरा पैगंबर हो गया। जैसे कि पैगंबर होना कोई धन है! कि दो हो गए तो बंट जाएगा! कि तीन हो गए तो और बंट गया! और दस-पचास हो गए, तो पूंजी सब खत्म ही हो गई! कौड़ी हाथ रह जाएगी। एक ही रहे तो सारी संपदा उसके पास है। पागल हुए हो! परमात्मा की संपदा कुछ ऐसी है जो बंट जाए!
ईसाइयों से पूछो तो वे कहते हैंः एक ही बेटा है परमात्मा का, इकलौता बेटा! यह भी खूब रही! फिर क्या हुआ? फिर कोई संतति-निग्रह करवा लिया परमात्मा ने? एक बेटे के बाद--और वैसे भी संतति-निग्रह दो के बाद का नियम है, एक के बाद नहीं। कम से कम दो की आज्ञा तो है संतति-निग्रह में। ये एक पर रुक गए! क्या अड़चन आ गई फिर? क्या बहुत निराश हो गए जीसस से? कि खोपड़ी ठोंक ली कि अब बहुत है, एक ही बहुत है, कि अब ऐसी भूल दुबारा न करेंगे!
इस पर ईसाई बहुत जोर देते हैंः इकलौता बेटा! क्योंकि डर है कि कहीं और दावा न कर दे कोई! क्योंकि बहुत बेटे अगर परमात्मा के हों, तो परमात्मा की संपत्ति बंट जाएगी। अदालत में मुकदमे चल जाएंगे। और संपत्ति बंट गई तो ईसाइयों के हाथ में कम पड़ेगी फिर, और लोग ले जाएंगे, अभी पूरी की पूरी पर कब्जा है।
ऐसे सब दावेदार हैं।
इधर हिंदू हैं, वे कहते हैं, दस अवतार हैं। पहले हिंदू दस अवतार कहते थे, फिर धीरे-धीरे हिम्मत बढ़ाई, उन्होंने चौबीस किए। वह भी कारण पड़ा, करना पड़ा। क्योंकि जैनों ने कहा, चौबीस तीर्थंकर; और बौद्धों ने कहा, चौबीस बुद्ध; तो हिंदुओं ने कहा कि हम क्या इन से पीछे रह जाएं! आगे निकले जा रहे हैं! हमारे दस, इनके चौबीस! उन्होंने भी फौरन चौबीस कर दिए, कि चौबीस अवतार!
मगर अगर किसी जैन से कहो, पच्चीसवां तीर्थंकर, तो एकदम नाराज हो जाए। पच्चीस तो होते ही नहीं, बस, चौबीस ही होते हैं। चौबीस पर क्या अड़चन आजाती है? चौबीस पर क्यों अटक जाता है मामला? चौबीस की संख्या में ऐसा क्या है? क्या परमात्मा को इसके आगे आंकड़े नहीं आते? मामला क्या है? जैसे देहात में होता है न, आदमी दस तक गिनती करता है, फिर एक से शुरू करता है। क्योंकि दस अंगुलियां हैं, सो एक से दस तक गिनता है। मगर परमात्मा का क्या मामला है? चौबीस अंगुलियां हैं! कि बस, चौबीस तक गिनती कर ली, फिर एक से शुरू!
ये हमारी कंजूसियां हैं। परमात्मा का इनसे कुछ लेना-देना नहीं। मैं तुम से कहता हूंः अनंत उसके अवतार हुए हैं, अनंत उसके तीर्थंकर, अनंत उसके पैगंबर। और बेटे तो सभी उसके हैं। जो जान लेता है कि मैं उसका बेटा हूं, वह तीर्थंकर हो गया, पैगंबर हो गया, अवतार हो गया। जो नहीं जानता--है तो बेटा उसी का, नहीं जानता लेकिन--वह अभी तीर्थंकर नहीं है, अवतार नहीं है। मगर जिस दिन जान ले--अभी जान ले, अभी पहचान ले, जरा टटोल ले भीतर, "अपने मांहि टटोल", तो अभी तीर्थंकर हो जाए, अभी पैगंबर हो जाए, अभी अवतार हो जाए। अवतार शब्द बड़ा प्यारा है। इसका अर्थ होता हैः अवतरित होनाः ऊपर से नीचे उतरना। न तो तीर्थंकर शब्द में वह खूबी है, न पैगंबर शब्द में वह खूबी

है जो अवतार में है। पैगंबर का अर्थ होता हैः उसका संदेश लाने वाला। अब संदेश लाने वाला कोई भी हो सकता है। डाकिया को कुछ खास होने की जरूरत नहीं, चिट्ठी ले आए, बस! खाकी वर्दी पहन कर चिट्ठी लेकर आजाए। डाकिया होने के लिए कोई और गुण थोड़े ही चाहिए, इतना ही काफी है कि बीच में चिट्ठी हजम न कर जाए, कि किसी की चिट्ठी किसी और को न दे जाए, कि खुद ही चिट्ठी निकाल कर खोल कर पढ़ने न बैठ जाए, बस ऐसे थोड़े से गुण चाहिए। पैगंबर होनें में कुछ खास बड़ा अर्थ नहीं है। तीर्थंकर का अर्थ होता हैः ऐसे व्यक्ति, जिसके द्वारा तीर्थ का निर्माण होता है। तीर्थ कहते हैं घाट को। जिस घाट से नाव छूट सकती है, उस पार जा सकती है। चलो, ठीक है, कोई खास बात नहीं! लेकिन अवतार शब्द तो बड़ा ही बहुमूल्य है। इसका अर्थ होता हैः परमात्मा का उतरना। तुम जब भीतर तैयार हो जाते हो--संत चरनरज सिर समाय--जब तुम किसी संत के चरणों में अपने सिर को मिटा देते हो, जब तुम शून्य हो जाते हो, तब तुम्हारे भीतर अवतरण होता है। परमात्मा उतरता है। जैसे आकाश से किरणें उतरती हैं। जैसे चांद से रोशनी उतरती है। जैसे तारों से अमृत झरता है। ऐसे तुम्हारे भीतर परमात्मा उतरता है। झरत दसहुं दिस मोती!
गुलाल ठीक कहते हैं। कह गुलाल का कहौं बनाय। कैसे कहूं! बात सीधी है, साफ है, सरल है, फिर भी कहने में नहीं आती, शब्दों से छूट-छूट जाती है। बात सिर्प इतनी सी हैः "संत चरनरज सिर समाय।"

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
सोलहवां प्रवचन

तुम्हारा अंत परमात्मा का प्रारंभ है

पहला प्रश्नः ओशो, यह खेल तो अनजाने में, हंसी-हंसी में शुरू हुआ। यह
तो खबर न थी कि यह हमें ही ले डूबेगा। आगे अंधेरा, पीछे खाई। आगे कुछ दिखाई नहीं देता और पीछे जाना नामुमकिन लगता है। दिन तो निकल जाता है, यह अंधेरी रात क्यों आती है?

वेदांत भारती! मनुष्य के जीवन मे साधारणतः सभी कुछ अचेतन रूप से शुरू होता है। और तो शुरू होने का कोई उपाय नहीं है। क्योंकि मनुष्य अभी चेतन कहां? अभी तो तुम्हारे जीवन में जो होता है सब संयोगवशात है। प्रेम घट जाता है--संयोगवशात, मित्रता बन जाती है--संयोगवशात। फिर मित्रता में चाहे जीवन भी गंवाना पड़े। प्रेम में चाहे फिर सब कुछ लुटाना पड़े। मगर बात तो होती है संयोगवशात।
एक बड़े यहूदी विचारक अली वेसेल ने अपने पिता के संबंध में लिखा है... मजाक ही मजाक में, लेकिन बड़ी सच्ची बात... लिखा है कि मैं अगर कुछ सांयोगिक घटनाएं न घटी होतीं तो कभी पैदा ही न हुआ होता। जैसे मेरे पिता एक टेन से सफर कर रहे थे, जो कि लेट हो गई। पहुंचना था आठ बजे संध्या, पहुंची एक बजे रात। स्टेशन सुनसान पड़ी, होटल की मालकिन भी बस होटल बंद करने की तैयारी कर रही थी। सर्दी के दिन, वेसिल के पिता ने जाकर कहा कि दुकान बंद करो, इसके पहले कम से कम एक कप काफी तो मुझे दे दो। मैं ठिठुरा जा रहा हूं। महिला को दया आई, उसने एक कप काफी दी। और तो कोई था नहीं, बस मालकिन थी--नौकर जा चुके थे--वह भी दरवाजा लगाने की तैयारी कर रही थी। दोनों बैठ कर बात करने लगे सुख-दुख की, रोजमर्रा की, गपशप। वेसेल के पिता ने कहा, टैक्सी मिल सकेगी मुझे किसी होटल में जाने के लिए? उस महिला ने कहा, अब तो मुश्किल है, टैक्सी भी सब जा चुकीं। और इतने रात कहां खोजते फिरोगे होटलें? होटलें भरी हुई हैं। नगर में कोई सम्मेलन चल रहा है। तुम मेरी ही गाड़ी से क्यों नहीं आ जाते! रात मेरे घर ही टिक जाओ, सुबह होटल खोज लेना।
यह सहज सज्जनोचित निमंत्रण था। पिता ने स्वीकार कर लिया। ऐसे बात बढ़ी! ऐसे बात यहां तक बढ़ी कि दोनों की दोस्ती बनी, प्रेम बना, विवाह हुआ--और अली वेसेल पैदा हुआ। अली वेसेल ने लिखा है कि उस रात अगर ट्रेन लेट न होती तो मेरे पैदा होने की कोई संभावना ही न थी। टेन भी लेट होती, मगर थोड़ी और लेट हो गई होती दस-पंद्रह मिनट, तो भी मेरे पैदा होने की कोई संभावना न थी, क्योंकि वह महिला दुकान बंद करे चली गई होती। टेन भी लेट होती, महिला ने दुकान भी बंद न की होती, लेकिन उजड्ड ढंग की महिल होती और कह देती कि अब नहीं, अब काफी वगैरह मुझसे न हो सकेगी, मैं भी ठंढ में ठिठुरी जा रही हूं। मुझे भी घर आखिर पहुंचना है या नहीं? या निमंत्रण न देती कार में घर आने का। यह सब जरूरी तो नहीं था। यह आवश्यक भी नहीं था, अनिवार्य भी नहीं था। अली वेसेल ने मजाक-मजाक में बड़ी सही बात कही है।
तुम्हारी जिंदगी ऐसे ही संयोगों से भरी है। क्योंकि मनुष्य का जीवन
ही अचेतन है। इस अचेतन जीवन में तुम जागरूकता से कोई कदम नहीं उठा सकते। वेदांत, तुम यहां आए, मेरे प्रेम में पड़ गए! यह सांयोगिक है तुम्हारी तरफ से, मेरी तरफ से नहीं। मैंने तो तुम्हें चुना है। इसलिए तुम्हें भागने भी नहीं दूंगा। कहीं भाग जाओ, दुनिया के किसी कोने में, तुम्हें खींचता ही रहूंगा। लेकिन तुमने मुझे सांयोगिक रूप से चुना है। तुमने तो खेल-खेल में चुन लिया। यहां आए थे, इतने गैरिक वस्त्रों में रंगे हुए लोग देखे--नाचते, मग्न-मस्त--तुमने भी नाचना चाहा, तुम भी मस्त होना चाहे। सोचा कि शायद गैरिक वस्त्र जरूरी हैं। बिना संन्यास के यह कैसे होगा? मन में कहीं यह भी सोचा होगा कि यहां संन्यास ले लूं, वापस घर जाकर कौन देखने आता है! वापिस घर जाकर गैरिक पहनूंगा कि नहीं पहनूंगा, यह देखा जाएगा आगे। यहां आ गया हूं तो यहां तो सम्मिलित हो जाऊं! ऐसे तुम सम्मिलित हुए।

मगर यह खेल खेल नहीं है। यह आखिरी खेल है। इस खेल की जब शुरुआत हो जाती
तो और सब खेल अपने आप फीके पड़ जाते हैं। फिर और सब शतरंजें व्यर्थ हो जातीं। और यह खेल ऐसे ही शुरू हुआ। अब तुम सब छोड़-छोड़कर यहां आ गए हो। बड़ी नौकरी थी, बड़ा पद था, सब छोड़-छोड़ कर आ गए हो। अब तुमने सब दांव पर लगा दिया। तुम्हारा प्रश्न स्वाभाविक है। तुम कहते हो, यह खेल तो अनजाने में, हंसी- हंसी में शुरू हुआ था। तुम्हारी तरफ से, मेरी तरफ से नहीं। मेरी तरफ से तो हंसी भी बहुत गंभीर है। तुम्हारी तरफ से तो गंभीरता भी हंसी ही हंसी है। तुम्हारी तरफ से तो खेल ही शुरू होते हैं। मेरी तरफ से तो यह खेलों का अंत है।
संन्यास का अर्थ हैः सब खेलों के बाहर हो जाना। खेलो से मुक्त हो जाना। खेल चुके बहुत, पाया क्या? उपलब्धि क्या है? कितने तो दौड़े हो जन्मों-जन्मों में, पहुंचे कहां, हाथ क्या लगा? कितनी यात्राएं की हैं, मंजिल इंच भर भी करीब नहीं आई। लेकिन फिर भी लोग उलझे रहते हैं। न उलझे रहें तो क्या करें! उलझे रहते हैं तो कम से कम चिंता का बोझ कम रहता है। उलझे रहते हैं तो कम से कम यह संताप नहीं घेरता कि हम जीवन को व्यर्थ गंवा रहे हैं, कि यह हाथ से छूटा जा रहा जीवन। व्यस्त रहते हैं हजार कामों में। हजार खेल लोगों ने बना रखे हैं। बड़ा मकान बनाना है, बड़ा धन कमाना है, बड़ा पद, बड़ी प्रतिष्ठा! ऐसे उलझे हैं जैसे यहां सदा रहने को हैं। और "सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब बांध चलेगा बंजारा।" और बंजारा किस वक्त चल पड़ेगा, कहना मुश्किल है। आज चल पड़े, कल चल पड़े। और तुम कितनी मेहनत कर रहे हो! जहां तंबू ही बांधने चाहिए वहां तुम पत्थरों के महल बना रहे हो। होशियार आदमी सिर्प तंबू ही बांधता है। महल में भी होता है तो भी जानता है कि तंबू ही है। क्योंकि कब चल पड़ना पड़ेगा, कहना आसान नहीं। एक बात तय है, चल पड़ना पड़ेगा। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। क्या फर्क पड़ता है, आज चले, कल चले, परसों चले। यह सब खेल हैं यहां। बहुत धन छोड़ कर चले कि कम धन छोड़ कर चले!
एक यहूदी मरा।... यहूदी यानी पश्चिम के मारवाड़ी।... सारे रिश्तेदार इकट्ठे हुए। महा कंजूस था। कभी किसी के लिए एक पैसा खर्च नहीं किया था। लोग सोचते थे, खूब जोड़ कर मरा है, अब बंटने का मौका आया। तो सब रिश्तेदार इकट्ठे थे। वसीयत पढ़ी जाए, इसकी जल्दी थी। इधर लाश उठी भी नहीं कि वसीयत पढ़ी गई। वसीहत छोटी ही थी, पोस्टकार्ड के बराबर एक कागज पर उसने बस एक छोटा सा वक्तव्य लिखा था कि मैं स्वस्थ बुद्धि का आदमी था, इसलिए जो भी कमाया, अपने लिए खर्च किया और पीछे कुछ भी नहीं छोड़ जा रहा हूं।
पीछे कुछ भी न छोड़ जाओ तो भी खेल खत्म हो जाता है और पीछे बहुत कुछ छोड़ जाओ तो भी खेल खत्म हो जाता है, और अपने लिए खर्च कर लो कि दूसरे के लिए खर्च कर लो, हर हालत में खेल खत्म हो जाता है। स्मृति भी तो नहीं रह जाती। रेत पर खींची गई रेखाएं हैं हमारे जीवन। या और भी ज्यादा ठीक हो, पानी पर खींची गई लकीरें हैं हमारे जीवन। बनते भी नहीं और मिट जाते हैं। यहां सभी खेल है, वेदांत! सब नाटक है। नाटक को गंभीरता से मत लो।
लेकिन नाटक को लोग बहुत गंभीरता से ले लेते हैं। अति गंभीरता से ले लेते हैं। मरने-मारने को उतारू हैं। लड़ने-झगड़ने को। छोटी-छोटी बातों पर, जिनका कोई भी मूल्य नहीं है। कल तुम्हारे लिए भी मूल्य नहीं रह जाएगा। आज से बीस साल पहले जो बात इतनी महत्वपूर्ण लगती थी तुम्हें कि जान लगा देते उस पर, आज उसका क्या मूल्य है? आज याद भी नहीं आती। और आज तुम्हें जो बात बहुत मूल्यवान लग रही है, बीस साल बाद उसका कोई मूल्य रह जाएगा? वह भी ऐसी ही व्यर्थ हो जाएगी। और मरती घड़ी में जीवन साराका सारा व्यर्थ हो जाएगा। कितने जीवन व्यर्थ हो गए!
नाटक से ज्यादा मत लो जीवन को। यह बोध ही संन्यास है। लेकिन लोग तो नाटक तक को जीवन मान लेते हैं। जीवन को नाटक मानना तो बहुत दूर, नाटक को जीवन मान लेते हैं।
तुम देखोगे सिनेमागृह में लोगों को रोते। कुछ भी नहीं है परदे पर, धूप-छांव का खेल है--चाहे रंगीन धूप-छांव हो--तुम भलीभांति जानते हो परदा खाली है और तुम यह भी जानते हो कि पीछे सिवाय फिल्म के और कुछ भी नहीं है, यहां रोने योग्य कुछ भी नहीं, हंसने योग्य कुछ भी नहीं, लेकिन हंसते भी हो,

रोते भी हो--न-मालूम कितने भावों से गुजर जाते हो। सारे रस तीन घंटे में तुम्हारे भीतर पैदा हो जाते हैं। कभी क्रुद्ध हो जाते हो, कभी प्रेम से भर जाते हो। नाटक को भी इतना मान लेते हो।
एक आदमी ने एक वर्ष तक लगातार, लिंकन की शताब्दी मनाई जा रही थी तो लिंकन का पार्ट अदा किया। वह लिंकन जैसा दिखाई पड़ता था। बड़ी खोजबीन से अमरीका में उसको पाया गया। लिंकन के कपड़े पहनाए, लिंकन जैसी छड़ी टेकता, लिंकन थोड़ा सा लंगड़ाता था तो वह भी लंगड़ाता और लिंकन थोड़ा हकलाता था तो वह भी हकलाता। नाटक पूरा उसने किया। और साल भर चलता रहा। एक गांव से दूसरे गांव, दूसरे से तीसरे गांव। साल भर में ऐसा अयास हो गया कि वह घर में भी लंगड़ाता और घर में भी हकलाता। उसके पत्नी-बच्चों ने कहा भी कि तुम नाटक करो, यह तो ठीक है, मगर नाटक में ही नाटक करो, यह घर में तुम क्यों हकलाते हो? उसने कहाः अयास! बिना हकलाए अब मुझसे बोला नहीं जाता।
साल भर निरंतर यह नाटक करने के बाद बड़ी मुश्किल खड़ी हुई। नाटक तो खतम
हो गया, शताब्दी समारोह समाप्त हो गया, मगर वह आदमी जो था, लिंकन के कपड़े पहने हुए, जो कि अब बिल्कुल बेहूदे लगते--पुराने जमाने के कपड़े पहन कर चला आ रहा।... जैसे कोई कृष्णकन्हैया बन कर खड़े हो जाएं बाजार में, तो पिटाई हो जाए। हालांकि काम वे कुछ बुरा नहीं कर रहे हैं, मोरमुकुट बांधे हुए खड़े हैं, बांसुरी बजा रहे हैं। गऊमाता को भी बगल में खड़ा रखें तो भी कुछ नहीं हो सकता! फौरन पुलिस पकड़ेगी कि तुम टेफिक में बाधा डाल रहे हो, चलो थाने! वह लाख कहें कि हम कृष्णकन्हैया हैं, लोग कहेंगे, तुम चुप रहो, बकवास न करो! तुम पहले थाने चलो! अब कहां के कृष्णकन्हैया? अब कैसा मोरमुकुट? ... लोग मजाक उड़ाते उसकी, मगर वह मुस्कुराता। घर के लोगों ने कहाः अब यह वेशभूषा छोड़ो। उसने कहा कि वेशभूषा, मैं अब्राहम लिंकन हूं! साल भर के अयास से उसको ऐसा पक्का भरोसा आ गया कि मैं अब्राहम लिंकन हूं कि वह छोड़े ही नहीं यह आदत। चिकित्सा करवाई गई, मनोवैज्ञानिकों के पास ले जाया गया, लाख उपाय किए कि किसी तरह उसको उतारा जा सके इस भ्रांति से, मगर वह भी उतरने वाला नहीं था।
आखिर एक मनोवैज्ञानिक ने कहा कि अब एक ही उपाय है। यह बात बड़ी गहरी उतर गई है, मालूम होता है। यंत्र से परीक्षा करनी होगी कि कितनी गहरी उतर गई है? ... अमरीका में अभी एक यंत्र बना है, जो वहां की अदालतों में उपयोग में लाया जाता है झूठ को पकड़ने के लिए। अपराधी को पता नहीं होता, वह यंत्र के ऊपर खड़ा होता है--जैसे कार्डियोग्राम होता है और तुम्हारे हृदय की धड़कन को अंकित करता है ऐसे ही वह यंत्र के नीचे तुम्हारे हृदय की धड़कन को अंकित करता है, जब तक तुम सच बोलते हो तब तक उसमें एक लयबद्धता होती है अंकन में। जैसे ही तुम झूठ बोलते हो, झटका खा जाती है। तुम्हारा हृदय झटका खाता है न झूठ बोलने में! तो पहले ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं जिनमें तुम झूठ बोल ही नहीं सकते। जैसे, घड़ी में देख कर बताओ कि इस समय कितने बजे हैं? अब इसमें क्या झूठ बोलोगे? बोलने की कोई जरूरत भी नहीं है, सच बोलोगे। जैसे, गिन कर बताओ अदालत में कितने लोग मौजूद हैं? क्या झूठ बोलोगे! गिन कर बता दोगे इतने लोग मौजूद हैं। जैसे पूछा जाए कि यह आदमी स्त्री है या पुरुष? तो क्या झूठ बोलोगे! दरवाजा पूरब की तरफ है कि पश्चिम की तरफ? क्या झूठ बोलोगे!! दिन है कि रात? क्या झूठ बोलोगे! ऐसे दस-पंद्रह प्रश्न, जिनमें तुम्हें सच बोलना ही पड़ेगा--और नीचे अंकन हो रहा है तुम्हारे हृदय की गति का। और फिर तुमसे पूछा जाता हैः चोरी की? एक धक्का लगता है हृदय में। वह धक्का अंकित हो जाता है। ऊपर से तो तुम कहते जाः नहीं की, लेकिन भीतर तो हृदय जानता है कि की, इसलिए एक दुविधा पैदा हो जाती है। वह दुविधा कंपा देती है यंत्र को। फौरन पकड़ लिए जाते हो कि तुम झूठ बोल रहे हो।
इस आदमी को उस यंत्र पर खड़ा किया गया। यह आदमी भी थक गया था।... खूब जगह-जगह इसको समझा रहे थे लोग कि तुम अब्राहम लिंकन नहीं हो, भाई! तुम मानोगे कि नहीं मानोगे? अब्राहम लिंकन को गोली मारी गई, क्या तुम को भी जब तक गोली न मारी जाएगी तब तक तुम शांत नहीं होओगे? गोली खा कर ही रहोगे! सब तरह समझा कर हार गए थे, मगर वह मानता ही नहीं था।... यंत्र पर खड़ा किया गया। यह सोच कर कि यह झंझट खत्म करो, एकबारगी खत्म करो, जब उससे पूछा गया कि क्या

तुम अब्राहम लिंकन हो, उसने कहा कि नहीं, बिल्कुल नहीं! लेकिन यंत्र ने कहा कि यह आदमी झूठ बोल रहा है। इतनी बात गहरी उतर गई, इतना तादात्म्य हो गया कि वह कह रहा है ऊपर से कि नहीं, मैं अब्राहम लिंकन नहीं हूं, लेकिन भीतर तो वह यह जानता ही है कि मैं हूं। अरे, मेरे कहने से क्या होता है! मैं लाख कहूं, मगर जो हूं सो हूं!
लोग नाटक में भी तादात्म्य कर लेते हैं। और संन्यास का अर्थ हैः जीवन में भी तादात्म्य तोड़ लेना। मूढ़ता का अर्थ हैः नाटक को भी जीवन मान लेना और ज्ञान का अर्थ हैः जीवन को भी नाटक मान लेना। यह अंतिम खेल है। और यह खेल सजग होकर खेला जाना है; तो ही अंतिम होगा। जैसे ही तुम जाग कर खेले कि खेल समाप्त हुए। खेल तो नींद में ही चल सकते हैं। खेल तो सपने हैं। वेदांत, तुम कहते होः यह खेल तो अनजाने में, हंसी-हंसी में शुरू हुआ था। मुझे पता है। अनजाने में ही शुरू होता है। हंसी-हंसी में ही शुरू होता है। तुम जब पहली दफा मेरे पास आए थे, तो तुमने सोचा भी नहीं था कि तुम संन्यासी होने आए हो। लेकिन मैंने देखा, तुम में झांका और पाया कि एक संभावित संन्यासी मौजूद है। फिर मैंने तुम्हें फुसलाया और गले में माला डाल दी। तुम थोड़े चौंके भी थे, तुम थोड़े झिझके भी थे, तुम्हें याद भी आई थी कि पत्नी लौट कर क्या कहेगी? तुमने कहा भी था कि मेरी पत्नी है, बच्चे हैं। मैंने कहाः तुम फिकर न करो, उनको भी ले आना! अब तुम उनको भी ले आए हो। उनको भी मैंने खेल-खेल में रंग लिया है। शुरू में तो यह खेल-खेल में ही होगा। क्योंकि तुम खेल ही जानते हो और तो कोई भाषा तुम जानते नहीं। दूसरी तो कोई भाषा तुम्हारी समझ में भी न आएगी। इसीलिए मैंने संन्यास को इतना सरल बनाया है, इसी दृष्टि से कि खेल-खेल में भी अगर रंग गए तो यह रंग उतारना आसान न होगा। खेल-खेल में भी जग गए, तो फिर सोना मुश्किल हो जाएगा। खेल-खेल में भी अगर समझ गए, तो समझ से वापस लौटने का कोई उपाय नहीं है।
समझो! यह भी खेल है, मगर आखिरी। क्योंकि इस खेल के द्वारा सारे खेलों
का अंत हो जाता है।
तुम कहते हो, यह तो खबर ही न थी कि यह हमें ले डूबेगा। यह तुम्हें खबर होती तो तुम भाग न खड़े होते! यह तुम्हें खबर होती तो तुम मेरे पास ही न आते। यह तो खबर होने ही नहीं देनी पड़ती। यही तो इस धंधे का राज है। बताना पड़ता हैः मोक्ष पाओगे, निर्वाण पाओगे, सच्चिदानंद पाओगे--पाने ही पाने की बात करनी पड़ती है--और असलियत यह है कि खोना ही खोना है। मगर वह तो पीछे, जब लौटने का कोई उपाय नहीं रह जाता। जब पीछे के सब सेतु टूट जाते हैं, जाना भी चाहो तो कहीं जा नहीं सकते--अब लाख सिर धुनो। लेकिन वह जो कहा जाता हैः सच्चिदानंद मिलेगा, वह भी मिलता है। मगर तुम मिटो तो ही मिलता है। मिटना उसे पाने की शर्त है। तुम शून्य हो जाओ तो पूर्ण अभी तुम में अवतरित हो जाए। लेकिन तुम्हारे बिना शून्य हुए पूर्ण अवतरित नहीं हो सकता। जगह नहीं है, तुम्हारे भीतर अवकाश नहीं है, स्थान नहीं है। तुम चाहोगे कि परमात्मा मिल जाए, मगर तुम जब तक हो, परमात्मा नहीं मिल सकता।
कबीर कहते हैं--हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ। चले तो थे खोजने, चले तो थे परमात्मा को पाने, मगर हुआ कुछ उल्टा ही--हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हेराइ, कबीर ही गुम गए! पाना तो दूर रहा परमात्मा को, खुद खो गए। ब्याज की तो फिकर ही छोड़ो, मूलधन भी गया। और ऐसे हिराए कि कबीर ने लिखा हैः जैसे बूंद सागर में हिरा जाए! "बुंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाइ।" और ऐसे हिरा गए कि कबीर ने यह भी लिखा है--समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाइ। बूंद समुंद में समा गई, समुंद बूंद में समा गया, अब तो कोई उपाय निकालने का रहा नहीं। लेकिन जब से कबीर खो गए, जब से कबीर न रहे, तभी से परमात्मा शुरू हुआ। तुम्हारा अंत परमात्मा का प्रारंभ है।
तो कबीर ने यह भी कहा है कि जब मैं खो गया, तब से एक अनूठी घटना घट रही हैः पाछे लागे हरि फिरत, कहत कबीर कबीर। पाछे लागे हरि फिरत! पीछे-पीछे लगे फिरते हैं हरि। कहते हैं, कबीर कहां जा रहे, क्या कर रहे? और कबीर अब है ही नहीं, इसलिए कौन दे उत्तर! जब कबीर थे, तो परमात्मा नहीं था, अब परमात्मा है, तो कबीर नहीं हैं। "प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समायं।" या तो तुम, या परमात्मा।

तो वेदांत, डूबना तो होगा! हालांकि पहले मैं कह नहीं सकता तुमसे कि डूबना होगा। तुम से कहूं डूबना होगा कि फिर तो तुम भाग खड़े होओगे! कौन मिटना चाहता है? पाना सभी चाहते हैं, मिटना कोई भी नहीं चाहता।
इसलिए सद्गुरु की सारी व्यवस्था यह है कि वह तुम से बातें करता है पाने की और नीचे से तुम्हारे पैर की जमीन को खींचता चला जाता है। इधर तुम बातों में उलझे रहते हो कि अब सच्चिदानंद मिला; कि बस अब ज्यादा देर नहीं है, झरत दसहुं दिस मोती! तुम ऊपर देखते रहते हो कि मोती कहां गिर रहे हैं, इधर नीचे से जमीन खींच ली गई। मोती-वोती तो गिरते नहीं, तुम चारों खाने चित! मगर फिर मोती गिरते हैं। --जब तुम चारों खाने चित पड़े हो, उठने का भी उपाय नहीं रह जाता। पहले तो चौंकोगे कि यह क्या हुआ! तुम देख रहे थे आकाश की तरफ कि अब उतरा परमात्मा; कि अब आता ही है पुष्पकविमान, कि लेकर रामचंद्र जी को--धनुर्धारी राम, सीता मैया, लक्ष्मण जी, हनुमान जी बैठे हैं; बस, अब देर नहीं है; तुम लटके रहते हो ऊपर की तरफ, तुम अटके रहते हो ऊपर की तरफ और तुम्हें पता नहीं कि नीचे तुम्हारी जड़ें काटी जा रही हैं। जरूरी है कि तुम्हें ऊपर की तरफ अटका दिया जाए, नहीं तो तुम जड़ें नहीं काटने दोगे।
कबीर ने कहा है, जैसे कुम्हार घड़े को बनाता है तो एक हाथ से भीतर सहारा देता है और दूसरे हाथ से बाहर से चोट मारता है, तब घड़ा बनता है। दोहरी प्रक्रिया है। एक हाथ से सम्हालता है, एक हाथ से चोट मारता है। अगर सिर्प सम्हाले-सम्हाले, तो घड़ा न बने। अगर चोट ही चोट मारे, तो भी घड़ा न बने। तो तुम्हें सम्हालना भी है और तुम्हें चोट भी मारनी है। तुम्हें बचाना भी है और तुम्हें मिटाना भी है। सदगुरु एक बड़े विरोधाभासी कृत्य में लीन होता है। एक तरफ से तुम्हें मिटा चलता है और एक तरफ से तुम्हें बना चलता है। हालांकि जैसे तुम हो वैसे तो तुम नहीं बच सकते। तुम तो अभी गलत ही गलत हो। तुम तो अभी ठीक भी करते हो तो गलत होता है। तुममें अभी ठीक का फूल लग ही नहीं सकता, क्योंकि तुम्हारे भीतर अभी ठीक चैतन्य नहीं है, सम्यक बोध नहीं है। तो तुम जो भी करोगे, गलत होगा। अच्छा भी करने जाओगे, बुरा हो जाएगा। नेकी करोगे, बदी हो जाएगी।
यही तो हो रहा है। प्रत्येक व्यक्ति अच्छा करना चाहता है, बुरे से बुरा व्यक्ति भी अच्छा करने के लिए लालायित होता है, लेकिन अच्छा हो कहां पाता है! इस दुनिया में बुरा ही बुरा हो रहा है। उसका बुनियादी कारण यह नहीं है कि लोगों के अभिप्राय बुरे हैं। लोगों के अभिप्राय तो बड़े भले हैं, लेकिन जिस चेतना से कृत्यों का जन्म होता है, वह चेतना प्रसुप्त है, सोई हुई है। नींद में उनसे क्या भला होगा! लोग नींद में अगर रक्षा के लिए तलवारें भी चलाएं तो अपनों को ही मार डालेंगे, खुद को ही काट लेंगे। होश पहली जरूरत है।
तुम अभी जैसे हो, ऐसे तो नहीं बच सकोगे। यह बात आज तुमसे साफ कह देनी जरूरी है। जैसे तुम हो, ऐसे तो तुम मिटोगे, डूबोगे। लेकिन फिर तुम्हें जैसे होना चाहिए, वह तुम्हारा रूप प्रकट होगा। वही तुम्हारा सहज रूप है। वही तुम्हारा सम्यक रूप है। वही तुम्हारा असली जन्म है।
तुम कहते होः "आगे अंधेरा, पीछे खाई।"
सच है। आगे देखोगे तो अंधेरा है, क्योंकि भविष्य अभी है ही नहीं। भविष्य तो अभी हुआ नहीं है, इसलिए वहां तो अंधकार है। और पीछे देखोगे तो खाई, क्योंकि अतीत न हो चुका। जो न हो चुका, अब वहां गड्ढे ही गड्ढे हैं। अब वहां क्या है! लेकिन वेदांत, मध्य में कब देखोगे? तुम आगे-पीछे की तो बात किए, मध्य को छोड़ ही गए! कहते हो, आगे अंधेरा, पीछे खाई। मैं कहता हूंः मध्य में देखो! आगे देखते रहे बहुत दिन--वासनाओं में, कामनाओं में, इच्छाओं में आगे ही आगे देखते रहे। दौड़ाते रहे घोड़े, मनसूबे। आगे देखने वाले सब शेखचिल्ली हैं।
तुम्हें शेखचिल्ली की कहानी तो याद है न! वह एक खेत में घुस गया, चोरी करने। चुरा रहा था फल, भर रहा था अपनी झोली में। झोली जब भरने लगी तो मन ने छलांगें लेनी शुरू कर दीं। जब झोली भरती है तो यह सभी को होता है, मन छलांगें लंना शुरू करता है। भरती नहीं तभी से छलांगें लेना शुरू करता है।

अभी लाटरी का टिकट नंबर खरीदा कि तुम सोचने लगते हो कि अगर मिल जाए तो क्या-क्या करूंगा? कौन सी कार खरीदनी, कौन सा मकान खरीदना, किस स्त्री के साथ विवाह करना? कि फिर इधर नहीं रहना, फिर तो बंबई रहना है! कि फिर तो किसी फिल्मी अभिनेत्री से ही विवाह कर लेना है। फिर क्या साधारण स्त्रियों के पीछे समय गंवाना! अरे, चार दिन की जिंदगी है, खाओ, पिओ, मौज करो! ... अभी लाटरी वगैरह मिली नहीं है, अभी सिर्प टिकट खरीदी है! मगर लाखों के मनसूबे बनने शुरू हो जाते हैं।
तो शेखचिल्ली पर हंसना मत, वह तुम्हारी तसवीर है। वह तुम्हारा ही प्रतीक है।
झोली भर गई थी उसकी तो, तो उसने सोचा कि अब गजब हो जाएगा! जाकर बेचूंगा
आज फल और अब तो एक मुर्गी खरीद लूंगा। मुर्गी अंडे देगी रोज, अंडों की बिक्री, ज्यादा दिन न समझो कि गाय खरीद लूंगा। फिर गाय का दूध, बछड़े... और बिक्री होती जाती है! फिर भैंस। फिर बिक्री बढ़ती जाती है, धन पास आता जाता है। एक न एक दिन इसी तरह का खेत खरीदूंगा, ऐसे ही फल बोऊंगा। और तभी उसे ख्याल आया इस तरह का खेत, इस तरह के फल, मेरे तरह के लोग चोरी करने घुस जाते हैं। मैं तो अनुभवी हूं, कभी चोरी नहीं होने दूंगा। ऐसे बीच में खेत में बैठा रहूंगा और पुकार देता रहूंगाः "सावधान!!" जोर से निकल गयाः सावधान, तो वह जो किसान था मालिक, वह लट्ठ लेकर आ गया। उसने कहा कि बच्चू, क्या कर रहे हो? रखो सब! यह झोली कैसे भरी? और सावधान किसको किसको कर रहे थे? उसने सिर ठोक लिया। उसने कहा, सब बरबाद हो गया। सब अंधकार हो गया आगे।
आगे अंधकार है ही। भविष्य के अंधकार को तुम अपनी कल्पनाओं के चिरागों
से रोशन किए रहते हो। मगर कल्पनाएं कल्पनाएं हैं, उनमें सत्य कुछ भी नहीं। जब तुम मेरे पास आओगे तो धीरे-धीरे तुम्हारी कल्पनाएं क्षीण होने लगेंगी-- और भविष्य अंधकारपूर्ण दिखाई पड़ने लगेगा। भविष्य में कुछ भी नहीं है। भविष्य यानी वह, जो है ही नहीं।
और अतीत? कुछ लोग अतीत में भटते हुए हैं। वे अतीत के ही हिसाब लगाते रहते हैं। जो बीत गए कल, उनके ही सपने देखते रहते हैं। उनका स्वर्णयुग पीछे था। बुढ़ापे में वे बचपन के गीत गाते हैं, कि बचपन के दिन स्वर्गीय दिन थे। और जब वे बच्चे थे, तब वे जल्दी से बड़े हो जाना चाहते थे! किसी भी बच्चे से पूछ लो, वह जल्दी-जल्दी बड़ा होना चाहता है। क्योंकि वह देखता है--बड़ों के पास ताकत है। बच्चों के पास क्या है बेचारों के। हर कोई दबा दे। हर कोई कह दे, बैठो इस कोने में! हर कोई कान पकड़ लेता है! हर कोई उठक-बैठक लगवा देता है! हर कोई कह देता है, पाठ पढ़ो, होमवर्क करो! जिसकी जो मर्जी! अपनी कोई ताकत नहीं। बच्चे को बहुत पीड़ा होती है।
तुम सोचते हो कि बच्चे स्वर्ग में हैं, गलती में हो। घर में सताए जाते हैं, स्कूल जाते हैं तो शिक्षक सताता है; और घर और स्कूल के बीच में जो बड़े लड़के हैं... दादा! ... वे सताते हैं। पैसा छीन लें, किताबें छीन लें; कहते हैं, घर से चोरी करके लाओ; आइस्क्रीम खिलवाओ; कि सिनेमा का टिकट चाहिए; और नहीं दोगे तो पिटाई! तुम सोचते हो, बच्चे स्वर्ग में हैं? बच्चों से तो पूछो! कि उनकी जान आफत में है! दिन निकलो तो ये दादा लोग मिल जाते हैं, रात निकल नहीं सकते घर से--भूत-प्रेत!
एक घर में मैं ठहरा था। दस साल का बच्चा, आंगन को पार करके संडास तक न जाए! तो उसकी मां को लालटेन लेकर उसके साथ जाना पड़े। उसकी मां ने कहा, आप इसको समझाइए! यह दस साल का हो गया, ऐसा डरपोक कि संडास में नहीं जा सकता, लालटेन लेकर मुझे आना पड़ता है! दरवाजा भी बंद नहीं करता, दरवाजा खुला रखता है और लालटेन लेकर मुझे वहां खड़ा रहना पड़ता है। मैंने उससे पूछा कि क्या मामला है? तू इतना क्यों घबड़ाता है? अगर तुझे अंधेरे में डर लगता है तो लालटेन खुद ही ले गए, ये मां को क्यों सताता है? दरवाजा बंद कर लिया, लालटेन भीतर रख ली! उसने कहाः वाह, इससे तो मैं अंधेरे में ही चला जाऊंगा! मैंने कहाः तुझे अंधेरे में डर लगता है न! उसने कहाः मुझे डर अंधेरे में लगता है, मगर अंधेरे में कम से कम मैं भूत-प्रेतों को धोखा देकर बच तो सकता हूं। लालटेन में तो साफ दिखाई पडूंगा कि ये बैठे हैं! और दरवाजा बंद कभी नहीं कर सकता! अरे, एकदम कोई पकड़ ले तो निकल कर भाग तो सकता हूं! और दरवाजा

बंद, और सिटकनी है कड़ी, और कभी न खुली, और कहीं भूत सिटकनी से ही पीठ टेक कर खड़ा हो गया, तो मारे गए! आप भी खूब बातें कर रहे हैं!!
दिन भय हैं, रात भय हैं--और बच्चों का जीवन तुम स्वर्ग समझ रहे हो! सब तरह से सताए जाते हैं बच्चे। बचपन में कोई नहीं जानता कि यह स्वर्ग है। यह तो बुढ़ापे में लौट-लौट कर पीछे लोग सोचने लगते हैं कि अहह, कैसे सुंदर दिन थे! यह मन को समझना है।
यही बात बड़े पैमाने पर समाजों में घटती है। तो समाज कहते हैं कि बीत
गए स्वर्ण-युग, सतयुग, अब तो कलयुग है! रामराज्य पहले था! कब था रामराज्य? राम के जमाने में भी था! यह किस तरह का रामराज्य था कि राम का खुद का जीवन बिचारों का कष्ट में बीता--औरों की तो छोड़ो! औरों की क्या गुजरी, यह तो कुछ बात ही करनी व्यर्थ है! जरा, राम की हालत तो देखो! और धोखा दें तो दें, बाप ही धोखा दे गया! और बाप ने भी किस की मान कर धोखा दे दिया! बुढ़ापे में विवाह कर लिया था एक स्त्री से, नवयुवती से, ... तो अक्सर बूढ़े पतियों की जो हालत हो जाती है! बूढ़े पति एक लिहाज से बड़े अच्छे पति होते हैं। नवयौवन पत्नियों की खूब मान कर चलते हैं, जो कहें, वैसा ही मानते हैं। एकदम गुलाम होते हैं। बिल्कुल चिड़ी के गुलाम। ये दशरथ जी बिल्कुल चिड़ी के गुलाम! राम जैसे बेटे को चौदह साल के लिए जंगल भेज दिया! कामलोलुप रहे होंगे! जरा भी हिम्मत न रही होगी। जैसे रीढ़ है ही नहीं। बिना रीढ़ के आदमी मालूम होते हैं।
और राम की जिंदगी में क्या सुख है? चौदह साल फिरे परेशान होते हुए। फिर रावण से युद्ध। पत्नी से हाथ धो बैठे। खूब रामराज्य! फिर किसी तरह पत्नी को लेकर भी आ गए, तो किसी धोबी ने शंका उठा दी! तो फिर पत्नी को छोड़ दिया। गर्भवती स्त्री को जंगल में छुड़वा दिया। यह ख़ाक रामराज्य था! राम का व्यवहार भी प्रीतिपूर्ण नहीं है, करुणापूर्ण नहीं है। और सीता को जब लाए रावण के यहां से, तो अग्नि-परीक्षा! आग में से गुजारा। खुद भी गुजरना था साथ में! क्योंकि सीता अगर इतने दिन दूर रही थी, तो ये भइया भी तो इतने दिन अकेले रहे थे! और संगसाथ इनका कुछ अच्छा नहीं था। अंदर-अंदर, न मालूम कौन-कौन! इन्होंने क्या किया, क्या नहीं किया! तो खुद तो गुजरे नहीं, सीता को गुजार दिया। ये पुरुषों के ढंग सदा से रहे हैं। पुरुष तो पुरुष है, इसको कोई परीक्षा वगैरह देने की जरूरत ही नहीं, वह तो पहले से ही उत्तीर्ण है। वह तो सच्चरित्र होता ही है। दुष्चरित्र होती हैं तो स्त्रियां। पुरुष ही शास्त्र लिखते हैं, उनमें लिखते हैं, स्त्रियां नरक का द्वार हैं। और पुरुष? ये स्वर्ग के द्वार हैं?
राम के जमाने में गुलाम बिकते थे बाजारों में। स्त्रियां बिकती थीं, पुरुष बिकते थे। यह भी कोई रामराज्य था! दीन-दरिद्र थे, परेशान लोग थे, पीड़ित लोग थे, नहीं तो कोई अपनी लड़कियों को बेचेगा! कोई अपने बेटों को बेचेगा बाजारों में जानवरों की तरह! इनकी नीलामी होगी। कम से कम कलयुग में इतना तो नहीं हो रहा है। यह सतयुग था! ये सिर्फ कल्पनाएं हैं हमारी। अतीत को सुंदर बना कर हम अपने मन को भुलाते हैं कि कोई फिकर नहीं, अगर आज दुख है तो कोई अड़चन नहीं, पीछे सब सुख था। आज का थोड़ा सा दुख झेल लो, पीछे तो सुख ही सुख झेला है। हम उस सुख को खूब बढ़ा-चढ़ा कर खड़ा करते हैं। जितना रंग-रोगन उस पर कर सकते हैं, करते हैं। जितने ऊंचे मीनारें बना सकते हैं बनाते हैं। ताकि आज का दुख छोटा मालूम पड़े। बड़ी लकीर खींच देते हैं सुख की, ताकि आज की लकीर बिल्कुल छोटी हो जाए।
और भविष्य की कल्पना करते हैंः स्वर्ण-युग आएगा। फिर उतरेंगे परमात्मा, अवतरित होंगे। फिर धर्म का राज्य स्थापित होगा। "यदा यदा ही धर्मस्य"... जब-जब धर्म की हानि होगी तब-तब परमात्मा का आगमन होगा। तो भविष्य की आशा और अतीत की कल्पना, इन दोनों के बीच आदमी जीता है--सिर्प एक बात को भुलाने के लिए कि वर्तमान, जो यथार्थ है, उसको मैं कैसे बदलूं, यह नहीं जानता। उसको कैसे जीऊं, इसकी कला नहीं आती।
तो तुम कहते हो, वेदांत, आगे अंधेरा, पीछे खाई। मध्य का क्या? और मध्य
ही सत्य है। वह जो वर्तमान का क्षण है, अभी, यहीं, इसके अतिरिक्त और कोई

सत्य नहीं है। उसमें होना ही ध्यान है। और उसमें समग्ररूपेण लीन हो जाना समाधि है।
वर्तमान में जीने के विज्ञान को ही मैं संन्यास कहता हूं। छोड़ो अतीत, छोड़ो भविष्य। न जाना है पीछे, न जाना है आगे, जाना है गहरे, वर्तमान की गहराइयों को छूना है। अथाह है वर्तमान। और वर्तमान ही द्वार है परमात्मा का। क्योंकि वर्तमान ही एकमात्र यथार्थ है। और यथार्थ ही केवल परमात्मा से मिला सकता है, कल्पनाओं के जाल नहीं।
तुम कहते हो, आगे कुछ दिखाई नहीं देता और पीछे जाना नामुमकिन लगता है। तुमसे कहता कौन, वेदांत, कि आगे देखो? यहीं देखो, अभी देखो। भीतर देखो। आगे देख रहे! पीछे देख रहे! और मैं रोज तुमसे चिल्ला-चिल्ला कर कह रहा हूंः भीतर देखो! वह तो तुम्हारे प्रश्न में आती ही नहीं बात। तुम मुझे सुनते हो, लेकिन प्रश्न तो तुम्हारे तुम्हारे ही होते हैं। मैं लाख कहूं भीतर देखो, वह तुम्हारा प्रश्न नहीं बनता। अभी भी तुम कह रहे हो कि आगे कुछ दिखाई नहीं देता। आगे कुछ है ही नहीं, दिखाई देगा क्या? पीछे जाना नामुमकिन लगता है। कोई कभी जा सका है? या कि तुम जा सकते हो? पीछे कोई कैसे जा सकता है! एक बाप अपने बेटे को पढ़ा रहा था इतिहास की किताब कि नेपोलियन ने कहा
है कि संसार में कुछ भी असंभव नहीं। बेटे ने कहाः ठहरो! एक चीज है जो असंभव है। बाप ने कहाः वह कौन सी चीज है? उसने कहाः मैं अभी लाया। वह गया भागा, बाथरूम में से बिनाका टूथपेस्ट ले आया! बाप ने कहाः तू पागल हो गया है, बिनाका टूथपेस्ट से इसका क्या संबंध? उसने कहाः तुम ठहरो तो! उसने दबा दिया टयूब को और निकाल दिया टूथपेस्ट बाहर और कहाः अब इसको भीतर करो, तब मैं समझूं कि संसार में कुछ भी असंभव नहीं है। यह मैं कई दफा करके देख चुका, यह भीतर होता ही नहीं फिर। अब बाप भी सिर खुजलाने लगा, उसने कहा कि यह... ।
कोई कभी पीछे जा सका है! असंभव है। प्रकृति के नियम के प्रतिकूल है।
जो बीत गया सो बीत गया। अब वहां जाने का कोई उपाय नहीं है। बूढ़ा जवान नहीं हो सकता। जवान बच्चा नहीं हो सकता। कोई मार्ग नहीं! मगर हम इन्हीं कल्पनाओं में खोए रहते हैं कि शायद किसी तरकीब से हम फिर वापस लौट जाएं। बूढ़ा सोचता है, फिर जवान हो जाएं। फिर से जवानी आ जाए। कितने उपाय नहीं करते बूढ़े! कम से कम न हो सकें तो दिखाई तो पड़ें। नये दांत लगवा लेते हैं। खुद तो जानते हैं कि इन दांतों से कुछ जवानी नहीं आ जाएगी। बाल खत्म हो जाते हैं तो विग पहन लेते हैं। खुद तो जानते हैं भीतर कि इनसे कुछ बाल नहीं ऊग आएंगे। मगर औरों को तो धोखा हो जाएगा। बूढ़े भी क्या-क्या कोशिश करते हैं! --जवान तो हो नहीं सकते, मगर जवान दिखाने की कोशिश में हैं। सिर्प भद्दे और बेहूदे मालूम होते हैं। बेढब मालूम होते हैं। इतना ही बताते हैं कि इनको बूढ़े होने की भी प्रसादपूर्ण कला नहीं आती। ये सब उपाय करते रहते हैं जवान होने के। दुनिया भर में लोग इनको चूसते रहते हैं।... "हकीम बीरूमल" इत्यादि-इत्यादि! वे एकांत में बूढ़ों को जवान होने का नुस्खा बताते रहते हैं--एकांत में ही बता सकते हैं। हकीम बीरूमल से सावधान रहना! एक तो सिंधी और दूसरे बड़ा खतरनाक दावा कर रहे हैं कि जवान को बच्चा कर दें, बूढ़े को जवान कर दें। मगर एकांत में तरकीबें बताई जाती हैं!
तरकीबें कुछ नहीं हैं, बूढ़े बूढ़े रहते हैं, लेकिन तुम किससे कहोगे कि
हम हकीम बीरूमल के पास गए थे। लोग मिलने भी जाते हैं तो छिपकर जाते हैं कि कोई दूसरा देख न ले कि कहां जा रहे। किसी को पता चल जाए, हकीम बीरूमल के पास गए थे, तो भद्द हो जाएगी! समाज में खबर फैल जाएगी कि ये सज्जन हकीम बीरूमल के पास जाने लगे। मतलब खात्मा बिल्कुल हो चुका इनका! अब कुछ नहीं बचा। बिल्कुल फोपट हैं। मगर हकीम बीरूमल का धंधा चलता है! और कई हकीम बीरूमलों का चलता है! और सिर्प इसलिए चलता कि तुम्हारी भ्रांतियां, कि पीछे लौटा जा सकता है। और यह व्यक्ति के तल पर, समाज के तल पर भी यही।
महात्मा गांधी की कोशिश क्या थी? यही कि पीछे लौट चलो। छोड़ो यंत्रों को, चरखा पकड़ो। चरखे से सब हल हो जाएगा। विक्षिप्तता की बातें! लौट चलो पीछे, छोड़ दो यंत्र! महात्मा गांधी रेलगाड़ी के खिलाफ थे; टेलीफोन, पोस्ट आफिस जैसी जरूरी चीजों के खिलाफ थे। हर तरह की मशीन के खिलाफ थे। अगर

महात्मा गांधी की बात मान ली जाए तो यह सत्तर करोड़ का मुल्क अभी सड़ जाए, अभी मर जाए। दो करोड़ आदमी जी सकते हैं उनकी बात मान कर, अड़सठ करोड़ आदमियों को मरना पड़ेगा, क्योंकि दो करोड़ के लिए उस तरह की अर्थव्यवस्था काफी थी। मगर सत्तर करोड़ के लिए उस तरह की अर्थव्यवस्था काफी नहीं है। इतने आदमियों को कपड़े ही नहीं दे सकते तुम चरखा कात-कात कर। और अगर कपड़े दे दोगे चरखा कात कात कर, तो इतना चरखा कातना पड़ेगा कि फिर और कुछ न दे पाओगे--भोजन इत्यादि, वह नहीं दे पाओगे। और इनको भोजन भी चाहिए, दवा भी चाहिए, मकान भी चाहिए और हजार चीजें चाहिए। वे सब कहां से लाओगे?
लेकिन गांधी ने उन सब के लिए तरकीबें निकाल रखी थीं। दवा की क्या जरूरत है? पेट पर मिट्टी की पट्टी बांध लो, हर बीमारी ठीक हो जाती है। दुनिया का सारा चिकित्सा-शास्त्र पागल है जैसे। पेट पर पट्टी बांध लो, मिट्टी की, सब ठीक हो जाएगा। काश, इतना आसान होता! और मजा यह है कि जब महात्मा गांधी बीमार पड़ते हैं तो अखिर में वही दवा लेनी पड़ती है। जिसका जीवनभर विरोध किया। विनोबा भावे को बुखार चढ़ता है, अखिर में वही दवा लेनी पड़ती है। हालांकि पहले थोड़ा उपद्रव मचाते हैं कि नहीं लेंगे, फिर प्रधानमंत्री को प्रार्थना करनी पड़ती है, फिर लेते हैं! बचते दवा से हैं और बच कर फिर दवा की खिलाफत करते हैं!
महात्मा गांधी रेलगाड़ी के विरोध में और जिंदगी भर रेलगाड़ी में सवार।
अब इसको पाखंड नहीं कहोगे तो और क्या कहोगे? पोस्टआफिस के खिलाफ, और जितनी चिट्ठी-पत्री उन्होंने की, शायद ही किसी ने की हो! चिट्ठी-पत्री इतनी कि वे पाखाने में भी बिना चिट्ठी-पत्री के नहीं बैठ सकते थे। वे पाखाने के भीतर बैठे हैं और बाहर से चिट्ठी पढ़ कर सुनाई जा रही है, क्योंकि समय कहां? चिट्ठी-पत्री इतनी! और वे अंदर से ही जवाब दे रहे हैं कि यह-यह लिख दो! पीछे लौटाने की समाज को भी बहुत चेष्टा चली है, रूसो से लेकर महात्मा गांधी तक। लौट चलो पीछे! जंगल की तरफ! गुफा-मानव की ओर! रहेंगे पहाड़ों की गुफाओं में! बड़े आनंद से रहेंगे! और तुम्हें पता है, जो गुफाओं में रहे, बड़े आनंद से रहे। एकाध दिन जाकर, एकाध दिन-रात गुफा में तो रह कर आओ! फिर भूल कर गुफा वगैरह की बात न करोगे। रात भर सो ही न पाओगे, पहली तो बात। कहीं सांप, कहीं बिच्छू! और कहीं शेर आ जाए और दहाड़ दे!
पीछे लौटा नहीं जा सकता। न समाज लौट सकता है, न व्यक्ति लौट सकता है। पीछे लौटने का कोई उपाय ही नहीं है। और आगे छलांग लगाकर नहीं जाया जा सकता। वर्तमान को जिओ उसकी समग्रता में। क्योंकि वर्तमान से ही भविष्य का जन्म होता है। वर्तमान के गर्भ में भविष्य पकता है। अतीत तो लाश है। भविष्य गर्भ है। और वर्तमान दोनों के मध्य में है। वहीं जीवन का सार छिपा है।
तुम कहते हो, आगे कुछ दिखाई नहीं देता, पीछे जाना नामुमकिन लगता है। दिन तो निकल जाता है, अंधेरी रात क्यों आती है? जगत द्वंद्व है। और जगत के होने का ढंग द्वंद्व है। द्वंद्वात्मक है, डाइलेक्टिकल है। अगर रोशनी है, तो अंधेरे के बिना नहीं हो सकती। और अंधेरे में क्या बुरा है? वेदांत, अंधेरे के सौंदर्य को भी समझो! सदियों-सदियों में तुमसे कहा गया है कि परमात्मा प्रकाश है। इसका यह अर्थ मत समझ लेना कि परमात्मा प्रकाश है। इससे परमात्मा का कोई संबंध नहीं है। ये वक्तव्य तो हमारे डर के कारण निकला है। हम अंधेरे से डरते हैं। हम अंधेरे से भयभीत हैं। और वह अंधेरे का भय भी गुफा-मानव के समय से चला आ रहा है। जब आदमी जंगल में था और अंधेरे में था। तो रात बड़ी खतरनाक थी। दिन तो गुजर जाता था। क्योंकि दिन में रोशनी होती थी, बच सकता था, बचाव कर सकता था; जानवर आ जाए, झाड़ पर चढ़ सकता था; जानवर आ जाए, भाग सकता था; जानवर की दहाड़ सुनाई पड़े, छिप सकता था; अपनी गुफा के दरवाजे पर पत्थर रख सकता था; कोई उपाय कर लेता। मगर रात अंधेरा छा जाता-- तब आग भी नहीं खोजी गई थी--रात के अंधेरे में उसको कुछ समझ नहीं आता कि अब क्या करे? सांप बिल्कुल छाती पर आ जाए, तब पता चले। और सिंह सामने आ जाए, तब पता चले। और रात सोना और खतरनाक। क्योंकि नींद में वह बचाव भी न कर सके। कोई भी जंगली जानवर खींच कर ले जाए। तो नींद से भी एक भय समा गया। रात से भय समा गया, अंधेरे से भय समा गया।

इसलिए अग्नि को लोगों ने देवता का पहला रूप माना।
अग्नि देवता की जितनी पूजा की गई दुनिया में, किसी और देवता की नहीं
की गई। उसका कुल कारण इतना था कि अग्नि के आविष्कार ने रात के अंधेरे से छुटकारा दिलवा दिया। रात का भय कम हो गया। अग्नि को जला कर, चारों तरफ धूनी लगाकर गुफा-मानव सो जाता था। और अभी भी तुम्हारे महात्मा वही कर रहे हैं। न गुफा में रहते हैं, न अब कोई खतरा है, न कोई जंगली जानवर हैं--अब तो आदमी ने सब जंगली जानवर खत्म कर दिए। खतरा है तो जंगली जानवरों को है, आदमियों को कोई खतरा नहीं है--लेकिन तुम्हारे महात्मागण अभी भी धूनी लगा कर बैठे हैं। उनको पता ही नहीं कि धूनी लगाने का जमाना जा चुका। थी कभी जरूरत धूनी रमाने की, अब क्या धूनी रमाए हो! अब क्यों लकड़ी जला रहे हो फिजूल! अब कोई जरूरत नहीं है।
अंधेरे से एक हमारे अचेतन में भय समा गया है। लेकिन अंधेरे में बड़ा सौंदर्य है। वेदांत, इस भय को जाने दो। प्रकाश सुंदर है। वैसा ही अंधेरा भी सुंदर है। प्रकाश की अपनी महिमा है, अंधेरे की अपनी महिमा है। क्योंकि परमात्मा के दोनों पहलू, प्रकाश और अंधेरा, एक ही सिक्के के दो पहलू जैसे। अंधेरे में भी परमात्मा ही है। अंधेरा भी उसका ही है। और प्रकाश भी उसका है। उसकी ही अभिव्यक्तियां।
तुम जरा अंधेरे के गुण तो देखो! अंधेरे की गहराई देखो! अंधेरे की शांति देखो! अंधेरे का सन्नाटा देखो! अंधेरे का संगीत देखो! और अंधेरा तुम्हें बिल्कुल अकेला छोड़ देता है, अकेलेपन का मजा देखो! एकांत का मजा देखो! रोशनी में तो तुम अकेले हो ही नहीं सकते। कोई न कोई मौजूद है। कोई न कोई दिखाई पड़ता है। अंधेरे में तुम बिल्कुल अकेले हो सकते हो। बीच बाजार में भी अकेले हो सकते हो। अपने कमरे में भी अकेले हो सकते हो। पत्नी भी हो, बच्चे भी हों, तो भी तुम अकेले हो सकते हो।
जरा अंधेरे में रस लेना शुरू करो! अंधेरे को पढ़ना शुरू करो। और तुम पाओगे कि अंधेरा तुम्हें गहरी शांति देगा, आनंद देगा, एकांत देगा, समाधि देगा। और तब अंधेरा भी अंधेरा जैसा नहीं मालूम होगा, अंधेरे में भी एक प्रकाश प्रकट होने लगेगा। एक धीमा प्रकाश। क्योंकि वस्तुतः अंधेरे का अर्थ इतना ही होता हैः कम प्रकाश। और प्रकाश का अर्थ होता हैः कम अंधेरा। वे दोनों अलग चीजें नहीं हैं। जैसे गर्मी और सर्दी अलग नहीं हैं। जैसे स्त्री और पुरुष अलग नहीं हैं। वैसे जीवन और मृत्यु अलग नहीं है। और जब तक तुम अंधेरे को प्रेम न कर पाओगे तुम कभी मृत्यु को भी प्रेम न कर पाओगे। और जो मृत्यु को प्रेम नहीं कर सकता, उसका जीवन अधूरा है, खंडित है। वह अखंड परमात्मा को न जान सकेगा। उसे उसके सब रूपों में अंगीकार करना है। तब तथाता पैदा होती है। सब रूपों में। कांटों में भी वह जब दिखाई पड़ने लगे। फूलों में तो दिखाई पड़ जाता है, यह ठीक, यह कोई खास बात नहीं, किसी को भी दिखाई पड़ जाएगा, लेकिन कांटों में भी दिखाई पड़ने लगे। जीवन में उसकी लहर मालूम होती है, यह तो ठीक, लेकिन मृत्यु में भी उसकी ही उपस्थिति अनुभव होने लगे। और प्रकाश में ही नहीं, अंधकार में भी वही तुम को घेरे।
और अंधकार का मखमली स्पर्श! तुम जरा भय छोड़ो! तो तुम आंदोलित होने लगोगे। अंधेरे में भी मस्त होओगे। और रोशनी में भी मस्त होओगे। रोशनी का अपना मजा, अंधेरे का अपना मजा। जागरण का अपना सुख, निद्रा का अपना सुख।
इस जगत में प्रत्येक चीज में परमात्मा समाया हुआ है, इस सत्य को हृदयंगम करो। और किसी चीज का विरोध नहीं करना है। यही तो मेरी मूल शिक्षा है। किसी भी चीज का निषेध नहीं करना है। अंधेरे का भी नहीं, मृत्यु का भी नहीं। अंगीकार करना है। आत्मसात करना है। समग्र को आत्मसात करना है। तो ही तुम जान सकोगे कि परमात्मा क्या है। और जिसने परमात्मा को नहीं जाना, उसने कुछ भी नहीं जाना। और जिसने परमात्मा को जाना, वह चाहे और कुछ भी न जानता हो, उसने सब जान लिया है।
वेदांत! प्रार्थना से भरो कि वह तुम्हें अंधकार में भी दिखाई पड़े, मृत्यु में भी दिखाई पड़े, कांटों में भी दिखाई पड़े, असफलताओं में भी दिखाई पड़े, विरह में भी दिखाई पड़े। मिलन में तो दिखाई पड़ता ही है, उसके लिए कोई

खास खूबी की जरूरत नहीं, जब विरह में भी दिखाई पड़ने लगता है तब समझना तुम्हारे पास अंतर्दृष्टि है।
जग के उर्वर आंगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन!
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर
हे चिर-अव्यय; चिर-नूतन!

बरसो कुसुमों में मधु बन, प्राणों में अमर प्रणय घन, स्मिति स्वप्न अधर पलकों में उर अंगों में सुख यौवन!

छू-छू जग के मृत रज-कण
कर दो तृण तृरु में चेतन, मृन्मरण बांध दो जग का
दे प्राणों का आलिंगन!

बरसो सुख बन, सुषमा बन,
बरसो जग-जीवन के घन!
दिशि-दिशि में औ" पल-पल में,
बरसो संसृति के सावन!
परमात्मा बरसने को राजी है, तुम पुकारो भर! तुम निमंत्रण भर दो, वह अतिथि तुम्हारे निमंत्रण की प्रतीक्षा कर रहा है।
जीवन जखन शुकाय जाय, करुणा धाराय एसो।
सकल माधुरी लुकाए जाय, प्रेम-सुधा-रसे एसो।।
कर्म जखन प्रबल आकार गरजि उठिया ढाचे चारि धार।
हृदय-प्रांते हे जीवननाथ, शांत चरणे एसो।।
आपनारे जबे करिया कृपण, कोणे पड़े थाके दीन-हीन मन।
दुवार खुलिया, हे उदार नाथ, राज-समारोहे एसो।।
वासना जखन विपुल धुलाय, अंध करिया अबोध भुलाय।
ओहे पवित्र, ओहे अनिद्र, रुद्र अलोके एसो।।
जीवन जब सूख जाए तो तुम करुणा की धारा बन कर आओ। जब सब माधुर्य लुप्त
हो जाए तो तुम प्रेम-सुधा की वर्षा बन कर आओ। जब कर्म के काले बादल घोर गर्जन कर सब जीवन घेर लें, तो हे जीवननाथ, हृदय-प्रांत में शांत-चरण होकर आओ। जब मेरा बड़ा मन छोटा होकर, दीन-हीन होकर, किसी कोने में छिप जाए तो हे उदारनाथ, तुम द्वार खोल कर राज-समारोह की भांति आओ। और जब वासना की कठिन आंधी अंधा बना कर बोध भुला दे, तो हे पवित्र, हे जाग्रत, बिजली चमकाते हुए आओ।
पुकारो! वह आने को तत्पर है। प्रति क्षण राजी है। लेकिन तुम्हारे बिना बुलाए नहीं आएगा। तुम्हारे बिना निमंत्रण के नहीं आएगा। तुम्हारे प्राण जब उसके लिए प्यास से परिपूर्ण भर जाएंगे, तो क्षण भर देर न होगी।
न पीछे जा सकते हो, न आगे जा सकते हो, लेकिन परमात्मा में जा सकते हो और परमात्मा तुम में आ सकता है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप कभी-कभी अति कठोर उत्तर क्यों देते हैं? जैसे कुंडलिनी के संबंध में दिया आप का उत्तर। वैसे आप कुछ भी कहें, कुंडलिनी जगानी तो मुझे भी है।

स्वरूपानंद, फिर तुम्हारी मर्जी! वैसे भी स्त्री जाति को छेड़ना नहीं चाहिए। और सोई स्त्री को तो बिल्कुल छेड़ना ही मत! अब कुंडलिनी बाई सोई हैं, तुम काहे पीछे पड़े हो! तुम्हें और कोई काम नहीं! और जगा कर भी क्या करना है? खुद जागो कि कुंडलिनी को जगाना है!
ये भी खुद को जगाने से बचाने के उपाय हैं।

कोई कहेगा कि हमें चक्र जगाने हैं। जगा लो, घनचक्कर हो जाओगे! किसी को कुंडलिनी जगानी है, किसी को रिद्धि-सिद्धि पानी है। करोगे क्या? रिद्धि- सिद्धि पाकर करोगे क्या? हाथ से राख निकालने लगोगे तो कुछ हो जाएगा दुनिया में! मदारीगिरी में मत पड़ो!
खुद को जगाओ, चैतन्य को जगाओ, बोध को जगाओ, जागरूक बनो, यह तो समझ में आता है, मगर कुंडलिनी को जगाना है! न तुम्हें पता है कि कुंडलिनी क्या है, न तुम्हें पता है कि उसका प्रयोजन क्या है, और चूंकि तुम्हें कुछ भी उसके बाबत पता नहीं है, इसलिए उसके संबंध में कुछ भी मूर्खतापूर्ण बातें चलती रहती हैं।
मैंने कुछ दिन पहले पढ़ा कि मेरी पुरानी शिष्या और अब परम पूज्य माता
जी श्रीमती निर्मला देवी जी, वे लोगों की कुंडलिनी जगाती हैं। उन्होंने चंदूलाल काका की जगाई, वे खतम ही हो गए। कुंडलिनी जगी कि नहीं, वह तो पता नहीं, वे खुद ही सो गए! और अब उन्होंने एक सिद्धांत निकाला है, सिद्धांत बड़ा प्यारा है, कि कृष्णकन्हैया वृक्षों पर छिप कर या मकानों पर बैठ कर, जब गोपियां पानी भर कर निकलती थीं या दूध लेकर निकलती थीं, तो कंकड़ी मार कर उनकी गगरिया फोड़ देते थे। वे कंकड़ी नहीं थी, निर्मला देवी का कहना है, उस कंकड़ी में वे अपनी कुंडलिनी-शक्ति भर देते थे। नहीं तो कहीं कंकड़ी से गगरी फूटी है! बात तो जंचती है। मजबूत गगरियां, सतयुग की गगरियां--कोई आजकल की, कोई कलयुगी--ऐसी मजबूत कि एक दफा खरीद लीं कि खरीद लीं, बस जिंदगी भर के लिए हो गईर्ं। कंकड़ी मार दें और गगरी फूट जाए! तो जैसे अणु शक्ति होती है--छोटे से अणु में कितनी छिपी होती है--ऐसे छोटी सी कंकड़ी में वे कुंडलिनी-शक्ति भर कर और मार दें। और क्यों गगरियों में ही मारें? पुरुषों से कोई दुश्मनी थी? पुरुषों को मारें ही नहीं। मैंने कहा नहीं तुम से कि कुंडलिनी जो है, वह स्त्री जाति है। कंकड़ी मारने से गगरी फूट जाए। कंकड़ी के स्पर्श से जो गगरी में भरा हुआ दूध था या जल था, उस में भी कुंडलिनी-शक्ति व्याप्त हो जाए, फिर कुंडलिनी-शक्ति बहे रीढ़ पर, गोपियों की रीढ़ पर कुंडलिनी-शक्ति बहे, तो उनकी सोई हुई कुंडलिनी-शक्ति एकदम जगने लगे। और तो सब मेरी समझ में आया, यह समझ में नहीं आया कि पानी या दूध तो ऊपर से नीचे की तरफ बहेगा, सो कुंडलिनी और जगी होगी तो सो जाएगी कि जगेगी? यह भर मेरी समझ में नहीं आया। कि जगी-जगाई कुंडलिनी को और ले जाएगी नीचे की तरफ। मगर निर्मला देवी जी ने यह सिद्धांत निकाला है! और लोगों को ऐसी मूढ़तापूर्ण बातें ऐसी जंचती हैं कि क्या कहना।
कुंडलिनी कुछ भी नहीं है सिवाय तुम्हारी काम-ऊर्जा के, तुम्हारी सेक्स-एनर्जी के। और सेक्स-एनर्जी का, काम-ऊर्जा का जो स्वाभाविक केंद्र है, वह जननेंद्रिय है। उसे वहीं रहने दो। उसे ऊपर वगैरह चढ़ाने की कोई आवश्यकता नहीं है। उसको ऊपर चढ़ाओगे, विक्षिप्त हो जाओगे। फिर मस्तिष्क फटेगा। मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं कि सिर फटा जा रहा है। कोई कहता है कि कान में जैसे बैंड-बाजे बजते रहते हैं चौबीस घंटे। या बादलों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ती है। अब कुछ करिए। मैं उनको कहता हूं, भैया, तुम जाओ किसी के पास, जिससे कुंडलिनी जगवाई हो उससे सुलाने की तरकीब। प्रत्येक केंद्र की ऊर्जा उसी केंद्र पर होनी चाहिए किसी दूसरे केंद्र पर ले जाने की कोई आवश्यकता नहीं क्योंकि जब भी कोई ऊर्जा एक केंद्र से दूसरे केंद्र पर जाएगी तो तुम्हारे जीवन का जो सहज क्रम है, उसमें व्याघात पड़ेगा। परमात्मा ने प्रत्येक चीज को वहां रखा है जहां होनी चाहिए।
तुम जागो! तुम होशपूर्वक हो जाओ! बुद्ध ने कोई कुंडलिनी नहीं जगाई और परम बुद्ध हो गए। तो स्वरूपानंद, तुम्हें कुंडलिनी जगाने की क्या जरूरत है? तुम भी परम बुद्ध हो सकते हो। फिर कुंडलिनी जगाने के नाम से हजारों खेल चलते हैं। चलेंगे ही। स्वाभाविक है। उलटे-सीधे काम लोगों को सिखाए जाते हैं, करवाए जाते हैं। शीर्षासन करके खड़े हो जाओ, इससे कुंडलिनी जगेगी। सिद्धांत यह है कि जब तुम शीर्षासन करके खड़े होओगे, तो काम-ऊर्जा तुम्हारे सिर की तरफ गिरने लगेगी। स्वभावतः, जमीन के गुरुत्वाकर्षण के कारण। मगर तुमने शीर्षासन करने वाले लोगों में कभी कोई प्रतिभा देखी? कोई मेधा देखी? कोई उनकी बुद्धि पर धार देखी, चमक देखी?

पंडित गोपीनाथ इस समय कुंडलिनी के संबंध में सबसे बड़े पंडित हैं। और उनका कहना है, कुंडलिनी जागने से मनुष्य में एकदम प्रतिभा का आविर्भाव होता है। उनकी जाग गई, वे कहते हैं। मगर प्रतिभा का तो कोई आविर्भाव दिखाई पड़ता नहीं, उनमें ही नहीं दिखाई पड़ता। प्रमाणस्वरूप वे कहते हैं कि नहीं, है प्रतिभा का चमत्कार! उन्होंने कई कविताएं लिखी हैं। वे प्रमाण हैं उनका। कि ये कविताएं हमारी... ! मगर वे कविताएं तुम पढ़ो तो बड़े चकित होओगे। वे बिल्कुल कूड़ा-करकट हैं। गोपीनाथ जीवन भर क्लर्क रहे, हेड क्लर्क की तरह रिटायर हुए, सो उनकी कविताओं में तुम्हें क्लर्क की भाषा मिलेगी और हेड क्लर्क का हिसाब मिलेगा और कुछ भी नहीं। अब क्लर्क जैसी भाषा लिखते हैं, हेड क्लर्क जैसी भाषा लिखते हैं, वही भाषा कविता में। कविता की तो जान ही निकल जाती है! क्लर्को ने कभी कविताएं लिखीं? और क्लर्की भाषा, कि हो कुछ थोड़ी-बहुत कविता कहीं, तो उसके भी प्राण निकल जाएं। और वे एक ही रात में दो- दो सौ कविताएं लिख लेते हैं। तो वे कहते हैं, यह प्रतिभा का चमत्कार देखो! मगर कविताएं मैंने देखी हैं। कचरे से कचरा कविताएं देखी हैं मगर गोपीनाथ ने सबको मात कर दिया। तुकबंदी भी नहीं कह सकते इनको, कविता तो बहुत दूर। मगर यह प्रतिभा का चमत्कार समझा जा रहा है।
ऐसे ही पश्चिम में भारत के एक सज्जन हैं, श्री चिन्मय। वे भी एक-एक सप्ताह में एक-एक हजार कविता लिख देते हैं। मगर एक कविता का कोई मूल्य नहीं। प्रतिभा का चमत्कार दिखाने के लिए उन्होंने एक तस्वीर उतरवाई है। अपनी सारी कविताओं की किताबें थप्पी लगा कर खड़ी कर दीं और उसी के बगल में खुद खड़े हैं। थप्पी उनसे भी ऊंची चली गई है। वह दिखाने के लिए कि प्रतिभा का चमत्कार है! रद्दी में बेचने योग्य हैं। रद्दी में भी कोई लेगा कि नहीं लेगा, यह भी शक की बात है। मैंने इनकी कविताएं पढ़ी हैं, उस आधार पर कह रहा हूं। इनकी कविताएं पढ़ना ऐसा समझो जैसे किसी पाप का दंड भोग रहे हैं। जैसे पिछले जन्मों में कोई बुरे कर्म किए होंगे सो भोगना पड़ रहा है। जब से मैंने इनकी कविताएं पढ़ी हैं, तबसे मुझे एक ख्याल पक्का बैठ गया है कि नरक में और कुछ होता हो या न होता हो, पंडित गोपीनाथ और श्री चिन्मय की कविताएं तो प्रत्येक को पढ़नी ही पड़ेंगी।
कुछ आविष्कार करो! कुछ नई खोज करो! कुछ विज्ञान का दान दो! कुछ इस देश
की दीनता को मिटाने के लिए, दरिद्रता को मिटाने के लिए कोई दृष्टि दो! वह इनकी कुंडलिनी जागने से कुछ नहीं होता। और इनकी जग गई, इसका प्रमाण? बस ये कहते हैं। न कोई आध्यात्मिक गंध मालूम पड़ती है, न कोई जीवन में प्रशांति मालूम होती है, न कोई आनंद-उल्लास मालूम होता है, न कोई नृत्य है, न कोई बांसुरी बज रही है, कोई उत्सव की कहीं खबर नहीं मिलती। वही हेडक्लर्क के हेडक्लर्क।
तुम भी जगा कर स्वरूपानंद, करोगे क्या? और इस जगाने के नाम पर क्या- क्या उपद्रव चल रहा है, जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। लोगों को उलटे-सीधे आसन सिखाए जाते हैं, शरीर को मोड़ो, तोड़ो! और लोग बेचारे करते हैं सब तरह की कवायतें, इस आशा में कि कुंडलिनी जगेगी। और जितनी जग गई, जरा उनकी तरफ तो देखो। जग कर हुआ क्या? इनके जीवन से क्रोध गया? इनके जीवन से मोह गया? इनके जीवन से कामवासना गई? इनके जीवन से आसक्ति गई? इनके जीवन से महत्वाकांक्षा गई? इनके जीवन से अहंकार गया? कुछ भी नहीं गया। बल्कि और बढ़ गया। कुंडलिनी जो जग गई तो अब अहंकार और भी ऊंची पताका पर चढ़ गया। वह और ऊंचा झंडा फहरा रहा है।
स्वयं जगो! इन उपद्रवों में मत पड़ो! इन व्यर्थ की बकवासों में मत उलझो। और मैं यह नहीं कहता हूं कि ऊर्जा नहीं है; ऊर्जा है, मगर उसको सिर तक ले जाने की कोई जरूरत नहीं है। सिर के पास अपनी ऊर्जा है, उतनी ही काफी है, वही तुम्हें काफी परेशान किए हुए है। और नई ऊर्जा सिर में ले जाओगे! इतनी ही गैस काफी है तुम्हारे सिर में। ज्यादा गैस हो जाएगी, दिक्कत में पड़ोगे। इतने से ही सिर ठीक चल रहा है। ठीक ही क्या चल रहा है, जरूरत से ज्यादा चल रहा है। चौबीस घंटे चल ही रहा है। जन्म से लेकर मरने तक चलता है। अगर कभी बंद भी होता है तो बस तभी जब तुम्हें मंच पर बोलने को खड़ा कर दिया जाए। बस,

तब एक क्षण को सकते में आ जाते हो और खोपड़ी बंद हो जाती है। एकदम स्टार्ट ही नहीं होती!
मैं यूनिवर्सिटी में विद्यार्थी था, एक दिन वाद-विवाद प्रतियोगिता में भाग लेने गया था। एक संस्कृत महाविद्यालय के युवक ने भी भाग लिया था। संस्कृत महाविद्यालय का युवक थोड़ी सी हीनताग्रंथि अनुभव करता है। अंग्रेजी उसे आती नहीं और संस्कृत की बिसात क्या है अब, मूल्य क्या है! सो वह अंग्रेजी के कुछ वाक्य कंठस्थ कर लाया था। संस्कृत विद्यार्थियों की कला यही हैः कंठस्थ करना। बुद्धि वगैरह नहीं बढ़ती, मगर उनका कंठ बड़ा हो जाता है। कंठस्थ करते-करते कंठ में बड़ा बल आ जाता है। सो वह प्रभावित करने के लिए लोगों को बर्टेड रसल के कुछ वचन याद कर लाया था। मगर याद किए हुए काम झंझट में डाल दे सकते हैं। जैसे ही वह खड़ा हुआ: "भाइयो एवं बहनो, बर्ट्रेंड रसल ने कहा है... और बस वहीं अटक गया। मैं उसके बगल में बैठा था, मैंने कहा, फिर से। क्योंकि कहीं गाड़ी अटक जाए तो फिर से शुरू करना ठीक है, शायद पकड़ जाए, लाइन पकड़ जाए! और उसको भी आगे कुछ नहीं सूझा तो उसने मेरी मान ली। तो उसने कहा, फिर कहा कि भाइयो एवं बहनो, बर्टेड रसल ने कहा है... और वह आकर फिर वहीं के वहीं खड़ा हो गया। मैंने कहाः भैया, फिर से! वह भी गजब का था--और करता भी क्या अब, आगे जाने को गति नहीं--सो उसने फिर कहाः "भाइयो एवं बहनो, बर्ट्रेंड रसल ने कहा है... फिर तो जनता क्या हंसी! वह ठीक वहीं से शुरू करेः "भाइयो एवं बहनो", और वह पहले ही वाक्य पर अटक जाए, "बट्रेंड रसल ने कहा है, "अब बस इसके बाद उसको कुछ सूझे नहीं। मैंने उससे कहाः भैया, तू अब बैठ ही जा! भाड़ में जाने दे बर्ट्रेंड रसल को। कहने दे जो कहना हो उनको, तू तो बैठ! अब तेरी गाड़ी आगे चलने वाली नहीं है! यह तो बिल्कुल टर्मिनस आ गया। इसके आगे गाड़ी जाएगी कहां? पटरी ही खत्म हो जाती है।
जन्म से लेकर मृत्यु तक बड़े मजे से चलता रहता है। कभी-कभी अटकता है तो
बस अगर जनता के सामने खड़ा कर दे कोई तुम्हें, कि कुछ बोलिए, कि बस फिर जरा मुश्किल आ जाती है। नहीं, तो खोपड़ी के पास काफी शक्ति है। तुम्हें और ज्यादा शक्ति की कोई जरूरत नहीं है। और अगर तुम काम-ऊर्जा को मस्तिष्क तक ले भी गए, तो भी तुम इतने ही सोए हुए हो, इतने ही सोए हुए रहोगे। काम-ऊर्जा मस्तिष्क में पहुंच जाएगी तो न मालूम किस-किस तरह की कल्पनाएं करेगी। ये तुम्हारे योगियों की कथाएं, महात्माओं की कथाएं इसी तरह की कल्पनाओं से भरी हैं। तुम जो कल्पना करोगे, वही कल्पना तुम्हें दिखाई पड़ने लगेगी। काम-ऊर्जा की वही खूबी है, कि वह हर कल्पना को साकार कर देती है। काम-ऊर्जा स्वप्न देखने की कला है। स्वप्न देखने की ऊर्जा है। तो तुम चाहो रामचंद्र जी को देखो उससे, तो दिखाई पड़ेंगे। और कृष्ण जी महाराज को देखो, वे दिखाई पड़ेंगे। क्राइस्ट को देखना चाहो, वे दिखाई पड़ेंगे। क्योंकि काम-ऊर्जा का एक ही काम है, तुम्हारे भीतर स्वप्न को ऐसी गहराई से पैदा करना कि वह यथार्थ मालूम होने लगे। इसी तरह तो पुरुष स्त्रियों में सौंदर्य को देखते हैं, स्त्रियां पुरुषों में सौंदर्य को देखती हैं। जहां कुछ भी नहीं है, वहां सब कुछ दिखाई पड़ने लगता है। प्रेमियों से पूछो। अगर किसी को किसी स्त्री से प्रेम हो जाए, तो उसे ऐसी-ऐसी चीजें स्त्री में दिखाई पड़ने लगती हैं जो किसी और को दिखाई नहीं पड़तीं, उसी को दिखाई पड़ती हैं। उसको उसके पसीने में दुर्गंध नहीं आती, फलों की बास आने लगती है। साधारण आंखें, एकदम साधारण नहीं रह जातीं, मृगनयनी हो जाती है स्त्री। उसके शब्द मोतियों जैसे झरने लगते हैं।... झरत दसहुं दिस मोती! ... उसकी हर बात प्यारी लगती है। हर बात अद्भभुत लगती है। उसका चलना, उसका बैठना, उसका उठना। सारा काव्य उसमें साकार हो जाता है।
हालांकि दो-चार दिन का ही मामला है, एक दफा मिल गई, सात चक्कर पड़ गए, घनचक्कर बन गए, कि फिर कुछ नहीं दिखाई पड़ेगा। वे ही मोती कंकड़-पत्थर जैसे पड़ेंगे, कि फिर एक ही आकांक्षा रहेगी कि हे प्रभु, कोई तरह इसे चुप रख! ज्यादा न बोले तो अच्छा। मगर वह दिन भर बड़बड़ाएगी। अब इसकी आंखों में कुछ भी कमल इत्यादि नहीं खिलेंगे। अब इसकी आंखों में सिर्प पुलिसवाला दिखाई पड़ेगा, जो चौबीस घंटे जांच कर रहा है कि कहां गए थे? कहां से आ रहे हो? इतनी देर कैसे हुई? यह हर चीज में अड़ंगा डालेगी। खो गई सब कविता, खो गया सब

काव्य, अब सिर ठोंकोगे, सिर धुनोगे। और वही गति स्त्रियों की। जब किसी पुरुष से उनका प्रेम हो जाएगा तो क्या-क्या नहीं दिखई पड़ता। यही नेपोलियन, यही सिकन्दर, यही सब कुछ हैं। हालांकि कुत्ता भौंक दे तो घर में घुस जाते हैं। मगर नेपोलियन, सिकंदर, एकदम बहादुर दिखाई पड़ते हैं। इनकी वीरता का कोई अंत ही नहीं है। ये सारे जगत के विजेता होने वाले हैं।
मैंने सुना है, एक युवती और एक युवक जुहू के तट पर बैठे हुए हैं। पूर्णिमा की रात और सागर में लहरें उठ रही हैं। और युवक ने कहा कि उठो लहरो, उठो! दिल खोल कर उठो! जी-भर कर उठो! और लहरें उठती ही गईर्ं, उठती ही गईर्ं। युवती ने एकदम युवक को आलिंगन कर लिया और कहाः वाह, सागर भी तुम्हारी मानता है। तुमने इधर कहा कि उठो लहरो, उठो, उधर लहरें उठने लगीं। कैसा तुम्हारा बल! कैसा तुम्हारा चमत्कार!
मगर ये सब दो-चार दिन की बातें हैं। यह काम-ऊर्जा की खूबी है कि वह जब आंखों पर छा जाती है, तो तुम्हें कुछ-कुछ दिखाई पड़ने लगता है। तुम जो देखना चाहो वह दिखाई पड़ने लगता है। क्यों लोगों ने काम-ऊर्जा को मस्तिष्क तक ले जाना चाहा? सबसे पहले, यह कल्पना क्यों उठी? इसीलिए उठी, क्योंकि फिर तुम्हें जो देखना हो तुम देख सकते हो। फिर कृष्णजी को देखो! सामने खड़े हैं, मुस्कुरा रहे हैं! बात करो, जवाब भी देंगे! तुम्हीं दे रहे हो जवाब, तुम्हीं कर रहे हो प्रश्न, बिचारे कृष्ण का इसमें कुछ हाथ नहीं है, मगर तुम्हारी काम-ऊर्जा मस्तिष्क तक पहुंच गई है, अब तुम जो भी कल्पना करोगे वह साकार मालूम पड़ेगी।
यह आध्यात्मिक किस्म की भ्रांतियों में भटकना है।
स्वरूपानंद, ऐसे सत्य को नहीं जान पाओगे। सत्य को जानने के लिए समस्त कल्पनाओं का गिर जाना जरूरी है। कल्पनामात्र का गिर जाना जरूरी है। मस्तिष्क से विचार, धारणा, सब विलीन हो जाने चाहिए, मस्तिष्क बिल्कुल कोरा हो जाना चाहिए, तब तुम जान सकोगे वह, जो है।
और तुम कहते हो, आप कभी-कभी अति कठोर उत्तर क्यों देते हैं? जैसे प्रश्न वैसे उत्तर। अगर तुम प्रश्न ऊलजुलूल पूछोगे, तो उत्तर कठोर होना ही चाहिए। नहीं तो तुम्हारी कभी अकल में न आएगा कि प्रश्न ऊलजुलूल था। ढब्बू जी एक दिन चंदूलाल से कह रहे थे कि जानते हो मित्र, मेरे दादाजी
का अस्तबल इतना बड़ा था कि उसका कोई ओर-छोर नहीं था। इतने घोड़े उनके पास थे कि हर मिनट में एक घोड़ी बच्चा दे देती थी।
चंदूलाल बोले कि बड़े भाई, यह तो कुछ भी नहीं, अरे मेरे दादाजी के पास
एक इतना लंबा बांस था कि जब चाहें तब बादलों में छेद कर देते थे और खेतों में बारिश करवा देते थे। ढब्बूजी बोलेः अरे यार, झूठ बोलते शर्म नहीं आती? इतना लंबा बांस रखते कहां होंगे? चंदूलाल बोलेः अरे, रखते कहां, तुम्हारे दादा के ही अस्तबल में रखते थे।
तुम व्यर्थ के प्रश्न पूछोगे, तो तुम वैसे ही जवाब पाओगे।
ट्रेन में बहुत भीड़ थी और बहुत से लोग लाइन लगा कर खड़े थे। उसी लाइन में मुल्ला नसरुद्दीन खड़ा था। उसी के आगे लाइन में एक बहुत ही खूबसूरत युवती भी खड़ी हुई थी। मुल्ला नसरुद्दीन थोड़ी देर तो उसे देखता रहा, आखिर जब न रहा गया, तो उसने उस युवती की चोटी पकड़ कर पीछे खींच दी। युवती तो बहुत नाराज हुई। उसने कहा कि बड़े मियां, यह क्या हरकत है? यह मेरी चोटी आपने क्यों खींची? नसरुद्दीन मुस्कराता हुआ बोलाः वह देखिए न सामने ही लिखा हुआ है कि खतरे के समय जंजीर खींजिए। इसीलिए मैंने यह गुस्ताखी की है। यह सुन कर उस युवती ने जोर की एक चपत नसरुद्दीन के गाल पर रसीद कर दी। नसरुद्दीन ने घबड़ा कर कहाः अरे-अरे, आप यह क्या करती हैं? युवती बोली, बगैर किसी कारण जंजीर खींचने का जुर्माना।
तुम ठीक कहते हो, स्वरूपानंद, कभी-कभी मैं कठोर उत्तर देता हूं ताकि तुम्हारे प्रश्न को बिल्कुल ही समाप्त कर दूं। तुम्हारा प्रश्न उत्तर नहीं चाहता, तुम्हारा प्रश्न चाहता है कि तलवार से उसे काट दिया जाए। तुम्हारा प्रश्न व्यर्थ होता है। तो सिवाय इसके और कोई करुणा नहीं हो सकती कि उसे तलवार से काट दिया जाए। वह गिर जाए। वह गिर जाए तो तुम उससे मुक्त हो जाओ।

अगर तुम ठीक से समझो तो मैं तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देने को यहां नहीं हूं बल्कि तुम्हें प्रश्नों से मुक्त करने को यहां हूं। प्रश्नों के उत्तर में से तो और नये प्रश्न उठते चले जाएंगे। प्रश्नों के उत्तर से कभी किसी को उत्तर मिले हैं? नये प्रश्न उठ आते हैं। मेरा काम है कि तुम्हारे प्रश्न गिर जाएं ताकि नये प्रश्न न उठें, धीरे-धीरे तुम निष्प्रश्न हो जाओ। इसलिए कभी-कभी तुम्हें मेरी बात कठोर लगती होती, कभी-कभी अप्रासंगिक लगती होगी; कभी-कभी ऐसा लगता होगा मैंने तुम्हारे प्रश्न को तो उत्तर दिया ही नहीं, कुछ और ही कहा। मगर प्रयोजन एक है, सुनिश्चित रूप से एक है, कि तुम्हारे उत्तरों को, तुम्हारे प्रश्नों को, दोनों को ही तुमसे छीन लेना है। तुम्हारे पास प्रश्न भी बहुत हैं, तुम्हारे पास उत्तर भी बहुत हैं। तुम दोनों से ही भरे हो। और दोनों से खाली हो जाओ तो तुम्हारा मन दर्पण हो।
और दर्पण हो तो उसमें उसकी तस्वीर बने, जो है। जो है, वह परमात्मा का दूसरा नाम है।

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
सत्रहवां प्रवचन

अपने प्रिय संग होरी खेलौं

सतगुरु घर पर परलि धमारी, होरिया मैं खेलौंगी।।
जूथ जूथ सखियां सब निकरीं, परलि ग्यान कै मारी।।
अपने पिय संग होरी खेलौं, लोग देत सब गारी।।
अब खेलौं मन महामगन ह्वै, छूटलि लाज हमारी।।
सत्त सुकृत सौं होरी खेलौं, संतन की बलिहारी।।
कह गुलाल प्रिय होरी खेलौं, हम कुलवंती नारी।

फागुन समय सोहावन हो, नर खेलहु अवसर जाय।।
यह तन बालू मंदिर हो, नर धोखे माया लपटाय।।
ज्यों अंजुली जल घटत है हो, नेकु नहीं ठहराय।।
पांच पचीस बड़े दारुन हो, लूटहि सहर बनाय।।
मनुवां जालिम जार है हो, डांड़ लेत गरुवाय।।
कह गुलाल हम बांधल हो, खात हैं राम-दोहाय।।

को जाने हरि नाम की होरी।
चौरासी में रमि रह पूरन, तीहुर खेल बनो री।।
घूमि घूमि के फिरत दसोदिसि, कारन नाहिं छुटों री।।
नेक प्रीति हियरे नहीं आयो, नहिं सतसंग मिलो री।।
कहै गुलाल अधम ने प्रानी, अवरे अवरि गहो री।।
धर्म के संबंध में सबसे आधारभूत बात समझने की है कि जीवन और परमात्मा में कोई विरोध नहीं है। विरोध तो दूर, जीवन की सीढ़ियों पर चढ़ कर ही कोई परमात्मा के मंदिर तक पहुंचता है। जीवन एक अवसर है परमात्मा को तलाशने का। जीवन एक झलक है, परमात्मा की ही, बहुत दूर से मिली झलक, जैसे सैकड़ों मील दूर से हिमालय के उत्तुंग शिखर कुंआरी बर्प से दबे सुबह के सूरज में दमकते हुए दिखाई पड़ें। फासला लंबा है, यात्रा बड़ी है, चढ़ाई कठिन है; पहुंच पाएं, न पहुंच पाएं, पक्का नहीं; बहुत चलते हैं, बहुत थोड़े से लोग पहुंच पाते हैं, लेकिन हजारों मील से भी जो दिखाई पड़ रहा है, वह सत्य है, भ्रांति नहीं। दूर है, हाथ में नहीं है, सिर्प झलक मात्र है और अभी बदलियां घिर जाएं तो खो जाएं, आकाश खुला है, साफ है, तो दिखाई पड़ता है, ऐसा ही जीवन और परमात्मा का संबंध है। जीवन परमात्मा की झलक है। विचार के बादल घिर जाए, खो जाता है; विचार के बादल छंट जाएं, पुनः दिखाई पड़ने लगता है।
इसलिए जो लोग परमात्मा को पाने के लिए जीवन को छोड़ कर भागते हैं, बुनियादी भूल कर लेते हैं।
जीवन को छोड़ना नहीं है, जीवन को पहचानना है। जितनी गहरी पहचान होगी जीवन की, उतनी ही परमात्मा से निकटता होगी। जीवन उसकी ही छाया है। छाया ही सही, पर उसकी ही छाया है। और उसकी छाया भी क्या कम। उसकी छाया भी मिल जाए तो बहुत! उसकी छाया भी मिल जाए तो सौभाग्य! वह न मिले तो चलेगा। उसकी छाया में भी जी लिए, तो हमारी सामर्थ्य से ज्यादा, हमारी पात्रता से ज्यादा। जीवन उसकी प्रतिध्वनि है। लेकिन जो प्रतिध्वनि को ठीक से पकड़ ले, वह मूल ध्वनि तक पहुंच जाएगा। निश्चय ही पहुंच जाएगा। क्योंकि प्रतिध्वनि में भी मूल ध्वनि का सेतु छिपा है।
जीवन को इस भांति देखो तो मेरी दृष्टि तुम्हारी समझ में आ सकेगी। त्याग की जो धारणा सदियों-सदियों से तुम्हें समझाई गई है, उसके कारण बड़ी भूल हो गई है। त्यागना कुछ भी नहीं है। परमात्मा को पाना है जरूर, खोना कुछ भी नहीं है। परमात्मा इतना विराट है कि यह जीवन भी उसमें समाया हुआ है।
तुम जीते-जी उसे पा सकते हो। तुम जैसे हो वैसे ही रह कर उसे पा सकते हो।
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूं।

मौन मुखरित हो गया, जय हो प्रणय की,

पर नहीं परितृप्त हैं तृष्णा हृदय की,

पा चुका स्वर, आज गायन खोजता हूं;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूं।
ध्वनि तुम खोजोगे भी कैसे अगर प्रतिध्वनि न सुनी? और अगर स्वर न समझ में आए, तो संगीत को कैसे पकड़ पाओगे? और अगर झील में बनता हुआ चांद का प्रतिबिंब भी समझ में नहीं आता, तो आकाश में ऊगा चांद कैसे देखोगे?
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूं।
जिसने जीवन को समझा, वह परमात्मा को खोजेगा ही, खोजेगा ही। रुक सकता
ही नहीं। और जिसने जीवन को ही न समझा उसकी परमात्मा की खोज थोथी है, व्यर्थ है। उसके परमात्मा में कुछ भी नहीं है, उसका परमात्मा केवल एक धारणा है, एक विचार है। उसका परमात्मा तो केवल औरों ने समझा दिया है उसे, उसकी अपनी भीतर की प्यास नहीं है, अपने प्राणों की पुकार नहीं है। उसका परमात्मा उसकी प्रार्थना नहीं है, दूसरों के द्वारा दिया गया संस्कार है। उसका परमात्मा उधार है।
मेरे पास लोग आते हैं, वे कहते हैं, परमात्मा को खोजना है। मैं उनसे पूछता हूं, किस परमात्मा को? तुम्हारे भीतर कोई प्यास उठी है सत्य को जानने की? तुम्हारे प्राणों में कोई आंदोलन जगा है? तुम किसी झंझावात में पड़े हो, कोई आंधी उठी है जो कहती है कि खोजो, कि लगा दो सब दांव पर? या कि हिंदू घर में पैदा हुए, मुसलमान घर में पैदा हुए, ईसाई घर में पैदा हुए और सुन लीं बातें कि परमात्मा है और उसने जगत बनाया और उसे जो पा लगा उसे लाभ ही लाभ है, और जो उसे नहीं पाएगा उसे दुख ही दुख है; जो पा लेगा, उसे स्वर्ग है, जो नहीं पाएगा, उसके लिए नरक है, ऐसे भय और प्रलोभन से, ऐसे उधार संस्कारों से, उनसे सुन कर जिनको खुद भी पता नहीं है तुम खोजने निकले हो? तुम्हारी खोज नपुंसक होगी। तुम्हारी खोज में श्वास ही नहीं होगी। तुम्हारी खोज लाश होगी, उसमें जीवन नहीं होगा। और लाश को चलाओगे भी तो कैसे? थोड़ा बहाने बांध-बूंध कर, धक्का-धुक्कू देकर चला लोगे, गिर-गिर जाओगे। लाशें कहीं चली हैं? इसीलिए तो इतने लोग दुनिया में धार्मिक दिखाई पड़ते हैं लेकिन धर्म कहां है?
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूं।

मौन मुखरित हो गया, जय हो प्रणय की,
पर नहीं परितृप्त हैं, तृष्णा हृदय की,

पा चुका स्वर, आज गायन खोजता हूं;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूं।

तुम समर्पण बन भुजाओं में पड़ी हो,
उम्र इन उद्भभ्रांत घड़ियों की बड़ी हो,

पा गया तन, आज मैं मन खोजता हूं;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूं।

है अधर में रस मुझे मदहोश कर दो,
किंतु मेरे प्राण में संतोष भर दो,

मधु मिला है, मैं अमृतकण खोजता हूं;
मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूं।

जी उठा मैं, और जीना प्रिय बड़ा है,
सामने, पर, ढेर मुरदों का पड़ा है,

पा गया जीवन, संजीवन खोजता हूं;

मैं प्रतिध्वनि सुन चुका, ध्वनि खोजता हूं।
यह जीवन परमात्मा की प्रतिध्वनि है। उसकी छाया। इससे कुछ सीखो! आंखें बंद न करो, भागो मत, भयभीत न हो जाओ। इसी छाया के सहारे तुम स्रोत तक पहुंच सकते हो। और कोई उपाय नहीं है। और कोई विधि नहीं है। और सब विडंबनाएं हैं। जीवन को सम्मान दो, सत्कार करो! जीवन उसकी भेंट है। और तुम पात्र न थे
तो भी तुम्हें भेंट मिली है। तुम अपात्र हो, फिर भी वह तुम पर बरसा है--झरत दसहुं दिस मोती--उसके मोती बरसे ही जाते हैं। तुमने नहीं मांगा, वह तुम्हें मिला है। तुम जो नहीं जानते, वह भी तुम्हें मिला है। जिसे पहचानने में तुम्हें सदियां लग जाएंगी, वह भी तुम्हें मिला है। ऐसा खजाना, जो अकूत। और ऐसी गहराई, जो अथाह है। और ऐसा जीवन, जो अज्ञेय है। रहस्यों का रहस्य तुम्हारे हृदय में समाया हुआ है, तुम्हारी श्वासों में रमा है। तुम कहां राम को खोजते हो? किस मंदिर में? किस काबा में, किस कैलाश में? राम तुम्हारे भीतर बैठा है। तुम भी राम की एक छाया हो। तुम अपने को ही पकड़ लो तो राम पकड़ में आ जाए। तुम अपने को ही जान लो तो राम जानने में आ जाए। भगोड़े मत बनो। जागो!
गुलाल कहते हैं--
सतगुरु घर पर परलि धमारी, होरिया मैं खेलूंगी।।
बड़े प्यारे वचन हैं! कहते हैं, "सतगुरु घर पर परलि धमारी", ... कि सतगुरु हमारे घर पर धूम-धड़ाका करते आ गए हैं। गाजे-बाजे से; नृत्य-संगीत से; जैसे वसंत आए, ऐसे फूलों से लदे आ गए हैं। जैसे संगीत आए, ऐसे स्वरों का नर्तन है। "सतगुरु घर पर परलि धमारी", ... और घर से मतलब है आत्मा का। वही तो हमारा घर है। यह मिट्टी का घर जो तुमने बना लिया है, यह तो घर नहीं। यह तो सराय है। आज ठहरे, कल चले। और यह जो देह है, यह भी सराय है। इस जन्म ठहरे, अगले जन्म चले। इस देह के भीतर जो चैतन्य है तुम्हारा, जो आत्मा है, तुम्हारी, वही असली घर है। जो छिने न, वही घर है। जो छीना जा सके ही न, वही घर है। जो शाश्वत है, जो सदा हमारा है, जिससे हम दूर होना भी चाहें तो न हो सकें, वही घर है। उसी घर की ही तो तलफ है, उसी घर की ही तो प्यास है, उसी ही घर की तो हम खोज में लगे हैं।
गुलाल कहते हैं, कैसा चमत्कार हुआ है! "सतगुरु घर पर परलि धमारी।" सदगुरु बड़े धूम-धड़ाके से मेरे घर में प्रवेश कर गए हैं। सदगुरु तो तुममें भी प्रवेश कर जाएं, लेकिन तुम प्रवेश होने नहीं देते। गुलाल ने हो जाने दिया। तुम द्वार-दरवाजे बंद करके बैठे हो। तुम तो एक सूरज की किरण भीतर प्रविष्ट नहीं होने देते। तुम तो हवा का जरा सा झोंका भीतर नहीं आने देते। तुम तो अपनी गुफा में छिप गए हो। घर तुम्हारा निवास नहीं है, तुमने उसे कब्र बना लिया। तुमने सब तरफ से सब बंद कर दिया है।
किन ईंटों से तुमने अपना घर चुन लिया, दरवाजे चुन लिए, खिड़कियां चुन
ली हैं? किन ईंटों से तुमने सब बंद कर दिया है? जरा उन ईंटों को पहचानो। तुम्हारे विचार की ईंटें, तुम्हारे सिद्धांतों की ईंटें, तुम्हारे ज्ञान की ईंटें, तुम्हारे शास्त्रों की ईंटें। तरह-तरह की ईंटें हैं। क्योंकि तरह-तरह की ईंट बनाने वाले कारखाने हैं। हिंदुओं की अपनी ईंटें हैं, अपना रंग-ढंग है, मुसलमानों की अपनी ईंटें हैं, अपना रंग-ढंग है। और बड़े झगड़े हैं उनमें कि किसकी ईंट अच्छी? और मामला यह है कि ईंट कोई अच्छी नहीं, क्योंकि सभी ईंटें दरवाजे रोक लेती हैं। दरवाजे दीवारें हो गए हैं। तुम अंधे नहीं हो सिर्प तुम्हारे दरवाजे दीवारें हो गए हैं। और तुम्हारा हृदय भी परमात्मा के साथ नाचने को उतना ही तत्पर है जैसे आषाढ़ में मेघ घिर जाते हैं और मोर नाचते हैं। और तुम्हारे प्राण की कोयल भी कूकना चाहती है। मगर अवसर मिले तब। तुम अवसर ही नहीं देते। तुमने सब अवसर छीन लिए हैं।
गुलाल ने अपने हृदय को खुला छोड़ा इसलिए अपने नौकर के सामने झुक सके। बुलाकीराम गुलाल का नौकर था, उनका चरवाहा था। पता नहीं था कि यह बुलाकीराम भी कुछ है। ऐसे पता चलता ही नहीं। जब तक तुम खुले न होओ, किसी क्षण में तुम्हारे दरवाजे खुले मिल जाएं तो ही पहचान होती है। बहुत खबरें आती थीं, लोग कहते थे, यह कहां का नौकर लगा रखा है, यह कुछ ढंग का काम नहीं करता। गाय-बैलों को तो छोड़ देता है जंगल में चरने और खुद बैठ जाता है वृक्षों के नीचे

आंख बंद करके और डोलता है। अलाल है। कामचोर है। वह था रामचोर और लोग समझते थे कामचोर। वह राम को चुराने में लगा था। वह जो आंखें बंद करके डोलता था, वह राम को चुरा रहा था।
जब बहुत शिकायतें आ गईं तो एक दिन गुलाल ने कहा अब आज जाऊं। गुलाल जमींदार थे। जमींदार की अकड़। पहुंचे सुबह-ही-सुबह। और देखा तो कहा कि लोग ठीक कहते हैं। बुलाकीराम को भेजा था खेत में बुवाई करने, बैल तो हल-बखर लिए एक तरफ खड़े थे और बुलाकीराम एक वृक्ष के नीचे मस्त हो रहे थे, आनंद की वर्षा हो रही थी, लूट चल रही थी। बड़ा क्रोध आया। पीछे से जाकर एक लात मार दी। शायद सामने से आ 132 या होगा गुलाल तो लात भी न मार सकता। शायद बुलाकीराम का चेहरा देखा होता तो राम का चेहरा दिखाई पड़ जाता। मगर पीछे से आया, पीठ पर एक लात मार दी। यह पीछे से ही तो हम परमात्मा की पीठ पर लात मारे चले जाते हैं। यह पीछे से ही तो हम छुरे भौंके जाते हैं। सामने-आमने हों तो शायद झेंपें भी, थोड़ी लाज भी खाएं, थोड़ा संकोच भी उठे।
बुलाकीराम गिर पड़ा। लेकिन उसी मस्ती में उठा। चरण छुए गुलाल के और बहुत-बहुत अनुगृहीत, बहुत-बहुत धन्यवाद देने लगा। गुलाल ने पहली दफा गौर से देखा उसे। यह आदमी असाधारण है! मैंने लात मारी और यह धन्यवाद दे रहा है! और आंखों से आनंद के आंसू बहे जा रहे हैं। और बुलाकीराम ने कहा कि धन्य हो, मालिक! जो काम मैं वर्षों में मेहनत करके न कर पाया, जरा-से इशारे में कर दिया। जरूर उस बड़े मालिक ने ही भेजा है। वह भी मेरा मालिक, तुम भी मेरे मालिक। मालिक ने ही तुम्हें भेजा होगा। तुम छोटे मालिक, वह बड़ा मालिक, मगर बिना उसके इशारे के तुम नहीं आए हो। और क्या लात मारी कि बुलाकीराम को रास्ते पर लगा दिया! जरा सी भूल हो रही थी; बस, जब भी ध्यान करने बैठता था तो एक खराबी थी मेरी, गरीब आदमी हूं, एक जून रोटी मिल जाए वही बहुत, और देख ही रहे हैं आप कि सारी दुनिया मुझे अलाल कहती है, कामचोर कहती है, और फुरसत भी मुझे नहीं--इस मस्ती से समय बचे तब न, तो कुछ और करूं--जो कुछ आप दे देते हैं, उससे बस बाल-बच्चों को एक समय का भोजन मिल जाता है, तो मन में एक आकांक्षा, एक अभीप्सा है कि कभी संतों को घर निमंत्रण करूं, संन्यासियों को बुलाऊं, साधुओं को बुलाउं, उनको भोग लगाऊं, छत्तीसों प्रकार के भोजन बनाऊं। तो यह कर तो नहीं सकता, यह मेरी हैसियत नहीं, सो रोज जब ध्यान में बैठता हूं तो बस, यही वासना मुझे पकड़ लेती है। बस, ध्यान में मैं मन ही मन में बड़े-बड़े संतों को निमंत्रण देता हूंः आओ! सब आओ!! सबको भोजन का निमंत्रण दे आता हूं। और क्या-क्या भोजन बनाता हूं, मालिक!
बस, ऐसा ही भोज चल रहा था अभी, जब आपने लात मारी। सब परोस चुका था, बस दही परोसने को रह गया था; दही की हंडिया लेकर परोसने जा रहा था कि आपने लात मार दी। दही की हंडिया गिरी, दही छितर-बितर हुआ, हंडिया फूट गई, संत इत्यादि तिरोहित हो गए--क्योंकि थी तो सब कल्पना ही--और एक क्षण में उस कल्पना के तिरोहित होते ही मन निर्विचार हो गया। बस, एक ही विचार अटका रखा था। वह विचार भी आपने लात मार कर तोड़ दिया। कितने आपके चरण छुऊं!
गुलाल की तो समझ के ही बात बाहर हो गई! आंख फाड़-फाड़ कर देखा इस नौकर को! चारों तरफ उसके रोशनी थी। एक मधुर जैसे संगीत बज रहा हो। एक सुगंध उड़ रही थी। गुलाल चरणों पर गिर पड़ा। और उसने कहा, हे सदगुरु, मुझे क्षमा करो! उस दिन बुलाकीराम बुल्लाशाह हो गया। और जब उसका मालिक उसका शिष्य हो गया तो बहुत शिष्य हुए बुल्लाशाह के। मगर वह जिंदगी भर कहता रहा कि कुछ भी हो, गुलाल कुछ भी कहे, लेकिन इसकी बिना लात के कुछ भी नहीं हो सकता था। इसकी लात में परमात्मा ने ही लात मारी। वही इसके बहाने आया।
अब गुलाल कह रहे हैंः "सतगुरु घर पर परलि धमारी", ... हमारे घर पर सतगुरु बड़े धूम-धड़ाके से आ गया। यह बुल्लाशाह की ही याद कर रहे हैं।... "होरिया मैं खेलौंगी।" और अब मैं क्या करूं? होली खेलूं? फाग रचाऊं? भरूं रंग में पिचकारी? फेंकूं रंग? उड़ाऊं गुलाल? और क्या करूं! उत्सव मनाऊं! जूथ जूथ सखियां सब निकरीं, परलि ग्यान कै मारी।।
और मैं अकेला ही नहीं हूं इसमें। "जूथ जूथ सखियां", ... झुंड के झुंड सखियां आ रही हैं। शिष्य तो सखी ही हो जाता है। शिष्य की जो परम अवस्था है, वह सखी की ही अवस्था है। गुरु व्यक्ति नहीं रह जाता है। व्यक्ति मिट जाता

है तभी तो गुरु होता है। गुरु तो केवल प्रतीक रह जाता है परमात्मा का। और परमात्मा ही एक मात्र पुरुष है, बाकी तो सब सखियां हैं। और इतना समर्पण न हो, इतना प्रेम न हो, इतनी प्रीति न हो, तो शिष्यत्व बनता ही नहीं। इसलिए ठीक ही कहते हैं गुलालः "जूथ जूथ सखियां सब निकरीं।" मैं ही अकेला नहीं निकल पड़ा हूं होली खेलने, झुंड के झुंड सखियां आ रही हैं।
बुल्लाशाह के पास बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई दीवानों की, मस्तों की। शमा जलती है तो परवाने आते ही हैं। बुल्लाशाह के पास बहुत उत्सव हुआ, बहुत नृत्य सघन हुआ, बहुत गीत घने हुए, बहुत वर्षा हुई अमृत की।
जूथ जूथ सखियां सब निकरीं, परलि ग्यान कै मारी।।
इन सबको क्या हो गया है? ज्ञान ने इनके जीवन में धूम मचा दी। एक तो किताबी ज्ञान है, वह क्या ख़ाक धूम मचाएगा! धूल भला इकट्ठी हो जाए, धूम तो बिल्कुल न मचेगी। धुआं भला उठ जाए, धूम तो न मचेगी। दर्पण और गंदा भला हो जाए, निर्मल तो नहीं होगा। रट लो कुरान, गीता--कितने तो लोग रटे बैठे हैं! क्या होगा रटने से? तोतों की तरह रटे जाते हो। यह तो तोते भी कर लेते हैं, यह तुम क्या कर रहे हो! आदमी हो तुम, अपनी इतनी बेइज्जती तो न करो। और मेरे देखे, तोतों में भी थोड़ी ज्यादा अक्ल होती है ये तुम्हारे पंडितों की बजाय। ये जो पोंगा-पंडित, ये पोंगा--पंथी चारों तरफ इकट्ठे हैं, इनसे तोतों में भी थोड़ी ज्यादा अक्ल होती है।
एक महिला एक तोता खरीद लाई। बड़ी धार्मिक महिला थी। तोता प्यारा था। लेकिन जिसने बेचा, उसने कहा कि जरा ख्याल से ले जाएं, यह तोता जरा गलत संगसाथ में रहा है। अब आप तो जानती ही हैं सत्संग। जैसे सत्संग होता है, ऐसे ही दुष्टसंग भी होता है। यह दुष्टसंग में रहा है। तो यह कभी-कभी उलटी- सीधी बातें कह देता है। इसका बुरा न मानना। तोता ही है! इसका कोई भाव बुरा नहीं है, भाव इसका है ही नहीं कुछ। शब्द सीख लिए हैं, अंट-शंट बोल देता है, मगर अभिप्राय इसका कुछ भी नहीं है, बिल्कुल कोरा है। तो अगर इतनी तैयारी हो तो ले जाओ। मगर तोता इतना प्यारा था कि उस महिला ने कहा, कोई फिकर न करो, सुधार लेंगे हम।
हर सोमवार को पंडित जी आते थे। जैसे पंडित जी होते हैं। रहे होंगे पोंगापंथी। आकर कुछ पूजा-पत्री करवा जाते थे। कहीं तोता कुछ अंट-संट न बोल दे, पंडितजी को नाराज न कर दे--क्योंकि महिला जब घर लाई तब उसे पता चला कि तोता बोलता तो अंट-संट है। कुछ भी कह देता है! कोई अंदर आए, कहता है--अबे, हरामजादे! अब पंडित जी से कह दे तो गड़बड़ हो जाए। हर किसी से कह देता--उल्लू के पट्ठे! तो जैसे ही पंडित जी घर में आए, वह जल्दी से एक कंबल उढ़ा दे तोते के पिंजरे पर। कंबल ओढ़ने से तोता समझ जाए कि पंडित जी आ गए। सो चुपचाप रहे। सोमवार को आते थे। सो हर आठवें दिन तोते पर कंबल डाला जाता था। एक बार ऐसा हुआ कि सोमवार को भी आए और मंगल को कुछ काम पड़ गया पंडित जी को, सो वे मंगल को भी आ गए। सो जल्दी से महिला ने कंबल फेंका। तोता भीतर से बोलाः अरे, हरामजादे! आज तो मंगलवार ही है! आज ही आ गए पोंगा पंडित! दिन की भी खबर नहीं! उठाया मुंह, चले आए!
इतनी अकल तो तोते में है कि सोमवार के बाद मंगलवार आएगा--एकदम से सोमवार कैसे आ गया फिर से! आठ दिन लगते हैं आने में। लेकिन जिसको तुम पंडित कहते हो, उसको इतनी भी अकल नहीं होती। वह केवल मुर्दा शब्दों को दोहराए चला जाता है। उससे पूछो, ईश्वर है, तो वह कहता है--है। रंच-मात्र अनुभव नहीं, रत्ती भर प्रतीति नहीं, कोई साक्षात्कार नहीं है, कोई पहचान नहीं, कोई मुलाकात नहीं, कहता है--है! जरा झकझोरो उसे और जरा खोज-बीन करो और तुम चकित हो जाओगे कि वह निपट अज्ञानी है, सिर्प यंत्रवत दोहरा रहा है। तुम जो कह रहे हो, इसी को सुन कर दोहराओगे।
एक तोता दूसरे तोते को सिखा देता है। ऐसे लोग दोहराए चले जाते हैं। मनुष्य-जाति की प्रतिभा इतनी क्यों खो गई है? जहां पंडितों का जितना प्रभाव है, वहां उतनी ही प्रतिभा कम है। अगर भारत आज प्रतिभा में सारी दुनिया में पिछड़ गया है, तो उसका सबसे बड़ा कारण हैः भारत में पंडितों का बहुत प्रभाव है। जब तक इन पंडितों से छुटकारा न होगा, भारत की प्रतिभा मुक्त नहीं हो सकती। क्योंकि ये खुद तोते हैं और दूसरों को तोते बनाए हुए

हैं। ये राम-राम जपते रहते हैं और दूसरों को राम-राम जपाते रहते हैं। और इनको पता है कि, राम-राम जपने से कुछ नहीं होता। जिंदगी भर इनको जपते हो गई, कुछ भी नहीं हुआ। और हमें यह भी मालूम है कि बाल्मीकि तो मरा-मरा जप कर भी राम को पा गया, और ये राम-राम जपकर भी नहीं पा सके तो बात क्या है, मामला क्या है? बाल्मीकि के जपने में हार्दिकता थी, पांडित्य नहीं था। और इनके जपने में केवल थो थी बुद्धि है, हृदय का कोई भी समागम नहीं है।
ज्ञान पंडितों से नहीं मिलता, ज्ञान शास्त्रों से नहीं मिलता, ज्ञान
तो केवल उनसे ही मिल सकता है जो जागे हों, जिनके जीवन की ज्योति जल उठी हो, जिनके प्राण मशाल बन गए हों। उन्हीं के पास तुम अपना बुझा दीया लेकर जाओ तो जल उठे। जिनके खुद के दीये बुझे हैं, उनसे जरा बचना, वे कहीं तुम्हारे जले-जलाए दीये को न बुझा दें। उनसे जरा दूर-दूर रहना। उनके पास दीया तुम जिंदगी भर रखे रहो तो भी न जलेगा। दो बुझे दीये कितनी ही देर पास रहें, कितने ही पास रहें, कुछ भी न होगा। और तुम अपने पंडितों को भलीभांति जानते हो, अपने मौलवियों को भलीभांति जानते हो, अपने पादरियों को भलीभांति जानते हो, इनके जीवन में कुछ भी तो नहीं है। अक्सर तो पाया जाएगा कि तुमसे भी गया-बीता इनका जीवन है। मगर ये शब्दों में कुशल हैं, उद्धरण देने में कुशल हैं।
मैंने सुना है, इंगर सोल नाम का एक बहुत मूल्यवान विचारक हुआ अभी इसी सदी के प्रारंभ में। वह जब भी बोलने खड़ा होता, तो लोग बड़े हैरान थे, वह एक इशारा करता जो किसी की समझ में न आता कि क्या कर रहा है! लोग पूछते तो मुस्कुरा कर रह जाता। जब भी पूछते तभी टाल जाता। इधर-उधर की बातें करता मगर वह इशारे की बात न करता। पश्चिम के बहुत अच्छे बोलने वालों में से एक था। वह जब भी खड़ा होता तो अंगुली से कुछ इशारा करता हवा में और जब बोलना खतम करता तब फिर अंगुली से इशारा करता। मरते वक्त लोगों ने कहा, अब तो बता दो! तुमने और सब रहस्य खोले, मगर यह अंगुली से तुम आकाश में क्या करते हो? शुरू में भी, बाद में भी। उसने कहा, जब अब तुम नहीं मानते तो बताए देता हूं, वह इनवर्टेड कामा.ज बनाता हूं। कि यह अपना कुछ नहीं है, सब उद्धरण है। अब कह सकता हूं, क्योंकि अब तो मौत करीब आ गई है--अब क्या मेरा बिगाड़ लोगे? अब तो जिंदगी चल गई, धंधा चल गया, काम खतम हुआ, अब विदा हो रहा हूं--अब क्या बिगाड़ लोगे? कहे जाता हूं। इसलिए जिंदगी भर मुस्करा कर रह जाता था कि जो भी मैं कह रहा हूं मेरा इसमें कुछ नहीं, सब किताबों का है; सब बासा है, सब उधार है। मगर यह कहूं कैसे? यह कहूं तो धंधा गिर जाए। सो मैंने यह तरकीब निकाली थी।
आदमी ईमानदार रहा होगा। कम से कम इतना तो उसने किया कि हवा में इनवर्टेड कामा बना दे। किसी को दिखाई पड़े चाहे न दिखाई पड़े, समझ में आए कि न समझ में आए, बाद में इनवर्टेड कामा बंद कर दे, खत्म।
तुम्हारे पंडितों में इतनी भी समझ नहीं है। वे तो अक्सर इस भ्रांति में पड़ जाते हैं कि खुद ही बोल रहे हैं। बोलते-बोलते, बोलते-बोलते भूल ही जाते हैं कि कृष्ण का वचन तुम्हारा वचन नहीं हो सकता, जब तक कि तुम कृष्ण की चेतना को उपलब्ध न हो जाओ। और बुद्ध का वचन तुम्हारा वचन नहीं हो सकता, जब तक तुम्हारे भीतर बुद्धत्व फलित न हो जाए। उड़े वही गंध, जगे वही ज्योति, तो ही तुम जो कह रहे हो वह सत्य हो सकता है। और जब भी कभी ऐसा सत्य होता है, तो यह घटना घटती हैः जूथ जूथ सखियां सब निकरीं, न मालूम कहां से छिपे हुए लोग चले आते हैं। दूर-दूर से लोग चले आते हैं। नाचते-गाते चले आते हैं। कैसे खबर हो जाती है? जैसे फूल खिलता है तो मधुमक्खियों को खबर हो जाती है--दूर, मीलों दूर; चलीं मधुमक्खियां, मधुछत्ते खाली होने लगते हैं। फूल खिल गए।
वैज्ञानिकों ने बहुत शोध की है मधुमक्खियों पर और वे कहते हैं कि मधुमक्खियों के पास भी भाषा है। ज्यादा शब्द नहीं हैं उनकी भाषा में, चार शब्द हैं। कम से कम चार का वैज्ञानिक पता लगा पाए हैं! वे शब्द बड़े महत्वपूर्ण हैं।
एक मधुमक्खी को पता चल जाता है कहीं, भूली-भटकी पहुंच गई गुलाब के फूल
के पास, तो मधुमक्खियां आदमियों जैसी कंजूस नहीं हैं कि कब्जा कर लें

गुलाब पर, कि कहे कि मैंने पहले पाया, यह मेरा है, कि दूसरी किसी मधुमक्खी को इस पर न बैठने दूंगी, नहीं, वह गुलाब को छूती भी नहीं, वह पहला काम यह करती है कि भागती है मधुछत्ते की ओर--मीलों दूर होगा मधुछत्ता--और जाकर मधुछत्ते के पास नाचती है। यह नाचना उसका एक प्रतीक है। यह एक शब्द हुआ। खास ढंग से नाचती है। अगर फूल पूरब में खिला है तो एक ढंग से नाचती है, अगर पश्चिम में खिला है तो दूसरे ढंग से, अगर दक्षिण में खिला है तो तीसरे ढंग से, अगर उत्तर में खिला है तो चौथे ढंग से। चारों दिशाओं के नाच हैं उसके। वह नाच कर बता देती है किस दिशा में फूल खिले हैं। और फिर उड़ चलती है। और सारा मधुछत्ता उसके पीछे हो लेता है।
एक व्यक्ति को भी जब सदगुरु का पता चल जाता है, तो वह भी क्या करेगा, और क्या करेगा, नाचेगा! नाचकर खबर देगा कि उत्तर, पश्चिम, पूरब, दक्षिण, कहां? जूथ जूथ सखियां सब निकरीं, परलि ग्यान कै मारी।।
ज्ञान की धूम मच गई है। सद्गुरु के पास ज्ञान का महोत्सव चल रहा है। यही वास्तविक यज्ञ है। हवन-कुंड बाहर नहीं बनाने होते, प्राणों से बनाने होते हैं। गेहूं और घी जलाने से कुछ भी न होगा। मूढ़तापूर्ण कृत्य कर रहे हो, बरबादी कर रहे हो। करोड़ों का घी और गेहूं हर साल यहां जलाया जाता है। और लाखों मूढ़ इकट्ठे होकर सोचते हैं कि कोई महान कार्य कर रहे हैं! हवन-कुंड भीतर बनाना होता है। और अगर जलाना हो तो कुछ भीतर जलाओ। कूड़ा-करकट भीतर काफी है जलाने को। शास्त्रीय ज्ञान जलाओ, शब्द जलाओ, विचार जलाओ, सिद्धांत जलाओ--सब को जला कर राख कर दो--कि तुम निःशब्द हो जाओ, मौन हो जाओ, कि तुम शून्य हो जाओ। उसी शून्य में पूर्ण का पदार्पण होता है। और उस पूर्ण के आने के पहले सद्गुरु आता है और धूम-धड़ाके से आता है।
सतगुरु घर पर परलि धमारी, होरिया मैं खेलौंगी।।
जूथ जूथ सखियां सब निकरीं, परलि ग्यान कै मारी।।
अपने पिय संग होरी खेलौं, लोग देत सब गारी।।
शिष्य का और गुरु का संबंध तो प्रेम का संबंध है, प्रीति का संबंध है।
वह तो प्रेम सगाई है। उससे बड़ी कोई सगाई नहीं। गुरु और शिष्य का संबंध वैसा संबंध नहीं है जैसा साधारणतः विद्यार्थी और शिक्षक का होता है। वह तो दो कौड़ी का संबंध है। उसका कोई मूल्य है! गुरु और शिष्य का संबंध बड़ी और बात है। यह विद्यार्थी और शिक्षक का संबंध नहीं है। गुरु-शिष्य का संबंध हार्दिक है, विद्यार्थी-शिक्षक का संबंध बौद्धिक है। हार्दिक संबंध प्रेम का होता है, तर्क का नहीं होता। यह कोई विवाद नहीं है। गुरु ने कोई तर्क दे-दे कर शिष्य को राजी नहीं कर लिया है कि जो मैं कहता हूं वह सही है। वह तो गुरु को देखा है और शिष्य को सिद्ध हो गया है कि बात सही है। वह तो गुरु के पास बैठा है और सिद्ध हो गया है कि बात सही है। बात कही नहीं गई और सुन ली गई है। शब्द बोले नहीं गए और पहुंच गए हैं। यह तो गंध है एक, यह तो संगीत है एक। और यह प्रेम में ही सुना जा सकता है।
अपने पिय संग होरी खेलौं, ...
और मैं अपने प्यारे संग होरी खेलती हूं--गुलाल कह रहे हैं--और लोग भी अजीब हैं कि लोग गालियां दे रहे हैं। लोग सदा से ऐसे ही रहे हैं। न खुद होली खेलेंगे, न दूसरों को खेलने देंगे। उन्हें बड़ा कष्ट हो जाता है किसी को मस्ती में देखें तो। कोई गीत गाए तो उनको एकदम गालियां सूझती हैं। क्या करें बेचारे, उनके भीतर गालियां ही लगती हैं! उनका कसूर भी नहीं। उन पर नाराज भी न होना। उन्हें क्षमा करना। कोई क्या कर सकता है; बबूल में कांटे लगते हैं। अब तुम बबूल में कोई कमल थोड़े ही लगाओगे! लोगों के प्राण बबूल हो गए हैं, कांटों से छिदे हैं। खुद कांटों से छिदे हैं, खुद पीड़ा में हैं, खुद नरक में जी रहे हैं, तो जब दूसरे को मस्त देखते हैं, मगन देखते हैं, तो उनकी ईर्ष्या का अंत नहीं रह जाता, उनके भीतर से गालियां फूट पडती हैं।
यह सदियों की कथा है। इसमें रंचमात्र फर्क नहीं पड़ा है। आज भी नहीं पड़ा। आगे भी पड़ेगा नहीं। क्योंकि अधिक हिस्सा मनुष्य-जाति का दुख में ही जीने के लिए तय कर लिया है। दुख में जीने का कुछ मजा है। कुछ लोग हैं जो दुख में ही सुख पा रहे हैं। उनसे दुख छीन लो तो बड़े दुखी हो जाएंगे। उन्होंने जंजीरों को आभूषण समझ लिया है और कारागृह को घर समझ लिया है। उनकी

भ्रांतियां बड़ी अद्भभुत हैं। उन्होंने सपनों को सत्य मान लिया है। इसलिए जब वे किसी व्यक्ति को जागते देखेंगे नींद से, तो उन्हें बेचैनी होगी, बरदाश्त के बाहर होने लगेगा वह आदमी, उसकी मौजूदगी उन्हें जमेगी नहीं। वे गालियां देंगे।
तो जब तुम्हें गालियां पड़ें, तो मुस्कराना। जानना कि यह तो पुराना नियम है।... रघुकुल रीत सदा चलि आई! ... यह तो चलता ही रहा। यह कोई नया काम नहीं कर रहे बेचारे, यह तो पुराना काम है, सदा से होता रहा, अब भी करेंगे। ये गालियां न दें तो थोड़ा चौंकना कि बात क्या है! किसी ने इनके ऊपर कंबल उढ़ा दिया है या क्या मामला है? गालियां दें, बिल्कुल ठीक, सम्यक, इतिहास से बात मेल खाती है। गालियां न दें, तो थोड़ा चौंकना कि मामला क्या है? अंधे हैं, बहरे हैं, क्या बात है? इनको दिखाई नहीं पड़ रहा?
अपने पिय संग होरी खेलौं, ...
गुलाल कहते हैं, मैं तो किसी का कुछ बिगाड़ नहीं रहा, अपने पिया के संग होली खेल रहा हूं--मगर लोगों को क्या हुआ है! लोग कितने कष्ट उठा कर गालियां देते हैं! कितना श्रम करते हैं गालियां देने में। इतने श्रम से तो अपने ही गीत बना लेते हैं। इतने श्रम से तो उनका जीवन भी उत्सव हो सकता था, उनके जीवन में भी बांसुरी बज सकती थी। लेकिन अजीब हैं लोग। बांसुरी बजाने में उनका रस नहीं है, किसी और की बजे, इससे भी उन्हें विरोध है। हर आदमी चाहता है कि दूसरे लोग मेरे जैसे ही दुखी रहें। दुखी आदमियों को देख कर उसको तृप्ति मिलती है कि ठीक, सब हमारे ही जैसे हैं। सुखी आदमी को देख कर उसे शक पैदा होता है। अब दो बातें खड़ी हो जाती हैं, दुविधा खड़ी हो जाती है-- क्या मैं गलत हूं? अगर यह आदमी सही है तो मैं गलत हूं। मगर कोई अपने को गलत नहीं मानना चाहता। अहंकार के विरोध में है यह बात, अपने को गलत मानना। तुमने कई दफा देखा होगा, विवाद में तुम्हें साफ समझ में आ जाता है कि तुम गलती पर हो, मगर फिर भी अपनी बात पर अड़े रहते हो। लोग कहते हैं, टूट जाएंगे मगर झुकेंगे नहीं; मिट जाएंगे, मगर अपनी बात पर डटे रहेंगे। गलत-सही का सवाल कहां है, सवाल "मेरी" बात का है। तो जब भी तुम देखते हो कोई मस्त है, आनंदित है, तुम्हें पीड़ा होती है; तो कौन सही है? यह आदमी सही है? और तुम्हें एक सुगमता है। क्योंकि भीड़ तुम्हारे जैसी है, उस जैसी नहीं, तो तुम कह सकते हो कि भीड़ गलत नहीं हो सकती। इतने लोग कैसे गलत हो सकते हैं! जॉर्ज बर्नार्ड शॉ से किसी ने कहा--किसी बात के संबंध में; बर्नार्ड
शॉ कुछ कह रहा था--उस आदमी ने कहा कि आप अकेले यह बात कहने वाले हैं, आखिर सारे पृथ्वी के करोड़-करोड़ लोग गलत कैसे हो सकते हैं! और तुम्हें पता है बर्नार्ड शॉ ने क्या कहा? बर्नार्ड शॉ ने कहाः मैं यह पूछता हूं कि करोड़-करोड़ लोग सही कैसे हो सकते हैं! क्योंकि सही तो कभी कोई एकाध होता है। इतने लोग अगर इस बात को मानते हैं तो गलत ही होगी बात, नहीं तो इतने लोग मान ही नहीं सकते। बुद्ध तो कोई कभी होता है, कबीर तो कोई कभी होता है, नानक तो कोई कभी होता है, मोहम्मद, जीसस तो कोई कभी होता है, अधिक भीड़ तो मूढ़ों की है। भीड़ तो भेड़ों की है। उनकी चाल भेड़ों की है। यह बात मत कहना, इतने लोग मानते हैं तो कैसे गलत मानते होंगे! मगर अहंकार हमारा इसमें तृप्ति पाता है, आश्वासन पाता है। इतने लोग मानते हैं और हम भी यही मानते हैं, तो यही ठीक होना चाहिए। फिर इस आदमी को क्या हो गया? यह आदमी पागल है। यह आदमी विक्षिप्त है। या यह आदमी पाखंडी है। या यह ढोंग कर रहा है। आनंदित होने का ढोंग कर रहा है।
तुम्हारा क्या बिगाड़ रहा है? अगर आ नंदित होने का ढोंग भी कर रहा है तो
भी तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं रहा है। कम से कम दुखी होने का ढोंग करने से तो बेहतर आनंद करने का ढोंग है। अगर गीत गा रहा है तो किसी का कुछ हर्जा नहीं कर रहा है। अगर नाच रहा है तो किसी का हर्जा नहीं कर रहा है। और अगर अपने प्यारे के संग होली खेलने चला है, गुलाल उड़ा रहा है, तो तुम्हारा क्या बिगाड़ रहा है? हां, धूल उड़ाए तो तुम्हें जंचती है बात!
तुम देखते हो न, होली की भी लोगों ने कैसी दुर्गति कर दी है! गुलाल वगैरह कम उड़ती है आजकल, धूल ज्यादा उड़ती है। रंग-वंग तो कोई फेंकता ही नहीं, कोलतार! गोबर घोलकर एक-दूसरे को पोत रहे हैं। लोगों की बुद्धि तो

देखो! वसंत का उत्सव गोबर घोलकर मनाया जा रहा है। नाली की कीचड़ निकाल लाते हैं लोग।
मैं रायपुर में कुछ दिनों तक था। होली करीब आने वाली थी। सामने के सज्जन को मैंने देखा कि वे अपनी नाली में कुछ ईंटें लगा रहे हैं। मैंने कहाः क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि रोक रहे हैं, होली आ रही है, तो इकट्ठा कर रहे हैं। इसी में पटकेंगे लोगों को।
एक तो रायपुर जैसी गंदगी किसी और नगर में खोजना मुश्किल। रायपुर तो
हद है। लोग बड़े अभेदभाव को मानते हैं। भेदभाव नहीं करते। कहीं भी पाखाना करेंगे, कहीं भी पेशाब करेंगे--कोई भेदभाव करता ही नहीं। कहां संडास है, कहां सड़क है, इसमें कोई भेदभाव नहीं। अद्वैतवाद। वेदांती हैं लोग। मुझे अपने घर से कालेज तक जाना पड़ता था, कोई डेढ़ मील का फासला था, मैं देख कर दंग रह जाता था, लोग कहीं भी बैठे हैं! महा गंदा नगर है रायपुर। और वहां की नाली को रोक रहे हैं वे ईंटें लगा कर। ग 167ा तैयार कर रहे हैं, होली आ रही है! लोगों ने वसंत के उत्सव को, आनंद के उत्सव को भी कीचड़ फेंकने का उत्सव बना दिया। और तुम देखते हो, लोग होली पर गालियां बकते हैं। साल भर इकट्ठी करते हैं गालियां, होली पर दिल खोल कर निकाल लेते हैं। जिन-जिन को देना थी गाली और नहीं दे सकते थे--क्योंकि हर वक्त गाली दो तो झंझट खड़ी हो जाए--दिल खोल कर होली पर गालियां दे लेते हैं। गीत गाने का उत्सव गालियों में गिर गया। रंग उड़ाने का उत्सव नालियों में गिर गया। आदमी कैसा है! यह हर चीज को विकृत कर लेता है। हर चीज को खराब कर लेता है। इसके हाथ में सोना लग जाए, मिट्टी हो जाता है। अब होली तो हमारा सबसे सुंदर उत्सव था। रंगों का उत्सव, मदमस्ती का उत्सव, गीत गाने का उत्सव, नाचने का उत्सव, ढोल पर ताल पड़े, लोगों के पैरों में घूंघर बंधें। नहीं, वह सब खो गया। लोग गालियां बक रहे हैं। गंदी से गंदी गालियां बक रहे हैं। और गंदे से गंदा मलमूत्र एक-दूसरे के ऊपर फेंक रहे हैं। और इसको कहते हैं होली।
अगर रंग भी पोतते हैं तो ऐसी दुष्टता से पोतते हैं कि रंग तो सिर्प बहाना ही होता है, दुष्टता ही असली चीज होती है। तुम उनको रंग भी पोतते देखो तो तुम देख लोगे कि रंग पोतना उनका इरादा नहीं है, इरादा तो यह सताना है तुम्हें। रंग भी ऐसा खरीद कर लाते हैं कि तुम धो-धो कर मर जाओ तो निकल न सके। इस देश में हर चीज का रंग कच्चा, सिर्प होली पर पक्का रंग मिलता है-- पता नहीं कहां से मिल जाता है? कोई कपड़े का रंग पक्का नहीं, मगर होली के लिए बचा कर रखते हैं पक्का रंग।
अपने पिय संग होरी खैलौं, लोग देत सब गारी।।
अब खेलौं मन महामगन ह्वै, छूटलि लाज हमारी।।
लेकिन वे कहते हैं कि हमें तो लाज भी नहीं रही; हमने तो लोकलाज भी खो दी। अब लोग गाली दें तो गाली दें, हमें तो बेचैनी भी नहीं होती। किसको हो बेचैनी? जिस मन को बेचैनी होती थी, वह तो डूब गया। हम तो महामगन हो गए। हम तो बचे ही नहीं जिसको चोट लग सकती थी। वह अहंकार ही न रहा जिसको तुम घाव कर सकते थे।
अब खेलौं मन महामगन ह्वै, छूटलि लाज हमारी।।
रंगों की बौछार कर रही संध्या पावस की!

दूर दीखता रंगमहल वह, जिसके.फीरोजे के छज्जे;
सोने की दीवारें जिसकी, महराबी मानिक-दरवज्जे;
जाते-जाते उझक गई रे संध्या पावस की!
रंगों की बौछार कर रही संध्या पावस की!

इंद्रनील के आसमान में दिखते रंग-बिरंगे बादल, कहीं इंद्रधनु के रंगों से भर जाता है शून्य दिगंचल, वह धनुषई चीर लहराती संध्या पावस की!
रंगों की बौछार कर रही संध्या पावस की!

कहीं बैंगनी, कहीं जामुनी, कहीं कत्थई, कहीं सुरमई,

लाल-सुनहरे सौ रंगों से आसमान को सांझ भर गई;
इन रंगों में डुबो गई मन संध्या पावस की!
रंगों की बौछार कर रही संध्या पावस की!

मेरे प्राण परिंदों-से ही डूब-डूब जाते रंगों में;
संध्या के सौ रंग सौ तरह भर जाते मेरे अंगों में;
आज गगन-मन में दमकी रे संध्या पावस की!
रंगों की बौछार कर रही संध्या पावस की!
जो डूबा, उसे क्या फिकर? कौन गाली देता है, कौन पत्थर मार जाता है, कौन अपमान करता है, यह सब अर्थहीन हो गया। उसके भीतर वह अहंकार ही न बचा जिसके लिए इन सारी बातों की सार्थकता थी।
शिष्य होने के लिए यह जरूरी शर्त है कि आदमी लोकलाज छोड़ दे। नहीं तो लोकलाज तुम्हें बांधे रखती है भीड़भाड़ से। तुम उससे कभी मुक्त नहीं हो पाते। लोकलाज की व्यवस्था तुम्हें भीड़भाड़ से बांधे रखने की व्यवस्था है। वह इस बात की व्यवस्था है कि कभी भीड़ को छोड़ना मत, नहीं तो भीड़ बदला लेगी, बहुत सताएगी। राज-पथ मत छोड़ना भीड़ का। चाहे राज-पथ कहीं पहुंचे या न पहुंचे, मगर चलना राजपथ पर। जहां सब चलते हों, वहीं चलना। सब ग 167े में गिरें तो तुम भी गिरना, मगर रहना सबके साथ। अलग-थलग मत हो जाना, अपनी कोई पगडंडी मत पकड़ लेना। और धर्म पगडंडी है, राजपथ नहीं है।
प्रत्येक व्यक्ति को एक न एक दिन भीड़ का साथ छोड़ देना होता है। भीड़ को छोड़ते ही तो तुम पहली बार परमात्मा के साथ होने की सामर्थ्य प्रगट करते हो। लोगों ने भीड़ को परमात्मा बना लिया है, भीड़ को धर्म बना लिया है। ईसाई चला जाता है हर रविवार को चर्च में; किसलिए? तुम सोचते हो चर्च से कुछ लेना-देना है, कि क्राइस्ट से कुछ लेना-देना है। नहीं, वह जो ईसाइयों की भीड़ है, उसको राजी रखना है। अगर रविवार को चर्च न जाओ तो वह भीड़ नाराज होती है। लोग पूछने लगते हैं, क्यों नहीं आए, क्या बात है? क्या नास्तिक हो गए? क्या जीसस को विस्मरण कर दिया? अब कौन इन झंझटों में पड़े! फिर इन्हीं लोगों से हजार काम हैं। लड़के-बच्चों की शादियां करनी हैं, दुकान भी चलानी है, बाजार भी चलाना है, इन पर हर तरह से निर्भर भी रहना है, सुख-दुख का साथ है, जरूरत पड़ती ही है सभी को एक-दूसरे की, कौन झंझट मोल ले, बेहतर है एक घंटा हो आओ चर्च। सो लोग मंदिर हो आते हैं, मस्जिद हो आते हैं। न मस्जिद से लेना, न मंदिर से कुछ लेना, न चर्च से कुछ प्रयोजन, न सिनागॉग, न गुरुद्वारे से, भीड़ से डर है कि न गए तो भीड़ अड़चन खड़ी करेगी। और भीड़ अड़चन खड़ी करती है। हुक्का-पानी बंद! जितना छोटा गांव, उतनी ज्यादा उपद्रव करती है। क्योंकि छोटे गांव में हरेक को हरेक का पता होता है।
मेरे देखे दुनिया से छोटे गांव मिट जाएं तो दुनिया में स्वतंत्रता बढ़ेगी। जब तक छोटे गांव हैं दुनिया में, स्वतंत्रता नहीं बढ़ सकती। मैं छोटे गांवों के विरोध में हूं। क्योंकि छोटे गांव का सबसे बड़ा खतरा यह है कि हरेक की नजर हरेक पर लगी रहती है। कहां जा रहे, क्या कर रहे, क्या नहीं कर रहे? कि वहां क्या कर रहे थे? कि उसके पास क्यों बैठे थे? बड़े नगर की कम से कम एक सुविधा है कि सबको सबका पता नहीं रहता कौन क्या कर रहा है, कहां जा रहा है, क्या नहीं कर रहा है। इतनी भीड़भाड़ है कि कहां किसको पता?
जो काम सदियों में नहीं हो सके थे बड़े-बड़े क्रांतिकारियों के द्वारा,
वे छोटी-छोटी चीजों से हो गए। जैसे रेलगाड़ी ने कुछ काम कर दिए। अब रेलगाड़ी कोई क्रांतिकारी चीज नहीं है। क्या रेलगाड़ी को क्रांति से लेना-देना! लेकिन रेलगाड़ी में तुम बैठे हो, चौबीस घंटे का सफर, भोजन तो करोगे न! अब बगल में जो सज्जन बैठे हैं, पता नहीं कौन हों? हों बाबू जगजीवनराम, क्या पता! खादी वगैरह पहने बैठे हैं, मगर हैं तो चमार। अब तुम पूछ भी नहीं सकते कि भइया चमार तो नहीं हो? वे नाराज हो जाएंगे एकदम। और भोजन तो करना ही पड़ेगा। तो राम-नाम लेकर, अपने को जरा सिकोड़ कर कि कोई छू-छुआ न जाए... । कुछ खरीदोगे कहीं! क्या पता कौन बेचने वाला है? हिंदू है, कि मुसलमान है... ! हिंदुस्तान-पाकिस्तान के जब बंटवारे के पहले की स्थिति थी तो तनाव था हिंदू-मुसलमानों में, तो स्टेशनों पर हिंदू पानी और मुसलमान पानी मिलता

था। अब पानी भी हिंदू और मुसलमान, हद हो गई! पानी कैसे हिंदू और पानी कैसे मुसलमान? लेकिन चिल्लाता था आदमी कि हिंदू पानी ले लो, कि मुसलमान पानी ले लो। अब तो कुछ पता लगाना मुश्किल है कि पानी कौन दे रहा है। पानी तो लेना ही पड़ेगा प्यास लगेगी तो। भोजन भी करना ही पड़ेगा। अब डिब्बे में ऐसी भीड़भाड़ है कि चारों तरफ से लोग छू रहे हैं; पता नहीं कौन अछूत है, मगर छुए जा रहा है। और अगर कोई अछूत है तो वह जरूर छुएगा। एक बात पक्की रखना ख्याल में कि अगर कोई ज्यादा छुए तो समझ जाना कि है अछूत। क्योंकि उसको भी मौका मिल गया, वह भी क्यों छोड़े? वह हुद्दे मारेगा। अछूत जगह-जगह हुद्दे मार रहे हैं।
रेलगाड़ी ने क्रांति कर दी। बड़े नगरों ने बड़ी क्रांति कर दी। लोगों को पता ही नहीं है कि तुम कहां गए। रविवार को सुबह घर से चले गए, लोग समझ रहे हैं चर्च गए, तुम मेटिनी शो देख रहे हो! घर लौटते हो तो लोग भी कहते हैं, वाह, तीन-तीन घंटे चर्च में बिताते हो! घर चले आ रहे हैं बड़ा धार्मिक भाव लिए।
पता नहीं कौन कहां जा रहा है, क्या कर रहा है। बड़े नगरों ने बड़ी स्वतंत्रता दे दी है। छोटे नगर में हुक्का-पानी बंद हो जाता था। छोटे नगर में किसी आदमी ने गड़बड़ की, गांव ने तय कर लियाः हुक्का-पानी बंद। हुक्का- पानी बंद, मतलब उसकी जान मुश्किल में पड़ गई! अब उसको कोई बिठाएगा नहीं अपने घर में, बुलाएगा नहीं अपने घर में, शादी-विवाह में सम्मिलित नहीं करेगा-- उसका जीना दूभर हो जाएगा। उसको दुकानदार सामान नहीं देंगे, दर्जी कपड़े नहीं सीएंगे, नाई बाल नहीं बनाएगा--उसकी तुम जान ले लोगे। उसको झुकना पड़ेगा। उसको कहना पड़ेगा कि भइया, माफ करो! जो कुछ दंड हो, वह दंड देने को तैयार हूं। दंड क्या है कि भोजन कराओ। पहले ब्राह्मणों को, फिर पूरे गांव को। कन्याओं को भोजन कराओ। शहर में एक फायदा है, कन्याएं हैं ही कहां! कोई झगड़ा ही नहीं है। और कौन ब्राह्मण है, कुछ पक्का नहीं है। जिसको जो दिल में आए, वह लिख लेगा, शहर में पता ही नहीं चलता। कल तक आदमी वर्मा था, आज शर्मा हो गया। खतम। कोई क्या बिगाड़ लेगा? किसी को पक्का पता ही नहीं कि कौन-कौन है!
मैं विश्वविद्यालय में प्रोफेसर था तो मुझसे जगह-जगह लोग पूछते थे कि आपने दाढ़ी क्यों बढ़ा ली? स्वाभाविक प्रश्न क्योंकि लोग दाढ़ी नहीं बढ़ाते। बनारस में मैं एक नानक-जयंती पर सिक्खों के समाज में बोलने गया। मैं नीचे उतरा, एक सरदारजी ने पूछा कि सरदार जी, आपने बाल क्यों कटा लिए? यह बात जंची! अब तक लोग पूछते थे दाढ़ी क्यों बढ़ा ली, तुम पूछ रहे हो कि बाल क्यों कटा लिए? हर चीज में आदमी की मुसीबत है। कुछ करने दोगे भइया, कि नहीं करने दोगे?
छोटी जगह तो हर छोटी चीज पर सवाल उठाया जाएगा। जैसे लोग रहते हैं वैसे तुम्हें रहना होगा।
दुनिया में स्वतंत्रता का जो प्रवाह आया है इतना, उसका बड़ा कारण यह है
कि छोटे नगर खो गए हैं; बड़े नगर। धीरे-धीरे छोटे नगर विदा हो जाने चाहिए। उससे मनुष्य को गति मिलेगी, स्वतंत्रता मिलेगी, भीड़ से छुटकारा मिलेगा। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि बड़े नगरों में भीड़ ज्यादा है, मगर भीड़ से छुटकारा हो जाता है। फुरसत किसको, कोई किसी को देखता ही नहीं कि कौन कहां भागा जा रहा है! तुम बंबई में देखो न! मोहल्ले वाले भी शायद ही तुम्हें पहचानें कि आप कौन हो। एक ही मकान में रहते हैं, एक ही लिफ्ट में ऊपर आते- जाते हैं, मगर किसको पता कौन कौन है? किसको पड़ी? अपनी ही भागा-दौड़ इतनी है कि कौन किसकी पूछे?
लेकिन पुराने दिनों में धर्म के नाम पर यह सामाजिक जबरदस्ती बहुत जोर
से चलती रही। अब भी चलती है। जिस मात्रा में चला सकते हैं, वे अब भी चलाते हैं। उसकी सबसे आसान तरकीब जो थी वह थी कि लोगों को लज्जा से भर दो; कि तुम पापी हो, अधार्मिक हो, नारकीय हो, सड़ोगे नर्को में। तुम गुरुद्वारे क्यों नहीं आए? तुम गिरजा क्यों नहीं आए? तुम मंदिर क्यों नहीं आए? सत्यनारायण की कथा क्यों बंद कर दी? अब तुम हनुमान जी के मंदिर में पूजा करते नहीं दिखाई पड़ते!

शिष्य वही हो सकता है जो इस तरह की सब लाज-शरम छोड़ दे। जो कहे, मैं तो भीतर से जियूंगा। बाहर से बहुत जी लिया, तुम्हारी मान कर बहुत जी लिया, अब तो अपनी ही ज्योति में जीऊंगा--जो छोटी-मोटी अपनी ज्योति है, उसमें ही जीऊंगा। अगर नहीं है ज्योति, तो टटोल-टटोल कर अंधेरे में जीऊंगा, लेकिन अपने से जियूंगा। शायद टटोलते-टटोलते ही दृष्टि मिलनी शुरू हो जाए। दूसरों के पीछे नहीं चलूंगा। नहीं तो लोग एक-दूसरे को पकड़े पीछे चले जा रहे हैं। किसी को पक्का पता नहीं है कि आगे वाला आदमी कहां जा रहा है। मुल्ला नसरुद्दीन मस्जिद गया हुआ था, नमाज पढ़ने। नमाज पढ़ने बैठा तो उसकी कमीज पीछे पाजामे में अटकी होगी, तो उसके पीछे के आदमी ने देखा कि भद्दी लगती है, तो उसने खींच कर उसकी कमीज पाजामे में अटकी थी, उसको बाहर करके मुक्त कर दिया। मुल्ला ने सोचा कि क्या मामला है? उसने कहाः अब झंझट कौन करे, पूछ-ताछ, लोग यह समझेंगे कि अधार्मिक है, इसको इतना भी मालूम नहीं, सो उसने सामने वाले आदमी की कमीज को एक झटका दे दिया। उस आदमी ने सोचा कि भई, कुछ होगा मामला! इस मस्जिद का कोई नियम हो या कोई बात हो! अपन कहो, पूछो, तो लोग कहेंगे, अरे अज्ञानी! सो उसने भी अपने आगे वाले की... । आगे वाले ने कहाः क्यों बे, क्यों मेरी कमीज खींचता है? उसने कहाः भई मुझे मत पूछो, पीछे वाले से पूछो। मुझे मालूम नहीं। मेरी खींची गई, सो मैंने सोचा कि यहां कुछ नियम होगा खींचने का, सो मैंने आपकी खींच दी।
लोग बिल्कुल नकल से जी रहे हैं।
यहां रोज मुझे अनुभव होता है। लोग मिलने आते हैं, पहला आदमी जो करेगा,
तो दूसरा आदमी जो आएगा वह देख रहा है कि पहला आदमी क्या कर रहा है, वह भी वही करेगा। और कुछ पहुंचे हुए पुरुष ऐसे-ऐसे काम कर देते हैं कि क्या करो! अभी एक तीन-चार दिन पहले एक सज्जन आए, उन्होंने पैर में एकदम जोर से अपना सिर रगड़ दिया। अब मैं देख रहा था कि उनके पीछे जो खड़े हैं, वे गौर से देख रहे हैं; यह भी रगड़ेगा! रगड़ा! और जोर से रगड़ा!! भई, जब अगर नियम ही है तो उसका पालन करना पड़ेगा! और फिर चार आदमी कर रहे हों, अपन न करो, बेकार भद्द हो जाए।
मैं बंबई में मृदुला के घर में मेहमान था। एक मित्र बैठे हुए थे और मिनिस्टर और उनके सेक्रेटरी मिलने आने वाले थे। तो मैंने उन मित्र से कहा कि देखो, जैसे ही ये लोग आंए, वैसे ही तुम उठ कर एकदम चरण छूना और सौ रुपये का नोट रख देना। उन्होंने कहाः क्यों? मैंने कहाः तुम देखना, फिर उन लोगों से भी सौ-सौ निकलवा लेंगे। उन मित्र ने कहा कि अच्छा, देखें! वे आए दोनों; जैसे ही वे आए, वे मित्र उठे, जल्दी से उन्होंने सौ का नोट निकाल कर पैरों में रखा, सिर झुकाया। मिनिस्टर भी फौरन झुके, सौ रुपये का नोट... ! जब मिनिस्टर रखे तो सेक्रेटरी को तो रखना ही पड़े! उसने जल्दी से सौ रुपये का नोट... ! जब वे दोनों चले गए, मैंने मित्र के सौ रुपये वापस कर दिए, मैंने कहा कि तुम अपने रखो वापस। दो सौ पर तो तुम्हारा कोई हक है नहीं। यह तो बेचारे वे नाहक नकल में दे गए।
अब ऐसे वे नेता हैं, मिनिस्टर हैं। क्या ख़ाक नेता होंगे! अभी कोई भी बुद्धू इनको बना दे। लोग ऐसे ही जय-जयकार बोले जाते हैं। तुम जरा अपने पर गौर करना, अपने जीवन-व्यवहार पर गौर करना। तुम जो करते हो, वह देखा-देखी करते हो या उसमें कुछ सोच-विचार है, विवेक है, कोई चैतन्य है? या कि बस और लोग कर रहे हैं! जैसा कर रहे हैं, बस वैसा ही तुम भी शुरू कर देते हो।
जाग कर जिओ! अपना जीवन अपना जीवन है, उसको एक प्रामाणिकता से जीओ। फिर चाहे कितनी ही निंदा हो, फिकर न करना। वे निंदा, वे गालियां, सब फूल बन जाएंगी; मत घबड़ाना!
सत्त सुकृत सौं होरी खेलौं, संतन की बलिहारी।।
गुलाल कहते हैं, न मालूम कितने पिछले जन्मों के सत्कर्म होंगे कि मैं लोकलाज से डरता नहीं। नहीं तो स्वभावतः आदमी डरता है। जरूर पिछले जन्मों का कोई भाग्योदय है। सत्त सुकृत सौं होरी खेलौं, ... तभी तो इस महोत्सव में सम्मिलित हो पाया। बुल्लाशाह का महोत्सव चल रहा है, इसमें मैं सम्मिलित हो पाया। इस मस्ती में डूब पाया। इस रंग को उड़ा रहा हूं। यह गुलाल उड़ा रहा हूं। मेरे सौभाग्य का उदय है और संतों की कृपा है।

कह गुलाल प्रिय होरी खेलैं, हम कुलवंती नारी।।
कहते हैं कि हम होली खेल रहे हैं। लोग समझ रहे हैं हम बिगड़ गए और हमसे पूछो तो हम पहली दफा कुलवंती हुए हैं। हम पहली बार अपने कुल से संयुक्त हुए हैं। हमें अपना घर मिला, अपना वंशाधिकार मिला, अपना जन्म-अधिकार मिला। हम पहली बार अपनी जाति से जुड़े हैं। जब तुम संतों से जुड़ोगे तब तुम्हें पता चलेगा कि तुम पहली बार जीवित हुए हो, अपनी जाति से जुड़े हो, अपने वालों से मिले हो। अब तक तो सब पराए थे जिनसे तुमने अपने होने का खेल खेला और जो खेल बार-बार टूटा। लाख बार बनाया मगर बार-बार टूटा।
फागुन समय सोहावन हो, नर खेलहु अवसर जाए।।
वे कहते हैं, जब संत मिल जाएं तुम्हें, जब सदगुरु का मिलन हो जाए, तो समझना कि जीवन में फागुन आया। अब चूकना मत। होली खेल ही लेना। "नर खेलहु अवसर जाए", ... खेल लेना, क्योंकि हाथ से अवसर चूका जा रहा है, रोज-रोज चूका जा रहा है। कहीं ऐसा न हो कि पीछे पछताना पड़े।
अब तुमको अर्पित करने को मेरे पास बचा ही क्या है!
क्षीर कहां मेरे बचपन का
और कहां जग के परनाले,
इनसे मिलकर दूषित होने
से ऐसा था कौन बचा ले;
वह था जिससे चरण तुम्हारा
धो सकता तो मैं न लजाता,
अब तुमको अर्पित करने को मेरे पास बचा ही क्या है! यौवन का वह सावन जिसमें
जो चाहे जब रस बरसा ले,
पर मेरी स्वर्गिक मदिरा को
सोख गए माटी के प्याले,
अगर कहीं तुम तब आ जाते
जी भर पीते, भीग-नहाते,

रस से पावन, हे मन भावन, बिधना ने विरचा ही क्या है! अब तुमको अर्पित करने को मेरे पास बचा ही क्या है

अब तो जीवन की संध्या में
है मेरी आंखों में पानी,
झलक रही है जिसमें निशि की
शंका, दिन की विषम कहानी--
कर्दम पर पंकज की कलिका,
मरुथल पर मानस जल-कल-कल! --

लौट नहीं जो आ सकता है अब उसकी चर्चा ही क्या है! अब तुमको अर्पित करने को मेरे पास बचा ही क्या है! मरुथल, कर्दम निकट तुम्हारे
जाते, जाहिर हैं, शरमाए,
लेकिन मानस-पंकज भी तो
सन्मुख हो सूखे, कुम्हलाए;
नीरस-सरस, अपावन-पावन
छू न तुम्हें कुछ भी पाया है,
इतना ही संतोष कि मेरा
स्वर कुछ साथ दिए जाता है,
गीत छोड़कर पास तुम्हारे मानव का पहुंचा ही क्या है!
अब तुमको अर्पित करने को मेरे पास बचा ही क्या है!
ऐसा न हो कि अंत घड़ी स्मरण आए और तब अर्पित करने को भी कुछ न बचे।
अभी जब कि समय है, अभी जब कि फागुन है, अभी जब कि ऊर्जा है, जीवन है, अभी समर्पित हो लो।

फागुन समय सोहावन हो, नर खेलहु अवसर जाए।।
यह तन बालू मंदिर हो, नर धोखे माया लपटाय।।
यह शरीर तो बस रेत का घर है। अब गया, तब गया। इस शरीर के कारण अपने समय
को मत गंवाओ।
ज्यों अंजुली जल घटत है, ...
जैसे कोई अंजुलि में जल को भर कर रखे, कितनी देर भर कर रखेगा? हर क्षण
घटता जाता है, अंगुलियों से बहता जाता है।
ज्यों अंजुली जल घटत है हो, नेकु नहीं ठहराय।।
जरा भी ठहरता नहीं।
पांच पच्चीस बड़े दारुन हो, लूटहि सहर बनाय।।
कुछ दुष्टता करो, पांच-पच्चीस मिल कर उपद्रव करो, शहर भी बसा लो, साम्राज्य भी बना लो, किस काम आएगा?
मनुवां जालिम जोर है हो, डांड़ लेत गरुवाय।।
अभी तो कर लोगे, लेकिन स्मरण रहे, कांटे बोओगे तो कांटे ही काटने भी पड़ेंगे। दंड भोगना ही पड़ेगा। जहर बांटोगे तो जहर ही लौट कर आएगा। गालियां दोगे तो गालियां ही वापस आ जाएंगी। यह जगत तो वही लौटा देता है जो हम देते हैं। गीत लौटा देता है, अगर गीत दें; गालियां लौटा देता है, अगर गालियां दें।
कह गुलाल हम बांधल हो, खात हैं राम-दोहाय।।
गुलाल कहते हैं, हम तो मिट गए, हम तो उसके गुलाम हो गए, हम तो उसके बंदी
हो गए, उसके प्रेम में बंध गए।
कह गुलाल हम बांधल हो, खात हैं राम-दोहाय।।
अब तो अगर खाते भी हैं तो राम की दुहाई है। अपना कुछ भी नहीं है। अब अपना कोई कर्तृत्व नहीं रखा है, कोई कर्ताभाव नहीं रखा है। अहंकार को बिल्कुल ही चले जाने दिया है। अब तो वह जैसा रखे, वैसी उसकी मर्जी। जो करेगा, वही करेंगे; जो करवाएगा, वही करेंगे।
काम जो तुमने कराया, कर गया;
जो कुछ कहाया, कह गया!
यह कथानक था तुम्हारा
और तुमने पात्र भी सब चुन लिए थे,
किंतु उनमें थे बहुत से
जो अलग ही टेक अपनी धुन लिए थे, और अपने आप को अर्पण
किया मैंने कि जो चाहो बना दो; काम जो तुमने कराया, कर गया;
जो कुछ कहाया, कह गया!

मैं कैसे कहूं कि जिसके
वास्ते जो भूमिका तुमने बनाई
वह गलत थी; कब किसी की
छिप सकी कुछ भी, कहीं, तुमसे छिपाई;

जब कहा तुमने कि अभिनय में
बड़ा वह जो कि अपनी भूमिका से
स्वर्ग छू ले, बंध गई आशा सभी की,
दंभ सबका बह गया!
काम जो तुमने कराया, कर गया;
जो कुछ कहाया, कह गया!
ऐसे छोड़ दो परमात्मा पर अपने को जैसे बांस की बांसुरी। जो गाए गीत वह, उसे बहने दो। अपने को हटा लो, अपने को मिटा लो, अपने को पोंछ डालो। शिष्यत्व का अर्थ यही है, समर्पण का अर्थ यही है। और मिट्टी के खेल में बहुत न उलझे रहो! रेत के घर बहुत न बनाओ! जिन्होंने बनाया, वे पछताए।

क्योंकि ये रेत के घर गिर ही जाएंगे। ये कितनी देर टिके हैं, यही चमत्कार है! हवा का झोंका आएगा और गिर जाएंगे।
--और छाती वज्र करके
सत्य सीखा
आज यह
स्वीकार मैंने कर लिया है,
स्वप्न मेरे
ध्वस्त सारे हो गए हैं!
किंतु इस गतिवान जीवन का यहीं तो बस नहीं है।
अभी तो चलना बहुत है,
बहुत सहना, देखना है।

अगर मिट्टी से
बने ये स्वप्न होते,
टूट मिट्टी में मिले होते,
हृदय मैं शांत रखता,
मृत्तिका की सर्जना-संजीवनी में है बहुत विश्वास मुझको।
वह नहीं बेकार होकर बैठती है एक पल को;
फिर उठेगी।
अगर फूलों से
बने ये स्वप्न होते
और मुर्झा कर
धरा पर बिखर जाते,
कवि-सहज भोलेपन पर
मुसकराता, किंतु
चित्त को शांत रखता,
हर सुमन में बीच है,
हर बीज में है बन सुमन का क्या हुआ जो आज सूखा,
फिर उगेगा,
फिर खिलेगा।
अगर कंचन के
बने ये स्वप्न होते,
टूटते या विकृत होते,
किसलिए पछताव होता?
स्वर्ण अपने तत्त्व का
इतना धनी है,
वक्त के धक्के,
समय की छेड़खानी से
नहीं कुछ भी कभी उसका बिगड़ता स्वयं उसको आग में
मैं झौंक देता,
फिर तपाता,
फिर गलाता,
ढालता फिर!
किंतु इसको क्या करूं मैं, स्वप्न मेरे कांच के थे!
एक स्वर्गिक आंच ने
उनको ढला था,
एक जादू ने संवारा था, रंगा था

कल्पना-किरणावली में
वे जगर 209 मगर हुए थे।
टूटने के वास्ते थे ही नहीं वे। किंतु टूटे
तो निगलना ही पड़ेगा।
आंख को यह
क्षुर-सुतीक्ष्ण यथार्थ दारुण! कुछ नहीं इनका बनेगा।
पांव इन पर धार बढ़ना ही पड़ेगा धाव-रक्तस्राव सहते।
वज्र छाती में धंसा लो,
पांव में बांधा न जाता।
धैर्य मानव का चलेगा
लड़खड़ाता, लड़खड़ाता, लड़खड़ाता। --और छाती वज्र करके
सत्य तीखा
आज यह
स्वीकार मैंने कर लिया है, स्वप्न मेरे
ध्वस्त सारे हो गए हैं!
किंतु इस गतिवान जीवन का
यहीं तो बस नहीं है।
अभी तो चलना बहुत है,
बहुत सहना, देखना है।
स्वप्न तो टूटेंगे। कांच के खिलौने हैं, एक बार टूटे कि सदा के लिए टूटे। लेकिन तुम फिर-फिर नये स्वप्न गढ़ने लगते हो। बजाय इसके कि स्वप्नों से जागो और सत्य को खोजो, तुम फिर नये स्वप्न में उलझ जाते हो।
दो ही तरह के लोग हैं इस पृथ्वी पर। एक तो वे, जो एक स्वप्न टूटता भी नहीं कि नया स्वप्न गढ़ने में लग जाते हैं। और दूसरे वे, जो देखते हैं सत्य को, तीखे सत्य को, कड़वे सत्य को कि सब स्वप्न टूट जाते हैं और फिर नये स्वप्न नहीं गढ़ते, सत्य की तलाश में लग जाते हैं। सत्य का जो अन्वेषण करता है, वही धार्मिक है।
को जाने हरि नाम की होरी।
और वही जान पाएगा परमात्मा से मिलन का आनंद, परमात्मा के साथ रंग-गुलाल उड़ाने का आनंद, उसके साथ नृत्य का आ नंद, वही जान पाएगा। नहीं तो कौन जान सकता है?
को जाने हरि नाम की होरी।
चौरासी में रमि रह पूरन, तीहुर खेल बनो री।।
तुम तो चौरासी में रमे हो। तुम तो ऐसे रमे हो व्यर्थ की चीजों में और जन्मों-जन्मों से रमे हो, बिल्कुल डूब गए हो, तुम्हारा पता ही नहीं चलता कि तुम हो भी। बस, सपने ही सपने हैं। पर्तो और पर्तो सपनों ही सपनों की पर्ते जमी हैं। सपनों ही सपनों के जाल में तुम अटके हो।
चौरासी में रमि रह पूरन, तीहुर खेल बनी री।
और तुम इतने जालों में उलझ गए हो कि तुम्हारी जिंदगी सिर्प एक व्यर्थ
का खेल हो गई है। कोई और जिम्मेवार नहीं है, तुम ही जिम्मेवार हो।
घूमि घूमि के फिरत दसोदिसि, कारन नाहिं छुटो री।।
और दसों दिशाओं में घूमते रहे हो। कितना घूमे हो! तुमने ऐसा क्या है
जो नहीं किया! क्या तुमने अनकिया छोड़ा है! पाया क्या, उपलब्धि क्या है, निष्पत्ति क्या है? यह भी तुम्हें अब तक समझ में नहीं आया कि इतने उपद्रव, इतनी आपाधापी का मूल कारण क्या है? वह कारण भी पकड़ में नहीं आया। वह कारण इतना सा ही है कि तुम बजाय भीतर देखने के बाहर ही देखे चले जा रहे हो। एक सपने से दूसरा, दूसरे से तीसरा, तीसरे से चौथा।

संत कहते हैंः चौरासी करोड़ सपने हैं। ये योनियां जो हैं, क्या हैं? एक-एक सपना। एक सपना टूट जाता है, तुम दूसरा देखने लगते हो। दूसरा टूट जाता है, तुम तीसरा देखने लगते हो।
तुमने कहानी सुनी होगी। एक चूहा बहुत परेशान था। चूहा ही था बेचारा! बड़ी मुसीबत में पड़ा था। बिल्ली के भय से प्राण निकले जाते थे। सो भगवान की भक्ति करने लगा। लोग भय से ही भक्ति करते हैं। तुम्हारा भगवान क्या है? सिवाय भय के और कुछ भी नहीं। ऐसे ही उस चूहे का भगवान। सब भगवान चूहों के। भयभीत लोगों के। बिल्ली जान लिए लेती थी। जब देखो तब आ जाए। भागो, छिपो, फिर बचाओ अपने को! कुछ काम करना संभव नहीं। बाहर निकलना संभव नहीं बहुत प्रार्थना की, खूब हनुमान-चालीसा पढ़ा, आखिर हनुमानजी प्रसन्न हुए। और हों भी क्यों न, चूहा उनकी सवारी। सवारी का तो ध्यान रखना ही पड़ता है। नहीं तो कहीं पटका दे मारे, कहीं ग 167े में गिरा दे! तो उन्होंने पूछा, कि क्या चाहता है तू? उसने कहा, मुझे बिल्ली बना दो। सो उसे बिल्ली बना दिया। बिल्ली तो बन गया, मगर कुत्ते का उसे पता ही नहीं था। अब कुत्ते उसकी जान खाने लगे। जहां निकले, कुत्ते पीछे लग जाएं। और भी झंझट हो गई। चूहा तो कम-से-कम अपने बिल में छिप जाता था, बिल्ली की जान तो बड़ी मुसीबत में!
फिर हनुमान-चालीसा! करोगे क्या और? बार-बार हनुमान-चालीसा पढ़ना पड़ा बेचारे को। फिर हनुमान ने कहाः भई, अब क्या चाहिए? तू क्यों सिर खाता है? कि मुझे कुत्ता बना दो। सो उसे कुत्ता बना दिया।
कुत्ता क्या बनाया, मुश्किल शुरू हो गई। मालिक उसे शिकार पर ले जाने लगा। वहां भेड़िए और शेर और सिंह... । इससे तो चूहा ही भला था, उसने सोचा। अपने घर तो थे! ये कहां की झंझटों में पड़ गया मैं!
फिर हनुमान-चालीसा!
हनुमान जी ने कहा, तू क्यों मुझे परेशान किए हुए है? अब क्या चाहता है? उसने कहा, मुझे सिंह बना दो। उसे सिंह बना दिया। सिंह बनाते ही नई मुसीबतें शुरू हो गईं। शिकारी बंदूकें लिए पीछे घूम रहे हैं। इससे तो चूहा बेहतर था। बिल्ली अगर एकाध झपट्टा भी मारती थी तो भी कोई ऐसा खतरा नहीं हो जाता था। मगर ये बंदूकें, एक दफा लग गई कि गए! उसने कहा हनुमान जी से कि भइया, एक बार और सुनो! बस आखिरी, अब कभी कुछ न मांगूंगा। हनुमान जी ने कहाः मुझे तूने थका डाला। ऐसे भक्त मिल जाएं तो बस ठीक है! अरे, कई दफा तो मैं तक तेरे डर से सोचने लगता हूं कि कुछ और हो जाऊं। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। फिर पढ़ते रहना हनुमान-चालीसा, हम कुछ के कुछ हो गए, तेरे को पता ही न चले! तू हमारी जान लिए लेता है। तेरे पर एक दफा सवारी क्या की, तू उसका खूब बदला चुका रहा है! उस चूहे ने कहा कि बस एक आखिरी, इसके बाद न तो हनुमान-चालीसा पढ़ना है मुझे, न प्रार्थना करनी है। हनुमान ने कहा, बोल! उसने कहा, मुझे चूहा फिर से बना दो। मैं चूहा ही भला।
वापस आ गए अपनी जगह। घूम-फिर कर, इतना चक्कर लगा कर। वही बिल्ली सताने लगी। और फिर वह सोचने लगा अब क्या करूं, कैसे हनुमान-चालीसा पढूं, कैसे प्रार्थना करूं, अब कैसे बचूं, इस बिल्ली से कैसे बचूं?
ऐसे हमारे चक्कर हैं। एक चीज से बचने के लिए एक काम करते हैं, फिर नई झंझटें खड़ी हो जाती हैं। गरीब आदमी अमीर होना चाहता है। अमीर हो जाता है। फिर अमीरी की झंझटें हैं। फिर वह सोचने लगता है, अब क्या करना? त्याग कर दें। बड़ी झंझटें हैं अमीरी में तो, यह धन में कोई सार नहीं। अरे, यह सब माया-मोह। छोड़-छाड़ जंगल चले जाएं। अपने गुफा में बैठेंगे, मस्त रहेंगे, एकांत में मजा करेंगे; न कोई झंझट, न कोई फिकर, न कोई चोर की चिंता, न इनकम टैक्स वालों का डर, न सरकार का भय कि नोट बंद कर देगी, कि कुछ... क्या-क्या झंझटें हैं दुनिया में! मगर गुफा में बैठोगे, वहां की झंझटें हैं।
गुफा की अपनी झंझटें हैं, वे तो गुफा में बैठोगे तब पता चलेंगी। कि अब बिजली नहीं है! अब रात में बाहर दरवाजे पर सिंह दहाड़ मार रहा है! अब पढ़ो हनुमान-चालीसा! कि हे प्रभु, बिजली दो! कि बिना बिजली के नहीं चलता। कि रात ठंड लग रही है। तब घर की याद आएगी कि अपनी शैय्या थी अच्छी, कंबल थे अच्छे, सब छोड़-छाड़ कर कहां की झंझट में पड़ गए! सुबह से चाय चाहिए। थोड़ी देर पड़े देखोगे कि पत्नी लाती होगी, फिर ख्याल आएगा--यहां कहां की पत्नी! वह तो

शास्त्रों के चक्कर में पड़ कर कि स्त्री नरक का द्वार है, घर ही छोड़ आए। नरक का द्वार होगी तब होगी, मगर अभी चाय कौन दे? अब पूंको चूल्हा!
एक दफा मैंने चाय बनाई है, इसलिए मैं जानता हूं। सिर्प एक दफा! जिंदगी में बस एक ही दफा एक ही चीज बनाई है--चाय। वह चूल्हा ही न जले! आंखों से इतना पानी गिरा कि मैंने कहा, इतने में तो भक्ति हो जाती! चाय का तो बनाने का सवाल ही नहीं। जब चूल्हा जला ही नहीं, तो मैंने कहा ठंडी चाय ही पी लेना बेहतर है। तो अपने दिल को समझाया कि ठंडी चाय--आधुनिक! सो दूध में पानी मिला कर और पी कर बैठ रहे रास्ते में कि अब कोई आए तो चाय बने।
वह तो जाओगे गुफा में तब पता चलेगा कि गुफा की तकलीफें क्या हैं? तब घर
की बहुत याद आएगी। जहां रहोगे वहीं की मुसीबतें हैं। और इसलिए आदमी एक सपने से दूसरा सपना बदलता रहता है।
बहुत बदल चुके! यह फागुन भी मत खो देना! कितने फागुन ऐसे ही खो दिए!
घूमि घूमि के फिरत दसोदिसि, कारन नाहिं छुटो री।।
नेक प्रीति हियरे नहीं आयो, ...
एक बात समझ में नहीं आई कि सत्य से प्रेम कर लें, सपनों से नाता तोड़ दें।
... नहिं सत्संग मिलो री।।
और चूंकि यह बात ही ख्याल में नहीं आई, इसलिए कभी उनका सत्संग नहीं किया जो जाग गए थे, जिन्होंने जीवन सत्य को पा लिया था। इसलिए कभी उनके पास नहीं बैठे। कभी मौका भी पड़ गया पास बैठने का तो खिसक गए, भाग गए, निकल भागे-- डर से कि कहीं कोई ऐसी बात कान में न पड़ जाए कि जिंदगी में कोई अड़चन खड़ी हो जाए।
कहै गुलाल अधम भो प्रानी, अवरे अवरि गहो री।।
क्या-क्या करते रहे और एक करने जैसी चीज थी, वह कभी की नहीं! क्या अंट-संट करते रहे, अवरे अवरि गहो री, क्या-क्या उल्टा-सीधा करते रहे! धन कमाओ, पद, प्रतिष्ठा, यह दौड़, वह दौड़, पूजा-पाठ, मगर कभी सत्संग न किया। न करने का कारण है। सत्य चाहिए, यह भाव ही न जगा। स्वप्न व्यर्थ हैं, यह बोध ही न आया। सत्संग तो तभी हो सकता है जब सत्य की गहन अभीप्सा पैदा हो, प्यास पैदा हो। सिर्प जिज्ञासा नहीं, मुमुक्षा। ऐसी लग जाए बात कि सत्य को जाने बिना जीना मुश्किल हो जाए, एक पल जीना मुश्किल हो जाए, तो फिर कठिनाई न होगी। इस पृथ्वी पर ऐसा कभी नहीं होता कि जाग्रत पुरुष मौजूद न हों। हमेशा मौजूद हैं। परमात्मा निराश नहीं होता है, वह कहीं न कहीं दीये जलाए रखता है। कि जिनको भी जलाना हो दीये, उनके लिए कहीं न कहीं अंगार सुलगाए रखता है। इसलिए तुम्हारे भीतर अगर प्यास होगी, तो निश्चित ही सदगुरु प्रकट हो जाएगा। और ऐसे-वैसे प्रकट नहीं होता, "सतगुरु घर पर परलि धमारी", बड़े धूम-धड़ाके से प्रकट हो जाता है। "होरिया मैं खेलौंगी।" मगर तुम्हारी तैयारी होनी चाहिए होली खेलने की।
सत्संग का अर्थ हैः गुरु और शिष्य के बीच प्रेम की पिचकारियां चल रही हैं, प्रेम के रंग फेंके जा रहे हैं। गुरु और शिष्य के बीच और सब सौदे टूट गए हैं, क्योंकि प्रेम कोई सौदा नहीं है, कोई व्यवसाय नहीं है, प्रेम में कोई शर्त नहीं है, बेशर्त एक-दूसरे को दे रहे हैं--अपने को दे रहे हैं, बांट रहे अपने को। शिष्य अपने को पूरी तरह गुरु को दे देता है और गुरु तो अपने को पूरा लुटाने को तैयार बैठा है।
कहै गुलाल अधम भो प्रानी, अवरे अवरि गहो री।।
क्या-क्या करता रहा उलटे-सीधे काम, लेकिन एक काम जो करने योग्य था, उससे ही चूकता रहा। इसलिए फागुन चूका, इसलिए होली तेरे जीवन में कभी न आई, इसलिए तू पत्थर ही बना रहा। सत्संग हो जाता तो पाषाण जीवित हो उठता।
सत्संग हो जाता तो मोती बरसते। झरत दसहुं दिस मोती!

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
अठारहवां प्रवचन

संन्यास प्रेम है परमात्मा से

पहला प्रश्नः ओशो, मैं जो जी रहा हूं, और जैसा जी रहा क्या यही जीवन है?

मधुकर! मनुष्य साधारणतः जिसे जीवन समझता है, वह तो जीवन का प्रारंभ भी नहीं। जीवन तो दूर, वह अभी जन्म भी नहीं है। एक जन्म तो होता है माता-पिता से। वह केवल देह का जन्म है। उस से तुम सांसें तो लेने लगते हो, मगर जीते नहीं। भोजन भी पचाने लगते हो, लेकिन जीते नहीं। शरीर बढ़ने लगता है, लेकिन तुम कोरे के कोरे। तुम्हारे भीतर आत्मा का कोई विकास नहीं होता; कोई प्रौढ़ता नहीं, कोई भीतर गति नहीं, कोई नृत्य नहीं, कोई उत्सव नहीं। इसलिए जिन्होंने जाना है उन्होंने कहा है, जब तक द्विज न हो जाओ, जब तक तुम्हारा दुबारा जन्म न हो, तब तक समझना अभी जीवन शुरू ही नहीं हुआ।
द्विज होने की प्रक्रिया ही संन्यास है। यह ब्राह्मण होने की विधि है। क्योंकि यह ब्रह्म को जानने का उपाय है। कोई ब्राह्मण की तरह पैदा नहीं होता। सभी शूद्र की तरह पैदा होते हैं। ब्राह्मणत्व तो अर्जित करना होता है, कमाना होता है, मुप 132 त नहीं मिलता। श्रम से और साधना से ब्राह्मणत्व के फूल खिलाने होते हैं। ब्राह्मण के घर में भी पैदा होकर कोई ब्राह्मण नहीं होता। पहला जन्म तो शूद्र का ही है। दूसरा जन्म! और दूसरे जन्म से अर्थ हैः अंतर्यात्रा का। पहला जन्म बहिर्यात्रा की तैयारी करवा देता है। शरीर बहिर्यात्रा माध्यम है। मन बहिर्यात्रा की व्यवस्था है। जब ध्यान पैदा होगा तो जीवन शुरू होगा।
इसलिए असली जीवन तो सदगुरु के पास मिलता है। असली जीवन तो सत्संग में मिलता है। जहां तुम्हें ध्यान की प्यास जग जाए, वहां मिलता है। जहां तुम्हारे प्राण परमात्मा के लिए आतुर होने लगें, ऐसे आतुर कि अगर यह जीवन चढ़ा भी देना पड़े सौदे में तो तुम सौदा करने को राजी हो जाओ, तब दूसरा जीवन मिलता है। दूसरे जीवन के लिए त्वरा चाहिए, एक तीव्र अभीप्सा चाहिए, एक गहन प्यास चाहिए--सत्य की। तुम जैसे अभी जी रहे हो, जो तुम जी रहे हो, वह कामचलाऊ जीवन है। ऐसे तो कोल्हू के बैल की तरह चल रहे हो। उठ जाते हो रोज, रोज रात सो जाते हो, रात सपने हैं, दिन विचार हैं, हजार कामों में व्यस्त हो, मगर परिणाम क्या है? निष्पत्ति क्या है? इन कामों का निचोड़ क्या है? मौत आएगी, सब पोंछ कर साफ कर देगी। जीवन की परिभाषा याद रखोः जिसे मौत न मिटा पाए, वही जीवन है। जिसे मौत मिटा दे, वह क्या ख़ाक जीवन है! अभी तुम जो जी रहे हो, उसे मौत मिटा देगी या नहीं, बस इतना ही पूछ लेना। इसी कसौटी पर कसते रहना। ये श्वासें मौत छीन लेगी, यह देह मिट्टी में गिर जाएगी, यह धन-पैसा, पद-प्रतिष्ठा, सब तिरोहित हो जाएंगे, जैसे सुबह जागने पर रात के सपने तिरोहित हो जाते हैं, इसे जीवन मानना चाहो तो मान लो, अपने को सांत्वना देनी हो तो दे लो, मगर यह जीवन नहीं है।
ऐसी ही एक सुबह रही होगी और जीसस एक झील के पास रुके। एक मछुए ने अपना जाल झील में फेंका ही था मछलियां पकड़ने को, जीसस ने उस मछुए के कंधे पर हाथ रखा, उस मछुए ने चौंक कर पीछे देखाः कौन है? --इतनी सुबह, सर्द सुबह। और जीसस की आंखों में झांका। वे आंखें झील से भी ज्यादा गहरी उसे मालूम पड़ीं। उन आंखों में झील से भी ज्यादा ताजगी थी। और यह व्यक्ति अनूठा मालूम पड़ा। ठगा रह गया मछुआ।
जीसस ने उससे कहाः कब तक मछलियां ही पकड़ते रहोगे? कुछ और करना है या नहीं? क्या मछलियां पकड़ना ही जीवन है? उस सुबह ही जीसस ने अपना वह प्रसिद्ध वचन कहा था कि मनुष्य केवल रोटी के सहारे नहीं जी सकता। कुछ और चाहिए, रोटी से कुछ बड़ा, रोटी से कुछ ज्यादा गरिमामय, रोटी से कुछ ऊपर। आजीविका ही जीवन नहीं है। मछुए ने सुना, जाल जहां का तहां छोड़ दिया--झील से खींंचा भी नहीं--और जीसस से कहा कि मैं भी उस जीवन की तलाश करना चाहता हूं। जीसस ने कहाः आओ मेरे पीछे। वे गांव को छोड़ते ही थे कि एक आदमी भागा हुआ

आया और उसने उस मछुए को कहा, पागल, तू कहां जा रहा है? तेरे पिता बीमार थे न, उनकी मृत्यु हो गई। चल वापस घर। स्वभावतः मछुए ने जीसस से कहा कि मुझे तीन-चार दिन की छुट्टी दे दें, लौट आऊंगा, लेकिन पिता का अंतिम संस्कार कर आऊं। और जीसस के वचन बड़े प्यारे हैं। जीसस ने कहाः तू फिकर मत कर, गांव में बहुत मुरदे हैं वे मुरदे को ठिकाने लगा देंगे। तू मेरे पीछे आ।
गांव में बहुत मुरदे हैं, वे मुरदे को ठिकाने लगा देंगे! इस वचन पर ध्यान करना, विचार करना। तुम सब को जीसस मुरदा कह रहे हैं। तुम्हें वे जीवित नहीं मानते। मैं भी तुम्हें जीवित नहीं मानता। क्योंकि जीवन से तो तुम्हारी अभी पहचान ही नहीं हुई। जब तक शाश्वत को न जाना, जब तक कालातीत को न पहचाना, जब तक उससे तुम्हारी सगाई न हुई जिसका न कोई प्रारंभ है, न कोई अंत, जब तक परमात्मा से मिलन न हुआ, तब तक कैसा जीवन? तब तक आजीविका है, रोटी-रोजी कमा लेते हो, कि दो पैसे तिजोड़ी में भी बचा लोगे, मगर सब ठीकरे हैं, सब पड़े रह जाएंगे।

मगर मैं तुम्हारी मजबूरी भी समझता हूं। दूसरे जीवन की खबर भी देने वाले लोग दिखाई नहीं पड़ते। दूसरे जीवन का संदेश लाने वाले लोग भी मिलते नहीं। जिनको तुम धर्म के नाम पर पूज रहे हो, वे भी तुम जैसे ही लोग हैं, उनके जीवन में भी कोई क्रांति नहीं घटी, कोई किरण नहीं उतरी; उनके जीवन का अंधकार भी वैसा ही है जैसा तुम्हारा--और कभी-कभी तो तुमसे भी ज्यादा! जिनको तुम भोगी कहते हो, उनके जीवन में तो कुछ पुलक भी है, उनके जीवन में तो कभी-कभी 132 तो कोई प्यास, कोई पुकार भी उठती है, लेकिन जिनको तुम तथाकथित महात्मा, योगी, संत कहते हो, वे तो बिल्कुल मुरदा हैं। वे तुम से भी ज्यादा मुरदा हैं। उनकी आंखों में तो राख जमी है। उन्होंने तो धीरे-धीरे आत्मघात कर लिया है। और आत्मघात को ही सदियों से धर्म समझा जाता रहा है। जो आदमी जितना आत्मघाती हो, हम उसको उतना बड़ा महात्मा मानते हैं। जो आदमी जितना अपने को दुख दे, उतना ही बड़ा हम उसको त्यागी कहते हैं, तपस्वी कहते हैं। स्वयं को दुख देना एक मानसिक रुग्णता है। स्वयं को दुख देने वाला, ध्यान रखना, दूसरों को भी दुःख देगा ही। वह उस गणित का अनिवार्य अंग है। परोक्ष रूप से देगा। जो आदमी खुद उपवास करेगा और सताएगा अपने को, वह दूसरों को भी समझाएगा कि उपवास करो और सताओ अपने को। और अगर न सताओगे अपने को, न करोगे उपवास, तो देखना उस की आंखों में तुम्हारी निंदा, तुम्हारा अपमान, तुम्हें नरक में कड़ाहों में जलाना, देखना तुम उस की आंखों में, तुम कीड़े-मकोड़े हो, आदमी भी नहीं। इसी अहंकार के बल तो वह अपने को इतना दुख दे पाता है। यह पवित्र होने का अहंकार कि मैं विशिष्ट, मैं पवित्र, मैं महात्मा। फिर तुम जो चाहो करवा लो। कांटों की सेज पर सुला लो, उपवास करवा लो, जो तुम्हें करवाना हो करवा लो। लेकिन तुम जो भी धर्म के नाम से करवाते रहे हो, करते हो, जरा गौर से तो देखना, उसमें कहीं अपने को मिटा लेने, मार डालने की, आत्मघात की प्रवृत्ति तो नहीं है?
सिग्मंड फ्रायड ने अपने जीवन के प्राथमिक वर्षो में जो पहली महत्वपूर्ण खोज की थी, वह थी लिबिडो की खोज। लिबिडो का अर्थ होता हैः जीवेषणा। कि मनुष्य के भीतर जीवन की महत आकांक्षा है। मनुष्य जीना चाहता है। हर कीमत पर जीना चाहता है। और यह सच है। भिखमंगा भी जी रहा है। सड़क पर घिसट रहा है, रहने को जगह नहीं है, खाने को भोजन नहीं है, नालियों में पड़ा है, अपंग है, कोढ़ी है, मगर फिर भी जीना चाहता है। दो-दो कौड़ी मांगता फिरता है, घसिटता फिरता है, लेकिन जीना चाहता है। जीने की जरूर गहन आकांक्षा होगी।
इजिप्त की एक पुरानी कथा है।
एक विराट आश्रम था। उस आश्रम की यह व्यवस्था थी कि जब भी कोई संन्यासी
मर जाए, तो आश्रम के नीचे ही भूमिगर्भ में छिपा हुआ एक बड़ा कब्रिस्तान था, पत्थर हटाया जाता था, कब्रिस्तान का मुंह खुल जाता था, मर गए संन्यासी की लाश को उस ग 167े में गिरा दिया जाता था, पत्थर फिर बंद कर दिया जाता था। वह नीचे एक लंबी गुफा थी, जिसमें सदियों से न मालूम कितने संन्यासी मरे और उनकी लाशें उतार दी गई थीं। यह संयोग की बात थी कि इस बार जो संन्यासी मरा

वह वस्तुतः मरा नहीं था सिर्प बेहोश था और जल्दबाजी में उस को ग 167े में उतार दिया। ग 167े में उतरा, कोई घड़ी-दो घड़ी बाद उसे होश आ गया। होश आया तो बहुत घबड़ाया। चिल्लाया। मगर कौन सुनता! पत्थर बंद हो चुका था। कोई संभावना न थी कि कोई सुन ले। थक गया चिल्ला-चिल्ला कर।
तुम भी होते उसकी जगह तो क्या करते फिर? तुम शायद सोचोगे, आत्महत्या
कर लेते, पत्थरों से सिर मार कर फोड़ लेते, मर जाते। नहीं, उस आदमी ने जीवन की व्यवस्था की। वह वहां भी जीने लगा। बड़ा अजीब, बड़ा गर्हित जीवन रहा होगा। जो लाशें सड़ी हुई पड़ी थीं, उनका ही मांस खाने लगा जो कीड़े मकोड़े पैदा हो गये थे लाशों में उन कीड़े मकोडों को पकड़-पकड़ कर खाने लगा पानी की बड़ी असुविधा थी। आश्रम की नालियों में से जो पानी रिस-रिस कर नीचे कब्रिस्तान में पहुंच जाता था, उसी को दीवालों से चाट-चाट कर पीने लगा। और रोज प्रार्थना करता था, एक ही प्रार्थना, कि कोई मर जाए संन्यासी, तो फिर से चट्टान उठे तो मैं बाहर निकल आऊं।
बारह वर्ष वह आदमी जिंदा रहा। उस की प्रार्थना बारह वर्ष बाद सुनी गई। बारह वर्ष बाद कोई मरा, फिर क्रबिस्तान का द्वार खुला--और उस आदमी ने आवाज दी। जो लाश को उतारने आए थे, उनकी भी छाती कंप गईः कौन बुला रहा है अंदर से? भूत-प्रेत? क्या मामला है? लेकिन रस्सी डालनी पड़ी, वह आदमी निकाला गया। उसके बाल इतने बड़े हो गए थे, उसकी दाढ़ी इतनी बड़ी हो गई थी बारह वर्षो में कि जमीन छूती थी। और सबसे बड़े आश्चर्य की बात तो यह थी, बारह वर्ष अंधेरे में रहने के कारण वह अंधा भी हो गया था, लेकिन साथ में एक पोटली लिए हुए आया। तो उन्होंने पूछा, यह पोटली क्या है? तो उसने खोल कर दिखा दी। इजिप्त में रिवाज था कि जब कोई मर जाए तो उसके साथ परलोक की यात्रा के लिए--टिकट इत्यादि के लिए कम से कम--कुछ पैसे रख दो, कुछ कपड़े रख दो--रास्ते में बदलने का कम से कम एकाध जोड़ा। सो उसने मुर्दो के कपड़े और पैसे इकट्ठे कर लिए थे, इस आशा में कि जब बाहर निकलूंगा तो सब लेता जाऊंगा। वह पोटली में सारे कपड़े और पैसे बांध कर ले आया था।
ऐसी जीवेषणा है आदमी की!
यह कहानी नहीं है, यह सत्य है, यह घटना घटी है।
तो फ्रायड ने ठीक खोजबीन की थी कि मनुष्य के भीतर सबसे बड़ी आकांक्षा
है जीने की। वह जीने के लिए कुछ भी कर सकता है। और हम देखते हैं कि यह बात सच है। आदमी जीने के लिए कुछ भी करता है। चोरी करता, बेईमानी करता, हत्या करता।
लेकिन मरने के पहले फ्रायड जीवन के अंतिम वर्षो में दूसरी खोज भी किया। क्योंकि उसने देखा कि अगर जीवेषणा ही अकेली एकमात्र वृत्ति है, तो कुछ लोग आत्महत्या कैसे करते हैं? फिर आत्महत्या को कैसे समझाओगे? फिर आत्महत्या का क्या कारण होगा? और कभी-कभी तो बड़ी अच्छी हालतों में रहने वाले लोग आत्महत्या करते हैं--अक्सर तो अच्छी हालतों में जो लोग हैं, वही आत्महत्या करते हैं। गरीब देशों में कम लोग आत्महत्या करते हैं, अमीर देशों में ज्यादा। जितना समृद्ध वर्ग होता है, उतनी आत्महत्या बढ़ जाती है। तो जिनके पास सब है, ऐसे लोग आत्महत्या क्यों कर लेते हैं? फ्रायड पुनः खोज में लगा जीवन के अंतिम वर्षो में। उसने दूसरी वृत्ति भी खोजी और सिद्धांत पूरा हुआ। पहली विधि को लिबिडो कहा था--जीवेषणा--और दूसरे सिद्धांत को थानाटोस कहा--मृत्यु की आकांक्षा। और सिद्धांत तब पूरा हुआ। ये सिक्के के दोनों पहलू हैं।
इस जीवन में हर चीज अपने विरोधी के साथ होती है। अंधेरा है प्रकाश के साथ। जीवन है मृत्यु के साथ। प्रेम है घृणा के साथ। मित्रता है शत्रुता के साथ। इस जीवन में हर चीज अपने विपरीत के साथ है। कोई चीज अकेली नहीं होती।
जीवन द्वंद्वात्मक है, द्वैत से भरा है। जन्म है तो मृत्यु है। सुख है तो दुख है। सफलता है तो असफलता है। यश है तो असफलता है। यश है तो अपयश है।
और यह मनुष्य के मन के ही संबंध में नहीं, जीवन की प्रत्येक चीज।
वैज्ञानिक कहते हैं कि विद्युत में दो छोर हैंः ऋण और धन। अगर एक छोर न हो तो दूसरा छोर भी नहीं हो सकता। मनुष्य के जीवन में सभी चीजों में ऋण और धन के छोर हैं।

फ्रायड की खोज अधूरी रह जाती, मगर वह उसे पूरी कर गया। मनुष्य के भीतर मरने की भी आकांक्षा है। कुछ लोगों को तीव्रता से पकड़ लेती है और लोग आत्महत्या कर लेते हैं। और कुछ लोगों को इतनी तीव्रता से नहीं पकड़ती, वे धीरे-धीरे करते हैं। जिनको तुम महात्मा कहते हो, वे शनैः-शनैः आत्महत्या करते हैं। कोई एक बार भोजन छोड़ देता है, कोई कपड़े नहीं पहनता, कोई ठंढ में खड़ा रहता है, कोई धूप में खड़ा रहता है, कोई सूरज को देख-देख कर आंखें फोड़ लेता है, कोई रात भर जागता है; कुछ संन्यासी हैं जो खड़े हैं वर्षो से, बैठे ही नहीं; कुछ हैं जो कांटों पर लेटे हैं, कुछ हैं जिन्होंने भाले अपने मुंह में छेद लिए हैं। ईसाइयों में ऐसे फकीर हुए हैं जो रोज सुबह अपने को कोड़े मारते। और जो जितने ज्यादा कोड़े मारता, स्वभावतः उतना बड़ा महात्मा समझा जाता। जिसकी चमड़ी उधड़ जाती, सारे शरीर पर कोड़ों के निशान हो जाते। ऐसे ईसाइयों में फकीर हुए हैं, अब भी हैं, जो अपनी कमर में एक लोहे का बेल्ट पहनते हैं, जिसमें अंदर की तरफ कांटे रहते हैं, जो कांटे उनकी कमर में छिद जाते हैं और हमेशा घाव को बनाए रखते हैं। जूते पहनते हैं जिनमें अंदर की तरफ खीले लगे होते हैं, जो उनके पैरों में घाव बनाए रखते हैं। लोग उनके घाव देखने जाते हैं और कहते हैं--अहा!, कैसा त्याग!
रूस में ईसाइयों का एक सम्प्रदाय था क्रांति के पहले, जो अपनी जननेन्द्रियां काट देता था। ढेर लगा देते थे जननेन्द्रियों के। स्त्रियां भी पीछे नहीं रहती थीं, वे अपने स्तन काट देती थीं। स्तनों के ढेर लगा देती थीं। इसकी बड़ी गरिमा और गौरव समझा जाता था।
ये सब आत्मघाती वृत्तियां हैं। तो जिनको तुम महात्मा समझते हो, वे तुम्हें क्या ख़ाक जीवन की दिशा देंगे, वे तो खुद ही मरने के रास्ते पर चल रहे हैं। वे तुम से भी ज्यादा विकृत हैं। तुम तो कम से कम सामान्य हो, वे सामान्य भी नहीं। जीवन की खोज के लिए तो सिर्प एक ही चीज आवश्यक है, सिर्प एक--न तो त्याग, न तप, न शरीर को गलाना, न सताना, न परेशान करना; ये सब हिंसक बातें हैं, और हिंसा से कोई आत्मज्ञान को उपलब्ध नहीं होता। फिर हिंसा दूसरों की हो या अपनी, हिंसा हिंसा है और हिंसा पाप है। आत्म-ज्ञान को उपलब्ध होने से व्यक्ति जीवन से संबंधित होता है। अभी यह भी तुम्हें पता नहीं कि मैं कौन हूं, कैसे तुम जीवित हो सकते हो? वह क्या है एक बात? वह ध्यान है। तुम्हें साक्षी बनना होगा। तुम्हें अपने भीतर उतर कर उस चेतन तत्त्व को पहचानना होगा जो तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। जिस दिन तुम चैतन्य को अनुभव करोगे, जिस दिन तुम जानोगे मैं देह नहीं, मन नहीं, धन नहीं, पद नहीं, प्रतिष्ठा नहीं, मैं तो सिर्प वह हूं जो द्रष्टा है सब का द्रष्टा है; दिन आता है तो दिन को देखता है, रात आती है तो रात को देखता है, जवानी तो जवानी को देखता है, बुढ़ापा तो बुढ़ापे को देखता है, मैं तो द्रष्टा हूं, ऐसा जिस दिन तुम अनुभव करोगे, उस दिन द्विज हुए, उस दिन ब्राह्मण हुए, उस दिन शूद्र होना मिटा, उस दिन से तुम्हारे जीवन में क्रांति की शुरुआत है, रोशनी और रोशनी बढ़ती जाएगी। प्रकाश गहन होता जाएगा, अंधकार क्षीण होता चला जाएगा।
मधुकर, अभी तो तुम जिसे जीना कहते हो, बस नाममात्र का जीना है।
पि132 र भी तो जीना होगा ही!
इसलिए, हृदय, क्यों हो अधीर
फिर ध्यान तुम्है उसका आता?
पागल! क्यों फिर से जोड़ रहे
हो आशा-छलना से नाता?
यदि वह सपना भी सच न हुआ,
फिर भी तो जीना होगा ही!

मन! तुम अधीर, मैं निराधार; हूं निराधार, पर क्या चारा?

पहले भी कितनी बार इसी
जीवन में हूं जग से हारा।

यदि हुई हार इस बार मुझे,
फिर भी तो जीना होगा ही!

तुम पर, अपने पर ही न हुआ,
तो होगा मेरा किस पर वश?
क्या होगा यदि हूं भी हताश? क्या हूं सांसों से भी न विवश? यदि मौत न आई अब के भी,
फिर भी तो जीना होगा ही!
क्यों कह उठते हो घबड़ा कर, "इन सुख-सपनों में आग लगे?" था सिर धुनना ही इष्ट मुझे, तो क्यों ये सोए भाग जगे? पर सब दिन सिर धुनना भी हो, फिर भी तो जीना होगा ही!

फिर सोच-फिकर क्यों, मूरख मन?
होना है जो कुछ होगा ही!
थे आगे भी सुख-दुख आए,
उनको रो-गा कर भोगा ही!
अब घड़ी, दो घड़ी रोए भी,
फिर भी तो जीना होगा ही!
अभी तो किसी तरह जी रहे हो! एक बोझढो रहे हो! क्या करो और न जीओ तो! उठ आते सुबह, जुत जाते कोल्हू में बैल की तरह, खींचते रहते कोल्हू को दिन भर, रात थक कर फिर गिर जाते हो, फिर सुबह उठ आना, फिर वही कोल्हू का बैल है--मगर करो तो करो क्या! इस जीवन में चारों तरफ तुम्हारे ही जैसे लोग हैं। उनको देखते हो तो लगता है शायद यही जीवन है। इसीलिए पूछा भी तुमने कि क्या यही जीवन है जो मैं जी रहा हूं? चारों तरफ तुम्हारे ही जैसा जीवन लोग जी रहे हैं। यह जीवन नहीं है। यह केवल जीवन को पाने का एक अवसर है। यह कोल्हू को खींचने मात्र को ही सब कुछ मत समझ लेना। थोड़ी घड़ियां निकाल लो इस आपा-धापी से, इस दौड़-धूप से, इस व्यर्थ के संघर्ष से--और मैं नहीं कहता भाग जाओ! भाग कर जाओगे भी कहां? जहां जाओगे वहीं संसार बन जाएगा। क्योंकि संसार तुम्हारे मन में है। तुम जहां जाओगे वहीं, जहां जाओगे वहीं संसार बनना सुनिश्चित है। क्योंकि मन को कहां छोड़ जाओगे? इसी मन से तो यह संसार बन गया है। इसी मन से वहां भी संसार बनेगा। कुछ फर्क न पड़ेगा। इसलिए मैं भागने को नहीं कहता, मैं जागने को कहता हूं। मैं कहता हूंः जागो! जहां हो, वहीं जागो! थोड़े घड़ी-पल निकाल लो, चौबीस घंटे में थोड़ा सा समय निकाल लो-- इतना गरीब तो कोई भी नहीं जो थोड़ा सा समय न निकाल सके अंतर्यात्रा के लिए-- और अंततः तुम पाओगे, वे ही क्षण बचे जो तुमने भीतर बिताए; बाकी सब खो गया। मगर लोग अजीब हैं! अगर उनसे कहो, ध्यान करो, वे कहते हैं, समय कहां है?
और वे इस तरह से कहते हैं कि लगता है धोखा नहीं दे रहे। वे इस तरह से कहते हैं कि लगता है झूठ नहीं बोल रहे। और झूठ शायद वे बोल भी नहीं रहे। वे भी यही मानते हैं कि कहां समय है? मगर इन्हीं को मैं देखता हूं ताश खेलते, इन्हीं को मैं देखता हूं शतरंज बिछाए, इन्हीं को देखता हूं सिनेमागृह के बाहर कतार में खड़े, इन्हीं को देखता हूं रोटरी क्लब, लायंस क्लब में भीड़-भाड़ मचाए हुए, यही बैठे हैं होटलों में। तब इनसे पूछो तो ये कहते हैं, क्या करें, समय काट रहे हैं! तब मैं बड़ा चकित होता हूं। ध्यान की कहो, तो कहते हैंः कहां समय? और ताश खेलते हों; उसी अखबार को जिसको सुबह से तीन बार पढ़ चुके हैं, चौथी बार पढ़ते हों--वैसे वह एक भी बार पढ़ने योग्य नहीं था, चौथी बार पढ़ रहे हैं--तो इनसे पूछो, क्या कर रहे हो? तो कहते हैं क्या करें, समय काट रहे हैं!
तुम समय को काट रहे हो! या समय तुम्हें काट रहा है? किसको धोखा दे रहे हो? मगर ऐसा लगता है ध्यान से आदमी बचना चाहता है। अपने से बचना चाहता है।

कुछ कारण होंगे, कुछ भय होगा। सबसे बड़ा भय यही है कि जो व्यक्ति भीतर जाते हैं, बाहर के जगत में उनकी दौड़ शिथिल हो जाती है। धन के पीछे फिर वे ऐसे पागल नहीं रह जाते। आ जाए, ठीक, न आए तो भी ठीक। सुख-दुख समान होने लगते हैं। महत्वाकांक्षा का ऐसा बल नहीं रह जाता। हो जाए पूरी तो ठीक, न हो जाए तो भी ठीक। हर हाल उनके भीतर एक मंगलध्वनि बजने लगती है। हर हाल में वे मस्त रहने लगते हैं। इससे थोड़ा डर लगता है कि अभी तो सफलता भी नहीं मिली, अभी धन कमाया भी नहीं, अभी पद पाया भी नहीं, अभी भीतर अगर गए तो मेरी महत्त्वाकांक्षा का क्या होगा?
एक राजनेता मेरे पास आते थे। मुझसे पूछते थे, मन की शांति का उपाय? मैंने कहाः पहला काम तो राजनीति छोड़ दो, क्योंकि वह मन की अशांति का उपाय है। वे बोले, यह तो नहीं हो सकेगा। असल में आया ही मैं इसीलिए हूं कि राजनीति में हूं तो मन बड़ा अशांत रहता है, तो कुछ शांति का उपाय मिल जाए ताकि राजनीति में भी रह सकूं और मन शांत रहे। और आप तो जड़ से ही काटने लगे। आप कहते हैं, राजनीति ही छोड़ दो। अभी तो नहीं छोड़ सकता। थोड़े दिन बाद छोड़ दूंगा। मैंने कहा, थोड़े दिन में क्या होना है? उन्होंने कहाः बस, थोड़े दिन की और बात है कि मुख्यमंत्री हुआ जा रहा हूं। अब सारी जिंदगी दौड़ में लगाई, अब थोड़े दिन के लिए क्या छोड़ना! मैंने उनसे कहाः तो फिर पहले मुख्यमंत्री हो लो! क्योंकि भीतर जाओगे तो दौड़ छूट जाएगी। क्योंकि भीतर उतरने का अर्थ ही यह होता है कि अब बाहर जो व्यर्थ के आकर्षण थे, वे फीके पड़ने लगेंगे। बाहर के दीये बुझने लगेंगे, भीतर के दीये जलने लगेंगे। भीतर दीवाली होगी। बाहर दीवाला! और मैंने उनसे कहाः बाहर तो दीवाला होने ही वाला है, भीतर दीवाली कर लो तो ठीक, नहीं तो बहुत पछताओगे।
नहीं माने। अभी आए थे तो बहुत पछता रहे हैं। क्योंकि मुख्यमंत्री तो हुए ही नहीं, मंत्री भी नहीं रह गए। कहने लगे, अब बता दें ध्यान! मैंने कहा, अब फिर आना! जब मुख्यमंत्री बनने का फिर मौका कभी जीवन में आ जाए, तब आना। ध्यान लोग मुफ्त चाहते हैं। कुछ भी गंवाना न पड़े। और ध्यान इस जीवन में सबसे मूल्यवान वस्तु है। उससे बड़ा कोई हीरा नहीं। उसके लिए सब भी गंवाओ तो कुछ भी नहीं गंवाया।
ध्यान में लगो, मधुकर! नाम तुम्हारा प्यारा है! भीतर खिला है असली फूल। चलो भीतर। गुनगुनाओ वहां। वहां है असली रस। जिसने पिआ, वह सदा के लिए तृप्त हो गया।
बौरे आमों पर बौराए भौंर न आए, कैसे समझूं मधुऋतु आई!

माना अब आकाश खुला सा और धुला सा
फैला-फैला, नीला-नीला
बर्प-जली सी, पीली-पीली दूब हरी फिर,
जिस पर खिलता फूल फबीला,
तरु की निरावरण डालों पर मूंगा, पन्ना
औ" दखिनहटे का झकझोरा,
बौरे आमों पर बौराए भौंर न आए, कैसे समझूं मधुऋतु आई!

माना, गाना गाने वाली चिड़िया आई,
सुन पड़ती कोकिल की बोली,
चली गई थी गर्मप्रदेशों में कुछ दिन को
जो, लौटी हंसों की टोली,
सजी-बजी बारात खड़ी है रंग-बिरंगी,
किंतु न दूल्हे के सिर जब तक
मंजरियों का मौर-मुकुट कोई पहनाए, कैसे समझूं मधुऋतु आई! बौरे आमों पर बौराए भौंर न आए, कैसे समझूं मधुऋतु आई!

डार-पात सब पीत पुष्पमय जो कर लेता
अमलतास को कौन छिपाए,
सेमल और पलाशों ने सिंदूर-पताके

नहीं गगन में क्यों फहराए?
छोड़ नगर की संकरी गलियां, घर-दर, बाहर
आया, पर फूली सरसों से
मीलों लंबे खेत नहीं दिखते पियराए, कैसे समझूं मधुऋतु आई! बौरे आमों पर बौराए भौंर न आए, कैसे समझूं मधुऋतु आई!

प्रातः से संध्या तक पशुवत मेहनत करके
चूर चूर हो जाने पर भी,
एक बार भी तीन सैकड़े पैंसठ दिन में
पूरा पेट न खाने पर भी,
मौसम की मदमस्त हवा पी जो हो उठते
हैं मतवाले, पागल, उनके
फाग-राग ने रातों रक्खा नहीं जगाए, कैसे समझूं मधुऋतु आई!
बौरे आमों पर बौराए भौंर न आए, कैसे समझूं मधुऋतु आई!
भीतर भी आता है मौसम। भीतर भी आता है वसंत। कल ही तो हम गुलाल की बात करते थे न! गुलाल कहता हैः वसंत आ गया, फागुन आ गया, अब तो अपने प्यारे के संग होली खेलूंगा। उन्हीं की बात में मैं भूल ही गया कि अभी होली नहीं है। सो रायपुर के संबंध में कुछ सच्ची बातें कह गया। एक मित्र ने प्रश्न पूछा है कि आपने मुझे बहुत धक्का पहुंचाया; मैं रायपुर से आया हूं। अब मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा हूं! कहना तो चाहिए, भैया, होली है, बुरा न मानो! मगर होली थी नहीं, वह तो गुलाल... कसूर गुलाल का! ऐसी होली मचाई उन्होंने कल कि मैं भूल गया कि होली अभी है नहीं, सो सच्ची बातें कह गया रायपुर के संबंध में। अगर बुरा लगा हो तो आज झूठी बातें कह दूं।
रायपुर तो भारत की राजधानी होने योग्य है। भारतीय संस्कृति का ऐसा प्रतीक नगर और कोई! संस्कारधानी है रायपुर। इसलिए तो कहा था कि लोग अद्वैतवादी हैं। भेद ही नहीं करते। सारे संसार को ही संडास समझते हैं। और रायपुर का इलाका कहलाता छत्तीसगढ़। तुम तो जानते हो ही छत्तीस गुण!
मैं रायपुर के कालेज में जब प्रोफेसर था तो वहां एक प्रोफेसर थे, वे
थे नाई। तो लोग कहते हैं कि नउओं में छत्तीस गुण होते हैं। मुझे पक्का पता नहीं, मगर मैं हैरान हुआ कि लोग उनको कहते थेः मिस्टर सेवनटी टू। मैं कुछ चौंका। मैंने कहा कि सुना है मैंने कि नाई में छत्तीस गुण होते हैं, मगर बहत्तर! तो किसी ने मुझे समझाया जानकार अनुभवी ने कि आप समझे नहीं, इनकी एक ही आंख है, सो दोहरे गुण। दो आंख वाले नाई में छत्तीस गुण होते हैं, इनकी एक ही आंख है एक आंख वाला आदमी तो बहुत ही ग.जब का होता है, बहुत गुणी होता है, इसलिए इनको मिस्टर सेवनटी टू कहते हैं। अब रायपुर तो छत्तीसगढ़ की राजधानी है। छत्तीसों गुण हैं वहां लोगों में।
बुरा न मानो, होली की बात थी!
भीतर भी ऐसा वसंत आता है। भीतर भी ऐसी गुलाल उड़ती है। मधुकर! भीतर चलो! वहां खिले हैं फूल। फूल जो कभी कुम्हलाते नहीं। जिनको ऋषियों ने सहस्रदल कमल कहा! हजार पंखुड़ियों वाले कमल कहा। वे वहां खिले हैं। तुम्हारे भीतर भी उतने ही खिले हैं जितने बुद्धों के भीतर। जरा भी कम नहीं, जरा भी भेद नहीं। तुम में और बुद्ध में इतना ही भेद है कि तुम अपने ही कमलों की तरफ पीठ किए खड़े हो और बुद्धों ने अपने कमलों की तरफ मुंह फेर लिया है। बस, इतना ही भेद है। अबाउट टर्न! बस एक सौ अस्सी डिग्री घूम जाओ। और तुम चकित हो जाओगे। परम जीवन अपने आप झरने लगेगा। झरत दसहुं दिस मोती!

दूसरा प्रश्नः ओशो, मैं संन्यास से भयभीत क्यों हूं?

हरीश! संन्यास से भय स्वाभाविक है। संसार में तुम रंगे हो--खूब रंगे हो। जन्म के साथ ही संसार की दीक्षा मिलती है। अब अगर तुम्हारी उम्र चालीस साल है या पचास साल, तो पचास साल का सम्मोहन है संसार का। हम छोटे-छोटे बच्चों को सम्मोहित करने लगते हैं, संसार की भाषा में। हम छोटे-छोटे बच्चों को कहते हैं, पढ़ोगे-लिखोगे तो बनोगे नवाब। उनको नवाब बनाने के लिए

उनका सिर खराब करने में लगे हो। नवाबों की हालत देखते नहीं कि सब नवाबों का कबाब हो गया है और तुम उनको अभी भी नवाब बना रहे हो! लेकिन, पढ़ोगे-लिखोगे तो बनोगे नवाब। और खेलोगे-कूदोगे तो होगे खराब।
बेचारा बच्चा खेलकूद छोड़ कर पढ़ना-लिखना शुरू कर देता है। पढ़ना-लिखना महत्त्वाकांक्षा बन जाती है। प्रथम आओ! स्वर्ण-पदक लाओ! दौड़ शुरू हो गई प्रथम आने की। और जीसस कहते हैं कि जो इस जगत में प्रथम है, वह मेरे प्रभु के राज्य में अंतिम होगा। और जो यहां अंतिम है, वह मेरे प्रभु के राज्य में प्रथम होगा। और हम लोगों को सिखाते हैंः प्रथम हो जाओ। दौड़ो, दौड़ते रहो, लेकिन प्रथम होकर रहो। तो लोग बूढ़े हो जाते हैं, ... देखा मोरारजी देसाई, चौरासी साल की उम्र, मगर दौड़ते ही रहे, दौड़ते ही रहे! अभी भी दौड़ बंद नहीं हो गई, अभी भी भीतर-भीतर खुसर-पुसर चल रही है। जैसे आदमी अपना बचपना कभी खोता ही नहीं। बूढ़े भी बूढ़े नहीं हो पाते। ऐसा दिखता है, यहां सभी बाल लोग धूप में पका लेते हैं। कोई प्रौढ़ता नहीं आती। वह पद की आकांक्षा। छोटे- छोटे बच्चे कुर्सी पर चढ़ जाते हैं और कहते हैं अपने पिता से, दद्दू, हम तुम से बड़े! कुर्सी पर चढ़े। जब कुर्सी पर चढ़े तो हम तुम से बढ़े। और ये बड़े-बड़े दद्दू, इनमें भी कोई फर्क नहीं है। ये चढ़ जाते हैं कुर्सी पर तो कहते हैं कि हम बड़े, सर्वोच्च, हमसे ऊपर कोई भी नहीं। वही अकड़, वही पागलपन, वही विक्षिप्तता।
लेकिन हम बच्चों को सिखाते हैंः खूब धन कमाना, खूब पद कामना, अपने बापदादों का नाम उजागर करना! कौन सी जरूरत है बापदादों का नाम उजागर करने की? अगर वे खुद नहीं कर पाए उजागर, तो ये बेचारे काहे को उजागर करें! इनका क्या कसूर है! और उजागर ही हो जाएगा नाम तो क्या होना है? इतिहास की किताबों में स्वर्ण अक्षरों में लिख जाएगा तो भी क्या होना है? लेकिन नाम उजागर करना! अपने मां-बाप की प्रतिष्ठा बढ़ाना! मां-बाप मर गए हैं तो भी अभी तक इन बच्चों के कंधों पर बंदूक रख कर चलाने की कोशिश कर रहे हैं--मरे-मराए मां-बाप, कब्रों में पड़े हैं, मगर लड़कों के कंधों पर से बंदूक चला रहे हैं। हम महत्त्वाकांक्षा सिखाते हैं। महत्त्वाकांक्षा यानी संसार। अब संन्यास का अर्थ होता हैः महत्वाकांक्षा से मुक्ति। संन्यास का अर्थ होता हैः यह जो आपा-धापी, यह जो दौड़ है, यह जो व्यर्थ की दौड़ है, आगे होने की, इसकी व्यर्थता का दिखाई पड़ जाना। तो अड़चन तो होगी। तुम्हारे जीवन भर के सम्मोहन के विपरीत है यह। और सम्मोहन को तोड़ने में समय लगता है। यहां मुझे सबसे ज्यादा जो मेहनत करनी पड़ती है वह यही कि तुम्हारा सम्मोहन कैसे टूटे? पचास वर्ष-साठ वर्ष का सम्मोहन लेकर तुम आए हो, और एक जन्म का नहीं, जन्मों- जन्मों का सम्मोहन लेकर तुम आए हो, तुम्हारी धारणाएं मजबूत हो चुकी हैं, पत्थर की तरह तुम्हारी छाती में बैठ गई हैं, उनको हटाना मुश्किल है। उनको हटाओ तो तुम्हीं रुकावट डालते हो। क्योंकि तुम समझने लगे हो वे तुम्हारे प्राण हैं। उनमें ही तुम्हारे प्राण अटके हैं।
इससे, हरीश, संन्यास से भय लगता है।
पहला तो भय यह कि मुझे बदलना होगा। बदलना कोई चाहता नहीं। जैसे हम हैं अगर वैसे ही कुछ हो जाए तो अच्छा। इसलिए हम थोथे धर्म में पड़ जाते हैं। क्योंकि थोथा धर्म तुमसे किसी रूपांतरण की अपेक्षा नहीं करता। मंदिर चले जाओ, हनुमान जी को दो फूल चढ़ा आओ, तुम्हारा क्या बिगड़ता है? फूल भी लोग अक्सर पड़ोसियों के बगीचे से तोड़ कर ले आते हैं। मैं अपने अनुभव से कहता हूं। जबलपुर में मैंने बहुत सुंदर बगीचा बनाया हुआ था। बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। धार्मिक लोग एकदम आने लगे। सुबह से ही चले आए अपनी-अपनी डलिया लिए, फूल तोड़ने लगें। मैंने उनको रोका, उन्होंने कहा कि यह हम धर्म के लिए तोड़ रहे हैं! वे इस अकड़ से बोलें जैसे कि धर्म के लिए तोड़ रहे हैं तो कोई बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। मैंने कहा, अधर्म के लिए तोड़ रहे हो तो तोड़ने दे सकता हूं, मैं धर्म के लिए तो बिल्कुल नहीं तोड़ने दूंगा। मैंने तख्ती लगा दी कि धर्म के लिए फूल तोड़ना सख्त मना है। लोगों ने मुझसे पूछा कि आप भी खूब हैं! धर्म के लिए तोड़ना मना है! अधर्म के लिए तोड़ना नहीं मना है! मैंने कहा, अधर्म के लिए नहीं। जैसे तुम्हारा किसी स्त्री से प्रेम हो जाए और तुम फूलमाला बना कर ले जाओ, मुझे समझ में आता है कि चलो, कोई बात नहीं, कुछ काम आ

गई। मगर बेचारे हनुमान जी! न फूल मेरे काम आए, न पौधे के काम आए, न तुम्हारे काम आए और हनुमान जी क्या करेंगे! उनके क्या काम आने हैं?
और परमात्मा के लिए तो फूल चढ़े ही हुए हैं, वृक्षों पर चढ़े हुए ही चढ़े हुए हैं। वे परमात्मा का ही गीत गा रहे हैं, उसका ही गुंजन कर रहे हैं, उसकी ही गंध उड़ा रहे हैं। तुम तोड़ कर उनकी और जान ले रहे हो। नहीं, वे बोले कि प्यारे-प्यारे फूल, इनको परमात्मा के चरणों में चढ़ाना! मैंने कहा कि ये वृक्षों को लाभ मिलेगा इसका, तुम को क्या मिलेगा? तुम कुछ प्यारी-प्यारी चीज अपनी चढ़ाओ! जैसे अपनी गर्दन उतार कर चढ़ा दो। कैसा प्यारा-प्यारा चेहरा दर्पण में देखते हो! तो कुछ तुम्हें लाभ होगा। ये तो फूल अगर हुए तो गुलाब के पौधे के हैं। परमात्मा अगर धन्यवाद भी देगा तो गुलाब के पौधे को देगा, तुम कहां आते हो?
लोग पड़ोसियों के यहां से फूल तोड़ लेंगे, रास्तों के किनारे से, लोगों
की दीवालों पर चढ़ कर फूल तोड़ लेंगे--चले मंदिर में चढ़ाने! फूल भी अपने नहीं, मंदिर में मूर्ति भी पत्थर की, कुछ बनता-बिगड़ता नहीं, ये बिल्कुल आसान धर्म हुआ। यह दो कौड़ी का धर्म हुआ। रट लिया गायत्री मंत्र, दोहरा दिया, तोतों की तरह रट लिया, पुनरुक्त कर दिया, यह तो ग्रामोफोन का रिकार्ड कर दे, इसमें तुम क्या कर रहे हो? तुमसे ज्यादा बेहतर ढंग से कर दे। गायत्री मंत्र का ग्रामोफोन रिकॉर्ड ले आओ, अब तो बनते भी हैं, नमोंकार का रिकार्ड ले आओ, चढ़ा दिया सुबह से, बजता रहेगा गायत्री मंत्र, लाभ तुम्हें मिल जाएगा। और तुम सोचते हो, तुम जब गायत्री मंत्र पढ़ते हो तो कुछ भिन्न कर रहे हो? तुम्हारे मस्तिष्क में जो स्मृति है, वह भी ग्रामोफोन रिकार्ड जैसी है।
अभी वैज्ञानिकों ने जो खोज की है स्मृति के संबंध में, वह पूर्ण रूप
से सिद्ध करती है कि स्मृति बिल्कुल ग्रामोफोन का रिकार्ड है। मस्तिष्क में केंद्र हैं जहां चीजें संगृहीत होती हैं। अगर बिजली के द्वारा उन केंद्रों को छुआ जाए, तो स्मृति एकदम सक्रिय हो जाती है। जैसे कोई आदमी गायत्री मंत्र पढ़ता है। यह बैठा है शांत, वैज्ञानिक उस केंद्र को छू सकते हैं बिजली के तार से जहां गायत्री मंत्र पढ़ता है। यह बैठा है शांत, वैज्ञानिक उस केंद्र को छू सकते हैं बिजली के तार से जहां गायत्री का मंत्र संगृहीत है, बस यह आदमी एकदम गायत्री मंत्र बोलने लगेगा--हालांकि यह बोलना नहीं चाहता। यह बोलना चाहे कि न बोलना चाहे, इसको बोलना पड़ेगा। वह तो ग्रामोफोन का रिकार्ड शुरू हो गया, सुई लग गई, अब यह क्या करेगा, इसको गायत्री मंत्र बोलना ही पड़ेगा। और एक बड़े मजे की बात और है। जैसे ही सुई अलग कर लो, बंद हो जाता है। फिर सुई लगाओ, फिर शुरू। इतना ही फर्क है ग्रामोफोन रिकार्ड में और इसमें कि जब भी तुम सुई लगाओगे, हमेशा पहले से शुरू होगा, शुरू से शुरू होगा। ऐसा नहीं कि जहां से छोड़ दिया था, बीच में से शुरू हो। यह मस्तिष्क की खूबी है कि वह तत्क्षण अपने-आप वापिस पुरानी जगह पर लौट जाता है। आटोमेटिक। तुमने अगर बीच में से सुई हटा ली, तत्क्षण रिकार्ड घूम कर वापस अपनी जगह पहुंच जाता है। पुनः पूर्व-स्थिति में। फिर सुई छुआई, फिर चल पड़ा। तुम हजार बार सुई चुभाओ, हजार बार वही मंत्र दोहराएगा। और तुम जगह-जगह, अलग-अलग जगह सुई चुभाओ, अलग-अलग चीजें आदमी बोलेगा। क्योंकि अलग-अलग केंद्रों पर अलग-अलग चीजें संगृहीत हैं।
किसी केंद्र से एकदम गालियां बकने लगेगा। ये सज्जन आदमी हैं, चरखा चलाता, खादी पहनता, गांधी टोपी लगाता है, एकदम गाली बकने लगेगा। और इसको बड़ी मुश्किल तो यह होगी इसको खुद ही समझ में नहीं आएगा मैं क्या कर रहा हूं। कभी-कभी तुमको भी समझ में नहीं आता कि तुम क्या कर रहे हो? कई बार तुम कहते भी हो कि मेरे बावजूद यह बात हो गई। वह क्यों हो जाती है तुम्हारे बावजूद? तुम कहते हो, उस आदमी ने मेरी बटन दबा दी। मतलब? बटन दबाने का मतलब क्या हुआ? और बटनें हैं तुम्हारी। और सबको पता है कि किसकी बटन कहां से दबाओ तो बस, वह एकदम गर्मा जाता है। कोई भी छोटी सी चीज पर्याप्त है तुम्हारी बटन को दबाने के लिए। और तत्क्षण तुम वही व्यवहार करना चाहते हो जो तुम नहीं करना चाहते।

पत्नियां जानती हैं पतियों की बटनें, वे घर आए कि उनने दबाईं। दबाईं
कि बस पति ने वही काम शुरू कर दिया जो वह रोज करता है और हजार बार तय कर चुका है कि अब नहीं करेंगे, लाख पत्नी दबाए। मगर पत्नी जानती है कि बटन कहां है। वह एकदम दबा देती है। पति भी जानते हैं पत्नियों की बटनें। कहां से दबाओ, कैसे दबाओ? जो लोग एक-दूसरे के नैकट 216ा में रहते हैं, वे धीरे- धीरे स्वभावतः जानने लगते हैं कि किसकी बटन कहां है? किस तरह दबाओ?
अरे, आदमी की तो आदमी, कुत्ते तक जानते हैं।
मालिक आएगा तो कुत्ता एकदम पूंछ हिलाने लगता है। वह पूंछ हिला कर क्या कर रहा है, मालूम? तुम्हारी बटन दबा रहा है। वह खुशामद कर रहा है। वह कह रहा है कि आप महान हो! बेचारा कह नहीं सकता मुंह से, पूंछ हिला रहा है। अजनबी आदमी आ जाता है, भौंकने लगता है। कभी-कभी दुविधा की हालत भी होती है। उसको। तो वह दोनों काम एक साथ भी करता है। कभी दुविधा होती है कि अजनबी भी मालूम होता है आदमी और कुछ पहचाना भी लगता है, अब पता नहीं क्या हो? तो कुत्ता कूटनीतिज्ञ हो जाता है। वह पूंछ भी हिलाता है, भौंकता भी है। देखता है, तौलता है कि मामला जैसा होगा, वह फिर कर लेंगे। देखता है कि मालिक नमस्कार कर रहा है, भौंकना बंद कर देता है, पूंछ ही हिलाता रहता है। और देखता है कि मालिक ध्यान ही नहीं दे रहा है आदमी पर, पूंछ हिलाना बंद कर देता है, भौंकना जारी रखता है।
वह तो तुम बिल्कुल ही अंधे होओ तो बात अलग है।
चंदूलाल बुढ़ापे में बहरे हो गए थे। वज्र-बधिर। गए थे ढब्बू जी के घर, उनका कुत्ता एकदम भौंकने लगा। भयंकर कुत्ता ढब्बू जी रखते हैं, अलसेशियन, कि देख कर आदमी के छक्के छूट जाएं। मगर चंदूलाल डरे ही नहीं। सुनाई ही न पड़े तो डरें क्यों? चंदूलाल बोलेः ढब्बू जी, मालूम होता है तुम्हारा कुत्ता रात भर सोया नहीं। ढब्बू जी ने कहाः तुम्हारा मतलब? उन्होंने कहा कि देखो, कैसी जम्हाइयां ले रहा है! वह भौंक रहा है। मगर अब सुनाई ही न पड़ता हो, तो जम्हाइयां ले रहा है; दिखाई पड़ता है चंदूलाल को कि ढब्बूजी का कुत्ता जम्हाइयां ले रहा है।
बिल्कुल अंधे आदमी हों और बहरे आदमी हों, तो बात अलग। लेकिन उनको भी कुछ न कुछ तो दिखाई पड़ता ही है, कुछ न कुछ अनुभव में आता ही है। जिनके पास हम रहते हैं, उनकी बटनें हमारी समझ में आ जाती हैं। इसलिए लोग जानते हैं कि किस की खुशामद किस तरह से करना, किस की स्तुति किस तरह से करना? निंदा किस तरह करना? किस तरह से अपमान करना? किस तरह से सम्मान करना?
वह तो कभी-कभी मुश्किल होती है!
एक सूफी फकीर को कुछ लोगों ने जूते की माला पहना दी। वह फकीर बड़ा प्रसन्न हुआ। वह जूते की माला पहन कर चल पड़ा मस्ती से। लोग बड़े हैरान हुए, क्योंकि वे अपमान करने आए थे। उन्होंने कहा कि सुनो जी, ये जूतों की माला हमने पहनाई और तुम मस्ती से चले! उसने कहा, और क्या करोगे तुम? मालियों के गांव में जाता हूं, फूलों की माला पहनाते हैं। यह चमारों का गांव होगा-- उसमें तुम कर भी क्या सकते हो? --तो तुमने जूतों की माला लाई। भई, जिसके पास जो है, लाता है! प्रेमवश जो ले आए! धन्यवाद तुम्हारा। और जूते अच्छे हैं, काम आ जाएंगे, फूल तो मुरझा जाते हैं। तुम्हारा भाव मैं समझा; ये जूते मेरे भी काम आ जाएंगे, मेरे शिष्यों के भी काम आ जाएंगे, इतने इकट्ठे दे दिए तुमने। और सब अच्छी हालत में हैं। तो प्रसन्न क्यों न होऊं।
ऐसे आदमी की बटन तुम नहीं दबा सकते। ऐसे आदमी के साथ गड़बड़ हो जाएगी। ऐसे व्यक्ति को गीता ने कहा हैः समदृष्टि। ऐसा ही व्यक्ति महावीर ने कहा हैः सम्यक दृष्टि। सम्यक्त्व को उपलब्ध। कृष्ण कहते हैं ऐसे व्यक्ति को स्थिरध्री स्थितिप्रज्ञ जो बिल्कुल समतुल हो गया है, शांत हो गया है। इतना शांत कि अब उसका मस्तिष्क से कोई तादात्म्य नहीं रह गया। तुम्हारा मस्तिष्क से तादात्म्य है। वहां महत्त्वाकांक्षाएं भरी पड़ी हैं; बड़ी एषणाएं, बड़ी तृष्णाएं, तुम दौड़ोगे नहीं तो क्या करोगे? और संन्यास कहता हैः ठहरो। संन्यास कहता हैः रुको। संन्यास कहता हैः थोड़े बैठो। थोड़े अपने भीतर बैठो। भीतर डुबकी मारो। और तुम्हें जाना है दिल्ली! तुम्हारा हर उपाय दिल्ली जाने के लिए! तुम हर टेन में घुसने की कोशिश कर रहेः दिल्ली

पहुंचना है! तुम्हारे कानों में एक ही आवाज गूंज रही है--दिल्ली दूर नहीं। अब पहुंचे, तब पहुंचे। तुम कैसे संन्यास लो? इससे भय लगता है कि कहीं तुम्हारे जीवन की जो अभी तक व्यवस्था रही है, संन्यासी उसे अस्त-व्यस्त न कर दे।
और मैं तुम्हें कह देना चाहता हूं कि संन्यास निश्चित रूप से अस्त-व्यस्त करेगा। यह होने ही वाला है। और महत्वाकांक्षा का ही जगत नहीं, और सारी चीजों में भी अस्त-व्यस्तता आ जाएगी।
एक बहुत बड़े परिवार की महिला ने मुझसे पूछा कि मैं ध्यान करना चाहती हूं, इससे मेरे जीवन में किसी तरह की अड़चन तो नहीं आएगी? क्यों आएगी, खुद ही बोली, कि ध्यान से तो लाभ ही होगा, हानि तो कुछ होनी नहीं। इससे तो मैं और अच्छी बन जाऊंगी, तो मेरे जीवन में कोई अड़चन तो आने का प्रश्न ही नहीं उठता। मगर सवाल उठता है, इसलिए आप से पूछती हूं। मैंने उससे कहा कि तू प्रश्न ठीक पूछती है। उपद्रव होंगे। क्योंकि तू शांत हो जाएगी, लेकिन तेरे पति! तेरे पति को फिर से तेरे साथ समायोजन करना होगा। तू बदल जाएगी। तो जैसे पत्नी ने अगर सच में गहरी बदलाहट कर ली तो पति को इस तरह समायोजन करना होगा कि जैसे दूसरा विवाह किया। झंझट होगी!
और एक और आश्चर्य की बात है कि अगर कोई व्यक्ति भला हो जाए, तो दूसरे लोगों को ज्यादा चोट पहुंचती है। उसके बुरे होने से चोट नहीं पहुंचती। पति अगर शराब पिए, चलेगा। जुआ खेले, चलेगा। लेकिन ध्यान करने लगे, बस पत्नी उपद्रव खड़ा कर देगी। जुआ खेलता था, शराब पीता था, चलता था। क्यों? क्योंकि पत्नी ऊपर थी, पति नीचे था। और पत्नी जब देखो तब कौन मरोड़ती रहती थी कि तुम्हें कब अकल आएगी? पति जब भी आता था, पूंछ दबा कर घर में आता था। जब भी आता था, डरा हुआ आता था, घबड़ाया हुआ आता था। जब भी आता था, कभी साड़ी ला रहा है, कभी हार ला रहा है, कभी आइस्क्रीम ला रहा है, कभी रसगुल्ले ला रहा है-- कुछ न कुछ ला रहा है पत्नी की सेवा के लिए कि वह ज्यादा गड़बड़ न करे। अगर यह पति ध्यानी हो जाए, तो फिर न यह साड़ी लाएगा, न यह आइस्क्रीम लाएगा--यह कहेगा, क्यों लाऊं? किसलिए? और यह पत्नी से ऊपर होने लगेगा। और पत्नी के अहंकार को चोट पहुंचने लगेगी।
तो मैंने उससे कहा कि तू सोच-समझ के कर। ध्यान करना है, तो चारों तरफ अस्त-व्यस्तता तो होगी। जैसे तूफान आए। हालांकि तूफान के बाद बहुत शांति आएगी! लेकिन तूफान तो आएगा। अंधड़ तो उठेगा। तेरे और तेरे पति के बीच, तेरे और तेरे बच्चों के बीच बाधाएं पड़नी शुरू हो जाएंगी।
यह मेरा रोज का अनुभव है। पत्नी अगर ध्यान करने लगे, पति बाधा डालता है। पति की तो दूर, छोटे-छोटे बच्चे बाधा डालते हैं। अगर उनकी मां ध्यान करने लगे, तो आकर हिलाते हैं। क्योंकि उनको डर लगता है कि यह क्या हो रहा है? मुझे छोटे-छोटे बच्चों ने पत्र तक लिखे हैं कि आपने हमारी मां को क्या कर दिया? वह घंटों बैठी रहती है बिल्कुल आंख बंद करके, ऐसी पहले तो नहीं थी। पहले हमारी तरफ बहुत ध्यान देती थी; अब हमारी उपेक्षा करती मालूम पड़ती है। पहले हर छोटी चीज का ख्याल करती थी। अब उतनी चिंता रखती नहीं मालूम पड़ती। क्या हो गया है हमारी मां को? आपने क्या कर दिया? छोटे बच्चे मुझे लिखते हैं। छोटे बच्चों को भी बेचैनी होती है कि हमारी मां को क्या हो गया! पहले हम शोरगुल करते थे तो डांटती-डपटती थी, वह समझ में आता था। लेकिन अब हम शोरगुल भी कर रहे हैं, सिर पर उठा लेते हैं पूरे मकान को, और वह बैठी है शांत सो शांत ही बैठी है। वह ऐसे देख रही है जैसे है ही नहीं, जैसे हम हैं ही नहीं--बच्चों को गुस्सा आ जाता है कि यह मामला क्या है? हमारी कोई कीमत ही न रही! हमारा कोई बल न रहा। हमारी राजनीति अब चलती ही नहीं। हम पैर पटक रहे हैं, हम गुड़िया तोड़ रहे हैं, हम स्लेट फोड़ रहे हैं और मां बैठी देख रही है। क्योंकि उसकी मां को मैंने कहा है कि साक्षीभाव रखना। अब साक्षीभाव रखोगे तो अड़चन आएगी! बच्चों तक को अड़चन आ जाएगी। सारा परिवार चिंतित होने लगेगा करना क्या अब? दुखी थे तो ठीक थे, सुखी होओगे तो अड़चन आएगी।
यह दुनिया बड़ी अजीब है। यह बहुत अद्भभुत है। यह आश्चर्यचकित करने वाली दुनिया है। यह बुराई को बरदाश्त कर लेती है, भलाई को बरदाश्त नहीं करती।

तो तुम संन्यास से भयभीत हो, हरीश, स्वाभाविक है। पत्नी होगी, बच्चे होंगे, परिवार होगा, माता-पिता होंगे।
एक युवक ने संन्यास लिया, उनके बूढ़े बाप मेरे पास आ गए। बाप की उम्र होगी कोई पचहत्तर साल। बेटा तो कोई चालीस साल का है। और मुझसे आकर बड़े नाराज थे। एकदम गुस्से में बोलने लगे कि आपने यह क्या किया? संन्यास की व्यवस्था तो शास्त्रों में पचहत्तर साल के बाद है। चार आश्रम होते हैं, पच्चीस-पच्चीस वर्ष के। पच्चीस वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम, पच्चीस वर्ष गृहस्थ आश्रम, फिर पच्चीस वर्ष वानप्रस्थ रहो धर में ही मुंह रखो, जंगल की तरप 132। वानप्रस्थ! पि132 र पचहत्तर वर्ष की, उम्र में जंगल चले जाओः संन्यस्त। आपने चालीस साल के मेरे जवान बेटे को संन्यास दे दिया! आप घर-गृहस्थी बरबाद करने पर उतारू हैं। बहुत नाराज थे तो मैंने कहा, देखें, एक काम करें, एक सौदा किए लेते हैं। उन्होंने कहाः क्या सौदा? मैंने कहाः आपकी उम्र पचहत्तर साल है। उन्होंने कहाः हां? थोड़े डरे भी। जब मैंने कहा, पचहत्तर साल, तो उन्हें याद आया कि अब मामला गड़बड़ होता है। तो मैंने कहा कि मैं आपके बेटे को वापस गृहस्थ बना देता हूं, आप संन्यास हो जाएं। बेटा भी साथ आया था, वह प्रसन्न हो कर मेरी तरफ देखा, उसने कहा कि यह दबाई ठीक जगह बटन। वह जानता है अपने बाप को कि यह बुढ़ऊ संन्यासी! कभी नहीं। ये मर जाएं तो नहीं हो सकते संन्यासी! ये मरते दम तक पकड़े रखेंगे हर चीज को।
मैंने कहा, आप शास्त्र को मानते हैं, शास्त्र में कहा हुआ हैः पचहत्तर साल बाद संन्यस्त। पचहत्तर साल तक आमतौर से कई लोग जिंदा ही नहीं रहते। आप जिंदा रह गए, बड़े सौभाग्य की बात! शास्त्र को मानने का समय आ गया; आप संन्यास हो जाएं। लड़के का संन्यास मैं वापिस कर लूंगा। लड़के को समझा-बुझा दूंगा। मैंने उनके लड़के से कहा, भाई बोल! उसने कहा कि ठीक! अगर ये संन्यासी होते हों, तो मैं संन्यास छोड़ने को राजी हूं। बाप ने कहा कि मैं तीन दिन बाद सोच कर आऊंगा। वे अभी तक नहीं आए। आज कोई तीन साल हो रहे हैं। उनके लड़के को मैं पूछता हूं, वे कहते हैं वे कभी नहीं आएंगे। वे आएंगे ही नहीं अब! मगर एक फायदा हुआ, उनका लड़का बोला, कि उस दिन से वे मेरे संन्यास की चर्चा नहीं उठाते। अब वे बात ही नहीं करते हैं, संन्यास की बात ही नहीं उठाते हैं। चार आश्रम इत्यादि पहले बहुत बकवास मचाते थे! अब आश्रम वगैरह की बात ही नहीं करते।
तो अड़चन तो आएगी, हरीश! और फिर संन्यास अज्ञात में प्रवेश है। तो मन भयभीत होता है। अनजान, अपरिचित, दूर है किनारा दूसरा। यह किनारा तो अपना जाना-पहचाना है, इस पर तो हम रहे हैं जन्मों से। माना कि हमारे घर रेत के हैं, जैसे गुलाल कहते हैं, मगर फिर भी घर तो हैं। कम-से-कम नाम तो घर है। नाम से ही मन भर लेते हैं। माना कि रेत के हैं, गिर जाएंगे, मगर कम से कम किनारे की सुरक्षा तो है, तूफान से तो बचे हैं, मझधार में तो नहीं डूबेंगे, मरेंगे भी तो भी किनारे पर मरेंगे, कब्र भी बनेगी तो किनारे पर बनेगी! दूसरा किनारा पता नहीं हो या न हो! कैसे मान लें दूसरे किनारे को? प्रमाण क्या है? प्रमाण तो सिर्प उनको है जिन्होंने देखा है। तुम देखोगे तो ही प्रमाण होगा। अनुभव करोगे तो ही प्रमाण होगा। और मझधार और आंधी और तूफान, खतरे तो हैं ही। संन्यास तो खतरनाक रास्ता है। लेकिन खतरों से गुजर कर ही तो जीवन पकता है, प्रौढ़ होता है। जो खतरे में जीता है, वही तो जीता है। बाकी तो सिर्प धोखा खाते हैं जीने का। तो तुम्हें भय लगता होगा।
इस पार, प्रिए, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा?
यह चांद उदित होकर नभ में
कुछ ताप मिटाता जीवन का,
लहरा-लहरा यह शाखाएं
कुछ शोक भुला देतीं मन का कल मुर्झानेवाली कलियां हंसकर कहती हैं, मग्न रहो, बुलबुल तरु की फुनगी पर से संदेश सुनाती यौवन का,

तुम देकर मदिरा के प्याले मेरा मन बहला देती हो,
उस पार मुझे बहलाने का
उपचार न जाने क्या होगा!
इस पार, प्रिए, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

जग में रस की नदियां बहतीं, रसना दो बूंदें पाती है,
जीवन की झिलमिल-सी झांकी नयनों के आगे आती है,
स्वर-तालमई वीणा बजती
मिलती है बस झंकार मुझे,
मेरे सुमनों की गंध कहीं यह वायु उड़ा ले जाती है;
ऐसा सुनता, उस पार प्रिए,
ये साधन भी छिन जाएंगे;
तब मानव की चेतनता का
आधार न जाने क्या होगा!
इस पार प्रिए, मधु है, तुम हो, उस पार न जाने क्या होगा!

प्याला है, पर पी पाएंगे,
है ज्ञात नहीं इतना हमको, इस पार नियति ने भेजा है
असमर्थ बना कितना हमको;
कहने वाले, पर कहते हैं,
हम कर्मो में स्वाधीन सदा; करने वालों की परवशता
है ज्ञात किसे, जितनी हमको; कह तो सकते हैं, कह कर ही
कुछ दिल हलका कर लेते हैं;
उस पार अभागे मानव का
अधिकार न जाने क्या होगा!
इस पार प्रिए, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!
संन्यास तो नाव है उस पार जाने के लिए। और नाव भी कहना ठीक नहीं, डोंगी
ही कहनी चाहिए। कोई बड़ा जहाज भी नहीं है यह कि जिसमें भीड़-भाड़ सम्मिलित हो जाए, प्रत्येक को अकेले जाना है। इसलिए भी भय लगता है। क्योंकि भीतर की यात्रा पर तुम किसी को संग-साथ नहीं ले सकते। तुम चार मित्रों को लेकर भीतर नहीं जा सकते। भीतर तो अकेले जाना होगा। पहुंचोगे जब तुम स्वयं के अंतर्तम पर, तो बिल्कुल एकांत होगा। समग्ररूप से एकांत। कोई दूसरा न होगा वहां। इससे डर लगता है!
इस पार, प्रिए, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!
बाहर तो मित्र हैं, प्रिय हैं, प्रियजन हैं, साथी हैं, संगी हैं, मित्र हैं, शत्रु हैं, बड़ा मेला है, बड़ा झमेला है, मगर भीतर न मेला है, न झमेला है। भीतर तो शून्य है। और शून्य में उतरने की तैयारी संन्यास है। मगर जो शून्य में उतरते हैं, वे धन्यभागी हैं। क्योंकि वे पूर्ण को पाने के अधिकारी हो जाते हैं।
हरीश, हिम्मत करो! और ये जीवन तो यूं भी चला जाएगा, यूं भी जा ही रहा है, इसको जरा दांव पर लगा कर देख लो! ऐसे ही खो जाएगा, ... मौत जब द्वार पर आकर दस्तक देगी तो क्या करोगे? क्या कहोगे कि मुझे भय लगता है, मैं आता नहीं;

कि मुझे भय लगता है, मैं दरवाजा नहीं खोलता; कि मुझे भय लगता है, मैं मरना नहीं चाहता। मौत एक न सुनेगी। और जब मौत एक न सुनेगी और जाना ही पड़ेगा अज्ञात अंधकार में, तो क्यों न स्वेच्छा से हम जाएं। और स्वेच्छा से क्रांति घटित हो जाती है।
जब हम अपनी इच्छा के विपरीत मौत के द्वारा घसीटे जाते हैं, तो दुख और पीड़ा होती है, संताप होता है। और जब हम स्वेच्छा से कदम उठाते हैं, अज्ञात, तो आनंद होता है। अपूर्व आनंद होता है।
मौत भी वही करती है, जो संन्यास करता है। फर्क इतना है कि मौत जबरदस्ती करती है; तुम किनारे को पकड़ते हो और मौत तुम्हें छीन कर उस तरफ ले जाती है। इस छीनाझपटी में मरने का मजा नहीं ले पाते। जीने का भी नहीं ले पाए, मरने का भी नहीं ले पाते। संन्यासी जीने का भी मजा लेता है और मरने का भी। संन्यासी मजा ही मजा लेता है। संन्यास को मैं परम भोग कहता हूं, क्योंकि वह परमात्मा का भोग है। संन्यासी जीवन को भी बूंद-बूंद पी लेता है, निचोड़ लेता है उसका रस, और मृत्यु को भी। मृत्यु भी उसे भयभीत नहीं करती। क्योंकि वह मरने के पहले ही अज्ञात में प्रवेश कर चुका है, मौत उसे और कहां ले जाएगी? तो तुम्हें जो मौत की तरह दिखाई पड़ती है, उसके लिए तो परमात्मा का द्वार बन जाती है। ये जो यमदूत आते हैं, भैंसों पर सवार होकर, ये संन्यासी के लिए नहीं आते। अब तक किसी संन्यासी ने ऐसा नहीं कहा। ये तो गैर-संन्यासी के लिए, ये तो संसारी के लिए हैं। ये भैंसें वगैरह कहीं भी नहीं हैं, तुम्हारी कल्पना है। तुम घबड़ाए हुए हो, तुम डरे हुए हो, डर से तुम्हारे भैंसे खड़े हो जाते हैं। भैंसों पर सवार यमदूत।
कहां की सवारी! जमाना बदल गया। यमदूत आएंगे भी तो ऐसे आएंगे जैसे कोई
टक डरइवर आता है। अब भी तुम सोच रहे हो कि वे भैंसों पर सवार होकर आएंगे! अब भैंसों से कौन डरता है? हां, टक डरइवर से जरा डरना पड़ता है। क्योंकि चले आ रहे हैं पीए हुए!
मैंने सुना, एक टक डरइवर मरा। उसे स्वर्ग ले जाया गया। वह खुद भी हैरान हुआ। उसने द्वारपाल से पूछा कि भइया, कुछ भूल-चूक हो गई? क्योंकि मुझे ले आए! मैं तो नरक जाने को तैयारी किए बैठा था। मैंने तो मान ही लिया था कि मैं तो नरक जाऊंगा ही। मगर बैंड-बाजे बज रहे हैं। बिसमिल्ला खां शहनाई बजा रहे हैं। यह मामला क्या है? फूलमालाएं पहनाई जा रही हैं। कुछ भूल-चूक हो गई! पहरेदार ने कहा कि नहीं, भूल-चूक कुछ नहीं हुई, तुम्हें इसलिए यहां लाया गया कि तुमने टक इस गजब ढंग से चलाया कि न मालूम कितने लोगों को तुम भगवान की याद दिला देते थे। जो तुम्हारा टक आते देखता, वही कहताः हे राम! लोग उचक कर एकदम पटरी पर चढ़ जाते। जो बच जाता, वह भगवान को धन्यवाद देता। तुमने जितने लोगों को प्रभु का स्मरण करवाया, उतना बड़े-बड़े पंडित और महात्मा भी नहीं करवा सके। तुम टक क्या चलाते थे बिल्कुल यमदूत की तरह चलाते थे! इसलिए परमात्मा तुम पर बहुत प्रसन्न है। इसलिए तुम्हें स्वर्ग लाया गया है।
तुम सोचते हो अभी भी यमदूत भैंसों पर सवार होते होंगे! मगर काला भैंसा, काले यमदूत, जमती थी जोड़! राम मिलाई जोड़ी, कोई अंधा कोई कोढ़ी। बिल्कुल तालमेल खाते थे।
मगर ये तुम्हारे भय से पैदा हुए हैं।
जो जान कर मरे हैं, जो जीवन को पहचान कर मरे हैं, उन्होंने कुछ और कहा है। उन्होंने कहा कि परम प्रकाश हो जाता है। मरने की घड़ी में जैसे हजार-हजार सूरज एक साथ ऊग आएं। जैसे झील पर कमल खिलते ही जाएं, खिलते ही जाएं, खिलते ही जाएं। जैसे अनंत झील, अनंत कमल खिल जाएं। जो जाग कर मरे हैं, जो ध्यान में मरे हैं, उन्होंने मृत्यु में न तो कोई कालिख देखी, न कोई भैंसे देखे, न कोई यमदूत देखे। हां, परमात्मा का आलिंगन पाया है, मिलन पाया है। मगर इसके लिए जरूरत है कि पहले तुम थोड़ी हिम्मत जुटाओ।
संन्यास साहसी के लिए है। भीरु के लिए तो बहुत मंदिर हैं। यह मंदिर भीरुओं के लिए नहीं। भीरुओं के लिए तो बहुत मंदिर हैं, बहुत मस्जिदें हैं। वे चले जाएं वहां। वहां घुटने टेके हुए करते रहें प्रार्थनाएं। कुछ पाएंगे नहीं। कहीं भय से भगवान मिला है! भय से संबंध जुड़ते ही नहीं, टूट

जाते हैं। प्रेम से संबंध जुड़ते हैं। संन्यास प्रेम है परमात्मा से। और जिस दिन परमात्मा का प्रेम तुम्हारे भीतर सघन होता है, उस दिन संसार की व्यर्थ बातें अपने आप विदा हो जाती हैं। मैं तुम से संसार को छोड़ने को कहता नहीं। सिर्प इसीलिए नहीं कहता हूं कि जिस दिन परमात्मा का प्रेम जगेगा, जो व्यर्थ है वह अपने आप छूटने लगेगा। छूटना ही चाहिए। छोड़ने की जरूरत पड़े, तो समझो कि अभी परमात्मा का प्रेम पैदा नहीं हुआ। अरे, जिसके हाथों में हीरे आ जाएंगे, वह पत्थर ढोता रहेगा! जिसे हीरे की खदान मिल जाएगी, वह कंकड़-पत्थर बीनेगा? जिसके चारों तरफ मोतियों की वर्षा होगी, वह मोतियों से झोली भरेगा। वह क्यों संसार की क्षुद्र बातों में पड़ा रहेगा!

संसार नहीं छूटता मेरे संन्यासी का। इस अर्थ में नहीं छूटता कि वह घर में रहेगा, दुकान पर भी बैठेगा, बाजार में भी जाएगा; मगर इस अर्थ में छूट जाता है कि संसार उसके लिए एक नाटक हो जाता है, एक अभिनय हो जाता है। एक खेल है। जो दिया परमात्मा ने अभिनय, जो पात्र बना दिया, उसे पूरा कर देना है। जो करवाए, करवा ले, वह सब उसकी मर्जी पर छोड़ देता है।

भय तो पकड़ेगा, लेकिन घबड़ाओ मत! यह सभी को पकड़ता है। इसके बावजूद भी छलांग लेने की हिम्मत जुटाओ। तुम्हारे भीतर उतना ही बल है जितना किसी और के भीतर। अपने बल को पुकारो, आवाहन दो। भय को पड़ा रहने दो एक तरफ। छोड़ दो नाव। है भय तो सही, रहने दो भय को, तुम छोड़ो नाव। नाव छोड़ते ही भय विदा हो जाएगा। संन्यस्त होते ही भय तो अपने-आप विलीन हो जाता है, उसकी जगह उमड़ती है पीर, प्रीति; उमड़ता है प्रेम, उमड़ते हैं गीत; वीणा बजने लगती है।

भय तो दुर्गंध है, प्रेम सुगंध है। भय से भरे रहोगे, दुर्गंध से भरे रहोगे। भय से तो कोई काम मत करना। भय से तो जीवन में कोई भी कदम मत उठाना। अभय से ही कुछ करो। क्योंकि अभय ही तुम्हें परमात्मा तक ला सकता है, सत्य तक ला सकता है। महावीर ने कहा हैः अभय पहली शर्त है सत्य को जानने की।

तीसरा प्रश्नः ओशो, मनुष्य के रूपांतरण के लिए क्या मनोविज्ञान पर्याप्त नहीं है? मनोविज्ञान के जन्म के पश्चात धर्म की क्या आवश्यकता है?

नरेश! मनोविज्ञान रूपांतरण में उत्सुक ही नहीं है। मनोविज्ञान तो समायोजन में उत्सुक हैं, एडजस्टमेंट में। मनोविज्ञान तो चाहता है कि तुम भीड़ के साथ समायोजित रहो, तुम भीड़ से छूट न जाओ, टूट न जाओ, अलग-थलग न हो जाओ, तुम भीड़ के हिस्से रहो। मनोविज्ञान का तो पूरा उपाय यही है कि तुम व्यक्ति न बन पाओ, समाज के अंग रहो। तो जैसे ही कोई व्यक्ति समाज से छिटकने लगता है, हटने लगता है, कुछ निजता प्रगट करने लगता है, वैसे ही हम मनोवैज्ञानिक के पास भागते हैं कि इसको समायोजन दो, इसको वापिस लाओ, यह कुछ दूर जाने लगा; इसने कुछ पगडंडी बनानी शूरु कर दी, राजपथ पर लाओ! मनोविज्ञान रूपांतरण में उत्सुक ही नहीं है।

रूपांतरण का अर्थ होता हैः क्रांति। और पहली क्रांति तो है समाज से मुक्त हो जाना, व्यक्ति हो जाना। पहली तो क्रांति हैः आत्मवान होना। पहली तो क्रांति है कि भेड़चाल छोड़ देना। साधारणतः आदमी भेड़ों की तरह है। जहां सारी भेड़ें जा रही हैं, वह भी जा रहा है। उससे पूछो, तुम क्यों जा रहे हो? वह कहता, औरों से पूछो। ये क्यों जा रहे हैं? हमारे बापदादे भी जाते थे, उनके बापदादे भी जाते थे, इसलिए हम भी जा रहे हैं। तुमने कभी खुद से भी पूछा कि तुम क्यों उठ कर चले मंदिर की तरफ, या मस्जिद की तरफ? क्योंकि बापदादे भी वहीं जाते थे। और बापदादों से तुमने पूछा कि वे क्यों जाते थे? उनके बापदादे भी वही जाते थे। इस भीड़ से जब भी कोई छिटकने लगता है तो भीड़ चिंतित हो जाती है।

मनोविज्ञान तो अभी भीड़ की सेवा करता है, अभी उसमें क्रांति नहीं है। अभी तो वह चाहता है कि तुम्हें मनोचिकित्सा के द्वारा भीड़ का अंग बना दिया जाए। वह तुम्हें भीड़ के साथ राजी करवाता है। और दूसरा काम वह यह करता है कि तुम्हारे भीतर तुम अगर अपने से ही परेशान होने लगो, तो वह तुम्हारी परेशानियों से भी तुम्हें धीरे-धीरे राजी करवाता है।

एक शराबघर में एक आदमी आता था। वह पूरा गिलास तो शराब का पी जाता, लेकिन आखिरी घूंट वह शराबघर के मालिक के ऊपर बुलक देता। मालिक ने पहली दफा समझा कि नशे में ज्यादा है। मगर जब यह बार-बार हुआ तो उसने कहा, यह क्या बदतमीजी है! उसने कहा, मैं क्या करूं? मैं लाख रोकना चाहता हूं मगर नहीं रोक पाता। असल में अब तुमने पूछा ही है तो सच्ची बात कह दूं। मेरी पत्नी मर गई। जब तक वह जिंदा थी, मैं उस पर बुलकना चाहता था लेकिन कभी बुलक नहीं पाया। वह महाभयंकर थी। वह ऐसा सताती मुझे! सो मैं रुका रहा, रुका रहा, रुका रहा। अब वह मर गई। जब से वह मरी है, तब से मुझे यह फितूर हो गया है। तुम पर ही नहीं करता हूं यह काम, कहीं भी! और जगह-जगह दिक्कत खड़ी होती है। अब किसी पर भी तुम पानी बुलक दो, या शराब बुलक दो, या चाय बुलक दो... ! तो उस शराबखाने के मालिक ने कहा, ऐसा करो कि मैं मनोवैज्ञानिक को जानता हूं, तुम वहां जाओ, चिकित्सा हो जाएगी, ठीक हो जाओगे। यह कोई खास बात नहीं है। एक रोग तुम्हें पकड़ गया है, एक मानसिक रुग्णता।
तीन महीने तक वह आदमी आया नहीं, तीन महीने बाद आया, भला-चंगा लग रहा था, बिल्कुल ठीक लग रहा था, स्वस्थ दिख रहा था। शराबघर के मालिक ने पूछा कि कहो, गए मनोवैज्ञानिक के पास? कहा कि गया तीन महीने। कुछ लाभ हुआ? उसने कहा कि पूरा लाभ हो गया। उसने कहाः अब बुलकते हो कि नहीं? उसने कहाः अब भी बुलकता हूं, मगर अब जरा भी अपराध-भाव अनुभव नहीं होता। मनोवैज्ञानिक ने समझा दिया कि यह तो साधारण सी बात है, यह कोई बड़ी बीमारी नहीं है। तीन महीने लगे उसको समझाने में, लेकिन समझा ही दिया कि यह कोई खास बात नहीं है! इसमें क्या बिगड़ता है, किसी का क्या बिगड़ता है? अरे, कोई मिट्टी के पुतले थोड़े ही हैं कि गल जाएंगे! और इसमें तुमने ऐसा कौन सा पाप कर दिया! लोग ऐसे- ऐसे पाप कर रहे हैं! चंगेजखां की सोचो, तैमूरलंग, एडोल्फ हिटलर, माओत्से तुंग, अयातुल्ला रुहेल्ला खुमैनी, इनकी सोचो! एक से एक पागल दुनिया में पड़े हैं। तुम हो ही क्या? जरा पानी बुलक दिया, इसमें क्या बिगड़ रहा है! एक निर्दोष कृत्य। और होली पर तो सभी करते हैं। तुम यह समझो कि तुम्हारी रोज ही होली है। उसने मुझे समझा दिया। करते तो अब भी मैं वही हूं, मगर अब डरता नहीं हूं और न अपराध-भाव अनुभव होता है, न बेचैनी अनुभव होती है। तुमने ठीक पता दिया था, उस आदमी ने मुझे बिल्कुल स्वस्थ कर दिया।
मनोवैज्ञानिक यही कर रहे हैं। वे तुम्हारी बीमारियों से तुम्हें राजी करते हैं। तुम्हारी बीमारियों का अपराध-भाव तुमसे मिटा देते हैं। और दूसरा काम वे यह करते हैं कि वे समाज के साथ तुम्हारा पुराना समायोजन फिर से थिर कर देते हैं। रूपांतरण का तो सवाल ही मनोविज्ञान में नहीं है। रूपांतरण तो धर्म के द्वारा ही हो सकता है। रूपांतरण तो उनके द्वारा ही हो सकता है जिनका स्वयं रूपांतरण हुआ हो। मनोवैज्ञानिक तो खुद रुग्ण है, वह क्या रूपांतरण करेगा? तुम्हें पता है, मनोवैज्ञानिक जितने पागल होते हैं उतने ज्यादा पागल दुनिया के किसी दूसरे व्यवसाय के लोग नहीं होते? अनुपात दुगना है। किसी भी दूसरे व्यवसाय में इतने लोग पागल नहीं होते जितने मनोवैज्ञानिक पागल होते हैं। और यही अनुपात आत्महत्या का है। जितने मनोवैज्ञानिक आत्महत्या करते हैं, उतने दूसरे व्यवसाय के लोग आत्महत्या नहीं करते। दुगनी आत्महत्या करते हैं।
एक बहुत बड़ा मनोवैज्ञानिक एडलर एक विश्वविद्यालय में बोल रहा था। उसका सिद्धांत तुम जानते हो, हीनता-ग्रंथि उसका सिद्धांत था। उसने ही खोजा था। वह कहता था, प्रत्येक व्यक्ति या तो हीनता-ग्रंथि से पीड़ित होता है, या महानता की ग्रंथि से पीड़ित होता है। उसका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन की प्रबल आकांक्षा एक ही है कि मैं श्रेष्ठ हो जाऊं, मैं शक्तिशाली हो जाऊं, विल टू पॉवर। जैसे सिग्मंड फ्रायड कहता है, कामवासना मूल आधार है, वैसे ही एडलर जो कि उसका पहले शिष्य था और बाद में अलग हो गया, धोखा दे गया फ्रायड को, उसने सिद्धांत निकाला कि असली जीवन का सिद्धांत शक्ति पाने की आकांक्षा है। तो वह कहता था, हर आदमी इससे पीड़ित है और हर आदमी इसी के अनुसार चल रहा है। वह समझा रहा था विश्वविद्यालय में। वह यह कह रहा था कि जो लोग ठिगने कद के होते हैं, वे राजनीति में प्रवेश कर जाते

हैं। क्योंकि राजनीतिज्ञ बड़ी-बड़ी कुर्सियों पर बैठ कर अपने ठिगने कद को भुलाने की चेष्टा करते हैं। इसके लिए उदाहरण खोजे जा सकते हैं।
एक मजा है दुनिया में कि इतने तरह के आदमी हैं, दुनिया में कि हर सिद्धांत के लिए उदाहरण खोजे जा सकते हैं। नेपोलियन केवल पांच फीट पांच इंच था। और इसलिए एडलर कहता था कि वह दुनिया जीत कर बताना चाहता था कि मैं कोई छोटा नहीं हूं। और नेपोलियन हमेशा परेशान भी था अपनी ऊंचाई की वजह से, ठिगनेपन की वजह से। भारत में तो पांच इंच उतना छोटा नहीं लगता, लेकिन पश्चिम में बहुत छोटा लगता है कि जहां छह फीट, साढ़े छह फीट, सात फीट लोग आसानी से मिल जाते हैं। अब सात फीट आदमी के पास पांच फीट पांच इंच का आदमी खड़ा होगा, तो वह लगता है कि कोई बौना खड़ा है। तो नेपोलियन को यह बात बहुत तकलीफ देती थी। उसकी ही फौज में बड़े-बड़े सिपाही थे।
एक दिन घड़ी वह उसकी बंद हो गई, उसको ठीक करने के लिए दीवाल पर हाथ पहुंचा रहा था तो हाथ नहीं पहुंच रहा था, तो उसके बाडीगार्ड ने, उसके शरीररक्षक ने कहा कि ठहरिए, मैं आपसे ऊंचा हूं, मैं ठीक किए देता हूं। नेपोलियन एकदम आगबबूला हो गया, उसने कहा, अपने शब्द वापस लो, तुम मुझसे ऊंचे नहीं हो, लंबे हो। शब्द बदलो। ऊंचे!? तुम मुझ से ऊंचे किस तरह? लंबे हो। लंबाई बात और है। ऊंचाई... ! वह हमेशा पीड़ित था उस बात से।
तुमने अगर तस्वीरें देखी हों पंडित जवाहर लाल नेहरू की, पहली दफा शपथ लेते हुए, तो तुमने एक बात देखी होगी। माउंट बैटन तो लंबा आदमी था, श्रीमती माउंट बैटन और भी लंबी मालूम होती है, और नेहरू की तो ऊंचाई पांच फीट पांच इंच ही थी, तो नेहरू एक सीढ़ी पर खड़े हुए हैं, जब शपथ ली उन्होंने। तुम फोटो देखना अगर कभी तुम्हें फोटो फिर मिल जाए। तो वह पहले सीढ़ी पर खड़े हुए हैं और माउंट बैटन सीढ़ी के नीचे खड़ा हुआ था, तब भी वह ऊंचा मालूम पड़ रहा है। वह सब आयोजित है कि वह सीढ़ी पर खड़े होकर शपथ लेंगे, वह नीचे सीढ़ी पर खड़ा होगा। नहीं तो बहुत ही छोटे मालूम पड़ेंगे।
एडलर समझा रहा था लोगों को। एक व्यक्ति खड़ा हुआ और उसने कहा, मैं यह पूछना चाहता हूं, और सब तो ठीक है, क्या आप समझते हैं कि मनोवैज्ञानिक वे ही लोग होते हैं जो मानसिक रूप से रुग्ण होते हैं? आपके सिद्धांत के अनुसार अगर ठिगने लोग राजनीति में जाते हैं, तो पगले जाते होंगे मनोविज्ञान में। बिल्कुल ठीक है। आखिर मनोवैज्ञानिक क्यों मनोवैज्ञानिक होता है? उसका भी कुछ कारण होना चाहिए। और प्रमाण तो ऐसे ही मिलता है, क्योंकि दुगने पागल होते हैं मनोवैज्ञानिक। और जो नहीं होते पागल, उनकी भी तुम पूछो मत, वे भी करीब-करीब पागल ही हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन को अचानक न जाने क्या हो गया था कि उसको प्रत्येक वस्तु एक की बजाय तीन दिखाई देती। जैसे एक रास्ते की बजाय उसे तीन रास्ते दिखाई देते। एक कार की बजाय तीन कारें दिखाई देतीं। वह स्वयं के इलाज के लिए किसी तरह शहर के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक के पास पहुंचा और उसने कहा कि महोदय, बड़ी अजीब समस्या उठ खड़ी हुई है। मुझे प्रत्येक वस्तु एक की बजाय तीन-तीन दिखाई देती हैं। अब आप ही बताइए मैं क्या करूं?
मनोवैज्ञानिक ने उसे ऊपर से नीचे तक देखा और बोला कि क्या आप पांचों
को यही रोग है?
मनोवैज्ञानिक क्या ख़ाक रूपांतरण करेंगे! अपना ही तो कर लें, फिर औरों का!
सिग्मंड फ्रायड इतना डरता था मौत से कि मौत शब्द भी अपने सामने सुनना पसंद नहीं करता था। दो बार तो ऐसा हुआ कि कोई ने मौत शब्द छेड़ दिया, बातचीत में आ गया, तो वह इतना घबड़ा गया कि बेहोश हो कर गिर पड़ा। दो बार जिंदगी में। अब जो मौत शब्द से धबरा कर बेहोश हो जाय, इस बिचारे से क्या आशा करोगे कि लोगों का जीवन रूपांतरण करेगा?
जीवन रूपांतरण बुद्धों के द्वारा होता है।
दूसरा मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग बहुत बार जाना चाहता था इजिप्त। इजिप्त में कब्रों के भीतर दबी हुई ममी.ज--मरे हुए लोग मसाले में ढांक कर इस तरह रखे गए हैं कि हजारों साल से भी उनकी लाशें सड़ी नहीं हैं-- उनको देखने जाना चाहता था। लेकिन लाश देख कर ही उसे डर लगता था। मगर फिर भी

जाने की कोशिश करता था कि देख ले एक दफा जाकर। उसने कई दफा टिकट बुक करवाई। मगर टिकट तो बुक करवा ले, जिस दिन हवाई जहाज पकड़ना है, उसके दो दिन पहले, एक दिन पहले बीमार हो जाए। यह इतनी बार हुआ कि उसको भी समझ में आ गया कि मामला कुछ गड़बड़ है। और जैसे ही टिकट कैंसिल हो कि बिल्कुल ठीक। जिंदगी भर कोशिश करके भी वह जा नहीं पाया इजिप्त।
ये मनोवैज्ञानिक जो लाश न देख सकें, ये अपनी मृत्यु की कल्पना कैसे करेंगे? ये अपने को मरा हुआ कैसे देखेंगे? ये सुकरात की तरह तो नहीं मर सकते। ये बुद्ध की तरह तो नहीं मर सकते। ये महावीर की तरह तो नहीं मर सकते। ये जी भी कैसे सकते हैं उनकी तरह अगर मर नहीं सकते तो।
मनोवैज्ञानिकों को जितनी ज्यादा विक्षिप्तताएं घेर लेती हैं, उतनी शायद किसी और को नहीं घेरतीं। और स्वाभाविक भी है एक लिहाज से। क्योंकि पगलों से ही घिरे रहते हैं। चौबीस घंटे उन्हीं से मिलना-जुलना, उन्हीं का सत्संग। सत्संग का असर तो होगा ही। वह तो शास्त्र कह ही गए हैं पहले ही से कि सत्संग का बड़ा असर होता है! अब पागलों के पास ही रहेंगे तो पागल न हो जाएंगे तो और क्या होगा?
एक मनोवैज्ञानिक दूसरे मनोवैज्ञानिक से कह रहा था कि अब कुछ करना ही होगा। पिछले एक महीने से मैं परेशान हूं। मेरी पत्नी अपने-आप को फ्रि.ज समझने लगी है। और पिछले एक महीने से उसने मुझे परेशान कर रखा है।
दूसरा मनोवैज्ञानिक बोला, लेकिन इसमें परेशान होने की क्या बात है? आखिर नुकसान क्या है? समझने दो उसे अपने-आप को फ्रि.ज। तुम्हारा क्या बिगड़ता है!
पहला मनोवैज्ञानिक बहुत झुंझला गया और बोला, क्या बिगड़ता है? आप भी अजीब आदमी हैं! अरे, वह रात भर मुंह खोल कर सोती है।
दूसरा मनोवैज्ञानिक बोला, तो सोने दो, भाई। मुंह खोल कर सोती है तो और
भी अच्छा है। नाक से भी सांस लेगी, मुंह से भी सांस लेगी, दोहरी सांस लेगी, लाभ ही लाभ है, इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ता है?
पहला मनोवैज्ञानिक बोला कि आप समझे नहीं, जनाब? अरे, परेशान न होऊं तो क्या करूं? रात भर फ्रि.ज का बल्ब जलता रहे, तो मैं सोऊं कैसे? और फ्रि.ज भी बाजू ही, बगल में लेटा हो बिस्तर पर!
विक्षिप्तताएं मनोवैज्ञानिकों को सहजता से घेर लेती हैं; क्योंकि उनका मनोविज्ञान उन्हें मन से ऊपर उठने की कोई कला नहीं सिखाता। अभी मनोविज्ञान के पास ध्यान जैसी कोई कला नहीं है। अभी मनोविज्ञान तो केवल बौद्धिक विचार है, विश्लेषण है। अभी तो बस सोच-विचार है। और सोच-विचार से क्या कोई क्रांति हो सकती है! क्रांति तो होती है निर्विचार से। क्रांति तो होती है निराकार के अनुभव से।
नरेश, तुम पूछते होः "मनुष्य के रूपांतरण के लिए क्या मनोविज्ञान पर्याप्त नहीं है?"
बिल्कुल भी पर्याप्त नहीं है। और तुम पूछते हो, मनोविज्ञान के जन्म
के पश्चात धर्म की क्या आवश्यकता है? धर्म की आवश्यकता सदा रहेगी। मनोविज्ञान कभी उसकी पूर्ति नहीं कर सकता। क्योंकि धर्म बात ही और है। विज्ञान शरीर पर ठहर जाता है, मनोविज्ञान मन पर ठहर जाता है--और धर्म आत्मा पर। उन तीनों के आयाम अलग हैं। मनोविज्ञान आत्मा को मानता ही नहीं। जैसे विज्ञान मन को भी नहीं मानता, सिर्प मस्तिष्क को मानता है। मस्तिष्क शरीर का हिस्सा है। विज्ञान की दृष्टि में, भौतिकशास्त्री की दृष्टि में तुम केवल शरीर हो। तुम्हारी खोपड़ी में और गोभी में कुछ ज्यादा फर्क नहीं है। बस, साग-भाजी हो। और साग-भाजी खाओगे तो साग-भाजी होओगे! और इस देश में तो और भी समझो, बिल्कुल सच बात है, सभी शाकाहारी!
मनोविज्ञान थोड़ा भौतिकशास्त्र से ऊपर उठता है, टटोलता है थोड़ा, कि मनुष्य मन भी है। मगर मन कोई शाश्वत तत्त्व नहीं है मनोविज्ञान के लिए। शरीर के साथ ही पैदा होता है, मर जाता है। शरीर की "बाय प्राडक्ट" है। जैसा चार्वाक कहता है कि तुम पान खाते हो, ओंठ लाल हो जाते हैं। अब पान में होता ही क्या है? पान का पत्ता अलग से खाओ, ओंठ लाल नहीं होते। चूना अलग से खाओ, ओंठ क्या ख़ाक लाल होंगे! लाल होंगे, तो और सफेद हो जाएंगे। कत्था अलग से

खाओ, ओंठ लाल-वाल नहीं होने वाले, सिर्प मुंह कड़वा हो जाएगा। सुपारी डाल लो, और तरह-तरह के मसाले चबाओ, अलग-अलग, मुंह लाल होने वाला नहीं। लेकिन सबको मिला कर पान बनता है। पान का बीड़ा और तब ओंठ लाल हो जाते हैं। यह लाली कहां से आती है? यह बाई-प्रॉडक्ट है। यह इन सबके मिलने से पैदा होती है। ऐसा मनोविज्ञान मानता है कि यह शरीर में जो सारे तत्त्व मिले हैं, उनसे मन पैदा हुआ है। मन एक बाई-प्रॉडक्ट है। शरीर मिट जाएगा, मन मिट जाएगा।
मनोविज्ञान कैसे धर्म की पूर्ति कर सकता है? धर्म कहता है, तुम न तो शरीर हो, न तुम मन हो; तुम वह हो जो शरीर को भी देखता है और मन को भी देखता है। तुम वह द्रष्टा हो। तुम वह दर्शन हो। तुम वह साक्षीभाव हो। वह शरीर के पहले था और शरीर के बाद भी होगा। न उसका कोई जन्म है, न उसकी कोई मृत्यु है।
उस शाश्वत को जान लेने से जीवन में क्रांति होती है। उस शाश्वत को जानने से जीवन में सच्चिदानंद की वर्षा होती है।

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
उन्नीसवां प्रवचन

सुरति संभारिकै नेह लगाइकै

सरन संभारि धरि चरनतर रहो परि,
काल अरू जाल कोउ अवर नाहीं।।
प्रैम सों प्रीति करू, नाम को हृदय धरू,
जोर जम काल सब दूर जाहीं।।
सुरति संभारिकै नेह लगाइकै,
रहो अडोल कहुं डोल नाहीं।।
कहै गुलाल किरपा कियो सतगुरु,
परयो अथाह लियो पकरि बाहीं।।

भक्ति-परताप तब पूर सोइ जानिए,
धर्म अरु कर्म से रहत न्यारा।।
राम सों रमि रह्यो ज्योति में मिलि रह्यो,
दुंद संसार को सहज जारा।।
भर्म भव मारिकै क्रोध को जारिकै,
चित्त धरि चोर को कियो यारा।।
कहै गुलाल सतगुरु किरपा कियो,
हाथ मन लियो तब काल मारा।।
मणियां बेच रहा हूं आओ!
मणियां हैं सुंदर, अति सुंदर
मणियों की है ज्योति अनश्वर,
शोभा की अनदिखी राशि वर देख तनिक यह जाओ। मणियां बेच रहा हूं आओ!
दीप्त कौन था इनसे सागर,
किस मांझी के कला-कुशल कर
ढूंढ इन्हें लाए हैं बाहर, यह मुझसे सुन जाओ। मणियां बेच रहा हूं आओ!
सागर मानव का अंतस्तल
भरा भावना का जिसमें जल,
उसमें था कविता मुक्ता-दल, सह परखो, परखाओ! मणियां बेच रहा हूं आओ!
कविवर मांझी इसके अंदर
उतर कल्पना की डोरी पर,
लाया है इनको चुन-चुन कर; इनका मूल्य लगाओ। मणियां बेच रहा हूं आओ!
मणियां कैसी सुंदर, सुंदर,
चमक, दमक, आभा की आकर!
सुषमा की इस अतुल राशि वर से निज हृदय सजाओ।
मणियां बेच रहा हूं आओ!
इन्हें मोल लेना है निर्भर
केवल मन की भावुकता पर,
कभी नहीं व्यय लाख दाम कर; प्यार करो ले जाओ
मणियां बेच रहा हूं आओ!
सदगुरु सदा यही पुकार देते रहे हैंः मणियां बेच रहा हूं आओ! गुलाल कहते हैंः झरत दसहुं दिस मोती! गुलाल चाहते हैं कि तुम्हारी आंखें भी देख लें कि कितने अद्भभुत, कितने अलौकिक जगत में जीवन का यह परम अवसर तुम्हें मिला है। इसे ऐसे ही न गंवा देना। यह हीरे जैसा जीवन मिट्टी में न खो जाए। साधारणतः मिट्टी में ही खो जाता है। बहुत थोड़े-से लोग ही इसके मूल्य को पहचान पाते हैं। थोड़े-से जौहरी।

सद्गुरुओं की पुकार जौहरियों के लिए है। और ये मोती ऐसे नहीं हैं कि दामों से खरीदे जा सकें।
इन्हें मोल लेना है निर्भर
केवल मन की भावुकता पर,
कभी नहीं व्यय लाख दाम
कर; प्यार करो ले जाओ।
मणियां बेच रहा हूं आओ!
प्रेम के अतिरिक्त और इन्हें पाने का कोई उपाय नहीं है। लोग और सब तरह
से इन्हें पाने की चेष्टा करते हैं। तर्क से पाने की चेष्टा करते हैं। तर्क तो प्रेम से बिल्कुल विपरीत है। तर्क तो चूकने का सुनिश्चित उपाय है। जिसने तर्क से जीवन को समझना चाहा उसके हाथ से तो जीवन बिल्कुल ही छूट जाएगा। तर्क से कोई पाता नहीं जीवन को, गंवाता है। तर्क है मस्तिष्क की बात और प्रेम है हृदय की। तर्क है परिधि, प्रेम है तुम्हारा प्राण। ये बातें तो प्राणों की हैं। ये बातें बातें नहीं हैं, ये विचार विचार नहीं हैं। विचार तो केवल वाहन हैं, शब्द तो केवल संकेत हैं; जिस ओर संकेत है, वह शब्द में बंधता नहीं। जिस ओर इशारा है, उसे विचार में प्रकट करने का कोई उपाय नहीं है। बड़े असमर्थ उपाय हैं। पर चूंकि और कोई विकल्प नहीं है इसलिए कहना पड़ता है। मौन तो तुम समझोगे नहीं, इसलिए कहना पड़ता है।
और कहने को भी तुम कहां समझ पाते हो? तुम कुछ का कुछ समझ लेते हो। ऐसा नहीं है कि तुम बुद्धों के पास नहीं गुजरे; जन्मों-जन्मों में असंभव है यह बात कि तुम किसी बुद्ध, किसी महावीर, किसी कबीर, किसी नानक, किसी गुलाल के करीब न आए होओ, किसी गुलाल ने गुलाल तुम्हारे ऊपर भी उड़ाई होगी, मगर तुम धूल-धूसरित हो, गुलाल का कहीं कोई तुम पर अंकन नहीं। कोई कबीर तुम्हें भी पुकारा होगा, मगर तुम बहरे हो, तुमने सुना नहीं। तुम सुनते भी हो तो कुछ का कुछ सुनते हो। करीब भी आजाते हो तो गलत कारणों से करीब आते हो। और गलत कारण से जो करीब आया, वह करीब आकर भी करीब नहीं आपाता।
ग्वालियर से कल एक महिला मुझे मिलने आई। ग्वालियर से यहां तक आना, श्रम तो लिया ही! पच्चीस वर्ष पहले विश्वविद्यालय में मेरे साथ पढ़ती थी। पच्चीस वर्षो में तो खोज-खबर उसने कभी ली नहीं। फिर भी कोई बात नहीं, पच्चीस वर्ष बाद भी खबर आ गई, सुबह का भूला सांझ को भी घर आजाए तो भूला नहीं कहते। मगर घर आकर भी कोई लौट जाए, तो उसे क्या कहो! वह महिला प्रोफेसर है ग्वालियर में अब। उसने आकर ही कहा कि निजी एकांत में मुझे मिलना है। मैं कोई साधारण नहीं हूं, मैं उनके साथ पढ़ी हूं।... अब साथ पढ़ना तो सांयोगिक है। न तो मेरे कारण वह मेरे साथ पढ़ी, न उसके कारण मैं उसके साथ पढ़ा, यह बिल्कुल संयोग की बात थी कि हम एक ही विश्वविद्यालय में थे और एक ही कक्षा में पड़ गए। इसमें कुछ गुण नहीं है। यह कोई बात हमारे हाथ की नहीं थी। यह तो यूं ही समझो कि टेन में तुम सवार हुए और भी लोग सवार हैं, एक ही डिब्बे में मिल गए दो लोग, थोड़ी देर साथ यात्रा हो ली, इसमें कुछ विशिष्टता नहीं हो जाती... लेकिन एकांत चाहिए, अलग से बात करूंगी। लक्ष्मी ने कहा कि मैं तो केवल संन्यासियों से ही मिलता हूं। और पुराने को बिसारो अब! भूली ताहि बिसार दे। चलो, आश्रम घुमा दें, प्रवचन में आजाओ, फिर भाव होगा तो दर्शन में आजाना। और भाव घना हो, संन्यास का साहस हो, तो मिलना भी हो जाएगा। वह उठ कर खड़ी हो गई। उसने कहा, जब पुरानी बातें ही खत्म हो गयीं, जब भूलने- बिसारने की बात है, तो मुझे आश्रम देखना भी नहीं। मुझे आश्रम देखना भी नहीं, मुझे मिलना भी नहीं। वह महिला उठकर चली गई। प्रवचन सुनना भी नहीं। प्रवचन मुझे क्या सुनना, मैं तो उनके साथ पढ़ी हूं!
मंदिर के द्वार पर भी आकर कोई लौट जा सकता है। सीढ़ियां चढ़ कर भी कोई उत्तर जा सकता है। पहुंचते-पहुंचते कोई चूक जा सकता है
और लोगों के आने के भी कारण बड़े अजीब-अजीब होते हैं।
कोई मुझे पत्र लिखता है कि हम आपको सुनने आते हैं, क्योंकि आपके बोलने
का ढंग बहुत प्यारा है। मेरे ढंग को क्या करोगे? खाओगे? पिओगे? ओढ़ोगे? क्या करोगे? मेरा ढंग किस काम आएगा! मैं क्या कह रहा हूं, उसकी फिकर नहीं,

ढंग पसंद आता है! ढ़ग तो असली बात नहीं है। कभी-कभी तो फकीर बड़े बेढंग से बोले हैं। उनको तो तुम सुनोगे ही नहीं।
कोई लिखता है कि आपकी शैली सुंदर है, मन को भाती है। जैसे किसी को मेरे वस्त्र मन को भाते हों, और मुझसे कुछ लेना-देना नहीं। किसी को आभूषण भाते हों और व्यक्ति से कोई संबंध नहीं। शैली से क्या प्रयोजन है? शैली की उपादेयता क्या है? यहां कोई शब्दों का लेन-देन हो रहा है? यहां अज्ञात के अवतरण की अभीप्सा की जा रही है। यहां परमात्मा को पुकारा जा रहा है। और तुम शैली में अटकोगे?
कि कोई कहता है कि आपकी कहानियां बड़ी मधुर, हमारे हृदय को छूती हैं। उदास आते हैं तो हंसते हुए लौट जाते हैं। तुम्हारी उदासी दो कौड़ी की है, तुम्हारी हंसी भी दो कौड़ी की। तुम अभी सोए हुए हो, तो तुम तुम्हीं दो कौड़ी के। जागो; हंसी और उदासी का सवाल नहीं है। मैंने कोई कहानी कही और तुम हंस लिए, इससे क्या होगा? दो क्षण के लिए मन बहल जाएगा, मनोरंजन हो जाएगा। यहां कोई तुम्हारा मनोरंजन कर रहा है? मैं तुम्हारा मनोभंजन करण चाहता हूं, तुम मनोरंजन कर रहे हो!
स्टेशन पर पूछताछ विभाग में एक महिला गोद में एक छोटे बच्चे को लेकर पहुंची और बोली कि श्रीमान, क्या आप बता सकते हैं कि बंबई की ओर जाने वाली गाड़ी कितने बजे जाएगी? वह पूछताछ विभाग का अधिकारी कुछ-कुछ हकलाता था, अतः बोलाः त त तीन बज कर प प पचास मिनट पर। पांच-दस मिनट बाद वह युवती फिर आई और बोली कि श्रीमान, क्या आप बता सकते हैं कि बंबई की ओर जाने वाली गाड़ी कितने बजे जाएगी? अधिकारी ने फिर जवाब दिया कि त त तीन बज कर प प पचास मिनट पर। युवती चली गई।
पांच-दस मिनट बाद युवती फिर आपहुंची।
ऐसा करीब पांच-छह दफा हुआ। अधिकारी हर बार कहे कि त त तीन बज कर प प पचास मिनट पर। और युवती पांच-दस मिनट बाद फिर आजाए। आखिर अधिकारी ने झल्लाए हुए स्वर में कहा, मै-मै-मैडम, आखिर कि-कि-कितने बार पूछेंगी? कि- कि-कितनी बार तो कह चुका कि ब्-ब्-बंबई की ओर जाने वाली गाड़ी त त तीन बज कर प प पचास मिनट पर जाएगी। युवती बोली कि दरअसल बात यह है श्रीमान जी कि यह तो मेरी समझ में आगया कि बंबई की ओर जाने वाली गाड़ी कब आएगी, कब जाएगी, पर मेरे बच्चे को आपका त तीन बज कर और प प पचास मिनट पर कहना बहुत अच्छा लगा। तो वह बार-बार जिद करता है कि मम्मी, मुझे उसके मुंह से त त तीन बज कर प प पचास मिनट पर फिर सुनना है। तो इसकी जिद के कारण मुझे बार-बार आना पड़ता है। आप क्षमा करें!
शैली का क्या मूल्य है? छोटे बच्चों की तरह हैं लोग, बूढ़े हो जाएं तो भी। कोई शब्दों में उलझ जाएगा, कोई सिद्धांतों में उलझ जाएगा, कोई शैली में उलझ जाएगा, कोई बोलने के ढंग में उलझ जाएगा, कोई कहानियों में, कोई कविताओं में। मगर मैं जो तुमसे कहना चाहता हूं, वह तुम कब सुनोगे? ये सब तो सुनने से बचने की विधियां हैं। ये सब तो तरकीबें हैं कि कैसे हम सुनने से बच जाएं। ये तो उलझाव हैं। ये तो अटकाव हैं। ऐसे तुमने कितने जन्म गंवाए। यह भी गंवा देना है! ऐसे ही तुम भटकते रहे हो न मालूम कितने रास्तों पर। मौके आते रहे और तुम चूकते रहे। फिर एक मौका आया है। इस मौके को चूक मत जाओ! छोटी-मोटी बातों में मत चूक जाओ।
ग्वालियर से आई इस महिला पर मुझे दया आई। पच्चीस वर्ष पहले जो व्यक्ति था, अब कहां है? पच्चीस वर्ष में गंगा का कितना पानी बह गया! और पच्चीस वर्ष पहले भी यह महिला जब मेरे साथ पढ़ती थी, तब भी मुझे याद नहीं आता कि कभी मेरे और उसके बीच बात हुई हो। तब भी हम अजनबी थे। अब भी अजनबी हैं। लेकिन चूंकि एक ही कक्षा में बैठते थे, चूंकि एक ही कमरे में बैठते थे, यह पर्याप्त हो गया उसके लिए कारण इतने दूर आने और लौट जाने के लिए। यह तो मूढ़ता हो गई! मगर प्रोफेसरों से इससे ज्यादा की आशा की भी नहीं जा सकती। दंभ, अहंकार अजीब-अजीब मांगे करता है।
घड़ी घड़ी गिन, घड़ी देखते काट रहा हूं जीवन के दिन,
क्या सांसों को ढोते-ढोते ही बीतेंगे जीवन के दिन?
सोते-जगते, स्वप्न देखते रातें तो कट भी जाती हैं,

पर यों कैसे कब तक, पूरे होंगे मेरे जीवन के दिन?

कुछ तो हो, हो दुर्घटना ही मेरे इस नीरस जीवन में! और न हो तो लगे आग ही इस निर्जन बांसी के वन में!
ऊब गया हूं, सोते-सोते, जागे मुझे जगाने लपटें,
गाज गिरे, पर जगे चेतना प्राणहीन इस मन-पाहन में!

हाहाकार कर उठे आत्मा, हो ऐसा आघात अचानक,
वाणी हो चिर-मूक, कहीं से उठे एक चीत्कार भयानक!
बेध कर्णयुग बधिर बना दे उन्हें, चौंक आंखें फट जाएं,
उठे एक आलोक झुलसता, रवि ज्यों नभ के, वह दृग-तारक

कुछ न हुआ! भू-गर्भ न फूटा! हाय न पूरी हुई कामना!
आंखों का अब भी दीवारों से होता है रोज सामना!
कल की तरह आज भी बीता, कल भी रीता ही बीतेगा,
बिना जले ही राख हो गई धुनी रुई सी अचिर कल्पना!
बहुत कल बीत गए व्यर्थ! आने वाले कल भी ऐसे ही बिताने हैं या जागना है?
या कि जीवन से नया परिचय करना है? या कि पहचानना है उसे जो जीवन में छिपा है? उस रहस्य का, उस विस्मय का अनुभव करना है? उस परम ज्योति के साथ एक होना है? या यूं ही क्षणभंगुर सपनों के साथ खेलते-खेलते जीवन का अंत कर लेना है? पानी के बबूलों में ही उलझे रहोगे? शब्द तो पानी के बबूले हैं। यह सारा संसार ही पानी का बबूला है। इस संसार में एक है कुछ, जो मिटता नहीं, वह है तुम्हारे भीतर छिपा हुआ साक्षी, द्रष्टा।
आज के सूत्र उसी द्रष्टा के संबंध में हैं। आज के सूत्र बड़े अदभुत हैं। एक-एक सूत्र अमृत जैसा है। इसे पी जाना। इसे प्रविष्ट हो जाने देना अंतर्तम तक। बिंध जाना इससे--जैसे कोई तीर लगे हृदय में और चुभता ही चला जाए और आर-पार हो जाए। गुलाल ने प्यारे शब्द कहे हैं, मगर आज के शब्दों की कोई तुलना नहीं। गुलाल के शब्द भी बाकी फीके पड़ जाते हैं आज के शब्दों के मुकाबले।
सरन संभारि धरि चरनतर रहो परि,
काल अरू जाल कोउ अवर नाहीं।।
"सरन संभारि धरि", ... एक चीज सम्हाल लो, शरणागत होना संभाल लो, समर्पित होना सम्हाल लो, एक चीज सम्हाल लो कि अहंकार को हटाकर रख दो और गिर जाओ उस अनंत के चरणों में, इस जगत में इतना ही संभाल लिया तो सब सम्हाल लिया। मगर हम इससे उलटा ही करते हैं। अकड़े ही खड़े रहते हैं। अहंकार को संभालते हैं, शरणागति को नहीं, समर्पण को नहीं। मैं कुछ हूं, यह भाव लिए, यह बोझ लिए कितनी आपाधापी करते हैं! मैं कुछ हूं, यह सिद्ध करने के लिए कितने उपाय करते हैं! कैसे-कैसे उलटे-सीधे उपाय करते हैं! आदमी कुछ भी करने को राजी है यह सिद्ध करने को कि मैं कुछ हूं। संत बनने को राजी है, चाहे कितना ही कष्ट देना पड़े। पापी बनने को राजी है, चाहे कितनी ही प्रताड़ना झेलनी पड़े, चाहे कितना ही प्रायश्चित करना पड़े--लेकिन मैं कुछ हूं!
एक जेलखाने में एक नया कैदी आया। कैदी काफी बढ़ गए थे, जेलखाने में जगह
कम थी, तो एक-एक कोठरी में दो-दो कैदी रखे जा रहे थे। जो पहले से कैदी अपना बिस्तर जमाए हुए था, उसने अपने बिस्तर पर पड़े ही पड़े पूछा कि भाई, कितने दिन की सजा हुई है? नये आगंतुक ने कहा कि तीन साल की। तो कहा कि तू दरवाजे के पास ही बिस्तर लगा; हम बीस साल रहने वाले हैं इधर; तूने अपने को समझा क्या है!
जेलखाने में भी हिसाब होता है। बीस साल जो रहने वाला है, वह मतलब पहुंचा हुआ दादा है। तेरी औकात क्या? तीन साल! सिक्खड़ दिखता है! वहीं दरवाजे के पास लगा ले! तीन साल तो यूं गुजर जाएंगे। दरवाजे के पास से ही निकल जाना, जैसे आए वैसे ही चले जाना, यहां ज्यादा भीतर घुसने की जरूरत नहीं है।

अपराधी भी अपने अपराधों को बड़ा कर-कर के बताते हैं। क्योंकि छोटा कोई होना नहीं चाहता। अपराधी भी अपने अपराध को बड़ा करते हैं, इस जगत में ऐसा आश्चर्य है! क्योंकि वे भी कहना चाहते हैं कि हम कोई छोटे-मोटे अपराधी नहीं हैं, हम बड़े अपराधी हैं। जैसे साधु-संत भी अपने कृत्यों को बड़ा कर-करके बताना चाहते हैं। दो-चार दिन का उपवास करेंगे, लेकिन गिनती कराएंगे चालीस दिन की। थोड़े-बहुत योगासन कर लेंगे, लेकिन बात यों करेंगे कि जैसे सैकड़ों वर्षो से हिमालय में साधना कर रहे थे।
एक यात्री पश्चिम से भारत आया हुआ था, किसी साधु की तलाश में। हिमालय गया। और कहां जाए! खबर मिली कि एक साधु बहुत प्राचीन; सात सौ वर्ष तो उसकी उम्र है। बड़ा प्रभावित हुआ। पहुंचा। देख कर लगा कि ज्यादा से ज्यादा साठ साल का होगा। बहुत हो तो सत्तर। सात सौ साल! पाश्चात्य वैज्ञानिक बुद्धि को यह बात समझ में आई नहीं। मगर भीड़ में बड़ा उत्सव चल रहा है, चरणों पर पैसे चढ़ाए जा रहे हैं, पूजा-आरती उतर रही है, उसने कहा कि पूछूं भी तो किससे पूछूं? खोज-बीन करके उसके पता लगाया कि एक आदमी इसकी सेवा करता है, वह इसके पास कई वर्षो से है। उसको पकड़ा एकांत में। उससे कहा कि भइया, एक बात पूछनी है, सच में तेरे गुरु की उम्र सात सौ वर्ष है? उसने कहाः भाई, मैं कुछ कह नहीं सकता, मैं तो केवल तीन सौ साल से उनके साथ हूं। तीन सौ साल की बात मैं कर सकता हूं, उसके आगे का मुझे पता नहीं! मगर जब मैं आया था तब भी वे ऐसे ही लगते थे जैसे अब लगते हैं।
उम्रें बढ़ा कर बताई जाएंगी। साधु-संत उम्रें बढ़ा कर बताएंगे। स्त्रियां उम्रें कम करके बताएंगी। मगर मामला एक ही है, भेद नहीं, बात वही है अहंकार की। स्त्री का मूल्य है उसकी उम्र के कम होने में। साधु-संतों का मूल्य है उनकी उम्र के ज्यादा होने में। जैसे कि उम्र के ज्यादा होने से कोई ज्ञानी हो जाता है! बुद्धू हो तो उम्र के ज्यादा होने से और बुद्धू हो जाओगे। और बुद्धूपन पक जाएगा। पहले कच्चा था, अब बिल्कुल पक गया। उम्र के ज्यादा होने से कोई ज्ञान होता है! लेकिन उम्र के दावे होते हैं। स्त्रियां उम्र के संबंध में कम करके बताती हैं। अटकी ही रहती हैं। एक-एक साल बढ़ने में चार-चार, पांच-पांच साल लेती हैं।
एक जुआघर में दो महिलाएं प्रविष्ट हुईं। होगी पेरिस की घटना। पहली महिला उत्सुक थी दांव लगाने को, दूसरी ने कहा कि दांव तो मैं भी लगाना चाहती हूं, लेकिन किस नंबर पर लगाना? पहली महिला ने कहा, मेरा तो हिसाब हमेशा एक है। अपनी उम्र के ही नंबर पर मैं लगाती हूं। जितनी उम्र, उतने नंबर पर लगाती हूं। और मैं अक्सर जीतती हूं। दूसरी ने कहा, मैं भी कोशिश करती हूं। उसने चौबीस नंबर पर दांव लगाया। यंत्र घूमा और छत्तीस पर रुका। वह स्त्री एकदम बेहोश होकर गिर पड़ी। उसने कहा, हे राम! इस यंत्र को कैसे पता चला कि मेरी उम्र छत्तीस है?
इतना फासला तो स्त्रियां रखती हैं। चौबीस और छत्तीस का फासला तो रहेगा ही। मगर बात वही है। स्त्रियां युवा हों तो उनका मूल्य है। और साधु जितने बूढ़े हों उतना उनका मूल्य है। तो साधु अपनी उम्रें बड़ी कर लेंगे। धन का मूल्य है, अगर तुम संसार में हो; अगर तुमने त्याग कर दिया, तो तुमने कितना धन छोड़ा, इसका मूल्य है। संसार में लोग धन के संबंध में झूठे आंकड़े बताए फिरते हैं। जो उनके पास नहीं है, दिखलाते हैं उनके पास है। और त्यागी झूठी बातें करते रहते हैं--जो उनके पास कभी था ही नहीं, कहते हैं उसको छोड़ दिया, उसका त्याग कर दिया।
अहंकार न मालूम कितने सूक्ष्म रास्तों से अपने को भरता है। पांडित्य
से भर लेता है, धन से भर लेता है, त्याग से भर लेता है। इसके रास्ते बड़े बारीक हैं। और इसके रास्ते बड़े अचेतन हैं। शरणगति का अर्थ है इससे उलटाः सब परमात्मा पर छोड़ देना, कहना मैं तो कुछ भी नहीं हूं, तू ही है। गुलाल कहते हैंः "सरन संभारि धरि", बस, एक बात सम्हाल कर रख लो तो संपदा बच गई, तो तुमने जीवन का सत्य पा लिया, शरण को संभाल लो। और तुम सम्हाल रहे अहंकार को! "चरनतर रहो परि", शरणभाव रहे और गिर पड़ो चरणों में, अज्ञात के चरणों में। यह सिर उठाए-उठाए मत चलो। यह अकड़ ही तुम्हें ले डूबेगी। इस अकड़ ने कितनों को डुबाया। और जिन्होंने अकड़ छोड़ दी, वे तर गए, वे उस पार पहुंच गए।

सरन संभारि धरि चरनतर रहो परि,
काल अरू जाल कोउ अवर नाहीं।।
दुनिया में बस एक ही जाल है, एक ही काल है, वह है तुम्हारा अहंकार। कोई दूसरा काल नहीं, और दूसरा कोई जाल नहीं। संक्षिप्त से वचन में जैसे सारे शास्त्रों का सार आगया--
काल अरू जाल कोउ अवर नाहीं।।
--मृत्यु भी अहंकार की। काल यानी मृत्यु। इसे समझना। अगर तुम अहंकार छोड़ दो तो तुम मर ही नहीं सकते। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि तुम्हारा शरीर सदा रहेगा। शरीर तो मिट्टी है सो मिट्टी में गिरेगा। लेकिन तुम सदा रहोगे। लेकिन तुम सदा तभी रह सकते हो जब तुम तुम न रह जाओ, जब मैं में "मैं" न रह जाए। जब तुम्हारे भीतर मैं-भाव मिट जाता है, तो कौन बचता है? जो बचता है, वही परमात्मा है। जो शेष रह जाता है, शून्य, वही पूर्ण है। उसकी कोई मृत्यु नहीं।
तुम क्यों मृत्यु से इतने घबड़ाए हुए हो? क्योंकि वह अहंकार कि मैं अलग हूं, भयभीत कर रहा है तुम्हें। आज नहीं कल मौत आएगी और मिटा कर रख देगी। और निश्चित ही मौत आएगी और अहंकार को मिटा कर रख देगी। क्योंकि अहंकार तो बस ताशों का घर है। ताश के पत्तों का घर है। जरा-सा हवा का झोंका और गया। ऐसे घर में जो रहेगा, वह डरा-डरा रहेगा ही। ऐसे घर के बाहर निकल आओ, खुले आकाश के नीचे रहो, फिर गिरने का कोई भय नहीं, फिर दबने का कोई भय नहीं। अहंकार के भीतर रहना है एक झूठ के भीतर रहना है। और झूठ तो गिरेगी ही गिरेगी। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों। कितना सम्हालोगे?
और झूठ को सम्हालने से सार क्या है! सिर्प समय गंवाते हो। सिप 132 र् ऊर्जा गंवाते हो। इस झूठ को झूठ की तरह देख लो। मैं अलग नहीं हूं, तुम अलग नहीं हो, हम सब अस्तित्व के अंग हैं। जैसे सागर की लहरें, ऐसे हम सब एक ही सागर की लहरें हैं। जिस दिन यह जान लोगे, फिर क्या मिटाने का डर! लहर मिट कर भी सागर में रहेगी। नदी डरती है सागर में उतरने से, क्योंकि उसका व्यक्तित्व खो जाएगा। गंगा गंगा न रहेगी, गोदावरी गोदावरी न रहेगी, सागर ही सागर हो जाएगा। और गंगा को कितना सम्मान मिला! कितने तीर्थ बने! कितना माहात्म्य! कितने गीत गाए गए! और सागर में मिलते वक्त गंगा डरेगी नहीं तो क्या होगा! घबड़ाएगी नहीं तो क्या होगा! चाहेगी रुक जाए। मगर कोई रुक सका है? आज नहीं कल सागर में गिरना ही होगा। और सागर में गिरे तो छूटे तट, छूटा पुराना तादात्म्य, छूटा पुराना नाम-धाम, पता-ठिकाना, गंगा गई, सागर में लीन हो गई। मगर मिटी थोड़े ही।
इस जगत में कुछ भी मिटता नहीं। तुम्हार शरीर भी नहीं मिटेगा। सिर्प मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी। और तुम्हारी आत्मा भी नहीं मिटेगी। आत्मा परमात्मामय है। अगर कोई चीज मिटेगी तो वही मिटेगी जो है ही नहीं। अहंकार मिटेगा, जो कि तुम्हारी कल्पनामात्र है; जो कि तुमने व्यर्थ ही, झूंठे ही खड़ा कर लिया है।
अहंकार नाम जैसा ही है। जैसे बच्चा पैदा होता है तो हम कुछ नाम दे देते हैं। नाम देना जरूरी है। इस संसार में उपयोगिता है। नहीं तो ढूंढोगे कहां? चिट्ठी-पत्री लिखनी हो और नाम न हो आदमी का! बाप को बेटे को बुलाना हो और बेटे का नाम न हो! कुछ तो नाम रखना ही पड़ेगा।
एक व्यक्ति ने उपन्यास लिखा। उपन्यास तो लिख गया बड़ा पुथंगा, मगर शीर्षक क्या दे, यह उसकी समझ में न आए। मेरे पास आया। उसका पुथंगा देख कर मैं भी डरा। शीर्षक देना हो तो पहले पुथंगा में उतरना पड़े, उसको देखना पड़े कि उसने लिखा क्या है! मैंने उससे कहाः ऐसा कर भइया, तू मुल्ला नसरुद्दीन के पास चला जा; वे बड़े कुशल हैं। वह चला गया और पांच ही मिनट बाद लौट आया और कहा कि उन्होंने तो एकदम से नाम बता दिया। हैं कुशल। नाम एकदम से बता दिया। मैंने कहाः क्या नाम रखा उन्होंने? उसने कहा कि बड़ा सुंदर नाम रखा है, आकर्षक है, एकदम मन को लुभाएः न ढोल न नगाड़ा। मैंने कहा कि यह उसने पता कैसे लगाया? उसने कहाः कुछ नहीं, मुझसे पूछा कि इसमें ढोल की चर्चा तो नहीं है? मैंने कहा, नहीं। उसने कहा, नगाड़े की चर्चा तो नहीं है? मैंने कहाः नहीं। उसने कहाः बस तो फिर नाम तय हो गयाः न ढोल, न नगाड़ा। अब पढ़ो,

बेटा, जिसको भी पढ़ना है, आखिर में पता चलेगा कि न ढोल, न नगाड़ा। कुछ न कुछ तो नाम रखना ही पड़ेगा। तो मैंने कहा, बात तो ठीक है! काम चल जाएगा। ऐसे ही तो नाम रखने पड़ते हैं। न ढोल, न नगाड़ा।
बच्चा पैदा होता, हम नाम देते हैं। बच्चा कोई नाम लेकर आता नहीं। जैसे नाम देते हैं, ऐसे ही धीरे-धीरे, शनैः-शनैः हम उसे अहंकार देते हैं। हम उसे सिखाते हैं कि तू अलग है, तू पृथक है। हम उसे सिखाते हैं, तू विशिष्ट है। तू ब्राह्मण है, तू जैन है, तू हिंदू है, तू मुसलमान है। तू कुलीन घर में पैदा हुआ है, यह हमारी वंश-परंपरा बड़ी प्रतिष्ठित है, इस वंश-परंपरा में बड़े-बड़े लोग हो गए हैं, बड़ा नाम कर गए हैं, तुझे भी नाम कर जाना है, संसार में आया है तो कुछ नाम करके दिखा कर जाना, कुछ हो कर रहना--हम उसे महत्त्वाकांक्षा सिखाते हैं। ये अहंकार के पाठ हैं। हम उसे स्कूल में भेजते हैं, जहां प्रथम आना है। प्रथम आओ तो सम्मान है। उत्तीर्ण हो जाओ तो सम्मान है। असफल हो जाओ तो असम्मान है।
सम्मान-अपमान अहंकार को संभालने के उपाय हैं। अपमान से हम कहते हैं
कि संभाल न पाए ठीक से। सम्मान से हम कहते हैं, खूब संभाला, ठीक संभाला; पुरस्कृत करते हैं। ऐसे पच्चीस वर्षो में हम धीरे-धीरे-धीरे-धीरे अहंकार को मजबूत कर देते हैं। फिर यह व्यक्ति इसी अहंकार के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। एक झूठ, एक सरासर झूठ, जिस पर इसका सारा जीवन बलिदान हो जाएगा। और तब मौत का डर लगता है। मैं हूं, तो डर लगता है कि मिटूंगा, चिता पर जलूंगा, प्राण कंपते हैं, भय पकड़ता है। इस भय में कैसे प्रेम पैदा हो? इस भय से कैसे भक्ति जगे? इस भय से तो जो भगवान भी जगता है, वह भी झूठा होता है। इस भय का ही रूपांतरण होता है, इस भय का ही प्रक्षेपण होता है।
गुलाल का सूत्र याद रखो--
सरन संभारि धरि चरनतर रहो परि,
काल अरू जाल कोउ उवर नाहीं।।
बस, एक ही काल है, एक ही मृत्यु है, अगर अहंकार है। और अगर अहंकार है तो बहुत जाल पैदा हो जाएंगे। क्योंकि अहंकार मांगेगाः और धन लाओ, इतने से काम नहीं चलता, पड़ोसी के पास ज्यादा है; और बड़ा पद चाहिए, दूसरे लोग बड़े पदों पर पहुंच गए हैं।
एक मुर्गे ने अपने बाड़े की सारी मुर्गियों को इकट्ठा किया और कहा कि चलो मेरे पास आओ, कुछ कहना है! हालांकि मैं किसी का अपमान करना नहीं चाहता और न कोई ऐसी बात कहना चाहता हूं कि तुम्हें दुख पहुंचे, मगर सत्य को कहना ही पड़ेगा। पड़ोसी के बच्चे ने खेलते हुए एक फुटबाल इस तरफ फेंक दी बाड़े में, उस फुटबॉल के पास मुर्गे ने सब मुर्गियों को इकट्ठा कर लिया और कहा, देखो, पड़ोसी की मुर्गियां कैसे अंडे दे रही हैं! तुम्हें दुख नहीं पहुंचाना चाहता, मगर कुछ ध्यान रखो। पड़ोस में क्या चमत्कार हो रहा है! और एक हम है कि वही छोटे-छोटे मुर्गे, छोटे-छोटे चूजे, छोटे-छोटे अंडे। इसको कहते हैं अंडा! ... फुटबॉल।
लेकिन यही मनुष्य की भाषा है। पड़ोसी की बगिया की घास ज्यादा हरी मालूम होती है। पड़ोसी की स्त्री ज्यादा सुंदर मालूम होती है। पड़ोसी का मकान प्यारा लगता है। और हो सकता है पड़ोसी इसी तरह तुम्हारे प्रति जलन से भरा हो। उसे तुम्हारी घास सुंदर लगती है और तुम्हारी पत्नी प्यारी लगती है। उसे लगता है तुम्हारे जीवन में सुख ही सुख है, जैसा तुम्हें लगता है उसके जीवन में सुख ही सुख है। दूर के ढोल सुहावने होते हैं। जितना दूर हो ढोल उतना ही सुहावना लगता है। पास पहुंच कर भद्द खुल जाती है। लेकिन तब तक हमें और ढोल दिखाई पड़ने लगते हैं जो दूर हैं। तब तक हम उनकी आकांक्षाओं से भर जाते हैं। एक वासना गिरती नहीं कि हजार नई वासनाएं खड़ी हो जाती हैं। अहंकार जाल खड़े करता है। वह कहता है, इतने से धन से क्या होगा? इतने से
धन से तो टुटपुंजिया समझे जाओगे! अरे, लोगों के पास करोड़ों हैं! जिसके पास हजार हैं, वह लाखों चाहता है; जिसके पास लाखों हैं, वह करोड़ों चाहता है; जिसके पास करोड़ों हैं, वह अरबों चाहता है; जिसके पास अरबों हैं, वह खरबों की दौड़ में लगा है--दौड़ का जैसे कोई अंत ही नहीं है। जिंदगी का अंत है, दौड़ का अंत नहीं। इसलिए हर आदमी अतृप्त मरता है, असंतुष्ट मरता है, पीड़ा में

मरता है, दीन-हीन मरता है, रोता हुआ मरता है कि कुछ भी तो न कर पाया। बड़ी आकांक्षाएं लेकर चलते हैं और सब आकांक्षाएं धीरे-धीरे व्यर्थ हो जाती हैं। और ऐसा नहीं कि हम दौड़ते कम हैं, और ऐसा भी नहीं कि हम श्रम कम करते हैं, श्रम हम करते हैं, दौड़ते भी हम हैं, मगर आकांक्षाओं के जगत में कोई मंजिल होती ही नहीं, मार्ग ही होता है--सिर्प मार्ग, जो गोल-गोल घुमाता रहता है। उसको ही जाल कहा है।
और फिर एक जाल हो तो भी ठीक, जाल में जाल हैं, बहुत जाल हैं। एक से बचते हैं तो दूसरा जाल पकड़ लेता है। दूसरे से बचते हैं तो तीसरा पकड़ लेता है। जैसे मकड़ी अपने भीतर से ही जाले को बुनती है, ऐसे ही हम अपने अहंकार से जाल निकालते हैं और बुनते जाते हैं। फिर खुद ही फंस जाते हैं। खुद ही चिल्लाते हैंः बचाओ, बचाओ! बचाने की कोई जरूरत नहीं है, अपने जाल समझ लो। अपना फैलाना बंद करो तुम, बचे ही हुए हो। कोई बचाने की जरूरत नहीं। किसी बचावनहारे की जरूरत नहीं। किसी क्राइस्ट की, किसी महावीर की, किसी बुद्ध की, कोई बचावनहारे की जरूरत नहीं है। अपना जाल समेट लो! बहुत फैला लिया है जाल। अब तुम्हें भरोसा ही नहीं आता कि इसको समेटा भी जा सकता है। इतना बड़ा हो गया है, तुमसे बहुत बड़ा हो गया है।
लेकिन तुमने फैलाया है तो समेटा भी जा सकता है। और समेटने की सबसे सुगम व्यवस्था हैः जड़ को काट दो। जिस अहंकार से ये सारे पत्ते ऊगे हैं, उस अहंकार को काट दो। यह वृक्ष सूख जाएगा, अपने से सूख जाएगा, तुम्हें कुछ करना न होगा। पत्ते-पत्ते तोड़ने मत चले जाना, नहीं तो मुश्किल में पड़ोगे। पत्ते तोड़ने से क्या होने वाला है? एक पत्ता तोड़ोगे, तीन निकल आएंगे। पत्ते तोड़ने से तो वृक्ष में पत्ते और सघन हो जाते हैं। इसीलिए तो वृक्षों की हम कलमें करते हैं, वृक्षों को हम काटते हैं, उनको घना करने के लिए। जड़ को काट दो।
जड़ की ही बात कह रहे हैं गुलाल--
काल अरू जाल कोउ अवर नाहीं।।
जिनसे तुम सलाह लेते हो--पंडितों से, पुरोहितों से, तुम्हारे तथाकथित महात्माओं से--वे भी तुम्हारे जैसे ही जाल में पड़े हुए हैं। हो सकता है उनके जाल थोड़ा आध्यात्मिक रंग लिए हों। हो सकता है उनके जाल थोड़े धार्मिक हों, पारलौकिक हों। जरा उनके भीतर झांक कर देखो, वे आकांक्षाएं लगाए बैठे हैं कि स्वर्ग में विशेष स्थान होगा।
मैं एक दिन एक रास्ते से गुजर रहा था, एक महिला ने मेरी गाड़ी रोकी, पास आई, मुझे कुछ पैंफलेट दिए। ईसाई महिला थी। लौट कर मैंने पैंफलेटों पर नजर डाली। एक तो मुझे भी जंचा। एक बहुत सुंदर भवन पैंफलेट के कवर पर ही बना था। झरना बह रहा है पास में, स्विमिंग पूल है, वृक्ष लगे हैं, बंगला है और ऊपर लिखा हुआ है कि क्या आप इस तरह के बंगले में रहना चाहते हैं? मैंने कहा कि मामला क्या है, यह बंगला है कहां? ! मैंने अंदर खोल कर देखा, पता चला ये परलोक की बातें हैं, इस लोक की नहीं। वह ईसाई महिला थी, जो प्रचार कर रही थी अपने चर्च का। और ईसा मसीह में जो भरोसा करेंगे, उनको परलोक में ऐसे बंगले मिलेंगे।
सारे धर्मो ने ये प्रचार किए हैं।
हिंदू कहते हैं, कल्पवृक्ष मिलेगा वहां परलोक में। उसके नीचे बैठो कि
सब कल्पनाएं पूरी हो जाती हैं। कुछ करना नहीं, कुछ धरना नहीं। आलस्य हिंदुओं की बड़ी पुरातन संपदा मालूम होती है। कुछ करना नहीं, कुछ धरना नहीं।
कल्पवृक्ष की कल्पना महान आलसियों की कल्पना है। बैठे उसके नीचे, भाव किया, तत्क्षण पूरा हुआ। तत्क्षण! घड़ी भी नहीं देखना पड़ती। इधर भाव हुआ, उधर पूरा हुआ। ऐसा नहीं कि होटल में बैठे हो, वेटर को कहा कि चाय लाओ और वह नदारद है और घंटों बीत गए और उसका पता ही नहीं है। तत्क्षण घटना घट जाती है। भाव और उसके पूरे होने में कोई बीच में काल का व्यवधान नहीं होता। महान आलसियों ने यह कल्पना की होगी।
मगर इसी तरह और धर्म हैं।

स्वर्ग की बड़ी कल्पनाएं की गई हैं। सभी धर्मो ने की हैं। ये तुम्हें
जो महात्मा दिखाई पड़ते हैं धर्मो के, ये बिचारे बैठे हैं, ये कह रहे हैं, थोड़े दिन की तकलीफ और है, झेल लो; कुछ दिन और कर लो उपवास; कुछ ही दिन का मामला है; अरे, इतना तो काट ही दिया, अब और थोड़े दिन की बात है, काट लो, फिर तो मजा ही मजा है। और मजा भी कैसे? जिन चीजों की यहां निंदा की जा रही है, वही चीजें वहां उपलब्ध होंगी। यहां शराब पीने की मनाही है, ... कुरान कहती है शराब पाप है, शराब छूना पाप है, यहां पीना मना है--और बहिश्त में, स्वर्ग में? शराब के झरने बह रहे हैं। यह कैसा पाप हुआ? अगर यह पाप है तो बहिश्त में तो शराब मिलनी ही नहीं चाहिए।
यह कैसा परमात्मा है कि वहां झरने बहा रहा है? लेकिन वहां झरने बहाना पड़ेंगे। नहीं तो यह महात्मा नहीं बचेंगे। यहां महात्मा उसी झरनों के आशा में तो बिचारे महात्मा हैं! शराब-मराब छोड़ कर बैठे हैं, शराब क्या चाय-काफी तक छोड़ कर बैठे हैं आशा में बैठे है, कि और थोड़े दिन की बात है, अरे, गुजार लो; इतनी तो गुजार दी, थोड़ी रही; बहुत तो गुजार दी, अब गए, तब गए, फिर तो मजा ही मजा है--अनंत काल तक। फिर ऐसा भी नहीं है कि थोड़े-बहुत दिन में चुक जाए मामला। अनंत काल तक! तैरो शराब में, डुबकियां मारो, जो करना हो, पीओ, पिलाओ--झरने बह रहे हैं।
किनकी यह कल्पना होगी?
सुंदर स्त्रियां उपलब्ध हैं। सभी लोगों के स्वर्गो में। सुंदरतम स्त्रियां। यहां स्त्री नरक का द्वार है स्वर्ग में स्त्रियों क्या कर रही है स्वर्ग में स्त्रियों की जरूरत? --अगर स्त्री नरक का द्वार है! और यहां महात्मागण समझा रहे हैं कि स्त्री से बचो। मगर किसलिए बचो? इसीलिए ताकि अप्सराएं मिल सकें। यह गणित बिल्कुल साफ है। जो यहां छोड़ेगा, वहां पाएगा। करोड़ गुना पाएगा। यहां क्या है, एक साधारण स्त्री छोड़ दी--हड्डी- मांस-मज्जा! यहां की स्त्री की तो बड़ी निंदा है। निंदा का कारण? क्योंकि वह हड्डी-मांस-मज्जा की बनी है। और तुम? पुरुष जैसे हीरे-जवाहरातों के बने हैं! स्त्रियों के भीतर तो मलमूत्र भरा हुआ है। और पुरुषों के भीतर? अमृत भरा हुआ है?
जो पुरुष ये बातें लिख रहे थे शास्त्रों में, इनकी मूढ़ता का कोई अंत है! स्त्रियां तो मलमूत्र से भरी हुई हैं; और ये खुद, ये लेखक शास्त्रों के, ये जिन हाथों से लिख रहे हैं, उनमें क्या भरा हुआ है? उन्हीं स्त्रियों से पैदा हुए हैं, उन्हीं स्त्रियों के हिस्से हैं, उन्हीं स्त्रियों के गर्भ में रहे हैं जहां मल-मूत्र भरा हुआ है, नौ महीने मजे से मल-मूत्र में डुबकी लगाते रहे, अब महात्मा हो गए हैं! और अब भी आकांक्षा क्या है? आकांक्षा यही है कि मिलेंगी अप्सराएं! अप्सराओं में उन्होंने सारी व्यवस्था कर ली है, जो आदमी यहां नहीं कर पा रहा है। विज्ञान कोशिश करता है यहीं करने की, धर्म कोशिश करते हैं वहां करने की। वहां के संबंध में एक सुविधा है। कोई लौट कर आता नहीं। पता नहीं चलता कि हो पाई व्यवस्था कि नहीं हो पाई। हालात वहां कैसे हैं, कुछ पक्का पता नहीं। विज्ञान कोशिश करता है यहीं, स्त्रियों को जवान रखो, हारमोन के इंजेक्शन दो, देर तक जवान रखो। और अप्सराएं? लगता है स्वर्ग में जो हारमोन हम नहीं खोज पाए उन्होंने खोज लिए हैं। अप्सराएं रुकी हैं। भारतीय अप्सराएं तो सोलह साल पर रुकी हैं। क्योंकि भारतीय कल्पना है, सोलह साल में स्त्री सर्वांग सुंदर होती है। तो सोलह साल पर ही रुकी हुई हैं। उर्वशी पांच हजार साल पहले भी सोलह साल की थी, अभी भी सोलह साल की है। गपबाजी की भी कुछ हद होती है!
और पसीना नहीं आता वहां स्त्रियों को। वैज्ञानिक बेचारा कोशिश करता है, डियोडरेंट खोजो, सिंथाल साबुन बनाओ कि जिससे पसीने की बदबू न आए, परप 132 यूम खोजो, तरह-तरह की सुगंधियां छिड़को, ताकि किसी तरह से शरीर की गंध न मालूम पड़े, स्वर्ग में राज मालूम होता है खोज लिया गया है। ऐसा लगता है अप्सराएं प्लास्टिक की बनी हैं। न पसीना आता... सिर्प प्लास्टिक को पसीना नहीं आता। सिंथेटिक किसी भी चीज की बनी होंगी।... न पसीना आता है, न बास आती है। वे तो शास्त्र पुराने हैं, अगर नये लिखे जाएं, तो उसमें यह भी व्यवस्था करनी पड़ेगी कि स्त्रियां ऐसी हैं कि जब चाहो हवा निकाल कर अपने

बिस्तर में बंद कर लो, फिर पंप मारो, हवा भर दो, फिर स्त्री खड़ी हो गई। अगर नया कोई शास्त्र लिखे... जैसे कि मैं पुराण लिखूं; कभी-कभी सोचता हूं कि लिखूं; तो उसमें स्त्री को तो फिर ऐसी ही बनाना पड़ेगा कि जब दिल आया तब हवा निकाल दी, जब दिल आया हवा भर ली--और नहीं तो अपनी जेब में रखी स्त्री, चल पड़े!
ऋषि-मुनि जो न करें थोड़ा है। स्वर्ग की आकांक्षा लगाए बैठे हैं। वहां सुख-ही-सुख है। वहां दुख है ही नहीं। उस सुख की आकांक्षा में यहां कितने ही दुख झेल लें। यह कीमत है जो चुका रहे हैं वे। मगर भेद कुछ भी नहीं है। तुम में और तुम्हारे महात्माओं में कुछ भेद नहीं है। क्योंकि वासना वही की वही है। परलोक की करो कि इस लोक की करो। तुम्हारे महात्मा तुमसे ज्यादा लोभी हैं, तुमसे ज्यादा बेईमान।
एक दिन चंदूलाल अपने गुरुदेव मटकानाथ ब्रह्मचारी से कह रहा था कि महात्माजी, मैं तो बड़ी दुविधा में इस समय पड़ा हुआ हूं। मेरी एक प्रेमिका है जो खूबसूरत है, लेकिन अमीर नहीं; दूसरी प्रेमिका के पास पैसा बहुत है, लेकिन है बिल्कुल कुरूप। ऐसी कि बस पूछो मत! प्रेतिनी दिखती है। मगर पैसा बहुत है। मुझे समझ नहीं आता कि मैं किससे प्रेम करूं? महात्मा ने कहा, अरे चंदूलाल, बच्चा इसमें सोचने की क्या बात है? तू तो उस गरीब सुंदरी से ही विवाह कर! पैसा तो हाथ का मैल है। आज है, कल नहीं होगा। और फिर कितना ही हो, एक न एक दिन तो खत्म हो ही जाएगा। तू मेरी सलाह मान! तू तो अपनी खूबसूरत गरीब प्रेमिका को ही जीवनसंगिनी चुन! प्रेम तो परमात्मा है, कह गए महात्मा हैं। बहती गंगा, भइया चंदूलाल, अवसर न चूको! ऐसे शुभ अवसर अनेक जन्मों के शुभ कर्मो के, सद्भकर्मो के बाद ही मिलते हैं।
चंदूलाल को बात जंची। महात्मा के चरण छू कर धन्यवाद देकर जाने को ही हुआ कि महात्मा मटकानाथ ने कहा कि बच्चा, कम से कम जाते समय उस पैसे वाली अमीर स्त्री का पता तो मुझे देता जा! बहती गंगा भइया, तू स्नान कर, पर कम से कम मुझे भी हाथ धो लेने दे! तू मणि-माणिक्य ले ले, मगर मुझे भी कंकड़-पत्थर तो लेने दे; उनसे तो वंचित न कर!
तुम जरा अपने महात्माओं को देखो! तुमको समझा रहे हैं कि पैसा तो हाथ
का मैल है, लेकिन नजर तुम्हारे पैसे पर ही लगी है; तुम्हारी जेब पर लगी हुई है। महात्मा को पैसा दो तो महात्मा तुम्हारा सम्मान करता है।
जैनों के एक बहुत बड़े मुनि हैं, कांजी स्वामी। एक बार भूल से, मैं रास्ते से गुजर रहा था, और उनका प्रवचन हो रहा था, जबलपुर में, तो मैं गाड़ी रोक कर थोड़ी देर सुना कि क्या कह रहे हैं महात्मा। और तो सब ठीक ही था, दो बातें बहुत अद्भभुत कर रहे थे वे। एक तो हर वाक्य के पीछे कहते थे; "समझ में आया?" जैसे कोई मूढ़ों की जमात बैठी हो। फिर मैंने कहाः है भी बात ठीक, मूढ़ों की जमात ही इनको सुन रही है! क्योंकि वे जो कह रहे थे, बिल्कुल कूड़ा- कचरा था, उसमें कुछ था ही नहीं और वे उसमें भी कहेंः "समझ में आया?" एक था राजा, एक थी रानी, समझ में आया? तो मैं बहुत हैरान हुआ कि यह तो हद हो गई। इसमें समझने जैसी कोई बात ही नहीं है!
और दूसरी बात जो वे समझा रहे थे, वह यह कह रहे थे कि धन तो हाथ का मैल है, मगर बीच-बीच में सेठ चुन्नीलाल आगए, कि सेठ दुलीचंद आगए, कि सेठ कालूमल आगए, तो प्रवचन रोक दें, कि आइए चुन्नीलाल जी, बैठिए! फिर प्रवचन शुरू। आइए, धन्नालाल जी, बैठिए! फिर प्रवचन शुरू। मैंने उनके एक शिष्य से पूछा कि ये धन्नालाल, ये चुन्नीलाल ये फलाने-ढिकाने, इनका नाम ये बार-बार बीच में कैसे आ जाता है? उन्होंने कहा, ये लोग दान देते हैं। ये दानी लोग हैं।
धन जो है, वह हाथ का मैल है, और चुन्नीलाल ने हाथ का मैल दे दिया कांजी स्वामी को और कांजी स्वामी प्रवचन बीच में रोकते हैंः "बैठो, चुन्नीलाल!" समझ में आया, यह भी वे नाम ले-ले कर पूछते हैं। "चुन्नीलाल, समझ में आया?" इससे चुन्नीलाल को बहुत आनंद आता है कि हजारों लोगों के बीच उनका नाम लिया गया, वे कुछ खास हैं। एक तो आगे बैठे हैं, फिर "चुन्नीलाल, समझ में आया?" चुन्नीलाल सिर हिलाते हैं कि हां, महाराज!
धन को गालियां दी जा रही हैं, धन को हाथ का मैल बताया जाता है--और दूसरी तरफ यह भी कहा जाता है कि धन मिलता है पिछले जन्मों के पुण्य-कर्मो से। यह

बड़े मजे की बात है! पुण्य कर्म करो, मिले हाथ का मैल! जरा तुम सोचो भी तो, पुण्य कर्म का यह फल! हाथ का मैल! कुछ और दे देते। एक गुलाब का फूल ही दे देते। हाथ का मैल तो कम से कम न देते। और जिनको नहीं मिला है हाथ का मैल, उन्होंने पिछले जन्मों में पाप किए हैं। तो क्या गंवाया? ! अरे, पाप करके भी क्या गंवाया? ! सिर्प हाथ का मैल नहीं मिला। सो मिलने वाले को क्या मिल गया? अच्छा ही हुआ! जी भर कर पाप करो, हाथ का मैल कम रहेगा! पुण्य किया कि फंसे; हाथ का मैल मिलेगा।
यह तुम देखते हो विरोधाभास?
इस देश में सदियों से यह समझाया जा रहा है कि पुण्य कर्मो के फल से धन मिलता; और धन त्यागो, धन पाप है। यह कैसा तर्क है? पुण्य कर्मों के फल से धन मिलता है, और धन त्यागो तो पुण्य होता है। लोगों को बिल्कुल कोल्हू का बैल बना रखा है। उनको चक्कर दिए जा रहे हैं। और लोग चक्कर खा रहे हैं। और लोग सोचते भी नहीं कि यह क्या कहा जा रहा है।
तुम और तुम्हारे महात्माओं में कुछ भेद नहीं है। तुम्हारे महात्मा तुम्हें महात्मा इसीलिए लगते हैं, कि भेद नहीं है। अगर भेद हो तो तुम्हें महात्मा भी न लगें। तुम्हें उनका तर्क, उनकी भाषा रुचती है, पटती है, क्योंकि तुमसे मेल खाती है। और यह अहंकार बड़े जाल फैलाता है। इस लोक के जाल फैलाता है, परलोक के जाल फैलाता है। यह जाल फैलाने में बड़ा कुशल है। परलोक में भी तुम पक्का समझो कि महात्माओं में बड़ा संघर्ष होता होगा, मार-पीट होती होगी, कि कौन परमात्मा के पास बैठे, कौन सबसे पास बैठे; कौन उनका बायां हाथ, कौन उनका दायां हाथ? परमात्मा के पास कौन सबसे ज्यादा? इसमें जरूर छुरेबाजी हो जाती होगी महात्माओं में।
दो जैनमुनि, नग्न जैनमुनि पुलिस थाने में लाए गए--शिखरजी जैनों का क्षेत्र है, तीर्थक्षेत्र है, वहां--क्योंकि उन दोनों ने एक-दूसरे की पिटाई कर दी। गए थे जंगल, मलमूत्र विसर्जन करने, वहां झगड़ा हो गया। सब छोड़-छाड़ दिया है, कपड़े भी छोड़ दिए, मगर झगड़ा नहीं छूटा। अहंकार न छूटे तो झगड़ा कैसे छूटे! और झगड़ा किस बात पर हुआ, वह और हैरानी की बात है। वह तो गांव के लोगों ने पकड़ कर उन्हें थाने पहुंचा दिया, थाने में डांट-डपट बताई तो रहस्य खुला। पैसे के ऊपर झगड़ा हो गया। पैसे के ऊपर झगड़ा और जैनमुनि दिगंबर, जो कुछ रखता ही नहीं। सिर्प एक पिच्छी रखता है, जिससे वह जमीन को साफ करके बैठता है, ताकि कोई चींटी इत्यादि न मर जाए। मगर आदमी तो कुशल है, आदमी हर जगह रास्ता निकाल लेता है। पिच्छी में डंडा होता है, जिसमें ब्रुश लगा रहता है, बाल लगे रहते हैं जिससे कि वह साफ करता है; ऊन की पिच्छी होती है, उसके पीछे डंडा होता है। डंडे को पोला कर दिया था उन्होंने, और उसमें सौ-सौ के नोट! सो दोनों में बांटने पर झगड़ा हो गया।
जो बड़ा मुनि था, जो उम्र में बड़ा था और पहले दीक्षित हुआ था, वह ज्यादा चाहता था। स्वभावतः ज्यादा कष्ट उसने सहे, ज्यादा उपवास भी किए, अब हाथ का मैल भी उसको ज्यादा न मिले तो फिर फायदा ही क्या! तो हाथ का मैल थोड़ा ज्यादा चाहता था। मगर दूसरा कहता था कि मैं पोल खोल दूंगा। राज मुझे मालूम है। इसलिए भलाई इसी में हैं कि आधा-आधा बांट लो। इस पर बात बिगड़ गई और एक-दूसरे ने एक-दूसरे पर हमला कर दिया--और कुछ तो था नहीं मारने को, वही पिच्छी के डंडे थे, तो उन्हीं से एक-दूसरे की पिटाई कर दी। गांव वाले उनको यह देख कर थाने ले आए।
जैनियों ने बड़ी कोशिश की कि यह बात ढंक जाए, छिप जाए, अखबारों तक न पहुंच जाए। मेरे पास जैन आए, उन्होंने कहा कि इस बात को छिपाना जरूरी है, क्योंकि इससे जैन-समाज का बड़ा अपमान होगा। मैंने कहा, तुम और गलत आदमी के पास आगए! अब तो छिपना मुश्किल ही है! उन्होंने कहा, क्यों? मैंने कहा कि मैं ही कहूंगा। अब तुम लाख करो उपाय, अखबार में छपे या न छपे, मगर यह घटना ऐसी मूल्यवान है कि मैं इसको छोड़ नहीं सकता।
है मूल्यवान। सब छोड़ कर आ गए, मगर अहंकार के जाल कैसे हैं? सब छोड़ दो फिर भी किसी नये जाल को बुन लेता है।
प्रैम सों प्रीति करू, नाम को हृदय धरू,
जोर जम काल सब दूर जाहीं।।

बड़ी अद्भभुत बात है--
प्रैम सों प्रीति करू, ...
और किसी चीज से प्रेम न करो, प्रेम से ही प्रेम करो, बस, तो तुम्हारा प्रेम परमात्मा तक पहुंच जाएगा। न धन से प्रेम करो, न पद से प्रेम करो; न स्वर्ग से प्रेम करो, न मोक्ष से प्रेम करो--क्योंकि स्वर्ग और मोक्ष का प्रेम भी अहंकार का जाल है, वह भी वासना है--प्रेम से ही प्रेम करो। गजब की बात कही गुलाल ने। प्रेम से ही प्रेम करो। तो फिर इसमें कुछ लक्ष्य न रहा, कोई आगे की आकांक्षा न रही। प्रेम में ही आनंदित होओ, प्रेम को ही सर्वस्व मानो, प्रेम के पार न कुछ पाने को है, न कोई स्वर्ग है, न कोई मोक्ष। "प्रैम सों प्रीति करू।" इतने अदभुत वचन, लेकिन चूंकि बेचारे बेपढ़े- लिखे संतों ने कहे, कोई इनकी फिकर नहीं करता। इसीलिए मैंने इन पर बोलना तय किया। उपनिषदों पर बोलने वाले बहुत लोग हैं। गीता पर टीका पर टीकाएं होती चली जाती हैं। वेदों पर बड़े प्रवचन होते हैं। मगर कौन बोले गुलाल पर! किसको पड़ी! और ऐसे हीरों-जैसे वचन। तुम उपनिषद छान डालो तो ये वचन नहीं मिलेगाः प्रैम सों प्रीति करू। तुम वेद छान डालो, यह वचन नहीं मिलेगा। मात कर दिया वेदों को। गहरी से गहरी बात कह दी। इससे गहरी बात कही नहीं जा सकती। प्रेम से प्रेम करो। कोई और साध्य न हो, कोई और हेतु न हो। प्रेम ही साधन, प्रेम ही साध्य। प्रेम ही तुम्हारा आनंद हो। प्रेम के लिए प्रेम। प्रेम ही तुम्हारा अहोभाव हो।
प्रैम सों प्रीति करू, नाम को हृदय धरू,
और तभी तुम परमात्मा को अपने हृदय में बसा सकोगे।
जोर जम काल सब दूर जाहीं।।
और फिर तुम पर न तो मृत्यु का कोई बस रह जाएगा, न समय का कोई बस रह जाएगा। सब हट जाएंगे, अपने से हट जाएंगे। तुम प्रेम के अमृत को पी लो। तुम प्रेम के घूंट को पी लो। सब कट जाएंगी भ्रांतियां, सब कट जाएंगे जाल। क्यों? क्योंकि प्रेम चोट करता है अहंकार की जड़ पर। अगर तुम अहंकारी हो, तो प्रेम नहीं कर सकते। और अगर तुम प्रेमी हो तो अहंकार नहीं कर सकते। दोनों बातें साथ नहीं हो सकतीं। अगर दीया जला तो अंधेरा नहीं बच सकता। और अगर अंधेरा है तो दीया नहीं है। ऐसा ही समझो। जहां प्रेम जला, वहां अहंकार गया। और जहां अहंकार है, वहां प्रेम नहीं। अहंकार तो प्रेम के धोखे देता है। बड़ी होशियारी से धोखे देता है।
एक शाम मुल्ला नसरुद्दीन कब्रिस्तान से गुजर रहा था। उसने देखा कि एक खूबसूरत युवती श्वेत परिधान पहने एक ताजी कब्र को पंखा झल रही है। मुल्ला यह देख रोमांचित हो उठा और उसने कहा कि वाह रे खुदा, कौन कहता है कलयुग आगया! सतयुग है, अभी भी सतयुग है। ऐसे प्रेमी आज भी दुनिया में हैं। बेचारी कब्र को पंखा झल रही है। मुल्ला की आंखों से तो आनंद के आंसू बहने लगे। एक उसकी पत्नी है कि जिंदा मुल्ला की पिटाई करती है! और एक यह स्त्री है! कौन कहता है स्त्री नरक का द्वार है! कब्र को पंखा झल रही है, हद हो गई, प्रेम की भी हद हो गई। प्रेम और क्या ऊंचाइयां लेगा!
उसने जाकर महिला से कहा कि सुनिए, आपको देख कर मुझे महसूस होता है कि प्रेम अभी भी शेष है और दुनिया का अभी भी भविष्य है; अभी भी आशा छोड़ने का कोई कारण नहीं है। कितने ही मनुष्य गिर गए हों, लेकिन तुम जैसे थोड़े से व्यक्ति भी अगर हैं तो पर्याप्त है। तुम्हीं तो नमक हो पृथ्वी का। मगर क्या मैं पूछ सकता हूं कि आप कब्र पर पंखा क्यों झल रही हैं? अरे, जानेवाला तो जा चुका, अब कब्र को पंखा झलने से क्या होगा? युवती बोली कि बात यह है जनाब, कि कब्रिस्तान के बाहर मेरा प्रेमी मेरा इंतजार कर रहा है। और मेरे पति ने कहा था कि जब तक मेरी कब्र सूख न जाए, तुम किसी से विवाह मत करना, नहीं तो मुझे बहुत दुख होगा। अतः कब्र को जल्दी सुखाने के लिए पंखा झल रही हूं।
यहां ऐसा ही चल रहा है। प्रेम के नाम पर प्रेम के दिखावे हैं। प्रेम
के नाम पर कुछ और है, जो शायद प्रेम से विपरीत ही हो। प्रेम के नाम पर अहंकार पोषित हो रहा है। प्रेम के नाम पर दूसरे की मालकियत की चेष्टा चल रही है। प्रेम के पीछे छिपी है ईर्ष्या, जलन, द्वेष। प्रेम की आड़ में क्या-

क्या नहीं हो रहा है! इस प्रेम की बात नहीं कर रहे हैं गुलाल। तुम्हारे प्रेम की बात नहीं कर रहे हैं। उस प्रेम की बात कर रहे हैं जिसकी तुम्हें अभी कोई खबर ही नहीं है। लेकिन जिसका बीज तुम्हारे भीतर है। अगर खबर हो जाए तो तुम्हारे भीतर भी प्रेम का वही फूल खिल सकता हैः प्रेम के लिए प्रेम। कुछ और मांग नहीं। प्रेम देने में ही आनंद। तब प्रेम व्यक्तियों से बंधा नहीं रह जाता। तब प्रेम एक निर-वैयक्तिक भाव-दशा हो जाता है। तब प्रेम एक संबंध नहीं रह जाता, एक स्थिति बन जाता है। तब ऐसा नहीं कि तुम किसी से प्रेम करते हो, बस तुम प्रेम करते हो। ऐसा भी ठीक नहीं कि तुम प्रेम करते हो, ज्यादा ठीक होगा कहना कि तुम प्रेम हो। तो तुम जिसको छूते हो, वहीं प्रेम। तुम जिसे देखते हो, उस पर ही प्रेम की वर्षा। तुम एकांत में भी बैठो तो तुम्हारे चारों तरफ प्रेम की तरंगें उठती हैं। ऐसा प्रेम हो तो राम तुम्हारे हृदय में वास करे।
सुरति संभारिकै नेह लगाइकै,
बस, दो काम कर लो। सुरति को सम्हालो, स्मरण को सम्हालो, स्मरण करो कि मैं कौन हूं और प्रेम से भरो। बस, दो काम; बस, दो सीढ़ियां, दो कदम और यात्रा पूरी हो जाती है।
मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
किसी शापवश हो निर्वासित,
लीन हुई चेतनता मेरी;
मन-मंदिर का दीप बुझ गया;
मेरी दुनिया हुई अंधेरी!
पर यह उजड़ा उपवन सब दिन बियाबान सुनसान नहीं था! मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
मेरे सूने नभ में शशि था,
थी ज्योत्स्ना जिसकी छवि-छाया;
जीवित रहती थी जिसको छू
मेरी चंद्रकांतमणि काया,

ठोकर खाते मलिन ठीकरे सा तब मैं निष्प्राण नहीं था! मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
था मेरा भी कोई, मैं भी
कभी किसी का था जीवन में;
बिछुड़ा भी पर भाग्य न बिगड़ा,
रही मधुर सुधि जब तक मन में;

पर क्या से क्या बन जाऊंगा, इसका कभी गुमान नहीं था!

मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
मैं उपवन का ही प्रसून हूं,
किसी गले का हार बना था;
वह मेरी स्मिति थी, उसका भी
मैं हंसता संसार बना था;

मिले धूल में दलित कुसुम सा, मैं सब दिन म्रियमाण नहीं था! मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
मैं तृण सा निरुपाय नहीं था,
जल में डालो बह जाए जो;
और डाल दो ज्वाला में यदि,
क्षणिक धुआं बन उड़ जाए जो;
आज बन गया हूं जैसा कुछ, सब दिन इसी समान नहीं था!

मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
मेरा नाम अरुणिमा सा ही

रहता था उसके अधरों पर,
झूम-झूम उठता था यौवन
मेरी पिक के मधुर स्वरों पर,
मुझमें प्राण बसे थे उसके, मेरा मृण्मय गान नहीं था!
मैं सब दिन पाषाण नहीं था!
स्मरण रखो, आज तो तुम पत्थर जैसे हो--हो गए हो पत्थर जैसे--न तो तुम्हारी यह नियति है, न यह तुम्हारा स्वभाव है। तुम ऐसे पैदा न हुए थे। तुम ऐसे होने के लिए पैदा न हुए थे। समाज ने तुम्हें पत्थर बना दिया है। क्योंकि समाज आदमी नहीं चाहता, पत्थर चाहता है। समाज के लिए पत्थर काम के हैं, आदमी नहीं। आदमी तो खतरनाक हो सकते हैं, पत्थर आज्ञाकारी होते हैं। आदमी बगावती हो सकते हैं, पत्थर बगावती नहीं होते। तुम्हारे हृदय को मार डाला गया है। तुम्हारी बुद्धि को खूब कूड़े-कचरे से भरा गया है। क्योंकि बुद्धि का उपयोग समाज के लिए है। क्लर्क बनाना है तुम्हें, स्टेशन मास्टर बनाना है तुम्हें, डिप्टी कलेक्टर बनाना है तुम्हें; तो तुम्हारी खोपड़ी को कचरे से भरना ही होगा। नहीं तो ये कचरा भरी फाइलें तुम कैसे सरकाते रहोगे? यह कूड़ा-करकट तुम कैसे जीवन भर ढोओगे?
ऐसे-ऐसे अदभुत लोग पड़े हैं कि दफ्तर में ही उनका मन नहीं भाता, दफ्तर में पूरा नहीं पड़ता, वे फाइलें लिए बगल में दबाए घर भी चले आते हैं। फाइलें ही उनका जीवन हैं। उनमें ही सब हीरे-माणिक-मोती। और उनका दिल बड़ा खुश होता है टेबल पर ढेर लगा कर बैठे रहते हैं दिन भर, चित्त उनका बड़ा प्रसन्न होता है जैसे ढेर बड़ा होता जाता है, जैसे उसकी संपदा बढ़ती जाती है, जितने ही वे फाइलों के ढेर के पीछे छिप जाते हैं, उतने ही महत्त्वपूर्ण आदमी हो जाते हैं। काम इतना है उनके ऊपर। खोपड़ी को कचरे से भरना ही होगा! लोगों से कचरा काम लेना है।

हृदय खतरनाक है समाज के लिए। क्योंकि जिसके पास हृदय है, उसे दिखाई पड़ेगा कि क्या कचरा है, क्या सार है, क्या असार है। और जिसके पास हृदय है, तुम उससे हिंसा न करवा सकोगे, तुम उससे गोली न चलवा सकोगे, तुम उससे तलवार न उठवा सकोगे, तुम उससे हिरोशिमा पर एटम बम न गिरवा सकोगे। जिसके पास हृदय है, वह कहेगा, मुझे चाहे सूली पर चढ़ा दो, लेकिन एक लाख लोगों के ऊपर मैं बम गिरा कर उनको राख कर दूं, यह मुझसे न होगा।
जिस आदमी ने हिरोशिमा पर बम गिराया, बम गिरा कर रात भर आनंद से सोया। सुबह जब उससे पूछा गया, क्या तुम रात सो सके? तो उसने कहा, आनंद से सोया। अपना कर्तव्य पूरा किया, उसके बाद आनंद से सोया ही जाता है। वह कर्तव्य था! एक लाख आदमी जल कर राख हो गए, वह कर्तव्य पूरा करके आगया! और कर्तव्य पूरा हो गया, रात आनंद से सोया। आकर भोजन किया उसने। एक लाख आदमियों को मार कर भोजन करना किसके लिए संभव है? जिसके पास हृदय न हो, पाषाण हो।
और यह हालत उसकी ही न थी, जिस अमरीकी प्रेसीडेंट की आज्ञा से... ट 208 मैन की आज्ञा से यह बम गिराया गया था। ट्रूमैन का अर्थ होता हैः सच्चा आदमी। हद्द हो गई! ट 208 मैन और सच्चा आदमी! इससे ज्यादा झूठा आदमी मिलना मुश्किल है। इसलिए मैं उनका नाम रखता हूंः प्रेसीडेंट अन-ट 208 मैन। इन्होंने एटम बम गिरवाने की आज्ञा दी। और जब इनसे पूछा गया कि आपको कोई दुख, पश्चात्ताप? उन्होंने कहाः क्या दुख, क्या पश्चात्ताप? युद्ध समाप्त हो गया। नहीं तो युद्ध समाप्त ही नहीं होता।
और यह बात झूठ है। सच्चाई यह है कि युद्ध समाप्त होने ही वाला था। युद्ध इतने जल्दी समाप्त होने के करीब था, दो-चार दिन के भीतर, कि ट 208 मैन को लगा कि प्रयोग कर ही लेना चाहिए, नहीं तो एटम बम का प्रयोग करने का अवसर नहीं आएगा। शोध से जो पता चला है, वह यह कि युद्ध इतनी जल्दी समाप्त हुआ जा रहा था--जर्मनी हार रहा था, रूसी फौजें बर्लिन में पहुंच गई थीं, जापान घुटने टेक रहा था--एटम बम गिराने की कोई भी आवश्यकता न थी। और अगर दो-चार दिन ज्यादा भी चल जाता युद्ध, तो इतने दिन चला था और दो-चार दिन। एटम बम गिराने की कोई जरूरत न थी। लेकिन यह खतरा पकड़ा मन में कि फिर एटम बम का प्रयोग ही न हो सकेगा, हम जान ही न सकेंगे इसकी औकात, इसकी शक्ति कितनी है।

एटम बम बिल्कुल ही गैर-जरूरी था। लेकिन उसको गिराने का निर्णय लिया ट 208 मैन ने। और प्रसन्नता से। कोई पश्चात्ताप नहीं। तुम एक आदमी को मार दो तो पश्चात्ताप होता है। तुम एक चींटी को कुचल दो तो भी पश्चात्ताप होता है। यह क्या हो गया आदमी को? और ऐसा आदमी बनाने के लिए हमने क्या किया है?
हम आदमी से हृदय को मारते हैं। हमारी सारी शिक्षा-दीक्षा हृदय की जड़ों को काटने की है। सैनिकों को तो हम बिल्कुल हृदयहीन कर देते हैं। सोच-विचार से उनको बिल्कुल असमर्थ कर देते हैं। यंत्रवत व्यवहार उनको हम सिखाते हैं। -- बाएं घूम, दाएं घूम। घुमा-घुमा कर, घुमा-घुमा कर, बाएं घुमाकर, दाएं घुमाकर उनकी खोपड़ी खा जाते हैं। उनमें सोच-विचार की क्षमता नहीं रह जाती। जैसे ही कहो, बाएं घूम, वे यंत्रवत घूम जाते हैं। उनसे पूछो, क्यों घूमे? वे कहेंगे, आज्ञा दी गई। वे आज्ञा के विपरीत जाने की क्षमता खो देते हैं। फिर एक दिन उनसे कहा जाता है, एटम बम गिराओ, बिचारे गिरा देते हैं। उनके लिए बाएं घूम और एटम बम गिराने में कुछ फर्क नहीं है। रहा नहीं फर्क। इतना बोध नहीं रहा, इतना प्रेम ही नहीं रहा कि फर्क कर सकता!
यह समाज हमारा अप्रेम पर जी रहा है, घृणा पर जी रहा है, वैमनस्य पर जी रहा है। राष्टवाद के नाम पर हम घृणा को पोषण देते हैं। जाति के नाम पर, धर्म के नाम पर घृणा को पोषण देते हैं। और सारी दुनिया में सिवाय उपद्रव के और कुछ भी नहीं है।
एक यहूदी बूढ़ा, सिल्वर्सटीन, हवाई जहाज में सवार हुआ। संयोग की बात, उसकी दोनों तरफ दो अरब बैठे थे, बड़े तगड़े अरब, खूंख्वार। सिल्वर्सटीन, गरीब यहूदी, बड़ा घबड़ाया हुआ, सिकुड़ा बैठा था कि एक अरब बोला, यहूदी बच्चे! मेरे लिए काफी ले कर आ! वह नाहीं न कर सका। हालांकि कोई जरूरत न थी, घंटी बजाई जा सकती थी, अपने आप परिचारिका आती। मगर यह बात इस अरब से कहना खतरनाक, यह एकदम गला दबा दे! इतना खतरनाक, खूंख्वार मालूम पड़ रहा है! बेचारा सिल्वर्सटीन भागा, पूरा हवाई जहाज चल कर गया, हवाई जहाज डांवाडोल हो रहा है, तूफानी बादलों से गुजर रहा है, किसी तरह काफी लेकर आया कि दूसरा बोला कि बच्चे एक काफी मेरे लिए भी लेकर आ! फिर गया। तब तक पहले की काफी खत्म हो गई। उसने कहा, यहूदी, एक कप और! उसकी लेकर आया तब तक दूसरे की काफी खत्म हो गई। ऐसा कोई उन्होंने दस-बारह दफा उसे भेजा।
अरबों की तो तुम पूछो ही मत! जो न करें सो थोड़ा है। पैसा एकदम आसमान से टूट पड़ा है।
बामुश्किल थका-मांदा बैठा ही था बीच में कि एक अरब ने पूछा कि यहूदी, दुनिया के क्या हालचाल हैं? उसने कहा, बड़े बुरे हाल-चाल हैं। हिंदुस्तान में हिंदू मुसलमानों को मार रहे, पाकिस्तान में मुसलमान हिंदुओं को मार रहे, बंगला देश में बंगाली पंजाबियों को मार रहे हैं; सब जगह मार-काट मची हुई है! वियतनाम की हालत खराब। इ.जरायल की हालत खराब। ईरान की दशा खराब। संकट ही संकट है! और अब आपसे क्या कहें, इसी जहाज में क्या-क्या नहीं हो रहा है! अरे, इसी जहाज में यहूदी अरबों की काफी में पेशाब कर रहे हैं!
यह सारा जगत घृणा से आपूर है, आकंठ। और इसीलिए हम समझ नहीं पाते, ये वचन सुन भी लेते हैं तो चूक-चूक जाते हैं। ये हमारी शिक्षा-दीक्षा के विपरीत हैं। मगर इनके बिना जीवन में कोई क्रांति नहीं हो सकती।
सुरति संभारिकै नेह लगाइकै।
बस, दो काम करो। एक तो ध्यान--सुरति--और दूसरा प्रेम। ध्यान के लिए ध्यान, प्रेम के लिए प्रेम। लक्ष्य कुछ भी नहीं, मांग कुछ भी नहीं, हेतु कुछ भी नहीं, मंजिल कोई भी नहीं। ध्यान ध्यान के लिए आनंद, प्रेम प्रेम के लिए आनंद। और तब तुम पाओगे, ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक तरफ ध्यान, दूसरी तरफ प्रेम। जिसने ध्यान किया, उसने प्रेम किया। जिसने प्रेम किया, उसने ध्यान किया। तुम एक को भी कर लो तो दूसरा अपने आप आजाएगा। और तुम दोनों को कल लो, तब तो क्रांति बहुत सुगम हो जाती है, सहज हो जाती है। सुरति संभारिकै नेह लगाइकै
रहो अडोल कहुं डोल नाहीं।।
बस, ये दो बातें हो जाएं तो फिर तुम अडोल हो गए। फिर तुम्हें कोई नहीं डुला सकता। फिर तुम कहीं भी रहो, बीच बाजार में बैठो, तो भी अडोल हो।

रहो अडोल कहुं डोल नाहीं।।
फिर तुम कहीं भी डुलाए नहीं जा सकते। कोई तुम्हें डुला नहीं सकता।
कहै गुलाल किरपा कियो सतगुरु,
गुलाल कहते हैं, मेरे सतगुरु की कृपा से, उनकी अनुकंपा से, उनके
अनुग्रह से ये दो सूत्र मुझे मिले हैं, वो मैं तुमसे कहता हूं--
सुरति संभारिकै नेह लगाइकै,
रहो अडोल कहुं डोल नाहीं।।
कहै गुलाल किरपा कियो सतगुरु,
परयो अथाह लियो पकरि बाहीं।।
बस, मेरी बांह पकड़ कर गुरु ने ये दो बातें मुझे सिखा दीं। अथाह से मुझे उबार लिया। संसार से मुझे बाहर खींच लिया। ये दो बातें ही संन्यास का सार हैं।
भक्ति-परताप तब पूर सोइ जानिए,
और तभी जानना कि भक्ति पूर्ण हुई।
धर्म अरू कर्म से रहत न्यारा।।
ये वचन फिर बहुत क्रांतिकारी हैं। आग है, आग्नेय है। सुनते हो? "धर्म अरू कर्म से रहत न्यारा।।" वह जो सचमुच ज्ञान को उपलब्ध हो गया है, ध्यान को या प्रेम को उपलब्ध हो गया है, जो सचमुच भक्ति को जान लिया है, जिसके जीवन में पूर्ण भक्ति छा गई है, वह कर्म से भी मुक्त है। क्योंकि कर्म भी उसने परमात्मा पर छोड़ दिया है।
कर्म का अर्थ होता हैः संसार में कृत्य। और धर्म का अर्थ होता हैः परलोक में कृत्य। न तो वह यहां करने को उत्सुक है कुछ, न वहां करने को कुछ उत्सुक है। न उसकी वासना जगत में है, न परलोक में। कर्म हैः जगत में वासना पूरा करने का उपाय। और धर्म हैः परलोक में वासना पूरा करने का उपाय। जिसने सुरति साध ली और प्रेम से भर गया, जिसकी भक्ति पूर्ण हुई, उसे न धर्म की कोई जरूरत है, न कर्म की कोई जरूरत है। कर्म सब परमात्मा पर छोड़ दिया उसने। वह जो करवाए, करता है, लेकिन अडोल रहता है। और धर्म भी उसने परमात्मा पर छोड़ दिया। अब न वह हिंदू है, न मुसलमान, न ईसाई; अब तो वह परमात्मा का है और परमात्मा उसका है।
राम सों रमि रह्यो...
वह तो राम में रम गया...
... जोति में मिलि रह्यो,
वह तो ज्योति से ज्योति एक हो गई।
दुंद संसार को सहज जारा।।
उसने संसार के द्वंद्व को सहज ही जला कर राख कर दिया। बस, इन दो चीजों सेः सुरति से और प्रेम से।
भर्म भव मारिकै क्रोध को जारिकै,
उसकी सारी माया जल गई, मर गई; उसका सारा क्रोध मिट गया। क्योंकि जब कोई आकांक्षा पाने की नहीं रह जाती, कोई कामना नहीं रह जाती, तो क्रोध अपने आप मिट जाता है। क्रोध का अर्थ हैः तुम कुछ पाना चाहते हो और नहीं पा रहे हो, तो क्रोध पैदा होता है। अड़ंगा पड़ रहा है, तो क्रोध पैदा होता है। जैसे झरना बहना चाहता है और बीच में चट्टान आजाए, तो आवाज होती है, शोरगुल मचता है, वैसा ही तुम्हारा क्रोध है। तुम कुछ पाने चले, किसी ने अड़ंगा मार दिया। और अड़ंगे तो लोग मारेंगे। लत्ती मारेंगे, दुलत्ती मारेंगे। क्योंकि उनको भी वही पाना है जो तुम्हें पाना है। तुम पा लो तो वे क्या पाएंगे? वे तुम्हें रोकेंगे। वे हर तरह से तुम्हें रोकेंगे।
भर्म भव मारिकै क्रोध को जारिकै,
चित्त धरि चोर को कियो यारा।।
और जो मैं तुमसे कहता हूं निरंतर, वह इस वचन में आगया। जो मेरी जीवन-दृष्टि है, जो मेरा जीवन-दर्शन है, वह इस वचन में समाया हुआ है।
चित्त धरि चोर को कियो यारा।।

मनरूपी शत्रुता को मित्र बना लिया। मारना नहीं है, मन को मारना नहीं है, मन को मित्र बना लेना है। मन के मालिक हो जाना है। मन तुम्हारा मालिक न रहे, बस। मन तुम्हारा मित्र हो जाए।
चित्त धरि चोर को कियो यारा।।
वह जो चोर है मन अभी, जो तुम्हारी जीवन-संपदा को नष्ट किए दे रहा है, उसको मित्र बना लिया। कैसे मित्र बनेगा यह? सुरति से; जागरण से; होश से; स्मृतिपूर्वक जीने से। कैसे मित्र बनेगा यह? प्रेमपूर्वक जीने से; प्रेम बन जाने से।
कहै गुलाल सतगुरु किरपा कियो,
हाथ मन लियो तब काल मारा।।
जब हाथ में मन आगया--अपना ही मन अपने हाथ में नहीं है अभी--जब मन हाथ आगया, मृत्यु समाप्त हो गई। मन हाथ आगया, तो जीवन से सारे दुःख समाप्त हो गए। मन हाथ आगया, तो जीवन से सारे कांटे विदा हो गए; फूल ही फूल खिल जाते हैं। झरत दसहुं दिस मोती!

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
बीसवां प्रवचन

विधायक अकेलापन ध्यान है

पहला प्रश्नः ओशो, कल हमें जाना है। इतना कृपा करके बता दें कि क्या अपने प्रियतम के विरह में निकले आंसू ही उसका ध्यान हैं अथवा ध्यान कुछ और है? यदि ध्यान कुछ और है तो वह कौन सा ध्यान है?

योग राधा! प्रेम में बहे आंसू शुभ हैं, लेकिन ध्यान नहीं। ध्यान के मार्ग को प्रशस्त करते हैं, ध्यान के द्वार को खोलते हैं, ध्यान के दर्पण को साफ करते हैं, लेकिन स्वयं आंसू ध्यान नहीं हैं। आंसू बाहर की आंखों को ही साफ नहीं करते, भीतर की आंखों को भी साफ करते हैं। बाहर की आंखों को साफ करने के लिए ही आंसुओं का इंतजाम है।
आंसू की ग्रंथि इसीलिए है ताकि आंख आर्द्र रहे, धूल-धंवास न जमे, आंख गीली रहे, सूखी न हो जाए। आंख शरीर का सबसे कोमल अंग है। वह सूख जाए तो नष्ट हो जाए। साधारण आंसुओं का उपयोग यही है कि वे आंखों को साफ करते हैं। लेकिन, प्रेम में बहे आंसू साधारण आंसू नहीं हैं। और परम प्रियतम की आकांक्षा में बहे आंसू तो बहुत असाधारण हैं; बड़े सौभाग्य के लक्षण हैं। वसंत जैसे आने को है। वृक्षों पर उसकी पहली-पहली झलक आने लगी। कहीं-कहीं इकहरे-दुकहरे फूल खिल उठे। ऐसे परमात्मा के प्रेम में बहे आंसू भी प्रतीक हैं, संकेत हैं। आता ही होगा उसका रथ। आंसू कहते हैं कि रथ के पहियों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ने लगी। मगर आंसू ही रथ के पहिए नहीं हैं। और इकहरे- दुकहरे खिल गए फूल मधुमास नहीं हैं। इकहरे-दुकहरे फूल खिल कर मुर्झा भी जा सकते हैं, वसंत ना भी आए! इकहरे-दुकहरे फूलों का भरोसा नहीं। कभी तो किन्हीं और कारणों से खिल जाते हैं, असमय खिल जाते हैं, बिना ऋतु के खिल जाते हैं।
जैसे अभी-अभी सूर्य का पूर्ण ग्रहण पड़ने के करीब है। तो उस दिन कई तरह
के उपद्रव हो जाएंगे। जो फूल रात को खिलते हैं, वे दिन को खिल जाएंगे। फूल धोखा खा जाएंगे। सूर्यग्रहण पूर्ण होगा, अंधेरा एकदम से उतर आएगा, बेचारे फूल और करें क्या? जैसे रजनीगंधा रात खिलती है, सुगंध बिखेरती है, धोखे में आजाएगी, दिन में ही खिल जाएगी। इतना ही नहीं, गंध बिखेर देगी। उसकी गंध बिखेरने की ग्रंथियां भी तत्काल सक्रिय हो जाएंगी। जो पक्षी सांझ होने पर अपने नीड़ों को लौटते हैं, वे जैसे ही सूर्यग्रहण होगा, भागेंगे अपनी नीड़ों की तरफ बड़ी विडंबना में पड़ जाएंगे, इतनी जल्दी कैसे सांझ आ गई। कभी नहीं आती मगर आ गई है तो भागेंगे नीड़ों की तरप 132 बड़ी उद्भभ्रांत सी दशा हो जाएगी।
वैज्ञानिक दलों के दल छिप कर जंगलों में बैठेंगे--अध्ययन करने के लिए। जंगली जानवरों पर क्या असर होगा, पौधों पर क्या असर होगा, पक्षियों पर क्या असर होगा? असर सब पर होगा। मगर थोड़ी देर! फिर सूरज प्रगट हो जाएगा। और तब और अचंभा होगा और मुश्किल होगी! रजनीगंधा फिर बंद होगी, फिर उसे अपनी सुगंध को सिकोड़ लेना होगा। चूक हो गई, भूल हो गई, दुर्घटना हो गई! पक्षी फिर नीड़ों के बाहर निकल आएंगे। थोड़े डरे, थोड़े भयभीत, थोड़े घबड़ाए। जो फूल रात में खिलते हैं, फिर बंद हो जाएंगे।
कभी-कभी आंतरिक जीवन में भी ऐसी दुर्घटनाएं घटती हैं। जब कि भ्रांति
से तुम्हें लगता है परमात्मा के प्रेम में आंसू बह रहे हैं। और हो सकता है कारण कुछ और हो। अगर कारण कुछ और हो और परमात्मा का प्रेम सिर्प एक बहाना हो--और आदमी बहाने ईजाद करने में बहुत कुशल है--जैसे पति सता रहा हो बच्चे परेशान कर रहे हों जिंदगी दूभर हुई जा रही हो, जिंदगी दुःख ही दुःख मालूम पड़ती हो, तो आदमी बैठ कर कृष्ण कन्हैया के सामने रोने लगता है, कि हे प्रभु! अब तो उठा लो! अब देर न लगाओ! अब मुक्त करो इस जाल से! और रोता है! और शायद सोचे कि ये आंसू प्रभु-प्रेम के आंसू हैं। ये आंसू प्रभु-प्रेम के आंसू नहीं हैं। ये आंसू हैं तो जीवन के दुख के, लेकिन यह भी अहंकार स्वीकार नहीं करना चाहता कि मैं हार गया, असफल हुआ; जीवन को सुंदर न बना पाया, जीवन को

सुरभि न दे पाया; मेरा जीवन जीवन नहीं था, एक व्यर्थता थी, एक संताप था; यह भी हम मानने को राजी नहीं होना चाहते। हमारा अहंकार इसे स्वीकार नहीं करता। वह नये तर्क खोज लेता है। वह तर्को पर तर्क खोजता चला जाता है। वह रोता दुख के कारण, लेकिन कहता है रो रहा हूं प्रीति के कारण। अगर ऐसा होगा तो इन आंसुओं का कोई भी मूल्य नहीं।
लेकिन राधा को मैं जानता हूं, धोखे में नहीं है, आंसू प्रभु के प्रेम
के ही उठने शुरू हुए हैं। जीवन उसका भरा-पूरा है; जो चाहिए, सब है; कोई दुःख नहीं है। पति जैसे मुश्किल से मिलें वैसे उसे मिले हैं। इतने सौम्य, इतने सरल, इतने सहज! इसलिए ये आंसू दुःख के तो नहीं हैं, जीवन से विराग के भी नहीं हैं, परमात्मा से राग के ही हैं, इतना आश्वासन मैं देता हूं। इतनी सील-मोहर मैं लगाता हूं। लेकिन ये आंसू ही ध्यान नहीं हैं। ये भीतर की आंखों को साफ कर जाएंगे, जन्मों-जन्मों की जमी धूल को धो जाएंगे, इनसे एक स्नान होगा। यही असली गंगा-स्नान है। बाहर की गंगा कैसे भीतर को धोएगी? भीतर की गंगा ही धो सकती है।
इन आंसुओं का समादर करना! इन्हें रोकना मत! इस संबंध में स्त्री-जाति पुरुषों से ज्यादा सौभाग्यशाली है। क्योंकि स्त्रियों को यह मूढ़ता नहीं सिखाई है कि रोओ मत। पुरुषों को तो यह मूढ़ता बहुत सिखाई गई है। छोटे-छोटे बच्चों को हम कहने लगते हैं कि तू मर्द बच्चा है, रो मत! यह लड़कियों जैसे काम मत कर! जैसे रोने का लड़कियों से कुछ लेना-देना हो! रोने पर जितना अधिकार स्त्रियों का है उतना ही अधिकार पुरुषों का है। रोना तो एक अद्भभुत कीमिया है। इससे जो गुजरा नहीं, वह किन्हीं अनुभवों से वंचित ही रह जाएगा। जीवन की कुछ गहराइयां उसे कभी पता ही न चलेंगी। जीवन का कुछ संगीत उसे कभी सुनाई ही न पड़ेगा। जीवन के कुछ गीत उसके भीतर उठेंगे ही नहीं। आंसू ही जिसने न जाने, वह जीवन में करुणा भी नहीं जान पाएगा, प्रेम भी नहीं जान पाएगा, सहानुभूति भी नहीं जान पाएगा, दया भी नहीं जान पाएगा। आंसू ही जिसने नहीं जाने, उसकी जिंदगी में एक तरह का रूखापन होगा, उसकी जिंदगी मरुस्थल होगी, उसमें मरुद्यान भी नहीं होंगे। इस मरुस्थल जैसे जीवन में आंसू छोटे-छोटे मरुद्यान हैं--हरे-भरे, जहां पानी के झरने बहते हैं।
लेकिन हम सदियों-सदियों से पुरुषों को सख्त बनाते रहे हैं--चट्टान की तरह। हमारी चेष्टा रही है, सारी दुनिया में, सारी जातियों में, सारे राष्टरें में, कि पुरुष को सख्त चट्टान की तरह बनाओ। क्योंकि पुरुष का हमने एक ही उपयोग किया है--सैनिक की तरह। उसे लड़ाना है। उसे मारना है--उसे मारना है! वह ऐसे रोने लगेगा, बंदूक हाथ में लेकर गोली चलाने के पहले रोएगा कि मार रहा हूं बेचारे को, इसकी पत्नी होगी, इसके बच्चे होंगे, इसके बच्चे अनाथ हो जाएंगे, इसके बच्चे भीख मांगेंगे; इसकी भी पत्नी होगी जैसे मेरी पत्नी है, जैसे मेरी पत्नी घर राह देखती है और पातियां लिखती है, इसकी पत्नी भी राह देखती होगी; अब पातियां नहीं पहुंचेंगी, अब यह घर कभी नहीं पहुंचेगा; इसकी भी बूढ़ी मां होगी, जिसकी आंखें इसको देखने को तरसती होंगी; इसका भी बूढ़ा बाप होगा, जिसकी यह जीवन की आखिरी लकड़ी है और सहारा है, इसको मैं मार रहा हूं! अगर वह रोने लगे, तो गोली न चले, तो तलवार न उठे।
आदमी को हमें फौलाद बनाना था। हमें आदमी को युद्ध की सामग्री बनाना था। हमें आदमी को तोपों में झोंकना था गोली की तरह। हमने आदमी को आदमी नहीं रहने दिया। स्त्रियां इस अर्थ में सौभाग्यशाली हैं। बहुत उनके दुर्भाग्य हैं, उन्होंने बहुत दुर्भाग्य सहा है, लेकिन इस एक संबंध में वे पुरुषों की तरह वंचित नहीं हुईं। उनकी रोने की क्षमता कायम है।
कैसा मजा है! अगर कोई स्त्री पुरुषों जैसा काम करे तो हम उसका सम्मान करते हैं। पुरुष ही नहीं, स्त्रियां भी।
मैं एक कवयित्री को जानता था, सुभद्रा कुमारी चौहान, उनकी बड़ी प्रसिद्ध कविता हैः "खूब लड़ी मरदानी वह तो झांसी वाली रानी थी।" मैंने कहाः मर्दानी क्यों? मर्द को इतना मूल्य क्यों? क्यों नहीं लिखतीं--"खूब लड़ी जनानी वह तो झांसी वाली रानी थी।" जो कि सच्ची बात है। लेकिन अगर इस

तरह कविता बनाओ तो किसी को जंचेगी ही नहीं। "खूब लड़ी जनानी वह तो! " नहीं, मर्दानी होनी चाहिए!
स्त्री अगर पुरुष जैसा व्यवहार करे तो सम्मानित होती है। और पुरुष अगर स्त्री जैसा व्यवहार करे तो अपमानित हो जाता है।
हमारे मूल्य दोहरे हैं। हमारे मूल्य ईमानदार नहीं हैं। अगर लड़की पुरुषों की तरह व्यवहार करे तो हम कहते हैंः बहादुर है! जोन आफ आर्क, झांसी की रानी, इनको हम सम्मान देते हैं। और अगर पुरुष कोमल हो, कमनीय हो, फूल की पंखुड़ियों जैसा हो, तो हम अपमान करते हैं।
नीत्शे ने गालियां दी हैं बुद्ध को और जीसस को। 179ोडिक नीत्शे का दर्शनशास्त्र अडोल्फ हिटलर की आधारशिला था। उसी के आधार पर दूसरा महायुद्ध हुआ। 179ोडिक नीत्शे ने गालियां दी हैं दो व्यक्तियों को, बुद्ध को और जीसस को। जीसस को ज्यादा, क्योंकि जीसस से वह ज्यादा परिचित। कारण? कि दोनों स्त्रैण थे। जनाने! उसने बहुत नाराजगी जाहिर की है। कि इन्होंने सारी दुनिया को जनाना कर दिया! यह क्या बात हुई कि तुम्हारे गाल पर कोई चांटा मारे तो दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना! यह तो लोगों को जनाना बनाना है। यह क्या बात हुई! इस तरह तो पुरुष की जो सर्वाधिक बहुमूल्य संपदा है, वह नष्ट हो जाएगी।
जीसस कहते हैंः जो अंतिम हैं, वे धन्य हैं। और पुरुष का तो सारा काम ही
यह है कि उसे प्रथम हो कर दिखलाना है! और जीसस कहते हैं अन्य है, वे जो दीन-हीन हैं। और पुरुष का तो काम ही यह है कि प्रथम हो, राजसिंहासन पर हो। जीवन दांव पर लगाए मगर प्रथम हो कर दिखाए।
मैं कल जिस युवती की बात कर रहा था, वह पच्चीस वर्ष पहले मेरे साथ विश्वविद्यालय में पढ़ती थी। मेरे जो प्रोफेसर थे, डा. एस. के. सक्सेना, ... अब तो स्वर्गवासी हो गए। स्वर्गवासी तो सिर्प औपचारिक रूप से कहता हूं, मुझे कुछ पक्का नहीं। अगर स्वर्गवासी हो गए हों तो परमात्मा की आत्मा को शांति मिले! क्योंकि वे वहां भी उपद्रव करेंगे। आदमी ऐसे भले थे, मगर थोड़े उपद्रवी थे।
मैं इस लड़की को भूल ही गया होता, पच्चीस साल बाद कोई कारण नहीं था उसे याद रखने का, अगर याद वह रह गई है तो डा. सक्सेना की वजह से। क्योंकि उनके विषय में हम दो ही विद्यार्थी थे--मैं था और यह लड़की थी। यह लड़की है पंजाबी। थोड़ी मर्दानी! थोड़ी मुछाड़िया है। छोटी-छोटी मूछें उसको थीं। यही, इसकी वजह से मैं भूला नहीं। और जिस दिन वह नहीं आती, उस दिन डा0 सक्सेना चूकते नहीं थे, वह मुझसे पूछतेः कहां हैं, मुछाड़िया बाई कहां है? जब आती तब तो वे कुछ नहीं कहते। तो मैंने कहा कि मैं आपको एक तरकीब बताता हूं। आप मजा लेते हैं मुछाड़िया कहने में, मगर उसके सामने नहीं कह पाते--ज्यादातर तो वह मौजूद रहती है; जब नहीं रहती, तभी आप यह रस ले पाते हैं--मैं आपको ऐसी तरकीब बताता हूं, उसके सामने भी आप कहें! मैं समझूंगा, आप समझेंगे, वह समझ नहीं पाएगी। उन्होंने कहा, क्या तरकीब है? मैंने कहाः आपको मालूम है कि राजस्थान में जैनों का एक मंदिर हैः मुछाला महावीर। वह एक ही मंदिर है सारे हिंदुस्तान में, जहां महावीर की प्रतिमा को मूछें हैं; इसलिए मुछाला महावीर! और यह है भी महावीर बिल्कुल! थी तगड़ी, मजबूत, पंजाबी बाई! और मूछें कुछ ऐसे ही तो नहीं ऊग जातीं, हर किसी को थोड़े ही ऊग आती हैं, उसके लिए मजबूती चाहिए। तो मैंने कहा, आप मुछाला महावीर इसका नाम रख लो। तो आप कहोगे, मैं समझूंगा, मैं कहूंगा, आप समझोगे। और इसको तो पता भी नहीं चलेगा कि मुछाला महावीर से इसका कोई संबंध है! सो उस दिन से यह संकेत रहा हम दोनों के बीच। जब दिल होता, हम दोनों उनकी चर्चा छेड़ देते--और मुछाला बाई बैठी सुनती रहतीं। उसको क्या पता कि किसके बाबत मुछाला महावीर!
मैंने तब कभी सोचा भी नहीं था, यह तो मजाक में ही बात हो गई थी "मुछाला महावीर", कि मुछाला महावीर मेरे कार्य का प्रथम स्थल बनेगा। मेरा पहला ध्यान शिविर मुछाला महावीर में हुआ! मैंने कहाः वाह रे मुछाला महावीर!! जब पहली दफा मैं मुछाला महावीर गया और मुछाला महावीर को देखा तो मुझे मुछाला बाई की याद आई।

लेकिन मैंने डा. सक्सेना को कहा कि इसको आप मुछाला महावीर कहते हैं, मुछाड़िया बाई कहते हैं--स्त्री को मूछें हों तो हमको अड़चन है! और पुरुष मूछें सफाचट कराए रहे, हमें कोई अड़चन नहीं! ये दोहरे मूल्य हुए। वे खुद मूछें सफाचट रखते थे। मुझे तो कोई डर था नहीं! तो मैंने कहाः इसका आपको जवाब देना चाहिए कि आप मूछें सफाचट क्यों किए हुए हैं? अगर स्त्री मूछों वाली भद्दी लगती है, बेहूदी लगती है, तो मूछें सफा करवा के आप कैसा सोच रहे हैं, कि सुंदर लग रहे हैं! कैसे लग सकते हैं? अगर मूछें स्त्री को अप्राकृतिक मालूम होती हैं, तो पुरुष की उड़ गई मूछें भी अप्राकृतिक हैं। उस दिन से उन्होंने बंद कर दिया कहना। फिर वे मुछाला महावीर की बात ही बंद कर दिए। मैं कभी-कभी बात भी छेड़ता, वे कहते, छोड़ो भी! भाड़ में जाए, मुझे क्या लेना-देना! तुम उसकी बात छिड़वा-छिड़वा कर मेरी मूछें बढ़वा दोगे! मैं तुम्हारा शड़यंत्र समझ गया। तुम मेरे पीछे पड़े हो! तुम्हें देखता हूं तो मुझे डर लगता है, कहीं वही बात न छेड़ो! और मैं नहीं बढ़ा सकता मूछें, मैं तुमसे कहे देता हूं। तो मैंने कहा, ये दोहरे मूल्य हैं, यह आपको समझ लेना चाहिए। आप नीतिशास्त्र के प्रोफेसर हैं और दोहरे मूल्य!
लेकिन दोहरे मूल्य जारी हैं; जारी रहे।
पुरुष रोए तो हम कहते हैं, यह बात बुरी, यह बात भली नहीं! दुःख में भी रोए तो हम नहीं रोने देते। क्योंकि हम कहते हैं पुरुष को मजबूत होना चाहिए। ऐसा मजबूत कि कोई चीज उसे डिगा न सके।
स्त्री रोए तो हम कहते हैं, रोएगी नहीं तो और क्या करेगी! अबला है! रोने दो! कम पागल होती हैं, सिर्प इसी कारण कि वे रो सकती हैं। और पुरुष ज्यादा पागल होते हैं सिर्प इसी कारण कि वे रो नहीं सकते। उन्होंने रोने की क्षमता खो दी है और रोने की क्षमता मनुष्य को स्वस्थ रखती है। नहीं तो तुम्हारे भीतर दुःख के घाव दबे रह जाएंगे; बह न पाएंगे। मवाद जैसे भीतर रह जाए और बाहर न बहे। तो नासूर बनेगी। केंसर भी बन सकता है। कितनी मवाद लोग भीतर लिए हैं! जब मेरे पास लोग आते हैं और धीरे-धीरे ध्यान में उतरना शुरू होते हैं और जब पुरुषों को भी आंसू बहने शुरू होते हैं तो उनको बहुत हैरानी होती है। वे कहते हैं, यह क्या हुआ? हमें जिंदगी भर कभी आंसू नहीं आए! पिता चल बसे, आंसू नहीं आए; मां चल बसी, हम नहीं रोए; पत्नी चल बसी, हम नहीं रोए; जीवन पर बड़े-बड़े दुःख के पहाड़ टूट पड़े, हम नहीं रोए; और यहां बिना कारण आंसू बह रहे हैं। बात क्या है?
तुम अप्राकृतिक कृत्य कर रहे थे। रोओ! जी भर के रोओ!
दुःख में रोओगे तो दुःख हलका होता है; यह नियम। और आनंद में रोओगे तो आनंद गहन होता है; यह नियम। इस नियम को ख्याल में ले लेना। दुःख हल्का करता है रोना और आनंद को गहन करता है। विपरीत! आनंद और दुःख हैं भी विपरीत। इसलिए आंसुओं का विपरीत परिणाम होता है।
राधा! जो आंसू तेरे बह रहे हैं, शुभ हैं। आह्लादित हो! संकोच न लेना! मगर यह भी तुझे कह दूं कि इसको ही ध्यान मत समझ लेना। इससे ध्यान का रास्ता तय हो रहा है; इससे ध्यान के मंदिर की पहली ईंटें रखी जा रही हैं; मगर मंदिर की ईंटें भी उठ जाएं, मंदिर की दीवालें भी बन जाएं, मंदिर का भवन भी बन जाए, तो भी मंदिर में प्रतिमा लानी होगी। मंदिर ही प्रतिमा नहीं है। और प्रतिमा आएगी तो ध्यान आएगा।
तो तू पूछती है कि फिर ध्यान क्या है अगर ध्यान कुछ और है? ध्यान हैः साक्षी-भाव। आंसुओं को बहने दो और आंसुओं के प्रति साक्षीभाव रखो; देखो! आंसुओं के साथ तादात्म्य मत करो। जागरूकता से देखो कि आंसू बह रहे हैं। जैसे किसी और के बह रहे हैं; जैसे कोई और रो रहा है, तुम दूर केवल द्रपटा मात्र। उस द्रष्टा-भाव में ध्यान का जन्म होता है। द्रष्टा-भाव ही ध्यान है। प्रत्येक कृत्य का द्रष्टा-भाव हो जाना है। फिर चाहे वे आंसू हों, चाहे गीत हों, चाहे नाच हो, चाहे जीवन का सामान्य काम होः रोटी-रोजी, चलना, उठना-बैठना, सब चीजों के प्रति साक्षीभाव रहे। देखते रहो, अपना तादात्म्य तोड़ते चलो। मेरे आंसू हैं, ऐसा मत सोचो, राधा! मुझे भूख लगी है, ऐसा मत सोचो। तुम्हें कभी भूख नहीं लगी। आत्मा को कैसे भूख लगेगी! शरीर को भूख

लगती है। आत्मा तो केवल देखती है कि भूख लगी है। आत्मा तो केवल प्रतिफलन करती है, दर्पण है।
दर्पण में कुछ नहीं होता।
जब दर्पण पर बदलियां आती हैं तो तुम सोचते हो दर्पण के भीतर बदलियां पहुंच जाती हैं? जब तुम दर्पण के सामने खड़े हो तो तुम सोचते हो कि तुम्हारा चेहरा दर्पण के भीतर चला गया? तुम हटे कि चेहरा गया! दर्पण के भीतर कुछ नहीं होता, दर्पण तो दर्पण है--सदा कोरा, सदा शून्य। ऐसा ही तुम्हारा चैतन्य है--सदा कोरा, सदा शून्य। उस चैतन्य का अनुभव ध्यान है। और उसकी प्रक्रिया है साक्षीभाव।
प्रत्येक कृत्य के साक्षीभाव बनते चलो! साक्षीभाव को जगाते चलो! देखो, कर्ता न रहो!
गुलाल का स्मरण करो, कल ही गुलाल ने कहा कि सिद्ध-पुरुष की दो चीजें छूट जाती हैं--कर्म और धर्म। कर्म है संसार को पाने की व्यवस्था, संसार को पाने का साधन और धर्म है मोक्ष को पाने का साधन, परलोक को पाने का साधन। लेकिन जब तक पाने की आकांक्षा है, तब तक आदमी वासनाग्रस्त है। फिर चाहे इस लोक की आकांक्षा हो, चाहे परलोक की। इसलिए गुलाल ने ठीक कहा, खूब गहरी बात कही, कि कर्म और धर्म दोनों से छूट जाता है। ऐसे तो लोग हुए हैं जिन्होंने कहा है--कर्म से छूट जाता है। कृष्ण ने कहा है कि द्रष्टाभाव में कर्म से छुटकारा हो जाता है। लेकिन गुलाल ने एक और ऊंची छलांग ली, कहाः धर्म से भी छुटकारा हो जाता है।
क्योंकि धर्म भी है क्या? वह भी सूक्ष्म कर्म है।
कोई धन पाना चाहता है तो कर्म करता है, और कोई मोक्ष पाना चाहता है तो धर्म करता है। दोनों कृत्य हैं। एक आंतरिक कृत्य है, एक बाह्य कृत्य है। जब बाहर से छूटना है तो अंतर से भी छूट जाना है, क्योंकि द्वंद्व से ही छूट जाना है, बाहर-भीतर दोनों जाने चाहिए। संसार-मोक्ष दोनों जाने चाहिए। तब क्या शेष रह जाता है? सिर्प एक दर्पण की तरह सारे अस्तित्व को प्रतिबिंबित करती हुई चेतना शेष रह जाती है। वह चेतना ही ध्यान है। उसकी ही पराकाष्ठा समाधि।
आंसू शुभ हैं, ये ध्यान के रास्ते को धो डालेंगे, ये ध्यान के रास्ते
को निर्मित कर देंगे। मगर रास्ता ही मंजिल नहीं है। रास्ते पर चलना होगा, मंजिल तक पहुंचना होगा। ध्यान--आंसुओं के प्रति साक्षीभाव को जगाओ और तब तुम्हें फर्क पड़ना साफ हो जाएगा। आंसू प्रीतिकर हैं, लेकिन गंतव्य नहीं। कोई लक्ष्य थोड़े ही हैं आंसू! कि रोने में ही बहुत कुशल हो गए तो ध्यानी हो गए। कि रोने में बस सबको मात दे दी, कि ऐसे रोए कि कोई न रो सके तुम्हारे मुकाबले। इससे ध्यान नहीं हो जाएगा।
लेकिन यह भी मैं पुनः दोहरा दूंः आंसू जो आरहे हैं, बुरे नहीं हैं; अशुभ नहीं हैं, उनको रोकना मत। वे अपने से विलीन हो जाएंगे। जब उनका काम पूरा हो जाएगा, विलीन हो जाएंगे। जब बीज का काम पूरा हो जाता है, बीज समाप्त हो जाता है, पौधा पैदा हो जाता है। जब फूल का काम पूरा हो जाता है, फूल गिर जाता है, फल लग जाता है। इन आंसुओं का अपना काम है, उसे पूरा हो जाने दो। रोकना मत, नहीं तो कुछ पूरा नहीं हो पाएगा। तुम सिर्प देखो। मस्त-भाव से देखो, आनंद-भाव से देखो। शुभ घड़ी आई तुम्हारे द्वार। इसलिए खूब स्वागत से देखो! मगर आंसुओं को पकड़ कर मत बैठ जाना। इस कोशिश में मत लग जाना कि अब रोज-रोज रोना ही है, चाहे आएं चाहे न आएं। नहीं तो आदमी झूठे आंसू भी ला सकता है। आदमी के झूठ की कोई सीमा नहीं है।
तुम भी जानते हो कि झूठे आंसू लाए जा सकते हैं। किसी के घर कोई मर गया, तुम गए और तुम रोने लगते हो। और तुम्हें जरा भी दुःख नहीं है, और अभी सड़क के बाहर तुम बिल्कुल नहीं रो रहे थे। लेकिन यहां आए, चार लोगों को रोते देखा, लाज-संकोच पकड़ा, मृत्यु का भय भी पकड़ा कि ऐसे ही एक दिन अपने को भी मरना पड़ेगा; सबको रोते देखा, यहां न रोओ तो जरा अच्छा भी नहीं लगता, सो तुम भी रोने लगे। आंसू गिरने लगेंगे झर-झर।
आदमी इतने गहरे झूठ पैदा कर सकता है कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते! आदमी मुंह से ही झूठ बोले, ऐसा नहीं, शरीर से भी झूठ बोल सकता है। शरीर तक

उसके झूठे में सम्मिलित हो सकता है। तो अगर तुमने यह समझ लिया कि आंसू बहुत ध्यान की बात हो गई, तो फिर नहीं आएं किसी दिन तो लाना पड़ेंगे! क्योंकि ध्यान तो करना ही है! चेष्टा करके लाना पड़ेंगे।
तो न तो रोकना, क्योंकि रोकने से काम रुक जाएगा, न लाने की चेष्टा करना, क्योंकि लाने से जो आएंगे वे झूठ होंगे। जब तक आएं सहज भाव से, आने देना, जिस दिन विदा हो जाएं, समझना उनका काम पूरा हो गया, धन्यवाद देकर उन्हें भूल जाना, विस्मृत कर देना। तब तक साक्षीभाव साधो।
और साक्षीभाव की एक खूबी है, हम इसे किसी भी कृत्य के साथ साध सकते हैं। इसके लिए कोई मंदिर में, मस्जिद में, गुफा में बैठने की जरूरत नहीं है। दुकान पर साध सकते हो। चलते-चलते साध सकते हो, बैठे-बैठे साध सकते हो। कुछ काम और न हो तो श्वास चलती है, इस पर साध सकते हो। बुद्ध ने इसी को "विपस्सना" कहा। श्वास को देखना। भीतर गई श्वास, बाहर आई श्वास; इस पर ही साक्षीभाव को टिका लो। जहां साक्षीभाव टिका, वहीं ध्यान के झरने फूट पड़ते हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, संन्यास के बाद तो जैसे सभी कुछ बदल गया है। मैं बदल गई, दुनिया बदल गई। पक्षियों के स्वर संगीत में बदल गए हैं। फव्वारे में उठती-गिरती बूंदें नृत्य करती दिखाई देती हैं। सूफी ध्यान में बैठती हूं तो लगता है जैसे सभी कुछ मुझे प्रसन्न करने के लिए हो रहा है। अंदर एक अपूर्व आनंद का अनुभव होता है। लगता है बाह्य संगीत भी मेरे अंदर से ही निकल रहा है। जैसे देवी बनी मैं सब कुछ देख रही हूं। यह भी पागलपन की कोई नई दिशा है अथवा प्रकाश की ओर अग्रसर नन्हें कदम? प्रकाश डालें!

आशा सत्यार्थी! संन्यास घटे तो सब कुछ बदलेगा ही। संन्यास कोई वस्त्रों का बदल लेना ही तो नहीं है। संन्यास तो आंतरिक रूपांतरण है। यह तो जीवन को देखने की नई विधा, नई विधि है। यह तो जीवन को जीने का नया आयाम है।
पुराना संन्यास जीवन-विरोधी था। इसलिए उससे संसार को कोई लाभ नहीं हो पाया। उससे संसार को हानि हुई। निश्चित हानि हुई। न-मालूम कितने घर उजड़े। न-मालूम कितने परिवार विनष्ट हुए। न-मालूम कितनी स्त्रियां पतियों के रहते विधवा हो गईं। न-मालूम कितने बच्चे पिताओं के रहते अनाथ हो गए।
पितृहीन हो गए। जरूर लाखों बच्चों ने भीख मांगी होगी। और न-मालूम कितनी स्त्रियां वेश्याएं हो गई होंगी। इस सब का जुम्मा पुराने संन्यास पर है।
पुराने संन्यास के सिर पर बहुत बड़े पापों का बंडल है।
और मजा यह, इतने पाप के बदले में पुराने संन्यास ने पाया क्या? सूखे- साखे लोग, जीवनरस से हीन, मुर्दा! लेकिन हम मुर्दो को पूजते हैं। हमें मुर्दो को पूजने में बहुत मजा आता है। हम मुर्दो के पूजक हैं सदियों से। आदमी मर जाता है तो सभी उसकी प्रशंसा करते हैं। मरे की फिर क्या निंदा करना, क्या आलोचना करना--लोग कहते हैं! जिंदा था तो सभी निंदा करते थे--यह भी बड़ा मजा है! जिंदा था तो कोई प्रशंसा करने वाला न मिला--शायद लोग सोचते हैं जिंदा की प्रशंसा क्या करना! जैसे सोचते हैं, मुर्दे की क्या आलोचना करना! अरे, मुर्दे की करो भी तो कोई हर्जा नहीं, मुर्दा रहा ही नहीं; चलेगा। अब मुर्दे को कोई दुःख भी नहीं पहुंचने वाला है तुम्हारी आलोचना से। जिंदा की मत करो! जिंदा को गालियां देते हैं, मुर्दा का सम्मान करते हैं। मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन गांव में कई जगह खबर सुनी, जो मिला वही चंदूलाल की तारीफ कर रहा था--भाई, बड़े अद्भभुत व्यक्ति! थोड़ा शंकित होने लगा, घबड़ाने लगा। आखिर पूछ ही बैठा किसी से कि भाई, मामला क्या है, क्या चंदूलाल चल बसे? इतने लोग प्रशंसा कर रहे हैं, इसका सिर्प एक ही मतलब हो सकता है कि चंदूलाल अब दुनिया में नहीं रहे। क्योंकि जिंदा आदमी की तो कोई प्रशंसा कर ही नहीं सकता मुर्दे की प्रशंसा करनी ही चाहिए। हम बूढों को आदर देते हैं सदियों से क्योंकि बूढ़ा मौत के करीब पहुंच गया। बस, एक कदम और। इसने काफी मौत पा ही ली है, थोड़ी-बहुत जिंदगी बची है, तो इसको हम आदर देते हैं।

मृत्यु के आदर से ही वृद्ध का आदर पैदा हुआ है। और जैसे ही कोई मर जाता है, एकदम स्वर्गीय हो जाता है। फिर नरक कौन जाता है? नरक तो खाली पड़ा होगा! क्योंकि जो भी मरे, वही स्वर्गीय! तो नारकीय कौन है?
नहीं, हम कहते नहीं यह।
मैंने सुना, एक गांव में एक आदमी मरा, राजनेता था। उस गांव का नियम था
कि जब कोई मर जाए तो उस आदमी की प्रशंसा में दो शब्द कहे जाएं। लोगों ने बहुत माथापच्ची की कि कोई दो शब्द खोजे, मगर थे ही नहीं दो शब्द उसकी प्रशंसा में कहने योग्य। वह आदमी ऐसा दृष्ट था। उसने एक-एक को सताया था। उसने एक-एक की जान दूभर कर रखी थी। उसने लोगों को ऐसा परेशान किया था कि लोग प्रसन्न हो रहे थे, दिल ही दिल में खुश हो रहे थे, फूल खिल रहे थे लोगों की आत्माओं में कि चल बसा तो झंझट मिटी। मगर लाश रखी है, चिता पर चढ़ेगी तब जब कोई प्रवचन दे, भाषण दे और मर गए आदमी के संबंध में दो सम्मान के शब्द बोले, वह परंपरा थी गांव की। आखिर लोग एक-दूसरे की तरफ देख रहे हैं; कौन बोले, क्या बोले! फिर गांव के लोगों ने गांव के पंडित से कहा कि भैया, तुम्हीं कुछ बोलो, शास्त्रों में कुछ खोजो! तुम तो शास्त्र के ज्ञाता हो, शब्दों के धनी हो, अरे दो शब्द बोलो, अब किसी तरह खत्म करो, अब हम यहां कब तक बैठे रहें! इसने जिंदा रह कर भी सताया, अब मर कर भी सता रहा है। यह तो मर गया, अब हम बैठे हैं नाहक इस मरघट में। घर जाएं अपने, दूसरे काम में लगें। जिंदगी भर इसने परेशान किया है और आखिरी वख्त तक यह रस चखा रहा है अपना। कुछ बोल दो, कुछ भी बोल दो! हम आंख बंद करके, कान बंद करके मान लेंगे, सुन लेंगे, ताली बजा देंगे--झंझट खत्म करो! तुम झूठ बोलो कि सच बोलो, इसकी फिक्र नहीं।
लेकिन पंडित को भी उसने इतना सताया था कि उसके भी सब शास्त्रज्ञान वगैरह काम नहीं आरहा था; वह खोज रहा था, बहुत भीतर, मगर कुछ... , आखिर खड़ा हुआ, पंडित था, कुछ रास्ता निकाला। उसने कहा कि भाइयो, यह जो सज्जन मर गए हैं, इनके पांच भाई अभी और जिंदा हैं, उन पांच के मुकाबले ये देवता थे।
क्या तरकीब निकाली! कि वे पांच इनसे भी पहुंचे हुए हैं, इतने निश्चिंत
न हो जाओ, ये पांच पीछे छोड़ गए हैं, अभी वे ठिकाने लगाएंगे तुम्हें। उनके मुकाबले यह देवता थे।
तब उनकी चिता पर लाश चढ़ाई जा सकी।
क्यों मुर्दो का सम्मान पैदा हुआ? वैज्ञानिक कहते हैं कि मुर्दो का सम्मान भय से पैदा हुआ। जब शुरू-शुरू में मुर्दो का सम्मान पैदा हुआ होगा, कोई दस हजार साल पहले, तो इस डर से पैदा हुआ कि भइय्या, अब मर गया यह आदमी, इसका सम्मान करो, नहीं तो कहीं सताए न! भूत-प्रेत हो जाए! तो इसका सम्मान करो, दान करो, गंगाजी में इनकी अस्थियां चढ़ा आओ। अब जो हुआ सो हुआ, इनसे किसी तरह छुटकारा करो। गया जाना है तो गया हो आओ। और हर साल पितृपक्ष में इनको कुछ भेंट कर दो--रिश्वत! प्रेतात्माएं तो आतीं नहीं, कौवे खाते हैं। मगर कुछ भी हो, इनको कुछ रिश्वत दे दो ताकि ये शांत रहें। हमें भूल जाएं तो बड़ी कृपा! हम पर कृपा करें, अब इस तरफ न आएं, इस तरफ ध्यान न दें!
इस भय से कि आदमी मर कर भूत-प्रेत होगा और फिर सताएगा, इसलिए उसे कुछ रिश्वत दे दो। इससे मुर्दो की प्रशंसा शुरू हुई। वह मुर्दो की प्रशंसा फिर हमारी सब चीजों पर फैल गई। हर चीज पर फैल गई। फिर जितना मरा हुआ आदमी हो--जिंदा रहते हुए भी--उसको हम सम्मान देने लगे। जैसे कोई आदमी स्वस्थ हो, ठीक से भोजन करे, ठीक से कपड़ा पहने, ठीक से रहे, तो हमारा सम्मान का पात्र नहीं होता। भूखा मरे, उपवास करे, नंगा खड़ा हो जाए, हड्डी-हड्डी हो जाए, सूख जाए, पीला पड़ जाए, अधमरा रहे, बस किसी तरह सांसें चलती रहें, हमारा सम्मान मिलने लगता है।

हमारे सम्मान बड़े अद्भभुत हैं। हम दुष्ट प्रकृति के हैं। हमारा सम्मान भी हमारी दुष्टता बताता है। जितना कोई आदमी अपने को सताए उतना हम उसे सम्मान देते हैं। इसका मतलब क्या हुआ? इसका मतलब हुआ कि हम अपने को सताने वालों को प्रोत्साहन देते हैं, पुरस्कार देते हैं। हम दुखवादियों को पुरस्कार देते हैं और हम दुखवादियों को बढ़ाते हैं।

पुराना संन्यास दुःखवादी था। वह जीवन-विरोधी था, प्रेम-विरोधी था, परिवार-विरोधी था, संसार-विरोधी था। वह कहता था, जीओ मत। उसकी एक ही मूलभित्ति थीः कम-से-कम जीओ, न्यूनतम जीओ। बस जीना है, इसलिए किसी तरह जीते रहो। ऐसे धर्म हुए, जैसे जैन-धर्म, जिन्होंने आत्महत्या की आज्ञा दी है। जैन-धर्म धर्मो की पराकाष्ठा है। और धर्मो ने भी आत्मघात की व्यवस्था जुटाई है--धीमे-धीमे, शनैः-शनैः, ऐसे रोज-रोज करते रहो धीरे-धीरे, मर ही जाओगे, लेकिन जैन-धर्म ने तो आत्मघात की आज्ञा दी है। "संथारे" की आज्ञा दी है। आज उपवास कर लो--आमरण--दो महीने लगते हैं, कभी तीन महीने लगते हैं मरने में। क्योंकि तीन महीने तक आदमी बिना भोजन के जी सकता है। वे तीन महीने महा कष्ट के हैं। क्योंकि तुम सता रहे अपने शरीर को। तुम इंच-इंच मार रहे अपने शरीर को। इससे तो आसान है कूद जाओ किसी पहाड़ से, पी लो जहर, एक घड़ी में बात हो जाएगी, एक क्षण में बात हो जाएगी, मार लो गोली! लेकिन, कोई सम्मान नहीं देगा। गोली मार लो, इसमें क्या सम्मान? तीन महीने सड़ो, इंच-इंच मरो, तिल-तिल मरो, तो सम्मान है। क्योंकि इतना दुःख तुमने दिया। सूली पर लटके रहो तीन महीने तक, तो तुम सम्मान के योग्य हो।
इसको जैन कहते हैं, "संथारा"।
मगर जैनों की पूरी व्यवस्था ही यह है कि आदमी को सुखाओ, गलाओ; उसके शरीर के साथ जितनी तुम दुष्टता कर सको, करो। यह बड़े मजे की बात है। एक तरफ कहते हैंः "अहिंसा परमो धर्मः", कि अहिंसा परम धर्म है, किसी को सताना मत-- मगर इसमें तुम सम्मिलित नहीं हो। किसी को सताना मत, इसमें बाकी सब सम्मिलित हैं सिर्प तुमको छोड़ कर। अपने को तो जी भर के सताना। असल में जब तुम किसी को नहीं सताओगे, तो तुम्हारे सताने की जो सारी ऊर्जा है, सताने की जो सारी इच्छा है, वह अपने पर ही लौट आएगी। फिर किसको सताओगे! मारो खुद को, सताओ खुद को, हैरान करो, खुद को। इसमें कैसे गीत उठेंगे? इसमें कैसे आनंद कीझलक उठेगी? इसमें जीवन का कोई झरना नहीं फूट सकता।
पुराना संन्यास मरण का पक्षपाती था।
मैं जिस संन्यास की बात कर रहा हूं, वह जीवन का गीत है, जीवन का संगीत है। इसलिए आशा, जो तुझे हुआ है, जो हो रहा है, शुभ है। तू कहती है, संन्यास के बाद तो जैसे सभी कुछ बदल गया है। बदल ही जाना चाहिए! संन्यास लेने का अर्थ यह है कि हमने जीवन के पक्ष में निर्णय लिया। हमने कहा कि हम जी भर जाएंगे, हमने कहा कि हम पल-पल जीएंगे और पूर्णता से जाएंगे। हमने कहा कि हम जीवन को परमात्मा का पर्यायवाची मानते हैं। हमने कहा कि जीवन मोक्ष है; कि जीवन निर्वाण है।
संन्यास का अर्थ क्या है?
मेरे देखे, मेरे लेखे संन्यास का अर्थ है इस बात की घोषणा कि मैं जीवन-विरोध छोड़ता हूं, मैं जीवन की निंदा छोड़ता हूं। मैं अब जीवन में ही तलाशूंगा। वृक्षों की हरियाली में परमात्मा की हरियाली देखूंगा; और वृक्षों के रंगों में परमात्मा का रंग। और इंद्रधनुष जब आकाश में होगा तो देखूंगा कि परमात्मा कैसे पृथ्वी और आकाश को जोड़ रहा है। कैसे परमात्मा पृथ्वी और आकाश के बीच सेतु बन रहा है। पक्षियों के गीत में मैं गीता सुनूंगा, और झरनों के कल-कल नाद में मेरा कुरान होगा। हवाएं जब वृक्षों के बीच में गुनगुनाती निकलेंगी तो मेरे लिए वही उपनिषद है, वेद है।
मैं संन्यास की जो धारणा तुम्हें दे रहा हूं, वह अहोभाव की, आनंद की, महोत्सव की है। गुलाल ने कहा न कि परमात्मा के संग होली खेल रहा हूं। चला रहा हूं पिचकारियां। परमात्मा के साथ फाग खेलना, गुलाल उड़ाना--यही संन्यास है।
पुराना संन्यास गैरिक वस्त्र चुना था संन्यास के लिए, उनके कारण अलग थे। मैंने भी गैरिक वस्त्र चुने हैं, मेरे कारण अलग हैं। पुराने संन्यास ने गैरिक वस्त्र चुने थे इसलिए कि गैरिक वस्त्र अग्नि का रंग है; चिता का रंग। पुराने संन्यास की दीक्षा ही ऐसे दी जाती थी। झूठ-मूठ एक चिता बनाई जाती थी, और जैसे हम मुर्दे को चिता पर चढ़ाते हैं, उसका सिर घोंट देते थे; उसको स्नान करवा कर, नये कपड़े पहना कर चिता पर लिटा देते थे; फिर चिता में आग लगाते थे। यह सब खेल था; एक क्रियाकांड। और दीक्षा देने वाला मंत्र

पढ़ता था और कहता था कि तुम मर गए; तुम अब तक जैसे थे वैसे मर गए; वह समाप्त हो गया। तुम चिता पर चढ़ गए। अब न तुम्हारा कोई परिवार है, न तुम्हारी कोई पत्नी, न कोई पिता, न कोई मां, न कोई भाई, न कोई बंधु। फिर इसके पहले कि आग जोर से पकड़ जाए और आदमी जल ही जाए, उसको उठा लेते थे। उसको नया नाम दे देते थे। इसका अब कोई वर्ण नहीं, अब इसका कोई आश्रम नहीं, अब इसका कोई नाम नहीं पुराना। इसलिए पुराने ढब का संन्यासी यह नहीं बताता उसकी उम्र कितनी है, यह नहीं बताता उसका पुराना नाम क्या है, उसका पुराना पता क्या है? उसके मां-बाप का क्या नाम है? वह कहता है, वह सब तो बात गई। वह अपने इतिहास को पोंछ डालता है। उसे गैरिक वस्त्र दिए जाते थे--चिता का रंग, अग्नि का रंग। मैं भी गैरिक वस्त्र दे रहा हूं। लेकिन चिता का रंग नहीं है यह। अग्नि
का रंग जरूर है। और अग्नि मेरे लिए जरूरी रूप से चिता का प्रतीक नहीं है। अग्नि जीवन का प्रतीक है। तुम्हारे भीतर अग्नि जल रही है तभी तक तुम जीवित हो। विज्ञान भी इससे राजी है। जैसे दीया जलता है। तो दीया किस तरह जलता है? आक्सीजन के कारण ही जलता है। और आक्सीजन के कारण ही तुम भी जल रहे हो, तुम भी जी रहे हो। आक्सीजन को हटा लो, दीया बुझ जाएगा। जरा एक दीए पर ढांक देना कांच का बर्तन और देखना कितनी देर टिकता है! बस, थोड़ी देर टिकेगा। जैसे ही इस कांच के भीतर की हवा में से आक्सीजन समाप्त हो जाएगी, दीया बुझ जाएगा। जरा तुम्हारी नाक को बंद कर लो, जोर से पकड़ लेना, थोड़ी ही देर में बुझने लगोगे। आक्सीजन पहुंचनी बंद हो गई।
मरते हुए आदमी को हम आक्सीजन पर लगा देते हैं। आक्सीजन पर लगा दो तो उसे काफी देर तक जिलाए रखा जा सकता है। मर भी रहा हो तो भी जिलाए रखा जा सकता है। क्योंकि आक्सीजन भीतर अग्नि को जलाए रखती है। हमारा जीवन भी अग्नि है, सारा जीवन अग्नि है। अगर सूरज बुझ जाए तो वृक्ष अभी, इसी वख्त समाप्त हो जाएंगे, पक्षी मर जाएंगे, लोग मर जाएंगे। कोई भी नहीं बचेगा। पृथ्वी एकदम उजाड़ हो जाएगी। सूरज की आग हमें जिंदा किए हुए है।
तो आग चिता की ही नहीं होती, आग तो जीवन की भी है। मैं जीवन की आग के कारण गैरिक वस्त्र चुना हूं। और गैरिक वस्त्र और भी बहुत चीजों के प्रतीक हैं। ये प्रतीक हैं फलों के। यह वासंती रंग है, वसंत का रंग है। वसंत में जब कि फल ही फूल खिल जाते हैं। इतने फूल खिल जाते हैं कि गिनती न कर सको। यह गैरिक रंग तुम्हारे रक्त का रंग है। रक्त तुम्हारी जीवनधारा है। रक्त तुम्हारा रस है। जैसे वृक्ष बिना पानी के न जी सकेंगे, तुम बिना रत्त के न जी सकोगे। ये गैरिक वस्त्र सूर्य के प्रतीक हैं। क्योंकि सूर्य हमारे जीवन का स्रोत है। और ये गैरिक वस्त्र क्रांति के प्रतीक हैं। क्योंकि क्रांति नया जन्म है। और बच्चा जब जन्मता है तो स्वभावतः रक्त गिरता है मां से। बच्चा भी रक्त में ही लिपटा हुआ ही पैदा होता है। चिता से इनका कोई संबंध नहीं है मेरे हिसाब में। फूलों से संबंध है, जीवन से संबंध है, क्रांति से संबंध है, वसंत से संबंध है। मेरे लिए ये महोत्सव के प्रतीक हैं।
लेकिन कपड़े ही बदलने से कुछ न होगा, यह सारी भाव-दशा बदलनी है।
और आशा, मैं देख रहा हूं कि वह भाव-दशा तेरी बदली है।... कल तुमने देखा होगा, ये युवती अचानक खड़ी हो गई थी, वह आशा सत्यार्थी ही थी। रोक न सकी अपने को, इतने भाव में आगई थी। पास आना चाहती थी, और पास आना चाहती थी। फिर दिन भर रोई कि मैंने विघ्न डाला; कि मेरे कारण व्याघात हुआ। दिन भर रोई कि मैं नहीं चाहती थी कि उठूं, मैंने सब तरह अपने को रोका था कि न उठूं, मगर न रुक सकी! कोई चीज उठा ली। कोई और जैसे उठा लिया। जैसे अपने बस में न थी। जैसे एक मादकता, एक मस्ती, एक खुमार!
आशा, रोने की कोई जरूरत नहीं। कभी-कभी थोड़ी बहुत विघ्न-बाधा, चलती है। कभी-कभी! ऐसा रोज-रोज न करने लगना। और जैसा आशा ने किया ऐसे और लोग न करने लगना। नहीं तो उसको तो हुआ था, लोग ऐसे हैं कि करने लगें! आशा तो रोक न सकी, इसलिए हुआ। वह कर भी क्या सकती थी? अवश थी। फिर पछताई भी बहुत, रोई भी बहुत, कियह उचित नहीं था कि सत्संग में बाधा डालूं!
मगर उचित-अनुचित के पार भी कुछ चीजें हैं। तेरा उठना उचित-अनुचित के पार था। मैंने देख लिया था कि तू उठी नहीं है, तेरा इसमें कुछ वश नहीं है,

तेरा संकल्प नहीं है, तेरी इच्छा नहीं है। तेरे चेहरे पर दोनों भाव मौजूद थे--तू अपने को रोक रही थी। मगर आई कोई आंधी और उड़ा ले गई सूखे पत्ते की तरह तुझे। तू करती भी तो क्या करती? तू करीब आना चाहती थी। करीब आने का नाम ही तो सत्संग है। करीब आने को ही तो उपनिषद कहते हैं। गुरु के पास बैठने को ही तो उपनिषद कहते हैं। जरा भी दूरी खलती है।
अब मजबूरी है कि कुछ को तो दूर बैठना पड़ेगा। सभी आगे नहीं बैठ सकते। इसलिए तुझे थोड़ी दूर बैठना पड़ा था। और जो पहरेदार हैं, उनकी भी मजबूरी है। उनको एक व्यवस्था बनाए रखनी है। तो उन्होंने तुझे रोका भी। क्योंकि अगर वे प्रत्येक को उठने दें, तो सत्संग असंभव हो जाए, बात करनी मुश्किल हो जाए। लोग रोने लगें, लोग चीखने लगें, लोग चिल्लाने लगें। और इनमें नब्बे प्रतिशत ऐसे हों जो बन के करें, जो बनावटी हों।
जो तुझे हो रहा है, मंगलदायी है।
तू कहती हैः "मैं बदल गई, दुनिया बदल गई है। पक्षियों के स्वर संगीत में बदल गए हैं। फव्वारे में उठती-गिरती बूंदें नृत्य करती दिखती हैं। सूफी ध्यान में बैठती हूं तो लगता है जैसे सभी कुछ मुझे प्रसन्न करने के लिए हो रहा है।"
हो ही रहा है। यह सारा अस्तित्व तुझे प्रसन्न करने को है, आनंदित करने
को है। ये सब फूल तुम्हारे लिए खिले हैं। ये तारे तुम्हारे लिए नाच रहे हैं। यह आकाश जगमग है तुम्हारे लिए। यह रोज शाम दिवाली जो मनाई जाती है, यह किसके लिए? यह जो संगीत है झरनों का, यह जो नाद है सागरों का, यह सब तुम्हारे लिए, सब तुम्हारे लिए।
तुझे डर लगता है कि कहीं यह भी पागलपन की कोई नई दिशा तो नहीं है? अथवा मैं प्रकाश की और अग्रसर हो रही हूं? नन्हें कदम प्रकाश की तरफ उठा रही हूं? यह दोनों है। यह पागलपन का एक नया आयाम भी है और प्रकाश की ओर नन्हें- नन्हें कदम भी। यह दीवानापन है! यह मस्ती है!
परवाना होना ही तो संन्यस्त होना है। फिर परमात्मा बन गया ज्योतिशिखा
और हम उड़ चले परवानों की तरह; मरने को, मिटने को, ताकि उसके साथ एक हो सकें। इतनी भी दूरी न रह जाए, इतना भी फासला न रह जाए कि मैं हूं। मेरे होने का भी अंतराल खलने लगे। मेरे होने का भी भेद अखरने लगे। तो पागलपन तो है ही! मगर ऐसा पागलपन जो बुद्धिमानी से बहुत ऊपर है और बुद्धिमानी से बहुत मूल्यवान है। इसलिए नन्हें-नन्हें कदम भी हैं ये। ये परमात्मा की तरफ ही कदम उठ रहे हैं। कल तू जो उठ कर खड़ी हो गई थी, चल पड़ी थी, वह मेरी तरफ नहीं, परमात्मा की तरफ ही चल पड़ी थी। मैं तो सिर्प बहाना था।
मैं जग-जीवन का भार लिए फिरता हूं,
फिर भी जीवन में प्यार लिए फिरता हूं,
कर दिया किसी ने झंकृत जिनको छूकर,
मैं सांसों के दो तार लिए फिरता हूं।

मैं स्नेह-सुरा का पान किया करता हूं, मैं कभी न जग का ध्यान किया करता हूं; जग पूछ रहा उनको, जो जग की गाते,
मैं अपने मन का गान किया करता हूं।

मैं निज उर के उदगार लिए फिरता हूं, मैं निज उर के उपहार लिए फिरता हूं, है यह अपूर्ण संसार न मुझको भाता, मैं स्वप्नों का संसार लिए फिरता हूं।

मैं जला हृदय में अग्नि, दहा करता हूं, सुख-दुख दोनों में मग्न रहा करता हूं; जग भव-सागर तरने को नाव बनाए,
मैं मन-मौजों पर मस्त बहा करता हूं।

मैं यौवन का उन्माद लिए फिरता हूं, उन्मादों में अवसाद लिए फिरता हूं, जो मुझको बाहर हंसा, रुलाती भीतर, मैं, हाय, किसी की याद लिए फिरता हूं!

कर यत्न मिटे सब, सत्य किसीने जाना? नादान वहीं है, हाय, जहां पर दाना! फिर मूढ़ न क्या जग, जो इस पर भी सीखे? मैं सीख रहा हूं, सीखा ज्ञान भुलाना!

मैं और, और, जग और, कहां का नाता,
मैं बना-बना कितने जग रोज मिटाता;
जग जिस पृथ्वी पर जोड़ा करता वैभव,
मैं प्रति पग से उस पृथ्वी को ठुकराता!

मैं निज रोदन में राग लिए फिरता हूं, शीतल वाणी में आग लिए फिरता हूं,
हों जिस पर भूपों के प्रासाद निछावर, मैं वह खंडहर का भाग लिए फिरता हूं!

मैं रोया, इसको तुम कहते हो गाना,
मैं फूट पड़ा, तुम कहते छंद बनाना; क्यों कवि कहकर संसार मुझे अपनाए,
मैं दुनिया का हूं एक नया दीवाना!

मैं दीवानों का वेश लिए फिरता हूं,
मैं मादकता निःशेष लिए फिरता हूं;
जिसको सुन कर जगझूमे, झुके, लहराए,
मैं मस्ती का संदेश लिए फिरता हूं!
मेरा संन्यासी पागल तो है ही, परवाना तो है ही? ! लेकिन इसी पागलपन से उसके गीत उठेंगे, गान उठेंगे। यही पागलपन उसकी वीणा पर, हृदय की वीणा पर संगीत बन कर नाचेगा। यही पागलपन उसके पैरों में घुंघरू बांधेगा। यह पागलपन तुम्हारी तथाकथित समझदारी से बहुत ऊपर है।
तुम्हारी तथाकथित समझदारी क्या है? चार कौड़ियां इकट्ठी कर लो, बड़े समझदार! किसी पद पर चढ़ जाओ, बड़े समझदार! मगर सब पड़ा रह जाएगा--पद भी, धन भी। दुनिया तुम्हें पागल कहेगी। जब तुम्हारे पास कुछ भी न होगा जिसको दुनिया मूल्य देती है और फिर भी मस्ती होगी, और तुम्हारी आंखों में खुमार होगा और लगेगा कि तुम पीए ही पीए हो, कुछ ऐसी शराब पी गए हो कि जो उतरती ही नहीं, तो लोग पागल कहेंगे। कहने देना। स्वाभाविक है उनको भी तुम्हारी बात पागल जैसी लगे। उनकी भीड़ भी है; उनकी बात में बल भी मालूम होगा। मगर कौन चिंता करता है! जिसने एक बूंद भी चख ली भीतर की, सारी दुनिया में उसे किसी की चिंता नहीं रह जाती। सारी दुनिया एक तरफ हो, तो भी परमात्मा का परवाना एक तरफ खड़ा होकर अकेला भी मस्त होता है। अकेला भी पर्याप्त होता है।
आशा, बहुत कुछ होने को है अभी। ये नन्हें-नन्हें कदम ही हैं। अभी और पागलपन आएगा। मगर पागलपन ही तो अंततः परमहंस बनाता है। दुनिया में दो तरह के पागल हैं। एक वे, जो सामान्य बुद्धि से नीचे गिर जाते हैं। वे रुग्ण हैं। और एक वे, जो सामान्य बुद्धि के ऊपर उठ जाते हैं। वे ही परमहंस हैं, वे ही तो बुद्ध हैं, वे ही तो पैगंबर हैं। मैं जो भी यहां प्रयास कर रहा हूं, वह यही है कि कैसे तुम्हारी सामान्य बुद्धि के पार तुम्हें उठाया जा सके। कैसे तुम अतिक्रमण कर सको इस मन का।
मन रोग है; इससे मुक्त हो जाना परम आनंद है। संसार से मुक्त नहीं होना है, मन से मुक्त होना है। संसार का त्याग नहीं करना है, मन का त्याग करना है। और जहां मन न बचा, वहां मैं-भाव गया। मैं तो मन में ही जीता है। और

जिसके भीतर न मन है, न मैं-भाव है, उसके बीच और परमात्मा के बीच कौन-सी दीवाल रही? सब दीवालें गिर गईं। उसी मिलन की तलाश है। जन्मों-जन्मों से हम उसी को खोज रहे हैं। और जब तक मिल न जाए वह क्षण तब तक यह खोज जारी रखना! जारी रखनी ही पड़ेगी, क्योंकि तब तक तृप्ति होनी असंभव है।

तीसरा प्रश्नः ओशो, उस दिन आपने चूहे को हनुमान जी का वाहन बताया। लेकिन जहां तक मैं जानता हूं वहां तक शास्त्रों में चूहा हनुमान जी का नहीं, गणेश जी का वाहन है! कृपया प्रकाश डालें।

नगेंद्र! उस दिन तो जो भी मैंने बताया, उस सब का कसूर गुलाल पर है। होली के हुल्लड़ में जो न हो जाए थोड़ा। गुलाल ने ऐसी गुलाल उड़ाई, ऐसी भंग पिलाई कि कुछ का कुछ हो गया। और होली का हुड़दंग! हनुमान जी चढ़ गए होंगे चूहे पर। कौन फिकर करता है होली के हुड़दंग में कि कौन किसका वाहन है! एकाध दिन तो छुट्टी रखो। और हनुमान जी ही हैं! चूहे पर गणेश जी को बैठे देखते- देखते उनको भी लगा होगा कि चलो एक दिन बैठ जाएं। और चूहे को भी जंचा होगा, क्योंकि वजन भी थोड़ा हनुमान जी का कम ही होगा गणेश जी से! अब हाथी ऊपर बैठा हो चूहे के और बंदर बैठ जाए! तो चूहे ने भी सोचा होगा, भला ही हुआ, अच्छा ही हुआ!
मगर उस दिन की बातों का तुम कुछ ख्याल मत करना। उस दिन कई सच्ची बातें निकल गईं।
और शास्त्रों की क्या फिकर करते हो? शास्त्र तो अपने हाथ की बात है। लिख लेना अपने शास्त्र में कि समय बदला, कलियुग आया और लोगों ने वाहन बदल लिए! अरे, लोग हर साल अपना वाहन बदल लेते हैं। तो तुम अभी तक चूहे पर ही चढ़े हुए हो? और मैं कोई शास्त्रों का ज्ञाता नहीं, सो मुझे पता नहीं कि कौन किसका वाहन है। तुमने पूछा तो मैंने चूहे से पूछा--शास्त्र में क्या जाना, चूहे से पूछो न! हनुमान जी मिलते नहीं कहां छिपे हैं। गणेश जी का पता नहीं चलता। मगर चूहा तो उपलब्ध है। अतिरेक से उपलब्ध है। भारत में चूहे की कोई कमी है! मैंने चूहे से ही पूछा कि भइया, तू बता! चूहे ने कहा, मैं किसी का वाहन नहीं हूं। कभी-कभी मैं हनुमान जी पर भी चढ़ता हूं, कभी-कभी गणेश जी पर भी चढ़ता हूं। मैं और वाहन!
और बात जंची। क्योंकि मैंने कई दफा गणेशजी पर चूहे को चढ़े देखा है। असली चूहे को। नकली चूहे पर तुम गणेशजी को चढ़ा दो, रबर के चूहे पर, एक बात है, लेकिन असली चूहा गणेश जी पर चढ़ जाता है। अरे, गणेश जी को छोड़ो, गणेश जी के पिताजी शंकर जी पर चढ़ जाता है। किसी की फिकर ही नहीं करता है। चूहे तो चूहे है यह कोई नियम, इत्यादि, शास्त्र वगैरह मानते हैं क्या? जैसी मौज होती है वैसा करते हैं।
शास्त्रों में कुछ भी लिखा हो, क्योंकि शास्त्र आदमियों ने लिखे हैं।
सो जो चाहो लिख लो, अपने शास्त्र। मगर जरा पूछ तो लिया करें बिचारे चूहों इत्यादि से! और यह जमाना अब समाजवाद का है, सर्वहारा का है। बहुत बैठ चुके गणेशजी और हनुमान जी वाहनों पर। अब चूहे बैठेंगे। अब चूहे मानने को राजी नहीं। चूहे भी दल बना रहे हैं--दलित-पांथर। कब तक दलोगे? बहुत दल चुके! और शर्म भी न आई? गणेश जी को चूहे पर बिठाया!
मगर यह बात एक अर्थ में सच्ची है। यही होता रहा। गरीब की छाती पर बड़ी- बड़ी तोंदों वाले लोग सवार रहे। सो प्रतीक समझ में आता है। चूहों की छाती पर गणेश चढ़े हैं! मगर अब चूहे ज्यादा दिन गणेश वगैरह को चढ़े नहीं रहने देंगे। कई मुल्कों में उतार दिए गए। यहां भी उतरेंगे। उतरना ही पड़ेगा। रूस जैसे समाजवादी देश में तो व्यक्तिगत वाहन ही खत्म हो गए। तुम कहां की शास्त्रों की बातें कर रहे हो, व्यक्तिगत वाहन खत्म! सार्वजनिक वाहन शुरू हो गए। अब यह पुरानी राजशाही न चलेगी कि गणेशजी का अपना वाहन और शंकर जी का अपना वाहन! सार्वजनिक वाहन होगा। बस में बैठें दोनों। अब कहां व्यक्तिगत वाहन! मगर तुम्हें अड़चन आई होगी। शास्त्र के ज्ञाता को बड़ी अड़चनें आती हैं। मेरे साथ तो बहुत अड़चनें आती हैं।

मगर शास्त्र का यहां क्या लेना-देना? यह रिंदों की जमात है। यहां तो पियक्कड़ बैठे हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन कह रहा था कि जब मैं ज्यादा पी जाता हूं तो मुझे सांप-बिच्छू, हाथी-घोड़े, मगरमच्छ, ऐसी-ऐसी चीजें दिखाई पड़ती हैं। शराबघर के मालिक ने कहा कि कभी किसी मनोवैज्ञानिक को देखा? कभी किसी मनोवैज्ञानिक से मिले? उसने कहा कि नहीं भाई, कितनी ही पीओ, मगर बस यही हाथी-घोड़े इत्यादि दिखाई पड़ते हैं, मनोवैज्ञानिक दिखाई पड़ता ही नहीं! पीने वाले लोगों की अपनी दुनिया है। वहां के अपने दृश्य हैं। और परमात्मा तो पियक्कड़ों के लिए है। शास्त्रीय ज्ञान वहां काम न पड़ेगा। तुम क्यों चिंता में पड़े? नगेंद्र, इस तरह की व्यर्थ चिंताओं में तुम्हें क्या लेना? न तुम चूहा, न तुम गणेश जी, न तुम हनुमान जी, तुम क्यों चिंतित हो? लेकिन लोगों को न-मालूम कैसी-कैसी चिंताएं पकड़ लेती हैं कि कहीं शास्त्र के विपरीत कोई बात न हो जाए। मुझे शास्त्र से कुछ लेना-देना नहीं है। ये सब कपोल-कल्पित कहानियां हैं। और कहानियों को भी रुक क्यों जाना चाहिए? समय के साथ बढ़ते रहना चाहिए, बदलते रहना चाहिए। गतिमान रहना चाहिए, प्रवाहमान रहना चाहिए। ये प्यारी कहानियां हैं अगर चलती रहें, बढ़ती रहें। अगर रुक जाएं, अवरुद्ध हो जाएं तो गंदे नाले हो जाते हैं। इनसे फिर दुर्गंध उठने लगती है।
जिन्होंने इन कहानियों को रचा होगा, बड़ी कल्पना थी, बड़ा काव्य था! इनका धर्म इत्यादि से कोई संबंध नहीं। चूहे को गणेशजी का वाहन माना, इससे चूहे का कोई संबंध नहीं है। लेकिन किसी खास कारण से माना। गणेशजी बहुत तार्किक हैं, और चूहा जो है, कुतर-कुतर करता रहता है। और तर्क जो है, कुतर-कुतर करता रहता है। तो तर्क का प्रतीक है चूहा। गणेश जी तर्क पर सवार हैं। इस बात को बताने के लिए चूहे पर सवार बताया। नहीं तो चूहे की तो जान कब की निकल जाए! कहां गणेश जी को बिठाओगे चूहे पर? वह तो सिर्प तर्क का प्रतीक है। वह काटना ही जानता है। चूहा जोड़ना नहीं जानता। कटवाना हो जितना, कटवा लो, जोड़ने की कहो कि चूहे को छठी का दूध याद आजाएगा। जोड़ नहीं सकता।
शेख फरीद एक मस्त फकीर हुआ। सम्राट अकबर उससे मिलने गया था। किसी ने सम्राट अकबर को एक कैंची, सोने की, बड़ी कलात्मक, हीरे-जवाहरातों से मढ़ी भेंट की थी। जाते वक्त सोचा कि इसको ले चलूं, फरीद को भेंट कर आऊं। बहुमूल्य थी, अनूठी थी, बेजोड़ थी। ले गया, फरीद को चढ़ाई। फरीद ने कैंची देखी और कहा कि आए, लाए कुछ भेंट, धन्यवाद, मगर कैंची मेरे काम की नहीं है। तुम तो मुझे सुई-धागा भेज देना, कैंची तुम ले जाओ।
अकबर ने पूछा, सुई-धागा! मैं कुछ समझा नहीं। फरीद ने कहा कि बात यह है-- काटना हमारा काम नहीं है, जोड़ना हमारा काम है। सुई-धागे से जोड़ेंगे, कैंची से तो काटना होता है। कैंची तुम्हारे काम की। काटना तुम्हारा धंधा, राजनीति! इसकी काटो, उसकी काटो। काटते ही रहो। और तुम दूसरों की काट रहे हो और दूसरे तुम्हारी काट रहे हैं। एक-दूसरे की काटने में लगे रहो। कैंची तुम्हारे काम की, भइय्या! मुझे सुई-धागा भेज देना। क्योंकि मेरा धंधा जोड़ने का है।
गणेश जी के संबंध में तुम्हें जानना चाहिए जैसी आजकल धारणा है, वैसी गणेश के संबंध में सद्भधारणा नहीं थी। धारणाएं भी कैसे-कैसे रूप ले लेती हैं और कैसे-कैसे अद्भभुत रूपांतरण हो जाते हैं। गणेश जी की धारणा शुरू- शुरू में यह थी कि वे उपद्रवी हैं। और कहीं भी जाकर हुड़दंग मचाना, उपद्रव करना, यह उनका काम है। विघ्नकारी हैं। वेदों में उनका स्मरण विघ्नकारी की तरह किया गया है। और चूंकि वह विघ्नकारी हैं, इसलिए किसी भी काम को प्रारंभ करने के पहले उनका स्मरण करना ठीक है ताकि वहां आकर गड़बड़ न करें। इस तरह धीरे-धीरे वे मंगल के प्रतीक हो गए। क्योंकि हमेशा शुरू उनसे करो! श्री गणेशाय नमः। वह इसीलिए कि भइय्या, तुम भर न आना। कि तुम कृपा करना। अब यह काम शुरू कर रहे हैं, आप न आजाना।
मैं बचपन से ही उपद्रवी था। तो उससे मुझे एक फायदा रहा कि जिस कक्षा में भी होता, उसका कैप्टन बना दिया जाता--फौरन। क्योंकि उसके सिवाय शिक्षक को कोई रास्ता न सूझता। और जब मैं ही कैप्टन हो जाऊं तो फिर उपद्रव कैसे

करूं! फिर तो मुझे दूसरे उपद्रव करने वालों को रास्ते पर लगाना पड़े। जब मैं कई कक्षाओं में कैप्टन रह चुका तो हेड मास्टर ने मुझसे पूछा कि मामला क्या है? तुम हमेशा ही जिस कक्षा में जाते हो, वहीं कैप्टन? मैंने कहा, मामला यह है कि अगर मुझे कैप्टन न बनाया जाए तो मैं इतना उपद्रव करूं कि वह शिक्षक के वश के बाहर है। यह रिश्वत है।
यही हालत गणेश जी की है। वह थे उपद्रवी, फिर उनके लिए रिश्वत देने का
एक उपाय खोजा गया कि इनको पहले ही स्मरण कर लो। हालांकि उनसे भी बड़े-बड़े देवता थे, मगर तुम खुद ही सोचो! बड़े-बड़े देवता पड़े थे, महादेव उनके पिता ही हैं। देव भी नहीं, महादेव! उनकी भी पहले कोई स्तुति नहीं करता। न राम की, न कृष्ण की। बड़े-बड़े अवतार, पूर्ण अवतार कृष्ण और कहां गणेश जी! हैसियत क्या है गणेश जी की? मगर उपद्रव! अब समझ लो कि बैठे-ठाले हाथी घुस जाए और उपद्रव करने लगे यहां! तो प्रार्थना करनी पड़े। इसलिए गणेश का रूप बदला। धीरे-धीरे लोग भूल ही गए।
इस भवन को जब लिया, जिस महाराजा का यह भवन था, वह मुझे भवन में प्रवेश करवाने के लिए लाए। दरवाजे पर ही भवन के गणेशजी की मूर्ति लगी है--अभी भी लगी है। मैंने उनसे पूछा, यह मूर्ति किसलिए? तो उन्होंने कहा, गणेश जी शुभ के सूचक हैं। मैंने कहा, तुमको पता नहीं है। शुभ के सूचक नहीं हैं, इनको दरवाजे पर इसलिए लगाना पड़ता है कि देखो, हम तुम्हें मानने वाले हैं, हमको बचाना! और कहीं जाओ, पास-पड़ोस में जहां उपद्रव करना है करो। उन्होंने कहा, यह आप क्या करते हैं! हमने तो कभी ऐसा सोचा भी नहीं था। हम तो यही मान कर चलते थे कि गणेश जो हैं, वह शुभ के सूचक हैं। इसलिए एक कार्य के पहले उनका स्मरण करना चाहिए।
वह शुभ के सूचक नहीं हैं, वह उपद्रव के सूचक हैं।
मगर प्यारी कहानियां हैं। और इन कहानियों में जाओ तुम, शास्त्रीय ज्ञान की तरह नहीं, काव्य की तरह। जैसे कोई काव्य में प्रवेश करे, जैसे कोई साहित्य में प्रवेश करे। तो तुम्हें बड़े हीरे मिलेंगे। मगर अगर शास्त्र की तरह गए और धार्मिक की तरह गए और इनको मान कर गए कि ये कोई सत्य सिद्धांत हैं, तो तुम मुश्किल में पड़ जाओगे। ये उतने ही सत्य सिद्धांत हैं जितने उपन्यास, कहानियां। इनमें उनमें कुछ भेद नहीं।
एक मेरे मित्र हैं। शास्त्रों के ज्ञाता हैं; शास्त्र पढ़ते रहते हैं, निरंतर पढ़ते रहते हैं। उनको किसी ने बताया कि कृष्णमूर्ति जासूसी उपन्यास पढ़ते हैं। उनको बहुत धक्का लगा। कृष्णमूर्ति और जासूसी उपन्यास पढ़ें! वे मेरे पास आए भागे। उन्होंने कहा, कृष्णमूर्ति तो कहां हैं, पता नहीं, मगर आप यहां हैं, आप से मैं यह पूछना चाहता हूं, कृष्णमूर्ति जासूसी उपन्यास पढ़ते हैं? परम ज्ञानी को यह करना शोभा देता है?
मैंने कहा, तुम क्या समझते हो--तुम क्या पढ़ते हो? तुम पुराने ढंग के जासूसी उपन्यास पढ़ रहे हो, जिनको तुम पुराण कहते हो। वह जरा नये ढंग के पढ़ते हैं। वह आधुनिक हैं, बस और कुछ फर्क नहीं है। इससे धर्म-अधर्म का क्या संबंध है? और आधुनिक उपन्यास में तो थोड़ी वैज्ञानिकता भी होती है, जासूसी उपन्यास में भी थोड़ी वैज्ञानिकता होती है, लेकिन पुराने उपन्यास तो बिल्कुल अवैज्ञानिक हैं। मगर हैं वे पुराने उपन्यास। उपन्यास की तरह पढ़ो तो ठीक। तब फिर कोई झगड़ा खड़ा नहीं होता। तब हम प्रतीकों को समझने की कोशिश करते हैं और उनका आनंद लेते हैं। फिर न तुम हिंदू की तरह पढ़ते हो, न मुसलमान की तरह, न ईसाई की तरह। फिर ये कहानियां तुम्हें प्रीतिकर लगेंगी। फिर हनुमान और गणेश और ये सारे प्रतीक अर्थवान हो उठेंगे, इनके भीतर से काव्य के झरने फूटेंगे, इनके भीतर से तुम्हें अर्थ अनुभव में आएंगे।
मगर जड़ की तरह न पकड़ लेना, नगेंद्र! मगर इसी तरह तुमने पकड़ा होगा। तुमको बहुत चोट लगी होगी कि यह मैंने क्या किया, कि हनुमान जी का वाहन बता दिया! मगर मेरी बातों का, उस दिन की बातों का कोई ख्याल न लेना। सारा कसूर गुलाल का है। कहीं गुलाल मिलें, उनसे निपट लेना। उन्होंने फाग खेली, खूब होली मचाई। और मैं तो जब किसी पर बोलता हूं तो उसके साथ एकात्म हो जाता

हूं। सो मैं भी भूल गया कि अभी होली नहीं है। किसी को भी बुरा लगा हो तो माफ करना! ख्याल रखना होली है, बुरा न मानो!

चौथा प्रश्नः ओशो, मैं अकेला रहने में असमर्थ हूं। बहुत चाहता हूं पर सफलता नहीं मिलती। किसी न किसी संबंध में बंध जाता हूं और दुःखी होता हूं। इस उपद्रव से कभी छुटकारा होगा या नहीं?

राजकुमार! अकेला रहने में समर्थ होना चैतन्य की अंतिम अवस्था है। समाधि की अवस्था है। तुम्हारे चाहने से ही तुम अकेले नहीं रह सकोगे! साधना करनी होगी। तुम चाहो कि ताजमहल बना लूं, तुम्हारे चाहने से ही नहीं बन जाएगा। ताजमहल बनाना बड़ी कला की बात है। तुम चाहो कि तुम्हारी बगिया में बड़े-बड़े फूल खिलें, कमल खिलें, मगर तुम्हें बागवानी सीखनी होगी। यह चाहने से ही नहीं हो जाएगा। यह कोई कल्पना की ही बात नहीं है। और ताजमहल तो कुछ भी नहीं, कमल के फूल तो कुछ भी नहीं, वह जो भीतर कमल का फूल है, वह जो भीतर ताजमहल है, वह जो समाधि की अंतिम अवस्था है, उसके लिए गहन साधना से गुजरना होगा।
चाहता तो कौन नहीं है कि अकेला रहे। लेकिन सभी की यह दुविधा है। अकेले रहो तो अकेलापन खलता है और किसी के साथ रहो तो उसके साथ रहने में झंझट होती है। न साथ रह सकते, न अकेले रह सकते--यही तो मुसीबत है; प्रत्येक की, कोई तुम्हारी ही नहीं, सभी की। किसी भी पति से पूछो, किसी पत्नी से पूछो। पति दुखी है, क्योंकि पत्नी मायके गई है। और पति दुखी है, क्योंकि पत्नी मायके से लौट आई है। इसको कहते हैं सांप-छछूंदर की जैसी गति हो जाना। न इधर के न उधर के। न यह कर पाते न वह कर पाते। जो करते हैं, उसी में मुसीबत होती है। अगर अकेले रहते हैं तो अकेलापन अखरता है, काटता है, अब क्या करें! खाली- खाली सब, उदासी पकड़ती है। पत्नी को लिवा लाए मायके से, क्योंकि उसकी याद आने लगी अकेले में, और वह आई कि उपद्रव शुरू हुए! किझगड़ा-झांसा। कि हर चीज में दखलंदाजी। कि मन करने लगता है कि इससे तो अकेले ही अच्छे!
विवाहित लोग समझते हैं कि धन्यभागी हैं वे जो अविवाहित हैं; और अविवाहित समझते हैं कि वाह, मजा लूट रहे हैं वे जो विवाहित हैं! मगर दोनों को दूसरों का पता नहीं है एक-दूसरे का। दोनों दुःखी हैं। जो लोग संसार में रह रहे हैं वह समझ रहे हैं कि धन्य हैं वे लोग जो लोग हिमालय में चले गए हैं, गुफाओं में रह रहे हैं। जरा उनसे तो पूछो! वे बैठे-बैठे यही सोचा करते हैं कि हम कोई बुद्धूपन तो नहीं कर रहे हैं। संसार में लोग मजा ले रहे हैं। मजा ले रहे होंगे। छोटी-छोटी बात उनको वहां दिक्कत देगी। क्योंकि वहां उनके पास कुछ भी नहीं है, कोई भी नहीं है। अकेलापन काटेगा, घबड़ाएगा। अकेलेपन में वे शून्य होने लगेंगे, मौत-जैसी मालूम पड़ेगी, अंधेरा-अंधेरा दिखाई पड़ेगा। यहां व्यस्त तो रहते हैं, उलझे तो रहते हैं, काम में तो लगे रहते हैं। फुरसत किसे है अपने भीतर देखने की? फुरसत किसे है सोचने की? जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों को उठाने का समय कहां, अवसर कहां, अवकाश कहां? भागे-भागे, किसी तरह गिर पड़ते हैं बिस्तर पर। सुबह उठे, फिर भागे। मगर एक दिन अकेले रह जाओ, पड़े हो बिस्तर पर, अब क्या करना। उठ आओ, कुछ नहीं सूझता। छुट्टी के दिन मालूम है लोग क्या-क्या नहीं करते हैं? कुछ भी करने लगते हैं। ठीक घड़ी, उसको खोल कर बैठ जाते हैं, ठीक कर रहे हैं, और ठीक कर रहे हैं। बिगाड़ कर रख देंगे। ठीक चलती कार को खोल कर बैठ जाएंगे। छुट्टी के दिन करें क्या? कुछ न कुछ खटर-पटर करेंगे।
मैं वर्षो तक यात्रा करता था; तो मुझे टेन में अक्सर यह हालत हो जाती
थी कि डिब्बे में मैं हूं और एक दूसरा आदमी है और कोई भी नहीं। तो मैं दूसरे आदमी को देखता रहता बैठे-बैठे... और क्या करना! साक्षीभाव!! वह बातचीत भी करना चाहता तो मैं हां-हूं करके टाल जाता। बस, उतना ही उत्तर दे देता जितना जरूरी होता। बात आगे न बढ़ती। थोड़ी देर में वह समझ जाता कि यह आदमी बातचीत करने वाला है नहीं। यह करेगा नहीं बातचीत। और तब देखने लायक दशा होती। तो वह आदमी अपना सूटकेस खोलेगा--कोई काम नहीं है--सूटकेस खोलेगा, इधर-उधर उल्टाएगा, सामान जमाएगा, फिर बंद कर देगा। खिड़की खोलेगा, खिड़की

बंद करेगा। अखबार उठा कर पढ़ने लगेगा। वही अखबार वह कई दफा पढ़ चुका है सुबह से। फिर रख देगा। फिर घंटी बजाएगा, नौकर को बुलाएगा कि चाय ले आओ। खटर-पटर, कुछ न कुछ वह करेगा।
कभी-कभी ऐसा होता कि चौबीस घंटे साथ। आखिर में उसको यह भी समझ में आजाता है कि यह दूसरा आदमी चुपचाप देख रहा है। तो और उसे घबड़ाहट होती।
एक सज्जन तो मुझसे बोले कि आप न होते तो अच्छा था। आप पता नहीं क्या सोच रहे होंगे? मगर मैं भी क्या करूं? मैं बैठ नहीं सकता, कुछ न कुछ करूंगा। लंबी यात्रा थी, जयपुर तक मेरे साथ थे। छत्तीस घंटे की यात्रा थी। तो उन्होंने कहा कि सबसे ज्यादा परेशानी आपसे हो रही है। तो मैंने कहा, भइय्या, मैं आंख बंद करके लेटा जाता हूं, और क्या करूं? मैं आंख बंद करके लेट रहा। उससे उन्हें और परेशानी हुई कि मेरी वजह से इनको नाहक आंख बंद करके लेटा रहना पड़ रहा है। आखिर मुझे हिलाया, मैंने कहा, भाई, मुझे गड़बड़ न करो! तुम अपना सूटकेस खोलो, अखबार पढ़ो, तुम्हें जो करना है करो; खिड़की खोलो। और मुझे जब देखना होता है तो मैं थोड़ा सा आंख खोल कर देख लेता हूं, मेरी फिक्र न करो! और तुम कोई पश्चात्ताप न करो, तुम्हारे कारण मैं कोई दुःख में नहीं हूं। मैं पूरे आनंद में पड़ा हूं, मैं तुम्हारा आनंद ले रहा हूं।
उस आदमी ने डिब्बा ही बदल लिया। वह पड़ोस के डिब्बे में चला गया। उसने कहा कि यहां रहना ठीक नहीं। मैंने भी यूं ही छोड़ नहीं दिया। उन्हीं के पीछे गया। मैंने कहा कि जाना कहां है? अरे, जब संग-साथ है तो रहेगा छत्तीस घंटे।
वह बोलने लगे कि आप भी आदमी कैसे हो? मैंने डिब्बा इसीलिए बदला कि आपको तकलीफ हो रही है। मैंने कहा, मुझे तकलीफ नहीं हो रही है, मुझे बड़ा आनंद आरहा है। तमाशा मुफ्त में मिल रहा है देखने को। नहीं तो पैसा देना पड़ता। कि बंबई कि नंगी धोबिन देखो! उसके भी दो पैसे लगते हैं। और तुम क्या- क्या खेल कर रहे हो!
अकेले में तो तकलीफ होगी, राजकुमार! क्योंकि अकेला होना एक कला है, एक साधना है। सीखनी पड़ेगी। आहिस्ता-आहिस्ता आएगी। ध्यान से शुरू करो। जल्दी शिखरों पर पहुंच जाने की चेष्टा न करो। कदम-कदम चढ़ो। साक्षी-भाव साधो। थोड़ी देर शांत बैठो, मौन बैठो, अपने को ही देखो, अपने ही मन को देखो। और एक ही दिन में यह हो जाने वाला नहीं है। वर्षो लग जाएंगे। लगते-लगते यह बात लगेगी; जगते-जगते यह बात जगेगी। जिस दिन यह बात जग जाएगी उस दिन तुम अकेले रहने में परिपूर्ण आनंदित हो जाओगे। तब अकेलेपन का अर्थ ही बदल जाता है। तब अकेलेपन में दूसरे की कमी नहीं खलती, तब अकेलेपन में अपने होने का आनंद आने लगता है। अभी तुम्हारा अकेलापन नकारात्मक है, तब विधायक होगा। नकारात्मक अकेलेपन का अर्थ होता हैः दूसरे की मौजूदगी अखर रही है कि नहीं है, खाली जगह मालूम हो रही है। कोई होता तो बात करते, चीत करते। कोई नहीं है, यह बात कांटे की तरह चुभ रही है। यह नकारात्मक अकेलापन है।
विधायक अकेलापन हैः अपने होने का आनंद। कि कोई भी नहीं है, सारा आकाश अपने लिए मिला है।
कोई जगह नहीं घेर रहा है, सारा आकाश अपने को फैलने के लिए मिला है। डोलो, मस्त होओ, आनंदित होओ। किसी की मौजूदगी की कोई बाधा नहीं रही है। दूसरे की मौजूदगी थोड़ी बाधा तो डालती ही है। तुम्हारी स्वतंत्रता में दूसरे की मौजूदगी थोड़ी-सी तो अड़चन डालती ही है। तुमने देखा होगा, बाथरूम में तुम स्नान करते हो, आईने के सामने खड़े होकर कभी-कभी मुंह भी बिचका लेते हो, क्योंकि तुम्हें पता है कोई नहीं देख रहा। उतनी स्वतंत्रता तुम्हें अनुभव होती है बाथरूम में। लेकिन अगर तुम्हें पता चल जाए कि तुम्हारी पत्नी झांक रही है चाबी के छेद में से, ... । क्योंकि पत्नियां भी बड़ी गजब की हैं! वे कहां-कहां से झांकें, कुछ कहा नहीं जा सकता! वह ताली का छेद भी दिखता है उन्हीं के लिए बनाया गया है।... वह उसमें से देख रही है, तुम तत्काल सम्हल जाओगे। तुम हाईकोर्ट के जज और हनुमानजी जैसा मुंह बना रहे थे! कोई देखेगा तो क्या कहेगा! सम्हल गए।

अगर व्यक्ति को देखना हो उसकी असलियत में कि उसकी उम्र कितनी है, तो उसके बाथरूम में देखना चाहिए। तो उसकी उम्र का पता लगेगा--मानसिक उम्र का। एक आदमी ने मनोवैज्ञानिक को जाकर कहा कि अब बहुत हो गया, अब मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता। कुछ आपको करना ही पड़ेगा। मेरी पत्नी बस बाथरूम में बैठ जाती है और रबर की बतकों को टब में तैराती है। आपको रुकावट डालनी ही पड़ेगी, अब कुछ उपाय करना पड़ेगा!
मनोवैज्ञानिक ने कहा, इसमें कोई खतरा तो नहीं है, और तो कोई नुकसान नहीं करती किसी का?
नहीं, और तो कोई नुकसान नहीं करती। बतकें तैराती है। तैराती ही रहती
है घंटों, रबर की बतकें, बाथरूम में!
मनोवैज्ञानिक ने कहा, यह तो बिल्कुल निर्दोष है मामला। तैराने दो, तुम्हारा क्या बिगड़ता है!
नसरुद्दीन ने कहा, मेरा क्या बिगड़ता है! अरे, मुझे तैराने का वक्त ही नहीं मिलता! जब देखा तब वही तैरा रही है। हम भी तैराना चाहते हैं।
यहां तुमको जो बूढ़े भी दिखाई पड़ते हैं, वे भी बूढ़े नहीं हैं। ऊपर से बूढ़े होंगे, भीतर से बिल्कुल बचकाने हैं। और बच्चे हमेशा दूसरों पर निर्भर रहते हैं। बच्चा तो परनिर्भर होता है। इसलिए तुम्हारे अकेलेपन में घबड़ाहट होती है, कि अब कोई दूसरा नहीं है, क्या होगा? कोई भी साथ हो। यहां तक भी कि अगर अंधेरी गली में से तुम गुजर रहे हो तो खुद ही सीटी बजाने लगते हो। खुद की ही सीटी सुन कर थोड़ी हिम्मत बढ़ती है। अब जानते हो खुद ही सीटी बजा रहे हैं, इससे क्या होने वाला है, मगर खुद भी सीटी बजा कर ऐसा लगता है कि ठीक, अकेले नहीं हैं! सीटी सुन रहे हैं अपनी ही, तो भी कम से कम ऐसा लगता है कि कुछ हो रहा है, बिल्कुल अकेले नहीं हैं, घबड़ाने की कोई बात नहीं है। सीटी बजाने से छाती थोड़ी फूलती है, थोड़ी हिम्मत आती है। बिना सीटी बजाए जरा गुजरने की कोशिश करो और तुम घबड़ा जाओगे। कुछ फर्क नहीं पड़ रहा है, सीटी बजाने से कोई तुम्हार सुरक्षा नहीं हो रही है, लेकिन एक भ्रांति पैदा होती है; भूल जाते हो कि अकेला हूं।
अभी तुम अकेले से भुलाने की कोशिश में लगे हो। तुम्हारी पत्नी भी भुलाना है, सीटी बजाना है। तुम्हारा पति भी सीटी बजाना है, तुम्हारे बच्चे भी। पति-पत्नी साथ रहते-रहते जब ऊब गए हैं, तो बच्चे चाहिए। वह और नई सीटी बजाना सीख रहे हैं। कहते हैं, हो गई, यह सीटी बहुत बज चुकी। अब कब तक पीं- पीं-पीं-पीं-पीं करते रहें! कोई नई सीटी लाओ। तो बच्चे पैदा कर लो।
तो फिर बच्चे उलझाव खड़ा कर देते हैं। वह इतना उपद्रव मचाते हैं कि उनमें उलझे रहो; फिर सुविधा ही नहीं रह जाती; कहां का एकांत, कहां का अकेलापन, बात ही भूल गई। फिर इनसे बचने के लिए होटल में बैठे रहो देर तक। कि घर जाते डर लगता है कि वहां सब तैयार होंगे वे लोग। तो क्लब ज्वाइन कर लो। कि रोटरी क्लब में सम्मिलित हो जाओ। रोटेरियन बन जाओ। और कुल, रोटेरियन बनो कि लायन बनो, कुछ फर्क नहीं, मामला इतना ही है कि पत्नी से कैसे बचना, कि बच्चों से कैसे बचना! और ये सीटियां तुम्हीं ने बजाई हैं। कोई तुमसे कह नहीं रहा था कि बजाओ। मगर अब बजा लिया, फंस गए। अब इनको बंद कैसे करें? ये सीटियां ऐसी नहीं हैं कि बजा लीं और बंद कर दीं। एक दफा तुमने बजाई तो फिर ये बजती चली जाती हैं। ये सदियों तक बजेंगी। सीटियों में से सीटियां निकलती आएंगी। इनकी एक श्रृंखला है। तुम तो चले जाओगे! उल्लू मर गए औलाद छोड़ गए! तुम्हारी औलाद गजब करेगी। दुनिया को कभी चैन से न रहने देगी।
तुम्हारी व्यस्ताएं क्या हैं? सिर्प भुलाए रखना है अपने को किसी तरह। मगर अभी तुम चाहो कि एकदम से अकेला रह जाऊं, तो न रह पाओगे। अकेलापन काटेगा, घबड़ाएगा। आदत बन गई है संग-साथ की। चाहे दुष्ट-संग ही क्यों न हो, मगर फिर भी संग-साथ तो है। कोई न हो साथ, इससे दुष्ट भी साथ हो तो चलता है। कम-से-कम अकेले तो नहीं हैं!
तो पहली दफे जब तुम अकेले रहोगे तो नकारात्मक होगा अकेलापन, दूसरे की याद खलेगी। और दूसरे में अच्छे-अच्छे गुण दिखाई पड़ेंगे जो कभी भी नहीं थे। पास रहो तो दिखाई ही नहीं पड़ते। दूर जाओ तभी दिखाई पड़ते हैं। बुराइयां सब

भूल जाएंगी, अच्छाइयां याद आएंगी। कि अहह, कैसे-कैसे सुख दूसरे ने दिए थे। पास आते ही से सुख भूल जाएंगे और दुख याद आएंगे; कि ये बाई फिर चली आरही है! कि भैया फिर आ रहा है! यह देगा दुख!
एक विधायक अकेलापन है। वही ध्यान है। विधायक अकेलेपन की कला है। उस कला का नाम ही योग है।
धीरे-धीरे बैठो, चौबीस घंटे में एक घंटा बचा लो, एकदम से चौबीस घंटे अकेले होने की जरूरत नहीं, चौबीस घंटे में एक घंटा बचा लो, एक घंटे के लिए अकेले बैठ जाओ। टेलीफोन बंद कर दो, दरवाजा बंद कर दो, पत्नी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर लो कि एक घंटा मुझे दे दो--तेईस घंटे तेरे! बच्चों से हाथ जोड़ कर क्षमा मांग लो कि एक घंटा मुझे छोड़ दो, तेईस घंटा जो भी तुम्हें करना हो, जैसी घूंघर मूतनी हो, मूतना, मगर एक घंटा मुझे छोड़ दो! सबसे हाथ-पैर जोड़ कर एक घंटा बैठना शुरू करो। बैठे रहो, सिर्प शांत हो कर, अपनी श्वास को ही देखो, भीतर चलते विचारों को देखो; यह अकेलापन अखर रहा है, इसको भी देखो। धीरे-धीरे यह एक घंटे में विधायकता आ जाएगी। आहिस्ता-आहिस्ता तुम आनंदित होने लगोगे। तुम तेईस घंटे इसकी प्रतीक्षा करोगे कि कब वह घड़ी आए कि फिर एक घंटा शांति से बैठ जाएं।
फिर एक घंटे को दो घंटे कर लेना। फिर तीन घंटे कर लेना। फिर जितनी तुम्हारे पास सुविधा हो। और फिर धीरे-धीरे अलग से समय बांटने की कोई जरूरत नहीं। बाजार में भी रहना तो साक्षीभाव रखना। क्योंकि बाजार में भी हो तो तुम अकेले ही, भीड़ में भी हो तो तुम अकेले ही। यहां भी इतनी भीड़ है, मगर हर एक व्यक्ति अकेला बैठा हुआ है। कोई किसी एक-दूसरे के ऊपर थोड़े ही बैठा हुआ है। हरेक व्यक्ति अकेला है। पत्नी भी अकेली है, पति भी अकेला है, सब अकेले हैं। अकेले ही हम आते हैं, अकेले ही हम रहते हैं, अकेले ही हम जाते हैं, मगर बीच में हम भ्रांति खड़ी कर लेते हैं संग-साथ की।
धीरे-धीरे, राजकुमार, विधायक अकेलेपन को सीखो! आ जाएगा। अनेकों को आया है, कोई कारण नहीं तुम्हें क्यों न आए। यहां मेरे पास अनेकों को आरहा है। यहां रुको, कुछ देर यहां की मस्ती में डूबो, तल्लीन होओ। जिस दिन तुम्हारे जीवन में यह क्षण आजाए, जब तुम अकेले रह सको परम आनंदित, जानना अब तुम्हारा असली जन्म हुआ। तुम द्विज बने। तुम ब्राह्मण हुए। क्योंकि अब तुम्हारा ब्रह्म से संबंध हो सकता है। अकेला जो हो जाए, वही केवल ब्रह्म से संबंधित हो सकता है। एकांत में ही आता है, वह परमात्मा। जब तुम बिल्कुल शून्य होते हो, तभी वह आता है और तुम्हें भर देता है, सदा के लिए भर देता है।
झरत दसहुं दिस मोती!

आज इतना ही।

झरत दसहुं दिस मोती
इक्कीसवां प्रवचन

सतगुरु कृपा अगम भयो हो

सब्द सनेह लगावल हो, पावल गुरु रीती।
पुलकि-पुलकि मन भावल हो, ढहली भ्रम-भीती।।
सतगुरु कृपा अगम भयो हो, हिरदय बिसराम।
अब हम सब बिसरावल हो, निस्चय मन राम।।
छूटल जग ब्योहरवा हो, छूटल सब ठांव।
फिरब चलब सब थाकल हो, एकौ नहिं गांव।।
यहि संसार बेइलवत हो, भूलो मत कोइ।
माया बास न लागे हो, फिर अंत न रोइ।।
चेतहु क्यों नहिं जागहु हो, सोवहु दिनराति।
अवसर बीति जब जइहै हो, पाछे पछिताति।।
दिन दुइ रंग कुसुम है हो, जनि भूलो कोइ।
पढ़ि-पढ़ि सबहिं ठगावल हो, आपनि गति खोइ।।
सुर नर नाग ग्रसित भो हो, सकि रह्यो न कोइ।
जानि बूझि सब हारल हो, बड़ कठिन है सोइ।।
निस्चै जो जिय आवै हो, हरिनाम बिचार।
तब माया मन मानै हो, न तो वार न पार।।
संतन कहल पुकारी हो, जिन सूनल बानी।
सो जन जम तें बाचल हो, मन सारंगपानी।।

अवरि उपाव न एको हो, बहु धावत कूर।
आपुहि मोहत समरथ हो, नियरे का दूर।।
प्रेम नेम जब आवे हो, सब करम बहाव।
तब मनुवां मन माने हो, छोड़ो सब चाव।।
यह प्रताप जब होवे हो, सोइ संत सुजान।
बिनु हरिकृपा न पावे हो, मत अवर न आन।।
कह गुलाल यह निर्गुन हो, संतन मत ज्ञान।
जा यहि पदहि बिचारे हो, सोइ है भगवान।।

प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

अरमानों की एक निशा में
होती हैं कै घड़ियां,
आग दबा रक्खी है मैंने
जो छूटीं फुलझड़ियां,
मेरी सीमित भाग्यपरिधि को
और करो मत छोटी,
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

अधर-पुटों में बंद अभी तक
थी अधरों की वाणी,
"हां-ना" से मुखरित हो पाई
किसकी प्रणय-कहानी,
सिर्प भूमिका थी जो कुछ
संकोच-भरे पल बोले,

प्रिय, शेष बहुत है बात अभी मत जाओ; प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

शिथिल पड़ी है नभ की बाहों

में रजनी की काया,
चांद चांदनी की मदिरा में
है डूबा, भरमाया,
अलि अब तक भूले-भूले से
रस-भीनी गलियों में,
प्रिय, मौन खड़े जलजात अभी मत जाओ; प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।

रात बुझाएगी सच-सपने
की अनबूझ पहेली,
किसी तरह दिन बहलाता है
सबके प्राण, सहेली,
तारों के झंपने तक अपने
मन को दृढ़ कर लूंगा,
प्रिय, दूर बहुत है प्रात अभी मत जाओ;
प्रिय, शेष बहुत है रात अभी मत जाओ।
प्रार्थनाएं तो हमारी सब की यही हैं कि जीवन का अंत न हो। वासनाएं हमारी सब की यही हैं कि यह जीवन सदा बना रहे। यद्यपि इस जीवन में कुछ पाया भी नहीं, फिर भी सदा बना रहे, ऐसी अभीप्सा है। शायद इसीलिए ऐसी अभीसा है कि अभी तो कुछ पाया नहीं, अभी तो सुबह भी नहीं मिली, अभी तो जीवन में आनंद की एक किरण भी नहीं मिली और सब समाप्त हुआ जाता है। लेकिन सब समाप्त होगा ही। हमारी प्रार्थनाएं अनसुनी रहेंगी, हमारी वासनाएं दुष्पूर। हमारी कामनाएं हमारे भीतर ही जलेंगी, हमें ही दग्ध करेंगी और राख हो जाएंगी। सब साथ यहां छूटेंगे। रोओ लाख, प्रिय को जाना ही होगा। तुमको भी जाना होगा। रात कितनी ही शेष हो, प्रात कितनी ही दूर हो, बात कितनी ही बाकी हो। यहां जीवन क्षणभंगुर है। अभी है, अभी नहीं है। जीवन में सिर्प एक बात निश्चित है, वह मृत्यु है। और तो सब अनिश्चित है। इसलिए जिसमें थोड़ा भी बोध है, जिसमें थोड़ी भी समझ है, वह मृत्यु के संबंध में कुछ निर्णय लेगा। उन्हीं निर्णयों का नाम धर्म है।
अगर मृत्यु न होती, धर्म न होता। धर्म जीवन के कारण नहीं है। अगर जीवन
ही जीवन होता तो धर्म की बात ही न उठती। न मंदिर होते, न मस्जिद होती; न कुरान होते, न बाइबिल होती; न बुद्ध होते, न महावीर होते; न कबीर होते, न गुलाल होते। अगर जीवन ही जीवन होता, अगर सुख ही सुख होता, अगर फूल ही फूल होते, तो कौन सोचता, कौन विचारता? क्यों सोचता, क्यों विचारता? यह तो मृत्यु है जिसने प्रत्येक चीज पर प्रश्न-चिह्न लगा दिया है। और कब आजाए, पता नहीं! एक पल का भी भरोसा नहीं है। इसलिए जो बुद्धिहीन हैं, वे ऐसे जीते हैं जैसे मौत कभी न आएगी। और जो बुद्धिमान हैं, वे ऐसे जीते हैं जैसे मौत आ ही गई, अगले पल द्वार पर दस्तक देगी।
मृत्यु होने वाली है अगले पल, फिर तुम कैसे जिओगे! तुम्हारे जीवन में क्रांति हो जाएगी।
एकनाथ के पास एक व्यक्ति आता था। सत्संग को। कई बार आया, कई बार गया। एकनाथ ने एक दिन उससे पूछा कि मुझे ऐसा लगता है तू कुछ पूछना चाहता है, पूछ नहीं पाता। कोई लाज, कोई लज्जा, कोई संकोच तुझे रोक लेता है। आज तू पूछ ही ले। आज और कोई है भी नहीं, सुबह-सुबह तू जल्दी ही आगया है।
उस व्यक्ति ने कहा, आपने पहचाना तो ठीक, पूछना तो मैं चाहता हूं। एक छोटी सी बात, और संकोचवश नहीं पूछता हूं। वह बात यह है कि आप भी मनुष्य जैसे मनुष्य हैं, हमारे ही जैसे हड्डी-मांस-मज्जा के बने हैं, आपके जीवन में कभी पद की, प्रतिष्ठा की कामना नहीं उठती? आपके जीवन में कभी लोभ की, क्रोध की अग्नि नहीं भड़कती? आपके जीवन में कभी काम की, माया की वासनाएं नहीं उठतीं? यही पूछना है। आप इतने पवित्र मालूम होते हो, इतने निर्दोष; जैसे सुबह-सुबह खिला हुआ फूल ताजा होता है, ऐसे आप ताजे लगते हो; जैसे सुबह-सुबह सूरज की किरणों में चमकती ओस, ऐसे आप निर्दोष लगते हो; इसलिए पूछते डरता हूं, मगर यह भी संकोच तोड़ना ही पड़ेगा, पूछना ही पड़ेगा, बिना पूछे मैं न

रह सकूंगा, मेरी नींद हराम हो गई है। यह प्रश्न मेरे मन में गूंजता ही रहता है। यह भी शंका उठती है, संदेह उठता है कि हो सकता है यह सब निर्दोषता ऊपर-ऊपर हो और भीतर वही सब कूड़ा-करकट भरा हो जो मेरे भीतर भरा है।
एकनाथ ने उसकी बात सब सुनी और कहा कि प्रश्न तेरा सार्थक है। लेकिन इसके पहले कि मैं उत्तर दूं, एक और जरूरी बात बतानी है। कहीं ऐसा न हो कि उत्तर देने में वह जरूरी बात बताना भूल जाऊं। तू जब बात कर रहा था तो तेरे हाथ पर मेरी नजर गई, देखा तेरी उम्र की रेखा समाप्त हो गई है। सात दिन के भीतर तू मर जाएगा। अब तू पूछ।
वह आदमी उठ कर खड़ा हो गया। उसके पैर डगमगा गए। उसकी छाती धड़क गई। श्वासें रुक गई होंगी। एक क्षण को हृदय ने धड़कन बंद कर दी होगी। उसने कहाः मुझे कुछ पूछना नहीं, मुझे घर जाना है। एकनाथ ने कहाः अभी नहीं मरना है, सात दिन जिंदा रहना है, अभी बहुत देर है, सात दिन में घर पहुंच जाएगा, अपने प्रश्न को पूछा, उसका उत्तर तो ले जा!
उसने कहा, भाड़ में जाए प्रश्न और भाड़ में जाए उत्तर। मुझे न प्रश्न से मतलब है, न उत्तर से, तुम्हारी तुम जानो, मैं चला घर! जवान आदमी था। अभी जब मंदिर की सीढ़ियां चढ़ रहा था तो उसके पैरों में बल था, अब जब लौट रहा था तो दीवाल का सहारा लेकर उतरा। हाथ-पैर कंप रहे थे, आंखें धुंधली हो रही थीं। सात दिन! एकनाथ की बात पर संदेह भी नहीं किया जा सकता। यह आदमी कभी झूठ बोला नहीं। आज क्यों बोलेगा? बार-बार हाथ देखता था। भागा घर की तरफ। रास्ते में कौन मिला, किसने जयराम जी की, किसने नहीं की, कुछ समझ आया नहीं। धुआं-धुआं छाया था। सात दिन बाद मौत हो तो आही गई मौत। सात दिन में देर कितनी लगेगी! ये दिन आए और ये दिन गए!
घर पहुंच कर बिस्तर से लग गया। पत्नी-बच्चों ने पूछाः हुआ क्या? थोड़ी- बहुत देर छिपाया, फिर छिपा भी नहीं सका--ये बातें छिपाई जा सकतीं नहीं। बताना ही पड़ा। रोना-धोना शुरू हो गया। घर में चूल्हा न जला। सात दिन में उस आदमी की हालत ऐसी खराब हो गई कि हड्डी-हड्डी हो गया। आंखें धंस गयीं। और बार-बार एक ही बात पूछता था, कितना समय और बचा?
आखिरी दिन सूरज ढलने के समय एकनाथ द्वार पर आकर खड़े हुए। सारे परिवार
के लोग उनके चरणों में गिर पड़े, रोने लगे। एकनाथ ने कहाः मत रोओ, जरा मुझे भीतर आने दो। वह आदमी तो जैसे एकनाथ को पहचाना ही नहीं। जिंदगी भर से सत्संग करता था, मगर इस मौत ने सब अस्त-व्यस्त कर दिया। एकनाथ ने कहा, पहचाने कि नहीं? मैं हूं एकनाथ।
उस आदमी ने आंखें खोलीं और कहाः हां, कुछ-कुछ याद आती है। आप कैसे आए, किसलिए आए? एकनाथ ने कहाः यह पूछने आया हूं, सात दिन में पाप का कोई विचार उठा? काम-क्रोध, लोभ-मोह, सात दिन में कोई लपटें उठीं?
उस आदमी ने कहा, आप भी क्या मजाक करते हैं! मौत सामने खड़ी हो तो जगह कहां कि काम उठे, लोभ उठे, क्रोध उठे, मोह उठे? जिनसे झगड़ा था उनसे माफी मांग ली। जिन पर मुकदमे चला रहा था, उनसे क्षमा मांग ली। अब क्या शत्रुता! जब मौत ही आ गई, तो किससे शत्रुभाव! सात दिन में ख्याल ही नहीं आया कि पैसा जोड़ना है। सात दिन में वासना तो जगी ही नहीं। काम तो तिरोहित हो गया। ऐसा अंधकार छाया था चारों तरफ, मौत ऐसी भयभीत कर रही थी कि आप भी क्या सवाल पूछते हैं! यह कोई सवाल है!
एकनाथ ने कहाः उठ, अभी तुझे मरना नहीं है। वह तो मैंने तेरे सवाल का जवाब दिया था। ऐसी ही मुझे मौत दिखाई देती है--निश्चित, सुनिश्चित। सात दिन बाद नहीं तो सत्तर वर्ष बाद सही। पर सात दिन में, सत्तर वर्ष में फर्क क्या है? सात दिन गुजर जाएंगे, सत्तर वर्ष भी गुजर जाते हैं। तेरी मौत अभी आई नहीं। यह मैंने तेरे प्रश्न का उत्तर दिया। अब तू उठ!
लेकिन उस दिन से उस आदमी के जीवन में क्रांति हो गई। मौत तो नहीं आई, लेकिन एक आर्थ में वह आदमी मर गया, और एक अर्थ में नया जन्म हो गया। इस नये जन्म का नाम ही धर्म है। इस नये जन्म को मैं संन्यास कहता हूं।
सब कुछ वही था, बाहर वही रहेगा--यही पौधे होंगे, यही लोग होंगे, यही बाजार होगा, यही दुकान होगी, यही मकान होंगे, लेकिन भीतर कुछ क्रांति हो जाएगी, रूपांतरण हो जाएगा। और उस क्रांति का मूल आधार मृत्यु है।

जो बुद्धिहीन हैं, वे मृत्यु को देखते नहीं। आंख मूंदे रखते हैं। पीठ किए रहते हैं। जीवन के सबसे बड़े सत्य के प्रति पीठ किए रहते हैं। सुनिश्चित जो है, उसको झुठलाए रहते हैं। अपने मन को समझाए रहते हैं कि हमेशा कोई और मरता है, मैं नहीं मरूंगा; मेरी कहां मौत, अभी कहां मौत! अभी तो बहुत समय पड़ा है। अभी तो मैं जवान हूं। अपने को भुलाए रखते हैं, मरते- मरते दम तक भी भुलाए रखते हैं। जो बिस्तर पर पड़े हैं अस्पतालों में, मरने की घड़ियां गिन रहे हैं, वे भी अभी इस आशा में हैं कि बच जाएंगे। अभी उनकी कामनाओं का अंत नहीं, वासनाओं का अंत नहीं। अभी भी हिसाब-किताब बिठा रहे हैं कि अगर बच गए तो क्या करेंगे।
एक राजनेता अस्पताल में लाया गया। डाक्टरों ने उसकी परीक्षा की--बड़ा राजनेता था, बड़े डाक्टरों ने परीक्षा की, ठीक से परीक्षा की, सब बहुत घबड़ाए भी थे--उन्होंने कहा कि बड़ी देर हो गई, आपको पागल कुत्ते ने काटा है। और अब इंजेक्शन असर भी करेगा कि नहीं, कहना मुश्किल है। राजनेता ने कहा, जल्दी से कागज लाओ, कलम लाओ। डाक्टर ने कागज-कलम दिए और राजनेता एकदम से लिखने लगा। पूछा डाक्टर ने कि क्या आप वसीयत लिख रहे हैं? इतने भी न घबड़ाइए, ऐसे कोई मौत नहीं आ जाने वाली है, अभी जीएंगे आप, और हम पूरी चेष्टा करेंगे कि बच सकें। इतनी जल्दी वसीयत लिखने की कोई जरूरत नहीं। राजनेता ने कहाः वसीयत कौन लिख रहा है, मैं तो उन लोगों के नाम लिख रहा हूं कि जब मैं पागल हो जाऊंगा तो किन-किन को काटना है।
मरते दम तक राजनीति तो छूटती नहीं। लिख रहा होगा अपने दुश्मनों के नाम कि नंबर एक कौन, नंबर दो कौन, नंबर तीन कौन? बड़ी फेहरिश्त बना रहा था, कि इन-इन को मजा चखा दूंगा, इन-इन को काट लूंगा। मरते दम तक भी आदमी यही सोचे रखता है कि अभी कहां! टाले रखता है।
तुम टालो मत! अगर जागना हो तो मौत को टालो मत! मौत को देखो! मौत को देखना ही जागरण की विधि है। और जिसने मौत को देख लिया, उसके जीवन में क्रांति हुए बिना नहीं रह सकती।
गुलाल कहते हैं--
सब्द सनेह लगावल हो, पावल गुरु रीती।
पुलकि-पुलिक मन भावल हो, ढहली भ्रम-भीती।।
"शब्द" संतों ने दो अर्थो में प्रयोग किया है। "शब्द" का एक अर्थ तो है ओंकार ध्वनि। जब तुम परिपूर्ण शांत हो जाते हो, मौन हो जाते हो, जब सब वासनाएं, कामनाएं, इच्छाएं, आकांक्षाएं क्षीण हो जाती हैं, उस निःशब्द अवस्था में जो तुम्हारे भीतर नाद होता है, तुम्हारे भीतर जो आनंद संगीत फूट पड़ता है, तुम्हारे अंतर्तम में जो वीणा बज उठती है, उसको शब्द कहा है। यह शब्द जो हम बोलते हैं, इनको नहीं। उस अनाहत नाद को शब्द कहा है। क्योंकि वह परमात्मा की वाणी है हम जो बोलते है, वह तो हमारी बनावट है हमारे शब्द तो काम चलाउ है। इसीलिए दुनिया में तीन हजार भाषाएं हैं। नहीं तो एक ही भाषा होती। तब तुम गुलाब को गुलाब कहो कि "रोज" कहो, क्या फर्क पड़ता है। दुनिया में तीन हजार भाषाएं हैं तो गुलाब के तीन हजार नाम होंगे। और गुलाब गुलाब है। नाम सब कृत्रिम हैं। भाषाएं सब कृत्रिम हैं। हमारे शब्द तो कामचलाऊ हैं। जिंदगी की जरूरत है। बिना शब्दों के कैसे काम चलेगा? तो हमने तय कर लिया, समझौते कर लिए।
हर भाषा एक समझौता है। कुछ लोग मिल कर तय कर लेते हैं कि इस चीज को हम गुलाब कहेंगे। तो उस चीज को गुलाब कहते हैं। इससे काम चल जाता है। कहा कि "गुलाब" ले आओ, तो समझ में आ जाता है कि क्या लाना है। कहा कि गुलाब खिले हैं बगीचे में, तो समझ में आ जाता है कि किस तरफ इशारा किया जा रहा है। मगर गुलाब का क्या कोई नाम है? गुलाब का कोई विशेषण है? यह सब कृत्रिम है। यह मनुष्य की भाषाएं, इनके शब्द असली शब्द नहीं हैं। असली शब्द तो वह है जब मनुष्य की सारी भाषाएं छूट जाती हैं, जब तुम परम मौन में प्रविष्ट हो जाते हो, तब जो सुना जाता है; जो शब्द हम बोलते हैं, वह नहीं, जो शब्द हमारे अंतरतम में सुना जाता है, जो गूंज हमारे भीतर उठती है, जिसके हम वक्ता नहीं होते, वरन श्रोता होते हैं।

महावीर ने बड़ा प्यारा शब्द उपयोग किया है। महावीर ने कहा कि चार तीर्थ हैं जिनसे व्यक्ति इस पार से उस पार जाता है। पहला तीर्थ: श्रावक; दूसरा तीर्थः श्राविका। वह तो स्त्री-पुरुष की वजह से दो कहा, अन्यथा एक ही तीर्थ हुआ। श्रावक-श्राविका, एक तीर्थ; और साधु-साध्वी, दूसरा तीर्थ। साधु-साध्वियों ने यह समझाने की कोशिश की है सदियों में कि श्रावक-श्राविका नीचे हैं, साधु-साध्वी ऊपर हैं। यह बात बुनियादी रूप से गलत है। महावीर को समझो तो कुछ और ही राज खुलता है। श्रावक का अर्थ होता है: जिसने सुना। क्या सुना? अनाहत नाद। जिसने शब्द सुना। जिसने अपने भीतर वह गूंज सुनी। और उस गूंज को सुनकर मुक्त हो गया, उस पार हो गया; वही गूंज नाव बन गई, वही शब्द नाव बन गया।
जो सरल हैं, सीधे-सादे हैं, वे श्रावक रहकर ही उस पार पहुंच जाएंगे; सिर्प सुनकर ही वे पार हो जाएंगे। जिनके भीतर सहजता है और श्रद्धा है, उनके लिए सुनना ही काफी है। साधना उनको करनी पड़ेगी जिनके भीतर श्रद्धा नहीं है। साधना का मतलब है, मेहनत करनी पड़ेगी, श्रम करना पड़ेगा।
मेरे हिसाब से श्रावक का दर्जा ऊपर है साधक के दर्जे से। साधक का तो मतलब ही यह है कि सरलता से समझ में न आया, बहुत उलट-पुलट करनी पड़ी। सिर के बल खड़े हुए, आसन लगाए, तपश्चर्या की, व्रत किए, तब बामुश्किल सुन पाए। श्रावक का अर्थ है: सरलता से सुन लिया। जैसे किसी कक्षा में जो विद्यार्थी सहजता से शिक्षक को सुन कर समझ ले, उसको हम बुद्धिमान कहेंगे कि जो पहले शीर्षासन करे और आसन लगाए और डंड-बैठक मारे और फिर उसकी समझ में आए, उसको हम बुद्धिमान कहेंगे? जो सरलता से समझ ले। कहा और समझ ले। महावीर ने कहा है, कुछ हैं जो सिर्प सुन कर मुक्त हो जाते हैंः और कुछ हैं जो सिर्प सुनकर नहीं समझ पाते। उनके भीतर धुंध गहरी है, अंधेरा भारी है। चट्टानों की तरह उनका अहंकार है। उनको तोड़ना पड़ेगा चट्टानों को। उनको मेहनत करनी पड़ेगी, श्रम करना होगा। और बहुत श्रम के बाद वे मुक्त हो पाएंगे। मगर श्रावक शब्द बड़ा प्यारा है। कोई नहीं पूछता, जैन-शास्त्रों पर कितनी टीकाएं लिखी जाती हैं, कोई नहीं पूछता कि श्रावक से प्रयोजन क्या है? श्रवण किसका? जो तुम्हारे भीतर बोल रहा है। तुम्हारे भीतर एक अंतर-ध्वनि है, एक अंतर-नाद है। वहीं से वेद उपजे, वहीं से उपनिषद, वहीं से बाइबिल, वहीं से कुरान। वहीं खड़े होकर महावीर बोले, बुद्ध बोले, कबीर बोले, नानक बोले। मगर जो सुना और जो बोला, उसमें भेद पड़ जाता है। क्योंकि सुनते जो हैं, तब तो परमात्मा बोल रहा है। फिर जब सुने हुए को तुमसे बोलते हैं, तो फिर तुम्हारी कृत्रिम भाषा का उपयोग करना पड़ता है। और कृत्रिम भाषा में आते-आते सत्य करीब-करीब असत्य हो जाता है।
सब्द सनेह लगावल हो, ...
तो "शब्द" के दो अर्थ हो सकते हैं। दो अर्थ हैं। एक, वह जो भीतर सुना जाता है। उससे प्रीति लगाओ। उसे सुनो। उसे सुनने की विधि ध्यान है। ध्यान का अर्थ हैः जो कृत्रिम है, उसे हटा दो, ताकि सहज स्वाभाविक का स्फुरण हो सके। जो-जो तुमने सीखा है, उसे भुला दो, ताकि जो अनसीखा है वह प्रकट हो सके; उसका विस्फोट हो सके। तुम भरे हो शोरगुल से। कितने शब्दों की भीड़ है तुम्हारे भीतर! कैसा-कैसा कूड़ा-कचरा तुम संग्रह किए जाते हो! इस आशा में कि जैसे हीरे इकट्ठे कर रहे हो। अगर किसी के घर में कूड़ा-कचरा फेंक दो तो नाराज होगा। लेकिन किसी की खोपड़ी में फेंको, बिल्कुल प्रसन्न हैं। इसको लोग कहते हैंः वार्तालाप कर रहे हैं, सत्संग हो रहा है। सत्संग भी तुम कहां कर रहे हो, किनसे कर रहे हो? जिन्हें खुद भी पता नहीं है, जिन्होंने खुद भी सुना नहीं। जो उतने ही शाब्दिक जाल में उलझे हैं जितने तुम उलझे हो।
तो एक तो "शब्द" का अर्थ है: अंतर-नाद को सुनना। और दूसरा "शब्द" का अर्थ हैः जिसने उस अंतर्नाद को सुना है, उसके शब्द। उसके शब्दों के आस-पास लिपटा हुआ वह नाद भी थोड़ा-बहुत तुम तक पहुंच पाता है। थोड़ा-बहुत ही। जैसे कि कोई बगीचे से गुजरे और फूलों की गंध उसके कपड़ों में समा जाए। बगीचे से गुजर भी जाए तो भी फूलों की गंध उसके कपड़ों में समाई रहे। ऐसे ही जिसने अपने भीतर "शब्द" को सुना है, वह जब बोलता है, तो उसके शब्दों में भी उस परम

संगीत का कुछ न कुछ अटका आजाता है; कुछ न कुछ स्वाद, कुछ न कुछ सुगंध, कुछ न कुछ अस्पष्ट ध्वनि उसके शब्दों में आजाती है। सत्संग का इतना ही अर्थ है कि किन्हीं ऐसे व्यक्तियों के पास बैठना जिन्होंने अपने को जाना हो। वे अगर बोलेंगे, तो उनके बोलने में भी कुछ न कुछ तो खबर उस अज्ञात लोक की होगी। वे अगर चुप होंगे, तो उनकी चुप्पी में खबर होगी।
इसलिए "शब्द" के दो अर्थ हो सकते हैं। मूल अर्थ तो अपने भीतर के नाद को सुनना है। और दूसरा प्रकारांत से गौण अर्थः जिन्होंने उस अंतर-नाद को सुन लिया है, उनकी वाणी को हृदयंगम करना।
पंडित-पुरोहितों को सुनने से धर्म की यात्रा नहीं होती। पंडित-पुरोहित तो तुमसे भी गए-बीते हैं। क्योंकि पंडित-पुरोहित तो तुमसे भी कम सरल हैं, ज्यादा जटिल हैं।
मैंने सुना है, चंदूलाल की पत्नी गांव के सबसे बड़े पंडित के पास गई, क्योंकि सात दिन पहले चंदूलाल बाजार गए थे आलू खरीदने और लौटे नहीं। प्रतीक्षा की भी हद होती है। अब कौन पता दे? लोगों ने कहा कि पंडित जी के पास जाओ, ज्योतिषी भी हैं वे, शास्त्रों के ज्ञाता भी हैं, जरूर कुछ न कुछ राज वहां से हाथ लगेगा।
पत्नी ने जाकर पंडित जी को कहा कि मेरे पतिदेव चंदूलाल सात दिन पहले आलू खरीदने गए थे, अब तक लौटे नहीं हैं; अब बताइए मैं अबला क्या करूं? पंडित जी ने बहुत सोचा, आंखें बंद कीं, कुछ मंतर-जंतर पढ़ा, फिर बोले कि बहिनजी, अब जो हुआ सो हुआ! सात दिन हो गए और आलू नहीं आए, तो अब एक ही रास्ता है, घर में जो भी हो, दाल इत्यादि, बना लो।
अब और क्या करो?
तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम जैसे ही लोग हैं। जरा भी भेद नहीं है। शायद तुमसे थोड़ा ज्यादा तर्क कर सकते होंगे; शायद शास्त्रों के उद्धरण दे सकते होंगे; मगर मौलिक रूप से उन्होंने जाना नहीं है। इसलिए उनके सारे उद्धरण और उनके सारे शास्त्रों का ज्ञान और उनके सारे तर्क बहुत काम आने वाले नहीं हैं। उनकी बहुत उपादेयता नहीं है।
शब्द तो उनके तुम्हें जगाएंगे जिन्होंने जाना हो। जो कह सकते हों कि साक्षात्कार किया है। जो कह सकते हों कि परमात्मा हमारा अनुभव है। विश्वास नहीं, हमारी प्रतीति है। धारणा नहीं, हमारी अनुभूति है। और बड़ी हैरानी की बात है, जब भी कोई तुमसे कहता है कि परमात्मा मेरी अनुभूति है, तुम उससे नाराज होते हो। जो कहते हैं परमात्मा में हमारा विश्वास है, उनसे तुम नाराज नहीं होते। जीसस को सूली दी। जीसस का कसूर एक ही था कि जीसस ने कहा कि मैंने परमात्मा को जाना है--आमने-सामने जाना है। और सैकड़ों थे पंडित-पुरोहित इजरायल में जो शास्त्रों का उल्लेख कर रहे थे, मगर उनको लोगों ने सूली नहीं दी।
जीसस अपने गांव में सदगुरु होने के बाद सिर्प एक ही बार गए। और गांव
के लोगों ने उनसे कहा कि यह रही हमारी धर्म पुस्तक, इसमें से पढ़ कर किसी चीज का हमें अर्थ बताओ। तो जीसस ने जहां भी किताब खुल गई, खोल दी, उसमें से दो-चार पंक्तियां पढ़ीं और कहा कि जो भी इन पंक्तियों में कहा गया है वह सत्य है, क्योंकि मैं गवाह हूं, मैं साक्षी हूं, यही मेरा भी अनुभव है। कहते हैं, गांव के लोग इतने नाराज हो गए कि यह आदमी ऐसा दावा कर रहा है! हमारे ही बीच पैदा हुआ, यहीं हमने इसे अपने बाप की दुकान में लकड़ियां ढोते और फर्नीचर बनाते देखा--क्योंकि जीसस बढ़ई के बेटे थे--इसी गांव में हमने इसे सामान बेचते देखा, खरीदते देखा; यहीं यह बड़ा हुआ, इसी गांव की धूल में, और हमारे ही सामने आज कह रहा है कि मेरी साक्षी, यह मेरी गवाही कि ये शब्द सही हैं। गांव के लोग इतने नाराज हुए कि कहानी कहती है कि उन्होंने जीसस को खदेड़ा गांव के बाहर और ले गए एक पहाड़ की चोटी पर से पटकने के लिए कि इनको खतम ही कर दो!
और उसी शास्त्र पर रोज पंडित प्रवचन देते थे गांव में। लेकिन उनमें
से किसी ने भी यह नहीं कहा था कि यह मेरा अनुभव है। वे सब यही कहते थे, शास्त्र कहता है तो ठीक कहता होगा। शास्त्र में है तो सत्य ही है। मगर मेरा अनुभव है, ऐसा जिसने भी कहा, जब भी कहा, तभी हमने उसको परेशान किया।

क्या मामला है? उसका तो हमें सम्मान करना चाहिए। अगर परेशान भी करना हो तो उसको करना चाहिए जिसने अनुभव न किया हो और कहता है कि सत्य होना चाहिए। यह सत्य होना चाहिए, यह तुम कैसे कहोगे जब तक तुमने नहीं जाना?
लेकिन नहीं पंडित से हम राजी हैं। क्योंकि पंडित से हमारे अहंकार को कोई चोट नहीं पहुंचती। उसको भी पता नहीं, हमको भी पता नहीं दोनों अज्ञानी हैं, इसलिए तालमेल बैठ जाता है। लेकिन जब भी कोई कहता है मैं जानता हूं, तो हमारे अहंकार को चोट लगती है। हम उससे बदला लेने को आतुर हो जाते हैं कि इस आदमी की जुर्रत देखो, कि इस आदमी की हिम्मत देखो! हमने अब तक जाना नहीं और इसने जान लिया! हम यह न होने देंगे।
हमने महावीर के कानों में खीले ठोंक दिए और हमने बुद्ध पर पत्थर मारे
और बुद्ध के ऊपर पागल हाथी छोड़ा, चट्टानें सरकाईं।
कहानी कहती है कि जब बुद्ध पर पागल हाथी छोड़ा गया, तो पक्की आशा थी कि
वह मार डालेगा--उसने कई लोगों को मारा था। लेकिन पागल हाथी बुद्ध के सामने आकर ठहर गया, रुक गया। पागल हाथी ठिठक गया, किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। क्या हो गया पागल हाथी को? पागल हाथी जानता था दो ही तरह के लोग; जिनके पीछे भी दौड़ता था या तो वे भाले निकाल कर जूझ पड़ते थे और या खुद भाग खड़े होते थे। यह बुद्ध ने न तो भाला निकाला और न बुद्ध भागे। बैठे थे जैसी शांत मुद्रा में वैसे ही बैठे रहे। जैसे कमल का फूल खिला हो। हाथी की भी समझ में न आया इस आदमी के साथ क्या करना चाहिए! पागल हाथी में भी इतनी बुद्धि थी, मगर आदमियों में इतनी बुद्धि भी नहीं।
कहानी तो यह भी कहती है कि जब चट्टान बुद्ध के ऊपर सरकाई गई पहाड़ पर से, तो सब तरह से ज्यामिति का ख्याल रखा गया था, गणित का कि वह चट्टान ठीक बुद्ध के ऊपर गिरेगी और उनको खत्म कर देगी। लेकिन चट्टान भी कहते हैं कि बुद्ध के पास आते-आते संकोच से भर गई, थोड़ा सरक कर निकल गई, गणित का नियम तोड़ दिया।
चट्टानों में भी आदमी से ज्यादा बोध मालूम होता है।
ये कहानियां सच हों या न हों, क्योंकि मैं नहीं मानता कि पागल हाथी में इतना बोध होगा या चट्टान गणित का नियम तोड़ कर निकल जाएगी, मगर ये कहानियां सार्थक हैं। ये यह कहती हैं कि आदमी ने चट्टानों से भी बदतर व्यवहार किया; पागल हाथियों से भी ज्यादा पागलपन का व्यवहार किया। नहीं तो कैसे सुकरात को जहर दो, कैसे मंसूर को मारो, कैसे जीसस को सूली लगाओ? क्या कसूर था इनका? इन सबका कसूर एक ही था कि इन्होंने कहा कि हम गवाह हैं। इन्होंने कहा कि हम शास्त्र हैं। पंडित यह नहीं कहता। पंडित तुम्हारे शास्त्र के लिए तर्क देता है कि तुम्हारा शास्त्र ठीक होना चाहिए। और तर्क का कोई मूल्य है! पक्ष में भी दिए जा सकते हैं, विपक्ष में भी दिए जा सकते हैं। ख्याल रखना, तर्क तो वेश्या है। तर्क की कोई निष्ठा नहीं है। एक बार मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्रों के बीच बड़ी लंबी हांक रहा था
कि इस शहर का ऐसा कोई भी अस्पताल नहीं है जहां मैं कभी न गया होऊं। अरे, एक-एक अस्पताल छान डाला, कोई अस्पताल नहीं छोड़ा। जब चंदूलाल से न रहा गया, तो बोले कि मैं शर्त लगा सकता हूं कि इस शहर में एक अस्पताल है जहां तुम कभी नहीं गए हो। और यदि तुम सिद्ध कर दो कि तुम इस अस्पताल में जा चुके हो, तो ये रहे पचास रुपए।
मुल्ला ने पूछाः अच्छा बताओ मैं किस अस्पताल में नहीं गया? चंदूलाल बोले कि क्या इस शहर के जच्चा-बच्चा अस्पताल में कभी गए हो? नसरुद्दीन ने पचास रुपए उठाते हुए जेब में रखे और कहा कि अबे चंदूलाल, मैं तो वहां पैदा ही हुआ था।
तर्क तो कुछ भी दिया जा सकता है। तर्क का कोई भरोसा नहीं है। इसीलिए
तो आस्तिक-नास्तिक सदियों से विवाद करते रहे हैं, कुछ भी तय नहीं कर पाए। न आस्तिक जीते, न नास्तिक जीते। तर्क किसी को जिता नहीं सकता। क्योंकि तर्क की कोई जीवन में जड़ें ही नहीं होतीं। बौद्धिक खेल है, शतरंज का खेल है। खलील जिब्रान की बड़ी प्रसिद्ध कहानी है कि एक गांव में एक आस्तिक था
और एक नास्तिक। दोनों महापंडित। दोनों तर्ककुशल। महाविवादी। गांव परेशान था। क्योंकि आस्तिक समझाता गांव वालों को कि आस्तिकता ठीक है और नास्तिक

समझाता कि नास्तिकता ठीक है। आस्तिक समझाता कि ईश्वर है और लोगों की खोपड़ी खा जाता और नास्तिक आता पीछे से और खोपड़ी खाता, और कहता कि ईश्वर नहीं है। लोगों ने कहा, ईश्वर हो या न हो, हमें कुछ लेना-देना नहीं है, हम गरीबों के पीछे क्यों पड़े हो? तुम दोनों एक दिन विवाद कर लो और जो तय हो जाए! तुम्हारा झंझट खतम कर लो, ताकि हम शांति से जी सकें।
पूर्णिमा की एक रात सारा गांव इकट्ठा हुआ। आस्तिक, नास्तिक दोनों तैयार होकर विवाद में जूझ गए। भारी विवाद हुआ। लोग भी दंग रह गए। जब आस्तिक तर्क दे तो लोगों को ऐसा लगने लगे कि हां, ईश्वर है। और जब नास्तिक तर्क दे तो लोगों को लगने लगे कि नहीं, ईश्वर नहीं है। रात में कई दफा हवा बदली। रात में कई दफा मौसम बदला। कभी आस्तिकता की लहर चल गई, कभी नास्तिकता की लहर चल गई। और सुबह होते-होते एक बड़ा चमत्कार हुआ! और वह चमत्कार यह था कि आस्तिक को नास्तिक की बात जंच गई और नास्तिक को आस्तिक की जंच गई। गांव की मुसीबत वैसी की वैसी रही! गांव के लोगों ने सिर पीट लिया। उन्होंने कहाः कोई फायदा न हुआ, फिर वही उपद्रव! लेबिल बदल गया; नास्तिक आस्तिक हो गया, आस्तिक नास्तिक हो गया।
तर्क से कोई निष्पत्ति नहीं है। तार्किक सिर्प निष्पत्ति का भ्रम पैदा करता है। अनुभव में निष्पत्ति है। जिसने जाना हो, जिसने अनुभव किया हो, जिसने भीतर के संगीत को सुना हो, जिसकी हृदयतंत्री बज उठी हो, उसके शब्दों में कुछ गंध होती है। तर्क चाहे न हो, सुवास होती है। प्रमाण चाहे न हो, प्रतीति होती है। उसके शब्दों में कुछ एक अनूठापन ही होता है।
यह तुमने कभी ख्याल किया? कृष्ण ने गीता में अर्जुन से जो शब्द कहे थे, वही तो तुम भी गीता में पढ़ते हो, उन्हीं को तो पंडित दोहराए चले जाते हैं; सदियां हो गयीं, वे ही शब्द हैं; मगर जब कृष्ण ने कहे थे, तो उन शब्दों में कुछ था, और जब पंडित उन्हीं की व्याख्या करते हैं, तो उनमें कुछ भी नहीं होता। शब्द वही हैं। कृष्ण ने जब कहा था तो उनमें गंध थी, अनुभव की, और जब पंडित कहते हैं, तो थोथा शब्द होता है, कोरा शब्द होता है। चली हुई कारतूस जैसा। लगती कारतूस जैसी ही है, मगर चली हुई --मुर्दा। जैसे लाश पड़ी हो। देखने में तो ऐसा लगता है कि ठीक जैसा आदमी जिंदा था वैसा ही। लाश पड़ी हो तो ऐसा लगता है जैसे जिंदा आदमी सोया हुआ है, लेकिन लाश सिर्प दिखाई पड़ती है जिंदा आदमी जैसी, जिंदा नहीं है। न तो अब सांस चलती है, न अब आंख खुलती है, न अब उठेगा, न अब बैठेगा, न अब बोलेगा।
शास्त्र करीब-करीब ऐसे ही हैं। मुर्दा सत्य हैं। जब बोले गए थे, जब किसी व्यक्ति के अंतर्तम से उठ रहे थे, तब उनमें प्राण था, तब उनकी श्वास चलती थी, हृदय धड़कता था, तब उनके भीतर एक आत्मा थी। जब कृष्ण ने अर्जुन से बोला होगा तब बात कुछ और ही रही होगी। फूल अभी पौधे पर लगा था, अभी उसमें रसधार बहती थी। फिर तुम फूल को तोड़ लो, किताब में दबा कर रख दो। हजार साल बाद खोलोगे तो मिलेगी फूल की लाश।
वही हुआ है। गीता में भी लाश है, कुरान में भी, बाइबिल में भी, धम्मपद में भी।
तुम इन लाशों को जिंदा कर सकते हो, अगर तुम भी अनुभव को उपलब्ध हो जाओ,
तो तुम भी साक्षी बन सकते हो। तो जैसे जीसस ने कहा था कि मैं साक्षी हूं कि यह जो शास्त्र लिखा है, ठीक लिखा है, जिस दिन तुम भी कह सको यह कि मैं साक्षी हूं कि यह जो लिखा है लिखा है, उसके पहले तो विश्वास है। विश्वास तो थोथे हैं, ऊपर-ऊपर हैं। लाख करो विश्वास, कुछ सार नहीं होगा।
सभी तो विश्वास कर रहे हैं। कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई जैन है, कोई बौद्ध है, कोई सिक्ख है, सभी तो विश्वासी हैं, लेकिन इनके श्वास से इस पृथ्वी पर कहां धर्म की सुरभि, कहां धर्म का सूर्य, कहां धर्म का प्रकाश? सब तरफ गहन अंधेरा है। और हरेक आदमी का प्रकाश पर विश्वास मगर प्रकाश पर विश्वास कितना ही हो तो भी प्रकाश के ऊपर विश्वास से दीए नहीं जलते। दीए जलाओ तो प्रकाश होगा। विश्वास काफी नहीं है, अनुभव चाहिए। "शब्द" के दो अर्थ। एक तो तुम अपने भीतर जाओगे और सुनोगे। और दूसरा, उस शब्द को जब तुम किसी को कहोगे। जब तुम सुनोगे तब तो पूर्ण होगा। जब कहोगे तब अपूर्ण हो जाएगा। लेकिन फिर भी कुछ न कुछ खबर लाएगा। फिर तीसरी घटना है,

उस शब्द को लिख लिया जाएगा। शास्त्र बनेंगे। सदियों तक उस पर व्याख्या होगी जिनको कुछ पता नहीं है वे व्याख्या करेंगे। झूठ पर झूठ की पर्ते बैठती जाएंगी।
गीता की एक हजार व्याख्याएं हैं। कृष्ण के एक हजार अर्थ तो नहीं हो सकते। कृष्ण कोई विक्षिप्त थे? जो कहा, उसका एक ही अर्थ है। एक हजार टीकाएं कैसे हो गयीं? और एक हजार टीकाएं तो मैं कह रहा हूं वे जो बहुत प्रसिद्ध हैं। अगर अप्रसिद्ध टीकाएं भी जोड़ी जाएं, तो कई हजार होंगी। और अप्रकाशित टीकाएं भी जोड़ ली जाएं तो लाखों में संख्या पहुंच जाएगी।
क्या हुआ?
लोगों ने अपने-अपने अर्थ निकाल लिए। जिसने जो अर्थ निकालना चाहा, निकाल लिया। तुम शब्द के साथ खिलवाड़ कर सकते हो। शब्द का ठीक-ठीक अर्थ तो सत्संग में ही खुलता है। अगर तुमने अपनी बुद्धि को शब्द पर लगाने की चेष्टा की, तो तुम जो भी अर्थ पाओगे वह तुम्हारी बुद्धि का होगा। तुम चूक जाओगे, वास्तविक अर्थ से चूक जाओगे।
इसलिए अगर कृष्ण को समझना हो, तो किसी जीवित कृष्ण के पास बैठना पड़ेगा। और कोई उपाय न कभी रहा है, और न कोई उपाय कभी हो सकता है। और मजा ऐसा है कि अगर तुम जीवित किसी सदगुरु के पास बैठ सको तो तुम कृष्ण को ही नहीं समझोगे, क्राइस्ट को भी समझ जाओगे। और महावीर को ही नहीं समझोगे, मोहम्मद को भी समझ जाओगे। क्योंकि बात तो एक ही है। कहने का ढंग अलग-अलग है। जो देखा है इन सबने, वह तो एक ही है; जो अनुभव किया है, वह तो एक ही है, जो बोला है, वह भिन्न-भिन्न है। समय-समय के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति भिन्न है, भाषा भिन्न है।
सब्द सनेह लगावल हो, पावल गुरु रीती।
अगर शब्द से तुम्हारा स्नेह लग जाए तो तुम गुरु की रीति पा जाओ। पुलकि-पुलकि मन भावल हो, ढहली भ्रम-भीती।।
गुरु की रीति से क्या अर्थ है? सत्संग से अर्थ है। सारे गुरुओं की एक
ही रीति रही है कि गुरु और शिष्य के बीच हृदय का नाता हो जाए। बुद्धि का नहीं, विचार का नहीं, भाव-भाव में सेतु बन जाए, गुरु और शिष्य के बीच प्रीति बन जाए, प्रेम बन जाए, प्रेम सगाई हो जाए--सबसे ऊपर प्रेम सगाई--वह गुरु की रीति है। मगर यह होगा कैसे? यह एक ही तरह से हो सकता है कि किसी का शब्द सुन कर तुम्हारे भीतर की वीणा संकृत होने लगे। किसी के पास बैठ कर तुम्हारे भीतर जो सोया पड़ा है, वह जागने लगे। तुम्हारे भीतर जो बीज है, वह अंकुरित हो जाए। तुम्हारे भीतर कुछ होने लगे, जो कभी नहीं हुआ था। सन्नाटा आजाए, शून्य उतर आए। जीवन के रहस्य की तुम्हें झलक मिले। जीवन का काव्य, जीवन का सौंदर्य तुम्हें आंदोलित करे।
पुलकि पुलकि मन भावल हो, ...
तब तो नाच उठोगे। मन भावन से भर जाएगा। मन भावाविष्ट हो जाएगा।
--ढ़हली भ्रम भीती।।
और उसी क्षण लाख उपाय करने से जो भ्रमों की दीवाल खड़ी थी, नहीं गिरती थी, गिर जाएगी। तुम्हारे उपाय करने से भ्रम-भीति गिर नहीं सकती। गुरु-रीती से गिरती है। तुम्हारे उपाय करने से तो इसलिए नहीं गिर सकती कि तुम्हारे उपाय करने में ही यह बात तुमने स्वीकार कर ली कि भ्रम की भीति है, वस्तुतः है। जैसे समझो कि रात के अंधेरे में तुमने एक रस्सी पड़ी देखी और समझा कि सांप है; और किसी ने तुमसे कहा कि भइया, सांप नहीं है, रस्सी है, मैंने दिन के उजाले में देखी है। तो तुमने कहा, ठीक है, तो मैं जाता हूं--और चले तुम तलवार लेकर! तो वह तुमसे पूछेगा कि तलवार किसलिए ले जाते हो? तुम कहते हो, उस भ्रामक सांप का अंत करूंगा। मगर तुम्हारी तलवार बता रही है कि तुम अब भी सांप को सच्चा मानते हो। अगर भ्रम मानते होते, तो तलवार ले जाने की क्या जरूरत थी? या कि तुम लालटेन लेकर चले। तुम कहते हो, ताकि वह भ्रामक सांप मुझे काट न खाए। अगर वह भ्रामक है तो काटेगा कैसे? यह लालटेन किसलिए ले जाते हो? लालटेन सबूत है कि तुम अभी भी मानते हो कि सांप सच्चा है, हालांकि कहने लगे कि भ्रामक है।

कितने लोग नहीं इस दुनिया में कह रहे हैं, कम से कम इस देश में तो हर एक आदमी कह रहा हैः संसार माया। और फिर यह भी पूछता है कि माया को छोड़ें कैसे? अब यह बड़े मजे की बात है। एक आदमी कहता है कि मेरी जेब में कुछ भी नहीं है, खाली, और फिर पूछता है, जेब खाली कैसे करूं? कहावत तुमने सुनी न, नंगा नहाए निचोड़े क्या? निचोड़ने को कुछ है ही नहीं। मगर फिर भी चिंता पकड़ती है कि निचोड़ूं कैसे? कहां निचोड़ू? कपड़े कहां सुखाऊं? हैं बिल्कुल दिगंबर मुनि, कुछ है नहीं, न निचोड़ना है, न कपड़े सुखाने हैं, मगर चिंताएं पकड़ी हुई हैं, इस डर से नहाते नहीं हैं।
दिगंबर मुनि नहाते भी नहीं--शायद इसी डर से न नहाते हों, कौन जाने! दिगंबर मुनियों को नहाने का नियम नहीं है। नहाएं वे जिनके पास कपड़े हैं। कपड़े ही नहीं हैं तो नहाना क्या! दिगंबर मुनि को तो और भी नहाना चाहिए।
क्योंकि धूल-धवांस सब शरीर पर ही जमती होगी। कपड़े होते तो कपड़ों पर जमती, कपड़े धोबी के यहां चले जाते। जैन मुनि को तो कभी-कभी धोबी के यहां जाना चाहिए। मगर जैन मुनि नहाते नहीं।
गंदगी को भी अध्यात्म समझा जाता है।
जैन मुनि दतौन नहीं करते। क्योंकि यह सब साज-शृंगार... दतौन इत्यादि साज-शृंगार! जीवन की आवश्यकताएं, जरूरतें, स्नान भी साज-शृंगार है! इसलिए जैन मुनि स्नान नहीं करता, दतौन नहीं करता कि कहीं साज-शृंगार न हो जाए। अरे, जब तक इस घर में रहना है, कम से कम कुछ साफ-सफाई तो करो, साज-शृंगार का सवाल ही कहां है! दांत साफ करने में कोईशृंगार हो रहा है? और दांतों पर गंदगी की पर्त जमती जाएगी, उससे कुछ अध्यात्म हो जाएगा? शरीर से बदबू आने लगेगी, इससे कुछ अध्यात्म हो जाएगा? मगर नहीं, इसको अध्यात्म समझा जाता है।
पश्चिम का एक बहुत बड़ा विचारक काउंट कैसरलिंग जब भारत से वापस लौटा
तो उसने अपनी डायरी में लिखा कि भारत में जाकर मुझे यह समझ में आया कि बीमार होना, गंदा होना, अपने को सताना, सब तरह से उदास होना, यह आध्यात्मिक होने के लक्षण हैं।
मजाक में ही लिखा है उसने, व्यंग्य में ही लिखा है। और बात भी ठीक है! जिस घर में रह रहे हो, घर ही सही, मत उससे तादात्म्य करो, मगर नहाओ-धोओ, दतौन करो, घर की थोड़ी सफाई तो करो!
स्वच्छता में अध्यात्म हो सकता है, गंदगी में नहीं हो सकता। लेकिन गंदगी की हम पूजा करते हैं। और अगर कोई बिल्कुल ही गंदा हो तो उसको परमहंस कहते हैं। जैसे कि पास में ही पाखाना पड़ा हो और वहीं बैठ कर वह भोजन कर रहा हो तो हम कहते हैं, देखो परमहंस। जिस थाली में भोजन कर रहा हो, उसी में कुत्ते भी भोजन कर रहे हों तो हम कहते हैं कि देखो, यह परमहंस। हमने कैसी मूढ़तापूर्ण धारणाएं बना ली हैं! और तब इसका परिणाम क्या हुआ है? इसका परिणाम यह हुआ कि जिनको परमहंस होना है उनको ये काम करने पड़ते हैं। और ये काम सरल हैं, ऐसे कोई बहुत कठिन नहीं है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी से उसकी पड़ोसिन पूछ रही थी कि मुझे तो बड़ी दिक्कत होती है सुबह अपने पति को जगाने में, उठते ही नहीं। मगर तुम्हारे पति को तुम कैसे जगा देती हो, बिल्कुल सूरज ऊगने के पहले ही?
नसरुद्दीन की पत्नी ने कहाः मेरी एक तरकीब है। मैं जाकर बिल्ली उनके ऊपर फेंक देती हूं। पड़ोसिन ने पूछाः लेकिन बिल्ली फेंकने से कैसे कोई उठ आएगा?
उसने कहाः उनको उठना ही पड़ता है, क्योंकि वे कुत्ते के साथ सोते हैं।
अब इनको परमहंस कहो!
अब कुत्ते के साथ सोओगे और बिल्ली फेंक दे कोई ऊपर, तो कुत्ते-बिल्ली में जो युद्ध छिड़ेगा--धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे! --उसमें उठना ही पड़ेगा, करोगे क्या अब? भागना पड़ेगा बिस्तर छोड़कर। मगर ये परमहंस के लक्षण हैं। कुत्तों के साथ सोने वाले बहुत लोग हैं पश्चिम में तो बहुत लोग हैं। आदमी आदमी के बीच तो नाते बिगड़ गए हैं, तो आदमी कुत्तों से दोस्ती करते हैं। कुत्तों से दोस्ती एक लिहाज से अच्छी है, कोई झगड़ा नहीं, झंझट नहीं! कम से कम कुत्ता घर जाओ तो यह तो नहीं पूछता कि कहां से आरहे, कि इत्ती देर

कहां रहे, सच-सच बोलो! कुछ नहीं पूछता बेचारा! कुत्ता कहीं से भी आओ, पूंछ हिलाता है। स्वागत है!
मुल्ला नसरुद्दीन ले गया था अपने कुत्ते को डाक्टर के यहां। कहा, इसकी पूंछ काट दो। उस डाक्टर ने कहाः तुम पागल हो गए हो? सुंदर कुत्ता है, इसकी पूंछ क्यों काटते हो? काट दो पूंछ। मेरी सास आने वाली है। और मैं नहीं चाहता कि घर में किसी तरह का स्वागत का आयोजन हो। और यह मूरख पूंछ हिलाएगा।
सब्द सनेह लगावल हो, पावल गुरु रीती।
पुलकि-पुलकि मन भावल हो, ढहली भ्रम-भीती।।
यह जो भ्रमपूर्ण संसार है, इसको तुम चेष्टा से नहीं छोड़ सकते।
क्योंकि चेष्टा में तुमने मान ही लिया कि यह सत्य है। यह तो सदगुरु के सत्संग में एक दिन दिखाई पड़ जाता है कि भ्रम है; बात खत्म हो गई! भीति ढह गई!
सतगुरु कृपा अगम भयो हो, हिरदय बिसराम।
यह तो उसकी कृपा से हो जाता है, यह तो उसकी अनुकंपा से हो जाता है।
बुद्ध ने कहा है कि जिसके भीतर भी ध्यान फलित होता है, उसके चारों तरफ अनुकंपा की वर्षा होती है। जिसके भीतर ध्यान का दीया जलता है, उसके चारों तरफ करुणा की किरणें फैलती हैं।
सतगुरु कृपा अगम भयो हो, ...
जो नहीं होना था, वह हो गया। जो नहीं होता था, वह हो गया। जिसकी कभी कल्पना न की थी, वह हो गया। अकल्पनीय हुआ है, अगम्य हुआ है। अपनी बुद्धि के बाहर है, वह हुआ है। अपूर्व घटना घटी है, हृदय में विश्राम आगया है। सब दौड़-धाप गई। सब आपाधापी मिटी।
अब हम सब बिसरावल हो, निस्चय मन राम।।
सब विस्मृत हो गया है! अब तो बस राम में ही ठहर गए हैं!
मन की दो स्थितियां हैंः काम और राम। काम का अर्थ हैः भाग-दौड़। यह मिल जाए, वह मिल जाए। और मिल जाए। कितना ही मिले, "और" समाप्त नहीं होता। काम का अर्थ हैः विक्षिप्तता। और राम का अर्थ हैः काम समाप्त हो गया। भ्रम-भीति ढह गई। कुछ पाने की दौड़ न रही। जो है, वही जरूरत से ज्यादा है। जो है, उसके लिए ही परमात्मा का धन्यवाद है, अनुग्रह है। तो विश्राम आता है।
संत का लक्षण गंदगी नहीं है। संत का लक्षण विश्राम है। उसकी विश्राम
की स्थिति। कोई भाग-दौड़ नहीं। कहीं उसे आना नहीं, कहीं उसे जाना नहीं। कुछ उसे होना नहीं, कुछ उसे पाना नहीं--मोक्ष भी नहीं पाना--वह जैसा है, जहां है, परितृप्त है। जरा ध्यान करना इस बात काः जैसा है, जहां है, जो है, परिपूर्ण तृप्त है। वह जो तृप्ति है, वह जो विश्राम है, वही धीरे-धीरे शिष्य में भी प्रवेश करने लगता है। क्योंकि तुम जिसके साथ रहोगे, वैसे हो जाओगे।
छूटल जग ब्योहरवा हो, छूटल सब ठांव।
जगत के व्यवहार छूट गए--बिना छोड़े; यही गुरु-रीति। जगत के व्यवहार छूट
गए बिना छोड़े। छोड़ना पड़े तो कुछ न कुछ अटका रह जाता है। तुम जिस चीज को छोड़ोगे, उससे बंधे रहोगे। किसी आदमी ने धन छोड़ दिया और भाग गया जंगल, वह धन ही धन की सोचेगा। क्योंकि जिसको छोड़ कर आया है, उसकी याद आएगी। छोड़ा ही क्यों? भयभीत था, डरता था। इसी से भागा। सिर्प डरने वाले लोग ही भागते हैं। भय से ही भगोड़ापन पैदा होता है।
और जिससे तुम भयभीत हो, उससे तुम मुक्त नहीं हो सकते।
जिसने स्त्री को छोड़ दिया, वह जहां भी रहेगा, स्त्री का विचार ही उसके दिमाग में घूमेगा। असल में और ज्यादा घूमेगा। स्त्री के साथ रहे, तो शायद स्त्री का इतना विचार न आए, सच तो यह है कि स्त्री के साथ रहने से स्त्री- त्याग का विचार आता है। कि हे प्रभु, बचाओ! स्त्री को विचार आते हैं कि कैसे छुटकारा हो! लेकिन स्त्री को छोड़ कर जंगल चले गए, तो बहुत याद आएगी। तब तुमको समझ में आएगा कि स्त्री क्या-क्या नहीं कर रही थी तुम्हारे लिए! घर में थे तो याद ही नहीं आता था। घर में तो यही दिखता था कि सिवाय उपद्रव के वह कुछ नहीं करती। यह तो पता चलेगा गुफा में बैठ कर कि वह क्या-क्या

करती थी? अब जलाओ चूल्हा! और लकड़ी नहीं जलती, आंखों से आंसू बह रहे हैं। तब याद आएगी। तब लगेगा यह क्या झंझट कर ली! तब स्त्री के सदगुण दिखाई पड़ने शुरू होंगे कि बेचारी जैसी भी थी भली थी। कम से कम ये काम तो हमें नहीं करने पड़ते थे। अब अपनी गुफा साफ कर रहे हैं, रोज बुहारी मार रहे हैं; बर्तन मल रहे हैं; भजन-कीर्तन का समय ही कहां बचता है! पानी भर कर लाओ--दूर, गंगाजल! घर में थे, सब सुविधा थी। उतनी सुविधा में भी राम को स्मरण न कर सके, इस असुविधा में कर पाओगे! तुम क्या सोचते हो असुविधा में कोई परमात्मा को धन्यवाद दे सकता है? सुविधा में नहीं दे पाए, असुविधा में क्या खाक दोगे!
स्त्री को पता नहीं कि पति उसके लिए क्या कर रहा है! वह तो छोड़ दे तब पता चलता है। सुबह से सांझ तक मेहनत कर रहा था--उसके लिए ही, बच्चों के लिए, मगर कभी उसने उसे धन्यवाद नहीं दिया। जब देखो तब उसकी गर्दन के पीछे पड़ी थी।
स्त्री के पास रहोगे तो शायद स्त्री को छोड़ने का विचार बार-बार मन में आए। ऐसा आदमी खोजना मुश्किल है जिसके मन में यह विचार न आता हो। ऐसी स्त्री खोजनी मुश्किल है जो न सोचती हो कि कुंआरे ही रहते तो अच्छे थे! लेकिन दूर हट जाओगे तो याद आएगी। बहुत याद आएगी। तुम्हारे साधु-संन्यासी इसीलिए परेशान रहते हैं। और वे बेचारे जो अपने शास्त्रों में लिखते हैं स्त्री नरक का द्वार है, वे स्त्री के संबंध में कुछ नहीं लिख रहे हैं, वे अपनी मनोदशा बता रहे हैं। वे बता रहे हैं कि हमें राम-वाम का तो कुछ पता ही नहीं चलता, बस स्त्री ही स्त्री दिखाई पड़ती है; यही है नरक का द्वार! यह पीछा ही नहीं छोड़ रही है। किस स्त्री को पड़ी है? कौन उनके पीछे पड़ा है? उनकी ही भावना। क्योंकि कच्चा छोड़ भागे।
जीवन में दो तरह से क्रांति हो सकती है। एक तो कच्ची। तुम भाग जाओ छोड़ कर। अभी रस तो लगा था, मगर भाग गए। और एक पक्की क्रांति। रस ही चला गया! भ्रम है, यह दिखाई पड़ गया। उस दर्शन से जो क्रांति होती है, उसमें फिर जरा भी पीछे की तरफ लौटने का कोई कारण नहीं रह जाता। पीछे लौट कर कोई देखता ही नहीं।
छूटल जग ब्योहरवा हो, छूटल सब ठांव।
सब भाग-दौड़ छूट गई, जगत के सब व्यवहार छूट गए, जगत के सब झूठ छूट गए। यहां तो सब व्यवहार है। हम जो भी बातें कर रहे हैं एक-दूसरे से, सब व्यवहार है। पति पत्नी से कह रहा है कि मैं तुझे प्रेम करता हूं, तेरे बिना एक दिन न जी सकूंगा--भीतर कुछ और ही सोच रहा है। भीतर यह सोच रहा है कि किस तरह इस बाई से छुटकारा हो! कि हे प्रभु, कहां की झंझट में डाल दिया! किन जन्मों के कर्मफल भोग रहा हूं! ऊपर से कह रहा है तेरे बिना एक क्षण न जी सकूंगा और भीतर सोच रहा है कि तेरे साथ एक क्षण कैसे जियूं, यह मुश्किल हो रहा है। एक बार मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी ने घरेलू बचत के लिए मुल्ला के सामने एक बिल्कुल नई योजना रखी। उसने मुल्ला से कहा कि यदि तुम्हें मेरा चुंबन लेना हो तो पहले इस डिब्बे में पांच रुपये डालो, फिर चुंबन लो। यदि तुम्हें मुझे आलिंगन में बांधना हो, तो पहले दस रुपये इस डिब्बे में डालो फिर मेरा आलिंगन करो। इस तरह अलग-अलग प्रेम के ढंगों के लिए कितने-कितने रुपये डिब्बे में डालने होंगे, यह तय हो गया जब एक महीना बीता और मुल्ला ने बचत का डिब्बा खोला तो वह तो आश्चर्यचकित रह गया! रुपये उसके अनुमान से बहुत ज्यादा थे। उसने पूछा कि बात क्या है, इतने रुपये कैसे?
पत्नी आंखें मटकाते हुए बोलीः अरे, सब तुम्हारी तरह कंजूस थोड़े ही हैं!
यहां बातें ऊपर कुछ-कुछ, भीतर कुछ-कुछ चल रहा है। यहां सब तरह के धोखे
चल रहे हैं। तुम धोखे देते हो, तो तुम यह मत सोचना कि तुम्हीं धोखे दे रहे हो, दूसरे भी धोखे दे रहे हैं। इस जगत के सारे व्यवहार धोखे के हैं, एक-दूसरे के शोषण के हैं।
मुल्ला एक दिन घर आया। संदेह हुआ उसे, बिस्तर अस्त-व्यस्त मालूम हुआ, पत्नी भी कुछ भयभीत सी लगी। तभी उसके बच्चे ने आकर कहा कि पापा, आलमारी में एक आदमी छिपा है। सो उसने आलमारी खोली। आदमी था वहां। कहाः भाई, यहां क्या

कर रहे? उसने कहा कि मैं बिजली सुधारने आया था। उसने कहा, अब सुधारो बिजली और जाओ! तभी उसने सोचा कि और दूसरी आलमारी है बगल में, उसको भी देख लें। उसको भी खोला, उसमें एक दूसरा आदमी छिपा था। भैया, तुम यहां क्या कर रहे? उसने कहाः मैं नल ठीक करने आया था। ठीक है, नल ठीक करो और जाओ! तभी बंद कमरे की हवा को थोड़ी सी स्वच्छता देने के लिए उसने खिड़की खोली, एक आदमी खिड़की पर बैठा हुआ था। भैया, तुम क्या कर रहे? उस आदमी ने कहा कि जब तुमने उन दोनों की मान ली, तो अब मेरी भी मान लो, मैं बस की राह देख रहा हूं। पांचवीं मंजिल पर, खिड़की पर बैठे हुए, बस की राह देख रहे हैं! लेकिन जब उन दो की तुमने मान ली, तो अब तुमसे क्या छिपाना--उस आदमी ने कहा।
बस मान कर चल रहा है सब हिसाब। तुम भी मान रहे हो, दूसरे भी मान रहे हैं। तुम भी जान रहे हो, दूसरे भी जान रहे हैं। खेल में खेल हैं। भ्रमों के भीतर भ्रम पल रहे हैं। धोखे के भीतर धोखे हैं। भीतर सब जानते हैं कि किस-किस तरह धोखे चल रहे हैं। क्योंकि मन धोखे ही कर सकता है। मन जानता ही नहीं श्रद्धा करना। मन जानता ही नहीं प्रीति करना। मन तो बेईमान है। मन तो कपटी है। मन तो चालबाज है। मन तो पाखंडी है। मन तो धोखे की व्यवस्था है। इसलिए मन से जो भी संबंध-नाते हैं, वे सब दिखावे के। ऊपर कुछ, भीतर कुछ।
छूटल जग ब्योहखा हो, छूटल सब ठांव।
गुलाल कहते हैं कि सब जगत का व्यवहार छूट गया--मन ही गया तो जगत का व्यवहार गया! और जहां-जहां सोचते थे अपना घर है, जहां-जहां सोचते थे अपना ठांव है, वे सब ठांव भी समाप्त हो गए। अब सब सराय हैं। रात भर ठहरो, सुबह उठो और चल पड़ो!
फिरब चलब सब थाकल हो, एकौ नहिं गांव।।
सब तरफ थक कर देख लिया, चल कर, फिर कर, एक भी अपना गांव नहीं यहां। यहां अपना गांव ही नहीं है। गांव तो कहीं पार है। गांव तो मन के कहीं अतीत है। न तो गांव हमारा शरीर में है, न गांव हमारा मन में है, गांव तो हमारा चैतन्य में है। वहीं विश्राम है। वहां जो पहुंचा, वही वस्तुतः जीआ, उसने ही वस्तुतः जाना।
यहि संसार बेइलवत हो, भूलो मत कोइ।
बेइलवत एक बेल है, लता, जो फैलती बहुत है, जिसमें फूल भी लगते हैं, लेकिन तुरंत मुर्झा जाते हैं।
यहि संसार बेइलवत हो, भूलो मत कोइ।
यह संसार उसी लता जैसा है। इसमें फूल तो लगते हैं, लेकिन तत्क्षण मुर्झा जाते हैं। लग भी नहीं पाते और मुर्झा जाते हैं। भूलो मत कोई!
माया बास न लागे हो, फिर अंत न रोइ।।
अगर इस संसार का भुलावा तुम्हें न पकड़े, अगर तुम जागे रहो, तो अंत समय रोना न पड़ेगा। अंत समय लोग रोते हैं मृत्यु के कारण नहीं, मृत्यु के लिए नहीं, वह जो जीवन व्यर्थ गया, उसके कारण रोते हैं। जिनका जीवन सार्थक रहा, वे तो हंसते हुए मृत्यु में प्रवेश करते हैं, वे तो नाचते हुए मृत्यु में प्रवेश करते हैं।
चेतहु क्यों नहिं जागहु हो, ...
चेतो! जागो!
... सोवहु दिनराति।
दिन-रात सोए हुए हो! आंखें खुली हैं तब भी सोए हुए हो, आंखें बंद हैं तब
भी सोए हुए हो। नींद बड़ी गहरी है। किस चीज को नींद कह रहे हैं? यह जो तुम्हारी दशा है, यह नींद की दशा है। अभी तुम्हें यह भी पता नहीं मैं कौन हूं--और नींद इससे ज्यादा गहरी क्या होगी? तुम्हें यह भी पता नहीं कहां से आए, कहां जा रहे, क्या है जीवन का गंतव्य। लगे हैं आपाधापी में, दौड़धाप में, फुरसत कहां कि सोचें कि मैं कौन हूं। फुरसत कहां कि सोचें कि कहां से आना हुआ, कहां जा रहे हैं। अगर साधारणतः कोई आदमी चौराहे पर तुम्हें मिले और तुम उससे पूछो कि भाई, तुम कौन हो और वह कहे, मुझे मालूम नहीं, तो तुम समझोगे पागल है। तुम उससे पूछो, कहां से आरहे हो, वह कहे, मालूम नहीं। तुम पूछो, कहां जा रहे हो, वह कहे, मालूम नहीं। तो तुम उससे पूछोगे कि फिर जा ही क्यों रहे हो? इतनी आपा-धापी क्यों मचा रखी है? तो वह कहे और क्या करूं?

अरे, कहीं तो जाऊं! और लोग बड़ी तेजी से जा रहे हैं। उनकी चाल देखो तो ऐसा लगता है गंतव्य का उन्हें पता है। धक्कम-धुक्की कर रहे हैं। उन्हें दिखाई कुछ भी नहीं पड़ रहा है।
एक आदमी एक बस में सवार हुआ। बस लबालब भरी है। कहीं कोई जगह नहीं है।
वह एक कोने में खड़ा हो गया। एक स्त्री उसकी बगल में है, सीट पर बैठी हुई है। थोड़ी देर में उस आदमी ने अपनी एक आंख निकाली--नकली आंख--उसको ऐसा ऊपर फेंका, झेल कर व पिस लगा ली। स्त्री तो घबड़ा गई, कि यह आदमी क्या कर रहा है! वह टकटकी लगा कर उसको देखती रही कि यह, यह तो हरकती आदमी दिखता है, अजीब आदमी है, पागल है या क्या है! फिर दस-पंद्रह मिनट बाद उसने आंख निकाली और जब उसने फिर उसे फेंका ऊपर और हाथ में झेला और फिर लगा लिया अपनी आंख में तो उस स्त्री से न रहा गया, उसने चिल्ला कर कहा--चीख मार दी एकदम--कि क्या कर रहे हो यह? तो उसने कहा, क्या कर रहा हूं! अरे, आगे की तरफ देख रहा हूं आंख फेंक कर कि कोई जगह खाली तो नहीं है।
पत्थर की आंख से तुम आगे देख रहे हो कि कोई जगह तो खाली नहीं है! तुम जरा अपनी तरफ तो देखो, तुम्हें कुछ दिखाई पड़ रहा है आगे! आगे की तो छोड़ो, तुम्हें कहीं दिखाई भी पड़ रहा है! यहां भी, सामने भी! असली आंखें भी असली नहीं मालूम होतीं। पत्थर की आंखें तो पत्थर की हैं ही, असली भी हमने पत्थर की कर ली हैं। जब तक हमारी आंखें हृदय से न जुड़ें, उन्हें कुछ नहीं दिखाई पड़ता, अंधी ही रहती हैं। हृदय से जुड़ कर ही जागरण शुरू होता है।
चेतहु क्यों नहि जागहु हो, सोवहु दिनराति।
कब तक सोए रहोगे!
जो अतीत तम में जीता है, नव प्रभात वह क्या जाने!
नैना होते जो देखे ना, भोर-प्रात वह क्या जाने!!
कल कल में पल पल खोता है
आज जिसे कल सा होता है
कल की शान कहे न अघाए
आज इसी में खो रोता है
समझे आज, आज न जो भी, कल की बात वह क्या जाने! जीवन है पल पल का नर्तन
बीज सदृश अंकुर परिवर्तन
आगत हेतु भेंट गत होता
क्षण क्षण बदल रहा है जीवन
इस क्षण को जो जान सके ना, शाश्वत को वह क्या जाने! बहती नदिया सा जीवन है
नहीं जनम है नहीं मरन है
छूट रहे यदि कूल-किनारे
तो आगे मधु आलिंगन है
अभी यहीं जो है देखे ना, प्रभु मिलन वह क्या जाने!
जो अतीत तम में जीता है, नव प्रभात वह क्या जाने!!
अतीत हमें घेरे हुए है। स्मृतियां। और भविष्य हमें घेरे हुए है। कल्पनाएं। और इन दोनों के बीच हमारा वर्तमान दबा जा रहा है, मरा जा रहा है। और जाग सकते हैं तो वर्तमान में। अतीत तो जा चुका, उसमें अब जागोगे भी तो कैसे जागोगे! है ही नहीं। भविष्य अभी आया नहीं; उसमें कैसे जागोगे जो अभी आया ही नहीं है! जो है, यह क्षण, अभी और यहीं, इस क्षण में ही जागना हो सकता है। इसलिए चित्त को जो अतीत स्मृतियों से मुक्त कर ले और भविष्य की कल्पनाओं से, वह जाग जाता है।
ध्यान की सारी प्रक्रिया अतीत और भविष्य से मुक्त होने की विधि है। मगर हम जीते हैं ना-कुछ में, जो नहीं है। अतीत, उसमें हम खूब जीते हैं। लोग बैठे सोचते रहते हैं अतीत की। और भविष्य कल क्या होगा! और इन दोनों में उलझे रहते है, पास से बीता जा रहा है वर्तमान। वर्तमान ही सिर्फ परमात्मा का है--अतीत और भविष्य दोनों मन के हैं। वर्तमान ही आत्मा का है। परमात्मा एक ही समय को जानता है, वर्तमान, और तुम्हें वर्तमान का कोई पता ही नहीं है--तुम दो समय जानते हो अतीत और भविष्य। इसलिए तुम्हारा और परमात्मा का

कहीं मिलन नहीं होता। इसलिए तुम लाख पूछो कि परमात्मा से कैसे मिलें, कहां मिलें, काशी जाएं कि काबा, कि कैलाश, कि गिरनार, जाओ जहां जाना हो, कहीं नहीं पहुंचोगे, तुम जहां हो वहीं रहोगे। हां, अगर वर्तमान में आजाओ, तो परमात्मा को तुम्हें खोजने जाने की जरूरत नहीं है, परमात्मा तुम्हें खोजता आजाएगा।
एक स्कूल में शिक्षक ने बच्चों से कहा था कि कोई सुंदर तस्वीर बनाओ।
और सब ने तस्वीरें बनायीं। किसी ने घोड़ा बनाया, किसी ने कुछ बनाया, किसी ने कुछ, किसी ने हाथी, किसी ने ऊंट, एक बच्चे की तस्वीर बड़ी अदभुत थी, कोरा कागज। उससे पूछा शिक्षक ने कि तस्वीर कहां है? उसने कहा, यही तो है। मैदान में घास चरती एक गाय का चित्र मैंने बनाया है। शिक्षक ने कहा, घास कहां है? लड़के ने कहा, घास गाय चर गई; तो अब घास कहां! तो शिक्षक ने पूछाः भाई, फिर गाय कहां है? उसने कहाः अब गाय यहां क्या करे? घास चर गई और चली गई! तुम्हारी जिंदगी भी ऐसी ही है। घास जो कभी थी, जो कब की तुम चर गए! गाय
जो कभी थी और कब की चली गई। या घास जो कभी ऊगेगी, या गाय जो कभी आएगी। और अभी? अभी कोरा कैनवास है। मगर यह कोरा कैनवास ही अस्तित्व का वास्तविक स्वरूप है। अगर तुम वर्तान में उतर जाओ, तो वहां न कोई विचार है, न कोई वासना है। वहां सिर्प शांति, परम शांति है, शून्य है। उसी शून्य में पूर्ण का साक्षात्कार है। इसको ही जागना कहो, चेतना कहो, होश कहो, अप्रमाद कहो, ध्यान कहो, सुरति कहो, स्मरण कहो, जो तुम्हें कहना हो, मगर यही सारे संतों का सार है।
अवसर बीति जब जइहै हो, पाछे पछिताति।।
फिर पीछे मत पछताना। पीछे बहुत पछताना होगा।
दिन दुइ रंग कुसुम है हो, जनि भूलो कोइ।
यह दिन तो बीते जा रहे हैं। यह दिन जो है फूल जैसा है; सुबह खिलता है, सांझ मुरझा जाता है। यह दो रंग का है। दिन को प्रकाश, रात को अंधेरा, ये इसके दो रंग हैं। मगर यह फूल, अब गया तब गया।
पढ़ि-पढ़ि सबहिं ठगावल हो, आपनि गति खोइ।।
और पढ़-पढ़ कर लोग बड़े ठगा रहे हैं। लोग सोचते हैं कि पढ़ लेंगे शास्त्र
तो मिल जाएगा सत्य। काश, इतना आसान होता। काश, इतना सस्ता होता। तो तो फिर धर्म भी हम वैसे ही पढ़ा देते हैं जैसे विश्वविद्यालयों में गणित और भूगोल पढ़ाते हैं। फिर कोई अड़चन न होती। मगर धर्म को पढ़ाया ही नहीं जा सकता।
पढ़ि-पढ़ि सबहिं ठगावल हो, ...
सब ठगे गए हैं पढ़-पढ़ कर।
... आपनि गति खोइ।।
अपनी गति खो रहे हैं। उलझे जा रहे हैं शब्दों के, सिद्धांतों के, शास्त्रों के चक्कर में। उनका बोझ बढ़ता जाता है। बहुत सी बातें जानते मालूम पड़ते हैं और जानते कुछ भी नहीं। अज्ञान छिप जाता है, मिटता नहीं। ज्ञान की बकवास आजाती है। तोतों की तरह लोग दोहराने लगते हैं। अब तोते को तुम जो सिखा दो वही दोहराने लगता है। ऐसे ही कोई तोता हिंदू हो जाता है, कोई तोता मुसलमान हो जाता है, कोई तोता ईसाई हो जाता है। अब तोते को बाइबिल सिखा दो तो ईसाई हो गए। और तोते को गायत्री सिखा दो तो हिंदू हो गए। और नमोंकार मंत्र सिखा दो तो जैन हो गए। और तोता तोता ही है। न जैन, न हिंदू, न मुसलमान। क्या तोते को लेना-देना है!
हमारी स्मृति भी बस तोते की तरह यंत्र है। ऐसे पढ़ने से कुछ भी न होगा।
यह पढ़ने-लिखने की बात ही नहीं है। कबीर कहते हैंः पढ़ा-पढ़ी की है नहीं लिखा- लिखी की है नहीं, देखा-देखी बात।" यह बात दर्शन की है, देखने की है, अनुभव की है।
सुर नर नाग ग्रसित भो हो, सकि रह्यो न कोइ।
आदमी तो आदमी, देवता भी उलझे हैं व्यर्थ की बकवासों में, व्यर्थ के विवादों में। जिनको अज्ञानी कहो वे भी उलझे हैं और जिनको तुम तथाकथित ज्ञानी समझते हो, वे भी उलझे हैं। बड़े विवाद चल रहे हैं। मुनि हैं, महात्मा हैं, योगी हैं, बड़े विवादों में लगे हुए हैं।
जानि बूझि सब हारल हो, ...

और यह सब जान-बूझ कर हो रहा है। क्योंकि सबको पता है कि सत्य अनुभव की बात है। और बड़ी कठिन बात हो जाती है जब कोई जान-बूझ कर ऐसा करता है। जैसे कोई जागा हुआ पड़ा हो और सोने का बहाना करे। उसको जगाना मुश्किल हो जाता है।
जानि बूझि सब हारल हो, बड़ कठिन है सोइ।।
बड़ी कठिनाई इससे पैदा हो गई है कि सबको पता है, फिर भी झुठला रहे हैं। जागे हुए पड़े हैं और सोने का बहाना कर रहे हैं। इनको उठाना मुश्किल है।
अलार्म बजता रहेगा, ये नहीं उठेंगे। तुम पुकारते रहो, ये नहीं उठेंगे। तुम चिल्लाओ, तो भी नहीं उठेंगे। ये तो तय ही किए हुए हैं कि उठना नहीं है, क्योंकि ये जागे ही हुए हैं। सोया हुआ आदमी हो तो अलार्म बजेगा तो उठना ही पड़ेगा।
इस दुनिया में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि स्वरूपतः हम सभी को पता है कि सत्य क्या है, लेकिन जान-बूझ कर झुठला रहे हैं, जान-बूझ कर भ्रमों में पड़ रहे हैं। क्यों हम भ्रम में पड़ना चाहते हैं जान-बूझ कर? एक ही कारण है सिर्प, सिर्प एक कारण, और वह तुम्हारी समझ में आजाए तो क्रांति घट जाए। वह कारण यह है कि सत्य होगा तो "मैं" नहीं बचेगा, अहंकार नहीं बचेगा। अहंकार बच सकता है असत्य के साथ, भ्रम के साथ। और तुम अपने को नहीं खोना चाहते। तुम चाहते हो, मैं रहूं, मैं सदा रहूं। इसलिए झूठों में अपने को घेरे हुए हो। झूठ से पोषण मिलता है "मैं" को। सत्य तो मृत्यु है "मैं" की। जिस दिन तुमने सत्य देखा, उसी दिन "मैं" की मृत्यु हो गई। बचोगे तुम, लेकिन "मैं" की तरह नहीं, चैतन्य की तरह। उस चैतन्य का कोई विशेषण नहीं होगा। वहां कुछ मेरा-तेरा नहीं होगा। और हमारा सारा खेल मेरे-तेरे का है। हम तो ऐसे उलझे हैं मेरे-तेरे के खेल में कि जिसका हिसाब नहीं!
दो आदमियों पर अदालत में मुकदमा था। मजिस्ट्रेट ने पूछा कि भई, बताओ
भी तो, झगड़ा किसलिए हुआ? मार-पीट किसलिए हुई? सिर कैसे खुल गए, लहू कैसे बह गया? और तुम दोनों पुराने दोस्त हो! तो वे दोनों एक-दूसरे से कहें कि भइया, तू बता दे! मजिस्टेट ने कहा, बताते क्यों नहीं, कोई भी शुरू करो!
उन्होंने कहाः अब बताएं क्या आपको, बताने को कुछ हो तो बताएं। जो सजा आपको देना हो दे दो, मगर हमारी बेइज्जती और न करवाओ। अदालत में भीड़ लगी थी, पूरा गांव इकट्ठा हुआ था। मगर मजिस्टेट ने कहाः सजा कैसे दे दें, पहले मुझे पता होना चाहिए झगड़ा किस कारण हुआ। बामुश्किल एक राजी हुआ, उसने कहा कि झगड़ा ऐसा हुआ कि हम दोनों नदी की रेत में बैठे हुए थे, गपशप कर रहे थे कि इसने कहा कि मैं एक भैंस खरीद रहा हूं। मैंने कहा कि भैया, तू देख, भैंस मत खरीद! क्योंकि में एक खेत खरीद रहा हूं। अपनी पुरानी दोस्ती है, किसी दिन तेरी भैंस हमारे खेत में घुस गई, झगड़ा हो जाएगा, नाहक झगड़ा हो जाएगा। और मैंने खेत खरीदना पक्का ही कर लिया है, बयाना भी दे दिया है। इसने कहा कि बयाना मैं भी दे चुका। भैंस तो खरीदी जाएगी! तो मैंने इससे कहा, फिर ख्याल रख, भूल कर भी तेरी भैंस मेरे खेत में नहीं घुसनी चाहिए। तो यह बोला कि भैंस तो भैंस, कोई दिन भर हम उसके पीछे थोड़े ही घूमते रहेंगे! और भी तो काम हैं दुनिया में। और भैंस हैं, कभी घुस भी जाए तो घुस सकती है। तो मैंने कहाः अगर भैंस खेत में घुसी तो ठीक नहीं होगा। तो यह बोला, क्या कर लेगा? मैंने कहाः घुसा कर दिखा भैंस! सो बात इतनी बढ़ गई कि मैंने वहां रेत पर अंगुली से खींच कर अपना खेत बना दिया कि यह रहा मेरा खेत, और इस दुष्ट ने अपनी अंगुली से भैंस घुसा दी। बस, मारा-पीटी हो गई। इसलिए हम संकोच भी कर रहे हैं कि अब कहना क्या! न खेत है, न भैंस है, मगर हमारे सिर खुल गए!
ऐसी ही हालत है। जिन खेलों में तुम उलझे हो, न खेत है, न भैंस है, मगर सिर खुले जा रहे हैं। लड़े-झगड़े जा रहे हो। कितना उपद्रव मचा हुआ है! सदियों से मचा हुआ है! बढ़ता ही जाता है। सघन होता जाता है। आदमी आदमी से लड़ रहा है, जातियां जातियों से लड़ रही हैं, राष्ट राष्टरें से लड़ रहे हैं। किसलिए? कोई एक बार सोचे तो! सारे झगड़े के पीछे अहंकार है--मेरा खेत! और तेरी क्या हैसियत कि भैंस घुसा दे! और उसने कहा कि मेरी भैंस! तू है कौन, तेरा खेत है क्या! अरे, भैंस घुसेगी, यह रही भैंस, यह घुस गई भैंस! वह दो "मैं" में टक्कर हो गई। जहां "मैं" है, वहां हिंसा है। और यह "मैं" बिना हिंसा के नहीं जीता,

बिना भ्रम के नहीं जीता। इसका भोजन ही माया है। इसलिए हम जानते हुए भी कि सब व्यर्थ है, सब असार है, ... क्या तुम्हें पता नहीं कि सब व्यर्थ है, सब असार है? क्या तुम्हें पता नहीं कि कल मर जाओगे तो सब पड़ा रह जाएगा? खेत भी और भैंस भी। सब पता है! ठीक कहते हैं गुलाल--
जानि बूझि सब हारल हो, बड़ कठिन है सोइ।।
निस्चै जो जिय आवै हो, हरिनाम बिचार।।
अगर इतना तुम्हें समझ में आजाए कि जान-बूझ कर भूल कर रहे हो, इतना निश्चय आजाए, तो फिर इस जगत में सिर्प एक चीज है पाने योग्य, वह: हरिनाम।
विचारने योग्य एक, पाने योग्य एक, जीने योग्य एकः हरिनाम। मगर हरिनाम के लिए जो बलिदान चढ़ाना पड़ता है, वह है "मैं" का, अहंकार का।
तब माया मन मानै हो, न तो वार न पार।।
जिस दिन अहंकार चढ़ जाएगा, उसी दिन पार मिल जाएगा। नहीं तो न वार है, न पार है। तब तो यह चलता ही रहता है जन्मों-जन्मों तक। यह अंधकार, यह सपना बढ़ता ही चला जाता है, खिंचता ही चला जाता है। और तब तक तुम्हारा मन मानेगा नहीं। जैसे ही अहंकार मिटा कि मन गया और परम विश्रांति आजाती है, सब मान जाता है, तृप्ति हो जाती है।
संतन कहल पुकारी हो, जिन सूनल बानी।
संत तो पुकार-पुकार कर कहते हैं, मगर तुम सुनो तब न! जिन्होंने सुन ली वाणी, उनके जीवन में क्रांति हो गई।
सो जन जम तें बाचल हो, मन सारंगपानी।।
जिन्होंने सुन ली उनकी बात, वे मृत्यु से बच गए, राम के हो गए।
सारंगपानी यानी विष्णु। वे विष्णु के हो रहे। यह सब नाम परमात्मा के हैं।
सभी नाम एक से।
अवरि उपाव न एकौ हो, बहु धावत कूर।
और कोई उपाय नहीं है, बहुत भागादौड़ मत करो!
अवरि उपाव न एकौ हो, बहु धावत कूर।
मूढ़ आदमी बहुत दौड़ता है, पहुंचता कहीं भी नहीं। पहुंचने का और कोई उपाय नहीं है, पहुंचने का एक ही उपाय है।
आपुहि मोहत समरथ हो, नियरे का दूर।।
न तो परमात्मा दूर है, न पास है। और बड़ा मजा यह है कि आपुहि मोहत समरथ हो, ... तुम समर्थ हो, फिर भी मोह में पड़े हो। तुम चाहो तो अभी निकल आओ, इसी क्षण निकल आओ, तत्क्षण निकल आओ। लेकिन लोग भी चालबाज हैं। खूब सिद्धांत उन्होंने गढ़े हुए हैं। वे कहते हैं, जन्म-जन्म के कर्म हैं, ऐसे कैसे निकल आएंगे? पहले पिछले जन्मों को काटेंगे, फिर निकलेंगे। ये सब बहाने हैं। ये तो ऐसे हैं कि सुबह उठते वक्त कोई आदमी कहे, अभी कैसे उठूं, रात भर के सपने हैं, पहले सपने काटूंगा, फिर उठूंगा। अरे, उठ गए कि सपने कट गए! सपने काट कर थोड़े ही कोई उठता है, उठने से सपने कट जाते हैं। और पिछले कर्मो को काट कर थोड़े ही कोई परमात्मा को पाता है। परमात्मा को पाने से सब पिछले कर्म कट जाते हैं।
प्रेम नेम जब आवे हो, जब करम बहाव।
जैसे ही प्रेम का नियम समझ में आ गया, सब कर्म बह जाते हैं। घबड़ाओ मत! तत्क्षण क्रांति हो सकती है।
तब मनुवां मन माने हो, छोड़ो सब चाव।।
उसी घड़ी मन मान जाता है। जैसे पक्षी सांझ होते अपने नीड़ में लौट आए, ऐसे तुम अपने घर लौट आए। सब चाव गए। सब व्यर्थ की चाहें गईं। कैसी-कैसी चाहें हैं! आदमी क्या-क्या नहीं चाहता है! और मजा यह है कि मिल जाए तो तृप्ति नहीं; न मिले तो तो अतृप्ति है ही, मिल भी जाए तो कोई तृप्ति नहीं। कितनी चीजें तुमने चाहीं और नहीं मिलीं, तुम उनके कारण दुखी हो। और कितनी ही चीजें तुमने चाहीं और तुम्हें मिल गयीं, मिल कर तुम सुखी कहां हुए? थोड़ा विचार करो, पुनर्विचार करो!
यह प्रताप जब होवे हो, सोइ संत सुजान।
जिस संत के पास यह प्रताप घटित हो जाए, कि यह दिखाई पड़ने लगे, यह निर्मल दृष्टि मिल जाए कि जागना है, कि चेतना है, और अभी जागरण हो सकता है,

सिर्प एक शर्त पूरी करनी है, अहंकार को छोड़ देना है, जिसके पास यह प्रताप घटित हो जाए, वहीं समझना कि संत है कोई, वहीं समझना कि सिद्ध है कोई।
बिनु हरिकृपा न पावे हो, मत अवर न आन।।
कुछ और सहायता नहीं चाहिए, सिर्प हरिकृपा चाहिए। और वह तो मिल ही रही है, वह तो बरस ही रही है, झरत दसहुं दिस मोती। उसकी तो वर्षा हो ही रही है।
सिर्प तुम्हारे अहंकार के कारण तुमने अपने घड़े को उल्टा रख लिया है, वर्षा हुई जा रही है, तुम्हारा घड़ा खाली का खाली है।
कह गुलाल यह निर्गुन हो, संतन मत ज्ञान।
यह सारे संतों के मतों का सार है कि वह निर्गुण है, उस परमात्मा में कोई गुण नहीं है। न कोई रंग है, न कोई रूप है। इसलिए तुम भी जब मन के सारे रंग-ढंग, रंग-रूप छोड़ कर अपने भीतर निर्गुण और निराकार हो जाओगे, तत्क्षण उससे मिलन हो जाएगा। तुम भी निर्गुण हो, वह भी निर्गुण है, दोनों का मिलन अभी हो जाए, मगर तुम सगुण बने हुए हो! तुम कहते हो, मेरा यह नाम, मेरा यह पता-ठिकाना; मैं स्त्री, मैं पुरुष; मैं गोरा, मैं काला; मैं अमीर, मैं गरीब; मैं साधु, मैं महात्मा--तुम न मालूम कितने गुण अपने चारों तरफ लादे हुए हो! और वह निर्गुण है। तुम्हारे गुणों के कारण ही मिलना नहीं हो पा रहा है। तुम भी जरा भीतर झांक कर देखो, तुम सिर्प साक्षी हो, तुम सब के देखने वाले हो। तुम देह नहीं हो। इसलिए तुम स्त्री नहीं हो सकते, पुरुष नहीं हो सकते। और तुम मन भी नहीं हो। इसलिए तुम हिंदू नहीं, मुसलमान नहीं, कम्युनिस्ट नहीं, कैथोलिक नहीं; भारतीय नहीं, चीनी नहीं, जापानी नहीं। न तुम शरीर हो, न तुम मन हो, तुम भीतर बैठे साक्षी हो।
साक्षी निर्गुण भाव-दशा है। साक्षी तो ऐसे है जैसे दर्पण। बस, निर्मल दर्पण हो तुम। जैसे ही तुमने यह जाना, उसी क्षण मिलन हो जाएगा। उसी क्षण घड़ा सीधा हो गया--और वर्षा तो हो रही थी, मोती तो झर ही रहे थे, भर जाएगी झोली तुम्हारी! तब ठहर जाता है मन। तब सब चाहें अपने से गिर जाती हैं। चाहा भी नहीं था, वह भी मिल गया। चाहों के भी जो पार है, वह भी मिल गया। मालिक ही मिल गया, तो उसकी मालकियत को अब क्या चाहना!
कह गुलाल यह निर्गुन हो, संतन मत ज्ञान।
जो यहि पदहि बिचारे हो, सोइ है भगवान।।
और भगवान कोई व्यक्ति नहीं है कहीं दूर आकाश में बैठा हुआ। जिसने भी ऐसी निर्गुण दशा को अनुभव कर लिया, वही भगवान है। भगवान निर्गुण दशा के अनुभव का नाम है। तुम भी भगवान हो! सोए हो, यह दूसरी बात। आंख नहीं खोलते, यह दूसरी बात। हजार जालों में पड़े हो, यह दूसरी बात। मगर इससे तुम्हारी भगवत्ता में कोई भेद नहीं पड़ता। तुम्हारा स्वभाव तो भगवत्ता है। जब भी जागोगे, पाओगे भगवान भीतर था। भगवान तुमने एक क्षण को नहीं खोजा है, खो नहीं सकते, उसे खोया नहीं जा सकता, उसे पाने की भी कोई जरूरत नहीं--जिसे खोया ही नहीं, उसे पाएंगे क्यों? पाएंगे कैसे? --वह तो मौजूद ही है, सिर्प तुमने पीठ कर ली है, तुम उसकी तरफ देख नहीं रहे हो। लौटो घर, अंतर्यात्रा पर आओ, झांको भीतर--कौन वहां बैठा है? और तुम उसे विराजमान पाओगे।
जिस दिन तुम जान लोगे तुम्हारे भीतर भगवान है, उस दिन तुम यह भी जान लोगे सब के भीतर भगवान है। तब सारा अस्तित्व भगवत्ता से पूर्ण हो जाता है। और वैसी अनुभूति ही निर्वाण है, वैसी अनुभूति ही मोक्ष है। झरत दसहुं दिस मोती!

आज इतना ही।